राजस्थान का स्वतन्त्रता-संग्राम
का
इतिहास

सत्यमेव जयते

डा० गोपीनाथ शर्मा, डी. लिट्

राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर

राजस्थान का स्वतन्त्रता-संग्राम
का
इतिहास

आदरणीय राघवजी
राउतजी को
सादर ---
03.02.2020

सत्यमेव जयते

डा० गोपीनाथ शर्मा, डी. लिट्

राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर

जुलाई, 1991

प्रस्तावना

राजस्थान भारतीय बलिदान की वेदियों में अपना प्रमुख स्थान रखता है। इसका स्वतन्त्रता का इतिहास सदियों का प्राचीन इतिवृत है। प्रारंभिक काल से वर्तमान युगीय यात्रा में इसका जीवन कार्यशील एवं ऐतिहासिक प्रक्रियाओं का परिणाम है। यह सर्वविदित है कि दृशास्वती और सरस्वती नदियों के अचल में यहां का मानव-जीवन स्वतन्त्रता की लहरों से प्लावित था। इसके अतिरिक्त यहां प्राचीन काल से लम्बे समय तक गणराज्यों की व्यवस्था की परम्परा भी अनुप्राणित होती रही। शिवि गणराज्य की एक शाखा ने जो चित्तौड़ के निकट मध्यमिका में स्थापित थी, युनानियों के आक्रमण के समय शत्रुओं के दांत खट्टे किये थे। योधेय तथा मालव जाति भी अपनी स्वतन्त्रता के लिए यवनों और शकों का मुकाबला बड़ी बीरता से करते रहे। जब तुर्कों ने राजस्थान में प्रवेश का क्रम आरम्भ किया तो उन्हे भी कई बार अपमानजनित पराजयों को झेलना पड़ा। मुगलों से प्रथम संघर्ष महाराणा सांगा ने राजस्थान का एक बड़ा संघ बनाकर किया। वैसे खानवा के युद्ध में सांगा को सफलता तो नहीं मिली परन्तु आक्रामक बाबर का साहस राजस्थान में आगे बढ़ने का न हो सका। इसी प्रकार प्रात. स्मरणीय प्रताप ने अपनी स्वतन्त्रता को अंतिम घड़ी तक बनाये रखा। जोधपुर के महाराजा जसवन्त सिंह ने भी उसी लीक को निभाने के लिए औरंगजेब की नीति का खुलकर विरोध किया। जयपुर के महाराजा सवाई जयसिंह भी कूटनीति के अनुसरण द्वारा अपना प्रभुत्व मुगल शासकों पर बनाये रखने में लफल हुए। भरतपुर के शासक सुरजमल ने आगरे तक के क्षेत्र पर प्रभाव स्थापित कर अपने अदम्य साहस का परिचय दिया। इसी प्रकार पूर्व मध्यकालीन युग में पंचायतों द्वारा जनता के अधिकार प्रभावशील बने रहे जो शासन-तन्त्र के समानान्तर थे। इनके प्रस्ताव, संकल्प और न्याय निर्णयों का शासक वर्ग सम्मान करता था तथा उनके क्षेत्रीय अधिकार की परिधि में राज्य द्वारा किसी तरह का हस्तक्षेप नहीं होता था। परन्तु उत्तर मध्यकाल ने सतत युद्धों की एवं मराठों की लूट खसोट की अव्यवस्था ने लोकतन्त्रात्मक संस्थाओं को निर्बल कर दिया और सामन्ती एवं एकतन्त्रात्मक शासन को प्रबल बना दिया।

सच पूछा जाय तो 17वीं सदी का अंतिम चरण व 18वीं सदी का युग राजस्थान के लिए दुर्भाग्यपूर्ण था। यहां की अलग-अलग राज्यों की इकाइयां, जो प्रथमवार सांगा के नेतृत्व में संगठित हुई थी अपने-अपने नेतृत्व की लालसा से विलग हो चुकी थी। उनके आश्रित सामंत अपनी शक्ति बढ़ाने में लगे हुए थे। प्रातः स्मरणीय महाराणा प्रताप व वीर दुर्गादास के जागृति के सन्देश तथा सवाई जयसिंह की कूटनीति की चालें क्रमशः मन्दगति की ओर अग्रसर होने लगी। इस अव्यवस्था के युग में ब्रिटिश सत्ता अवध, बंगाल, महाराष्ट्र मद्रास, मैसूर आदि भू-भागों में स्वामित्व प्राप्त करने में सफल हो चुकी थी और धीरे-धीरे यह विदेशी सत्ता राजस्थान में भी अपनी प्रभुसत्ता को स्थापित करने के ताने बाने बुन रही थी।

अंग्रेजों को इस स्थिति से लाभ उठाने का अवसर अनायास हाथ लग गया। राजस्थानी नरेश, जिन्होंने मुगलों से मैत्री सम्बन्ध स्थापित किया था उनकी छत्रछाया में अपने आपको सुरक्षित समझने लगे। अब पड़ौसी राज्यों व विदेशी आक्रमणों का भय न रहने से नरेशों की तलवारें जंग खाने लगी और उनकी वीरता मानसिक दुर्बलता में बदल गई। यदि तलवारों या शक्ति प्रदर्शन का कोई उपयोग रह गया था तो वह आपसी कटुता और विद्वेष के निपटने तक सीमित था। भाई–भाई के विरोध में, पति–पत्नी के झगड़े में, पुत्र पिता के विरुद्ध षडयन्त्रों में लगे रहते थे, जिससे राजस्थान की स्थिति पतनोन्मुख हो चली थी। मराठों और पिंडारियों के आतंक से जनजीवन में शान्ति का अभाव हो चला था। मराठों की घुसपैंठ ने कृषि, वाणिज्य, व्योपार आदि में गत्यावरोध उपस्थित कर दिया था। कृष्णाकुमारी का अंत इस पतित अवस्था का एक नग्न स्वरूप था। हाड़ौती, मारवाड़, मेवाड़, आदि प्रमुख रियासतों की आपसी फूट के घुन ने इन राज्यों की नीवों को जर्जरित कर दिया था। क्या राजा व क्या सामन्त सभी विलासिता के नशे में अपने उत्तरदायित्व को भूलते जा रहे थे। सुरा व सुन्दरी का भूत हर पग ऐसा हावी हो गया था कि वे अपने आपको खो चुके थे। राज्यों की आर्थिक स्थिति इतनी असंतुलित हो चली थी कि अपनी प्रजा का शोषण करना, कर उघाना व जबरन कर्ज लेना एक प्रथा सी बन गई थी। जो आचरण स्वामी के थे, उनका अनुकरण अधिकारी वर्ग करने लगा था। अर्थाभाव के कारण जयपुर के महाराजा ईश्वरीसिंह को सपरिवार आत्महत्या करनी पड़ी थी।

अकर्मण्य एवं किंकर्तव्यविमूढ नरेशों के पास सिवाय अंग्रेजी सत्ता से सम्बन्ध स्थापित करने का कोई मार्ग नहीं बचा था। दोनों पक्षों में बातचीत के दौर आरम्भ हुए जिसके फलस्वरूप लार्ड वेलेजली ने 'ब्रिटिश संरक्षण नीति" तथा लार्ड हैस्टिंग्ज ने "प्रभुसत्तावादी" नीति द्वारा राजस्थान के नरेशों को अपने मायाजाल में फंसा लिया। 1818 की संधि द्वारा अंग्रेजी सत्ता का सर्वाधिकार तथा प्रभुत्व निर्धारित अनुबंधों के माध्यम से सभी राज्यों के नरेशों ने स्वीकार कर लिया। आगे चलकर अंग्रेजों ने आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप द्वारा सीमा विवाद में निर्णय, कुशासन के दोषारोपण तथा उत्तराधिकार के झगड़ों आदि को निपटाने के बहाने इन नरेशों को पंगु व अकर्मण्य बना दिया। खिराज की रकम की वसूली व ब्रिटिश एवं ब्रिटिश रजिडेन्ट एवं अपने प्रशासकों की नियुक्तियों द्वारा अंग्रेजों ने इन राज्यों का आर्थिक शोषण भी आरंभ कर दिया। आपसी फूट, नरेशों की विलासिता और अंग्रेज अधिकारियों की चालों का प्रयोग आदि ऐसी घटनाएं थीं जिनसे राजस्थानी नरेश ब्रिटिश सत्ता के जुए में जुत गये। इन पर नियन्त्रण रखने के लिए अजमेर में राजपूताना एजेन्सी का केन्द्रीय कार्यालय खोला गया। स्थानीय आदिवासियों, राजपूतों, मीणाओं व गूजरों को सेना में भर्ती किया गया और नीमच, नसीराबाद, दौसा, देवली, खेरवाड़ा व कोटड़ा में छावनियां स्थापित की गई जिससे प्रदेश के नियन्त्रण में सुविधा हो जाये तथा राजस्थान की लड़ाकू जातियों को सेना में भर्ती कर उन पर अनुशासन का अंकुश लगाया गया। उधर ईसाई पादरियों को धर्म प्रचार की छूट दे दी गई जो अंग्रेजों के प्रति सद्भावना का वातावरण बना सकें। ये सभी हथकंडे अंग्रेजों की प्रभुसत्ता स्थापित करने के कदम थे।

परन्तु नरेशों व अधिकांश सामन्तवर्ग के इस प्रकार के बर्ताव से यह नहीं समझ लेना चाहिये कि आम जनता अंग्रेजों के इस प्रकार की नीति से प्रसन्न थी। राज्यों में जिन शासकीय सुधारों का प्रयोग (1818-1856) ई. जो अंग्रेजों की सम्मति तथा आदेशानुसार किया जा रहा था उससे जनता में क्षोभ का वातावरण बनने लगा। पटेल, पटवारी, भोमिये, गरासिये तथा कतिपय सरदार ब्रिटिश सत्ता को अपने पर थोपा गया मानते थे। कई स्थानीय विवाद तथा जातिगत मामलों को निपटाने का जो उनका पैतृक काम था वह अब ब्रिटिश अधिकारियों ने हथिया लिया तो वे अंग्रेजों से वैमनस्य की भावना रखने लगे। आसोप, गूजर, सलूंबर, कोठारिया आदि के जागीरदार नई सत्ता को उखाड़ फेंकने के ताने बाने बुनने लगे, क्योंकि अंग्रेजों से संधि हो जाने से उनके कई अधिकारों की इतिश्री हो गई थी। 1818 ई. के संधि के समय से 1857 तक राजस्थान में एक विरोधी दल तैयार हो गया था जो अंग्रेजी सत्ता के तख्ते को येन-केन प्रकारेण उलटने के पक्ष में था। ऐसी ही भावनाएं व्यापारी वर्ग की भी थी जो मुक्त व्यापार, का पक्षधर था और जिसे चुंगी नाके व व्यापारिक मांगो के निमंत्रण तथा नमक और अफीम सम्बन्धी नियमों का विरोध था। राज्याश्रित समूह भी रजिडेन्टों एवं अंग्रेजों द्वारा नियुक्त अधिकारियों के हस्तक्षेप को अपनी प्रतिष्ठा के लिए हानिमूलक समझते थे। इस प्रकार की नई व्यवस्था ने राजस्थान मे क्रांति के प्रसार के लिए अनुकूल वातावरण बना दिया था।

अतएव जब उत्तरी भारत में 1857 की क्रांति का बिगुल बजा तो इसका समर्थन राजस्थान में भी किया गया। 28 मई, 1857 में नसीराबाद की छावनी में अंग्रेज अफसरों की हत्याएं कर दी गई एवं छावनी पर कब्जा कर लिया गया। नीमच, निम्बाहेडा, जहाजपुर; जीरण, जावद, आबू, सींगोली आदि स्थानों में भी विद्रोह की आग भड़क उठी।

इन स्थानों की घटनाओं में अधिक महत्वपूर्ण घटनाएं आउवा व कोटा में हुई। आउवा में अंग्रेजी फौज जो मेकमेसन की अध्यक्षता में ठाकुर को दबाने के लिए भेजी गई थी उसको पराजित होना पड़ा और मेकमेसन की हत्या कर दी गई। कोटा में विद्रोहियों ने ब्रिटिश रेजिडेन्ट बर्टन तथा उसके पुत्रों को मार पूरे नगर पर कब्जा कर लिया। तांत्या टोपे ने भी इस क्रान्ति के माहोल में अपनी भूमिका निभाई और राजस्थान में विद्रोह की गतिविधियों को अपने नेतृत्व व साहस से जीवित रखा।

वैसे तो देश की भांति राजस्थान में क्रान्ति की ज्वाला शांत कर दी गई परन्तु आउवा का बलिदान, कोटा के जयदयाल व महराबखां की फांसी तथा तांत्या को फांसी लटकाया जाना आदि ब्रिटिश सत्ता को चुनौती देने वाली घटनाएँ थीं। यह एक दूसरी बात हैं कि क्रांतिकारियों की योजनाओं को अंग्रेजों की दमनकारी नीति ने सफल नहीं होने दिया, परन्तु आत्मोत्सर्ग द्वारा यहां के निर्भीक वीरों ने जिस प्रकार अंग्रेजी हुकुमत से छुटकारा पाने के मार्ग को चुना था वह अपने आप में बड़े महत्व का है। इसकी त्याग व प्रेरणादायक घटनाओं ने देश-भक्ति और बलिदान की एक कोटि निर्धारित की जिसमें भावी पीढ़ी को विदेशी सत्ता से लोहा लेने की क्षमता पैदा हो गई और यह भी प्रमाणित हो गया कि नरेशों

के अस्तित्व की दीवारें भोग-विलास एवं चाटुता के धुन से ढ़हने की स्थिति में पहुंच रही हैं और जनता का सहयोग एक ऐसा बल बन चुका है कि जो उत्तरोत्तर बढ़कर अपनी स्वतन्त्रता प्राप्ति के प्रयास में सफल प्रमाणित होगा।

वैसे तो 1857 की क्रान्ति ने निश्चित ही जनता में दासता से मुक्ति पाने की प्रबल प्रेरणा प्राप्त करली थी, परन्तु उसे बौद्धिक उद्बोधन की आवश्यकता थी। भाग्यवश महर्षि दयानन्द सरस्वती और विवेकानन्द जैसे दार्शनिक व देश प्रेमी उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथम चरण में भारत भूमि पर अवतरित हुए। उन्होंने अपने आचरण, लेखन व व्याख्यानों से शिक्षित वर्ग को प्रभावित किया। राष्ट्रभाषा, धर्म, स्वदेश प्रेम और स्वतन्त्रता के मुद्दों पर दिये गये उनके भाषणो ने शिक्षित समाज को मंत्रमुग्ध कर दिया। इन्होंने राजस्थान में भी राजा, महाराजा, सामन्तों आदि उच्चवर्ग को अपने कर्तव्य का स्मरण कराया। एनी-बेसेन्ट के उद्बोधन का भी राजस्थान मे प्रभाव पड़ा। फल यह हुआ कि सर्वत्र निरंकुश शासकों भ्रष्ट अधिकारियों व अंग्रेजों की चालों की भर्त्सना होने लगी। जिस नवोत्थान का उपदेश वेद, उपनिषद गीता आदि के माध्यम से इन विचारकों व समाज सुधारकों द्वारा दिया गया वह कम से कम प्रबुद्ध समाज के विचारधारा की रीढ बन गया। इस प्रकार के वातवारण के बनाने में ब्रह्मसमाज, प्रार्थना समाज, रामकृष्ण मिशन, आर्य समाज आदि सामाजिक संगठनों की अपूर्व भूमिका थी। ऐसी स्थिति में इंडियन नेशनल कांग्रेस जिसकी स्थापना 1885 ई. में हो गई थी, एक बलिष्ठ संस्था के रूप में संवैधानिक सुधार की मांग को लेकर उभरी।

जो काम इन दार्शनिकों तथा समाज सेवी संगठनों द्वारा किया जा रहा था इसकी पूर्ति भारतीय समाचार पत्रों के माध्यम से होने लगी। ऐसे पत्र और पत्रिकाओं में दिग्दर्शन, बंगाल गजट, सवाद कौमुदी, आदि मुख्य थे जो विदेशी सत्ता की सुधार के प्रति उपेक्षा, उदार शासन का अभाव एवं शासन में भ्रष्टाचार आदि समाचारों के प्रसारण से प्रबुद्ध वर्ग में राजनीतिक चेतना और जनमत बनाने में सहायक सिद्ध हुए। देश में ऐसे पत्र और साहित्य भी लोकप्रिय होने लगे, जैसे, युगान्तर सन्धया, हिन्द केसरी, गदर, स्वराज्य आदि जिनके पठन से देश में क्रांति के भाव जागृत होने लगे। पाठकों की रुचि गेरिबाल्डी; नेपोलियन मैजिनी आदि के जीवनवृत को पढ़ने की ओर बढ़ने लगी। फ्रांसीसी क्रांति, अमेरिकन और रूसी क्रांतियां आयरलैण्ड के आन्दोलन आदि वाचन और अध्ययन के विषय बनते जा रहे थे। फलस्वरूप अब सार्वजनिक कार्यकर्ताओं की धारणा बनने लगी की सशस्त्र क्रांति ही एक ऐसा साधन है जो देश को अंग्रेजों को शिकंजे से मुक्ति दिला सकती है। इसके अन्तर्गत शस्त्रों को इकट्ठा करना लूट-खसौट, आगजनी हत्या सम्मिलित थे। देश में अनुशीलन समितियां स्थापित की गई जिनके द्वारा युवा पीढ़ी को युद्ध व क्रांति के लिये प्रेरित किया जाने लगा। भूपेन्द्र दत्ता, शचीन्द्रनाथ सन्याल, सावरकर, अरविन्द घोष जैसे व्यक्तियों ने क्रांति के सूत्र से युवा पीढ़ी की तन्त्री को ऐसा बजाया कि सशस्त्र क्रांति का ही स्वर चारों ओर गूंज उठा। उनकी प्रेरणा से हत्याओं व डाकाजनी की घटनाओं ने अंग्रेजों के नाक में दम कर दिया।

संयोगवश राजस्थान के कृष्णसिंह बारहट, केसरीसिंह बारहट, राव गोपालसिंह खरवा तथा विजयसिंह पथिक आदि क्रांतिकारी देश प्रेमियों के सम्पर्क में आये । इन्होंने भी यहां से शस्त्र इक्ट्ठा करने, छावनियों के भण्डार के शस्त्रों पर अधिकार करने, अनैतिक आचरण वाले मठाधीशों से धन लूटने की योजना बनाई । बल्कि 19 फरवरी, 1915 को नसीराबाद छावनी आदि से शस्त्रगारों पर कब्जा करने व ब्यावर रेल्वे लाईन उड़ाने की योजना बनाई । अभाग्यवश सत्ता के गुप्त सूत्रों से इन योजनाओं का पता लग गया और उसकी असफल बनाने के सभी उपाय कर लिये गये । क्रांति के प्रमुख नेता गोपालसिंह व पथिक को टाडगढ़ में बन्दी बनाकर रखा गया और इनके अन्य सहयोगियों का जेलों में बन्द कर दिया गया ।

एक अर्थ में सशस्त्र क्रान्ति असफल रही । वैसे सशस्त्र क्रांति का भौतिक पक्ष हिंसात्मक था, परन्तु नैतिक पक्ष में विदेशी सत्ता से छुटकारा पाने का ध्येय था जो राष्ट्रहित में सर्वथा न्याय संगत था । इसके कर्णधार ऐसे व्यक्ति थे जिनके हृदय में अपनी मातृभूमि के प्रति श्रद्धा, त्याग और बलिदान की भावनाएं थी । ये भावनाएं आगे आने वाले कार्यकर्ताओं के लिए प्ररणा के स्रोत बनी जिसका मूर्तरूप हम कांग्रेस के गरम दल तथा सुभाष बोस की नीति में पाते हैं ।

सशस्त्र क्रांति की भांति सामन्तों की गुलामी की जंजीरों से मुक्त होने का प्रयत्न राजस्थान के कृषकों ने किया । राजस्थान के कृषक जो सामन्तों के अधीन थे उनके संबंध स्वामी और सन्तान के रूप में सदियों से चले आ रहे थे, कृषक उत्पादक थे तो सामन्त उनके रक्षक व हितैषी थे । जो भी वे पैदा करते थे उसका उचित भाग वे अपने स्वामी को भेट करते थे । परन्तु ये मधुर सम्बन्ध कटुता में बदल गये और रक्षक अब भक्षक बन गये । इसका मुख्य कारण यह था कि जब नरेशों ने 1818 की संधि ब्रिटिश राज से करली तो उन्हे निश्चित खिराज की राशि सरकार को देना होता था । इस राशि की पूर्ति के लिए नरेशों ने अपने सरदारों से छटूंद, तलवार बंधाई आदि के रूप में कर लेना आरभ कर दिया । तब सरदारों ने इसकी अदायगी की पूर्ति के लिए अपनी अमलदारी के कृषकों से लाग-बाग,बेठ-बेगार आदि वसूल करना शुरू कर दिया । इसके अतिरिक्त वे अपने पारिवारिक विवाह, मृत्यु और उत्सवों के अवसर पर कई प्रकार की भेंट कृषकों से वसूल करने लगे । ऐसी परिस्थिति में कृषक भूखा और नंगा होता चला गया और इन लागबागों की सख्या धीरे-धीरे 100 की सीमा को पार गई । निश्चित कर व लाग-बाग, बेगार, भेंट आदि न देने पर बेचारे कृषकों को अपनी पैतृक भूमि से वंचित होना पड़ता था । उन्हे कई प्रकार की अमानुषिक यातनाए भुगतनी पड़ती थी ।

इस दयनीय अवस्था से छुटकारा पाने के लिए कृषकों ने अपने ठाकुरों से संघर्ष करने का बीड़ा उठाया । इनको कृषक आन्दोलन की संज्ञा दी गई है जो बिजोलिया, बेगू, बूंदी सीकर, शेखावाटी, मारवाड़, बीकानेर व अलवर आदि राज्यों में हुए थे । इनमें बिजोलिया आन्दोलन अधिक महत्वपूर्ण है । जिसका नेतृत्व विजयसिंह पथिक और माणिक्यलाल वर्मा ने किया । यह आन्दोलन 1913 से 1941 तक कई उतार चढाव के साथ चलता रहा परन्तु अन्ततोगत्वा कृषकों की विजय हुई । अन्य ठिकानों को भी अपने कृषकों की

मांगों को स्वीकार करना पड़ा। वैसे इन आन्दोलनों की सफलता का श्रेय कृषकों की दृढता को जाता है। परन्तु राजस्थान की स्वयं सेवी संस्थाओं का सहयोग, भारतीय नेताओं का मार्गदर्शन एवं पत्र.पत्रिकाओं द्वारा प्रचार भी इसकी सफलता के बहुत बड़े कारण थे। जब-जब कृषक आन्दोलन को निर्दयता से कुचला गया तो यहां की स्वयं-सेवी सस्थाएं और जन प्रतिनिधि उनका मार्ग दर्शन करते रहे। बड़े महत्व की बात इन आन्दोलनों के सम्बन्ध में यह थी कि वे इनके विविध चरणों में सत्य और अहिंसा पर आधारित रहे। कई कृषक पुरुष और महिलाओं को अपना बलिदान देना पड़ा, परन्तु उन्होने कदापि हिंसात्मक तरीकों का आश्रय नहीं लिया। सबसे बड़ी उपलब्धि कृषक आन्दोलन की यह थी कि उसने ठिकानों की सुदृढ़ दीवारों को अपनी दृढ सकल्प की शक्ति से ऐसा जर्जरित कर दिया कि वे उत्तरोतर ढहती चली गई और ज्योंही आजादी का शंखनाद हुआ, सामंत प्रथा का भूत सर्वदा के लिए विलुप्त हो गया।

कृषकों की भांति जनजाति को भी अंग्रेजों के द्वारा लागू किये गये नियमों से असंतोष था। वे वन तथा वनजन्य वस्तुओं को अपना अधिकार क्षेत्र समझते थे, क्योंकि जब राजपूतों ने इनकी इकाइयों पर कब्जा कर लिया और अपने अपने राज्यों की स्थापना कर दी तो इन्हें जंगलों में जाकर रहने के लिए बाध्य होना पड़ा। वहां रहकर उनको स्वतन्त्र जीवन यापन का अवसर मिला और जो वस्तुएं वन में पैदा होती थी--लकड़ी, कोयला, महुआ, गौंद, औषधियां, जड़ी-बूंटी आदि उनको बटोरकर वे शहरों व कस्बों में लातें और उनके विक्रय से वे अपना जीवन यापन करते। जंगल के घास से पशुओं का भी वे सरलता से पालन कर लेते थे। महुए से शराब बना लेने और पड़त जमीन पर खेतीकर अपना पोषण करते। परन्तु ब्रिटिश शासकों के दबाव से वन विभाग एवं पुलिस चौकियों की स्थापना हुई और इन विभागों के अधिकारियों ने इन पर अत्याचार करने आरम्भ कर दिये, तो स्वभावतः इनमें विद्रोह की आग भड़क उठी। जनगणना एवं पैमाइश के अभियान में उनके मानस में अपने अस्तित्व के बारे में कई प्रकार की शंकाएं उत्पन्न होने लगीं, इस वर्ग ने अपनी-अपनी पालों में सरकारी आदेशों का उल्लंघन करना तथा लूट-कसोट करना आरम्भ कर दिया। खारवा पाल, पडूना, भोराई; बारापाल, काया, धुलेव, अलसीगढ़, कोटड़ा, पाई आदि स्थान जनजाति के विद्रोह के केन्द्र बन गए। बागड़, सिरोही आदि भागों में गोविन्दगिरी एवं मोतीलाल तेजावत ने इस जाति को संगठित कर आन्दोलन को सजीव बना दिया। पूर्वी राजस्थान के मीणों ने भी अपने अधिकार की रक्षा की मांग में सरकार की नाक में दम कर रखा था।

जहां सैनिक क्रान्ति, कृषकों और जनजाति के आन्दोलनों ने राजस्थान के राजनीतिक वातावरण को बदला वहां अब सामाजिक सुधारों की भी लहर चल पड़ी। कुछ यहां के सेवाभावी कार्यकर्त्ता भारतीय नेताओं और सुधारकों के सम्पर्क में आने से तथा राष्ट्रीय साहित्य के अध्ययन से रचनात्मक काम की ओर रुचि लेने लगे। तिलक, गोखले, रानाडे, दादाभाई नारोजी आदि के क्रियाकलापों, लेखों और पुस्तकों व पत्र-पत्रिकाओं से नये विचारों का संस्कार यहां होने लगा। कांग्रेस के अधिवेशनों में आने जाने से निष्ठावान व्यक्तियों में नई प्रेरणा प्रस्फुटित हुई। अफ्रीका में किये गये गांधीजी के रचनात्मक कार्यों

ने भारतीय चिन्तन में एक नया अध्याय जोड़ दिया और जब उनका प्रतिभा का सूर्योदय 1915 से यहां हुआ तो एक रचनात्मक प्रवृत्ति यहां जागृत हुई। राजस्थान के कई नवयुवक गुजरात, बंगाल, महाराष्ट्र आदि में संचालित प्रवृत्तियों से परिचित व शिक्षित भी हुए। यहां समाज में सुधार व जागृति लाने वाली संस्थाएं भी थी उनमें राजस्थान सेवा संघ, राजस्थानी हरिजन सेवा संघ, नरेली प्रशिक्षण केन्द्र, खाईलाई आश्रम, देशी राज्य परिषद; सत्र विद्या प्रचरिणी सभा, राजपूताना मध्यभारत सभा आदि प्रमुख थी। कृषकों की पंचायतें भी विभिन्न भागों में थीं। वैसे ये विविध संस्थाएं राजस्थान की कई सामूहिक समस्याओं को हल करने में सफल नहीं हुई परन्तु इनके माध्यम से एकता के स्वरने जनता में भावों को प्रोत्साहित अवश्य किया। प्रारम्भ में इनका उदेश्य शिक्षा और सामाजिक सुधार था, परन्तु धीरे धीरे इन्होंने राजनीतिक समस्याओं को लेकर एक बलिष्ठ जनमत बनाने में बड़ा योग दिया। इन्हीं संस्थाओं से जुड़े कार्यकर्ता राजस्थान के कर्मिष्ठ नेता बने।

जो जागरण इन संस्थाओं द्वारा राजस्थान में हो रहा था उनको जनता तक पहुंचाने का कार्य यहां से प्रकाशित होने वाली पत्र-पत्रिकाएं कर रही थी। ऐसे प्रकाशनों में उदयपुर का सज्जनकीर्ति सुधाकर, जयपुर का रोजे-उल्हतामिल, उदयपुर का हरिशचन्द्र का अजमेर के राजस्थान टाइम्स राजस्थान, समाचार राजस्थान हेराल्ड व राजपूताना गजेटियर, नवीन-राजस्थान, तरुण राजस्थान, आगीवाणी, प्रभात, नवज्योति, राजस्थान पत्रिका, आजाद, सैनिक गौरव, युवक, दीनबन्धु आदि विशेष उल्लेखनीय है। इनके द्वारा राजनीतिक विचारों का आदान-प्रदान; स्वतन्त्रता संग्राम से सम्बन्धित समाचारों का प्रसारण, जन-साधारण में जागृति आदि उपलब्धियां महत्वपूर्ण प्रमाणित हुई।

विविध समाज सेवी संस्थाओं और पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से राजस्थान के नगर, कस्बे तथा गांव प्रभावित हो गये और एक विचारधारा ने घर कर लिया कि ब्रिटिश सत्ता और राजाओं की निरंकुशलता उनके लिए घातक हैं। व्यापारी और प्रबुद्ध वर्गों को अपने अपने अधिकारों के प्रति जागरुकता उत्पन्न हो गई और वे राष्ट्रहित के लिए काम करने के लिए तैयार हो गए। अन्यायपूर्ण गतिविधियां जो देश में हो रही थी तथा जलियांवाला बाग की नृशंस घटना को लेकर गांधीजी ने जो रचनात्मक काम और विदेशी वस्तुओं, स्कूल, कालेजों और अदालतों के बहिष्कार की पुकार की थी उसका प्रभाव राजस्थान में भी पड़ा। असहयोग आन्दोलन व नमक कानून के तोडने के कार्यक्रम में राजस्थान के कार्यकर्ताओं ने बंबई, कानपुर, आगरा आदि स्थानों में जाकर अपना योगदान दिया और अजमेर को अपनी गतिविधि का केन्द्र बनाया गांधीजी का राजनीतिक मंच पर आना राजस्थान के लिए एक वरदान सिद्ध हुआ। इनके मार्गदर्शन द्वारा कई कार्यकर्ता, अध्यापक व व्यापारी सत्याग्रह में भाग लेते रहे। वे जनता के उत्साह के स्रोत बने।

वैसे राजस्थान में कई स्वयंसेवी संस्थाएं थी, परन्तु इनका एकरूपतावाली संस्था नहीं थी। इसी अभाव के कारण भारतीय नेता राजस्थान की समस्याओं को अपने कार्यक्रम का भाग नहीं मानते थे। इस कमी की पूर्ति के लिए राज्यों में स्थानीय कार्यकर्ताओं ने

प्रजामण्डल या प्रजापरिषदों की स्थापना का क्रम 1934 से आरम्भ कर दिया। इन मण्डलों और परिषदों द्वारा प्रत्येक राज्य के कार्यकर्त्ता इन संस्थाओं के सदस्य बन गये और समय-समय पर गांधीजी व पं० नेहरु जी से मार्गदर्शन प्राप्त करते रहे। वैसे सभी राज्यों की गतिविधियों पर पूरा प्रकाश यथास्थान इस पुस्तक में दिया गया है, यहां इतना ही लिखना पर्याप्त होगा कि इन संगठनों की मांगे स्थानीय समस्याओं के अतिरिक्त मोटे रूप से भाषण देने की स्वतन्त्रता, सभा व संगठनों का आयोजन करना, संवैधानिक सुधार आदि थीं। गांधीजी का शांतिपूर्ण प्रतिरोध और असहयोग आंदोलन का प्रयोग राजस्थान में एक नया क्रांतिकारी कदम था जिसने यहां के लोकजीवन में एक मूलभूत परिवर्तन कर दिया। इनकी गतिविधि मे राज्य द्वारा अवरोध, गिरफ्तारियां, निषेधाज्ञाओं, मारपीट, त्रास, जेलयातना आदि किया जाने लगा, परन्तु कृतसकल्प कार्यकर्त्ता अपने उद्देश्य से नहीं डिगे और राजस्थान स्वतन्त्रता प्राप्ति के पथ पर स्थिर डगर भरता रहा। सबसे बड़ी विशेषता राजस्थान के कार्यकलापों की यह रही कि अब देश के गणमान्य नेता यहां की समस्याओं के प्रति अभिरुचि लेने लगे और समय-समय पर मार्गदर्शन देते रहे।

दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति यह थी कि प्रशासनिक सुधार के नाम पर साम्राज्यवादी अंग्रेज अप्रगतिशील राजस्थान के नरेशों की नीतियों का समर्थन करते थे। इधर 1921 में नरेन्द्र मण्डल की स्थापना साम्राज्यवादी नीति का पोषक थी। इसके द्वारा राज्यों के शासकों में सम्मान की भावना पैदा कर उन्हें राष्ट्रीय आन्दोलन को कुचलने का एक प्रकार से साधन बना दिया। शासक अधिकाधिक मागें कर रहे थे और अंग्रेज उन्हें मंजूर करते थे, यदि वे मागें उनकी प्रभुसत्ता को आंच न पहुंचाने वाली हो। नरेश तो अंग्रेजों के प्रति हर प्रकार की वफादारी बतलाने तथा राष्ट्रीय मांगों की और उपेक्षा करने में अपना गौरव समझते थे। इधर राजस्थान के कार्यकर्ता राष्ट्रीय आन्दोलन की नीति के अवलम्बन के लिए अधिक सक्रिय हो गये। यहां 1942 के 'भारत छोड़ो' आन्दोलन का स्वागत हुआ तथा सभी एक स्वर से "करो या मरो" के नारे के अनुमोदक हो गये। इस नारे ने राष्ट्र प्रेमियों को उत्तेजित कर दिया। जगह-जगह पुलिस थाने जलाने, रेलवे स्टेशनों पर तोड़ फोड़ करने स्कूल, कालेज व अदालतों के बहिष्कार की घटनाएं होने लगी। परन्तु राजस्थान के नरेश अब भी ब्रिटिश सत्ता के हामी थे। उन्होने भविष्य को न पहिचान स्वतन्त्रता सेनानियों के प्रति अत्याचार, मारपीट तथा कठोर एवं निर्दयता पूर्ण व्यवहार का तरीका अपनाया। इन सभी प्रकार की यातनाओं का देश प्रेमियों ने निर्भीकता से सामना किया। जब ये कार्यकर्ता जेलों से 1944 में छोड़े गये तो वे खादी प्रचार, शिक्षा प्रचार और दलितो के उद्वार के कार्यक्रमों में लग गये।

परन्तु जब आन्दोलन दबाने में ये नरेश सफल नहीं हुए तो उन्होंने अपने-अपने राज्य में कुछ वैधानिक सुधारों द्वारा प्रजा को शांत करने के प्रयत्न किये। पर अब प्रजा की आवाज पूर्ण स्वतन्त्रता की थी, जिसमें नरेशों के अस्तित्व का कोई स्थान न था। अन्त में जब 15 अगस्त, 1947 को भारत स्वतन्त्र हुआ तो राजस्थान का उसमें विलय होना एक आवश्यक घटना बन गई जो तीन चरणों में सम्पादित हुई। यहीं से राजस्थान का एक नया युग प्रारंभ होता है। यहीं से यहां की राजनीति, समाज संगठन तथा सामाजिक सुधार की गतिविधियों का युगान्तर प्रविष्ट होता है। इस अर्थ में हमारी स्वतन्त्रता शोषण, त्रास, अन्याय,

दबाव वर्गभेद आदि कुत्सित परिपाटियों की समाप्ति की सूचक और आर्थिक विकास व सामाजिक सुधार के सूत्रपात की सन्देशवाहक बनी। एक प्रकार से स्वाधीनता हमारी क्रमबद्ध योजनाओं तथा औद्योगिक प्रगति का सूर्योदय है। साथ ही प्रजा ने जिन कुशल स्वतन्त्रता सेनानियों के हाथ राज्य की बागडोर सौंपी उन्होंने भी अपनी निष्ठा और सामर्थ्य के अनुकूल लोकतन्त्र को सींचा। आज जो राजस्थान का स्वरूप देश में बना है वह हमारे हजारों स्वतन्त्रता सेनानियों के बलिदान, त्याग और तपस्या का विशुद्ध एवं पवित्र परिणाम है।

संक्षेप में प्रस्तुत पुस्तक में ऊपर वर्णित विविध सोपानों का लेखा जोखा है जिसे राजस्थान के स्वतन्त्रता-संग्राम की संज्ञा दी जाती है। सर्व प्रथम इसमें 1818 ई. की संधि के पूर्व तथा उससे उत्पन्न विडम्बनाओं का विवेचन है। इसके पश्चात् 1857 की क्रान्ति और क्रान्ति जनित समस्याओं का समाधान प्रस्तुत किया गया है तदनन्तर भारतीय क्रान्तिकारियों के कार्यक्रम के अनुसार राजस्थान में घटित क्रान्ति के कार्यकलापों का जिक्र है जिससे यहां के कृषक एवं जन जातियों को विदेशी सत्ता के प्रति घृणा करने तथा स्थानीय सामन्तों के अमानुषिक अत्याचारों से संघर्ष करने की क्षमता पैदा हो गई। इस स्थिति में राजस्थान के कार्यकर्ता भारतीय नेताओं के निकट आये और उन्हें महात्मा गांधी व पं. जवाहर लाल जी के सही मार्गदर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ। फिर पुस्तक में स्थानीय स्वयंसेवी स्वतन्त्रता सेनानियों को दुधारी शक्ति का मुकाबला करने और असहयोग आन्दोलन और उसके उपरान्त होने वाली गतिविधियों का विस्तृत विवरण इसमें प्रस्तुत है जिसके फलस्वरूप हमारा प्रान्त न केवल स्वतन्त्र ही हो जाता है वरन् एकीकृत राज्य के रूप में संगठित होकर उभरता है।

इन विविधि उपक्रमों के गौरवमय पक्षों को वैज्ञानिक विधि से समसामयिक आधारों के माध्यम से संजोया गया है और विषयवस्तु के साथ उनका तारतम्य साधा गया है। इस समूचे काल में समाजसेवी संस्थाओं पत्र-पत्रिकाओं व जन मानस की भूमिका पर प्रचुर प्रकाश डाला गया है। इस विनम्र प्रयास में स्वतन्त्रता की सरिता के सम्बन्ध में कुछ मौलिक स्थापनाएं भी निर्धारित करने का प्रयत्न किया गया है जो प्राप्त समस्त साधनों पर आधारित है।

इन बहुमुखी प्रवृत्तियों में अनेक गणमान्य स्वतन्त्रता सेनानियों और स्वयंसेवकों की उपलब्धियों को जो अनमोल व बेजोड़ है, इस प्रकार समावेशित किया गया है कि घटनाओं की कड़ियां, विषय-वस्तु, तथ्य और भाव का तांता कहीं टूट न जाय। परन्तु इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए तथा स्थानाभाव के कारण लेखक को कई स्वतन्त्रता सेनानियों की सेवाओं का जिक्र करने से वंचित रहना पड़ा, संभवतः हो सकता है कि वे इस पुस्तक में वर्णित कार्यकर्ताओं से भी अधिक त्यागी व समर्पित रहे हों। मुझे विश्वास है कि हमारे उदार पाठक इस दृष्टिकोण को सराहना करेंगे और ऐतिहासिक विश्लेषणात्मक तथा विचारोत्पादक तत्वों को, जो इस पुस्तक के मुख्य अंग हैं, महत्व देंगे। मेरी मान्यता है कि जहां स्थानाभाव होता है वहां घटनाओं की सर्वांगीण व्याख्या ही पात्रों की सेवाओं को स्वयं प्रकाश में लाने में सक्षम होती है।

प्रस्तुत ग्रन्थ में समयाभाव, विषय की जटिलता तथा साधन सामग्री की विविधता तथा वैपरित्यता से उत्पन्न कठिनाइयों के कारण घटना चक्र, कालक्रम, नामोल्लेखन, तथ्यों के निरूपण आदि में विसंगतियां हो सकती है। आशा है कि ऐसी विरोधी एवं वितथ्याता-पूर्ण स्थलों को विज्ञ पाठक सुधार कर पढ़ेंगे। वैसे मैंने यथा साध्य तथ्यों को संतुलित कर तथा संदर्भ सामग्री को प्रमुखता देकर पुस्तक को विश्वस्त साधनों के परिप्रेक्ष में प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है, फिर भी कमियां होना स्वाभाविक है।

यह पुस्तक राजस्थान की स्वतन्त्रता को सर्वांगीण एवं वांछनीय प्रगति को उद्घाटित करने का दावा तो नहीं करती, परन्तु राजस्थान की स्वतन्त्रता संग्राम की श्रृंखला-बद्ध क्रम की एक झांकी प्रस्तुत करने की अभ्यार्थी अवश्य हो सकती है।

जिन विद्वानों के लेखकीय श्रम से तथा परामर्श दात्री समिति के सदस्यों जिनमें सर्वश्री शंकरसहाय सक्सेना, डा. बी.एस.माथुर, डा. आर. पी. व्यास, मास्टर बलवन्त सिंह तथा शोभालाल गुप्त थे के सुझावों से पुस्तक को संवारा गया है, उनके प्रति मैं हृदय से उपकृत हूं।

प्रस्तुत पुस्तक का प्रमुख श्रेय हमारे भूतपूर्व लोकप्रिय मुख्यमन्त्री श्री शिवचरण माथुर को जाता है, जिन्होंने इस योजना में रुचि एवं मनोयोग द्वारा मुझे सदैव उत्साहित किया है। मैं श्री जे. के. जैन निदेशक, पुरालेख विभाग के प्रति भी अनुग्रहित हूं जिन्होंने अपने विभागीय सहयोग एवं पुस्तक को प्रकाश में लाने का आरम्भ से लेकर अन्त तक शासकीय प्रक्रियाओं का समुचित संवाहन किया। उनके प्रयत्नों का ही फल है कि यह इतिवृत्त पाठकों तक पहुंच पाया है। डा. द्वारकालाल माथुर, पुरालेख अधिकारी, उदयपुर ने टंकन की व्यवस्था करने एवं पुरालेख सम्बन्धी सामग्री को जुटाने में मेरी सहायता की, मैं उन्हें धन्यवाद दिये बिना नहीं रह सकता।

इस पुस्तक की सामग्री के लिए राष्ट्रीय अभिलेखागार दिल्ली व बीकानेर, अलवर, जोधपुर और उदयपुर अभिलेखागारों, आबू कलेक्शन तथा राजस्थान स्टडीज सेन्टर, जयपुर विश्वविद्यालय से सामग्री उपलब्ध कराने में सम्बन्धित अधिकारियों ने जो मुझे सहयोग दिया उसके लिए वे धन्यवाद के पात्र हैं। इस सम्बन्ध में मेरी प्रिय मित्र व सुयोग्य शिष्य डा. वशिष्ठ, प्रोफेसर इतिहास विभाग, अजमेर युनिवर्सिटी ने अपनी निजी पुस्तकालय की पुस्तकों से लाभ उठाने का मुझे अवसर दिया जिसके लिए उनकी उदारता प्रशंसनीय है।

इस पुस्तक का मुद्रण राजकीय मुद्रणालय, बीकानेर तथा प्रूफ संशोधन श्री सनत् कुमार स्वामी व श्री लक्ष्मीनारायण सुरोलिया ने किया है जिसके लिये वे धन्यवाद के पात्र हैं।

दिनांक 1.1.87 (गोपीनाथ शर्मा)

विषय-सूची

अध्याय	विषय	पृष्ठ
1	2	3
	–प्राक्कथन	
	–विषय सूची	
1.	**भौगोलिक एवं सामाजिक स्थिति और उसका जन-जीवन पर प्रभावः** नाम– सीमा– प्राकृतिक भाग– अरावली पर्वत श्रेणी– पठार– मैदान व नदियां– रेगिस्तान– भूमि– जलवायु– जनसंख्या– साक्षरता– समाज– राजवंश– सामन्त– मध्यम वर्ग– कृषक– अनुसूचित जातियां– जन जातियां– भील व गरासिया– प्राकृतिक स्थिति का जन जीवन पर प्रभाव	1–10
2.	**राजस्थान के प्रसिद्ध राजवंशों का संक्षेप में इतिहास और** 1818 **ई. की सन्धि की परिस्थिति :** प्राक्कथन– मेवाड़ राज्य– डूंगरपुर के गुहिल– अंग्रेजों से सन्धि करने की परिस्थिति– सन्धि– बांसवाड़ा के गुहिल– प्रतापगढ़ के गुहिल– सन्धि की शर्तें– जोधपुर के राठौड़– महाराजा मानसिंह और अंग्रेजों से सन्धि– बीकानेर के राठौड़– सन्धि– किशनगढ़ के राठौड़– जयपुर– अलवर– बख्तावरसिंह और अंग्रेज– सिरोही– अहदनामा– बूंदी– कोटा– झालावाड़– भरतपुर– 1805 की सन्धि– 17 अप्रल 1805– खटपट का समय– धौलपुर– करौली– जैसलमेर– टोंक– सन्धि की शर्तें– ब्रिटिश नीति और सन्धि पर एक दृष्टि	11–41
3.	**सन्धियों के बाद कम्पनी और हस्तक्षेप**–1818–1856 **:** प्रस्तावना– मेवाड़ और हस्तक्षेप– कप्तान टॉड का आन्तरिक शासन प्रबन्ध– कप्तान काब का शासन प्रबन्ध– सर चार्ल्स मेटकाफ का उदयपुर आना– मेरवाड़ा– भोमट के भीलों का उपद्रव– मीणों का उपद्रव और दमन– जोधपुर और हस्तक्षेप– धोकलसिंह और हस्तक्षेप – नाथ और हस्तक्षेप – जयपुर और हस्तक्षेप– अलवर और हस्तक्षेप– कोटा और हस्तक्षेप– जालिमसिंह और महारावल किशोरसिंह का युद्ध – महाराव रामसिंह और झाला मदनसिंह में कलह– रामसिंह का असंतोष– बीकानेर में हस्तक्षेप–	42–70

1	2	3
	जैसलमेर और हस्तक्षेप– सिरोही और ब्रिटिश हस्तक्षेप– नीमाज के ठाकुर का विद्रोह– एरनपुरा में छावनी–सिरोही के 8 गांवों को छूट- जुड़ा के भीलों का दमन– डूंगरपुर और हस्तक्षेप बांसवाड़ा और हस्तक्षेप– महारावल भवानीसिंह– महारावल लक्ष्मणसिंह भरतपुर और ब्रिटिश हस्तक्षेप– प्रतापगढ़ और हस्तक्षेप– करौली और हस्तक्षेप– बूंदी और हस्तक्षेप– राजस्थान में सन्धि जनित विक्षोभ–संधियों की समीक्षा	71–101
4.	**राजस्थान में 1857 का स्वतन्त्रता संग्रामः**	
	राजस्थान में स्वतन्त्रता संग्राम के प्रति राजाओं, सरदारों और जनता का रुख– राजस्थान में कम्पनी की 57 में स्थिति–स्वतन्त्रता संग्राम के आरंभ पर ए.जी.जी. की कार्यवाही– नरेशों का सहयोग महाराणा का सहयोग– राजस्थान में स्वतन्त्रता–संग्राम का श्रीगणेश नीमच में संग्राम का प्रभाव– उदयपुर और अंग्रेजों का सहयोग– अजमेर की जेल में विद्रोह–नसीराबाद में पुनः विप्लव– नीमच में पुनः विप्लव और आस पास के क्षेत्र में हलचल– जीरण– नीबाहेड़ा आदि में क्रान्ति–आबू में संघर्ष–जोधपुर– आउवा में क्रान्तिकारियों की कार्यवाही– जयपुर– कोटा– कोटा में पोलिटिकल ऐजेन्ट मेजर बर्टन का वध– कोटा– महाराव ने सैनिक सहायता मांगी– कोटा पर पुनः महाराव का कब्जा– जयनारायण और महराब खां का मूल्यांकन– झालावाड़ – बीकानेर– डूंगरपुर– बांसवाड़ा–प्रतापगढ़ शाहपुरा– अलवर– भरतपुर– धौलपुर– करौली– टोंक तात्यांटोपे राजस्थान में– तात्यां का मूल्यांकन संघर्ष का अन्त– आन्दोलन की विफलता– राजस्थान के स्वतन्त्रता आन्दोलन के प्रति एक दृष्टिकोण	
5.	**1857 के आन्दोलन के पश्चात राजस्थान में राजनीतिक असन्तोष और जन–जागृति का प्रारंभः**	102–119
	मेवाड़ में असन्तोष–ईडन का शासन–उदयपुर में हड़ताल–मेवाड़ में ठेका और किसानों का उपद्रव–जोधपुर में असंतोष–जयपुर–अलवर–भरतपुर–धौलपुर–कोटा में असंतोष–नवाब फेजललीखां की नियुक्ति–झालावाड़– बीकानेर में असंतोष– बीकानेर में सरदारों का असंतोष दूर करने का बहाना– जैसलमेर में असंतोष– जनता और जागीरदारों का सीमा विवाद पर असंतोष– विभिन्न रियासतों में बन्दोबस्त और उससे असंतोष– टोंक– भरतपुर– मेवाड़– अलवर–धौलपुर– बीकानेर– जोधपुर– कोटा– झालावाड़– अफगान युद्ध और नरेशों का गुलामी का दृष्टिकोण– समीक्षा	

1	2	3
6.	**बौद्धिक जागरण- आर्य समाज, विवेकानन्द और थियोसोफिकल सोसायटी के प्रचार से राजस्थान में जागृति का स्वरूप:** आर्य समाज द्वारा जन-जागृति- स्वामी दयानन्द सरस्वती-प्रचार- राजस्थान में स्वामी दयानन्द सरस्वती- महाराणा सज्जनसिंह का महर्षि से सम्बन्ध- शाहपुर में- जोधपुर में- आर्य समाज और अजमेर- स्वामीजी का राष्ट्र भाषा का प्रचार- स्वदेशी वस्त्रों का प्रचार- राजस्थान को आर्य समाज की देन- स्वामी विवेकानन्द- स्वामी विवेकानन्द का जीवन और व्यक्तित्व- विवेकानन्द का राजस्थान की जागृति में सहयोग- थियोसोफिकल सोसाइटी- एनीबेसेन्ट का आगमन- एनीबेसेन्ट की प्रतिभा और कार्य-हिन्दुओं में आत्माभिमान जागृत किया- एनीबेसेन्ट राजनीति में- थियोसाफिकल सोसाइटी और राजस्थान- समीक्षा	120-132
7.	**राजस्थान में राजनैतिक जागृति और क्रान्ति का स्वर:** संस्थाओं द्वारा राष्ट्रीय राजनीतिक चेतना का विकास गणेशोत्सव और शिवाजी उत्सव धर्म एवं समाज सुधार आन्दोलन-भारतीय समाचार पत्रों द्वारा राष्ट्रीयता को योगदान- लार्ड कर्जन की प्रतिक्रियावादी नीति-कर्जन की शिक्षा नीति-बंग भंग और विदेशी माल का बहिष्कार-उग्रवादी दल और भारतीय राजनीति अनुशीलन समिति, अरविन्द घोष-अनुशीलन समिति की शाखाएं और भारत धर्म महामण्डल-राजस्थान में क्रान्ति का बीजारोपण-स्वामी ज्ञानानन्दजी -श्यामजी कृष्ण वर्मा क्रान्ति के अग्रदूत राजस्थान और भारतीय क्रान्तिकारी अंग्रेज सरकार का रुख- कृष्णसिंह बारहट-केसरीसिंह और क्रान्ति-कोटा महन्त हत्याकांड-प्यारे राम साधु की हत्या का मुकदमा-बीस बीस वर्ष की लम्बी सजा - कोटा से हजारीबाग जेल में- पुत्र प्रताप के देहान्त का समाचार अर्जुनलाल सेठी और क्रान्ति-निमेज हत्याकांड -निमेज हत्याकांड और गिरफ्तारियां- गोपालसिंह-सशस्त्र विद्रोह की योजना और राव गोपालसिंह- राव गोपालसिंह की गिरफ्तारी -दामोदर दास-राठी-कुंवर प्रताप सिंह और क्रान्ति - राजस्थान में अन्य क्रान्तिकारी घटनाएं- जयपुर हाडोती- अजमेर में कमिश्नर की हत्या का प्रयास- गवर्नमेन्ट कालेज के चपरासी से रुपये लूटने का प्रयास - वाईसराय की हत्या का प्रयास और मेओ कालेज का बम केस- पुलिस अफसर डोगरा पर प्रहार - अजमेर में पुनः हलचल: ज्वालाप्रसाद का जेल से भागना-समीक्षा-	133-166
8.	**कृषकों का अत्याचार के विरुद्ध आन्दोलन** (1913-1947): कृषक और आन्दोलन की पृष्ठभूमि- बिजोलिया का कृषक आन्दोलन 1913-1922, 1927-1941)- पथिक नेतृत्व-वन्देमातरम् का	167-201

1	2	3
	चमत्कार–प्रथम कमिशन–द्वितीय कमिशन बैठक की कार्यवाही–बिजोलिया में पुनः आन्दोलन–1927–1941– बेगू में किसान आन्दोलन (1921–25)– मेवाड़ में अन्य स्थानों में 'कृषकों' का आन्दोलन–बरड, बूंदी का काण्ड–विजयसिंह पथिक–राजस्थान में क्रान्ति की नई योजना –क्रान्ति की योजना विफल हो गई–मोर्चा बन्दी और फिर नजरबन्दी– शिकारी बुर्ज में घेरा बन्दी–अंग्रेज कमिश्नर का समझौता का प्रयास और नजरबन्दी–टाडगढ़ के किले में नजरबन्दी और वहां से फरारी–टाडगढ़ के बयाबान जंगलों में क्रान्ति की असफलता के बाद–माणिक्यलाल वर्मा–अलवर में कृषकों का आन्दोलन और नीमूचणा काण्ड–भरतपुर में किसान आन्दोलन–1931–33–जयपुर रियासत में कृषकों का आन्दोलन–1922–1947–सीकर ठिकाने का आन्दोलन– शेखावाटी का कृषक आन्दोलन–मारवाड़ में किसानों का आन्दोलन 1923–1947–चंदावल की दुःखद घटना–1942–डाबडा काण्ड–1947 बीकानेर में कृषकों का आन्दोलन– ठिकाना महाजन में विद्रोह–समीक्षा	
9.	**जनजाति के आन्दोलन**– 1821-1947:	201–221
	पृष्ठभूमि– भीलों में असंतोष और ब्रिटिश सत्ता का विरोध–बारापाल और मगरा जिलों के भीलों का विद्रोह– मेवाड़ में भीलों का पुनः आन्दोलन– 1917-1947– सिरोही और भील आन्दोलन 1921-1947– सिरोही राज्य में भील हत्याकाण्ड– डूंगरपुर में भील उपद्रव– बांसवाड़ा और भीलों का उपद्रव– अन्य स्थानों में भीलों के उपद्रव– गोविन्दगिरी और भील आन्दोलन– राजस्थान में भीलों का आन्दोलन और मोतीलाल तेजावत का नेतृत्व–तेजावत की पुनः गिरफ्तारी– मीणों का ब्रिटिश सत्ता से विरोध जन-जाति आन्दोलन पर एक दृष्टि	
10.	**सामाजिक एवं राजनैतिक संस्थाएं तथा पत्रकारिता और जन जागरण**–:	222–248
	प्राक्कथन– राजस्थान सेवा संघ– संघ की कार्य विधि– अखिल भारतीय हरिजन सेवा संघ और राजस्थान हरिजन सेवा संघ–अजमेर में अभूतपूर्व दृश्य– नरेली का प्रशिक्षण केन्द्र– रामनारायण चौधरी द्वारा हरिजनों की दशा का वर्णन– खडलाई आश्रम–राजस्थान में भारतीय कांग्रेस– देशी राज्य प्रजा परिषद् (स्टेट्स पीपुल्स कान्फ्रेन्स)– राजपूताना देशी राज्य– परिषद्– मारवाड़ हितकारिणी सभा– मारवाड़ यूथ लीग– सर्वहितकारिणी सभा चूरू– प्रजा प्रतिनिधि सभा कोटा– राजपूताना मध्य भारत सभा–	

1	2	3
	अजमेर- खेतड़ी में अत्याचार- पीसांगन सत्याग्रह में सभा की भारी विजय- जयपुर और बीकानेर राज्य में कार्य- सिरोही के भील और सभा की सेवा- बूंदी में अत्याचार और सभा- राजपूताना मध्य भारत सभा के अधिवेशन- रा.म.भा. सभा का पंचम अधिवेशन- अहमदाबाद- अन्य स्थानों की संस्थाएं- राजस्थान में समाचार पत्र, पत्रिकाएं आदि-	
11.	**राजस्थान में असहयोग एवं सत्याग्रह आंदोलन और प्रजामण्डल** 1917-1941- गांधी युग और राजस्थान - भारतीय असहयोग आन्दोलन और राजस्थान - मेवाड़ में स्वतन्त्रता आन्दोलन - उदयपुर नगर और हलचल-मेवाड़ प्रजामण्डल-मारवाड़ में आन्दोलन-प्रबल आन्दोलन और नये संगठन-जोधपुर प्रजामण्डल, 1934-1937-लोक परिषद्-उत्तरदायी सरकार के लिए मांग-जयपुर राज्य में जन जागृति का प्रथम चरण-कोतवाली पर आक्रमण-जनता द्वारा प्रस्तुत मांगें-वायसराय को खुली चिट्ठी-जयपुर में जन जागृति का दूसरा चरण और प्रजामण्डल का अधिवेशन-राज्य सरकार द्वारा दमन नीति का अनुसरण-प्रजामण्डल के मंत्री की विज्ञप्ति-प्रजामण्डल के प्रस्ताव-प्रेस एक्ट-प्रजामण्डल संघर्ष की ओर-सत्याग्रह आन्दोलन-सीकर आन्दोलन और जयपुर प्रजामण्डल-उत्तरदायी शासन की मांग-राव राजा के विरुद्ध जयपुर की सैनिक कार्यवाही-शेखावाटी आन्दोलन तथा जयपुर प्रजामण्डल-बीकानेर में जन जागृति-बीकानेर षड्यन्त्र केस-बीकानेर प्रजामण्डल-कोटा में जन जागृति और प्रजामण्डल-बूंदी में आन्दोलन और प्रजामण्डल-बरड आंदोलन-बूंदी में जन जागृति-शहीद रामनाथ-कुदाल तथा गोपीलाल माहेश्वरी-झालावाड़ और असहयोग आंदोलन-हाड़ौती प्रजामण्डल का झालावाड़ में प्रवेश-मित्र मण्डल और झालावाड़ प्रजामण्डल की गतिविधि-अलवर में असंतोष और आंदोलन-मुसलमानों का आंदोलन-महाराजा का इंग्लैण्ड प्रस्थान-बहरोड़ गोलीकांड और आंदोलन-उग्र आंदोलन-कांग्रेस का प्रभाव और प्रजामण्डल-भरतपुर और जन जागृति-भरतपुर प्रजामण्डल-धौलपुर और जन आंदोलन-और जन जागृति-करौली प्रजामण्डल-डूंगरपुर और जन-जागृति-बांसवाड़ा में जन-जागृति-कुशलगढ़ और जन जागृति-प्रतापगढ़ और जन जागृति-शाहपुरा में जन जागृति-सिरोही में जन जागृति-सिरोही प्रजामण्डल-जैसलमेर में जन जागृति परिषद्-अजमेर और जन आन्दोलन-समीक्षा	249-330

1	2	3
12.	**भारत छोड़ो आन्दोलन और तदनन्तर** (1942–1947) द्वितीय विश्व युद्ध, कांग्रेस का विरोध–क्रिप्स मिशन–गांधी जी को कारावास, दमन–1942 का हिंसात्मक विद्रोह–अराजकता–नरेशों की सरकार को सहायता–राजस्थान में 1942 के भारत छोड़ो आन्दोलन का प्रभाव–मेवाड़ और जन आन्दोलन–वैधानिक सुधार–डूंगरपुर–स्वाधीनता संग्राम के अडिग सेनानी–बांसवाड़ा–प्रजामण्डल की सफलता· प्रतापगढ़–शाहपुर–शाहपुर में अन्तरिम सरकार के लिए शुभ कामनाएं–अजमेर में आन्दोलन–मारवाड़ और सत्याग्रह आन्दोलन–चन्दावल की कारुणिक घटना–सत्याग्रह आन्दोलन–बाल मुकुन्द बिस्सा की मृत्यु–डाबरा काण्ड–जयपुर और भारत छोड़ो आन्दोलन–वैधानिक सुधार–सीकर और आन्दोलन–शेखावाटी और आन्दोलन–वैधानिक सुधार–कोटा–गिरफ्तारी व लाठी चार्ज–जनता ने मोर्चा लगाया–पुलिस कोतवाली में बन्दी बनी–शहर पर जनता का कब्जा–समझौता–अगले कदम की तैयारी–कोटा में संविधान बनाया–विधान सभा के अधिकार–लोकल सेल्फ गवर्नमेंट–पंचायत–निजी खर्च–लोकप्रिय मन्त्री–झालावाड़–बूंदी–उत्तरदायी शासन और आन्दोलन–बीकानेर–बीकानेर में दमन–बीकानेर प्रेस एक्ट–किसान आन्दोलन–रायसिंहनगर की करुण घटना–जैसलमेर और सागरमल गोपा की गिरफ्तारी–सिरोही–अलवर और आन्दोलन की प्रगति–भरतपुर और आन्दोलन–परिषद् का दूसरा अधिवेशन–परिषद् का तीसरा अधिवेशन–काले झण्डे–धौलपुर–करौली, टोंक–किशनगढ़–राजाओं के स्थान पर जनता का राज्य	331–392
13.	**विलीनीकरण** राजस्थान में ब्रिटिश सत्ता और नरेशों की स्थिति–एटली की पसंद माउन्टबेटन–माउन्टबेटन और किंगजार्ज–सरदार पटेल और देशी राज्य विभाग–कोनार्ड की कार्यवाहियां–सर्वोपरिता–वायसराय की अध्यक्षता में भारतीय नरेशों की सभा–देशी राज्यों का इंडियन डोमीनियन में मिलना–मत्स्य संघ का निर्माण–अलवर में आग भड़की–सरदार पटेल ने सभा बुलाई–वी. पी. मेनन को अलवर भेजा गया और उनकी रिपोर्ट–भरतपुर–मत्स्य संघ का निर्माण–संयुक्त राजस्थान–उदयपुर इसमें सम्मिलित–बृहद् राजस्थान–मत्स्य-संघ में असंतोष–राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ पर पाबन्दी–मत्स्य संघ का राजस्थान में विलय–सिरोही–अजमेर का विलय समीक्षा–	393–415
	परिशिष्ट– तिथि क्रम– संदर्भिका–	416–432

अध्याय–1

भौगोलिक एवं सामाजिक स्थिति और उसका जनजीवन पर प्रभाव

नाम :

राजस्थान की सीमाओं और उसके नाम का आज जो स्वरूप दृष्टिगोचर होता है वह पहिले नहीं था। प्राचीन एवं मध्य युग में इस प्रदेश को विभिन्न नामों से सम्बोधित किया जाता था बीकानेर को जांगल देश, जोधपुर को मरू और उसके पश्चात मारवाड़, जैसलमेर को माड़ कोटा बूंदी को हाड़ौती, जयपुर को ढुंढार, मेवाड़ को मेदपाट, अलवर भरतपुर, करौली एवं धौलपुर को मत्स्य, प्रतापगढ को कांठल, बांसवाड़ा और प्रतापगढ़ को मेवल, बांसवाड़ा और डूंगरपुर को वागड़ तथा भैंसरोड़गढ़ से बिजोलियां तक के भाग को ऊपरमाल के नाम से जाना जाता था।1

मध्यकालीन युग के ऐसे अनेकों दृष्टांत उपलब्ध हैं जिनमें इस राज्य के लिये 'राजस्थान' का प्रयोग किया गया है। इसके पश्चात् प्रसिद्ध इतिहास लेखक कर्नल जेम्स टाड 2 ने भी यहां के 18 राज्यों तथा अजमेर मेरवाड़ा के लिये "रजवाड़ा' "तथा" "राजस्थान" का प्रयोग किया था। ब्रिटिश काल में इसे राजपूताना के नाम से सम्बोधित किया जाने लगा। भारतीय स्वतन्त्रता के पश्चात् इस प्रदेश का सांस्कृतिक नाम राजस्थान स्वीकृत किया गया।3

सीमा :

क्षेत्रफल की दृष्टि से भारत में राजस्थान का द्वितीय स्थान है। "यह इंग्लैण्ड से बड़ा है और जर्मनी से किंचित छोटा है।

इसका स्वरूप रोम्बस (सम चतुर्भुज) से मिलता जुलता है। यह पश्चिमी पाकिस्तान, पंजाब, देहली उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश और गुजरात की सीमाओं से सटा हुआ है। इसकी पश्चिमी और उत्तर–पश्चिमी सीमा पाकिस्तान के साथ अन्तर्राष्ट्रीय सीमा बनाती है। यहां

1–नेणसी की ख्यात, पत्र 12 जी. एन. शर्मा, सोशल लाइफ, पृ –1–3

2–टाड–ऐनाल्स एन्ड ऐन्टिक्विटीज ऑफ राजस्थान भाग–I पृ.–1, वे राज्य थे– जोधपुर, बीकानेर, जैसलमेर, अलवर, जयपुर, भरतपुर, धौलपुर, करौली, बून्दी, कोटा, झालावाड़, प्रतापगढ़, बांसवाड़ा, डूंगरपुर, उदयपुर, सिरोही, किशनगढ़ एवं टौंक।

(इ. गजट, राज. प्रो. सि पृ.–1)

3–जी. एन. शर्मा–सोशल लाइफ इन मेडिवल राजस्थान, पृ. 2–3

थार नामक मरुस्थल है। फिर पंजाब, हरियाणा और देहली इसकी उत्तरी सीमा पर है। पूर्व, दक्षिण–पूर्व और दक्षिण में मध्य प्रदेश है। इसकी दक्षिण–पश्चिम सीमा पर गुजरात है। यह 23.03 से 30.12 उत्तरी अक्षांसों और 69°30 से 78°17 पूर्वी देशान्तर रेखाओं के बीच फैला हुआ है। इसका क्षेत्रफल लगभग 3,42,274 वर्ग कि. मी. है। 4

प्राकृतिक भाग :

प्राकृतिक स्थिति की दृष्टि से राजस्थान को चार भागों में बांटा जा सकता है। ये भाग–पर्वत श्रेणी, पठार, उपजाऊ मैदान, जिसमें नदियां बहती हैं और रेगिस्तान हैं।

अरावली पर्वत श्रेणी :

यह पर्वत माला राजस्थान को एक छोर से दूसरे छोर तक काटती है। यह दक्षिण पश्चिम से उत्तर पूर्व की ओर जाती है और देहली के पास समाप्त हो जाती है। इस पर्वत माला के द्वारा राजस्थान दो भौगोलिक भागों में विभक्त हो जाता है–(1) उत्तर पश्चिम (2) दक्षिण पूर्व।

राजस्थान का लगभग दो तिहाई भाग अरावली पर्वतमाला के उत्तर पश्चिम में है और एक तिहाई दक्षिण पूर्व में है। उत्तर पश्चिम भाग में बीकानेर, जैसलमेर, जोधपुर और शेखावाटी स्थित हैं। शेखावाटी में सीकर और झुंझनूं के जिले हैं जो समतल और एक ही प्रकार के हैं। यहां दक्षिण पश्चिम की ओर हवाएं चलती हैं जिनके कारण रेत की लहरें मीलों तक बनती हैं। राजस्थान का दूसरा भाग अरावली पर्वत श्रेणी के दक्षिण-पश्चिम व पूर्व में है। इसका स्वरूप एकसा नहीं विभिन्न है। मेवाड़, बांसवाड़ा और डूंगरपुर के पहाड़ कतारों में फैले हुए हैं। आबू में जाकर गुरू शिखर की चोटी 1722 मीटर ऊंची हो गई है, जहां अरावली सबसे ऊंचा है। ये भाग घाटियों, नालों व जंगलों से आच्छादित हैं। इन श्रेणियों में कई धातुओं की खाने पाई जाती हैं। 5

पठार :

राजस्थान का दक्षिणी-पूर्वी भाग पठार है जो कहीं ऊंचा, चट्टानी तथा समतल है। इसके अन्तर्गत, धौलपुर, भरतपुर, करौली अजमेर, झालावाड़, बिजोलियां, मांडलगढ़, चित्तौडगढ़, बूंदी व कोटा का भू-भाग सम्मिलित है। बीच-बीच में उपजाऊ भूमि है जो काली मिट्टी की है और उपजाऊ है। इसमें भी घाटियां, नदियां नाले व जंगल हैं। चम्बल घाटी योजना से इस क्षेत्र में सिंचाई की सुविधा बढ़ गई हैं। 6

4–ओझा–राजपूताने का इतिहास, भाग 1, पृ. 31, इसका उ. द. व पू. प., विस्तार 784 और 850 कि. मी. है, राज्य की सम्पूर्ण सीमा की लम्बाई 5,920 कि.मी. तथा पाकिस्तान के साथ लगने वाली अन्तर्राष्ट्रीय सीमा–रेखा की लम्बाई 1070 कि. मी. है। (राजस्थान 1984–85, मरुधरा पब्लिकेशन, जोधपुर, पृ. 17)

5– इ. गजेटियर, प्रो. सी. पृ. 207, 234, 351, 448; राजस्थान गजेटियर, भाग 2 अ, पृ. 106

6– इ. गजेटियर, प्रो. सी पृ. 283, 366, 386; सेन्सज ऑफ इंडिया, 1951, 10, पृ. 64

मैदान व नदियां :

अरावली के उत्तर-पूर्व, दक्षिण पूर्व व उत्तर का भाग मैदानी है जिसमें अनेक नदियां बहती हैं। इसके विस्तृत मरुभाग मे लूनी ही एक नदी है जो अजमेर के पास नाग नामक पहाड़ी से निकलती है। जब यह पश्चिम की ओर जाती है तो इसमें सूकड़ी, जवाई, और जोजरी नदियां मिल जाती हैं। घग्गर नदी बीकानेर के उत्तर में है। वर्षा ऋतु में इसमें कुछ पानी आ जाता है। अरावली पर्वत श्रेणी के पूर्व की ओर राजस्थान का भू-भाग विभिन्न प्रकार का है। इसका पूर्वी प्लेटो बेतवा नदी के क्षेत्र में है और इसमें कई नदियां हैं। कुछ छोटी हैं कुछ बड़ी हैं। सबसे बड़ी नदी चम्बल है जिसकी लम्बाई 650 मील है। इसकी प्रधान शाखाएं बनास, काली सिंध और पार्वती हैं। चम्बल नदी पर निर्मित गांधीसागर बांध, राणा प्रतापसागर बांध और कोटा बेरेज सिंचाई व जल-विद्युत के प्रधान साधन है।

राजस्थान की अन्य नदियां माही, बाण-गंगा, खारी, कोठारी, मंसी और गंभीरी है। इनमें से माही डूंगरपुर और बांसवाड़ा जिलों की सीमा बनाती हुई गुजरात स होकर खंभात की खाड़ी में गिरती है। बाण—गंगा जयपुर और भरतपुर में होकर चलती है। खारी, कोठारी, मंसी, और गंभीरी, भीलवाड़ा व उदयपुर तथा माही व सोम बांसवाड़ा और डूंगरपुर जिलों की नदियां है। यह मैदानी भाग, जिसमें अनेक नदियां बहती है अच्छा आबाद और उपजाऊ है। 7

रेगिस्तान :

राजस्थान का उत्तर पश्चिमी भाग मरुस्थल है जिसे थार का रेगिस्तान कहते हैं। इसमें बीकानेर, चूरू, जैसलमेर, बाड़मेर, नागौर और जोधपुर का उत्तर पश्चिमी भाग है जो अगाध रेतीले टीलों से भरा है। पाली जालोर, सिरोही और दक्षिणी पूर्वी जोधपुर के भाग भी मरुस्थल में हैं, परन्तु इनमें कुछ उपजाऊ मिट्टी वाले जिले भी हैं। नागौर का पूर्वी भाग, सीकर तथा झूंझनूं अर्ध रेतीले है जो शेखावाटी के नाम से प्रसिद्ध हैं। इस रेतीले भाग में नमक की झीलें हैं जिसमे सांभर, डीडवाना तथा पचपदरा मुख्य हैं। रेगिस्तानी भाग में मीठे पानी के कुए 200 से 300 फिट की गहराई के हैं। जब चरस से पानी बाहर निकाला जाता है तो पानी ऊपर तक आने का संकेत ढोल पीटकर किया जाता है। कई कुओं का पानी इतना खारा होता है कि उसका उपयोग जानवरों के लिये नही किया जाता है। 8

रेगिस्तानी भाग की विशेषताएं आंधियां हैं। औसतन गंगानगर में वर्ष भर में 29 दिन, बीकानेर में 18 दिन, जोधपुर में 8 दिन, जयपुर में 6 दिन, कोटा में 5 दिन, अजमेर और झालावाड़ में 3 दिन आंधियां चलती हैं। पश्चिमी सूखी भूमि में आंधियां अधिक

7- इ. गजेटियर, प्रो. सी. पृ. 453

8- नैणसी री ख्यात, पत्र 61;
जी. एन. शर्मा, सोशल लाइफ इन मेडीवल राजस्थान, पृ. 11–12

चलती हैं और ज्यों-ज्यों हम उपजाऊ भूमि की ओर बढ़ते हैं त्यों–त्यों आंधियां कम होती जाती हैं और वर्षा की मात्रा बढ़ती जाती है। जून के महीने में उत्तर पश्चिम इलाकों में सबसे अधिक आंधियां आती हैं। दक्षिण–पूर्वी प्रदेशों में ऐसा मई मास में होता है। जून मास के पश्चात् आंधियां कम होने लगती हैं परन्तु उत्तर पश्चिम में ये सितम्बर तक चलती रहती हैं। ग्रीष्म ऋतु में इस भाग का तापमान 32° से. ग्रे. से 48° से. ग्रे. तक रहता है। यह क्षेत्र लगभग 1,75,000 वर्ग कि. मी. तक प्रसारित है।

भूमि:

राजस्थान की भूमि मूलत: सिंध–गंगा के मैदान जैसी है। अरावली पर्वत श्रेणी के उत्तर-पश्चिम की भूमि रेतीली और बंजर है परन्तु दक्षिण पूर्व की उपजाऊ है। रेतीली मैदानी भूमि सिन्ध की भूमि से मिलती जुलती है।

अरावली पर्वत श्रेणी के दक्षिण पूर्व की भूमि कई प्रकार की है। कहीं हल्की सी रेत है, कहीं उपजाऊ भूमि है, जिनमें उत्तम गेहूं, जौ और अन्य प्रकार के अन्न उत्पन्न होते हैं। यहां कृत्रिम उपायों से सिंचाई की जाती है। अच्छी भूमि वह मानी जाती है जिसमें 30 से 50 प्रतिशत रेत और 30 प्रतिशत मिट्टी हो। निम्न प्रकार की भूमि में 85 से 95 प्रतिशत रेत होती है। अजमेर–मेरवाड़ा के किसान अच्छा गन्ना पैदा कर सकते हैं। यहां कुओं से पानी मिल जाता है और भूमि के अन्दर पानी की धाराएं चला करती हैं। स्थूल रूप से कहा जा सकता है कि कृषि योग्य भूमि को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। एक उत्तर–पश्चिम भाग और दूसरा दक्षिण–पूर्वी भाग। उत्तर-पश्चिमी भाग रेतीला मैदान है और दक्षिण पूर्वी भाग उपजाऊ है। दक्षिण–पूर्वी भाग के प्रदेश कहीं कहीं पथरीले हैं। कोटा और बांसवाड़ा के जिले धुर दक्षिण में स्थित है। इनमें मालवा जैसी काली मिट्टी है प्राय सारे राजस्थान में तालाब बने हुए हैं जो वर्षा के दिनों में भर जाते हैं और ग्रीष्म ऋतु में सूख जाते है, परन्तु इनके तले में अच्छी नरम मिट्टी होती है जिसका उपयोग गेहूं की खेती के लिए किया जाता है।[9]

जलवायु :

राजस्थान के जलवायु में स्थानीय विचार से विभिन्नता है। रेगिस्तानी प्रदेश का जलवायु आरोग्यप्रद है तो पहाड़ी भागों का अधिक स्वास्थ्य प्रद नहीं। मरुस्थल में शीत काल में अधिक सर्दी पड़ती है, परन्तु उष्ण काल में गर्मी असह्य हो जाती है। पहाड़ी भाग में मौसम सामान्य रहता है जिसमें लू नहीं चलती। इसी प्रकार वर्षा में भी विषमता देखी जाती है। जहां रेगिस्थानी भागों में औसत वर्षा 5 इ. होती है तो पहाड़ी व पठारी भाग में 40 इ. से 50 इ. औसत वर्षा हो जाती है।[10]

9–ओझा, राजपूताने का इतिहास, भाग-1, पृ. 7–8

10–टॉड, राजस्थान, भाग–3, पृ. 1707; ओझा, राजपूताने का इतिहास, भाग–1 पृष्ठ 6–7; 1984–85 के आंकड़ों से अरावली के पूर्व तथा दक्षिण में 50 से 80 से.मी. अरावली के पश्चिमी भाग में 30 से 50 से.मी, और थार में 10 से 30 से.मी. वर्षा का अनुमान है। (राजस्थान 1984–85, मरुधरा पब्लिकेशन, पृष्ठ 25)

जनसंख्या :

राजस्थान राज्य की कुल जनसंख्या 3,42,61,862 में ग्रामीण जनसंख्या 2,70,51 351 है। अर्थात् ग्रामीण जनसंख्या का प्रतिशत कुल जनसंख्या में लगभग 78.96 प्रतिशत है। 1971 में यही प्रतिशत 82.37 थी। इससे यह स्पष्ट है कि इन दस वर्षों में लगभग 3.41 प्रतिशत व्यक्ति गांवों से शहरों की ओर काम की तलाश में आये। राज्य की केवल 21 प्रतिशत जनसंख्या शहरों में रहती है।

ग्रामीण जनसंख्या 2,70,51,354 में पुरुषों की जनसंख्या 1,40,13,454 है याने 55.5 है, इसमें स्त्रियों की संख्या 1,30,37,900 याने 44.5 प्रतिशत है। शहरी जनसंख्या 72,10,508 में पुरुषों की संख्या 38,40,700 याने 53.25 प्रतिशत है और स्त्रियों की संख्या 33,69,808 याने 46.75 प्रतिशत है। इस प्रकार पुरुषों का प्रतिशत ग्रामीण जनसंख्या की अपेक्षा शहरी जनसंख्या की तुलना में अधिक है।11

साक्षरता :

राज्य में शहरी जनसंख्या में औसत साक्षरता का स्तर 48.35 है। ग्रामीण क्षेत्रों में साक्षरता का प्रतिशत पुरुषों में 29.65 और स्त्रियों में 5.46 ही है। राज्य के 27 जिलों में औसत रूप से 24.38 प्रतिशत है। शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों में साक्षरता के स्तर में बहुत अन्तर होने के कारण ही राज्य की अधिकांश योजनाओं का लाभ ग्रामीण भागों के रहने वालों को नहीं मिलता। अपेक्षित परिणाम में निरक्षरता ही बाधक है।12

समाज :

वैसे तो वर्ण व्यवस्था की सीमा में राजस्थान में अनेक जातियां तथा उपजातियां हैं जो स्थान विशेष, धर्म तथा व्यवसाय को लेकर हैं, परन्तु विषय के परिवेश में हम समाज को पांच भागों में बांटते हैं—राजवंश, सामन्त, मध्यवर्ग, कृषक तथा अनुसूचित जातियां एवं जनजातियां।

(1) **राजवंश** :13

राजस्थान में पूर्व मध्यकालीन युग से राजवंश की प्रमुखता रही है जिसका केन्द्र स्वयं नरेश होते थे। इनके अधिकारों की न कोई सीमा होती थी न इनके क्रिया कलापों की आलोचना। इनकी सुविधा और व्यवस्था का पूरा ध्यान रखा जाता था। राज्य की आय

11—सेन्सस आफ इंडिया सीरीज, 1971, 1981 (प्रोविजनल अंक), राजस्थान 1984-85, पृ. 38-42) मरुधर पब्लिकेशन, जोधपुर, 1984)

12. डा. जी. एन. शर्मा, सोशल लाइफ इन मेडिवल राजस्थान पृ. 77–108; राजस्थान 1984–85, पृ. 40

13. डा. जी. एन. शर्मा, सोशल लाइफ, पृ. 84–85

का अधिकांश भाग इनके रनवास, पौशाक, दरबारी ठाट आदि पर खर्च होता था। नरेशों व रानियों की सेवा में पुरुष-दास, स्त्री-दासियां, परिचारक गण पर्याप्त संख्या में रहते थे। राज दरबार से सम्बन्धित सभी वस्तुएं, साज-सज्जा आदि बहुमुल्य, उच्च कोटि के तथा भावोत्पादक होते थे। सवत्र विलासिता दिखाई देती थी। मदिरा का प्रचार भी व्यापक था परन्तु कुछ एक नरेश सांस्कृतिक विकास में रुचि लेते थे। अतएव गौण रूप से विद्या, कला और धर्मानुष्ठान की प्रगति इनके प्रश्रय में यदा-कदा होती रही और वे समाज के प्रतिष्ठित अंग बने रहे। आज के युग में जहां वर्ग भेद का कोई महत्व नहीं है राजवंश जैसी संज्ञा का अभाव है।

(2) **सामन्त** : 14

समाज का दूसरा अंग सामन्तों का था। प्रत्येक राज्य में राजपूत सरदार तथा उच्च अधिकारी वर्ग इस श्रेणी में आते थे। नरेशों के ही अनुरूप इस वर्ग ने अपने को ढाला था। इन्होंने भी उनके सभी गुणों तथा दोषों का अनुकरण किया। अपनी अपनी जागीरों में उनका व्यवहार स्वच्छन्द था और उन पर अंकुश का अभाव था। इसका फल यह होता था कि इनकी प्रजा पर होने वाले अत्याचारों की सुनवाई के मार्ग अवरुद्ध थे। जो कुछ धन इनके पास प्राप्त था वह गरीब किसान या दस्तकार का परिश्रम था। इसी धन का सामन्तगण नरेशों की भांति अपव्यय करते थे। यदाकदा दान दक्षिणा या पुण्य के काम किये जाते थे, परन्तु यह अपवाद के रूप में ही थे। इसकी स्थिति भी समाज में आज वही है जो राजवंश की है।

(3) **मध्यमवर्ग** : 15

इस श्रेणी में बुद्धिजीवी, व्यापारी, वैद्य, डाक्टर, वकील तथा शिल्पी आते हैं। वैसे तो इनकी संख्या राज्य की जनसंख्या के अनुपात में बहुत कम है परन्तु समाज का बौद्धिक नेतृत्व करने की क्षमता इसी वर्ग में निहित है। इनमें से अधिकांश व्यक्ति राज्य की नौकरी करने या स्वतन्त्र काम करने वाले है। इन्हीं में से कुछ राजवंश तथा सामन्तों के सहायक या चाटुकार भी रहे हैं। वैश्य व्यापार में कुशल हैं जो देश विदेश जाकर धनोपार्जन करते हैं। ब्राह्मणों का भी सर्वदा समाज में सम्मान रहा है। कायस्थों को भी यहां के समाज में आदर की दृष्टि से देखा जाता है। मुसलमानों के साथ भी राजस्थान में सहिष्णुतापूर्ण व्यवहार रहा है जो बहुधा कुशल शिल्पी रहे हैं। इस मध्यम वर्ग में कई जातियां और उपजातियां हैं।

(4) **कृषक** : 16

---

14. डा. जी. एन. शर्मा, सोशल लाइफ, पृ. 82-85

15. वही पृष्ठ 90.94

16. जी.एन. शर्मा-सोशल लाइफ, पृ. 97

राज्य में बड़ी संख्या में कृषक रहे हैं। व्यवहारिक रूप से ये भूमि के स्वामी होते थे, परन्तु जागीरों या खालसा में करों व लागबागों आदि का भार उन पर इतना अधिक था कि उनकी आर्थिक स्थिति संतोषजनक नहीं कहीं जा सकती। उनके सामाजिक रस्म-रिवाज काज कर्यावर इतने खर्चीले रहे हैं कि उनके जीवन स्तर को उन्नत करने की कल्पना तक नहीं की जा सकती। उनमें शिक्षा का अभाव भी उन्नति के मार्ग को अवरुद्ध करता रहा है। स्वतन्त्र राजस्थान के पूर्व जो भी राजकीय तौर पर समाज या भूमि सुधार के प्रयत्न किये गये थे वे नाम मात्र के थे। यदि कोई वर्ग समाज के शोषण का सर्वदा शिकार रहा है तो वह कृषक है। सन्तोष का विषय है कि राजस्थान सरकार कृषकों के हित के लिये कई ऐसी योजनाएं बनाती रहती है कि इनके उन्नति के मार्ग खुल गए हैं और उत्तरोत्तर यह वर्ग समृद्ध बन रहा है।

(5) **अनुसूचित जातियां एवं जनजातियां** : 17

1981 की राजस्थान की जनगणना के अनुसार 17.82 प्रतिशत संख्या अनुसूचित जातियों तथा 12.33 प्रतिशत अनुसूचित जनजातियों की है। इन दोनों का योग सम्पूर्ण जनसंख्या में 30 प्रतिशत के लगभग होता है। सम्पूर्ण राज्य में 5,8,38,879 अनसूचित जनजातियां एवं 41,8?,124 अनुसूचित जातियां हैं।

राजस्थान में बड़ी संख्या में आदिम जातियां हैं जिन्हें मीणा, भील, गरासिया सहरिया तथा डामोर के नाम से जाना जाता है। इनमें मीणा 50.08 तथा भील 39.26 प्रतिशत पाये जाते हैं। भील उदयपुर, डूंगरपुर तथा बांसवाड़ा व सहरिया एवं डामोर डूंगरपुर में और गरासिया सिरोही में अधिक संख्या में मिलते हैं। इतर अपेक्षित आदि धर्मी भी इसी वर्ग में हैं जो अहेरी, बदी, बागरी बाजसर, बांसफोड़, बनजारा, बलाई, चामटा, चांडाल, बावरी, थोरी, सांसी, नट, गांछा, मोची, घांची, लुहार, कन्छ, ढेड, डोम, कालबेलिया, माली, नाई, साध, जोगी, कुम्हार, तेली, भांभी, मेहतर, भंगी, जागरी, गिरासिया, डामोर, पिंजारा, रावत, मेघवाल, रेगर आदि मुख्य हैं। चमारों की जनसंख्या इनमें सर्वाधिक 43 प्रतिशत है। इनमें भी अपने अपने वर्ग में कई प्रकार होते हैं जो विभिन्न नामों व गोत्र से जाने जाते हैं।

इन जातियों में से कुछ भीलों तथा कुछ इनमें से विलक्षण जातियों का वर्णन अपेक्षित है जिन्होंने स्वतन्त्र जीवन यापन का आदर्श अपने जीवन के मूल्यों द्वारा हमारे सामने रखा।

(6) **भील व गरासिया** :

पिछड़ी हुई जातियों में भील मुख्य हैं। ये राजस्थान के आदिवासी हैं। इनका रामायण और महाभारत में भी उल्लेख है। राजपूतों के आगमन से पहले भील ही इस राज्य में शक्तिशाली थे। प्रारम्भ में जब राजपूतों ने इनसे राज्य छीन कर अपने राज्य स्थापित किये तो कई राजवंशों ने इन्हें अधिकार दिया कि इनके गद्दी पर बैठते समय तिलक की

---

17 राजस्थान 84-85 मरुधरा पब्लिकेशन, पृ. 59, 61, सेन्सस आफ इंडिया 1981

रस्म भीलों के मुखियाओं के अंगूठे के रक्त से किया जाय। यह प्रथा उदयपुर, जोधपुर, डूंगरपुर आदि राज्यों में दो शताब्दी पूर्व तक प्रचलित थी। राजपूत राज्यों में सैनिक दल इसी जाति पर आधारित रहा है। धीरे-धीरे इनका महत्व घटता गया और ये निर्धन होते गये। चोरी तथा लूटमार का व्यवसाय निर्धनता के कारण इनमें घर कर गया।18

राजस्थान में भीलों की बड़ी बड़ी आबादियां, बांसवाड़ा, डूंगरपुर और उदयपुर जिलों में हैं और चित्तौड़ सिरोही, जालोर, पाली, बून्दी और कोटा के जिलों में भी इनकी कुछ बस्तियां हैं। भील लोग छोटी-छोटी झोंपड़ियों में रहते हैं जो एक दूसरी से कुछ फासले पर बनी हुई होती हैं। इनके गांव पाल कहलाते हैं। दक्षिण-पश्चिम के कस्बों में रहने वाले भील विशेष प्रकार से अपने बाल संवारते हैं जो उनके कंधे तक लटके रहते हैं। ये बालियां पहनते हैं। भील स्त्रियां मोटी नहीं होती। इनमें फुर्ती और सुन्दरता होती है। ये ओढ़नी और घाघरा पहनती हैं और कंचुकी का उपयोग करती हैं भीलों की भाषा राजस्थानी और गुजराती का मिश्रण है जिसको बागड़ी या भीलड़ी कहते हैं। भील लोग शाकाहारी व मांसाहारी हैं। ये मक्का, ज्वार, दालें आदि खाते हैं। कोई कोई चावल भी खाते हैं। वे मछली, बकरे या भैंसे के मांस का भी प्रयोग करते हैं। इनमें तम्बाखू पीने वाले बहुत हैं। यह महुआ की शराब का खूब प्रयोग करते हैं। इन लोगों का मंत्र-तंत्र में बड़ा विश्वास है और भूत प्रेतों से ये लोग बड़े डरते हैं इसलिये ये अपनी बाहों पर ताबीज पहना करते हैं। काम शुरू करते समय ये लोग शकुन देखा करते हैं। ये लोग प्राय: काली माता की पूजा करते हैं और उसके सामने बकरों और भैंसों की बलि देते हैं। ये लोग महादेव को मानते हैं। साथ ही पार्वती हनुमान और भैरव की भी पूजा करते हैं। ये मेवाड़ और डूंगरपुर में ऋषभदेव नामक जैन मन्दिर में भी दर्शन करने जाया करते हैं। जोधपुर में ये पाबू जी को बड़ा देवता मानते हैं। भीलों की प्रत्येक पाल में एक पंचायत अपराधियों को सजा देती है जो इनके झगड़ों को निपटा दिया करती हैं। यह पंचायत अपराधियों को सजा देती है और जुर्माना भी करती है। भीलों का व्यवसाय कृषि या मेहनत मजदूरी है। कुछ भील गोंद, लाख लकड़ी और कोयले बेच कर अपना उदर पालन करते हैं। साथ ही इनमें मद्यपान का व्यसन है जिससे इनकी गरीबी दूर नहीं होती। अंग्रेजों के राज्य में ईसाई धर्म प्रचारकों ने इनमें ईसाई धर्म के प्रचार का कार्य किया था परन्तु इनको पुनः हिन्दू धर्म के प्रति आकर्षित करने का प्रशंसनीय कार्य आर्य समाजियों ने किया है। इसी प्रकार ठक्कर बापा ने तथा कई संस्थाओं ने भीलो में सुधार का काम किया था इससे भीलों में कुछ जागृति आई है: हमारी सरकार भी इनके उद्धार के प्रयत्नों के लिए कृतसंकल्प है।19

---

18. हिन्दू ट्राइब्ज एण्ड कास्ट्स-एम.ए. शेरिंग देहली, भाग-III पृ. 78-82, राजपूताना गजेटियर, मेवाड़ रेजिडेन्सी इंपीरियल गजेटियर आफ इंडिया पृ. 89-90, पृ. 37, 139, 169, 170, जी.एन. शर्मा-मेवाड़ एण्ड द मुगल एम्परर्स, पृ. 5-6

19-राजपूताना गजेटियर्स, पृ. 227-228

इनके अतिरिक्त गाड़िया-लुहार, कालबेलिया, थोरी, नट, सांसी, बावरी और कंजर हैं। गाड़िया-लुहार की आबादी 19,000 के लगभग हैं। ये लोग जोधपुर, उदयपुर, बीकानेर और जयपुर के पास बसे हुए हैं और लुहार का काम करते हैं। ये इधर उधर घूम कर खेती के औजार बनाते हैं या उन पर धार लगाते हैं। कालबेलिया लोग सांप पालते हैं, नाचते हैं और मदारियों के से तमाशे करते हैं और जनता का मनोरंजन करते हैं। इनकी आबादी 13-14 हजार के लगभग है और ये सांप दिखाने को इधर उधर घूमा करते हैं। बनजारे एक स्थान पर आटा, अन्न, नमक आदि टट्टुओं एवं बैलों पर लाद कर दूसरे स्थानों पर पहुंचाते हैं। दुःष्काल के समय इनकी सेवाएं बड़ी लाभप्रद सिद्ध हुई हैं। ये लोग उदयपुर, बीकानेर, चूरू और गंगानगर में अधिक मिलते हैं। इनकी आबादी राजस्थान में 8000 के लगभग हैं इन्होंने क्रान्तिकारियों को समय-समय पर बड़ी सहायता की थी। नट लोग गांव-गांव घूम कर करतब के तमाशे करते हैं। सांसी लोग भरतपुर में अधिक हैं। परन्तु उदयपुर, अलवर और धौलपुर जिलों में भी इनकी बस्तियां हैं। ये लोग खेती करते हैं और कुछ लोग भीख मांगते हैं और गधे, बकरे, मुर्गे पालते हैं। ये चोरियां भी करते हैं और घरों में सेंध लगाते हैं। बावरी लोग बांस की बड़ी और छोटी टोकरियां बनाते है। सिकलीघर क्रान्ति के समय औजारों को बनाकर कृषकों व क्रान्तिकारियों को सहायता पहुंचाते रहे हैं। भाट, रेबारी तथा अन्य घुमक्कड़ जातियों ने क्रान्ति के समय सूचना प्रसारण का काम कर तथा पुलिस की समय-समय पर की गई धड़-पकड़ की खबर दे स्वतन्त्रता सेनानियों को बड़ा सहयोग दिया था 20।

प्राकृतिक स्थिति का जनजीवन पर प्रभाव :

इस प्रकार की प्राकृतिक व सामाजिक स्थिति का राजस्थान के जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ा है। यहां की पर्वत श्रेणियां और घाटियां आदिम निवासियों के लिए सुरक्षा स्थल बन गये और इन्हीं गिरी गव्हरों के अंचल में आदिम सभ्यता पनपती रही। यहां के मूल निवासियों का जीवन एकान्त प्रिय, उदात्त, परिश्रमी तथा स्वतन्त्रता प्रिय बन गया। अलबत्त यहां यातायात की सुविधा न होने से संपर्क अभाव में शिक्षा या नवीनीकरण की गति धीमी रही अपने रहन-सहन तथा व्यवहार के संबंध में हस्तक्षेप यहां के निवासियों को असह्य था। यही कारण है कि एक सतात्मक अधिकार के विरुद्ध आवाज का श्रीगणेश हमारे काल में इसी क्षेत्र से संभावित हो सका। यही स्थिति रेगिस्तान के निवासियों की रही है। उनमें भी स्वतन्त्र-जीवन की लालसा प्रबल रही है। जल के अभाव में एक स्थान से दूसरे स्थान जाकर बस जाना उनके स्वभाव का अंग था। राजस्थान को छोड़कर अन्य भागों में उद्योग की तलाश कर समृद्ध बनने का श्रेय मरुस्थलीय निवासियों को है। इस गतिविधि से ये लोग भारतीय जागृति के निकट आ सके और इस दिशा में होने वाली राजस्थान की प्रगति में योगदान के भागी बने। पठारी भाग एवं मैदानी भाग की वन खनिज एवं भूमि जन्य समृद्धि ने सांस्कृतिक एवं व्यवसायिक पहलू को पल्लवित किया

20–राजपूताना गजेटियर, पृ. 229, जोधपुर हकीकत बही, (अ बी) वि.सं, 1915, 25,43 88: अलवर सीडीशियस मीटिंग एक्ट, 1921, 32

जिससे यहां के कस्बे, नगर गांव निश्चितता और सुखमय जीवन का अनुभव करते रहे। कठोर जीवन यापन की क्षमता के कारण यहां के निवासियों में शौर्य और शालीनता के गुण स्वभावतः पनपते रहे। प्राचीन काल के राष्ट्रीय संगठन के तत्व तथा मध्यकालीन युग का स्वातन्त्र्य-प्रेम राजस्थान के जन-जीवन के मुख्य अंग इसलिये बनने पाये कि यहां भाषा, धर्म आचार-विचार आदि के बंधन सर्वदा दृढ़ बने रहे और सर्वदा जीवन की संकीर्ण दृष्टि की उपेक्षा की गई। इस प्रकार राजस्थान की प्राकृतिक स्थिति में विविधता होते हुए भी एक सूत्रता बनी रही, जिसका स्पष्ट स्वरूप यहां के जन-जागरण में दृष्टिगोचर होता है। इसी तरह क्रांतिकारियों एवं स्वतन्त्रता सेनानियों की गतिविधि में राजस्थान की प्राकृतिक स्थिति बड़ी उपादेय सिद्ध हुई। अस्त्र-शस्त्रों के जुटाने छुपाने व उनके प्रयोग में राजस्थान स्वतः आदर्श बन गया। अतएव भारतीय स्वतन्त्रता के इतिहास में इस प्रदेश का महत्वपूर्ण स्थान रहा है 21।

21–जी एन शर्मा : राजस्थान का इतिहास, भाग–1, पृ. 4–8

अध्याय 2

राजस्थान के प्रसिद्ध राजवंशों का संक्षेप में इतिहास और 1818 ई० की सन्धि की परिस्थिति

प्राक्कथन :

स्वतन्त्रता से पूर्व राजस्थान का क्षेत्र जो राजपूताना कहलाता था, दो राजनैतिक विभागों में बंटा हुआ था। इसका अधिकांश भाग देशी नरेशों के अधीन था जिसमें मेवाड़ मारवाड़, बीकानेर जैसलमेर, सिरोही डूंगरपुर, बांसवाड़ा, जयपुर, किशनगढ़, कोटा, बूंदी झालावाड़ अलवर करौली, भरतपुर और धौलपुर महत्वपूर्ण राज्य थे। ये रियासतें संधि के पूर्व स्वतन्त्र थीं और उनके नरेश वहां के सर्वेसर्वा थे। यहां के निवासी विभिन्न राजाओं की प्रजा थे। इन राज्य की स्थिति आर्थिक व सामाजिक एवं परम्परा की दृष्टि से ब्रिटिश भारत से कुछ विभिन्न थी। राजस्थान का एक छोटा भाग अजमेर-मेरवाड़ था जो सीधा ब्रिटिश सत्ता के आधीन था। व्यवस्था के विचार से ये भाग ब्रिटिश भारत की भांति शासित होता था और यहां रहने वाले ब्रिटिश भारतीय नागरिक थे। आर्थिक राजनैतिक एवं समाजिक दृष्टि से इन दोनों भागों में जो राजस्थान की ही इकाई थे, स्पष्ट असमानता झलकती थी।

प्रारम्भ में इन विभिन्न राज्यों का अस्तित्व जन शक्ति को लेकर कायम था और राजा और प्रजा में सहयोग की भावना प्रमुख थीं। परन्तु धीरे धीरे यह स्थिति एक सामन्तशाही और नौकरशाही में परिवर्तित होती चली गई। जब यहां के नरेशों ने मुगलों से संधि करली वे निरे मनसबदार रह गये। प्रजा हित के उपायों को दर गुजर कर वे मुगल शासकों की खुशामद मे लगे रहते थे। इनके अधीनस्थ जागीरदार भी क्रमशः निकम्मे व निहत्थे से हो गए। नरेश व सामन्त अपनी निधारित सेवा अथवा खिराज के भुगतान के पश्चात् अपना अधिकांश समय निरंकुशता और व्यक्तिगत विलासिता मे बिताते थे 1। अपने राज्य के सुशासन की क्षमता की शून्यता ने उन्हें प्रभावहीन एवं प्रेरणाहीन बना दिया था। इस शोचनीय स्थिति ने राजा, प्रजा और सामन्तों के बीच में एक गहरी खाई खोद दी थी। त्याग, बलिदान और आदर्शों के मूल्य घटते जा रहे थे। महत्वाकांक्षी सामन्त उच्च स्थान प्राप्त करने की कामना से मुगल सत्ता की ओर निहारते थे जिससे जो राज्य और सामन्तों के सम्बन्ध भाई चारे के सूत्र में गठित थे शिथिल होने लगे। प्रजा की भी अपने स्वामी की उपेक्षावृत्ति के कारण भावना बदलने लगी 2।

इस मानसिक एवं राजनीतिक तनाव की परिस्थितियों से मराठा आक्रमणों ने राजस्थान की हालत को और बिगाड़ दिया। आये दिन मराठा सरदारों के हमले और उनके कारण आर्थिक हानियां इतनी भारी हो गई कि राजकोष और जन-सम्पदा खोखले हो गये।

1-टॉड, राजस्थान, भाग-1, पृ०-495

2- पूना रेजिडेंसी कोरेस्पोंडेन्स, भाग-1; पत्र नं. 158 एडम का पत्र ओक्टरलोनी को नं. 13,27 मार्च 24 अप्रेल 1818, फो.पो. राज.अ.:
जो.एन. शर्मा-फ्यूडलिज्म राजस्थान, राजस्थान स्टडीज 204-296

मराठों की राजनीति ने एक राजा को दूसरे से अलग कर दिया जो अपने अपने स्वार्थ के लिए इन्हें खरीदता था। फल यह हुआ कि नव उदयमान ब्रिटिश सत्ता जो भारतीय राज्यों नवाबों, जमीदारों आदि को एक के बाद दूसरे को हत प्रभ करता जा रहा था और अंत में मराठा सार्वभौम शक्ति को कुचल चुका था राजस्थान की विषम स्थिति का लाभ उठाने में अग्रसर हो गई। आंतरिक रूप से निर्बल राजस्थान जिसमें जातीय नेता का अभाव था प्रजा पीड़ित थी, सामन्त वर्ग भक्ति विमुख था, प्रान्त में धनाभाव तथा अराजकता थी। अतएव राजस्थान सहज में बिदेशी शिकंजे का शिकार बन गया। अब हम इन प्रमुख राज्यों के इतिहास पर संक्षेप में प्रकाश डालेंगे और देखेंगे कि किन परिस्थितियों मे उन्हें 1818 की सन्धि करनी पड़ी 3।

(1) मेवाड़ राज्य :

मेवाड़ राजस्थान के दक्षिणी भाग की वह वीरभूमि है जिसकी प्राचीनता और शौर्य पूर्ण इतिहास की एक विशिष्ट महत्ता है यहां के वीरों और वीरांगनाओं के उज्ज्वल चरित्र आज भी प्रेरणा के स्त्रोत बने हुए है। यहां के प्रतापी राजाओं के समय में इस राज्य की सीमा उत्तर-पूर्व में बयाना, दक्षिण में रेवाकांटा-महीकांठा, पश्चिम में पालनपुर और दक्षिण-पूर्व में मालवा तक प्रसारित थी। ऐसे राजाओं मे गुहदत्त, कुंभा, सांगा बापा और राजसिंह के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। गुहदत्त या गुहिल या गुहा (566 ई.) इस वंश का प्रथम संस्थापक था जिसके दो हजार से अधिक चांदी के सिक्कों को आगरे के पास मिलना उसके राज्य विस्तार का द्योतक है। इसी प्रकार बापा रावल का नाम मेवाड़ के गौरवशाली इतिहास में सर्वोपरि है। ख्यातों के अनुसार उसके आठवीं शताब्दी में अरबों के आक्रमणों का प्रतिरोध कर अपने शौर्य का परिचय दिया। बापा की सुवर्णमुद्रा उसके वैभव और प्रभाशाली स्थिति पर प्रकाश डालती है। इसी वंश के महाराणा हम्मीर ने (1326–1364 ई.) अपने राज्य को तुर्की अधिकार से मुक्त कराकर शाश्वत ख्याति अर्जित की थी और उसके उत्तराधिकारियों के लिए शौर्योचित कार्य के लिए मार्ग को प्रशस्त किया था। तदन्तर महाराणा कुंभा ने शौर्य और कूटनीति से गुजरात और मालवा के सुल्तानों से टक्कर लेकर शक्ति-सन्तुलन की धुरी को निर्धारित किया। इन युद्धोचित परम्परा का निर्वाह महाराणा सांगा ने (1509 से 1528 ई.) बड़ी वीरता से किया। आगे चलकर इस दिशा में प्रातःस्मरणीय प्रताप और राजसिंह का नाम अद्यावधि सूर्य की भांति देदीप्यमान है जिनकी उपलब्धियां सर्व-विदित हैं 4।

3– रिपोर्ट पोलीटिकल एडमिनिस्ट्रेशन, राजपूताना 1865–1867; सरकार, फाल ऑफ मुगल एंपायर, भाग3–, पृ. 347

4– सामोली शिलालेख (646 ई.) नगर गांव का शिलालेख (684 ई.); श्रृंगी-ऋषि शिलालेख; एकलिंग जी का शिलालेख; कुंभलगढ़ प्रशस्ति, श्लो. 264–269; नेणसी की ख्यात पत्र 2–12, भॉवनगर इंस्, पृ. 98–120; एकलिंग महात्म्य, श्लो. 89–89 वीरविनोद I पृ. 334; ओझा, उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग–1, पृ–116 235 237, 279, 315; गोपीनाथ शर्मा, राजस्थान का इतिहास भाग–1 पृ. 46–49; गोपीनाथ शर्मा, राजस्थान, अध्याय–10, कॉम्प्रिहेंसिव हिस्ट्री ऑफ इंडिया, पृ. 782–797.

महाराणा राजसिंह की मृत्यु के बाद (1680 ई.) मेवाड़ की प्रतिभा का सूर्य अस्त होने लगा। धीरे धीरे उत्तराधिकार को लेकर घरेलू, सामन्तों का पारस्परिक कलह एवं महाराणाओं एवं सामन्तों के बखेड़े मेवाड़ में घर करने लगे। घरेलू झगड़ों में महाराणा जयसिंह और कुंवर अमरसिंह का परस्पर विरोध (1685-1691 ई.) महाराणा जगतसिंह द्वि. और उसके कुंवर में विरोध (1734-1751 ई.) प्रमुख हैं। इन झगड़ों के समय सरदारों की दलबन्दी भी स्वाभाविक थी। इधर राणाओं और सामन्तों के मतभेद भी बढ़ते जा रहे थे। महाराणा जयसिंह के समय कांधल और केसरीसिंह की हत्या (1692) महाराणा अमरसिंह द्वि. के समय दो हजार भाटों की आत्महत्या (1710 ई.) महाराणा अरिसिंह को सरदारों द्वारा पदच्युत करने का प्रयोग और उनके विद्रोह (1761-1773) आदि ऐसी घटनाएं थी जिनसे मेवाड़ की आन्तरिक स्थिति खोखली हो गई थी। इसी प्रकार लम्बे समय से चलने वाले चूंडावतों और शक्तावतों के पारस्परिक विरोध ने महाराणा भीमसिंह के समय (1787-1816) बहुत बल पकड़ लिया था, जिसके फलस्वरूप सरदारों में गुटबन्दी पनपने लगी और अनेक योद्धाओं के जो राज्य के रक्षक थे निरर्थक प्राण गये। इस पारस्परिक विरोध में महाराणा को उलझना पड़ा।

जब राज्य में सरदार अपने अपने दल बना रहे थे और आपसी झगड़ों से धन और जन की हानियां हो रही थी राणाओं में भी नेतृत्व का अभाव था। इधर-उधर धन की पूर्ति के लिए उन्हें करों में वृद्धि करनी पड़ती थी और प्रजा से बलात् धन वसूल किया जाता था। कई स्वामी भक्त सरदारों की हत्या से विद्रोह की आग और भड़क उठी थी। इस पारस्परिक गृह कलह ने तथा आर्थिक निर्बलता ने मरहठों और पिण्डारियों को आमन्त्रित किया। 1741 से लेकर 1816 तक लगातार (कुछ समय छोड़-छोड़कर) सिंधिया, होल्कर एवं अमीरखां, जमशेदखां, दलेरखां, बापू सिंधिया, लकवादादा, टामस तथा आंबाजी के आक्रमण द्वारा लूट खसोट और जोर-जुल्म से मेवाड़ की भूमि रोंधी जा चुकी थी। इन घटनाओं के दौरान कृष्णा कुमारी के विवाह विवाद को लेकर मेवाड़, मारवाड़ और जयपुर में तनाव पैदा हो गया। इससे मराठा और पठानों को अपनी घुसपेठ, लूट और धमकी का अच्छा अवसर हाथ आया। विवाद का अन्त बेगुनाह राजकुमारी की हत्या (21 जुलाई 1810 ई.) से हुआ। फिर भी पिंडारियों व मरहठों की लूट खसोट छोटे-मोटे रूप में 1816 ई तक चलती रही। नितान्त धनाभाव, सरदारों से वैमनस्य तथा प्रजा में आतंक आदि विविध समस्याओं के कारण मेवाड़ की दशा बिगड़ गई। मेवाड़ का खजाना बिलकुल खाली हो चला था, देश उजाड़ हो गया था, कई प्रजाजन शांति की खोज में इधर-उधर निकल पड़े थे और मेवाड़ निरा कंगाल हो गया।6

5-वीर विनोद, भाग-2 पृ. 673-78, 1543-44, प्रकरण-15, सरकार औरंगजेब जि-5, पृ. 280, ओझा, उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग-1, पृ. 592 673, 675 680 685, 701 आदि, सरकार फॉल ऑफ मुगल एम्पायर, भाग-4 पृ. 68-74

6-वंश भास्कर, पृ. 3222-23, महेश्वर दरबारी चीन बातमी पत्रे 226,227, महाराणा जगतसिंह द्वि. का. वि.सं 1798 का पृथ्वीसिंह के नाम का परवाना, ओझा. उ रा.इ. भाग-2, पृ. 636, 702, टॉड, राजस्थान, अध्याय-17, वीर विनोद, भाग-2, पृ. 1540, 1543, 1544, 1550

जिस अराजकता तथा लूटपाट और आंतरिक दुर्बलता का वातावरण मेवाड़ में अथवा राजस्थान के अन्य राज्यों में बना हुआ था यही स्थिति कुछ अर्थ में भारतीय अन्य देशी रियासतों में भी चल रही थी। मराठों की एक मात्र ऐसी शक्ति थी जिसका प्रसार इन रियासतों में व्यापक रूप से था। अतएव ब्रिटिश राज की नीति पहले बड़ी बड़ी भारतीय रियासतों और मराठा शक्ति को समाप्त करने में अधिक उत्सुक थी। प्रथम बार 1798 में देशी राज्य से सम्बन्ध स्थापित करने की नीति बन चुकी थी और इसी के अन्तर्गत वेलेजली द्वारा 1803 से 1805 तक जयपुर, जोधपुर, अलवर तथा भरतपुर के साथ सन्धियां की गई, परन्तु वे अप्रभावी रहीं, क्योंकि बोर्ड आफ कन्ट्रोल इस पक्ष में न था।7

परन्तु धीरे धीरे परिस्थितियां बदलती गई। मराठा व पिंडारी समस्या लगभग सिंधिया तथा होल्कर के साथ की गई सन्धियों (1816–1818) से सुलझ चुकी थी और लार्ड हेस्टिंग्ज कम्पनी के व्यापार, वाणिज्य एवं आर्थिक हितों के लिए तथा प्रभुसत्ता को सुदृढ़ बनाने के लिए राजनीतिक प्रभाव की सीमा बढ़ाने के पक्ष में था। वह इस मत का था कि राजपूत राज्यों के साथ सन्धि करने से कम्पनी के साधन बढ़ पाएंगे और उनकी मैत्री पंजाब और सिंध में ब्रिटिश प्रभाव बढ़ाने में सहायक सिद्ध होगी। जब इधर से मेवाड़ सन्धि के लिए उत्सुक था तो लार्ड हेस्टिंग्ज भी अपने हाथ बढ़ाने में पीछे नहीं रहना चाहता था। इस कार्य में चार्ल्स मेटकाफ और कर्नल टॉड बड़े सहायक सिद्ध हुए और 12 जनवरी 1818 ई. में मेवाड़ के साथ सन्धि हो गई।8

महाराणा और कम्पनी के बीच में निम्नलिखित संधि हुई जिसका भावानुवाद इस प्रकार है:–

1. दोनों राज्यों के बीच सदैव परस्पर सम्बन्ध मित्रता और हितैषिता पीढ़ी दर पीढ़ी बनी रहेगी। एक पक्ष के मित्र और शत्रु दोनों ही पक्षों के मित्र और शत्रु माने जायेंगे।

2. अंग्रेज सरकार उदयपुर की भूमि और राज्य की रक्षा का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेती है।

3. महाराणा उदयपुर अंग्रेज सरकार के साथ अधीनता पूर्वक सहयोग करेंगे, अंग्रेज सरकार की सर्वोच्चता मानेंगे और दूसरे राज्यों या सरदारों से सम्बन्ध नहीं रखेंगे।

---

7. प्रोसीडिंग्ज आफ बोर्ड ऑफ प्रोप्राइटर्स, द एशियाटिक एन्युल रजिस्टर, 1806, भाग–2 पृ. 352, एचिसन ट्रीटीज, भाग–3, पृ. 66, 103, 389, 400 सलेक्शन ऑफ वेलेजलीज डेसपेचेस, पृ. 316, 495.

8. बंगाल सीक्रेट कन्सलटेशन, एडमिनिस्ट्रेशन मेटकाफ को, 28 अक्टूबर से दिसम्बर 1817, मेहता, हेस्टिंग्ज एण्ड दी इंडियन स्टेट्स, पृ. 128–128, ईश्वरी प्रसाद, हिस्ट्री ऑफ मोडर्न इंडिया, पृ. 141–142 ओझा, उदयपुर, भाग–2, पृ. 704-706

9. ट्रीटीज, एंगेजमेंट्स एण्ड सनद्स जि–3, पृ. 30–31 (चतुर्थ संस्करण)

4. अंग्रेज सरकार की अनुमति और जानकारी के बिना महाराणा उदयपुर अन्य सरदार या राज्य के साथ कोई पत्र व्यवहार नहीं करेंगे परन्तु सम्बन्धियों के साथ साधारण प्रेम-भाव का पत्राचार चलता रहेगा।

5. महाराणा उदयपुर किसी राज्य पर अतिक्रमण नहीं करेंगे और इत्तफाक से यदि किसी के साथ कोई विवाद खड़ा हो जाएगा तो निर्णय के लिए वह मसला अंग्रेज सरकार के सामने प्रस्तुत किया जाएगा।

6. राज्य की समस्त आय का चतुर्थांश पांच वर्ष तक प्रतिवर्ष अंग्रेज सरकार को कर के रूप में दिया जाता रहेगा। पांच वर्ष बाद प्रति रुपये पर छः आना सदा के लिये दिया जाता रहेगा। खिराज के विषय में महाराणा का किसी दूसरे राज्य से कोई सम्बन्ध नहीं रहेगा। इस विषय में जो प्रश्न खड़े होंगे उनका उत्तर अंग्रेज सरकार देगी।

7. महाराणा चाहते हैं कि उनके राज्य के कई हिस्से अनुचित रूप से किसी दूसरे के हाथ में चले गये हैं वे वापस आने चाहिए। अंग्रेज सरकार को अभी इस विषय का ठीक पता नहीं है। इसलिए अभी इस सम्बन्ध में विचार के लिए कोई वक्त नहीं दिया जा सकेगा। परन्तु उदयपुर राज्य की समृद्धि पर पुनः विचार करने पर अंग्रेज सरकार हमेशा दृष्टि रखेगी। और प्रत्येक मामले की छानबीन करने के बाद उचित उपाय करेगी। जो भूमि अंग्रेज सरकार के प्रयत्न से वापस महाराणा को मिलेगी उसकी आय का एक रु. पीछे छः आने अंश हमेशा अंग्रेज सरकार को दिया जाता रहेगा।

8. अंग्रेज सरकार की आवश्यकतानुसार उदयपुर राज्य की सेना को महाराणा अपनी सामर्थ्य के अनुसार सजाकर कम्पनी सरकार को सुपुर्द करेंगे।

9. महाराणा उदयपुर अपने राज्य के पूर्ण रूप से स्वतन्त्र शासक होंगे। अंग्रेजी प्रशासन उनके राज्य में जारी नहीं किया जाएगा। इस संधि पर महाराणा भीमसिंह और गवर्नरजनरल के हस्ताक्षर एक मास के अन्दर करवाकर ये दोनों को दे दी जाएगी।

संधि को मूर्त रूप देने को एक फौजी जत्था मेवाड़ की ओर प्रयाण कर चुका था। तदनन्तर कप्तान टॉड को अंग्रेज सरकार की ओर से ऐजेन्ट बनकर 8 मार्च 1818 में उदयपुर पहुंचा जहां राजकीय प्रासाद में उसका धूमधाम से स्वागत किया गया। इसका वर्णन स्वयं टॉड ने बड़े रोचक रूप में दिया है।

एजेन्ट को महाराणा की गद्दी के सामने बिठाया गया जहां पर पहिले पेशवा को बिठाया गया था। संधि की शर्तों पर सूर्य महल में बात हुई। वहीं महाराणा के 16 उमराव भी उपस्थित थे। महाराणा ने सबके पहले हृदय से ऐजेन्ट को बधाई दी। और अपनी दशा का वर्णन करके अंग्रेज सरकार के प्रति कृतज्ञता प्रकट की। एजेन्ट ने

प्रत्युत्तर में कहा कि मैं आपके कीर्तिमान इतिहास से पहले से परिचित हूं और मैं चाहता हूं कि आपकी प्रतिष्ठा और सम्पदा में वृद्धि हो। कुछ समय तक बात हो जाने पर प्रथम मुलाकात समाप्त हो गई। महाराणा ने एजेन्ट को एक सजा हुआ हाथी, एक सजा हुआ घोड़ा और एक मोतियों की माला भेंट की। इसके अलावा दुशाले और कीमखाब के कपड़े दिये। फिर गुलाब का इत्र छिड़का और पान देने के बाद राणा और उमराव खड़े हो गये और एजेन्ट सलाम करके चला गया। फिर महाराणा द्वितीय राजकुमार, मंत्रीगण तथा बड़े-बड़े उमरावों के साथ एजेन्ट से मिलने गये जहां वह अपने निवास से आगे आकर मिला। महाराणा की पहले से ही गद्दी तैयार थी। खूब बातें हुई। आधे घन्टे बाद एजेन्ट ने महाराणा को एक हाथी, दो घोड़े, जो चांदी सोने के जेवर से सजे हुए थे और जिस पर मखमल की झूल पड़ी हुई थी महाराणा को भेंट किये। दोनों राजकुमारों को भी भेंट दी। इस स्वागत में 20 हजार रुपये खर्च हुए।10

(2) डूंगरपुर के गुहिल :

मेवाड़ राज्य के गुहिलों की एक शाखा का सामन्तसिंह बारहवीं शताब्दी के प्रथम अर्द्ध काल में वागड़ की ओर आया और बड़ोदा में अपना छोटा सा राज्य स्थापित किया। वह अधिक समय अपना अधिकार वहां नहीं रखने पाया क्योंकि वागड़ पर गुजरात के भीमदेव द्वि. का अधिकार स्थापित हो गया था। किंवदन्त कथाओं के आधार पर यह माना जाता है कि वागड़ से निष्कासनोपरान्त सामन्तसिंह पृथ्वीराज के सहयोगी के रूप में रहकर तराइन के युद्ध में वीरगति को प्राप्त हुआ था। जब गुजरात का प्रभाव वागड़ में शिथिल होने लगा तो तेरहवीं शताब्दी के प्रारम्भिक काल में सामन्तसिंह के वंशज जयतसिंह ने वागड़ पर अपना पुनः अधिकार स्थापित कर लिया। आगे विजयसिंह, वीरसिंह, कान्हडदेव, गोपीनाथ आदि शासकों ने भीलों और परमारों को पराजित कर अपने राज्य की सीमा की वृद्धि की और डूंगरपुर में अपनी राजधानी स्थापित कर वागड़ में शांति स्थापित की। रावल सोमदास, गंगदास आदि यहां के शासकों के गुजरात और मालवा के सुल्तानों से टक्कर लेकर अपने राज्य की सुरक्षा की। इसी वंश के उदयसिंह ने ने (1497-1527) गुजरात और मालवा के सुल्तानों को कई बार करारी पराजय दी और अन्त में राणा सांगा के सहयोगी के रूप में खानवा के युद्ध में काम रहा।11

10–टॉड-जिल्द 1, पृ. 551-552; वीर विनोद, भाग-2, प्रकरण-15; ओझा जी ने टॉड का उदयपुर आना फरवरी 1818 को लिखा है, भाग-2, पृ. 705; टॉड का पत्र एडम, 11 मार्च कोन, 15 मई, 1818, नं. 23, फो.से. के अनुसार 8 मार्च वह उदयपुर पहुंचा, डा. वशिष्ठ, राजपूताना एजेन्सी, पृ. 9

11–वीरपुरा लेख (1185); जगत लेख (1221); बड़ौदा लेख (1292); आंतरी लेख (1468); रायमल लेख (1488); फरिश्ता भाग-4 पृ.-225; बेले, हिस्ट्री ऑफ गुजरात, पृ.-120, 272, 319, 339; बाबरनामा, पृ. 573; ओझा, डूंगरपुर राज्य का इतिहास, पृ. 52, 53, 62, 63, 67; कोम्प्रिहेन्सिव हिस्ट्री ऑफ इण्डिया भाग-5, जी.एन. शर्मा, पृ. 803-806

इसी वंश के आसकरण ने 1577 ई. में मुगलों की अधीनता स्वीकार की और तब से समय समय पर यहां की सेनाओं ने मुगलों की बड़ी सहायता की। महारावल पूंजा को अपनी दक्षिण की लड़ाइयों मे अच्छी सेवाओं के उपलक्ष में डेढ़ हजारी जात और पन्द्रह सौ का मन्सब प्राप्त हुआ था। इसके पुत्र गिरधरदास को बादशाह शाहजहां ने 600 जात और 600 सवारों का मन्सब अपने पिता के जीवित काल में दिया था। जब शाहजादा अकबर औरंगजेब से विद्रोह कर राठौड़ दुर्गादास के साथ दक्षिण जाते समय डूंगरपुर पहुंचा तो महारावल जसवन्तसिंह ने उसका स्वागत किया और राज-पीपला के मार्ग से उसे दक्षिण पहुंचने में सहायता की। महारावल रामसिंह ने भी औरंगजेब से एक हजार जात और एक एक हजार सवार तथा 16 लाख दाम की डूंगरपुर की जागीर प्राप्त की थी। 12

परन्तु इस अवधि में डूंगरपुर राज्य में एक आंतरिक निर्बलता 1527 ई. के बाद प्रवेश कर चुकी थी। जब से वागड़ का विभाजन डूंगरपुर और बांसवाड़ा के प्रथक राज्य के रूप में हुआ था तब से आये दिन डूंगरपुर और बांसवाड़ा के बीच झगड़े चलते रहते थे। इसी तरह मेवाड़ और डूंगरपुर में भी तनाव के अवसर आते रहे जिससे राज्य की शांति में तथा अर्थ व्यवस्था में व्यवधान पैदा होते रहे। भीलों के समय-समय पर होने वाले उपद्रव भी राज्य को क्षति पहुंचाते थे। 1578 के आस पास महाराणा प्रताप ने आसकरण के विरुद्ध सेना भेजी क्योंकि रावल ने मुगल अधीनता स्वीकार कर ली थी। इस अर्से में आसकरण का बांसवाड़े के स्वामी प्रतापसिंह से युद्ध हुआ। 1580 ई. में रावल सैसमल और बांसवाड़ा के चौहानों में लड़ाई हुई जिसमे रावल को हानि उठानी पड़ी। 1601 में कर्णसिंह ने माही नदी के तट पर बांसवाड़ा को पराजित किया। महारावल पूंजा के समय महाराणा जगतसिंह ने डूंगरपुर को लूटा। 1698 ई. में महाराणा संग्रामसिंह द्वि. ने डूंगरपुर के विरुद्ध सेना भेजी और 1717 ई. में रावल मानसिंह को 126000 रुपये सेवा व्यय देकर संधि करनी पड़ी। 1794 व 1799 में महारावल फतेहसिंह को महाराणा भीमसिंह को तीन लाख रुपये देकर संधि करनी पड़ी थी। 13

इसी प्रकार कुछ शासकों सरदारों और अधिकारियों के षडयन्त्रों ने भी राज्य की व्यवस्था को खोखला बना दिया था। महारावल फतेहसिंह का काल (1790-1808 ई०) डूंगरपुर राज्य के लिए एक पराभव का काल था। वह स्वयं एक अयोग्य शासक था। वह रात दिन शराब के नशे में उन्मुक्त रहता था। इसी अवस्था में उसने अपनी राणी को तलवार से मार डाला। राज माता मेड़ताणी शुभकुंवरी ने जो एक बुद्धिमती थी, अपने पुत्र की अयोग्यता देखकर उसे बन्दी बना दिया और स्वयं राज-कार्य चलाने लगी। परन्तु

12—नौलखा बावड़ी लेख (1587); देव सोमनाथ का लेख (1588); सूरपुर लेख (1593); बेवरिज, अकबरनामा, भाग-3 पृ.-11; वीर विनोद भाग-2. पृ. 239 49, 425-27; मुंशी देवीप्रसाद, शाहजहांनामा, भाग-2. पृ. 5, 20, भाग-3, पृ. 212, 217; ओझा डूंगरपुर राज्य का इतिहास, पृ. 101-131

13— गोवर्धन नाथ के मंदिर की प्रशस्ति (1623), राजप्रशस्ति सर्ग-5, श्लो. 18-19, मुहणोत नेणसी ख्यात, भाग-1, पृ. 90, 170, हरिभूषण काव्य, सर्ग-6 श्लो-1,3,4,14,20; ओझा, डूंगरपुर राज्य का इतिहास, 94, 97, 98, 133, 134, 139

इनमे कई स्थानीय सरदार महिला के प्रभाव से असन्तुष्ट होकर दल बन्दी में लग गये। फलस्वरूप राज्य में हत्याओं का दौर आरंभ हो गया। मंत्री पेमा और उमा सूरमा विरोधी सरदारों के उपद्रव के कारण मरवा दिये गये और राजमाता की भी हत्या कर दी गई राज महलों को उपद्रवियों ने खूब लूटा। इस प्रकार 19 वीं सदी के आरंभ में राज्य पूर्ण जर्जरीभूत हो गया था [14]।

मुगल राज्य की अवनति तथा आंतरिक निर्बलता का मराठों ने भी खूब लाभ उठाया और उसे पूर्ण असहाय बना दिया। मुगल राज्य की अवनति देखकर महारावल रामसिंह ने राज्य को बचाने के लिए पेशवा बाजीराव से संधिकर खिराज देना स्वीकार किया, जो 1728 ई० से धार राज्य के उदाजी पंवार द्वारा पेशवा को दी जाती थी। तथापि राज्य मरहठा अधिकारियों की लूट से न बच सका। 1729 ई० में राधोजी कदमराव और सवाई काट सिंह कदमराव ने डूंगरपुर इलाके में लूटपाट की और वहां से 115000 रु० ले गया। 1735 ई० में पेशवा बाजीराव ने डूंगरपुर आकर महारावल शिवसिंह से तीन लाख रुपये वसूल किये। 1746 ई० में मल्हारराव होल्कर ने डूंगरपुर से काफी धन प्राप्त किया था। महारावल फतेसिंह ने 1805 ई० में दौलतराव सिंधिया के सेनाध्यक्ष सदाशिवराव को दो लाख रुपये देकर डूंगरपुर को घेरे से मुक्त करवाया और यह धन नागर ब्राह्मणों से जबरन वसूल किया गया था। इस ज्यादती से नागरों ने विवश होकर डूंगरपुर छोड़ दिया। इससे प्रजा में आतंक छा गया और अस्थिरता पैदा हो गई। [15]

अंग्रेजों से सन्धि करने की परिस्थिति :

जब महारावल जसवन्तसिंह द्वि. डूंगरपुर का स्वामी हुआ तो अराजकता चरम सीमा पर पहुंच गई और एक सिन्धी सरदार खुदादादखां के नेतृत्व में असन्तुष्ट सिन्धी सिपाहियों ने (1812 ई०) में डूंगरपुर को लूटा और उस पर अधिकार स्थापित कर लिया। असमर्थ अवस्था में महारावल अपनी रानियों के साथ इधर-उधर भागता फिरा और आस पास से सहायता की खोज में घूमता रहा। जब थाणे के रावत सूरजमल द्वारा खुदादादखां मारा गया तो महारावल ने पुनः डूंगरपुर पर अधिकार कर लिया। परन्तु अब राज्य की हालत बहुत बिगड़ गई थी। प्रजा में भगदड़ मची हुई थी, खजाना खाली था और राज्य उजड़ चुका था। मराठों ने लूट खसोट द्वारा तथा भीलों और सरदारों के उपद्रव के कारण राज्य की व्यवस्था डांवाडोल हो चली थी। अतएव महारावल के पास अंग्रेजों से सन्धि कर लेने

14—वीर विनोद भाग—2, पृ 1012, प्रकरण 15, पृ. 29; हस्तलिखित डूंगरपुर राज्य का गजेटियर (उर्दू), पृ 16, माल्कम मेमोयर्स ऑफ सेन्ट्रल इंडिया, भाग—1, पृ 276-77; ओझा, डूंगरपुर राज्य का इतिहास, पृ. 135-140

15—सेलो तथा ओम धारच्या पवारा चे महत्व व दर्जा, पृ. 34-35; वाड एण्ड पार्सनिस, सिलेक्शन फ्रोम दि सतारा राजाज एण्ड दि पेशवा डायरीज, जि-1, पत्र संख्या 214, पृ. 101-2; ओझा, डूंगरपुर राज्य का इतिहास, पृ. 125, 128, 129, 140

के सिवाय अन्य कोई मार्ग न था। सर जान मॉल्कम की आज्ञा से कप्तान जे. काल्फील्ड के द्वारा उसने 1818 ई० में ईस्ट इंडिया कम्पनी के साथ सन्धि करली जिसकी शर्तें निम्न-लिखित थीं सन्धि की लगभग वही शर्तें थीं जो अन्य राज्यों से की गई थीं। परन्तु स्थानीय परिस्थिति के अनुसार इनमें कुछ विशेषताएं रखी गई थीं वे इस प्रकार हैं—[16]

1– महारावल तथा उनके वारिस और उत्तराधिकारी स्वीकार करते है कि अब तक जो खिराज धार या किसी और राज्य को देना वाजिब होगा वह सब हर साल अंग्रेज सरकार को किश्तवार अदा किया जाएगा और किश्तें अंग्रेज सरकार के द्वारा डूंगरपुर राज्य की हैसियत के अनुसार नियत की जाएगी।

2– महारावल, उनके वारिस और उत्तराधिकारी वादा करते हैं कि वे सब अरब, मकरानी तथा सिंधी सिपाहियों को मौकूफ कर देंगें और अपनी फौज में अपने देश के रहने वालों के अतिरिक्त अन्य सिपाहियो को भरती न करेगें।

3– अंग्रेज सरकार वादा करती है कि वह महारावल के सरकश रिश्तेदारों की हिमायत न करेगी, बल्कि उनके जेर करने में उन (महारावल) को सहायता देगी।

4– इस अहदनामें की नवीं शर्त में महारावल इकरार करते है कि वे अंग्रेज सरकार को खिराज दिया करेगें और इसके इतमीनान के लिए वे करार करते हैं कि अंग्रेज सरकार की तरफ से जो लोग खिराज वसूल करने पर नियुक्त होंगे उन्हें वह (खिराज) दिया जाएगा और उसके अदा न होने की हालत में महारावल को स्वीकार है कि अंग्रेज सरकार की ओर से कोई प्रतिनिधि नियुक्त हो, जो डूंगरपुर कस्बे की आमदनी से खिराज वसूल करे।

(3) **बांसवाड़ा के गुहिल :**

जैसा कि हमने ऊपर पढ़ा महारावल उदयसिंह ने अपने जीवन के अंतिम दिनों में अपने राज्य को दो भागों में बांट दिया था। माही नदी से पश्चिम का भाग अपने ज्येष्ठ पुत्र पृथ्वीराज को और माही से पूर्व का भाग छोटे पुत्र को दिया। पश्चिमी भाग डुंगरपुर और पूर्वी भाग बांसवाड़ा राज्य के रूप में उभरा।[17]

16–ओझा, डूंगरपुर राज्य का इतिहास, पृ. 140–148; ट्रीटीज एंगेजमेंट्स एण्ड सनदस, भाग–3, पृ. 55–59.

17–नैणसी की ख्यात भाग–, प. 86–88;
बांकीदास की ऐतिहासिक बातें, सं. 1299; बिवरिज, अकबरनामा, जि–2; प. 277,
पृथ्वीराज एवं जगमाल के जेष्ठ एवं कनिष्ठ होने पर मतैक्य नहीं है, दृष्टव्य, ओझा, बांसवाड़ा राज्य का इतिहास, पृ. 40–60.

डूंगरपुर की भांति बांसवाड़ा के सम्बन्ध मेवाड़, गुजरात, मालवा आदि प्रान्तों से युद्ध और सन्धि के बनते रहे। महारावल प्रतापसिंह ने 1576 ई. में अकबर के साथ मैत्री सम्बन्ध स्थापित कर अपनी शक्ति को सुदृढ़ बनाया। जब मेवाड़ और चौहानों का प्रभुत्व बांसवाड़े में बढ़ने लगा तो महारावल समरसिंह ने 1617 ई. में बादशाह जहांगीर के पास मांडू जाकर अपने मुगली सम्बन्धों को और सुदृढ़ बनाया। इन्हीं सम्बन्धों की पुष्टि शाहजहां और औरंगजेब के समय होती रही।[18]

इन मुगल सम्बन्धों के रहते हुए भी मेवाड़ द्वारा कई बार (1578, 1659, 1691, 1702, 1717, 1727, 1794 ई.) बांसवाड़े पर आक्रमण कर वहां धन और जन की हानि की गई। इसी प्रकार बांसवाड़े पर डूंगरपुर से भी आक्रमण आये दिन होते रहते थे। अराजकता फैलाने में चौहान स्थानीय सरदार और भील भी पीछे नहीं थे। इन आक्रमणों और प्रत्याक्रमणों से राज्य की स्थिति सभालने के लिए महारावल विशनसिंह ने 1728 ई. में मरहटों से मेल कर उन्हें खिराज देना स्वीकार कर लिया। परन्तु अभाग्यवश मराठा सरदार राधो जी कदमराव और सवाई काटसिंह कदमराव बांसवाड़ा राज्य में लूट-पाट मचाने से बाज नहीं आये महारावल उदयसिंह के समय धार की सेना ने इतनी लूट-पाट की कि महलों तक को खजाने की तलाश में खोदडाला और राज्य के कार्यकर्ताओं को कैद कर लिया। इसी तरह 1747 ई. में जसवन्तराव पंवार ने बांसवाड़े को घेर तबाही कर दी। 1800 में धार के तथा 1812 ई. में खुदादाद सिंधी के और 1815 ई. में होल्कर के सेनापति रामदीन के हमले और उपद्रव तथा नबाब करीमखां की लूट मार राज्य के लिये बड़े घातक सिद्ध हुए। जब राज्य में चारों ओर अराजकता फैली हुई थी, देश उजड़ होने से आय के साधन घट गये थे, लूटेरों ने उत्पात मचा रखा था, खजाना खाली था, सरदार असन्तुष्ट थे या अनेक राजपूत परिवार घेरे या युद्ध में काम आ गये थे तो राज्य की रक्षा का उपाय केवल अंग्रेजों से सन्धि करने के सिवाय कुछ दीख नहीं पड़ रहा था। अतएव महारावल उम्मेदसिंह ने सन्धि का प्रस्ताव दिल्ली के रेजिडेंट-द्वारा सरकार के समक्ष रखा जिसके फलस्वरूप 25 दिसम्बर 1818 ई. को कप्तान जेम्स काल फील्ड के द्वारा तेरह शर्तों का अहदनामा स्वीकार कर लिया गया। तदनुसार बांसवाड़ा राज्य अंग्रेज सरकार के संरक्षण में ले लिया गया और उसके एवज़ में जो खिराज धार राज्य को दिया जाता था, वह अंग्रेज सरकार लेने लगी। अहदनामे की शर्तें लगभग वही थीं जो डूंगरपुर के साथ की गई शर्तों में थीं।[19]

18- बेले, हिस्ट्री ऑफ गुजरात, पृ. 347-48; बेवरीज, अकबरनामा, जि-2, पृ. 272 बेवरीज, तुजुक, भाग-1, पृ, 379; देवीप्रसाद, शाहजहां नामा, पृ. 11;

वार्ड एण्ड पार्सनीज, सलेक्शन फ्राम दे सतारा राज, भाग-1, पृ. 101-102; वीर विनोद, भाग-2. पृ. 61, 62, 159

19- वाड एण्ड पार्सनीस सिलेक्शन फ्रॉम सतारा पृ. 26-28, 101-102, ओझा, बांसवाड़ा राज्य का इतिहास, पृ. 119, 127, 143, 144, 145, 146, 150 151, 153, 154, एचिसन, ट्रीटीज भाग-3, पृ. 468-70, मुंशी ज्वाला सहाय वकाये राजपूताना (उर्दू) जि-1, पृ 515

(4) **प्रतापगढ़ के गुहिल :**

प्रतापगढ़ का भाग मालव प्रदेश के अन्तर्गत था जहां प्रतिहारों का वैभवशाली शासन रहा। पूर्व मध्य काल में यह भाग दिल्ली एवं मालवा के सुल्तानों के अधिकार क्षेत्र के अन्तर्गत था। राज्य के रूप में यहां के स्वामी गुहिल वंशीय क्षत्रि थे, जिनकी वंश परम्परा क्षेमसिंह से प्रारंभ होती है। क्षेमसिंह महाराणा मोकल का द्वितीय पुत्र था। वह बड़ा महत्वाकांक्षी था। वह चाहता था कि मोकल के बाद उसे राजगद्दी मिले, परन्तु जब ऐसा होना संभव नहीं हो सका तो उसने मेवाड़ के एक भाग सादड़ी को अपने अधिकार में कर लिया जो प्रतापगढ़ राज्य की धुंधली रूपरेखा थी। इस राज्य का वास्तविक स्वरूप सूरजमल के समय (1473-1530 ई.) उभरा जिसने अपने साहस और कूटनीति से मालवा के सुल्तानों से अच्छे सम्बन्ध स्थापित कर लिए तथा भीलों के दमन द्वारा देवलिया के कस्बे को अपनी राजधानी बनाया और कांठल प्रदेश का स्वामी बन बैठा। फिर 1699 के आस-पास इसकी राजधानी प्रतापगढ़ कर दी गई। वैसे यहां के शासकों को माण्डू के सुल्तानों से संरक्षण प्राप्त था फिर भी समय-समय पर उसके सम्बन्ध मेवाड़ से बिगड़ते रहे जिसमें उसको धन और जन की हानि होती रही। जहाँगीर के काल से औरंगजेब के काल तक यहां के शासकों ने मुगलों से भी अच्छे सम्बन्ध रखे। महारावल हरिसिंह को 1648 ई. में बादशाह शाहजहां से खिलअत हाथी घोड़े, हीरे की पहूंचियां, कंठी आदि सम्मान में प्राप्त हुए थे। परन्तु जो आक्रमण तथा प्रत्याक्रमण के युद्ध प्रतापगढ़ को मेवाड़ या भीलों के साथ लड़ने पढ़े उससे प्रारंभ से ही इस राज्य की स्थिति राजस्थान के राज्यों में प्रभावशील न बनने पाई।[20]

मुगल राज्य के पतन के युग के साथ साथ धीरे-धीरे मराठों के उत्थान का युग आरंभ होता है। पेशवा, होल्कर सिंधिया और पंवारों के क्रमिक आक्रमणों ने मालवा को उनके लूट का केन्द्र बना दिया जिससे प्रतापगढ़ को बचे रहना था। अतएव गोपालसिंह ने (1721-1756 ई.) मराठों से एवं सवाई जयसिंह और मेवाड़ के शासकों से अच्छे सम्बन्ध बनाये रखने से अपने राज्य को विनाश से बचाये रखा। परन्तु सालिमसिंह के समय में जब मालवा की चौथ का अधिकार होल्कर को प्राप्त हो गया तो मल्हारराव होल्कर के सेनापति तुकोजी ने ससैन्य प्रतापगढ़ पर (1761 ई.) घेरा डाला और स्वयं मल्हारराव ने 1763 ई. में वहां से धन वसूल किया। इसी तरह सामन्तसिंह को अठारहवीं सदी के अंतिम चरण में होल्कर को वार्षिक 72720 सालिम शाही खिराज देने के लिए विवश होना पड़ा। ये रकम इतनी बड़ी थी कि राज्य उसे देने में असमर्थ रहता था और जिससे चढ़ी हुई रकम के लिए बार-बार होल्कर की सेना प्रतापगढ़ को घेर लिया करती थी। सिंधिया ने भी जग्गू बापू नामक अपने सेनापति को भेजकर राज्य से धन वसूल

20-खडबड़ा लेख (1484 ई), एकलिंग जी का शिला लेख (1488 ई.), नेणसी ख्यात, भाग-1, 44, 45, 93-94, हरिभूषण काव्य सर्ग 2, श्लो. 1-3, 18-28, सर्ग-3 श्लो. 25-53, परिस्ता भाग-4 पृ 243 वीर विनोद भाग-1, पृ. 328, 39, 341, 243, 347, 348, 349 भाग-2 पृ. 1054, ओझा प्रतापगढ़ राज्य का इतिहास, 47-52, 57-74 171.

करने का दबाव डाला था। इन घेरों से मुक्ति पाने के लिए तथा मराठा सरदारों के जुल्म से जर्जर हो जाने के कारण सामन्तसिंह ने 1804 ई० में अंग्रेजों के संरक्षण में जाने का प्रस्ताव कर्नल मरे द्वारा भेजा। परन्तु तत्कालीन गवर्नर जनरल लार्ड कार्नवालिस ने अपनी उदासीनता की नीति के कारण उसे अस्वीकार कर दिया। परन्तु लार्ड हेस्टिंग्ज के समय अंग्रेज सरकार की नीति में परिवर्तन आया जिसके फलस्वरूप सर जान मालकम के माध्यम से मालवा और गुजरात से मिले हुए राज्यों से संधियां की गई। महारावल सामन्तसिंह ने पंडित रामचन्द्र भाऊ को पूरे अधिकार के साथ संधि की बातचीत करने के लिए कप्तान काल्फील्ड के पास नीमच भेजा। 5 अक्टोबर सन् 1818 में संधि पत्र नीचे लिखी शर्तों के अनुसार तैयार किया गया जिसकी तस्दीक नवम्बर में की गई। अन्य शर्तें वही थी जो दूसरे राज्यों के साथ रखी गई थीं। कुछ विशेषता लिए हुए कोलनामे के अंश इस प्रकार हैं –[21]

1– प्रतापगढ़ के राजा अपने राज्य के स्वामी रहेंगे और लूटेरी जातियों का दमन करने एवं पुनः शान्ति एवं सुशासन स्थापित करने के अतिरिक्त उनके प्रबन्ध में अंग्रेज सरकार कभी हस्तक्षेप न करेगी। राजा इकरार करते हैं कि वे अंग्रेज सरकार की राय पर चलेंगे और अपने देश में टकसाल या सौदागरों तथा व्यापार की वस्तुओं पर कोई अनुचित कर न लगायेंगे।

2– अंग्रेज सरकार इकरार करती है कि वह राजा के उन प्रजा सम्बन्धी स्वत्वों को, जो वाजिब होंगे और जिन्हें वे खुद हासिल न कर सकेंगे प्राप्त करने में उनकी सहायता करेगी।

3– अंग्रेज सरकार इकरार करती है कि वह खेरात की जमीन के मामलों में दखल न देगी और हमेशा राजा तथा प्रजा के धार्मिकरस्मों और दस्तूरों का पूरा लिहाज रक्खेगी।

(5) जोधपुर के राठौड़

वर्तमान काल में जिसे हम जोधपुर कहते हैं, मारवाड़ नाम से प्रसिद्ध रहा है। इसकी राजधानी पहले मंडोर थी, जहां प्राचीन काल से नाग, मौर्य, प्रतिहार परमार, चहुआन आदि राज्य करते थे। मारवाड़ में राठौड़ों के राज्य की स्थापना 1240 ई० के लगभग बदायूं के राठौड़ों के वंशधर सीहा के द्वारा हुई थी।[22] इसके वंशधर चूंडा (1384-

21-वीर विनोद, भाग–2, पृ० 1065; मालकम, रिपोर्ट ग्रान प्रोविन्स ग्रॉफ मालवा पृ. 225;
एचिसन, ट्रीटीज, भाग–3, पृ. 460–63;
असंकिन, गजेटिय आफ प्रतापगढ़, पृ. 199;
ग्रोझा, प्रतापगढ़ राज्य का इतिहास पृ. 246, 258, 261–268

22–पृथ्वीराज रासो, समय 1, पृ. 54; टाड राजस्थान भाग–1, पृ. 105 एवं ख्यातों ने कन्नोज के गाहडवालों को राठोड़ मानकर राजपूताना के राठौड़ों से एकीकरण कर भ्रान्तिमूलक धारणा बनाली और उन्हें जयचन्द्र का वंशधर माना जो ऐतिहासिक तथ्य नहीं है। बर्तमान राठौड़ बदायूं के राठौड़ों के वंशधर हैं।

1423) और मालदेव (1531–1562) अपने शौर्य के लिए विख्यात हैं, जिन्होंने अपने बाहुबल से तुर्कों व अन्य पड़ौसी राज्यों से मुकाबला किया और अपने राज्य की सीमा को परिवर्धित किया। राव चन्द्रसेन (1562–1583) ने अपने जीवन का अधिकांश भाग पहाड़ों में बिता कर अकबर के विरुद्ध अपनी मनस्वी एवं स्वतन्त्र प्रकृति का निर्वाह करने का परिचय दिया। जसवंतसिंह (1638-1678) इस राठौड़ी स्वतन्त्रता का अंतिम महाराजा था जिसने औरंगजेब के समय अपने अदम्य साहस से सम्राट को बेचैन कर रखा था। उसी के सामन्त राठौड़ दुर्गादास ने मारवाड़-मुगल संघर्ष में अपनी सूझ-बूझ, कूटनीति और अदम्य साहस का परिचय दिया था जिसकी प्रसिद्धि आधावधि जीवित है। [23]

परन्तु राठौड़ों के इतिहास में चन्द्रसेन के समय से ही गृह युद्ध ने इस राज्य की नींव को हिला दिया था, जिसके फलस्वरूप यहां के शासन में मुगल नीति ने प्रवेश प्राप्त कर लिया था। महाराजा जसवन्तसिंह की मृत्यु के बाद तो यह स्थिति अधिक घातक सिद्ध हो गई जिससे राज्य के धन और जन की बहुत हानि हुई। औरंगजेब द्वारा इन्द्रसिंह को जोधपुर का राज्य दिलाना इस स्थिति को स्पष्ट कर देता है। इसके साथ-साथ महाराजाओं और सरदारों में भी विरोध धीरे-धीरे उभरने लगा। दुर्गादास जैसे स्वामी भक्त सरदार को भी अजीतसिंह का कोप भाजन बनना पड़ा और उसे मारवाड़ से निर्वासित किया गया (1708) जो एक अशोभनीय घटना थी। इसी प्रकार ठाकुर मुकन्दसिंह जैसे सुयोग्य सरदार महाराजा के द्वारा छल से मरवा दिये गये। अभयसिंह (1724–1749) के समय धन का अभाव रहा जिससे वह अपने सरदारों और जनता से जबरन पैसा वसूल करता था जिससे उसके सरदार व प्रजागण असन्तुष्ट थे। उससे उत्तराधिकारी रामसिंह व बख्तसिंह ने भी इसी परीपाटी को अपना कर राज्य की प्रतिष्ठा को बड़ा धक्का पहुंचाया था। इस प्रकार के व्यवहार से कई सरदार व साहूकार जोधपुर को छोड़ कर चले गये। [24]

इस स्थिति का नग्न रूप हम विजयसिंह (1752–1793) के तथा उसके पीछे होने वाले गृह–युद्ध, सरदारों के विरुद्ध हत्याओं और मरहटों के हस्तक्षेप में देखते हैं। राजा किशोरसिंह की हत्या, महाराजा विजयसिंह पर चूक करने का माधोसिंह का प्रयत्न, कुछ

23–वीठू लेख (1273); आइ. अ. भा. 4, पृ. 141; नेणसी ख्यात, भाग-2, पृ. 55 57, 87, 93 95, 102, 104, 105 117, 144, 266–75; आदि; बांकीदास, ऐतिहासिक बातें, नं 603, 792, 1614, 1672, 6618 आदि; ओझा, जोधपुर राज्य का इतिहास, भाग–1, पृ. 40–48, 135–145, 146–58, 277–79 412–471; काम्प्रिहेन्सिव हिस्ट्री आफ इंडिया अध्याय–1·0, पृ 809=814;
जी. एन. शर्मा, राजस्थान डाइनेस्टिक हिस्ट्री भाग–1, पृ. 551–2

24–औरंगजेब नामा, भाग–2, पृ. 83; जोधपुर राज्य की ख्यात, भाग- 2, पृ. 17, 85 26 117, 164, 165; भाग-3, पृ. 40-47, 70, 71, 78; दयालदास की ख्यात, भाग–2, पत्र 81; वंशभास्कर, भाग-4, पृ. 3585, 3625–6; वीर विनोद, भाग–2, पृ. 851; सरकार, फाल ऑफ दि मुगल एम्पायर, भाग–2, पृ. 188

उपद्रवी सरदारों को कैद किया जाना (1760), कई ठिकानों से जबरन पेशकशी वसूल करना, सरदारों द्वारा पासवान गुलाबराय को मरवाना (1792) आदि ऐसी घटनाएं हैं जिससे मराठों के अतिक्रमण राज्य में होते रहे और राज्य के धन–जन की प्रत्येक बार क्षति हुई। इन परिस्थितियों से छुटकारा पाने के लिए महाराजा विजयसिंह ने लार्ड कार्नवालिस से अच्छे सम्बन्ध बनाने के लिए पत्र व्यवहार किया जिसमें उसे सफलता तो नहीं मिली परंतु इन पत्रों से उसकी मनः स्थिति व निर्बलता का पता चलता है।[25]

महाराजा मानसिंह और अंग्रेजों से संधि :–

विजयसिंह की मृत्यु के बाद मानसिंह जोधपुर का राज्य हथियाने के लिये अपने चचेरे भाई भीमसिंह से संघर्ष कर रहा था। उसको 1804 में सफलता प्राप्त हो गई और वह जोधपुर का राजा बन गया। इसी समय लार्ड हेस्टिंग्ज ने देशी राज्यों के साथ संधि करने की नीति स्वीकार कर ली थी। इसलिए जोधपुर राज्य की तरफ से ही कम्पनी सरकार के साथ संधि की बात चलाई गई और निम्नलिखित दस शर्तों का एक संधि पत्र 6 जनवरी, 1818 को लिखा गया।[26]

(1) ईस्ट इण्डिया कम्पनी और महाराजा मानसिंह तथा उसके वंशजों के बीच मैत्री, सहकारिता तथा स्वार्थ की एकता सदा पुश्त दर पुश्त कायम रहेगी और एक के मित्र तथा शत्रु दोनों के मित्र एवं शत्रु होंगे।

(2) अंग्रेज सरकार जोधपुर राज्य और मुल्क की रक्षा करने का जिम्मा लेती है।

(3) महाराजा मानसिंह तथा उसके उत्तराधिकारी अंग्रेज सरकार का बड़प्पन स्वीकार करते हुए उसके अधीन रहकर उसका साथ देंगे और दूसरे राजाओं अथवा रियासतों से किसी प्रकार का सम्बन्ध न रखेंगे।

(4) अंग्रेज सरकार को बतलाये बिना और उसकी स्वीकृति प्राप्त किये बिना महाराजा और उसके उत्तराधिकारी किसी राजा अथवा रियासत से कोई अहद-पेमान न करेंगे, परन्तु अपने मित्रों एवं सम्बन्धियों के साथ उनका मित्रता पूर्ण पत्र व्यवहार पूर्ववत् जारी रहेगा।

(5) महाराजा और उसके उत्तराधिकारी किसी पर ज्यादती न करेंगे यदि देव-योग से किसी से कोई झगड़ा खड़ा हो जाएगा तो वह मध्यस्था तथा निर्णय के लिए अंग्रेज सरकार के सम्मुख पेश किया जाएगा।

25–ओझा, जोधपुर राज्य का इतिहास, भाग–2, पृ. 694-763; पूना रेजीडेन्सी कारस्पान्डेन्स, भाग–1, पृ. 361-3; पत्र संख्या, 258

26–ऐचिसन, ट्रीटीज, जि–3, पृ 128–30; जोधपुर राज्य की ख्यात जि–4, पृ. 82-84; वीर विनोद भाग–2, पृ. 888-913; इसके अनुसार 1803 का अहदनामा रद्द कर दिया गया।

(6) जोधपुर राज्य की तरफ से अब तक सिंधिया को दिया जाने वाला खिराज, जिसका विस्तृत ब्यौरा साथ में नत्थी है, अब सदा अंग्रेज सरकार को दिया जाएगा और खिराज संबंधी जोधपुर राज्य का सिंधिया के साथ इकरार खत्म हो जाएगा।

(7) चूंकि महाराजा का कथन है कि सिंधिया के अतिरिक्त और किसी राज्य को जोधपुर से खिराज नहीं दिया जाता और चूंकि उपरिलिखित खिराज अब वह अंग्रेज सरकार को देने का इकरार करता है, इसलिए यदि अब सिंधिया अथवा अन्य कोई खिराज का दावा करेगा तो अंग्रेज सरकार उसे दावे का जवाब देगी।

(8) मंगाये जाने पर अंग्रेज सरकार की सेवा के लिए जोधपुर राज्य को पन्द्रह सौ सवार देने पड़ेंगे और जब भी आवश्यकता पड़ेगी राज्य के भीतरी इन्तजाम के लिए सेना के कुछ भाग के अतिरिक्त शेष सब सेना महाराजा को अंग्रेजी सेना का साथ देने के लिए भेजना होगा।

(9) महाराजा और उसके उत्तराधिकारी अपने राज्य के खुद मुख्तार रईस रहेंगे और उनके राज्य में अंग्रेजी हुकूमत का दखल न होगा।

(10) दस शर्तों की यह संधि, जिस पर मि. चार्ल्स थियाफिलास मेटकाफ और व्यास किशनराम एवं व्यास अभयैराम के हस्ताक्षर तथा मुहर है, दिल्ली में लिखी गई। श्रीमान गर्वनर जनरल तथा महाराजा मानसिंह और युवराज महाराज कुमार छत्र सिंह इसकी स्वीकृति कर आज की तारीख से छः सप्ताह के भीतर एक दूसरे को सौंप देंगे। 16 जनवरी गवर्नर जनरल ने इसकी तसदीक की।

(6) बीकानेर के राठौड़ :

बीकानेर की स्थापना जोधपुर के राव जोधा के पुत्र राव बीका ने 1488 में की थी। इसी वंश के महाराजा रायसिंह (1574-1612) ने मुगलों से घनिष्ट सम्बन्ध स्थापित कर अपने राज्य की सीमा को बढ़ाया था। वह अकबर के दरबार का वीर तथा कार्य कुशल एवं राजनीति-निपुण योद्धाओं में से एक था। इसके उत्तराधिकारी भी मुगलों की सेवा में रहकर प्रतिष्ठा प्राप्त करते रहे।

परन्तु अधिकांश बीकानेर के नरेश मुगल मन्सबदार के रूप में अपने राज्य के बाहर सेवारत रहते थे जिससे राज्य की आंतरिक स्थिति संतोषजनक नहीं थी। बहुधा जोधपुर राज्य के साथ भी उनके झगड़े चलते रहते थे जिससे जन और धन की हानि होना स्वाभाविक था। राज्य के मुसाहिबों में भी परस्पर मन-मुटाव रहते थे जिससे दल बन्दी शासन व्यवस्था को धक्का पहुंचाती थी। महाराजा स्वरूपसिंह की माता सीसोदणी ने कई मुसाहिबों को मरवा दिया जिनमें कोठारी नेणसी, अमरचन्द और कर्मचन्द मुख्य थे (1699) महाराजा गजसिंह के समय (1745-1787), शेखावत, नारणोत, भट्टियार तथा मेघरा-

सर के ठाकुर विद्रोही हो गये जिससे राज्य की शक्ति क्षीण हो गई। महाराजा सूरतसिंह के समय (1887-1828) राज्य की आंतरिक दशा संतोषजनक नहीं थी। आये दिन राज्य के सरदार विद्रोह करते थे, जिनके दमन में महाराज को अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगा देनी होती थी। टामस व मीरखां की दो बार की चढ़ाइयों से तथा जोधपुर के साथ की लड़ाइयों से बीकानेर का काफी नुकसान हुआ था। ऐसी परिस्थिति में महाराज सूरतसिंह ने अंग्रेजों से सन्धि करना उचित समझा और ओझा काशीनाथ को दिल्ली भेज चार्ल्स मेटकाफ से मिलकर सन्धि की शर्तें 1817 में तय की। 9 मार्च 1818 में दोनों पक्षों ने अहदनामें पर हस्ताक्षर किये।[27]

सन्धि :

ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कम्पनी और महाराजा सूरतसिंह बीकानेर और उनके उत्तराधिकारी और वंशजों में जो संधि हुई उसकी शर्तें अन्य राज्यों की भांति वैसी ही थी कुछ एक शर्तें स्थानीय ढंग की थी उनका उल्लेख करना पर्याप्त होगा।

1– बीकानेर के लोग लूट मार करते हैं और डकैतियां डालते हैं। उन्होंने कितने ही लोगों की सम्पत्ति लूटी है। महाराजा सूरतसिंह प्रतिज्ञा करता है कि जो माल ब्रिटिश इलाकों में रहने वालों का अब तक लूटा गया है उसके विषय में लुटेरों का दमन किया जाएगा और इसके लिए उनकी दरखास्त आने पर अंग्रेज सरकार उनकी सहायता करेगी। लूटा हुआ माल जिसका है उसको दिया जावेगा और जब तक यह वापिस नहीं कर दिया जाएगा तब तक बीकानेर राज्य का कुछ भाग अंग्रेज सरकार के सुपुर्द रखा जाएगा।

2– अंग्रेज सरकार का यह विचार है कि बीकानेर और भटनेर के मार्ग सुगम और सुरक्षित कर दिये जाएं, इससे काबुल और खुरासान के साथ व्यापार हो सके। अतएव महाराजा अपने साधनों से ये कार्य करेंगे, ताकि व्यापारी लोग मार्ग में नहीं सताएं जाएं और कोई विघ्न उत्पन्न न किया जाए और महसूल में कोई वृद्धि नहीं की जाए।

इस संधि पर मेटकाफ और ओझा के हस्ताक्षर हुए और 21 मार्च 1818 को गवर्नर जनरल ने इसकी पुष्टि की।

(7) **किशनगढ़ के राठौड़ :**

किशनगढ़ का राजवंश जोधपुर के राजवंश की एक शाखा है। इस राज्य का संस्थापक किशनसिंह (1609-1615) था जो जोधपुर के महाराजा उदयसिंह का आठवां पुत्र था। उसने मुगल दरबार से 1,000 पैदल और 500 घोड़ों का मन्सब प्राप्त किया था। इसके वंशज क्रमशः मुगलों की सेवा में रह कर अपनी प्रतिष्ठा प्राप्त करते रहे। यहां के राजा

27–दयालदास की ख्यात, जि 2, पृ. 57-60, 92-93, 100-108 आदि; ओझा, बीकानेर राज्य का इतिहास, भा. 2, पृ. 399-401, 407; एचिसन ट्रीटीज, भाग–3, पृ. 288-90

राजसिंह (1706-1748) का पुत्र नागरीदास चित्रकला में बड़ा निपुण था। मराठों के प्रभाव क्षेत्र में आ जाने से अपनी सुरक्षा के लिए महाराजा कल्याणसिंह ने 1818 में कम्पनी से शर्तोंवाली संधि की जिसकी शर्तें अन्य राज्यों की संधियों जैसी ही थी।[28]

(8) जयपुर :

ढूंढार (आमेर) या जयपुर की स्थापना दशवीं शताब्दी में नरवर के कच्छावा राजकुमार ढोला या दूल्हाराय ने की थी। उसने इस प्रदेश में आकर एक बड़गूजर राजपूत राजकुमारी से विवाह किया और दौसा का आधा भाग उसे दहेज में मिल गया। फिर उसने पूरा दौसा प्रदेश पर अपना अधिकार कर लिया। इस प्रदेश पर पहले चौहान राजपूतों और मीणों का राज्य था। फिर धीरे-धीरे दूल्हा ने मीणों से मांछी, देवती और आमेर के दुर्ग छीन लिये और आमेर को अपने राज्य की राजधानी बना दिया।[29]

25 नवम्बर, 1727 को सवाई जयसिंह ने जयपुर नगर की नींव डाली। सवाई जयसिंह ज्योतिष और गणित शास्त्र का बड़ा विद्वान था और राजस्थान के राजाओं में उसकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। उसकी मृत्यु के बाद राज्य की आंतरिक स्थिति बिगड़ने लगी। उसके दो पुत्रों ईश्वरसिंह और माधोसिंह में राज्य प्राप्ति के लिए कई बार युद्ध हुए। माधोसिंह उदयपुर महाराणा की बहन का पुत्र था, इसलिये महाराणा ने उसका साथ दिया और मराठों ने महाराणा की सहायता की। मराठों से भयभीत होकर ईश्वरसिंह ने आत्मघात कर लिया और माधोसिंह गद्दी पर बैठा। उसके समय में सिंधिया और होल्कर ने जयपुर में बड़ी लूटमार की। उसे जाटों के साथ भी युद्ध करने पड़े।[30]

पृथ्वीसिंह (1768-1778) के समय राज्य की हालत शोचनीय हो चली थी। महाराजा के अल्पवयस्क होने से उनकी माता चूंडावतीजी पर्दे से राजकाज संभालती थी जो प्रभावहीन था। खुशाली राम हल्दिया, बोहरा पृथ्वीसिंह व फीरोज प्रतिष्ठित व्यक्ति नहीं थे जिनको राज्य के ऊंचे पद दिये गये थे। इससे सामन्तों में असंतोष था। साथ ही नाथावतों राजावतों, शेखावतो और नरूकाओं की दैलबन्दी अव्यवस्था उत्पन्न कर रही थी। यह स्थिति प्रतापसिंह (1778-1803) के समय अधिक विषम हो गई। इसी अवधि में महादजी सिंधिया के आक्रमण और खिराज वसूली के दबाव (1782-1790) जयपुर राज्य के लिए भारी बोझ से हो गये थे। ऐसी स्थिति में प्रतापसिंह ने अंग्रेजों से सन्धि करने का प्रस्ताव रखा था परन्तु कार्नवालिस ने लंदन की निर्धारित नीति के कारण उसे

28–मेटकाफ, 28 मार्च, नं. 77–78, बंगाल सीक्रेट कंसलटेशन, 17 अप्रेल, 1819 रा ग्र. एचिसन, ट्रीटीज, जि. 3, पृ. 104–5; वीर विनोद; जि.–2, पृष्ठ 1342–43।

29–कच्छपवंश महाकाव्य, सर्ग 3 श्लो. 24–30, 40, 47, 69; कर्म विलास, पत्र 10–11; डा. वी.एस. भटनागर, लाइफ एण्ड टाइम्स ऑफ सवाई जयसिंह, पृ. 4–5; शर्मा एम.एल. हिस्ट्री आफ दि जयपुर स्टेट, पृ. 154–55।

30–इंटर, एशियाटिक रिसर्चेज, पृ. 177; सियाएहुजूर सं. 1750 अ.बी., ईश्वर विलास, सर्ग–10; सर देसाई, भाग–2, 215।

स्वीकार नहीं किया। इसी प्रकार 1803 का सन्धि प्रस्ताव भी क्रियान्वित नहीं होने पाया। परन्तु जगतसिंह (1803–1819) ने देखा कि बढ़ते हुए सामन्तों के प्रभाव को दबाने के लिए ईस्ट इण्डिया कम्पनी से सुलह करना ही एक मात्र मार्ग है और अब हेस्टिंग्ज भी इसके पक्ष में था तो नितान्तः 2 अप्रेल, 1818 को जयपुर और अंग्रेजों के बीच संधि हो गई जिसकी शर्तें अन्य राज्यों के साथ की गई सन्धियों के अनुकूल थी। स्थानीय दृष्टि से जिन शर्तों को विशेष रूप से रखा गया था वे ये थीं।[31]

1. जयपुर राज्य अंग्रजी सरकार को प्रथम 6 वर्ष तक निम्नलिखित राशि खिराज के रूप में देगा। पहले वर्ष कुछ नहीं, दूसरे वर्ष 4 लाख, तीसरे वर्ष 5 लाख चौथे वर्ष 6 लाख, पांचवें वर्ष 7 लाख, छठे वर्ष 8 लाख। इसके बाद प्रति वर्ष 8 लाख वार्षिक देंगे।
2. यदि महाराज अंग्रेज सरकार के वफादार बने रहेंगे तो उनकी समृद्धि और लाभ का पूरा विचार किया जाता रहेगा। इस सन्धि पर चार्ल्स थियोफिलस मेटकाफ और ठाकुर रावल बेरीसाल नाथावत मुकाम दिल्ली–2 अप्रेल 1818 ई. मे हस्ताक्षर किये और उसकी पुष्टि गवर्नर जनरल ने तुलसीपुर में तारीख 15 अप्रेल 1818 में की।

(9) **अलवर :**

प्रतापसिंह नरूका आमेर के नरेश उदयकरण ने की 16वीं पीढ़ी में था। जयपुर का राजा अभी नाबालिग था। परिस्थिति से लाभ उठाकर प्रतापसिंह ने 25 नवम्बर 1775 को अलवर के दुर्ग पर कब्जा कर लिया और एक स्वतन्त्र रियासत स्थापित की।[32]

बख्तावरसिंह और अंग्रेज :

प्रतापसिंह नरूका के बाद उसका उत्तराधिकारी बख्तावरसिंह (1790–1815) बना। बख्तावरसिंह के समय में मराठों ने अलवर राज्य में हस्तक्षेप करना प्रारम्भ किया। इससे तंग आकर बख्तावरसिंह ने अंग्रेज सेनापति लेक की शरण ली। जब 1803 को लासवाड़ी का युद्ध हुआ बख्तावरसिंह ने अंग्रेजों की सहायता की। बख्तावरसिंह की सहायता से प्रसन्न होकर अंग्रेजों ने राठका परगना, हरियाणा, दादरी और और कुछ मेवात के हिस्से अलवर राज्य को दिये। नवम्बर 14 सन् 1803 को महाराजा बख्तावरसिंह ने जनरल लेक से सन्धि की जिसके अनुसार शर्तें तय की गई जो अन्य राज्यों के साथ की गई सन्धियों के समकक्ष थी[33]

31–संधि पं. 26 बंगाल सीक्रेट कन्सलटेशन, 21 मार्च 1818 और 24 अप्रेल 1818 रा.अ., शर्मा, एम.एल. हिस्ट्री ऑफ दि जयपुर स्टेट, पृ. 173–242; वीर विनोद जि.–2, पृ. 1342–43।

32. टाड–राजस्थान, भाग–3, पृ. 1361–1363;
मेहुता–दा हिन्द राजस्थान, पृ. 396;
हेण्डले-अलवर एण्ड इट्स आर्ट ट्रेजर्स, अध्याय–2;
राजस्थान डिस्ट्रिक्ट गजेटियर्स, अलवर, पृ. 62

33. सरकार फाल आफ मुगल एम्पायर, भाग–4, पृ. 297; बेनर्जी राजपूत स्टेट्स, पृ. 411; एचीसन, ट्रीटीज, जि–3, पृ. 401–402

इस सन्धि की स्वीकृति गवर्नर जनरल वेलेजली ने 19 दिसम्बर 1803 को दी। उस सधि की विशेषता यह थी कि अंग्रेजों ने अलवर राज्य से कोई खिराज नहीं मांगा।[34]

(10) सिरोही :

सिरोही क्षेत्र पर प्राचीन एवं मध्य युग से कई वंशों का राज्य रहा है जिसमें मौर्य, क्षत्रप, हूण, वैस चावड़ा, गुहिलोत, परिहार, सोलंकी एवं परमार प्रमुख हैं। भील यहां के आदि निवासी थे जो पहाड़ी भाग में स्वतन्त्र थे। सन् 1311 के आस पास जालोर के चौहान महाराव लूंभा ने परमारों से आबू व चन्द्रावती पर अधिकार स्थापित कर यहां देवड़ा चौहानों के शासन को स्थापित किया। इसके उत्तराधिकारियों ने, जिसमें सामन्तसिंह लाखा, जगमाल आदि ने भीलों व तुर्कों से कई युद्ध लड़े अपने राज्य की सीमा को परिवधित किया। यहां का सूरताण नामक नरेश अपनी वीरता तथा स्वातन्त्र्य प्रेम के लिए बड़ा प्रसिद्ध था जिसने अकबर की अधीनता नहीं मानी।[35]

परन्तु सिरोही की आन्तरिक स्थिति धीरे धीरे बिगड़ने लगी, जिसका मुख्य कारण जोधपुर से वैमनस्य तथा देवड़े सरदारों का मन मुटाव था। महाराव बैरीसाल द्वितोय (1782–1807) के राज्य काल में अशांति का वातावरण था जिससे जागीरदार स्वतन्त्र होने के प्रयत्न करने लगे और महाराव ने इनके दमन के लिए मकराणा–सिन्धी और नागों की सेना तैयार की। इस सेना का व्यय राज्य के लिए भार रूप में था। इसी प्रकार जोधपुर ने 1812–1817 में सिरोही पर आक्रमण कर लूट-खसोट के द्वारा राजा और प्रजा को भयभीत कर दिया। जब महाराव शिवसिंह शासक बना तो उसने पाया कि राज्य की आर्थिक दशा शोचनीय है और भील, मीणे व जोधपुर की फौजें लूट खसोट करती है तथा कई सरदार सिरोही छोड़ कर अन्य रियासतों में जा रहे हैं तो उसने रियासत में शांति स्थापित करने के उद्देश्य से अंग्रेजों से 1823 ई. में संधि करली।[36]

11 सितम्बर सन् 1823 ई. को सिरोही मुकाम पर अहृदनामा हुआ जिसमें शर्तों को विशेष रूप से रखा गया था उन्हें अंकित किया जाता है –

1. अंग्रेज सरकार स्वीकार करती है कि वह रियासत और इलाका सिरोही को अपनी मातहमी व रक्षण में ली हुई रियासतों में शुमार करेगी और अपनी हिफाजत में रखेगी।
2. राव शिवसिंह मुत्सरिम अपने राव साहब की ओर उनके वारिसों व जाँ-नशीनों की तरफ से इस तहरीर के द्वारा सरकार अंग्रेज की बुजुर्गी को कबूल करते है और इक़रार करते हैं कि प्रामाणिकता के साथ वफादारी का फर्ज अदा करेंगे और इस अहृदनामें की दूसरी शर्तों का पूरा लिहाज रखेंगे।

---

34. एचीसन ट्रीटीज एगेंजमेन्टस एण्ड सनद्स जिल्द 4, पृ. 141
35. अचलेश्वर मंदिर अभिलेख (1321); नेणसी की ख्यात, भाग–1, पृ. 131–3; ओझा, सिरोही राज्य का इतिहास, पृ. 155, 186–77
36. ओझा, सिरोही राज्य का इतिहास, पृ 246, 277, 279–281; राजपूताना गजेटियर, भाग–3, पृ. 243, 245; ट्रीटीज एंगेजमेंट्स एण्ड सनद्स, भाग–3, पृ. 310–312;

3. राव साहब सिरोही किसी दूसरे रईस या रियासत से ताल्लुक न रक्खेंगे किसी दूसरे पर जियादती न करेंगे और देव-योग से किसी पड़ौसी से झगड़ा पैदा होगा, तो वह फैसले के लिए सरकार अंग्रजी को सुपुर्द किया जायेगा।

4. अग्रेजी हुकुमत रियासत सिरोही में दाखिल न होगी, लेकिन यहां के राजा हमेशा सरकार अंग्रेजी के अफसरों की सलाह के अनुसार रियासती इन्तजाम करेंगे और उनकी राय के मुआफिक अमल करेंगे।

5. चूंकि अब सिरोही का राज्य लुटेरों की लूटमार से वीरान हो गया है, इसीलिये मुन्सरिम रियासत वादा करते हैं कि वे सरकारी हाकिमों की सलाह के मुआफिक, जिस बात में मुल्क की बेहतरी और इन्तिजाम समझा जायेगा, अमल किया करेंगे और यह भी इकरार करते हैं कि अब और आगे को मुल्की फायदे चोरी और धाड़ों के रोकने और प्रजा के इन्साफ में पूरी कोशिश किया करेंगे।

6. यदि रियासत सिरोही के सरदार या ठाकुरों में से कोई शख्स किसी जुर्म या हुक्म अदूली का कुसूरवार होगा तो उसको जुर्माना, इलाके की जब्ती और कोई सजा जो कुसूर के लायक होगी, अंग्रेजी अफसरों की सलाह और सम्मति से दी जायेगी।

7. सिरोही के सब रहने वालों ने, क्या अमीर और क्या गरीब, एक मत होकर जाहिर किया है कि पिछले राजा राव उदयभाण अपने जुल्म व जियादती के कारण सब सरदारों व ठाकुरों की सम्मति से वाजिबी तौर से बेतरफ होकर कैद किये गये और राव शिवसिंह सब की मंजूरी से उनके उत्तराधिकारी करार दिये गये हैं इस वास्ते सरकार अंग्रेजी राव शिवसिंह को उनकी (उदयभाण) जिन्दगी तक रियासत के मुन्सरिम मंजूर फरमावेगी, परन्तु उनके देहान्त के बाद राव उदयभाण की सन्तति में से कोई वारिस होगा तो वह गद्दी पर बिठाया जायेगा।

8. रियासत सिरोही उतना खिराज सरकार अंग्रेजी को अपनी रक्षा के खर्च के लिए आज की तारीख से तीन वर्ष बीतने के बाद दिया करेगी, जितना कि नियत होगा, इस शर्त से कि उसकी तादाद छः आना फी रुपया आमदनी मुल्क अधिक न हो।

9. व्यापार की तरक्की और रियाया के आम फायदों के लिए सरकारी अफसरों को यह उचित होगा कि वे राहदारी व चुंगी आदि के महसूल की शरह रियासत सिरोही के इलाके में इस तरह मुकर्रर करावें कि जो अनुभव से ठीक मालूम हो।

10. जब कोई अंग्रेजी फौज की टुकड़ी राज्य सिरोही में या उसके आस पास किसी काम पर नियत हो तो राव साहब का फर्ज होगा कि वे फौज के

जरूरी सामान का प्रबन्ध बिना किसी प्रकार का महसूल लगाये करें। उस फौजी का अफसर इलाके की फसल और जमीन की पैदावार को बचाने की अपनी तरफ से पूरी कोशिश करेगा। अगर सरकार अंग्रेजी की यह राय होगी कि कुछ फौज सिरोही में रखें तो उसको इस बात का इख्तियार रहेगा और राव साहब की तरफ से इस काम में नाराजगी की कोई निशानी न होगी। इसी तरह अगर यह जरूरी हो कि कुछ फौज रियासत सिरोही की जरूरत के वास्ते भरती हो और उसमें अंग्रेज अफसर रहें तो राव साहब इस बात का वादा करते हैं कि वे जहां तक हो सकेगा सरकारी हिदायत को तामील करेंगे, मगर ऐसी हालत में खिराज की जो रकम राव साहब देते हैं उसका पूरा लिहाज रहेगा। राव साहब की फौज हर वक्त सरकार अंग्रेजी के अफसरों की मातहती में नौकरी के लिए तैयार रहेगी।

(11) **बूंदी :**

बूंदी का क्षेत्र हाड़ौती प्रदेश का एक भाग है जिसको बंबावदा के चौहान देवा ने 1342 ई. में मीणों से छीनकर बूंदी राज्य की स्थापना की थी। प्रारंभ से ही बूंदी राज्य को मेवाड़ और मालवा से अनेक युद्ध करने पड़े थे और जब इसका विभाजन होकर कोटा राज्य बना तो यह राज्य छोटी इकाई के रूप में रह गया। इस वंश में राव सुर्जन बड़ा साहसी वीर था जिसने कुछ समय मुगलों से टक्कर लेकर अपने शौर्य का परिचय दिया था। अन्त में सुर्जन के साथ अकबर ने सन्धि करली और तब से यहां के शासक मुगलों के प्रतिष्ठावान मनसबदार बने रहे। जब मुगल सत्ता का ह्रास हुआ बूंदी पिंडारियों और मरहठा आक्रमणों का शिकार बन गया। सामन्तों का गुट भी यहां के शासकों के विरुद्ध यदा कदा षड्यन्त्र करता था। लूटपाट से भी राज्य को आर्थिक हानि उठानी पड़ी थी और प्रजा भी पीड़ित थी। जिससे राज्य की स्थिति शोचनीय होने लगी। इस विडंबना से छुटकारा पाने के अभिप्राय से राव राजा विसनसिंह ने 10 फरवरी 1818 में अंग्रेजों से सन्धि करली जिसकी शर्तें अन्य राज्यों की संधियों के अनुरूप थी।[37]

(12) **कोटा :**

कोटा राज्य पहले बूंदी का एक भाग था। बूंदी के राव रतन के छोटे पुत्र माधोसिंह ने 1624 ई. में अपने पिता की अनुमति और मुगल बादशाह जहांगीर और शाहजहां से आदेश लेकर उस राज्य को बूंदी से अलग किया था और इसका सम्बन्ध भी सीधा मुगल सम्राट से

37–नैणसी की ख्यात, भाग–1, पृ. 106, 109; वंशभास्कर, भाग–2, 1621–1627–भाग–3, 1714–1787; डा. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास भाग–1, पृ. 62–66; एचिसन, ट्रीटीज, जि.-3 पृ. 229, 235; सीक्रेट कन्सल, फरवरी 13, 1818 नं. 21 रा.अ.; सूरजमल. भाग–2, पृ. 1621 के अनुसार देवा का प्रभाव 1241 ई. में स्थापित हुआ और टाड भाग-3, पृ. 1466 के अनुसार 1342 ई. उसकी सत्ता का काल है जो ठीक लगता है। (बूंदी गजट, पृ. 34)

कर लिया था। यहां के शासकों का जहांगीर, शाहजहां, औरंगजेब तथा उसके उत्तराधिकारियों से अच्छा सम्बन्ध रहा वे समय–समय पर अपने मनसब की वृद्धि द्वारा प्रतिष्ठा प्राप्त रहे।[38]

क्योंकि कोटा के राव अधिक समय मुगल खेमों में रहते थे शासन की देख रेख का भार राज परिवार के राजकुमार या उच्च अधिकारियों पर रहता था। ऐसी स्थिति में अव्यवस्था तथा स्वार्थ पूर्ति की चालों का बाहुल्य स्वाभाविक था बूंदी और कोटा का वैमनस्य भी दोनों राज्यों के लिए घातक था। परन्तु जब 1738 से पेशवा का आक्रमण का श्री गणेश कोटा पर हुआ तो आगे चलकर सिंधिया, होल्कर और जाटों के आक्रमण का तांता लग गया। मरहठों की सेनाओं का सामना करना तथा बार–बार धन देना एक विषम समस्या बन गई। महाराव अजीतसिंह एवं महाराव शत्रुशाल के समय राज्य को लाखों रुपये नजराने के रूप में देने पड़े थे और शांति खरीदनी पड़ी थी। मरहटा अधिकारी जो कोटा में राजस्व वसूली के लिए आते थे नृशंसता से उघाई कर प्रजा को सताते थे। जब मरहठा शक्ति क्षीण होने लगी तो जालिमसिंह ने अंग्रेजों को सहायता पहुंचाना प्रारम्भ किया। पिंडारियों के विरुद्ध भी अंग्रेजों का सहयोगी रहा। जालिमसिंह की महत्वाकांक्षा ने भी कोटा को अंग्रेजों की ओर निहारने के लिए उद्यत कर दिया। इस स्थिति से कोटा और अंग्रेजों के बीच 26 दिसम्बर सन् 1817 में सन्धि हो गई। संधि अन्य राज्यों की संधियों से मिलती जुलती सी थी।[39]

कोटा महाराव से की हुई सन्धि की पूरक शर्त जो ब्रिटिश सरकार और कोटा राज्य के बीच में 26 दिसम्बर 1817 को की गई वह यह थी:—

दोनों पक्ष इस बात पर सहमत हैं कि कोटा के महाराव उम्मेदसिंह के पश्चात् यह रियासत उनके ज्येष्ठ पुत्र महाराजकुमार किशोरसिंह को और उनके उत्तराधिकारियों को सदैव और निरन्तर उत्तराधिकार में मिला करेगी और इस राज्य के सारे मामलों का समस्त प्रशासन राजराणा जालिमसिंह और उसके वंशज को निरन्तर और सदैव प्राप्त होता रहेगा।[40]

38–वंशभास्कर, भाग–3 पृ. 2487, 2770 2888 3078, 79, 3312 आदि; खाफीखां, भाग–1, पृ. 349–50; शाहजहांनामा, भाग-1 पृ. 27, 28, 108; आलमगीर नामा, 68, 70, 245, 250; डा. मथुरालाल शर्मा, कोटा राज्य का इतिहास, भाग–1, पृ. 108, 128, 129, 140, 141, 186, 256, 441 आदि।

39–महासिरुलउमरा, पृ. 349; खाफीखां, भाग-2, पृ. 851, 940; वंशभास्कर, भाग 4, पृ. 2967, 3040-43, 3078-79, 3094, 3710; सीक्रेट कन्सल; सितम्बर, 1807, नं. 32 रा. अ.; इरविन लेटर मुगल्स, भाग-1, पृ. 10, 11, 28 31; सरकार, फाल आफ दि मुगल एम्पायर, पृ. 194-95.

40–एचिसन, ट्रीटीज, भाग-6, पृ. 360-572

(13) झालावाड़ :

जालिमसिंह की मृत्यु 1824 में हुई। उसका उत्तराधिकारी माधोसिंह झाला का सम्वत् 1890, (1833 ई.) में माघ में देहान्त हो गया। मदनसिंह झाला ने स्वतः ही कोटा का फौजदार बन कर अपने स्वर्गीय पिता की शक्ति और सम्पत्ति ग्रहण कर ली। मदनसिंह झाला का बर्ताव वैसा नहीं रहा। वह कोटा नरेश की उपेक्षा करने लगा। कारण स्पष्ट था। मदनसिंह स्वभाव से ही उदण्ड, असहनीय, शीघ्रकर्मी और स्वतन्त्र प्रकृति वाला था। इसलिए वह रामसिंह की आज्ञाओं की अवहेलना करने लगा। इससे रामसिंह बहुत असन्तुष्ट हुये। रामसिंह कम्पनी सरकार को बार-बार लिखने लगे कि मदनसिंह की उदण्डता के कारण मेरी स्थिति असह्य हो गई है और मदनसिंह भी इस बात की निरन्तर शिकायत करने लगा कि महाराजा रामसिंह शासन की बागडोर अपने हाथ में लेकर वास्तव में राजा बनना चाहते हैं और मुझ को उन अधिकारों से वंचित करना चाहते हैं जो कम्पनी के साथ की हुई सन्धि के अनुकूल मुझे प्राप्त है।[41]

जब महाराव रामसिंह और झाला मदनसिंह में निरन्तर कलह रहने लगा तो कम्पनी सरकार ने आखिरी यह अनुभव किया कि गुप्त सन्धि की शर्तों का अधिक समय तक पालन होना सम्भव नहीं है। कम्पनी भी उसका लिहाज नहीं करती थी जितना जालिमसिंह या माधोसिंह का। अपने पूर्वजों की भांति मदनसिंह में न वह चतुरता थी न वह शक्ति।

जब मि. लैंडलों ने जो कोटे में पोलिटिकल ऐजेन्ट था, गवर्नर जनरल को इस विषय का पत्र लिखा कि महाराव रामसिंह और मदनसिंह अधिक समय तक साथ-साथ नहीं निभ सकते और जालिमसिंह की सेवाओं के कारण जितना लिहाज उसके वंशजों का किया जाना चाहिए था, उतना किया जा चुका है और अब समय आ गया है कि कोटा नरेश को अपने वंश परम्परागत अधिकार और स्वत्व पुनः वापिस दे दिये जावें तो गवर्नर जनरल और उसकी कौंसिल ने मिस्टर लैंडलों के प्रस्ताव को स्वीकार किया और यह आदेश दिया गया कि जालिमसिंह के समय में जितने परगने कोटा राज्य में मिलाये गये थे, वे सब अलग करके जालिमसिंह के वंशजों के लिए एक पृथक राज्य स्थापित कर दिया जावे। इस निर्णय के अनुसार 1837 में मदनसिंह झाला को कोटा की पैतृक मुसाहिदी से त्याग पत्र देना पड़ा और कोटा के 17 परगनों को अलग कर झालावाड़ का पृथक राज्य स्थापित किया गया। अंग्रेजी सरकार ने मदनसिंह से नवीन सन्धि 10 अप्रेल, 1938 में करली।[42] अन्य शर्तों के अतिरिक्त विशेष शर्तें इस प्रकार थीं।[43]

1. देहली की फरवरी 1818 की सन्धि में जो पूरक शर्त थी वह खारिज की जाती हैं।

---

41. एचिसन ट्रीटीज, भाग-3, पृ. 360;
शर्मा, एम.एल.-कोटा राज्य का इतिहास, भाग-2, पृष्ठ 591-93

42-शर्मा, एम.एल. कोटा राज्य का इतिहास, भाग-2, पृ. 594-596; एचिसन ट्रीटीज भाग-3, पृ. 376-379;
बेनर्जी, दा राजपूत स्टेट्स एण्ड द कम्पनी, पृ. 399-400

43-एचिसन ट्रीटीज, भाग-3, पृ. 376-379

2. कोटा राज्य के निम्नलिखित परगने पृथक करके एक अलग राज्य बनाया जा रहा है--चेचट, सुकेत, आवर डग गंगराड़, झालरापाटन, रीछवा, बकानी, वहलनपुर, कोटड़ा, भालता, सरड़ा, रटलाई, मनोहरथाना, फूलबड़ौदा, गुंजारी, चाचोरनी, छीपाबड़ौद और शाहबाद।

3. राजराणा और उसके उत्तराधिकारी अंग्रेज सरकार को 80,000/– रुपये प्रति वर्ष दो छः माही किश्तों में खिराज के रूप में देते रहेंगे। यह सन्धि कोटा में अंग्रेज सरकार और मदनसिंह में हुई। इसकी पुष्टि दो मास के अन्दर भारत के गवर्नर जनरल करेंगे। तारीख 8 अप्रेल 1838।

(14) **भरतपुर :**

भूतपूर्व भरतपुर राज्य के शासक स्वयं को यदुवंशी क्षत्रिय मानते हैं। 12वीं शताब्दी में इनका मूल पुरुष सिन्दपाल था जिसने इस राज्य की नींव डाली। तत्पश्चात् इस क्षेत्र में जाटों का अभ्युदय हुआ जिन्होंने तुर्कों व मुगलों का मुकाबला बड़े साहस व शौर्य से किया। संगठित प्रतिरोध करने में गोकुल जाट एवं चूडामन जाट के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। 1722 ई. में जाटों का नेतृत्व बदनसिंह को प्राप्त हुआ। इसका उत्तराधिकारी सूरजमल था जो अपनी विशेषता के लिए प्रसिद्ध रहा है। रुहिल्ला, मराठा तथा गृह युद्ध से तंग आकर सितम्बर 1803 को भरतपुर नरेश रणजीतसिंह ने लार्ड लेक के पास अपने आदमी बातचीत हेतु भेजे। लार्ड लेक भी समझता था कि भरतपुर के जाट राजा रणजीत सिंह और अलवर के महाराजा बख्तावरसिंह से मेल किये बिना सिंधिया पर विजय प्राप्त नहीं की जा सकती। 29 सितम्बर 1803 को उसने रणजीतसिंह से सन्धि करली। इसके अनुसार ये शर्तें ठहरीं कि रणजीतसिंह के राज्य पर अतिक्रमण नहीं किया जाएगा और यदि अंग्रेजों के राज्य पर कोई हमला होगा तो रणजीतसिंह अंग्रेजों को सहायता देगा। इसी प्रकार ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी भी रणजीतसिंह को सहायता देगी।[44]

1805 **की सन्धि** (17 **अप्रेल** 1805)[45]

इसके पश्चात लार्ड लेक ने भरतपुर के राजा से दूसरी सन्धि की। सन्धि की शर्त इस प्रकार थी कि भरतपुर के राजा ने खुद के खर्चे के 20 लाख रुपये कम्पनी को देना मान लिया। दूसरी शर्त यह थी कि अगर ब्रिटिश इलाके पर कोई आक्रमण हुआ तो राजा अंग्रेजों के शत्रुओं से कोई पत्र व्यवहार नहीं करेगा। राजा रणजीतसिंह फ्रांस के किसी निवासी को कम्पनी की अनुमति के बिना अपने पास नौकरी नहीं देगा। संधि की शर्तों की

44–ईसरदास नागर, फतुहात, पृ. 53; मासिर उमरा, भाग-1 पृ. 120-130; मासिर आलम गिरि पृ. 58-63; दस्तूर कोमवार, जि-7, पृ. 436; कापड़द्वारा दस्तावेज, 1406 वि.अ.; फो.पो. 31, अक्टूबर, 1803, नं. 60; जे.एस. 103 रा.अ.; पार्लियामेन्टरी पेपर्स, 1806 भाग-6 पृ. 63; रोबर्ट्स, इण्डिया अंडर वेलेजली, पृ. 227; कानुनगो, एसेज, पृ. 56; एचीसन, ट्रीटीज, भाग-3 पृ. 274; डा. राम पाण्डे, भरतपुर पृ. 141-142

45–फो. सीक्रेट, प्रोसीडिंग्ज, 28 मार्च, 1805, नं. 180 रा.अ.; थोर्न पृ. 460-63; स्ट्रेटन, 38; डा. पाण्डे, भरतपुर, पृ. 154

को पूर्ति के लिए जमानत के रूप में राजा रणजीतसिंह ब्रिटिश सेना के सेनापति के पास अपने पुत्र को रखेगा और डीग के दुर्ग पर अंग्रेजों का कब्जा बना रहेगा। कम्पनी ने वचन दिया कि अपने पुराने राज्य पर राजा रणजीतसिंह का अधिकार हमेशा बना रहेगा। अगर राजा रणजीतसिंह की किसी अन्य राजा से कोई खटपट हुई तो यह मामला निर्णय के लिए अंग्रेज सरकार के समक्ष प्रस्तुत किया जायेगा। इस संधि के 8 मास बाद रणजीतसिंह की गोवर्धन पर्वत पर मृत्यु हो गई। वह चार पुत्र छोड़कर मरा था। उनके नाम क्रमशः रणधीरसिंह, बलदेवसिंह, पृथ्वीसिंह और लक्ष्मणसिंह थे।[46]

खटपट का समय :

भरतपुर के इतिहास में 1805 से 1815 तक का समय अंग्रेजों और भरतपुर के जाटों के बीच खटपट का था। भरतपुर के निवासियों ने बनारस और बरेली के डिविजन में डकैतियां की थीं और फिर अपने घर वापिस आ गये थे। उस समय डिविजन के सुपरिन्टेन्डेन्ट ने भरतपुर से निवेदन किया कि डाकुओं को अंग्रेजी सरकार के सुपुर्द कर दिया जाए। परन्तु रणजीतसिंह ने कुछ नहीं सुना। यद्यपि इस विषय में भरतपुर के राजा ने वचन दे रखा था परन्तु इस अवसर पर सुपरिन्टेन्डेन्ट की प्रार्थना पर उसने कोई ध्यान नहीं दिया। संधि के अनुसार अंग्रेज अधिकारी भरतपुर राज्य में कोई हस्तक्षेप नहीं कर सकते थे। इसके अतिरिक्त और भी घटनाएं हुई जिससे संधि की शर्तों का उल्लघन हुआ। इसी बीच में दिल्ली के ब्रिटिश रेजीडेन्ट को सूचना मिली कि जयपुर, माचेड़ी, अमीरखां और भरतपुर के राजा में कोई परस्पर संधि हुई है। क्या संधि हुई इसका विवरण तो प्राप्त नहीं हुआ। दिल्ली स्थित ब्रिटिश रेजीडेन्ट चार्ल्स मेटकाफ ने भरतपुर के राजा को लिखा था कि नैनसुख नामक एक सेठ ने कम्पनी के इलाके में कुछ अपराध किये हैं इसलिये उसको कम्पनी के सुपुर्द कर दिया जाए। परन्तु राजा ने यह उत्तर दिया कि नैनसुख पर राजा का पुराना ऋण है। इसलिए उसको भरतपुर में ही दण्ड दिया जावेगा। परन्तु भरतपुर के राजा ने दण्ड के सम्बन्ध में कुछ नहीं किया। अंग्रेज सरकार और भरतपुर के राजा में पत्र-व्यवहार चलते रहे और इसमें मतभेद बढ़ता ही गया। तब चार्ल्स मेटकाफ ने कम्पनी के उच्चाधिकारियों को सुझाव दिया कि 1805 की संधि भंग कर दी जाए और भरतपुर के विरुद्ध एक विशाल सेना भेजी जाए। परन्तु उस समय ब्रिटिश सरकार के पास इतनी सेना नहीं थी कि भरतपुर पर चढ़ाई की जाती। नितान्त 1805–1815 तक राजा और अंग्रेजो के सम्बन्ध तनाव के रहे। ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कम्पनी के अधिकारियों ने अब भरतपुर के आंतरिक शासन में हस्तक्षेप कर छेड़छाड़ आरंभ कर दी। परन्तु जब हेस्टिंग्ज ने इस मसले को अपने हाथ में लिया तो विरोध की नीति आपसी मैत्री और सहयोग में बदल गई क्योंकि उसे नेपाल युद्ध और मराठों एवं पिंडारियों की समस्याओं को हल करना था। अतएव 1815 से राजा रणधीर सिंह की मृत्यु (1823) तक भरतपुर और अंग्रेजों के सम्बन्ध अच्छे बन गये।[47]

46– सर देसाई, मरहटा, भाग–3, पृ. 428.

47. पार्लियामेन्टरी पेपर्स, 1806, भाग–16, नं. 176, फो. पो. 6 सितम्बर, 1811 न. 23, 1807, नं. 39–40, 22 अप्रेल 1814, नं. 8 रा. अ., 1916, नं. 76 रा. अ., एस. पी. डी. भाग–4, पृ. 277, 282, सिंधेशाही, भाग–4, पृ. 140, ज्वाला सहाय, लॉयल भरतपुर, पृ. 2–3, डा. रामपाण्डे, भरतपुर, पृ. 157–167

(15) **धौलपुर :**

धौलपुर में मराठों के हमले हुआ करते थे इसलिए वहां के नरेश कीरतसिंह ने उनसे बचने के लिए सन् 1804 में कम्पनी से संधि कर ली। शर्तें वे ही थीं जो अन्य रियासतों के साथ, विशेषकर छोटी रियासतों के साथ हुई थीं। संधि में कहा गया था कि रियासत के अन्दरूनी मामलों में कोई हस्तक्षेप नहीं किया जायेगा, परन्तु कम्पनी ने इस शर्त का बार बार उल्लंघन किया।[48]

(16) **करौली :**

करौली का राजवंश अपने को यादव वंशी मथुरा की शूरसेनी शाखा से निकला हुआ मानते है। ये यादव मथुरा और द्वारका में शक्तिशाली रहे जिनको समय समय पर शकों, मौर्यों, गुप्ताओं तथा सीथियन्स से संघर्ष कर अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा करनी पड़ी। इस राज्य के मूल पुरुष विजयपाल ने लगभग 1040 ई. में बयाना में अपनी राजधानी स्थापित की। इसके वंशज तुर्कों से संघर्ष करते रहे परन्तु अकबर के समय महाराजा गोपालदास ने दौलताबाद में मुगल सेना की सहायता की और तब से मुगलों के साथ करौली का मैत्रीपूर्ण व्यवहार रहा।[49]

18 वीं शताब्दी से घरेलू व बाहरी झगड़ों के कारण राज्य में अशांति रही। कुछ बागी ठाकुरों ने तथा मराठों की घुसपैठ ने यहां की आन्तरिक स्थिति को निर्बल बना दिया था। महाराजा हरबक्षपाल के समय 1812 में नवाब मुहम्मद शाहखां नामक डाकू ने करौली को आतंकित किया। पश्चात् मरहठों ने भी धावा बोलकर राज्य को 25 हजार खिराज देने के लिए विवश किया। जब खिराज की रकम देने में महाराजा ने असमर्थता प्रकट की तो मांसलपुर और कुछ गांव मराठों को दिये गये। परन्तु जब 1817 में पेशवा के साथ अंग्रेजों की संधि हुई तब करौली राज्य भी अंग्रेजों की संरक्षता में आ गया। नवम्बर 9, 18-17 की संधी की गई जिसमे अन्य शर्तों के अतिरिक्त शर्त ये थीं –[50]

1– ब्रिटिश सरकार उस खिराज को छोड़ती है जो करौली का राजा पेशवा को देता था।

2– यह खिराज राजा के उत्तराधिकारियों से भी नहीं लिया जावेगा। करौली का राजा अपने साधनों के अनुसार अंग्रेज सरकार को आवश्यकता होने पर सेना देगा।

48– एचिसन, जिल्द, 4, पृ. 117, मेमोयर्स ऑफ लेक, पृ. 338

49– इंडियन एन्टीक्वेरी, भाग-6, पृ. 55, कनिंघम, आर्कियोलोजीकल सर्वे भाग-20 पृ 3, केप्टिन पावलेट, करौली, गजेटियर, पृ. 2, इलियट, भाग–5, पृ. 98

50– सीक्रेट कन्सलटेशन, दिसम्बर, 5, 1817, नं. 23 रा.अ., एचिसन, भाग–3, पृ. 284–285,
बेनर्जी, राजपूत स्टेट्स एण्ड दी कम्पनी, पृ. 393

(17) **जैसलमेर :**

जैसलमेर राजस्थान के सुदूर कौने में स्थित है और प्रायः रेतीला मैदान है। यहां का राजवंश चन्द्रवंशी भाटी शाखा में है। इनके मूल पुरुष ने पंजाब से आकर सातवीं शताब्दी में इस क्षेत्र को अपने अधिकार में किया। रज. गज, शालिवाहन, जैसल आदि शासकों ने जैसलमेर की सीमा को बढ़ाया और प्रारंभिक तुर्की आक्रमणों से मुठभेड़ की। महारावल हर राज भाटी ने अकबर की अधीनता स्वीकार की और अपनी राजकुमारी उससे ब्याही। तभी से इसके वंशज मुगल सेवा में रहे।[51]

मुगल राज्य के पतन के पश्चात् जैसलमेर में आपसी झगड़े तथा सरदारों के विरोध उठ खड़े हुए। महारावल अमरसिंह के समय "बराड़ों" के लगाने से राइका जाति जैसलमेर से निकल गई। जसवंत सिंह के समय (1701) जैसलमेर के बहुत से इलाके दूसरों के हाथ चले गये, जैसे बाड़मेर व फलोदी जोधपुर ने दबा लिया, पूगल बीकानेर ने और सतलज नदी के निकटवर्ती भाग को दाऊद खा अफगानी ने हथिया लिया। मूलराज के गद्दी बैठते ही (1761 ई. में) दीवान और भाटी सरदारों के झगड़े उग्र हो गये। स्वयं महाराजा कुछ समय नजरबन्द रहा जिससे राज्य में अव्यवस्था पैदा हो गई। उसका दीवान मेहता सालमसिंह शक्तिशाली बनता जा रहा था जिससे सामन्तों में कटुता बढ रही थी। इस बिगड़ती हालत को सुधारने के लिए मूलराज ने अंग्रेजों से दिसम्बर 12, 1818 में सन्धि कर ली जिससे इस राज्य ने अंग्रेजों की सर्वोपरिता मान ली।[52]

(18) **टौंक :**

टौंक का क्षेत्र पहले मालव, गुहिल, चौहान, कछवाहे तथा मुगलों के अधीन रहा। मराठा अधिपत्य भी इस क्षेत्र में था। जसवन्त राव होल्कर ने 1806 ई. में टौंक का इलाका अमीरखां को दिया। जब अंग्रेजों से अमीरखां की सन्धि (1817) हुई तब वह इसका वैध अधिकारी हो गया। वह संभल के एक गरीब मुसलमान परिवार में पैदा हुआ था। परन्तु अपने बाहुबल, कौशल और पुरुषार्थ से वह राज्य का नवाब बन गया। अमीर खां होल्कर का एक सेना नायक था। कहते हैं कि वह पिंडारी नहीं था, परन्तु पिण्डारियों से उसका गहरा संबंध था। उसकी आदतें भी पिण्डारियों जैसी थीं। और उसका स्वभाव भी उनका सा ही था।[53]

51– एपिग्राफिया इण्डिका, भाग–1, पृ 222: जर्नल रायल-एशियाटिक सोसाइटी 1894, पृ 4–9: भाटीनामा: नैणसी की ख्यात, भाग 2 पृ. 341–346; अकबर नामा, भाग–2, पृ. 518

52– एचिसन, ट्रीटीज, भाग–3, पृ. 212:
बेनर्जी, राजपूत स्टेट्स एण्ड द कम्पनी पृ. 409

53– आइने अकबरी, भाग–2, पृ. 280
हिस्ट्री एण्ड कल्चर आफ इंडियन पीपुल, भाग–2, पृ. 164; भाग–3, पृ. 253; भाग–4, पृ. 105; भाग–5, पृ. 147–48; भाग–6, पृ. 70; राजस्थान डिस्ट्रिक्ट गजेटियर, टौंक पृ. 17–25, मेहता, द हिन्द राजस्थान, पृ. 381

पिंडारियों और मराठों के विरुद्ध 1817 में लार्ड हेस्टिंग्स ने सबल अभियान चलाया तो अमीरखां को चारों ओर से घेर लिया गया जिससे वह संधि करने पर विवश हो गया। जब अंग्रेज सरकार ने उससे कहा कि होल्कर ने जो गांव या इलाके उसको दे रखे हैं वे उसके पास रहने दिये जायेंगे परन्तु उसको लूटमार छोड़नी पड़ेगी, अपनी सेना भंग करनी पड़ेगी अपना तोपखाना ब्रिटिश सरकार को सौंपना पड़ेगा। केवल 40 तोपें वह अपने लिये रख सकेगा और जब अंग्रेज सरकार चाहेगी तब अंग्रेज सेना से सहयोग करने के लिये उसे अपनी निश्चित सेना कम्पनी के सुपुर्द करनी पड़ेगी। अमीरखां ने विवश होकर अंग्रेज सरकार की शर्तें स्वीकार करलीं। सरकार ने रामपुरा का जिला और दुर्ग उसको बख्शीश में दे दिया। अंग्रेज सरकार से संधि हो जाने के बाद अमीरखां की मृत्यु 1834 में हो गई।

संधि की शर्तें : 54

1— अंग्रेज सरकार नवाब अमीरखां और उसके उत्तराधिकारियों को उन स्थानों का कब्जा देती है जो महाराजा होल्कर के राज्य में उसके पास हैं और उपरोक्त महाराजा की सनदों के अनुसार जो अंग्रेज सरकार के पास हैं इन स्थानों को अंग्रेज सरकार अपने कब्जे में लेती है।

2— नवाब अमीरखां अपनी सेना को भंग करेगा। वह केवल सेना का इतना-सा भाग अपने पास रखेगा जो अपने इलाकों के प्रबन्ध के लिये आवश्यक होगा।

3— नवाब अमीरखां किसी मुल्क में अतिक्रमण नहीं करेगा। वह पिण्डारियों से और दूसरे लुटेरों से अपना सम्बन्ध तोड़ देगा। इसके अतिरिक्त अंग्रेज सरकार के साथ यथा शक्ति सहयोग करेगा और पिण्डारियों और लुटेरों के दमन के लिये अंग्रेज सरकार का साथ देगा। वह अंग्रेज सरकार की अनुमति के बिना किसी भी व्यक्ति के साथ कोई मेल मिलाप की बात नहीं करेगा।

4— नवाब अमीरखां अंग्रेज सरकार को अपनी सारी तोपें और सैनिक सामग्री सौंप देगा। वह केवल इतनी सी सामग्री अपने पास रखेगा जो उसके इलाकों और दुर्गों के आन्तरिक प्रबन्ध के लिये आवश्यक होगी। इसके एवज में नवाब को मुनासिब आर्थिक मुआवजा दिया जायेगा।

5— नवाब अमीरखां जो सेना अपने पास रखेगा वह अंग्रेज सरकार की मांग पर उनके सुपुर्द कर दी जायेगी।

ब्रिटिश नीति और सन्धि पर एक दृष्टि :

जिन राजपूत राज्यों का इतिहास उपर वर्णित किया गया है वह इस धरती के अनेक सपूतों का शौर्य और साहस का प्रतीक है। यहां कई वीरों और वीरांगनाओं ने अपने

54— एचिसन ट्रीटीज, भाग–3, पृ. 241

बलिदान से देश की उज्वल कीर्ति को प्रकाशित किया था। उन्होंने अनेक लोकोपकारी कार्यों, कलाकृतियों और साहित्य ग्रन्थों को प्रोत्साहित कर एक अनुपम कीर्तिमान स्थापित किया था जो सर्व विदित है। अठारहवीं शताब्दी के अन्तिम चरण से इस स्थिति में एक गिरावट आई। मुगलों के संरक्षण ने राजा और महाराजाओं को निष्क्रिय बना दिया। आपसी संघर्ष गृह-युद्ध, अपव्यय आदि दोषों ने राज्यों की नीव खोखली कर दी। आर्थिक पूर्ति के लिए करों का भार प्रजा पर लादा जाने लगा और अव्यवस्था का दौर यहां घर कर गया। ऐसी स्थिति में पिण्डारियों और मरहठों की घुसपैठ ने तथा लूट-पाट की प्रवृत्ति ने जन जीवन और शासन को अस्त व्यस्त कर दिया। अब तो 19 वीं शताब्दी के प्रारंभ से यहां के शासक किसी ऐसी शक्ति की शरण ढूंढने लगे जिससे उनका अस्तित्व भी बना रहे और राज्यों में शांति स्थापित हो। वह शक्ति अंग्रेजी सत्ता की थी जो पिण्डारियों, मरहठों और देशी राज्यों के दमन कर अपनी प्रभुसत्ता कायम करना चाहती थी।

जब राजपूतों और अंग्रेजों के स्वार्थ किसी अर्थ में एक से थे तो धीरे-धीरे आपसी संबंध स्थापित करने का वातावरण बनने लगा। 1786 से जब राजपूत राज्य कम्पनी से मैत्री करने के पैगाम भेजने लगे तो कम्पनी के अधिकारियों को मनस्थिति देशी राज्यों के मामलों में उलझना नहीं चाहती। इसका प्रमुख कारण यह था कि बोर्ड आफ कन्ट्रोल ने हस्तक्षेप की नीति का अनुमोदन नहीं किया था। साथ ही कम्पनी का ध्यान मरहठा-पिंडारी शक्ति को कुचलने में केन्द्रित था। परन्तु 1802 की बेसीन की सन्धि के पश्चात् लार्ड वेलेजली जो अंग्रेजी सत्ता को प्राणवान बनाना चाहता था इस विचार को प्रधानता देने लगा कि यदि मराठा शक्ति का दमन करना है और अंग्रेजी राज्य का विस्तार करना है तो देशी राज्यों से संबंध जोड़े जाये और वहां की आन्तरिक फूट का लाभ उठाया जाय।[55]

इस धारणा के फलस्वरूप 1803 से 1805 के बीच जयपुर, जोधपुर, भरतपुर और अलवर के साथ सन्धियां हुईं। इन सन्धियों के अनुबन्धों में राज्यों ने अंग्रेजों के मित्रों को मित्र और उनके शत्रुओं को शत्रु मानने का आश्वासन दिया और ब्रिटेन की प्रभुसत्ता को सर्वोपरि माना। यह भी सन्धियों से मान लिया गया कि किसी विदेशी व्यक्ति को राज्य की सेवा में नहीं रखा जायगा और यदि कोई विदेशी सत्ता अंग्रेजों के अधिकार क्षेत्र पर आक्रमण करेगी या राज्यों पर विदेशी सत्ता आक्रमण करेगी तो वे परस्पर एक दूसरे की सहायता करेंगे।[56]

इन सन्धियों से यह प्रमाणित होता है कि इन राज्यों के महाराजा निस्तेज व अप्राण हो गये थे और ब्रिटिश संरक्षण प्राप्त करने को उतारू थे। परन्तु 1805 में जब लार्ड कार्नवालिस भारत का गवर्नर जनरल बनकर आया तो उसने देशी राज्यों के पचड़े में

55-पूना रेजिडेन्सी, भाग-1, पत्र नं. 158:

फो. पो. गवर्नर जनरल का पत्र लेक को, 18 जुलाई 1803, रा.अ;

फो. पो. लेक पत्र वेलेजली को, 8 दिसम्बर, 1803 रा. अ.

56- एचिसन, ट्रीटीज, भाग-3, पृ. 66, 102-103, 389, 400; वेलेजली डेसपेचेस, भाग-3, पृ. 495, भाग-4, पृ. 136,

पड़ना उचित नहीं समझा। उनकी मान्यता थी कि ऐसा करने से जन-भावना ब्रिटिश सत्ता के विरोध में होगी और कम्पनी के हितों को हानि पहुंचेगी। उसके उत्तराधिकारी जार्ज बरलो और लार्ड मिन्टो भी इसी नीति के अनुयायी रहे। फल यह हुआ कि सन्धियों के अनुबन्धों का ठीक तरह से पालन हो सका। कम्पनी ने भी सिन्धिया तथा होल्कर से ऐसी सन्धियां की थी जिसमें राजपूत राज्यों में हस्तक्षेप नहीं करने का आश्वासन दिया था, क्योंकि मराठों का स्वार्थ राजस्थान से धन बटोरने का था, जिसे एकाएक समाप्त कर देना कम्पनी के अधिकारी ठीक नहीं समझते थे।[57]

परन्तु 1813 में लार्ड हैस्टिंग्ज के भारत में गवर्नर जनरल बनकर आने पर नीति में नया मोड़ आया। वह इस पक्ष का था कि यदि ब्रिटिश सत्ता को यहां प्राणवान बनाना है तो राजस्थानीय राज्यों को पूर्ण संरक्षण में लिया जाय जिससे मराठा-पिंडारी अतिक्रमण समाप्त हो और देशी राज्यों के साधनों का उपयोग कम्पनी के हित में हो सके तथा उसके वाणिज्य और वित्तीय स्थिति को लाभ पहुंचे। साथ ही ऐसा करने से वह मानता था कि सिक्खों व पश्चिमी भारतीय भागों, गुजरात व मालवा पर प्रभाव स्थापित करने में सुविधा हो जायगी, क्योंकि ये प्रदेश अभी तक अधिकृत नहीं थे। राजपूत वर्ग, उसके विचार से परम्परा और मान्यता में एक इकाई भी थे और अपनी शान और आन में विभिन्नता भी लिए हुए थे। ऐसे वर्ग पर काबू पाकर कम्पनी को अपनी सत्ता स्थापित करने में बल मिलेगा राजस्थानी नरेशों से मैत्री करने में हेस्टिंग्ज यह भी मानता था कि कम्पनी की सैनिक और कूटनीति की स्थिति अधिक सुदृढ़ हो जायगी। इधर से राजपूत नरेश भी अपने-अपने इलाकों में मैत्री से शांति स्थापित कर सकेंगे और उन्हें एक ऐसा सहयोगी मिल जायगा जो विपत्ति के समय साथी बना रहेगा। इस प्रकार की दोनों ओर की परिस्थितियों ने 1817-1818 की सन्धियों को सम्पन्न कराया जिसमें चार्ल्स मेटकाफ और कर्नल टॉड ने अपनी विशेष भूमिका निभाई।[58]

जब हम इन सभी राज्यों की शर्तों पर एक दृष्टि डालते हैं तो पाते हैं कि हेस्टिंग्ज ने राजस्थानी नरेशों के वंशानुगत अधिकारों को तो मान्यता दे दी, परन्तु उन्हें एक प्रकार से निहत्थे व पंगु भी बना दिया। शासन में हस्तक्षेप न करने के गर्भ में हस्तक्षेप के बिन्दु मौजूद थे, क्योंकि आंतरिक बखेड़ों, सीमा विवादों, उत्तराधिकार के मसलों में कम्पनी की मध्यस्थता अनिवार्य थी। समस्त सैनिक साधन अंग्रेजों के हवाले स्वीकार करना राज्य को अंग्रेजों के हवाले करना था। अधिकांश राज्यों को खिराज देने की बाध्यता ने उन्हें

57- कार्नवालिस का पत्र लेक को, 30 जुलाई, 1805 रा.अ.; कार्नवालिस का पत्र मालकोम रोस को, 14 अगस्त, 1805; कार्नवालिस कोरसपोन्डेन्स, भाग-3, पृ. 533, रा अ.; माल्कोम, पोलिटिकल हिस्ट्री आफ इंडिया, पृ. 407; सरदेसाई, न्यू हिस्ट्री आफ मराठाज, भाग-3, पृ. 435; सक्सेना पोलिटिकल अवेकनिंग, पृ-9-10

58- हेस्टिंग्ज के मिनिट, दि. 1815, पेरा 84, 89, 152, 302 303; बंगाल सीक्रेट कन्सलटेशन, अक्टूबर, 1817 रा. अ.; के मेटकाफ का जीवन, भाग-1, पृ. 459-60, मेहता, लार्ड हैस्टिंग्ज, पृ. 126-127

आर्थिक दरिद्रता का शिकार बना दिया। एक प्रकार से सन्धियों की शर्तें प्रच्छन्न ऐसी जाल थीं जो मराठा या पिंडारियों के शिकंजे से भी भविष्य में विशेष घातक बनी। जहां इन राज्यों की आर्थिक स्थिति शोचनीय थी वहां मराठों को दिये जाने वाली खिराज की रकम को ब्रिटिश को दिये जाने वाली खिराज निर्धारित करना एक अशोभनीय शोषण का कदम था। ये सभी असुविधाएं होते हुए दासता तथा परम्पराओं का निरादर सन्धियों के गर्भ में छिपा पड़ा था जो राज्यों के लिए अपमान सूचक था। सन्धि के पक्ष में केवल मात्र यही कहा जा सकता है कि जहां राजस्थान आंतरिक बखेड़ों का शिकार था और अव्यवस्था से पीड़ित था कम्पनी की नीति ने उसे कुछ राहत दी। फिर भी यह मानना होगा कि यह राहत और शांति आत्माभिमान के बलिदान की कीमत पर खरीदी गई जो आगे जाकर समस्या-मूलक बन गई। यहीं से ब्रिटिश सत्ता से छुटकारा पाने के अंकुर जन-मानस में पैदा हुए और वे आगे चलकर स्वतन्त्रता के लिए सम्मिलित एवं संगठित मोर्चा तैयार करने के साधन बने।

अध्याय-3

सन्धियों के बाद कम्पनी और हस्तक्षेप

(1818-1856 ई०)

प्रस्तावना :

राजस्थानी नरेशों के साथ की गई 1817-1818 ई. की सन्धियों के परिणाम ऊपरीय ढंग से देखने में बड़े लाभप्रद थे। यहां के राजा-महाराजा ब्रिटिश की छत्र-छाया में आकर अपने को सुरक्षित समझने लगे और उनकी प्रजा भी मराठों तथा पिंडारियों के आक्रमणों के भय से अपने आपको मुक्त समझ ठंडी सांस भरने लगी। उजड़े हुए गांव फिर से आबाद होने लगे। व्यापार और वाणिज्य की सुविधा भी सर्वत्र बढ़ती दिखाई देने लगी और खेत पुन: जोते जाने लगे। कर्नल टॉड ने इस प्रकार के पुनर्वास और सुख शांति का अच्छा चित्रण किया है। बाहरी आक्रमण या आतंकवादी हमलों की रोमांचकारी घटनाओं के स्मरणों का त्रास समाप्त प्राय: हो चुका था, और सुख शांति का वातावरण चारों ओर दिखाई दे रहा था।[1]

परन्तु सन्धियों में जिन मुद्दों पर अधिक बल दिया गया था वे थे ब्रिटिश प्रभुसत्ता की स्थापना और नरेशों के अधिकारों की इतिश्री। खिराज की अदायगी की पाबन्दी और सैनिक शक्ति का अंग्रेजों के हाथ हस्तान्तरण करना भी प्रमुख शर्तें थीं। वैसे तो इन राज्यों के आंतरिक विषयों में हस्तक्षेप करने से सन्धियों में नकारात्मक आश्वासन दिया गया था, परन्तु इनके अन्तर्गत यह भी संकेत था कि देशी राज्यों में उठने वाले आपसी झगड़ों का निपटारा अंग्रेजों के अधिकार क्षेत्र का विषय रहेगा तथा समस्यामूलक विषयों का हल वे ही ढूंढ निकालेंगे।

इस प्रकार हस्तक्षेप करने के प्रावधान के गर्भ में इन राज्यों को अंग्रेजों की कठपुतली बनाने के सभी साधन उपस्थित थे। उस समय के अधिकारियों कि रिपोर्टों[2] व पत्रों से स्पष्ट है कि वे जानते थे कि भविष्य में इन राज्यों के सामन्तों व शासकों में विवाद होगा। एक राज्य तथा दूसरे राज्य में सीमाओं तथा भूमि सम्बन्धी विवाद निर्धारित करने होंगे तथा शासन सम्बन्धी समस्याओं एवं अराजकता से उत्पन्न स्थिति को संभालना होगा। वास्तव में अंग्रेजों की ये धारणाएं निर्मूल नहीं थीं। प्रत्येक राज्य में सामन्त-, नरेश विवाद अराजकता, उत्तराधिकार के झगड़े, डकैती आदि झमेले ऐसे उठ खड़े हुए कि, जिनमें, अंग्रेज अधिकारियों का हस्तक्षेप नीतिसंगत बना दिया गया।

1- गवर्नर जनरल का कोर्ट आफ डाइरेक्टरों को पत्र, 1 मार्च, 1820. पेरा., 104, रा. अ. टांड, राजस्थान, जि. -1. पृ. 555-562.

2- फो. सी. 17 अप्रेल, 1818. नं० 74, पृष्ठ 156-158; सीक्रेट कन्सलटेशन, मार्च 6, 1818 नं० 4 रा. अ.

राजस्थान पर नियन्त्रण की समुचित व्यवस्था के लिए राजपूताना एजेन्सी कई रदो-बदल के साथ (1818 से 1832) स्थापित की गई जिसका केन्द्रीय कार्यालय अजमेर रखा गया। यहीं पर खिराज जमा कराने का कार्यालय भी दिल्ली से स्थानान्तरण किया गया। इस प्रकार के प्रबन्ध से राजस्थान के देशी राज्यों पर शासकीय लगाम समुचित रूप से रह सकती थी। इसी अर्से में केन्द्रीय सेना के लिए नीमच, नसीराबाद, दोसा, देवली, खेरवाड़ा, कोटड़ा आदि स्थानों में छावनियां स्थापित की गई। इन छावनियों से मेरों, मीणों और भीलों के प्रदेशों पर नियन्त्रण रह सकता था जो समय समय पर उपद्रव करते थे। साथ ही इन लोगों का सेनाओं में भर्ती भी किया जा जाता था जिससे वे अंग्रेजों के प्रति वफादार हो जाय। साथ ही इन छावनियों का उपयोग राजस्थानी नरेशों पर नजर रखना था। इन गतिविधियों के अतिरिक्त ईसाई पादरियों को ईसाई धर्म के प्रचार करने को भी प्रोत्साहित किया गया था जो सस्ता साहित्य के वितरण एवं शिक्षा प्रसार के साथ पिछड़ी हुई एवं दलित जातियों को नौकरी, रोजगार व अन्य प्रकार के प्रलोभन द्वारा ईसाई धर्म की तरफ आकर्षित करते थे जिससे अंग्रेजों के प्रति सद्भाव का वातावरण यहां पनप सके। अफीम और नमक के व्यापार पर नियन्त्रण करने के प्रयत्न भी अंग्रेजों की कम्पनी प्रभु सत्ता कायम करने की दिशा में एक कारगर प्रभाव था। उपर्युक्त व्यवस्था से राजस्थानी राज्यों में किस प्रकार अंग्रेजों का प्रभाव बढ़ा और आन्तरिक शासन में तटस्थ नीति का पालन नहीं किया गया उसका क्रमशः वर्णन इस प्रकार है।[3]

मेवाड़ और हस्तक्षेप :

मेवाड़ की दशा राजनैतिक और आर्थिक दृष्टि से बड़ी शोचनीय थी। सरदार महाराणा का आदेश नहीं मानते थे। भील उपद्रव करते थे। मेर लोग लूटपाट करते थे। महाराणा की शक्ति नाम मात्र थी। इसलिये यह आवश्यक था कि मेवाड़ राज्य में जागीरदारों के उपद्रव शांत हों और सारी रियासत में व्यवस्था कायम हो। जब संधि के बाद कप्तान टॉड अंग्रेजी सरकार की ओर से ऐजेन्ट बनकर मार्च 8, 1818 में उदयपुर आया तो वहां उसका धूमधाम से स्वागत किया गया। एक दिन महाराणा ने सब सरदारों को बुलाकर बड़ा दरबार किया, जिसमें कप्तान टॉड ने कहा कि जो सरदार आपके विरोध में हों उन्हें बतलायें, अंग्रेजी सरकार उन्हें दण्ड देने के लिए तैयार है। इस पर महाराजा ने अपने बड़प्पन के योग्य यह उत्तर दिया कि अब तक तो मैंने सबका अपराध क्षमा कर दिया है, परन्तु भविष्य में जो सरदार कसूर करेंगे, उसकी सूचना आपको दी जायेगी। ये कथन मात्र था। वास्तव में ये सरदार खालसा भूमि पर अधिकार जमाए हुए थे। समय-समय पर जब दरबार से कोई रुक्का भेजा जाता था तो वे उसकी अवहेलना करते थे। टॉड ने इन सरदारों को बुलाकर एक कौल नामा तैयार किया, जिसका देवगढ़ तथा शक्तावतों ने विरोध किया। जब कौल नामे पर हस्ताक्षर का प्रश्न आया तो कुछ सरदार बीमारी का बहाना बनाकर उपस्थित नहीं हुए। अंत में बड़े वाद-विवाद के बाद बड़े सरदारों ने

3-ऐडम का पत्र ओक्टरलोनी को 27 मार्च, 1818 फो. पो. रा. अ., बेंटिंग मिनिट, 30 मार्च, 1832, लोकेट का पत्र मेकनाग्टन, 1832, सं. 117-34 रा. अ.

तथा द्वितीय श्रेणी के सरदारों ने कौलनामें पर हस्ताक्षर कर दिये। नीमड़ी के ठाकुर एवं शाहपुरा के राजाजी ने इस पर हस्ताक्षर नहीं किये। इस कौलनामें में इस बात पर बल दिया गया था कि जागीरदारों ने जो रियासत के इलाके दबा लिये हैं और वहां से जो वे कर वसूल करते हैं या लूटपाट करते हैं भविष्य में नही करेंगे।[4]

पुनः कर्नल टॉड की सहायता से एक ऐसा कौलनामा महाराणा और जागीरदारों के बीच तैयार किया गया जिसमें 10 शर्तें थीं। इस कौलनामे को जागीरदारों की सभा में प्रस्तुत किया गया और मई 1818 को बड़े-बड़े सरदारों ने इसको स्वीकार किया। इन्होंने यह मान लिया कि महाराणा जी की शक्ति सबसे ऊपर है और जो सरदार उनकी आज्ञा का पालन नहीं करेंगे उनको दण्ड देने का उसको अधिकार है। नीमड़ी के सरदार ने महाराणा की आज्ञा का पालन नहीं किया था इसलिये आदेश दिया गया कि उसकी जागीर खालसे की जाय। इसी प्रकार शाहपुरा का राजा भी टॉड के बुलाने पर नहीं आया था। परन्तु अंग्रेजी सेना की सहायता से महाराणा के आदेशों का पालन करने के लिये वह शांति पूर्वक राजी हो गया।[5]

कप्तान टॉड का आंतरिक शासन प्रबन्ध :[6]

संधि के बाद कप्तान टॉड को उदयपुर का पोलिटिकल ऐजेन्ट नियुक्त किया गया। मेवाड़ की बिगड़ी हुई दशा को सुधारने में महाराणा को असमर्थ देखकर कप्तान टॉड ने राज्य प्रबन्ध अपने हाथ में ले लिया और आश्वासन दिलाया कि मेवाड़ की दशा सुधारते ही राज्य भार फिर महाराणा को सौंप दिया जाएगा। इसके अनुसार ई. सं. 1821 शनैः शनैः शासन प्रबन्ध से अपना हाथ खींचने लगा। किन्तु इसी अरसे में वह बीमार हो जाने से अपने सहायक एजेन्ट कप्तान वाग को अपना कार्यभार सौंपकर जून 1822 में विलायत चला गया। महाराणा ने हाथ से शासन प्रबन्ध हटाने पर पोलिटिकल ऐजेन्ट ने 1000/- रुपये महाराणा को रोज दिलाने की जो जिम्मेवारी अपने ऊपर ली थी, उसे हटा लिया।[7]

4–फो. पो. एडम का पत्र 28 अक्टूबर 1817 का मेटकाफ के नाम, नं. 23 रा.अ. कर्नल टॉड का पत्र एडम को. 22 अप्रेल, 1818, फो. पो., 5 जून, 1818, नं. 67, रा. अ.,
कर्नल टॉड का पत्र ओक्टरलोनी को, 29 जून, 1818, फो. पो. नं. 98, रा.अ., डा. सक्सेना, पोलिटिकल अवकेनिंग, पृ. 18–19

5–टॉड का एडम को पत्र 22 अप्रेल, नं. 67 और ओक्टरलोनी को पत्र, 7 मई, नं. 69 रा.अ. बंगाल सीक्रेट कन्सलटेशन, 5 जून, 1818, नं. 184, 11 अगस्त, 1818 रा.अ., मेहता, लार्ड हेस्टिंग्ज और इंडियन स्टेट्स, पृ. 144–145

6–ओझा, उदयपुर, भाग–2, पृ. 706-709

7–फो.पो., टॉड का पत्र स्विटन को, 11 अप्रेल, 1822 नं. 14–15 रा. अ.; टॉड ट्रेवल्स इन वेस्टर्न इंडिया, पृ. 1

कप्तान कॉब का शासन प्रबन्ध :

कप्तान कॉब के बाद स्पीयर्स और फिर अप्रेल 1823 में कप्तान कॉब मेवाड़ का पोलिटिकल ऐजेन्ट होकर आया, उसे आते ही मालूम हुआ कि राज्य प्रबन्ध महाराणा के हाथ में जाने के बाद एक वर्ष के भीतर ही उसने 83 गांव लोगों को दे दिये, राज्य की आय घट गई, खर्च बढ़ गया और अहलकार लोग अपनी स्वार्थ सिद्धि में लग गये। महाजनों का कर्ज 1823 में दो लाख रुपया हो गया और अंग्रेजी सरकार का खिराज आठ लाख रुपये के करीब चढ़ गया। यह दशा देखकर कॉब ने राज्य का प्रबन्ध फिर ऐजेन्ट की निगरानी में देने का प्रस्ताव किया। उसके अनुसार महाराणा ने प्रबन्ध का सब कार्य ऐजेन्ट को सौंप दिया और अपने दैनिक खर्च के लिए पहले के अनुसार 1000/- रुपये फिर नियत करवा लिये।[8]

सर चार्ल्स मेटकाफ का उदयपुर आना :

सन् 1826 के अन्त में सर चार्ल्स मेटकाफ उदयपुर आया। महाराणा ने उससे यह प्रस्ताव किया कि सालाना खिराज की रकम तय कर दी जाए, राज्य का शासन प्रबन्ध मुझे सौंपा जाए, भोमट प्रदेश मुझे लौटा दिया जाए, दूसरे राज्यों के अधिकार में गये हुए मेवाड़ के परगने और मेरवाड़ा वापस दिलाया जाए और रेजिडेंट के यहां मेरी ओर से एक ऐजेन्ट रहे। महाराणा की इच्छा के अनुसार यह निश्चय हुआ कि सालाना खिराज 300000/-रुपये (उदयपुरी) रखा जाए, चढ़ा हुआ खिराज प्रति वर्ष 50000/-रुपये की किस्त से चुकाया जाए, मेवाड़ के शासन प्रबन्ध में पोलिटिकल ऐजेन्ट का हाथ न रहे और महाराणा की ओर से रजिडेंट के पास वकील रहा करें।[9] तथापि ऐसे प्रबन्ध के उपरान्त समय समय पर पोलिटिकल ऐजेन्टों का आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप का क्रम चलता रहा और महाराणाओं की गरदनों पर ब्रिटिश सत्ता का जुआ जुत गया।[10]

मेरवाड़ा

मेरवाड़ा एक पहाड़ी प्रदेश था, जो उदयपुर, जोधपुर और अजमेर जिले से सम्बन्ध रखता था। इसमें मेर जाति के लोग रहते थे जो जंगली, युद्ध-प्रिय और स्वतंत्रता प्रेमी थे।

8- कॉब का पत्र मेटकाफ को, 15 जनवरी, कोन्स, 16 मार्च 1827, नं. 7, फो. पो. रा.अ.; बुक हिस्ट्री ऑफ मेवाड़, पृ. 29-30

9- फो.पो. स्वीटन का पत्र आक्टरलोनी को, 21 नवम्बर, कन्सल, 21 नवम्बर 1823, रा.अ.; बुक हिस्ट्री आफ मेवाड़ पृ. 32-33

10- इम्पीरियल गजेटियर आफ इन्डिया (प्रो. सी. राजपूताना), पृ. 454; वीर विनोद, भाग-2 प्रकरण 18; ओझा-उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग-2, पृ. 778

दौलतराव सिंधिया ने 25 जून 1818 की संधि के अनुसार अपना अजमेर का इलाका अंग्रेज सरकार को सौंप दिया था। उसी वर्ष कम्पनी ने उस प्रदेश की रक्षा के लिए नसीराबाद की छावनी स्थापित की तथा मेरवाड़ा के उपद्रवी मेरों को दबाने के लिए महाराणा को लिखा। इस पर कप्तान टाड ने अक्टूबर 1818 में महाराणा की सम्मति से मेरवाड़ा में जनरल आक्टरलोनी की तजवीज के अनुसार मेरों की सेना (मेर बटेलियन) संगठित की, जिसका सेनापति कप्तान हाल नियुक्त हुआ। उक्त सेना के खर्च के लिए मेरवाड़े के अपने हिस्से की आय में से उदयपुर ने 12000 रुपये कलदार देना स्वीकार किया और इतना ही जोधपुर ने भी। फिर महाराणा ने उस वर्ष से मेरों के अपने गांव अंग्रेजी सरकार के सुपुर्द कर दिये।[11]

मेरवाड़ा की राजनैतिक महत्ता को ध्यान में रखते हुए आक्टरलोनी ने सम्पूर्ण मेरवाड़ा पर अधिकार करने के विचार से महाराणा भीमसिंह तथा जोधपुर के महाराजा मानसिंह को लिखा कि आप दोनों का मेरवाड़ा का प्रदेश अंग्रेजी सरकार के प्रदेश से मिला हुआ है, यदि एक में कोई उपद्रव हो तो वह तीनों के प्रदेश में फैल जाएगा, इसलिए आप अपने प्रदेश का प्रबन्ध अंग्रेजी सरकार के सुपुर्द करदें। महाराणा ने इस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया, तथापि आक्टरलोनी के महाराणा को अपनी सेना उस प्रदेश से हटाने के आदेश भेजे और मेरवाड़ा का प्रदेश 1847 ई. में सदा के लिए मेवाड़ के हिस्से के मेरवाड़ा के गांव अंग्रेजी अधिकार में ले लिये गये।[12]

भोमट के भीलों का उपद्रव :

इसी प्रकार भोमट के भील मेवाड़, सिरोही तथा आसपास के मालवा के इलाके में लूट-पाट करते थे और उन्हें जवास, पहाड़, जूड़ा, पानरवा, ओगणा आदि के भोमिये तथा गरासिये ठाकुरों का प्रश्रय प्राप्त था। इनको दबाने का टॉड, कॉब तथा स्पीयर्स ने सतत प्रयत्न किया जिसके फलस्वरूप भीलों को "बोलावी" "रखवाली" का अधिकार देकर तथा उन्हें सेना में भर्ती कर भोमट में सुव्यवस्था कायम की गई।[13]

11– विल्डर का पत्र आक्टरलोनी को, 5 फरवरी, कोन्स 14 अप्रेल 1821, नं. 18, फो. पो. रा. अ.; आक्टरलोनी का पत्र स्वीडन का 6 नवम्बर, कोन्स, 24 नवम्बर, 1821 नं. 31, फो. पो. रा. अ; एचीसन ट्रीटीज, जि. 3– पृ. 11–12; डा. वशिष्ठ, राज. ऐजेन्सी, पृ. 16

12– विल्डर का पत्र स्वीटनको. 6 मार्च कोन्स 30 अप्रेल, 1824, न. 19, फो. पो. रा. अ.; स्वीडन का पत्र आक्टरलोनी को, 30 जुलाई, कोन्स, 1824, नं. 4, फो. पो. रा. अ.; एचीसन, ट्रीटीज, जि–3, पृ. 12–14; ब्रुक हिस्ट्री मेवाड़, पृ. 5; डा. वशिष्ठ, राजपूताना ऐजेन्सी, पृ–16–17

13– फो. पो. कॉब का पत्र मेटकाफ को 15 जनवरी, कोन्स, 15 जून 1827, नं. 66–67, रा. अ.; फो. पो. स्पीयर्स का पत्र फालब्रुक को, 29 जून कोन्स 8 अगस्त 1828, नं. 11, रा. अ.; ब्रुक, हिस्ट्री आफ मेवाड़, पृ. 72–73, 74–91

मीणों का उपद्रव और दमन :

सन् 1851 में लुहारी के मीणों ने सरकारी डाक लूट ली और अजमेर के अंग्रेजी इलाकों में डाके डाले। इस पर राजपूताने के एजेन्ट गवर्नर जनरल सर हेनरी लोरेन्स तथा मेवाड़ के पोलेटिकल ऐजेन्ट जार्ज लारेन्स के शिकायत करने पर महाराणा ने उनका दमन करने के लिए जहाजपुर के हाकिम मेहता अजीतसिंह और अमरसिंह शक्तावत को कुछ सेना सहित भेज दिया। अजीतसिंह ने धावा करके छोटी और बड़ी लुहारी गांवों पर अधिकार कर लिया। इस धावे में बहुत से मीणे खेत रहे और जो बच गये वे लुहारी से भाग कर मनोहरगढ़ तथा देवका खेड़ा की पहाड़ी में जा छिपे। उनका पीछा करता हुआ अजीतसिंह वहां पर जा पहुंचा। उसका सामना करने के लिए तीन-चार हजार मीणे आगे बढ़े। लड़ाई छिड़ते ही जयपुर टौंक तथा बूंदी के इलाकों से चार-पांच हजार मीणे उनकी सहायता के लिए जा पहुंचे और सघन झाड़ियों की आड़ में छिप-कर वे मेवाड़ की सेना पर गोलियों तथा तीरों की बौछार करने लगे। इस लड़ाई में मेवाड़ सेना के कई सरदार और 25 या 30 सिपाही घायल हुए। राजपूतों के मारे जाने की खबर पाकर महाराणा ने मेहता शेरसिंह प्रधान की मातहती में कुछ और सेना जहाज-पुर की ओर भेजी। ऐजेन्ट गवर्नर जनरल ने जयपुर, टोंक और बूंदी पर यह दबाव डाला कि तुम्हारे इलाके का ठीक प्रबन्ध न होने के कारण मेवाड़ की फौज का नुकसान हुआ। इस पर उन तीनों रियासतों ने अपने अपने राज्य के मीणों को दंड देने के लिए फौज रवाना की। दिसम्बर 1854 में राजपूताना के ऐजेन्ट गवर्नर जनरल सर हैनरी लारेन्स तथा मेवाड़ एवं हाड़ोती के ऐजेन्ट भी कोटा से सेना साथ लेकर जहाजपुर गये। यह देखकर वहां के मीणों ने अपराधियों को उनके सुपुर्द कर दिया। दुबारा भी जब 1860 में मीणों ने उपद्रव किया तो उसे दबा दिया गया।[14]

जोधपुर और हस्तक्षेप :

ब्रिटिश इंडिया कम्पनी के साथ संधि हुए समय भी नहीं हुआ था कि जोधपुर में उसे हस्तक्षेप करने का अवसर मिल गया। महाराजा मानसिंह और उनके सरदारों में अनबन चल रही थी। पोकरन ठाकुर सालिमसिंह और राज्य का दीवान अखयराज विद्रोही दल का नेतृत्व कर रहे थे और इस प्रयत्न में लगे हुए थे के ईडर से किसी व्यक्ति को लाकर जोधपुर की राज्य गद्दी पर बिठा दिया जाय। महाराजा भी उन विद्रोही सरदारों को दबाने के लिए कम्पनी से ऐसा सहयोग चाहते थे जो उसके आदेशों के अनुसार असन्तुष्ट सरदारों का दमन करे। ब्रिटिश ऐजेन्ट ऑक्टरलोनी हस्तक्षेप नीति का समर्थक था, परन्तु सशस्त्र सेना भेजने के पूर्व वह चाहता था कि राज्य की वास्तविक स्थिति का पता लगाया जाय। इस अभिप्राय से उसने अपने मुंशी बरकतअली को जोधपुर की वास्तविक स्थिति का पता लगाने सितम्बर 1818 को भेजा। उसने सभी दलों से परामर्श करने के पश्चात् अपनी रिपोर्ट पेश की और उसके अनुसार महाराजा को पूरे अधिकार से शासन करने की

14– फो.पो. स्टर्लिंग का पत्र काल ब्रुक को 8 अगस्त, 1828, नं. 14 रा. अ, फो. पो. रिचार्ड्स का पत्र सदरलैण्ड को, 18 अगस्त, 1841 नं. 118, रा. अ.; वीर विनोद, भाग–2, प्रकरण 18 पृष्ठ–

छूट का परवाना भेजा गया। थोड़े समय तो महाराज का व्यवहार सरदारों से ठीक चलता रहा परन्तु फूट के आसार पुन: प्रकट होने लगे। कई सरदारों को कैद कर लिया गया और कईएकों की जागीर जब्त कर ली गई। नीमाज ठाकुर की हत्या करवादी गई और ठाकुर सालिमसिंह जिसे कैद कर लेने की योजना थी अपनी जान बचाकर पोकरण भाग गया। इधर मई 1820 को अखैचन्द आदि अन्य मुखियाओं को, जिन्हें कैद किया गया था, जबरदस्ती विष-पान करवाकर मार डाला गया। जो सेना महाराजा की सहायता के लिये भेजी गई थी वह भी अपने ढंग से दमन करने में पीछे नहीं थी।[15]

महाराणा द्वारा की गई ज्यादतियों से तंग आकर बासनी, आसोप, आउवा, चण्डावल, नीमाज आदि के वकील सितम्बर 1823 में अजमेर जाकर पोलिटिकल ऐजेन्ट मि. विल्डर से मिले और महाराजा के विरुद्ध शिकायतें की। विल्डर ने ठाकुरों को महाराजा से समझौता करने की सलाह दी और महाराजा से आग्रह किया कि जिनकी जागीरें खालसा करली हैं उन्हें लौटा दें। महाराजा ने कुछकी तो जागीरें बहाल कर दी, परन्तु कुछ ठाकुरों को बन्दी बना दिया। विल्डर ने पुन: बीच बचाव कर आपस में समझौता करवा दिया। परन्तु पुन: जब महाराजा अपनी पुरानी नीति पर उतर आया तो कई जागीरदार जोधपुर छोड़ कर अन्यत्र चले गये। बाद में सरकारी हस्तक्षेप से उन्हें पुन: जोधपुर लाया गया। फिर भी समझौता न होने पाया तो स्वयं कर्नल सदरलैण्ड और पोलिटिकल ऐजेन्ट लुडलु ससैन्य जोधपुर आये। महाराणा ने परिस्थितियों को अनुकूल न पाकर सरदारों से मेल कर लिया और अंग्रेजी सेना को जोधपुर का किला 1839 ई. को सुपुर्द कर दिया।[16]

धोकलसिंह और हस्तक्षेप :

जब महाराजा और सरदारों में मन मुटाव चल रहा था तो जोधपुर की गद्दी का दावेदार धोकलसिंह विरोधियों से मिल गया। खेतड़ी तथा पोकरण के ठाकुर तथा अन्य सरदारों ने धोकलसिंह को सहायता देना शुरू किया। उनकी सहायता से उसने डीडवाना पर अधिकार कर लिया। वह धीरे-धीरे आगे बढ़ कर मेड़ता पहुंचा और जोधपुर पर भी कब्जा करने के प्रयत्न में था। इन गतिविधियों से मानसिंह कुछ विचलित हुआ। कम्पनी ने भी मानसिंह को सहायता देने का वचन दिया, यदि वह अपने सरदारों से अच्छे सम्बन्ध स्था-

---

15—फो.पो. 5 सितम्बर 1818, नं. 12-17, 33-36 52-57, रा.अ.; हकीकत बही नं. 7, 10, पृ. 126, 215-217, 221; खरीता बही नं. 12, पृ. 343-344; रेऊ मारवाड़ का इतिहास, भाग-2 पृ. 422-423; विल्डर का पत्र स्वीहन को, 6 मार्च, कोन्स. 13 अप्रेल, 1824, नं. 20, फो.पो.रा.अ.; डा. पदमजा मानसिंह, पृ. 124-149

16—फो.पो.-26 दिसम्बर, नं. 52-57, 1821, नं. 13-14 रा.अ.; केवेन्डिश का पत्र कालब्रुक को 1828 नं. 14 19 फरवरी 1835, नं. 27; हकीकतबही, नं. 36, पृ. 147, खरीता बही नं. 10 पृ. 347; हकीकतबही नं. 12 पृ. 219 खरीता बही नं. 12 पृ. 347, हकीकत बही, नं. 13 पृ. 222, अ.बी.;

पित करले । विवश होकर मानसिंह ने अंग्रेजों की बात मान ली और उन्होंने धोकलसिंह को मारवाड़ से सेना हटाने और वहां से निकल जाने के आदेश दिये । मानसिंह ने भी आसोप, जिमाज और रास ठिकानों से समझौता कर लिया ।[17]

नाथ और हस्तक्षेप :

नाथ लोग महाराजा के कृपा पात्र थे । और बड़े वैभवपूर्ण जीवन को बिताते थे । वे जागीरदारों की जागीरें जब्त करवा अपने अधिकार में कर लेते थे । राज्य के प्रशासन में भी उनका हाथ था तब जागीरदारों ने कर्नल सदरलैण्ड ए.जी जी. से शिकायत की । सदरलैण्ड ने महाराजा को इस विषय में लिखा, परन्तु महाराजा ने उस पर कोई ध्यान नहीं दिया । तब ए.जी.जी. राजपूताना की रियासतों के वकीलों और मारवाड़ के सरदारों को साथ लेकर जोधपुर गया । बातचीत के दौरान महाराजा ने जागीरें वापिस लौटा देने का वचन दिया, परन्तु नाथों के विषय में महाराजा और सदरलैण्ड में मतभेद बना रहा । इस हठधर्मी पर जनवरी 1842 में मिस्टर लूडलों ने नाथों की जागीरें जब्त करलीं, परन्तु फिर भी महाराजा की आज्ञा से उनकी आमदनी गुप्त रूप से नाथों के पास भेज दी जाने लगी । यह बात मिस्टर लूडलों को बहुत बुरी लगी । इसलिये उसने महाराजा पर दबाव डालकर लक्ष्मीनाथ आदि को और उससे मेल रखने वाले राज्य कर्मचारियो को जोधपुर से हटवा कर 40-50 कोस के फासले के भिन्न भिन्न स्थानों में भिजवा दिया । फिर भी नाथ लोग देश में नित्य नये उपद्रव करने लगे । इससे तंग आकर अप्रेल 1843 में लूडलों ने दो उपद्रवी नाथों को पकड़ कर अजमेर भेज दिया । इस समाचार को सुन महाराजा बहुत दुखी हुए । पहले तो उन्होंने मिस्टर लूडलों से मिलकर उन नाथों को छुड़वाने का प्रयत्न किया, परन्तु अन्त में वकील रिधमल के समझाने से यह विचार छोड़ दिया । इस प्रकार के हस्तक्षेप से नाथों की समस्या का समाधान हुआ ।[18]

जयपुर और हस्तक्षेप :

जयपुर में ब्रिटिश हस्तक्षेप का अवसर उत्तराधिकार के प्रश्न को लेकर तथा दीवानों के और सामन्तों के मतभेद को लेकर आया । 21 दिसम्बर 1818 को जयपुर महाराज जगतसिंह की मृत्यु अपने उत्तराधिकारी के अभाव में हुई । अवसर पाकर नाजिर मोहन राय ने राज्य की बागडोर अपने हाथ में ले ली और मोहनसिंह नामक अल्पवयस्क राजकुमार को महाराजा का उत्तराधिकारी घोषित कर दिया । यहां तक कि 7 फरवरी 1819 को उसने ब्रिटिश राज से उसके गद्दी नशीनी की स्वीकृति भी प्राप्त करली । राज्य के ठाकुर बहादुर सिंह के अधिकार के पक्ष में थे । राजमाता भी मोहनराय की

17–फो.पो. कालब्रुक का पत्र, 21 मई, 1828, 13 जून, 1828 नं. 3; केवेन्डिश का पत्र कालब्रुक को, 1828 नं. 19, रा.अ.; डा. पद्मजा, मानसिंह, पृ. 12-149

18– फो.पो. एलविस का पत्र मेगनाघटन को, 29 जनवरी, 1838, नं॰ 111, रा. अ.; सदरलैण्ड का पत्र मेटोक को, जुलाई, 17, 1839 नं. 72, रा. अ.; हकीकत बही नं. 13, पृ. 218, खरीता बही, नं 12, पृ. 263 अ. बी, डा. पद्मजा, मानसिंह पृ. 150–182

बढ़ती हुई शक्ति के विरोध में थी। परन्तु भट्टियानी रानी गर्भवती थी और उसने 25 अप्रेल 1819 को पुत्र को जन्म दिया जिससे स्थिति में परिवर्तन आया। सभी वर्गों ने नवजात राजकुमार जयसिंह तृतीय को महाराजा स्वीकार कर मोहनसिंह को अपदस्थ कर दिया। अंग्रेजों ने भी जयसिंह को महाराजा और भट्टियानी रानी को संरक्षक स्वीकार कर लिया। रानी ने मोहनराम नाजिर को अपदस्थ कर उसके स्थान पर जोठाराम को मुख्य कारकुनिन्द बनाया।[19]

राजमाता की इस कार्यवाही ने ब्रिटिश हस्तक्षेप को आमन्त्रित किया, क्योंकि ऑक्टरलोनी मोहनराम का समर्थक था न कि जोठाराम का। ऑक्टरलोनी ने अपनी बात की पुष्टि में एक सशस्त्र सेना जयपुर की ओर भेजी और एक योरोपीय अधिकारी केप्टेन स्टूवर्ट को राजस्व विभाग पर नियुक्त कर दिया। इसी प्रकार जोठाराम को पद मुक्त कर उसके स्थान पर बेरीसाल को नियुक्त किया। परन्तु रानी एवं सामन्तों ने इस कार्यवाही का विरोध किया तो ब्रिटेन की सरकार ने तीन सामन्तों को राजस्व का काम सौंप दिया और अंग्रेजी अधिकारियों को वापस बुला लिया।[20]

परन्तु जब 1983 में भट्टियानी रानी और 1835 में जयसिंह तृतीय की मृत्यु हो गई तो जोठाराम राज्य का पुनः सर्वेसर्वा बन गया। सामन्त भी अपनी-अपनी सेना के साथ उसका विरोध करने जयपुर में आ डटे। इस स्थिति में पोलिटिकल ऐजेन्ट मेजर अलविस जयपुर आया ताकि वह राज्य का सभी कारोबार अपने हाथ में ले ले। परन्तु जोठाराम के षडयन्त्र से राज प्रसाद में बलवा हो गया जिसके फलस्वरूप एजेन्ट को जख्मी किया गया और उसके सहायक ब्लैक की हत्या कर दी गई। स्थिति को बिगड़ते देख सरकार ने पांच सरदारों की समिति, जो पोलिटिकल एजेन्ट के निर्देशन में काम करेगी, नियुक्त की। इस प्रकार सम्पूर्ण जयपुर अंग्रेजी प्रभाव के अन्तर्गत आ गया और दोषियों को दण्ड दिया गया। भविष्य में काउन्सिल और ए.जी.जी. शासकीय कार्य को संभालते थे और अंग्रेजों आधिपत्य की धाक सर्वत्र व्याप्त थी।[21]

अलवर और हस्तक्षेप:-

अलवर में हस्तक्षेप की स्थिति वहां के उत्तराधिकार मसले को लेकर बनी। दो उत्तराधिकारियों को लेकर राज्य में दो दल बन गये और दोनों दल ब्रिटिश सरकार की मध्यस्था के शिकार बने। घटनाचक्र इस प्रकार था। राव राजा बख्तावरसिंह के कोई

19- फो पो. मेटकाफ का पत्र ऑक्टरलोनी को, अक्टूबर, 20, 1920, नं. 18 रा.अ; भिठ्यानी का पत्र ऑक्टरलोनी को, 2 मई, 1819, नं. 20, रा. अ; ऑक्टरलोनी का पत्र मेटकाफ को, 28 अक्टूबर नं. 20, रा. अ.

20- फो.पो स्टूअर्ट का पत्र स्विटन, 21 जून, 1921, नं. 15, रा.अ.; मेटकाफ का पत्र लोको, 17 फरवरी, 1829 नं. 20 रा.अ; आक्टरलोनी का पत्र स्वीटन, 15 अप्रेल, 1825, नं. 27., फो.पो. रा.अ.

21. फो. पो. अलविस का पत्र/कनाघटन को, 1835 नं. 54, रा. अ; मेकनाघटन का पत्र अलविस को, 1835 नं. 21 रा. अ.; ऐचीसन, भाग-3, पृ. 91 डा. बी.के. वशिष्ठ, राजपूताना ऐजेन्सी, पृ. 148, 166

पुत्र नहीं था। उसकी एक मुसलमान कृपा पात्र स्त्री से बलवन्तसिंह नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था। बख्तावरसिंह थाना ठिकाने के बनेसिंह को गोद लेने का विचार कर ही रहा था कि 11 फरवरी 1815 को उसका देहान्त हो गया। तब अलवर में दो दल बन गये। बलवंतसिंह के पक्ष का नेतृत्व अहमद बख्शखां और सेना के रेजिमेन्ट कर रहे थे। बनेसिंह का दल भी अच्छा शक्तिशाली था जिसका नेता अख्यसिंह और रामू दरोगा थे। दोनों दलों के विवाद को मिटाने के लिए अन्त में यह निश्चय हुआ कि बन्नेसिंह और बलवंतसिंह दोनों ही बराबरी से गद्दी पर बैठे। उस समय दोनों ही नाबालिग थे। 12 फरवरी सन् 1815 को दोनों को ही गद्दी पर बैठाया गया। ब्रिटिश सरकार की ओर से यह आदेश हुआ कि प्रशासन का समस्त कार्य बनेसिंह के नाम से होगा परन्तु कार्यकर्त्ता बलवंतसिंह होगा। यह व्यवस्था कुछ वर्ष तक चली परन्तु दोनों भाइयों के समर्थकों में परस्पर बड़ा कलह चलता रहा जिससे राज्य में अव्यवस्था बनी रही।[22]

इसके बाद अहमदबख्शखां को मार डालने का प्रयास किया गया, परन्तु वह घायल ही हुआ मरा नहीं। आक्रमणकारी ने गिरफ्तारी के पश्चात् सब भेद खोल दिया। तब बलवन्तसिंह ने तीन षड्यन्त्रकारियों को मरवा डाला परन्तु बनेसिंह का समर्थक रामू दरोगा जो बड़ा कुशल राजनीतिज्ञ भी था दिल्ली पहुंचा और रेजिडेंट ऑक्टरलोनी से आदेश ले आया कि बलवन्तसिंह और उसके समर्थकों को गिरफ्तार कर लिया जाय। बलवन्तसिंह जनाने महलों में घुस गया परन्तु कैद कर लिया गया। अहमदबख्शखां ने इन घटना की जांच करानी चाही जिस पर ऑक्टरलोनी ने जांच के आदेश दिये। इसके फलस्वरूप बलवन्तसिंह को मुक्त किया गया और दोनों दावेदारों के बीच समझौता कराया गया, जिसके अनुसार 1826 में निम्नलिखित शर्तें तय हुई—

1– दोनों दावेदारों के बीच राजकोष का समुचित वितरण हो।

2– बलवन्तसिंह को तिजारा, तपूकड़ा, मुंडावर आदि परगने दिये जायें, जिन पर उसके उत्तराधिकारी भी अधिकार रख सकेंगे। परन्तु उत्तराधिकारी के अभाव में सम्मिलित कर दिये जायेंगे।

3– अहमद बख्शखां की हत्या के प्रयास में बनेसिंह का होना संदेहात्मक ही समझा जायगा, जिसको घोषित करना वैध न होगा।

4– इन शर्तों का पालन ब्रिटिश सरकार करायेगी और दोनों भागों की रक्षा का भार ब्रिटिश सरकार पर होगा।[23]

बलवन्तसिंह ने तिजारा को अपनी राजधानी बनाया। उसके एक पुत्र हुआ परन्तु वह एक वर्ष का होकर मर गया। 1845 में स्वयं बलवन्तसिंह की मृत्यु हो गई। अब संपूर्ण

22– ऑक्टरलोनी का पत्र स्वीटन को 23 जुलाई, 1924, नं० रा. अ.; एचीसन, जिल्द 4, पृ. 144;
राजपूताना गजेटियर, भाग–3, पृ. 185-186

23. ऑक्टरलोनी का पत्र स्वीटन को, 23 जुलाई, 1824, नं. 10, रा. अ., एचीसन जिल्द 4, पृ. 145,
राजपूताना गजेटियर, भाग–3, पृ. 186,
आक्टरलोनी का पत्र ठाकुर अख्यसिंह और बालमुकन्द को, 5 अप्रेल, 1825, नं. 4, रा. अ.
मेटकाफ का पत्र स्वीटन को, 14 अप्रेल, 1926, नं. 20, रा. अ.

अलवर पर बनेसिंह का अधिकार हो गया। उसकी सहायता के लिए अमूजान दीवान की नियुक्ति की गई जो 1851 तक चलती रही।

बनेसिंह को शासन के अधिकार देते समय अंग्रेज सरकार ने उसको हिदायत दी थी कि अहमदबख्श खां को मारने का प्रयत्न करने वालों को राज्य की नौकरी में नहीं रखा जाए। बनेसिंह ने यह बात नहीं मानी तब गवर्नर जनरल ने अलवर के वकील को अपने दरबार में आना बंद कर दिया और रेजीडेन्ट ने भी महाराजा से मिलने से मना कर दिया। इसी बीच बनेसिंह ने जयपुर के अधीन होना चाहा। जब ये बात अंग्रेजों को मालूम हुई तो बनेसिंह के विरुद्ध सैनिक कार्यवाही की धमकी दी गई जिससे बनेसिंह चुप हो गया। तदनन्तर बनेसिंह 11 जुलाई 1857 को पक्षाघात के कारण संसार से चल बसा और उसका पुत्र शिवदानसिंह 1857 को अलवर की राजगद्दी पर बैठा।[24]

कोटा और हस्तक्षेप

तीन महीने बाद जालिमसिंह झाला ने सरकार से गुप्त वार्ता कर 1817 की सन्धि में एक गुप्त शर्त बढवाली कि महाराव और उसके वंशज कोटा के नाम मात्र के राजा रहेंगे और जालिमसिंह और उसके वंशज के हाथ में कोटा का शासन रहेगा। इस गुप्त शर्त के परिणामस्वरूप कोटा राज्य के दो टुकडे कर दिये गये। बडा टुकड़ा महाराव के वंशजों के पास रहा और छोटा टुकड़ा झाला झालिमसिंह के पौत्र को दे दिया गया। इसी स्थिति के कारण कोटा में झगड़ा और रक्तपात हुआ, राज्य के प्रशासन में गडबड़ी हुई और सारी शासन व्यवस्था उथल पुथल हो गयी। जब 21 नवम्बर 1819 ई. को कोटा महाराव उम्मेदसिंह की मत्यु हुई तो उसका पुत्र किशोरसिंह कोटा का स्वामी बना। इधर जालिम सिंह और उसका पुत्र तो गुप्त सन्धि को लेकर महाराव से मनमुटाव रखने लगे। दोनों अपने अपने पक्ष को प्रबल करने के लिए अंग्रेजों से सैनिक सहायता मांगने लगे। इस परिस्थिति ने अंग्रेजों को हस्तक्षेप करने का अच्छा अवसर प्रदान किया।[25]

जालिमसिंह तथा उसके पुत्र माधोसिंह की कठोर शासन नीति के कारण उसके विरोधियों की संख्या और बढ गयी थी। जागीरदार बोहरे, कृषक, मजदूर सब जालिमसिंह के विरोधी थे। प्रजा करों के भार से सिसक रही थी। जागीरदार अपनी जागीरें छिन जाने की आशंका किया करते थे। जब कर्नल टॉड को इस स्थिति का पता लगा तो वह तत्काल कोटा के लिये रवाना हो गया। कोटा जाकर उसने देखा कि महाराव किशोरसिंह दिसम्बर 1817 की संधि का पालन करवाने पर तुला हुआ है और जालिमसिंह का पुत्र 1818 के मार्च की गुप्त सन्धि का पालन करवाने पर।[26]

किशोरसिंह ने अन्त में निश्चित कर लिया कि जालिमसिंह से शासन की बागडोर छीन कर अपने हाथ में ले ली जाय। अतएव किशोरसिंह ने पोलिटिकल ऐजेन्ट के माध्यम से गवर्नर जनरल को खरीता लिखा कि दिसम्बर 1817 को सन्धि पर स्वर्गीय महाराव तथा गवर्नर जनरल दोनों के हस्ताक्षर हैं। इस सन्धि की शर्तों के अनुसार स्वर्गीय महाराव के उत्तरा-

24. राजपूताना गजेटियर, भाग-3. पृ. 186-187,
राजस्थान डिस्ट्रिक्ट गजेटियर्स, अलवर, पृ. 66-67

25. वंशभास्कर, भाग-4, पृ. 4021

26-टॉड, राजस्थान, भाग-2, पृ. 611

धिकारी कोटा राज्य के स्वतंत्र शासक रहने चाहिये । मार्च 1818 में जालिमसिंह और कम्पनी में जो सन्धि हुई है, उसका स्वर्गीय नरेश को अपने अन्त समय तक भी पता नहीं था । अतः यह गुप्त सन्धि उनके उत्तराधिकारियों पर लागू नहीं हो सकती ।[27]

कम्पनी के सामने यह प्रश्न था कि गुप्त संधि के अनुसार जालिमसिंह को सहायता दी जावे या मूल सन्धि के अनुसार किशोरसिंह का पक्ष लिया जावे । अन्त में यह निश्चय हुआ कि जालिमसिंह का पक्ष ग्रहण किया जावे क्योंकि उसने पिण्डारियों को पकड़वाने में कम्पनी की बड़ी सहायता की थी । अतः गवर्नर जनरल ने उत्तर में लिखा कि–महाराव नाम मात्र का शासक है । जालिमसिंह के साथ जो कंपनी की सन्धि हुई है उसके खिलाफ महाराव की दलीलें नहीं सुनी जा सकती । कोटा राज्य का वास्तविक शासक जालिमसिंह है न कि महाराव । महाराव की स्थिति सतारा के राजा या मुगल सम्राट से अधिक अच्छी नहीं है ।[28]

जालिमसिंह और महाराव किशोरसिंह का युद्ध :

आखिरकार महाराव ने यह निश्चय किया कि जालिमसिंह से युद्ध किया जावे । इसमें ईस्ट इंडिया कम्पनी ने जालिमसिंह की सहायता की । मांगरोल के पास जालिमसिंह और महाराव किशोरसिंह में युद्ध हुआ । (1 अक्टूबर 1921) जिसमें दो अंग्रेज-लेफ्टिनेन्ट क्लार्क और लेफ्टिनेन्ट रीड मारे गये . ले. कर्नल रोक्स मरता मरता बचा । राजकुमार पृथ्वीसिंह आहत होकर जमीन पर गिर गया । उसके एक घुड़सवार डोली में रखकर जालिम सिंह के डेरे में लाया, जहां दूसरे दिन उसकी मृत्यु हो गई । इसके उपरान्त 1824 में जालिम सिंह की और चार वर्ष बाद 1828 में किशोरसिंह की मृत्यु हो गई । जालिमसिंह का उत्तराधिकारी माधोसिंह और किशोरसिंह का रामसिंह हुआ ।[29]

महाराव रामसिंह और झाला मदनसिंह में कलह :

सन् 1834 में माधवसिंह का भी देहान्त हो गया । उसके बाद उसका पुत्र मदनसिंह फौजदार का काम करने लगा और उसके बाद उसमें और महाराव में कलह होने लगा । उसने स्वयं सब राजसी चिन्ह धारण कर लिये । उसकी तोपों से सलामी ली जाने लगी, उसका जन्म दिन गढ़ में समारोह के साथ मनाया जाने लगा । त्यौहारों पर वह सवारी पर निकलने लगा तथा आज्ञा पत्रों पर उसका नाम नरेश की भांति लिखा जाने लगा ।[30]

27–एचिसन, भाग–3, पृ. 361
फो. पो. किशोरसिंह का पत्र आक्टरलोनी को, 1821, नं. 15 रा.अ.

28–मेहता, लार्ड हेस्टिग्ज पृ. 154

29. फो.पो टाड का पत्र स्विटन को, 1821, नं. 4, रा.अ., एचीसन, भाग–3, पृ. 318,
डा. वशिष्ठ, राजपूताना ऐजेन्सी, पृ. 11

30. फो.पो रोस का पत्र अलविस को, 1835, नं. 8, रा.अ.,

रामसिंह का असंतोष :

महाराव रामसिंह कम्पनी सरकार को बार बार लिखने लगा कि मदनसिंह के व्यवहार के कारण उसकी स्थिति शोचनीय हो गयी है। मदनसिंह भी शिकायत करने लगा कि महाराव रामसिंह शासन की बागडोर अपने हाथ में लेकर उसको उन अधिकारों से वंचित करना चाहते हैं जो संधि के अनुसार उसे प्राप्त थे। इन परिस्थितियों को देखकर मिस्टर लूडलो ने जो कोटा में पोलिटिकल ऐजेन्ट था, गवर्नर जनरल को इस आशय का पत्र लिखा कि "महाराव रामसिंह और मदनसिंह लम्बे अर्से तक साथ साथ नहीं निभ सकते। जालिम सिंह की सेवाओं के कारण जितना लिहाज उसके वंशजों का किया जाना चाहिए था उतना किया जा चुका है। अब समय आ गया है कि कोटा नरेश को अपने परम्परागत अधिकार वापस दे दिये जावें। गवर्नर जनरल और उसकी काउन्सिल ने यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया और आदेश दिया कि जालिमसिंह के समय मे जितने परगने कोटा राज्य में मिलाये गये थे वे सब अलग करके जालिमसिंह के वंशजों के लिए एक पृथक राज्य स्थापित कर दिया जावे। अतएव गवर्नर जनरल का इस विषय का खरीता महाराव रामसिंह के नाम भेजा गया। रामसिंह पर एक ओर तो कम्पनी का दबाव था और दूसरी ओर मदनसिंह के साथ रातदिन कलह था। इसलिये महाराव ने सत्रह परगने देकर मदनसिंह से पिण्ड छुड़ाना अच्छा समझा और इस आशय का इकरारनामा 8 अप्रेल 1838 को किया गया। इसके अतिरिक्त कोटा में एक सेना का गठन किया गया जो अंग्रेजी अधिकार में रहेगी और उसका व्यय कोटा राज्य वहन करेगा। रावराजा का भाग झालावाड़ के नाम से जाना गया। [31]

बीकानेर में हस्तक्षेप

1818 से पहले बीकानेर का महाराजा सूरतसिंह अपने सरदारों के विद्रोह से बड़ा परेशान था। उसके राज्य में अराजकता की स्थिति पैदा हो गयी थी। उन दिनों राजस्थान के अन्य राज्यों की भांति ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कम्पनी से उसकी संधि हो गई। इस संधि में यह विशेष बात थी कि बीकानेर के जागीरदारों के उत्पातों को दबाने के लिये ब्रिटिश सरकार ने सैनिक सहायता देने का वचन दिया था। इस सहायता के लिये नियमानुसार खर्च राज्य को देना था। [32]

सन् 1832 में जनवरी मास में लॉर्ड विलियम बैंटिक ने अजमेर में एक दरबार किया जिसमें राजस्थान के राजाओं को बुलाया। इस दरबार में बीकानेर के महाराजा को नहीं बुलाया गया था क्योंकि बीकानेर बहुत दूर था। परन्तु बीकानेर का वकील वहां

31. फो.पो. आकलेण्ड का पत्र राजाराना को, 1837, नं. 29 रा. अ.,
फो.पो. आलविस का पत्र लूडलो को, 1837, पं. 2, रा.अ.,
फो.पो. खरीता, 1838, नं. 70, रा. अ.,
एचीसन, पृ. 367, डॉ. वशिष्ठ, राजपूताना ऐजेन्सी, ए. 82-86

32. ब्रुक, भाग-2, पृ. 1080-1088 फो.पो. 1 मई, 1818 नं. 16 रा. अ.
एचिसन, भाग-3 पृ. 338

उपस्थित हुआ। इस दरबार में लगभग सभी राजाओं ने गवर्नर जनरल से शिकायत की कि एक राज्य दूसरे राज्य पर चढ़ाई करता है और डाकू लोग शांति भंग करते हैं। परन्तु गवर्नर जनरल ने आन्तरिक उत्पातों के दमन के लिये कम्पनी सरकार को सैनिक सहायता देना स्वीकार नहीं किया। 33

सन्धि के अनुसार बीकानेर महाराजा ने अपने विरुद्ध सरदारों को दबाने के लिए सैनिक सहायता मांगी। ईस्ट इंडिया कम्पनी को बीकानेर में प्रवेश करने में रुचि थी, क्योंकि भागलपुर का व्यापारिक मार्ग इस राज्य में होकर सीधा जाता था। अतः एक घुड़सवार सेना को बीकानेर की ओर भेजना जिसने सीमावर्ती भागों पर, जिनमें नीमा, नाहान, सातुन, बैरोड़, फतेबाद सिरासा आदि पर अपना अधिकार स्थापित कर दिया। कुछ अन्य भाग जैसे ददरेवा, सिदनोह, सिरसीला, चूरू, झरिया, सुलुकना और गंदोली ब्रिगेडियर आरनोल्ड के नेतृत्व वाली सेना के नियन्त्रण में आ गये। इस सैनिक कार्यवाही से अनेक जागीरदारों ने महराजा से क्षमायाचना करली। फिर भी सरदारों और महाराजा की कटुता समाप्त न हुई। 34

जैसलमेर और हस्तक्षेप :

महाराव मूलराज महाराव अखेसिंह का ज्येष्ठ पुत्र था। इसके राज्य में बड़ी अशांति रही, कारण यह था कि जैसलमेर के सरदार परस्पर लड़ाई झगड़े किया करते थे। मूलराज का दीवान भी जो चाहे करता था। नरेश दीवान के हाथ में कठपुतली था। उसने अंग्रेज सरकार के साथ दिसम्बर 1818 में संधि कर ली थी। दीवान स्वरूपसिंह को सरदारसिंह नामक एक भाटी राजपूत ने युवराज राजसिंह के विरुद्ध भड़काया। राजसिंह ने स्वरूपसिंह को महारावल की उपस्थिति में भरे दरबार में तलवार से मार डाला। महारावल महल में चला गया। राजसिंह गद्दी पर तो नहीं बैठा परन्तु वह राजकाज करने लगा। महारावल मूलराज महल में ढाई मास तक नजरबन्द रहा। फिर जागीरदार जोरावरसिंह ने भाटी सेना एकत्र करके महारावल को छुड़ाया। स्वतंत्र होते ही मूलराज ने राजसिंह को देश से निकाला दे दिया और स्वरूपसिंह दीवान के पुत्र को जिसका नाम सालमसिंह मेहता था और जिसकी आयु केवल 11 वर्ष की थी दीवान बना दिया। फिर मूलराज ने युवराज को देवा के किले में बन्द कर दिया। 35

33-फो. पो. खरीता गवर्नर जनरल का बीकानेर को, 2 अप्रेल 1832, नं. 2, रा. अ.

फो. पो. 9 जुलाई, 1932, नं. 6 रा. अ.

34. फो. पो. लूडलो का पत्र सदरलैण्ड को, 1841, नं. 35, रा. अ., डा. वशिष्ठ, राजपूताना एजेन्सी, पृ. 225-227; बनर्जी, राजपूत स्टेट्स एण्ड द कम्पनी पृ. 403-404

35. एचिसन, भाग-3, पृ. 204-205

सालमसिंह ने बड़ा होने पर अपने पिता की हत्या का बदला राजसिंह से लिया। सालमसिंह के कृत्यों से राजसिंह और उसकी स्त्री जल कर मर गये। परन्तु उसके राजकुमार बच गये। फिर सालिमसिंह ने उनको भी मरवा डाला। इसके पश्चात् रायसिंह के कई रिश्तेदारों को भी उसने समाप्त कर दिया। सालमसिंह ने राज्य कुटुम्ब का नाश करके स्वच्छन्दता पूर्वक शासन किया। महारावल मूलराज कुछ नहीं कह सकता था। सन् 1818 में मूलराज ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी से सन्धि की उस समय सालमसिंह ने चाहा कि उसके वंशज पीढ़ी दर पीढ़ी जैसलमेर के दीवान बनें। परन्तु ये शर्तें सन्धि में समाविष्ट नहीं की गयी। महारावल मूलराज का 1819 में देहान्त हो गया तब उसका पोता गजसिंह उसका उत्तराधिकारी बना। गद्दी पर बैठते समय गजसिंह बालक था इसलिए सारा राजकाल सालमसिंह के हाथ में था। गजसिंह दीवान के कहने में रहता था। कर्नल टॉड ने लिखा है कि "यदि महारावल को घोड़े और रुपये की आवश्यकता होती थी तो दीवान सालमसिंह के आगे हाथ पसारता था।" दीवान ने जैसलमेर राज्य को खूब लूटा। लाखों का माल अपने कब्जे में कर लिया। जब महारावल गजसिंह अपने दीवान से बहुत परेशान हो गया तब उसने 30 अक्टूबर, 1823 को आनसिंह भाटी के द्वारा उसको घायल करवा दिया। 6 मास तक वह बीमार रह कर मर गया। मेजर अर्सकिन ने लिखा है कि सालमसिंह की स्त्री ने उसे विष देकर मरवा दिया था। [36]

सालमसिंह की मृत्यु के बाद उसके समर्थकों ने उसके पुत्र बिशनसिंह को दीवान बनाना चाहा। परन्तु ब्रिटिश सरकार ने घोषणा कर दी कि दीवान की नियुक्ति महारावल के अधिकार में है। तब सरदार और अन्य लोग चुप हो गये। [37]

1828 में जैसलमेर के कुछ विद्रोही भाटी जागीरदारों ने बीकानेर राज्य में लूटमार करना शुरू किया और वहां के 200 ऊंट घेर लाये तब बीकानेर के महाराजा-रतनसिंह ने जैसलमेर पर सेना भेजी। गजसिंह से सुलह करना चाहा परन्तु बीकानेर वाले नहीं माने और लूट खसोट करते हुए जैसलमेर के 10 मील के अन्तर पर पहुंचे। फिर आधी रात को जैसलमेर की सेना ने बीकानेर की सेना पर आक्रमण किया और उसको छिन्न भिन्न कर दिया। तब अंग्रेज सरकार ने सर जार्ज क्लार्क को भेजकर दोनों राज्यों में समझौता करवा दिया। [38]

जब अंग्रेज सरकार की प्रथम अफगान युद्ध (1838) और सिन्ध के अमीरों से (1843) लड़ाई हुई तो गजसिंह ने अंग्रेजों की सहायता की। इसलिए सरकार ने सिन्ध के अमीर से शाहगढ़ घड़सिया और घाटरू के किले महारावल को वापिस दिलवा दिये।

---

36. सीक्रेट, कन्सलटेशन, अप्रेल 17, 1816, नं. 77, रा.अ.; मेजर अर्सकिन-जैसलमेर स्टेट गजेटियर, भाग, ए। पृ. 16; टॉड राजस्थान, भाग-2, पृ. 1236; बनर्जी, राजपूत स्टेट्स एण्ड ईस्ट इण्डिया कम्पनी, पृ. 409-410
37. एचिसन, भाग-3, पृ. 150; बनर्जी, राजपूताना स्टेट्स एण्ड इण्डिया कम्पनी, पृ. 409-410
38. गहलोत, राजपूताने का इतिहास, पृ. 668

इसके बाद गजसिंह का 29 जून 1846 को देहान्त हो गया। तब उसकी महारानी ने महारावल के छोटे भाई ठाकुर केसरीसिंह के पुत्र रणजीतसिंह को गोद लिया। रणजीतसिंह का भी 16 जून 1864 को देहान्त हो गया। इस प्रकार जैसलमेर अंग्रजी सत्ता का शिकार बन गया।

सिरोही और ब्रिटिश हस्तक्षेप :

सिरोही सबसे अन्तिम राज्य था जिसने अंग्रेजों से सन्धि की थी। वहां की आन्तरिक स्थिति बड़ी शोचनीय हो चली थी राज्य का खजाना खाली था और भील और मीणों ने लूटपाट से राज्य में आतंक का वातावरण बना रखा था। सरदारों में भी असन्तोष व्याप्त था। इस स्थिति का उत्तरदायित्व राव उदयभान का था जो विलासी और निकम्मा शासक था। सभी सरदारों ने मिलकर उसे पदच्युत कर कैद कर लिया और उसके स्थान पर उसके छोटे भाई शिवसिंह को संरक्षक बनाया जो शासन का सभी काम संभालता था। जोधपुर का महाराणा मानसिंह ने, जो कि सिरोही राज्य को अपने अधीन मानता था उदयभान को कैद से मुक्त कराने का प्रयत्न किया, परन्तु इसमें उसको सफलता नहीं मिली राज्य को बाहरी आक्रमण और आन्तरिक निर्बलता से छुटकारा दिलाने के लिए शिवसिंह ने 11 सितम्बर, 1823 को अंग्रेजी से सन्धि करली। इसके अनुसार सिरोही राज्य ब्रिटिश संरक्षण में आ गया और इसे यह भी अधिकार प्राप्त हो गया कि ब्रिटिश सरकार आन्तरिक शासन में हस्तक्षेप कर सकती है और कर की दरों को निर्धारित कर सकती है। सरदारों को दबाने तथा शासन में परामर्श देना, तीन वर्ष के बाद खिराज जमा करना एवं सैनिक सहयोग देना संधि की शर्तों के अन्तर्गत थे। नई सेना तैयार करने के लिए 50 हजार रुपयों का कर्ज भी राज्य को सरकार द्वारा दिया गया।[39]

जब राज्य विद्रोही सरदारों को दबाने में असमर्थ था तो ब्रिटिश सरकार ने विद्रोहियों भीलों, मीणों आदि आतंकवादियों को कुचलने का बीड़ा उठाया। इसी प्रकार सिरोही के 312 गांव जो पालनपुर ने दबा लिये थे उन्हे पुनः सिरोही को लौटाने की मध्यस्थता अंग्रेजों ने की।[40]

नीमाज के ठाकुर का विद्रोह :

ठाकुरों के विद्रोह में नीमाज के ठाकुर का विद्रोह प्रमुख था। नीमाज का ठाकुर रायसिंह अपने को स्वतंत्र मानता था और सिरोही नरेश के आदेशों की उपेक्षा करता था। उसके दमन के लिए अंग्रेजी सेना भेजी गई। इस संयुक्त सेना ने नीमाज पहुँच कर लड़ाई की जिसमें कितने ही आदमी मारे गये। परन्तु नीमाज पर सेना का अधिकार हो गया। ठाकुर रायसिंह अपने पुत्र सहित पहाड़ों में भाग गया। फिर समझाने बुझाने पर उसने राज्य की अधीनता स्वीकार कर ली और सात शर्तों का इकरारनामा लिख दिया। उसके

39–फो.पो. स्पीयर्स का पत्र ओक्टरलोनी को, 1823, नं. 2–3, रा.अ.; स्विटन का पत्र ओक्टरलोनी को, 1824 नं. 40 रा.अ.; एचिसन भाग–3, 152,153,210, 212, 315, 316, 325; डा. वशिष्ठ, राजपूताना ऐजेन्सी, पृ. 17–18.

40–ओझा, सिरोही राज्य का इतिहास, पृ. 297–298.

अनुसार वह रुपये में 6 आने जमीन की आमद और चुंगी में से सिरोही नरेश को देने के लिये भी तैयार हो गया। सिरोही की सेना के साथ नौकरी करने के लिए भी तैयार हो गया। उसने वचन दिया कि किसी दूसरे राज्य से वह सम्बन्ध नहीं रखेगा और न नया सम्बन्ध करेगा। उसने यह भी स्वीकार कर लिया कि भील, कोली और मीणों का दमन करने के लिए वह पूरे उपाय करेगा और उसके इलाके में जो चोरी होगी उसका वह एवजाना देगा।[41]

अंग्रेज सरकार की सहायता से सिरोही नरेश ने बाखर परगने के गरासियों को बुलाया ये लोग चोरी और डाकों के द्वारा अपना निर्वाह करते थे। इनको खेती के कार्य पर लगाया और इन्होंने राज्य की अधीनता स्वीकार की। इसी प्रकार राज्य के सब सरदारों को भी बुलाया गया। उनसे इकरार लिखाया गया कि वे राज्य के आदेश का पालन करेंगे, खिराज देते रहेंगे और राज्य की नौकरी करेंगे तथा चोरों और लुटेरों का पक्ष न लेंगे।[42]

उदयपुर के महाराणा जवानसिंह ने आबू की यात्रा करना चाहा। महाराव सिरोही आबू पर किसी नरेश को नहीं जाने देते थे। उदयपुर से पोलिटिकल ऐजेन्ट कर्नल स्पीयर्स ने लिखा पढ़ी करके महाराज शिवसिंह से महाराणा को आबू पर जाने की अनुमति दिलवाई। जब महाराणा आबू पहुंचे तो महाराव शिवसिंह ने उनका बड़ा सम्मान किया। इसके बाद भारतवर्ष के राजाओं को आबू पर जाने की रोक मिट गई। इस रोक को हटवाने का अभिप्राय यह भी था कि आबू में राजा, महाराजा व सामंत आ सकें और वहां के अंग्रेजी अधिकारी एक दूसरे की शिकायत सुन उनमें फूट पड़वा सकें।[43]

एरनपुरा में छावनी :

अंग्रेज सरकार ने पहाड़ी इलाके व भीलों पर नियन्त्रण के लिए यह मुनासब समझा कि एरनपुरा में छावनी स्थापित की जाए। महाराव शिवसिंह ने इसके लिए सहर्ष जमीन दे दी। छावनी स्थापित होने पर मेजर डाउनिंग वहां का कमांडिंग अफसर नियुक्त हुआ। वही सिरोही का पोलिटिकल ऐजेन्ट भी बना दिया गया।[44]

सिरोही राज्य के 8 गांवों की छूट :

सन् 1843 में मारवाड़ के हाकिम ने सेना भेजकर सिरोही राज्य का गांव जायेला और आस पास के 8 गांव लूट लिये। इसकी सूचना सरकार अंग्रेज को दी गई। तब दोनों राज्यों की सीमा निश्चित करने के लिए मारवाड़ की तरफ से कप्तान पर्स और सिरोही की ओर से मेजर डाउनिंग नियत किये गये। उनके निर्णय के अनुसार सिरोही के कई गांव मारवाड़ में चले गये।[45]

41–फो.पो. सदरलैण्ड का पत्र थोमसन को, 1832 नं. 45, रा.अ.
42–फो.पो. सदरलैण्ड का पत्र मेढोक को, 1841 नं. 46, रा.अ.
43– फो.पो.डाउनिंग का पत्र सदरलैण्ड को, 1841, नं. 46, रा.अ.
44– फो पो सदरलैण्ड का पत्र डाउनिंग को, 1941, नं.34, रा.अ.
45– ओझा-सिरोही राज्य का इतिहास, पृ 299–300

आबू पर्वत पर अंग्रेज सरकार ने सेनिटोरियम बनाने की इच्छा से सिरोही महाराव से जमीन लेनी पड़ी। सन् 1845 में यह एक शर्तनामे के अनुसार दे दी गई। इसमें 15 शर्तें थीं। जिनमें मुख्य शर्त यह थी कि अंग्रेजी सेना के सिपाही गांवों में न जावें और स्त्रियों के साथ छेड़ छाड़ न करें। इस जमीन पर गाय या बैल नहीं मारे जाएं तथा मोर या कबूतर का शिकार न किया जाए। गायों या बैल का मांस पहाड़ पर न मंगवाया जाय। मन्दिरों के पुजारियों और साधुओं के साथ कोई छेड़ छाड़ न हो। खेती बाड़ी को कोई क्षति न हो। कोई रास्ता बन्द न किया जाय आदि। इन शर्तों के साथ महाराव ने जब जमीन दे दी तो वहां 1845 में सेनिटोरियम बन गया और ऐजेन्ट गवर्नर जनरल का हैड क्वार्टर वहीं स्थित हो गया। इस प्रकार के निर्माण कार्य द्वारा आबू अंग्रेजों का अधिकार क्षेत्र बन गया।[46]

जूड़ा के भीलों का दमन :

जूड़ा में अधिकतर भील रहते थे। ये लोग आस पास के प्रदेशों में चोरी करके वहां के ठाकुर के पास आ जाते थे जो कि उनको शरण देता था। जूड़ा उदयपुर राज्य में था अतः महाराज ने अंग्रेज सरकार को लिख कर उस ठिकाने के जागीरदार को सिरोही बुलवाया। उनमें एक समझौता हुआ जिसमें उल्लेख था कि भविष्य में चोरी करने वालों को जूड़ा में नहीं रखा जायगा। इसी प्रकार से जोधपुर राज्य के लोहीजमा का ठाकुर भी सिरोही राज्य के गांवों में, जो उसकी जागीर के पास थे, लूट खसोट करता था। जब सरकार अंग्रेजों से 1852 में शिकायत की गई तो इस ठाकुर ने आकर इकरार किया कि भविष्य में वह ऐसा नहीं करेगा। इसी प्रकार सिरोही के और सिरोही सीमा से मिले हुए इलाकों के जागीरदार सिरोही में लूटमार किया करते थे। उनको भी सिरोही की सेना ने दबा दिया और भविष्य में ऐसा न करने का इकरार करवा लिया। जहां आवश्यकता हुई वहां सिरोही महाराव ने सरकार अंग्रेजी से भी सहायता प्राप्त की।[47]

पदच्युत राव उदयभान के मरने पर संरक्षक शिवसिंह को सिरोही राज्य गद्दी का अधिकारी माना गया। परन्तु उसके कुशासन की आड़ में ब्रिटिश सरकार ने सिरोही राज्य की सम्पूर्ण व्यवस्था का भार अन्डरसन को 1854 ई. में सौंप दिया। उसने राज्य की सम्पूर्ण अर्थ, न्याय, पुलिस, व्यवस्था को भारतीय शासन के ढांचे पर ढाला और अपने ऊपरीय अधिकारियों से प्रशंसा प्राप्त की।[48]

46—फो. पो. एण्डरसन का पत्र ह्यूज को, 1845, नं. 50, रा. अ.

47—ओझा—सिरोही राज्य का इतिहास, पृ. 306—311

48—फो. पो.—ग्रान्ट का पत्र हेनरी लारेन्स को, अप्रेल 1854, नं. 141 रा. अ; फो. पो. हेनरी लारेन्स का पत्र एडमनस्टन को, 1856, नं. 67, रा. अ; एचिसन भाग—3, पृ. 152—153; डा. वशिष्ठ, राजपूताना एजेन्सी, पृ. 194—199

डूंगरपुर और हस्तक्षेप :

1818 में जब मराठों की सत्ता गिर गई और अंग्रेज सरकार शक्तिशाली हो गई तो राजपूत राज्य उससे संधियां करने लगे। डूंगरपूर ने भी 11 दिसम्बर 1818 को एक सन्धि की। जिससे बाहर के शत्रुओं से डूंगरपुर राज्य की रक्षा तो हो गई परन्तु आन्तरिक क्षोभ और अशान्ति पूर्ववत् बनी रही। अतएव सरदारों को अनुकूल बनाना, भीलों को दबाना लूट-खसोट समाप्त करना, राज्य की आय बढ़ाना आदि विषयों को लेकर कम्पनी ने हस्तक्षेप आरम्भ किया जिसके लिए एक फौज वहां बुलाई गई। फौज के आने से सरदारों ने और समलवाड़ा, देवल और नांदू, व अन्य पालों के भीलों के मुखियाओं ने इकरारनामे पर 1825 ई० को हस्ताक्षर कर दिये, जिसकी शर्तें निम्नलिखित थीं:—

"भविष्य में हम (भील) शहरों, गांवों या सड़कों पर कभी लूटमार न करेंगे। हम किसी चोर, लूटेरे, गिरासिया ठाकुर को और अंग्रेज सरकार के शत्रु को अपने गांव में आश्रय नहीं देंगे। हम अंग्रेज सरकार की आज्ञाओं का पालन करेंगे और आवश्यकता पड़ने पर हाजिर होंगे। हम डूंगरपुर के रावल को सालाना खिराज देने से कभी इन्कार नहीं करेंगे। यदि कम्पनी सरकार की कोई प्रजा हमारे गांवों में ठहरेगी तो हम उसकी रक्षा करेंगे।"[49]

परन्तु इस अव्यवस्था का कारण महारावल की अकुशलता समझा गया और उसे शासन कार्य से वंचित कर दिया। अब डूंगरपुर के रावल जसवन्तसिंह और कम्पनी की तरफ से कप्तान मेकडानाल्ड के बीच मुकाम नीमच में तारीख 2 मई सन् 1825 ई. बैशाख सुद 15 संवत् 1882 सोमवार को एक कौलनामा तय हुआ। जिसकी शर्तें ये थीं :—

1– अंग्रेज सरकार जिसे दिवान (मिनिस्टर) नियत करेगी, उसे मैं मंजूर करूंगा। राज्य–कार्य का सब प्रबंध उसको सुपुर्द करूंगा और किसी प्रकार का उसमें हस्तक्षेप न करूंगा।

2– मेरे निर्वाह के लिए अंग्रेज सरकार जो कुछ मुकर्रर करेगी उस पर मैं संतोष करूंगा और डूंगरपुर राज्य में मेरे रहने के लिए जो स्थान तजबीज करेगी वहां रहूंगा।

3– चालाक आदमियों की सलाह से मेरे मुल्क में कई बार फसाद हुए हैं, इसलिए मैं लिख देता हूं कि मैं न तो उनकी सलाह पर कुछ ध्यान दूंगा और न खुद कोई फसाद करूंगा। यदि मैं ऐसा करूं तो जो सजा अंग्रेज सरकार तजवीज करेगी वह मैं मंजूर करूंगा।[50]

इस इकरारनामे के विरुद्ध फिर जब डूंगरपुर में अव्यवस्था बनी रही तो महारावल को राजकाज से अलग कर दिया गया और उनके निजी खर्च के 1000/– रुपये माहवार दिया

49–एचिसन, भाग–3, पृ 55–57, 60; मु. ज्वालासहाय, वाकये राजपूताना, जि.–1, पृ. 476–478

50–एचिसन, भाग–3, पृ.. 61

जाने लगा। उसकी गद्दी पर प्रतापगढ़ के महारावल सामन्तसिंह के छोटे पौत्र दलपतसिंह को दत्तक पुत्र की भांति बिठा दिया गया। इससे सरदारों में असंतोष फैला। परन्तु दलपतसिंह सरकार अंग्रेज की सैनिक सहायता से गद्दी पर बना रहा। फिर प्रतापगढ़ के महारावल का देहांत हो गया तो दलपतसिंह ही प्रतापगढ़ का स्वामी बना। परंतु यह निश्चय हुआ कि महारावल दलपतसिंह अभिभावक की हैसियत से डूंगरपुर का भी काम संभालता रहेगा। दलपतसिंह ने 1852 तक डूंगरपुर का काम संभाला। फिर सरकार अंग्रेज ने सांवली ठाकुर के पुत्र उदयसिंह को जसवन्तसिंह को गोद बिठा दिया और महारावल जसवन्तसिंह को पेंशन देकर 1845 में वृन्दावन भेज दिया। वहीं सन् 1846 में उनका देहान्त हुआ।[51]

जसवन्तसिंह का देहान्त हो जाने पर उदयसिंह सांवली से डूंगरपुर आकर महारावल बना और दलपतसिंह डूंगरपुर की निगरानी करता रहा फिर सन् 1852 में अंग्रेज सरकार ने मुंशी सफदर हुसैन को डूंगरपुर का सुपरिन्टेन्डेन्ट नियत कर दिया। सन् 1858 में उदयसिंह बालिग हो गया तब उनको सरकार अंग्रेज ने पूरे अधिकार दे दिये। इस प्रकार 1818 की संधि के बाद क्रान्ति तक डूंगरपुर पर वास्तव में अंग्रेज सरकार ने ही राज्य किया।[52]

बांसवाड़ा और हस्तक्षेप

महारावल उम्मेदसिंह:—

इसके समय में भी मराठों व पिंडारी लुटेरों का कष्ट रहा। इससे उसने 1818 को सरकार के साथ दश शर्तों का एक अहदनामा किया, जिसमें महारावल ने वायदा किया क वे अंग्रेज सरकार की सलाह से राजकाज करेंगे, दूसरे रईसों से राजनैतिक सम्बन्ध नहीं रखेगें, अपने राज्य की सालाना आमदनी में से रुपये पीछे छः आने अंग्रेज सरकार को खिराज के रूप में देंगे। और जरूरत पड़ने पर यथा शक्ति सरकार को सैनिक सहायता भी देगें। परन्तु महारावल ने जब देखा कि मुसीबत का जमाना गुजर चुका और शर्तें ज्यादा कड़ी हैं तब वह अहदनामें पर अमल करने से मुकर गया। जब कुछ और शर्तें तय हुई तो 25 दिसम्बर 1818 को बांसवाड़ा में केप्टिन कालफील्ड के द्वारा तेरह शर्तों का दूसरा अहदनामा स्वीकार कर लिया। महारावल उम्मेदसिंह ने केवल 4 वर्ष राज किया और इस अहदनामें के कुछ ही मास बाद 5 मई 1819 को वह इस संसार से चल बसा।[53]

51—अर्सकिन, ए गजेटियर ऑफ दि डूंगरपुर स्टेट, पृ. 134; डूंगरपुर राज्य के बड़वे की ख्यात, पृ. 107–108; एचिसन, जि.–3, पृ. 22

52—ओझा, डूंगरपुर राज्य का इतिहास, पृ. 159–162

53—शिलालेख, वि.सं. 1876; बांसवाड़ा राज्य के बड़वे की ख्यात, पत्र 12; एचिसन ट्रीटीज एंगेजमेन्ट्स सनद्स, भाग-3, पृ. 468-470

महारावल भवानीसिंह :

वह सन् 1918 में राजगद्दी का स्वामी हुआ। सन् 1820 में इसने अंग्रेज सरकार के साथ एक अन्य कोलनामा किया जिसके अनुसार चढ़े हुए कुल खिराज के बदले केवल 35,000 सालमशाही रुपये बारह महावारी किश्तों में देना स्वीकार किया। परन्तु सन् 1826 तक खिराज के करीब 1,70,000 चढ़ गये और राज्य प्रबन्ध भी ठीक तौर पर नहीं हो सका। यह देखकर सरकार ने वहां का प्रबन्ध अपने हाथ में लेना चाहा। परन्तु महारावल ने प्रबन्ध ठीक करने का वायदा कर लिया और सालाना 35,000 सालिमशाही रुपये खिराज के देना पुनः स्वीकार किया।[54]

सन् 1824 तक राज्य में भील और अन्य लुटेरों का उपद्रव कम नहीं हुआ तो इस वर्ष उनका दमन कर दिया गया जिससे वहां स्थायी रूप से शान्ति हो गई। कप्तान स्पियर्स महारावल को उत्तम सलाह देने व राजकाज चलाने के लिए नियत हुआ। फिर भी महारावल की तरफ से शासन की ढिलाई देखकर 1832 में दूसरा इकरारनामा करवाया गया। इस इकरारनामे के थोड़े दिनों के बाद उसका देहान्त हो गया।[55]

भवानीसिंह की मृत्यु के बाद 22 नवम्बर 1838 को बहादुरसिंह बांसवाड़े की गद्दी पर बैठा। गद्दी पर बैठने के समय बहादुरसिंह वृद्ध और निःसन्तान था। इसलिये उसने लक्ष्मणसिंह को अपना उत्तराधिकारी बनाया। महारावल बहादुरसिंह केवल 5 वर्ष राज करके 1844 में देवलोक सिधार गया।[56]

महारावल लक्ष्मणसिंह :

17 फरवरी 1844 को महारावल लक्ष्मणसिंह राजगद्दी पर बैठा। इसके नाबालिग होने से राज्य का प्रबन्ध अंग्रेज सरकार की ओर से मुंशी शहामतअलीखां के हाथों में रहा। सन् 1856 में उसके बालिग होने पर राज शासन के पूरे अधिकार उसको दे दिये गये। उसके समय में भीलों के उपद्रव हुए तथा क्रांति की घटनाएं घटी। इन घटनाओं का होना अंग्रेजों के प्रभाव का बढ़ना था।[57]

भरतपुर और ब्रिटिश हस्तक्षेप :

भरतपुर की 1768 के बाद आन्तरिक स्थिति अच्छी नहीं थी। चूंकि यहां के नरेश मराठा व अंग्रेजों से सतत युद्ध में व्यस्त रहते थे स्थानीय दीवान और फौजदार अपनी मनमानी करते थे। षड़यन्त्र व धोखाधड़ी का साम्राज्य सरदारों, राजकीय अधिकारियों यहां

---

54. एचिसन, भाग-3, पृ. 472-474
55. वही, 474-475
56. बांसवाड़ा राज्य की ख्यात, प्रकरण बहादुरसिंह; अर्सकिन, बांसवाड़ा राज्य का गजेटियर, पृष्ठ 164,
57. बांसवाड़ा राज्य के बड़वे की ख्यात, पत्र 13; डा. हेंडली, रूलर्स आफ इंडिया, पृ. 39; वीर विनोद, प्रकरण 11; मुंशी ज्वालासहाय, वकाये राजपूताना, जि. 1, पृ. 523; ओझा, बांसवाड़ा राज्य का इतिहास, पृ. 169—170

तक कि राज परिवार के सदस्यों में व्याप्त था। अभाग्यवश जब मराठों व पिंडारियों का भय जाता रहा तो उत्तराधिकार के प्रश्न को लेकर अव्यवस्था पैदा हो गई। इधर अंग्रेजों की सत्ता का प्रसार बढ़ता जा रहा था। जब गुरखाओं के साथ युद्ध छिड़ने की सम्भावना होने लगी तो कम्पनी का स्वार्थ भी था कि वह राज्य की सीमा से सेना के प्रमाण के लिए भरतपुर नरेश से अच्छा सम्बन्ध स्थापित करले। साथ ही भरतपुर नरेश भी अंग्रेजी सहायता का उत्सुक था, क्योंकि सर्वत्र राजस्थान में अंग्रेजों से मैत्री करने का वातावरण बना हुआ था। इसीलिए राजा रणधीरसिंह ने 1816 में गवर्नर जनरल को अंग्रेजी फौज के उधर से गुजरने तथा अपनी सहायता देने का आश्वासन दे रखा था। दिल्ली के ब्रिटिश ऐजेन्ट डेविड आक्टरलोनी ने भरतपुर नरेश को उसकी सीमा का विवाद निपटाकर प्रसन्न कर दिया था।[58]

परन्तु 1823 में जब रणधीरसिंह का निधन हो गया और उसका भाई बलदेवसिंह राज्य का स्वामी बना तो उसके चाचा दुर्जनसाल ने उसके अधिकार को चुनौती दी। बस यह एक ऐसा समय था जब अंग्रेजों को भरतपुर की आन्तरिक स्थिति में प्रवेश का अवसर मिला। बलदेवसिंह ने दुर्जनसाल को गिरफ्तार कर लिया और उसकी समर्थक रानी लक्ष्मी को भरतपुर से निकाल दिया। जब इन्होंने इसकी शिकायत की तो अंग्रेजों ने बलदेवसिंह के अधिकार के विरुद्ध रानी व दुर्जनसाल की कुछ न सुनी। परन्तु जब 1825 में बलदेवसिंह की मृत्यु हो गई तो राज्य के आन्तरिक बखेड़े अधिक उग्र हो गये और अंग्रेजों को हस्तक्षेप का सुवर्ण अवसर मिला।[59]

बस अंग्रेजी सेना ने 18 जनवरी 1826 को भरतपुर के दुर्ग को घेर कर प्रायः नष्ट कर दिया और दुर्जनसाल को गिरफ्तार करके इलाहाबाद भेज दिया। बालक बलवन्तसिंह को गद्दी पर बिठा दिया और उसकी माता रानी अमृतकौर को उसका अभिभावक बना दिया। साथ ही एक अंग्रेज पोलिटिकल ऐजेन्ट नियुक्त कर दिया। 1826 में एक काउन्सिल नियुक्त कर दी गई जो पोलिटिकल ऐजेन्ट के अधीन काम करने लगी।[60]

जब बलवन्तसिंह वयस्क हो गया तो लुशींगटन से बलवन्तसिंह को पूर्ण अधिकार देने की सिफारिश की। जिसके फलस्वरूप उसे प्रशासन के अधिकार दे दिये गये। परन्तु जब 1853 में उसका देहान्त हो गया तब उसकी गद्दी पर उसका एक मात्र पुत्र जसवन्तसिंह बैठा। वह भी नाबालिग था। प्रशासन का संचालन करने के लिए पुनः कौंसिल बना दी गई जिसमें 5 जाट जागीरदार थे जो पोलिटिकल ऐजेन्ट की देखरेख से काम करते थे।[61]

---

58. फो.पो. 1823, नं. 9, फो.पो. 1924, नं 4, 12, रा.अ.
59. फो.पो. 1824, नं. 6, रामपाण्डे, भरतपुर, पृ. 164–167, रा.अ.
60. फो.पो. मेटकाफ का पत्र स्विंटन को, 1826, नं. 16–17, रा.अ.
61. फो. पो. लुशींगटन का पत्र स्पीयर्स को 1834 नं. 6 रा अ., फो. पो. लुशींगटन का पत्र आलविस को, 1834, नं 160, रा.अ., फो. पो. हेनरी लारेन्स का पत्र एलन को 1853, नं. 149, रा.अ, भरतपुर फाइल नं. 40, 1853, नं. 112 पृ. 10. अ. बी., डा. वशिष्ठ, राजपूताना ऐजेन्सी, पृ. 179-180।

प्रतापगढ़ और हस्तक्षेप :

अंग्रेजों के साथ संधि हो जाने पर प्रतापगढ़ को बाहरी आक्रमणों का खतरा तो जाता रहा, परन्तु शासन की आन्तरिक व्यवस्था ठीक नहीं थी। राजकुमार दीपसिंह राज्य का काम संभालता था, लेकिन शासन का ढंग उसका अच्छा नहीं था। प्रजा उसके रवैये से त्रसित थी। अंग्रेजों ने उसे कुछ समय हटा कर शासन कार्य को संभाला और भील और मीणों को दबाया। अंग्रेजों के प्रभाव से ही दलपतसिंह को डूंगरपुर का महारावल बनाया था। जब दलिपसिंह प्रतापगढ़ का 1843 ई. महारावल बना तो अंग्रेजों ने उसके लिए तोफे भेजे और उसको सम्मानित किया। उसने भी क्रान्ति के समय अंग्रेजों की बड़ा सहायता की। अंग्रेजी अधिकारियों ने यहां सुव्यवस्था रखने का दावा किया।[62]

करौली और हस्तक्षेप :

अंग्रेजों से संधि होने के बाद करौली राज्य अंग्रेज सरकार के संरक्षण में आया। भरतपुर के उत्तराधिकारी के मामले में महाराजा हरबक्षपाल ने दुर्जनसाल की सहायता की थी जिसमें उससे सरकार नाराज थी। परन्तु जब महाराजा ने क्षमा याचना करली तो मामला निपटा दिया गया। जब 1837 ई. में हरबक्षपाल की मृत्यु हो गई तो प्रतापपाल गोद आया। इससे राजमाता और रानी क्षुब्ध हो गई और राज्य में दो पक्ष बन गये। इस गृह कलह में कई व्यक्ति और सरदार दोनों पक्षों के मारे गये। अन्त में प्रतापपाल को ही अंग्रेज सरकार ने राज्य का स्वामी मान लिया। सरकार ने 1838, 1841, 1844 आदि वर्षों में घरेलू फसाद को समाप्त करने का प्रयत्न किया, परन्तु आपसी झगड़े बने ही रहे।[63]

बूंदी और हस्तक्षेप :

महाराव विशनसिंह के समय 1818 में बूंदी राज्य का संरक्षण का भार अंग्रेज सरकार ने लिया। जब विशनसिंह की 1821 में मृत्यु हो गई तो उसके पुत्र रामसिंह का राज्यारोहण हुआ। चूंकि नया महारावल अल्पवयस्क था तो टॉड उसका संरक्षक बना। उस समय राज्य के दीवान गबन करते थे तथा प्रमुख सरदार विद्रोही थे, इस मान्यता के आधार पर सरकारी हस्तक्षेप बढ़ता गया। महाराव रामसिंह की नाबालगी में एक प्रकार से सरकारी प्रभुत्व बहुत प्रभावशाली हो गया। अंग्रेजों की मान्यता थी कि हाड़ौती पोलिटिकल एजेन्सी को बनाये रखना इसलिए आवश्यक था कि कोटा, बूंदी और झालावाड़ का आन्तरिक वैमनस्य बना हुआ था और ऐसे अवसरों पर सम्पूर्ण हाड़ौती पर नियन्त्रण रखना नीति संगत था।[64]

---

62. फोपो., महारावल सामन्तसिंह का बेलेजली को पत्र 1826, फो. पो. सदरलैण्ड का सर्कुलर राजपूताना स्टेट्स को, 1847, नं 29–36 रा. अ., वीर विनोद भाग–2, पृ. 1066, एचिसन जि. 3, पृ. 441।

63. गहलोत, राजपूताने का इतिहास 609–610

64. फो.पो. बर्टन का पत्र लो को, 1850, **1851,** नं. 112, रा. अ.; एचिसन, भाग–3, प. 225, 226 डॉ. वशिष्ठ, राजपूताना ऐजेन्सी, पृ. 97; राजस्थान डिस्ट्रिक्ट गजेटियर, बूंदी, पृ. 56-57

परन्तु इन संधियों के सम्बन्ध में इतना अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा कि इनके द्वारा कुछ राजस्थानी नरेशों पर मानसिक प्रभुता संस्थापित नहीं हो सकी थी। वे मन ही मन अपनी स्वतंत्रता के अपहरण से दुःखी थे और यत्र-तत्र अपनी वेदना को शांत करने का प्रयत्न करते रहते थे। उदाहरणार्थ, जोधपुर के नरेश महाराजा मानसिंह (1803-1843 ई.) ने अंग्रेजी सत्ता स्वीकार तो करली, परन्तु कई तरह से उसने अंग्रेजों का विरोध करना शुरु कर दिया। जब नागपुर के राजा मधुराज देव भोंसला अंग्रेजों से पराजित होकर जोधपुर आया तो मानसिंह ने उसे सरण देकर महामंदिर[66] में रखा। अंग्रेजों ने जब उससे अपने शत्रु को मांगा तो महाराजाने बड़े ढंग से बात को टाल दिया यह कहते हुए कि अगर वे (भोंसला) उनके (अंग्रेजों के) मित्र (मानसिंह) के पास हैं तो उन्हें अपने घर में ही समझा जाय।[67] इसी प्रकार जब पोलीटिकल ऐजेन्ट ने सभी राजाओं को अजमेर में आमन्त्रित किया तो महाराजा मानसिंह उपस्थित नहीं हुए। यहां तक कि निश्चित की गई "खिरनी" की रकम को भी रोक दिया।[68] जब उस पर अंग्रेज अधिकारियों ने डांटडपट के पत्र भेजे तो उनकी तनिक पर्वाह भी न की और वह अपनी विशिष्ट नीति अपनाये रहा। उसने कुछ एक पत्रों[69] का अधिकारियों को ऐसा मुंहतोड़ उत्तर दिया कि वे चकित रह गये। इस सम्पूर्ण सम्बन्ध पर पूर्ण प्रकाश डालने वाले राजस्थान पत्रों के पढ़ने से महाराजा मानसिंह के साहस तथा विदेशी सत्ता के विरोध की भावना का स्पष्टीकरण होता है।

सन् 1824 ई. में जब अंग्रेज ब्रह्मा के युद्ध में लगे हुए थे और उनकी विफलता के आसार के विवरण अतिरंजित रूप में चारों और फैल रहे थे, राजस्थान के कुछ एक नरेश भी अंग्रेजी सत्ता को उखाड़ फेंकने की दिशा में प्रयत्न करने लगे। इसी आशा को लेकर अलवर नरेश बनेसिंह ने अंग्रेजी अधिकारियों के आदेशों की अवहेलना करना आरम्भ किया तथा अन्य राजस्थानीय नरेशों ने निश्चित की गई "खिराज" की रकम अदा करने में आनाकानी प्रकट की। विवश होकर ब्रिटिश सत्ता को जयपुर, जोधपुर, उदयपुर आदि राज्यों से वसूल किये जाने वाली रकम में कमी करनी पड़ी। कोटा, भरतपुर आदि राज्यों के शासकों में भी अंग्रेजों के प्रति असंतोष था जिसका यथास्थान वर्णन किया किया गया है।[70]

65- डा. जी.एन. शर्मा- 1857 के भारतीय विप्लव में राजस्थान का योग, मरु भारतीय, 1957, पृ. 59-63

66- महामंदिर नाथों का जोधपुर में मठ है, जिनकी संस्थापना महाराजा मानसिंह ने की थी, देखो नाथ-चरित्र, ह.लि. ग्रन्थ, पुस्तक प्रकाश।

67- जोधपुर राज्य की ख्यात, जि. 4

68- ओझा : जोधपुर राज्य का इतिहास, भाग-2, पृ. 845

69- खरीता बही, दस्ती रेकार्ड, जोधपुर, जी. एन. शर्मा का-लेख, अदियार लाईब्रेरी बुलेटिन, भाग-19, पा. 3-4

70-फाइल अजमेर-आय सम्बन्धी (जोधपुर) अ. बी; फो. पो. कन्सल, 27 फरवरी, 1837, नं. 14-17, रा. अ.

परन्तु ज्यों-ज्यों हम इस प्रारम्भिक सत्ताकाल से आगे बढ़ते हैं तो हम देखते हैं कि उत्तरोत्तर राजपूत नरेश निर्बल होते जाते हैं और ब्रिटिश सत्ता मजबूत बनती जाती है। राजस्थानी नरेशों तथा उनके सामंतों का वैमनस्य अंग्रेजों की सत्ता का प्रभाव बढ़ाने में सहायक होता है। इनके आये दिन के झगड़े इतने बढ़ने लगते हैं कि एक ओर सरदारों का गुट अंग्रेजों से नरेशों के विरुद्ध सहायता की प्रार्थना करता है और दूसरी ओर सरदारों को दबाने के लिए नरेश अंग्रेजों से मदद चाहते हैं : कभी-कभी तो नरेश स्वयं अजमेर-यात्रा तथा आबू-यात्रा के बहाने अंग्रेजी अधिकारियों से मिलते हैं और खुशामद करते हैं। इस सम्बन्ध में कर्नल टॉड द्वारा दी हुई एक चिट्ठी[71], जिसका रूपान्तर ओझा ने दिया है, उल्लेखनीय है। इस पत्र से स्पष्ट हो जाता है कि किस प्रकार राजस्थान में फूट थी और किस प्रकार अंग्रेजों ने इस फूट का अपनी प्रभुता स्थापित करने में लाभ उठाया। उक्त पत्र का कुछ अंश पाठकों के लिये यहां उद्धृत किया जाता है जो इस प्रकार है—

"प्रणामोपरांत (निवेदन) हम लोगों ने आपकी सेवा में एक विश्वास पात्र मनुष्य भेजा है, जो आपसे हम लोगों के विषय में निवेदन करेगा······ ······हम लोग देश से बेदखल कर दिये गये हैं········ कुछ लोगों को (महाराज ने) धोखा दिया और मार डाला, तथा बहुतों को कैद कर लिया है ······अंग्रेज सम्पूर्ण भारत के मालिक हैं······ यदि अंग्रेज हाकिम हम लोगों की न सुनेंगे तो कौन सुनेगा ? ······ अंग्रेज हमारे शासक और स्वामी हैं ······ हमारी आशाओं की ओर ध्यान दीजिये। संवत् 1878 श्रावण सुदी 2 (ई. सं. 1821 ता. 31 जुलाई)[72]

ऊपर के अवतरण में राजस्थान की आपसी फूट तथा उससे बढ़ने वाली अंग्रेजी सत्ता की प्रगति का नग्न स्वरूप है। चिन्ता-जन्य घरेलू बखेड़ों को निपटाने के लिए यहां के राजाओं ने अंग्रेजों से सहायता प्राप्त करना ही एकमात्र साधन माना। मेवाड़ के महाराणा स्वरूपसिंह के समय कई सरदार अपनी समस्याओं को लेकर कर्नल लारेन्स के पास नीमच गये और उधर महाराणा ने भी अपनी ओर से बेदले के राव बख्तसिंह, मेहता शेरसिंह आदि मुसाहिबों को अपनी सफाई देने को वहां भेजा।[73] इसी प्रकार बीकानेर के महाराजा रत्नसिंह ने कर्नल लाकेट की सेवा में अपने सरदारों को अपने पक्ष की बात कहने भेजा था। महाराजा तख्तसिंह (1843–1873 ई.) तथा अंग्रेजों के बीच होने वाली बात-चीत से सम्बन्धित चिट्ठियों से स्पष्ट है कि मारवाड़ अंग्रेजों की प्रभुता पूर्णरूपेण स्थापित हो चुकी थी।

जब पंजाब में मूलराज ने विद्रोह किया तो अंग्रेज सरकार ने बीकानेर महाराजा को भावलपुर तथा मुलतान के मार्ग में थाने स्थापित करने और मुलतान के व्यापारियों के पास जमाशुदा मूलराज सम्पत्ति को अपहरण करने का आदेश दिया जिसका यथावत् महा-

---

71. टॉड राजस्थान, जि-2, पृ. 1101

72. ओझा : जोधपुर राज्य का इतिहास, जि. 2, पृष्ठ 836–38

73. वीर विनोद-भा. 3, पृष्ठ 18;
ओझा मेवाड़ का इतिहास भाग-2, पृष्ठ 753

राज ने पालन किया । दूसरे सिक्खों के युद्ध में बीकानेर से 100 ऊंट, 55 सरदार, 40 गोलान्दाज मय रसद के अंग्रेजों की सहायता के लिये फिरोजपुर भेजे गये गये थे । [74] कोटा के जालिमसिंह ने अपनी शक्ति बढ़ाने के लिये अंग्रेजों से मैत्री सम्बन्ध रखा था और वहां के महाराव रामसिंह सं. 1899 ई. में दिल्ली दरबार में सहर्ष सम्मिलित हुए थे । [75] महाराणा जवानसिंह (उदयपुर), जिनके पूर्वज मुगल दरबार में अभी सम्मिलित नहीं हुए थे, 5 फरवरी 1832 ई० से बेंटिंग से अजमेर जाकर मिले[76] और महाराणा स्वरूपसिंह ने अंग्रेजों की सहायता से ही सरदारों के 1854 में कोलनामे करवाये । [77]

इस परिस्थिति से लाभ उठाते हुए अंग्रेजी सरकार ने राजस्थान के नरेशों के आंतरिक विषयों तथा शासनप्रबन्ध में भी हस्तक्षेप करना आरम्भ कर दिया । कर्नल टॉड ने कुछ समय के लिए मेवाड़ के शासन का भार अपने ऊपर लिया था । इसी प्रकार डेविड आक्टरलोनी ने जयपुर में सन् 1818 ई. में अपनी पसंदगी के प्रधान की नियुक्ति की और वहां के राजमाता पर कई रूप से राजनीतिक दबाव डाले । महाराजा तख्तसिंह को राज्यारोहण के समय अंग्रेजों की सलाह लिया जाना स्पष्ट है । उदयपुर के महाराणा ने अपने नाम के नये सिक्के बनाने के सम्बन्ध में शेरसिंह को 1849 को आदेश दिया कि कि वह कर्नल राबिन्स से बातचीत करे । सिक्के पर एक ओर "दोस्ती बंधन" का लेख विदेशी सत्ता से मेल बनाये रखने और अधीनता स्वीकार करने की नीति का स्पष्ट द्योतक है ।[78]

संधियों की समीक्षा :

संधि के बाद राजस्थान की रियासतों में अंग्रेजों के हस्तक्षेप की प्रक्रिया में दो तीन मुद्दे नजर आते हैं जिनको लेकर कम्पनी अपना प्रभुत्व स्थापित करती है। एक तो मरहठा लूट से अव्यवस्था, दूसरा सरदारों का विद्रोही होना और तीसरा भील, मेर, मीणों आदि की लूट कसोट । खिराज का समय पर भुगतान न होना भी इस नीति का एक विशेष आधार था । ये सच है कि लूट, कसोट और विद्रोह इस अर्से में हो रहे थे, जिनको इन्कार नहीं किया जा सकता, परन्तु साथ ही साथ यह भी समझ में नहीं आता कि जिन जिन-जातियों ने इन नरेशों को अफगान मुगल और मराठा युद्धों में सहयोग दिया था वे एका-

---

74–पोर्ट फोलियो फाई-तख्तसिंह, अ.बी; दयालदास की ख्यात, जि. 22, पृष्ठ 164; पाउलेट गजेटियर, पृ. 86; ओझा : बीकानेर का इतिहास, भाग–2, पृष्ठ 437

75–डा. शर्मा : कोटा राज्य का इतिहास भाग–2, प्रकरण, जालिमसिंह पृ. 599

76–ब्रुक हिस्ट्री आफ मेवाड़, पृ. 36–37

77–ट्रीटीज एण्ड सनदज, जि. 3, पृ. 49–54

78–ट्रीटीज एण्ड सनद भाग–3 पृ. 142; ओझा : मेवाड़ का इतिहास, भाग 2, पृ. 749;
वेब : करेन्सीज आफ दी हिन्दु स्टेट्स आफ राजपूताना, प्लेट 1, चि.सं. 15;
कर्नल राबिन्स का महाराणा के नाम 4 अक्टूबर 1949 का खरीता, रा.अ.

एक वर्षों लूट कसोट में लग गयी। इसी प्रकार यह भी रहस्यमय है कि जिन सरदारों ने पीढ़ी-दर-पीढ़ी नरेशों के राज्य के लिए अपना रक्त बहाया वे किस प्रकार विद्रोही हो गये। इनकी राज भक्ति सर्वदा प्रशंसनीय रही है तथा इनके शौर्य और साहस की कहानियां आज भी इन्हें अमर बनाए हुई हैं।

वास्तव में लूट-पाट और विद्रोह की घटनाएं संधियों के कारण उत्पन्न हुई थीं। जब सरदारों ने देखा कि राजाओं के साथ संधियां कर अंग्रेज सरकार राज्यों में सर्वेसर्वा हो गई है तो उनके परम्परागत अधिकारों तथा वर्चस्व पर कुठाराघात हुआ है। मेवाड़ और सलुम्बर के झगड़े के कागजात इस अंश पर अच्छा प्रकाश डालते हैं।[79]

जहां उत्तराधिकार के मसले प्रमुख सामन्तों द्वारा सुलझाये जाते थे वे ही मसले अब अंग्रेज अधिकारियों द्वारा सुलझाये जायेंगे। बूंदी, कोटा, जयपुर, जोधपुर आदि के मामले, जिनका वर्णन ऊपर हो चुका है, इसके उदाहरण हैं। राजस्थानी नरेश जब संधियों द्वारा ब्रिटिश संरक्षण में अभय हो गये तो उन्होंने भी अपने सामन्तों के साथ कड़ा व्यवहार करना आरंभ किया जिसको सामन्तवर्ग अपना अपमान समझते थे। ऐसी स्थिति में सामन्तों के विद्रोह अपने परम्परागत अधिकारों के हनन का प्रतिकार मात्र था। राजा महाराजा तो समझते थे कि जो कुछ कदम वे उठायेंगे उनका समर्थन ब्रिटिश सत्ता करेगी। मराठों के आक्रमणों से उत्पन्न स्थिति से जागीरों की सीमाओं में रद्दोबदल हो गया था तथा गांवों का उजड़ना भी स्वाभाविक था। ऐसी परिस्थिति में जागीरदारों के विद्रोही कदम अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए थे।

इसी तरह जब अंग्रेजी सत्ता ने अपने खिराज की रकम वसूल करने के लिए राज्यों की कर व्यवस्था एवं राजस्व व्यवस्था में हेर-फेर किये तो कृषि तथा वन सम्बन्धी उद्योगों पर जो जन जाति के प्रमुख आधार थे, इसका प्रभाव पड़ा। जो वन सम्पदा कर मुक्त थी और जहां जन-जाति का स्वायत्त अधिकार था उन पर अंकुश लगाना भीलों, मीणों तथा मेरों को अखरा। इनके जीवनोपार्जन की सुविधा पर ध्यान न देकर अंग्रेज सरकार ने इनके पेट पर लात मारी। बस अब लूट कसोट के सिवाय कोई मार्ग उनके पास नहीं था।

कहने का अभिप्राय यह है कि जहां लूट-कसोट या विद्रोह अधिकांश में संधि एवं अंग्रेजी सत्तावादी नीति के परिणाम बने जहां अन्य अवांछनीय सामाजिक तत्वों ने अव्यवस्था बढ़ाने में हाथ बटाया। बस अंग्रेजों को लूट-कसोट और सरदारों के विद्रोह के नाम पर हस्तक्षेप का अवसर मिल गया।

इधर अपनी नीति की पुष्टि में ईस्ट इंडिया कम्पनी के अधिकारियों ने वैधानिक बहाना ढूंढ निकाला कि वे उन राज्यों में सुशासन सम्बन्धी अपनी सलाह नरेशों को देंगे और जहां नरेश असमर्थ होंगे वहां पोलिटिकल एजेन्टों द्वारा या संरक्षक अथवा कोन्सिल द्वारा सुशासन की व्यवस्था करेंगे। जहां शांति भंग की आशंका होगी तो वे उत्तराधिकार अथवा राज्य और सामन्तों के विवाद में हस्तक्षेप करेंगे। ये नीति ब्रिटिश प्रभुसत्ता को बलवती बनाने के अभिप्राय से अमन चैन स्थापित करने की आड में पल्लवित की गई थी।

79- फो.पो.जे.सी.ब्रुक की रिपोर्ट, 14 फरवरी, 1853, नं. 153, रा.अ.

यदि हम खिराज की मांग को देखें तो जो खिराज मराठा वसूल करते थे उनको आधार मानकर इन राज्यों से खिराज की रकम तय की गई, जब यह स्पष्ट था कि मराठों की मांग इन रियासतों की हैसियत से अधिक थी। परन्तु जान बूझकर मराठों की खिराज को आधार इसलिए बनाया हुआ कि रियासतें उसे जमा कराने में असमर्थ होगी और उन्हें हस्तक्षेप करने का एक अच्छा बहाना मिल जायगा। इसी प्रकार अंग्रेजों ने राजस्थान के नरेशों के बाह्य सम्बन्ध स्थापित करने पर अंकुश लगाकर अपने प्रभुत्व की गरिमा को बढ़ाया। ऐसी स्थिति पर विवाद उपस्थित होने की संभावना में मध्यस्थता अंग्रेजों ने हाथ में रखी। जहां तक सरदारों का संबंध था उनसे भी कौलनामे कायम कर अपनी विशिष्ठता का उन्हें आभास करवाया। पारस्परिक मैत्री और कर्त्तव्य निभाने के उत्तरदायित्व के बहाने अंग्रेजों ने हस्तक्षेप करने का अच्छा बहाना ढूंढ निकाला था।

कौलनामे की शर्तों को इस तरह संजोया गया कि जिनको लेकर अनेकों वैधानिक और राजनैतिक उलझनें पैदा हो गई। कोटा के साथ सन्धि में कोटा शासक को नाम-मात्र का शासक रखा और प्रधान मंत्री जालिमसिंह को राज्य का सर्वेसर्वा बनाया। इस प्रावधान को लेकर लगभग 20 वर्ष तक महाराव और मुख्यमंत्री में झगड़ा चलता रहा। यह विवाद अंग्रेजों की सत्ता बढ़ाने में बड़ा लाभप्रद सिद्ध हुआ। डूंगरपुर में महारावल जसवन्तसिंह द्वि० को राजकाज से अलग कर 1825 में प्रतापगढ़ के दूर के रिश्तेदार दलपतसिंह को दत्तक पुत्र की तरह राज्य का कारोबार देखने लगा। इससे सरदारों में असन्तोष फैला। बांसवाड़े के बहादुरसिंह के समय हकदारी का झगड़ा चला और लक्ष्मणसिंह की नाबालगी होने से 1844 में अंग्रेज सरकार ने अपने प्रबन्धक मुंशी शहामतअलीखां को नियुक्त किया। मानसिंह के साथ किये गये 1839 के सन्धि-पत्र से जोधपुर राज्य का शासन अंग्रेजों के हाथ में आ गया।

जयपुर के जगतसिंह की मृत्यु होते मोहनसिंह को राज्य देने में अंग्रेजों ने मध्यस्थता की। भट्टियानी रानी के संरक्षण काल में (1818–1833) अंग्रेजों ने अपने अधिकारी को जयपुर में रखा और उसे आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप करने की पूरी छूट दी। बीकानेर और जैसलमेर के सीमा के झगड़ों में उलझन पैदा कराना अंग्रेजों की सूझ थी।

अलबत्ता ये अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा कि राजस्थान में सांगा, प्रताप, राजसिंह तथा सवाई जयसिंह के बाद राजपूतों के शौर्य, साहस और बलिदान का युग समाप्त हो गया था। इनके बाद होने वाले राजस्थानी नरेश इन गुणों से वंचित थे। इनमें पारस्परिक फूट थी। मेवाड़ का महाराणा भीमसिंह,[80] जिसने अंग्रेजों से सन्धि की थी, दुर्बल हृदय व्यक्ति था, वह न तो बाहरी शत्रुओं और सरदारों के पारस्परिक झगड़ों से होने वाले अनिष्ट से मेवाड़ की रक्षा कर सका। वह बड़ा फिजूलखर्ची था और वचन का भी पाबन्द न था। जोधपुर[81] में सन्धि के पूर्व तथा उस समय के शासकों का व्यक्तित्व प्रभावहीन था। महाराजा विजयसिंह अपने पूरे 40 वर्षों के दीर्घकाल में राज्य में शांति स्थापित न

80—ओझा, उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग–2, पृ. 720–722

81—ओझा, जोधपुर राज्य का इतिहास, भाग–2, पृ. 761, 773, 875, 876

कर सका। उसकी पासवान गुलाबराय के इशारे से राज्य कार्य संचालित होता था। उसका उत्तराधिकारी भीमसिंह क्रूर और उग्र स्वभाव था जो शासन के लिए सर्वथा अनुपयुक्त था। मानसिंह, जिसके समय अंग्रेजों से संधि हुई थी, अपने 40 वर्ष के दौरान राज्य में अच्छी व्यवस्था स्थापित न करने पाया। नाथों के प्रभाव से राज्य में भ्रष्टाचार का बोल बाला था और राज्य-कोष में धन का अभाव था। वह स्वभाव से क्रूर, जिद्दी, कृतघ्न और अविवेकी था। प्रतापगढ़[82] का महारावल सामंतसिंह ने राज्य को अपने पुत्र दीपसिंह को सुपुर्द कर दिया जो क्रूर था और जिसने कतिपय विरोधियों को मरवा दिया था। अंग्रेजों ने उसके कृत्यों से अप्रसन्न होकर उसको राज्य कार्य से वंचित कर दिया। सिरोही का शासक उदयभान को सरदारों, किसानों व प्रजा ने (1818-83) पदच्युत कर दिया, क्योंकि वह अयोग्य और विलासी था।[83] इन अयोग्य शासकों ने अंग्रेजी सत्ता को हस्तक्षेप करने का निमन्त्रण दिया। इस प्रकार अंग्रेजों की संरक्षण व सुविधा की नीति ने उनके हस्तक्षेप का मार्ग प्रशस्त कर दिया। आंतरिक शासन में सामन्त व जनता का आक्रोश बढ़ना स्वाभाविक था, क्योंकि परम्परागत अधिकारों का हनन होने लगा था। व्यापारिक लोगों पर अंग्रेजों के नियन्त्रण से स्थानीय व्यापार और अर्थव्यवस्था पर भी विपरीत प्रभाव पड़ा और पुराने मार्गों का महत्व घट गया। इसी अर्से में (1830-56) तक कई दुष्काल पड़े जिन्होंने पशुधन की बड़ी हानि की। इससे आम जनता की भावना यह बन गई कि ये अंग्रेजों के प्रभाव का दैविक दण्ड है। नये कानूनों से जनमानस पर उल्टा असर होने लगा। ये सभी कारण 1857 के विस्फोट के कारण बने जिसका वर्णन आगे के अध्याय में किया जायेगा।

82-वही, प्रतापगढ़ राज्य का इतिहास, पृ. 271

83-ओझा, सिरोही राज्य का इतिहास, पृ. 282

अध्याय-1

राजस्थान में 1857 का स्वतन्त्रता संग्राम

इसी बीच तत्कालीन राजनैतिक स्थिति से देश में ब्रिटिश राज के विरुद्ध असंतोष बड़ी तेजी से व्याप्त हो रहा था। डलहौजी ने ब्रिटिश राज के विस्तार के लिए 'डाक्ट्रिन ऑफ लेप्स" की नीति के अन्तर्गत यह नियम बनाया था कि किसी राज्य का शासक निःसन्तान होने पर गोद नहीं ले सकता। ऐसे निःसन्तान राजा की मृत्यु होने पर उसका राज्य ब्रिटिश सामाज्य में विलीन कर लिया जाय। इस उत्तराधिकारी सिद्धान्त के अधीन सतारा, झांसी नागपुर और अवध अंग्रेजी राज्य में मिला लिये गये। अत: दत्तक पुत्र के उत्तराधिकार की अस्वीकृति से देश के राजाओं एवं जनता की भावनाओं को ठेस लगी। इसी तरह भूमि के स्वामित्व के अनिश्चित होने से कृषक एवं भूमिपति त्रसित थे। साथ ही कई सामाजिक सुधारों तथा ईसाई धर्म के प्रचार की गति से देशवासियों में संदेह की भावना उत्पन्न होना स्वाभाविक ही था। इसी प्रकार सेना में विघटन और देशी तथा विदेशी सैनिकों में भेदभाव आदि ऐसे तत्व थे जिनको विस्मृत नहीं किया जा सकता। इस स्थिति के सामूहिक प्रभाव की परिणति 1857 के विप्लव के विस्फोट में हुई। शीघ्र ही इस विद्रोह की आग मेरठ, दिल्ली, लखनऊ, कानपुर, मध्य भारत आदि स्थानों में भड़क उठी। ज्योंही भारतीय क्रांति का संकेत यहां मिला तो राजस्थान की छावनियों में जैसे नसीराबाद नीमच, दोसा, एरनपुरा, कोटा आदि में भी हलचल मचगई। गांव 2 में इसकी सूचना बिजली की तरह फैल गई और सर्वत्र विदेशी सत्ता के प्रति घृणा का भाव छा गया।[1]

राजस्थान में स्वतन्त्रा संग्राम के प्रति राजाओं सरदारों और जनता का रुख

नरेशों की ओर से तो ब्रिटिश सत्ता का बड़ा सम्मान बढ़ता जा रहा था परन्तु भीतर ही भीतर समाज के कई स्तरों में ब्रिटिश राज्य की प्रगति असंतोष का वातावरण पैदा कर रही थी। जिन भागों को डलहौजी की "गोद-प्रथा" से अधिकृत कर लिया गया था वहां विस्फोटक वातावरण की कमी नहीं थी और उसकी लपट राजस्थान में भी पहुंच चुकी थी। अंग्रेजी सत्ता के बढ़ते हुए प्रभाव ने यहां की परम्परा तथा नवीन परिस्थिति में एक असन्तुलन की व्यवस्था को जन्म दिया। इसके फलस्वरूप स्थानीय वर्गों में अंग्रेजों के प्रति एक वैमनस्य का भाव बनता गया। यही राजस्थानीय क्रान्ति के कारणों की पृष्ठ-भूमि थी जब अंग्रेजों ने नमक, पैदावार व अफीम की खेती के सम्बन्ध में नियन्त्रण के नियम बनाने प्रारम्भ किये तो यहां का व्यापारी वर्ग ब्रिटिश राज्य सत्ता को संदेह की नजर से देखने लगा और यह समझने लगा कि ये सत्ता उनके उद्योग की वृद्धि में बाधक है। वे धीरे-धीरे ऐसा वातावरण पैदा करने लगे जिससे समाज में इस सत्ता के प्रति दुर्भावना बनने लगे।

इसी प्रकार परम्परा से राज्याश्रित समूह व स्थानीय अधिकारी व दरबारी-वर्ग अंग्रेजी रजिडेन्ट व उनके अधिकारों की वृद्धि को अपनी प्रतिष्ठा के लिए हानिकारक समझने लगे। महाराजा मानसिंह के सम्पूर्ण अधिकारी अंग्रेजों के हस्तक्षेप नीति के विरुद्ध थे। वे उनके

1, प्रिकार्ड, म्यूटीनीज, इन राजपूताना, पृ. 156-163, 308

आदेशों की अवहेलना करते थे और अंग्रेजों द्वारा हिसाब-किताब की जांच के विरुद्ध थे। मेवाड़ में भी महाराणा स्वरूपसिंह के दरबारी अंग्रेजों से विरोधी भावना रखते थे। बीकानेर नरेश रतनसिंह के समय अंग्रेजो की सहायता के लिए भेजे गये। आदमी उनसे मन ही मन कुढ़ते थे।[2]

इसके अतिरिक्त अंग्रेजों के द्वारा लाये गये सामाजिक सुधार सम्बन्धित नियमों को सम्मान की दृष्टि से नहीं देखा गया। सती-प्रथा के रोकने के नियमों को तोड़ना ही श्रेयस्कर समझा गया। इस प्रकार के नियम धर्म-घातक समझे गये और समाज में अंग्रेजों के प्रति घृणा पैदा करने वाले साधन बने। सामन्तों के गांवों से अन्यत्र जाने की प्रजा को दी गई छूट से सरदारों में असन्तोष था। उस पर राज्य के द्वारा लगाये गये नए कर और उनके आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप अपमान सूचक माने गये।

उपरोक्त कारणों के साथ-साथ राजस्थानी नरेशों के विलासी जीवन ने देश में एक विचित्र वातावरण पैदा कर दिया। सवाई जगतसिंह के रावले में चलने वाले ऐश्वर्य-विलास की कहानियां सारे उत्तरी भारत के कौतुहल की सामग्री बन गई। वे तत्कालीन हस्तलिखित अखबारों में दुहराई जाकर, सुदूर नगर जैसे कलकत्ता, पूना, हैदराबाद में फैल गई और जिससे इन नरेशों की प्रतिष्ठा घटने लगी। इसका तत्कालीन फल यह हुआ कि इन राजस्थानी नरेशों के समान-वंशीय तथा समकक्षीय सरदारों ने इसकी उपेक्षा करना आरम्भ कर दिया और उस अवसर की ताक की खोज में लग गये जिससे उनके प्रति किये गये जनहितों का वे बदला लें और हानियों को लाभ में बदलें। बीकानेर के ठिकानेदार, जोधपुर में नीबाज, बगड़ी, बूड़सू आदि के ठाकुर महाराणा के विरुद्ध थे। सन 1839 से महाराज तथा आसोप ठाकुर के बीच गोद-नशीनी के सम्बन्ध में खींचातान से बिगड़े हुए थे। महाराणा स्वरूपसिंह के व्यवहार से आसींद, देवगढ़, सलुम्बर आदि ठिकानों के सरदार असन्तुष्ट थे। इन्होंने ए.जी.जी. से यदाकदा अपने नरेशों की शिकायत की तो उनकी उपेक्षा की गई। और अब लारेन्स से उनको कोई सहायता की आशा न रही तो वे भी अंग्रेजों को नीचा दिखाने व गड़बड़ी से लाभ उठाने के अवसर की प्रतीक्षा करने लगे। यह अवसर 1857 की भारतीय क्रांति ने दिया।[3]

2— खरीताबही मानसिंह के समय की, दस्ती रेकार्ड जोधपुर, अ. बी.; दयालदास की ख्यात जि. 22, पत्र 132, पाउलेट गजेटियर, पृ. 83; रेऊ, मारवाड़ का इतिहास, भाग-2, पृ. 448-50

3— होम्स-हिस्ट्री आफ इंडियन म्यूटिनी, पृ. 264; प्रीचार्ड, म्यूटीनीज इन राजस्थान, पृ. 89;
शावर्स का खरीता महाराणा स्वरूपसिंह को, 22 जनवरी, 1858, नं. 216, रा. अ.; रावत केशरीसिंह का पत्र शावर्स को, 14 जनवरी, 1958 नं. 216;
फो. पो. 31 दिस. 1858, नं. 4248-59;
ओझा, बीकानेर राज्य का इतिहास, भाग-2, पृ. 432, 442, 443;
ओझा, जोधपुर राज्य का इतिहास, भाग-2, पृ. 846;
ओझा, मेवाड़ राज्य का इतिहास, भाग-2, पृ. 751-754;
डा. द्वारकाप्रसाद, रोल आफ म्यूटीनी इन मेवाड़, पृ. 172, पाली

राजस्थान में कंपनी की 1857 में स्थिति :

अब हम क्रान्ति की घटनाओं के वर्णन के पूर्व यह देखेंगे कि राजस्थान में अंग्रेजों की व्यवस्था और सैनिक शक्ति का क्या स्वरूप था ? ज्योंही उत्तर व मध्य भारतीय भागों में विप्लव की विभीषिका गूंज उठी तो यहां अंग्रेजों का शासकीय एवं सैनिक संगठन इस प्रकार था। उस समय राजस्थान का प्रशासन उत्तर पश्चिम प्रदेश के लेफ्टीनेन्ट गवर्नर के अधीन था और शान्ति की रक्षा राजस्थान के ए.जी.जी. के सुपुर्द थी। जब 1857 का स्वतन्त्रता संग्राम शुरू हुआ तब राजस्थान का ए.जी.जी. जार्ज सेण्ट पैट्रिक लारेन्स था। उसके अधीन कई पोलिटिकल ऐजेन्ट थे जो बडी बड़ी रियासतों में नियुक्त थे। उदयपुर का पोलिटिकल एजेण्ट कप्तान सी.एल. शावर्स था। जयपुर का पोलिटिकल ऐजेन्ट विलियम ईडन था। जोधपुर में कप्तान माक मेसन पोलिटिकल ऐजेन्ट था। कोटा में मेजर बर्टन था। भरतपुर में मेजर निक्सन था। इसी तरह राजस्थान में 6 सैनिक छावनियां थी-नीमच, नसीराबाद, देवली, खेरवाड़ा, ऐरनपुरा और अजमेर। छःओं छावनियों में अंग्रेजी पल्टनें थीं। परन्तु इनमें अधिकांश सैनिक भारतीय थे। देवली में कोटा कन्टिजेन्ट, ब्यावर में मेरवाड़ा बटेलियन, एरिनपुरा में जोधपुर लीजैन, खेरवाड़ा में मेवाड़ भीलकोर अजमेर मेगजीन पर बंगाल भारतीय इन्फेन्टरी थी। जयपुर पोलिटिकल ऐजेन्ट के रक्षक भारतीय प्यादे थे। परन्तु जब इस संग्राम का आरम्भ हुआ तो राजस्थान में अंग्रेज सैनिक अधिक नहीं थे इसलिये एक प्रकार से अंग्रेजों की स्थिति बड़ी भयावह अवश्य थी।[4]

स्वतन्त्रता संग्राम के आरम्भ पर ए.जी.जी.की कार्यवाही :

जब 19 मई, 1857 में मेरठ में होने वाले विप्लव की सूचना राजस्थान में पहुंची उस समय ए.जी.जी. जनरल लारेन्स आबू में था। उसने तुरन्त ही सम्बन्धित अधिकारियों को सूचित किया और बतलाया कि उन्हें क्या सावधानी रखनी चाहिये अजमेर की सुरक्षा के लिए उसने 21 मई, 1857 को दीसा से एक ब्रिगेड नसीराबाद मंगवाई। यह स्थान सबसे निकट था और यहीं पर योरोपियन सैनिक थे। उसने सभी राजपूताना के शासकों के नाम एक घोषणा-पत्र जारी किया कि सारे शासक अपने राज्य की सीमा के अन्दर शान्ति बनाये रखें। उनके राज्य में होकर जो कोई विद्रोही लोग निकलें उनको पकड़े। इस घोषणा-पत्र से सर्वोच्चता के प्रति निष्ठावान रहने तथा सैनिक सहायता के जिए उद्यत रहने के लिए सूचित भी किया गया था।[5]

4– फाइल नं. 1. म्यूटीनी, भाग–6, लिस्ट नं.1, पृ. 5 सी.नं. 43; राजपूताना ऐजेन्सी रेकार्ड रा.अ ; लेटर बुक नं. 13, प 43; लारेन्स का पत्र बेडन को, 4 अगस्त, 1855; जोर्ज लारेन्स रेमीनिसेन्सेज ऑफ फोर्टी थ्री इयर्स इन इंडिया, प. 278;
ट्रेवर ए चेपटर ऑफ द इंडियन म्यूटीनी, पृ. 2–5; होम्स, ए हिस्ट्री ऑफ द इंडियन म्यूटीनी, पृ. 148–151

5– फो. सी. जोर्ज लारेन्स की राजपूत रियासतों के प्रति घोषणा, 23 मई, कन्स,26 जून, 1857, नं. 113–116, रा. अ.

नरेशों का सहयोग :

यह आदेश मिलने पर राजाओं ने मित्रतापूर्वक सब प्रकार की सहायता देने का वचन दिया। बीकानेर के महाराज सरदार सिंह ने इस दिशा में पहल की। सिरोही के राव ने यह आशा प्रकट की कि "दिल्ली का फिसाद जल्दी दब जायेगा और मेरे जितने भी साधन हैं वे अंग्रेजी सरकार के अर्पण हैं।" जयपुर के महाराजा की अनुमति प्राप्त करके वहां का पोलिटिकल ऐजेन्ट केप्टन ईडन जयपुर के 5000 सैनिकों के साथ मथुरा और गुड़गांव के जिलों की ओर कूच करने लगा। महाराजा अलवर ने भी अपने पोलिटिकल ऐजेन्ट केप्टन निक्सन के नेतृत्व में 2,500 सैनिक देहली की ओर रवाना किये। महाराजा जोधपुर ने ए.जी.जी. की मांग पर 2000 सवार और प्यादे तथा 6 तोपें उसने सुपुर्द करदी। यही दृष्टिकोण डूंगरपुर, बांसवाड़ा, भरतपुर, धौलपुर, करौली आदि के नरेशों का था। इन राज्यों में जिन्होंने विद्रोह की अफवाहों को उड़ाया उन्हें दंडित किया गया।[6]

महाराणा का सहयोग :

मेवाड़ के महाराणा स्वरूपसिंह ने अंग्रेजों का समर्थन किया और दारू. बेदला, बांगड़ा, सेवत्री, बिनोटा, सरबमेर, उत्थाना आदि के जागीरदारों को रुक्का भेजा और आदेश दिया कि सब अंग्रेजों के हितों की रक्षा करें। महाराणा ने अपने विश्वसनीय सैनिक केप्टन सी. एल. शावर्स पोलिटिकल ऐजेन्ट मेवाड़ के सुपुर्द कर दिये। इन सैनिकों का नेतृत्व बेदला के राव बख्तसिंह के सुपुर्द किया। 27 मई 1857 को महाराणा ने खास रुक्का जारी करके सभी जागीरदारों और जिला अधिकारियों को हिदायत की कि वे अंग्रेजों की सैनिक कार्यवाही से सहयोग करें और शावर्स के आदेश को महाराणा का आदेश समझें। अक्टूबर 1857 में महाराणा ने ओगना, पानरवा, जवास, मादड़ी, झाडोल और छाणी के भौमियों व सरदारों को परवाने भेजे कि खेरवाड़ा और कोटड़ा में रहने वाले अंग्रेजों की कोई हानि न हो और पर्वतीय प्रदेशों में उत्पात न मचे। इतना कुछ करने पर भी उत्पात नहीं रुका। कारण यह था कि अंग्रेजों के प्रति जागीरदारों में और जनता में दबी हुई घृणा थी जो अब मौका-पाकर उबल पड़ी।[8]

राजस्थान में स्वतन्त्रता संग्राम का श्रीगणेश :

राजस्थान में स्वतन्त्रता संग्राम का आरम्भ नसीराबाद से हुआ। वहां 28 मई, 1857 को प्यादों और तोपखाने के सैनिकों ने तोपों पर कब्जा कर लिया। लोगों में यह अफवाह फैल गई, विशेषकर अंग्रेजी पलटनों में और तोपखाने में हड्डियां पीसकर सैनिकों के खाने

6. फो. सी. जार्ज लारेन्स का पत्र एडमन्स्टन को, 1 जून कन्स, 18, दि. 1857, नं. 204, रा. अ.
7. अर्जुनसिंह सहीवाला का जीवन चरित, पृ. 57, 58; वीर विनोद, पृ. 1968
8. रावत रणजीतसिंह का पत्र स्वरूप सिंह को, 22 जून, 1857; फो. पो. 30 दिसम्बर, 1859 नं 742-48, रा. अ.; डा. द्वारकाप्रसाद, रोल आफ नोबीलीटी, मेवाड़ (पा. ली.), पृ. 168

के आटे में मिलाई जाती हैं और कारतूसों में गाय और सूअर की चर्बी लगी हुई है जिनको बन्दूकों में रखने से पहले मुंह से काटना पड़ता है। कारतूसों की चर्बी की बात तो अंग्रेज लेखकों ने भी मानी है, हड्डियां पीस कर आटे में मिलाई गई इस विषय का निर्णय नहीं हो सका है। जब 27 मई को खबर आई कि दोसा से नसीराबाद अंग्रेज सेना आ रही है तो इससे लोगों में और सेना में बड़ी सनसनी फैल गई और दूसरे दिन स्थिति बड़ी नाजुक बन गई। बम्बई से आये हुये तोपचियों ने तो आदेशानुसार तोपें चलाई परन्तु अन्य सभी ने तोपें चलाने से इन्कार कर दिया। इसमें दो अंग्रेज अफसर मारे गये और दो आहत हो गये। इस प्रकार नसीराबाद स्वतन्त्रता सेनानियों के हाथ में चला गया। दूसरे दिन उन्होंने नसीराबाद छावनी को लूट दिल्ली का मार्ग लिया। इनका पीछा मारवाड़ के एक हजार प्यादी सेना ने किया जिसका नेतृत्व अजमेर का असिसटेन्ट कमिशनर लेफ्टीनेन्ट वाल्टर और मारवाड़ का असिसटेन्ट जनरल तथा लेफ्टिनेन्ट हीथकोट और एन्साईन वुड कर रहे थे। लेकिन पीछा करने वाली सेना को कोई सफलता नहीं मिली। ऐसा अनुमान है कि मेवाड़ और मारवाड़ की सेना ने तथा जागीरदारों एवं ग्रामीणों ने बागी लोगों का सहयोग किया और उन्हें निकल जाने दिया। इससे प्रत्यक्ष है कि मारवाड़ और मेवाड़ की सेना व जनता की इन सेनानियों के साथ सहानुभूति थी। इस विषय पर मेवाड़ भील कोर के कोदरा भील सिपाही ने जांच के समय कप्तान जान डी. रू के सामने ऐसे बयान भी दिये थे। परन्तु ब्रिगेडियर मकान ने बम्बई की नेटिव केवलरी के सहयोग से नसीराबाद पर पुनः अधिकार कर लिया।[9]

नीमच में संग्राम का प्रभाव :

नसीराबाद के विप्लव की सूचना जब नीमच पहुंची तो वहां भी 2 जून 1857 में संग्राम की आग भड़क उठी। वहां कर्नल एवोट ने सिपाहियों को राज भक्ति की शपथ दिलाई थी। मुसलमानों ने कुरान हाथ में लेकर और इसाइयों ने बाइबल हाथ में लेकर शपथ ली थी। परन्तु उसी रात 11 बजे बागी सिपाहियों ने तोपों के दो फायर किये और घुड़सवारों ने छावनी को सब ओर से घेर लिया और छावनी में आग लगादी। सब बंगले जला दिये गये। एक नायर और 4 सिपाही कर्नल लारेन्स के मकान पर पहुँचे गये। उन्हें पहरेदार ने नहीं रोका और उन्हीं में सम्मिलित हो गया। उसी समय एक सार्जेन्ट की पत्नी को मौत के हवाले किया गया तथा उसके बच्चे आग को समर्पित कर दिये। फिर उन्होंने सेना की एक तिजोरी जिसमें 5 हजार रुपये थे हथिया ली। एक लाख 26 हजार नो सौ रुपये खजाने से लूट लिये। देवली की छावनी भी उसी समय लूटी गई और जलादी गई। बर्टन ने हाड़ोती दस्ते की सहायता से जावद को लूटे जाने से बचाया और शावर्स ने बागी सिपाहियों का जहाजपुर तक पीछा किया। तदन्तर नीमच की फौज भरतपुर होती हुई

---

9. ए. जी. जी. की रिपोर्ट, जी. ओ. आई. एफ. एण्ड पी. 27 जुलाई, 1858 रा. अ.; ब्रिगेडियर मकान का पत्र जार्ज लारेन्स को, 29 मई, 1857, फाईल नं. 1, म्यूटीनी, भाग-1- लिस्ट नं. 1, सी. नं. 38, पृ. 4, फाईल नं. 37; फो. पो. जार्ज लारेन्स का एडमन्स्टन को पत्र, 9 जून, कन्स, 18 दिसम्बर, 1857, नं. 204 रा. अ.; डा. वशिष्ठ राजपूताना ऐजेन्सी, पृ. 261-262

आगरा पहुंच गई। एक मोहम्मद अली बेग जो इस छावनी का घुड़सवार था बड़ा निर्भीक और साहसी था। जब उसके अधिकारी ने वफादारी के शपथ की उसे याद दिलाई तो उसने अंग्रेजों का अवध अपहरण का स्मरण दिया अपने शपथ के तोड़ने को न्याय संगत बतला अपनी कर्तव्यनिष्ठा का परिचय दिया।[10]

उदयपुर और अंग्रेजों को सहयोग :

उन दिनों में मेवाड़ का पोलिटिकल ऐजेन्ट कप्तान शावर्स था और वह पहिले आबू में था। विद्रोह की खबर पाकर वह उदयपुर आया। महाराणा ने उसे जगमन्दिर महल में ठहराया और उसके पास 4 प्रतिष्ठित सरदारों को भेज कर उसकी रक्षा का उचित प्रबन्ध कर दिया। जब कप्तान शावर्स को इस उपद्रव की सूचना 7 जून को मिली तो उसने तुरन्त ही नीमच जाने का निश्चय किया और महाराणा से मिलकर इस सम्बन्ध में बात चीत की। नीमच मेवाड़ के पास है। इसलिए महाराणा ने उस नगर की रक्षा करना अपना कर्त्तव्य समझा और कप्तान शावर्स के साथ अपने विश्वस्त सरदार बेदला के राव बख्तसिंह की अध्यक्षता में मेवाड़ की सेना भेजने का निश्चय किया और अपने सरदारों को और जिलों के अधिकारियों के नाम आदेश भिजवाया कि शावर्स को सब प्रकार की सहायता दी जाय और मेरी आज्ञा के समान उसकी आज्ञा मानी जावे।

इधर डा. मरे, डा. केन समेत 40 अंग्रेज पुरुष व स्त्री बच्चे नीमच से भाग कर मेवाड़ के केसुन्दा गांव पहुंचे। वहां पटेल रामसिंह, पटेल केसरीसिंह, ओंकारसिंह, पं. यादवराम आदि व्यक्तियों ने उनका आतिथ्य किया और उन्हें सुरक्षित रखा। केसुन्दा में दूसरे दिन प्रातः क्रान्तिकारियों ने उन्हें आ घेरा। परन्तु ऊपर लिखित व्यक्तियों ने उन्हें क्रान्तिकारियों के हाथ ने पड़न दिया। इनके चले जाने पर ये शरणार्थी केसुन्दा से डूंगला पहुंचे। इसी अवधि में कप्तान शावर्स कूंच की तैयारी कर रहा था कि नीमच की सेना के तोपखाने का अफसर बार्नेस तथा पैदल सेना का अफसर रोज उससे आ मिले। उन्होंने खबर दी कि 'डूंगला गांव में नीमच के भागे हुए 40 अंग्रेज जिनमें स्त्रियां और बच्चे भी शामिल हैं विद्रोहियों से घिर गये हैं और घोर संकट में पड़े हुए हैं। अतएव दूसरे दिन रात को मेवाड़ की सेना डूंगला, पहुंचो और क्रान्तिकारियों को वहां से निकाल दिया।[11] वहाँ से उन्हें उदयपुर पहुंचा दिया गया और जगमिन्दर में उन्हे शरण दी गई। शावर्स के असिस्टेन्ट कप्तान ऐनेसले ने अपनी रिपोर्ट में लिखा है कि "कल प्रातःकाल स्वयं महाराणा ने धैर्य बंधाने तथा हमारी देख भाल करने के लिए हमारे यहां आये और हमारे बच्चों को अपने पास बुलाकर प्रत्येक को 2-2 मोहरें दीं। सायंकाल वह बच्चों को अपने महल में ले गये

10– लारेन्स का पत्र बर्टन को नं. 433, फो.पो., मोरिसन का पत्र लारेन्स को, 28 जुलाई, 1857,
ए.जी.जी.की रिपोर्ट–जी ओ आई.एन.एस.आई,
केप्टन जान डी. ब्रुक की लेफ्टिनेन्ट गवर्नर को रिपोर्ट, 31 जुलाई, 1857, एन.ए. आई, शावर्स, मिसिंग चेप्टर, प, 27–29, वीर विनोद भाग–2, प्रकरण / 1/8
11–शावर्स-पृ. 8 13, 14, 20, 28, 29

वहां उनमें से हर एक को अपनी ओर से 2-2 अशर्फियां और इतनी ही मोहरें महाराणी की तरफ से दिलाई। दयालुता और उदारता मे महाराणा की समता और कोई नहीं कर सकता।[12]

नीमच से क्रान्तिकारियों के चले जाने पर वहां की रक्षा का भार कप्तान लॉयड और मेवाड़ के वकील अर्जुनसिंह सहीवाला पर छोड़ कर लेफटिनेन्ट स्यकुन्टन और शेरसिंह को साथ लेकर कप्तान शावर्स क्रान्तिकारियों का पीछा करता हुआ 12 जून को चित्तौड़ पहुंचा। वहां से उसने राजपूताने के ए. जी. जी. कर्नल लारेन्स से निवेदन किया कि क्रान्तिकारियों पर आक्रमण करने के लिए नसीराबाद से सेना भेजी जावे। परन्तु लारेन्स ने यह प्रार्थना स्वीकार नहीं की क्योंकि अजमेर की सुरक्षा को प्राथमिकता देना था। इसके बाद तारीख 15 जून को गंगरार होता हुआ कप्तान शावर्स सांगानेर पहुंचा, जहां हमीरगढ़ और महुआ के जागीरदार उसकी सेना में आ मिले। गंगरार से सांगानेर जाते हुए मार्ग में क्रान्तिकारियों का बहुत सा सामान उसके हाथ लगा। मेवाड़ ऐजेन्सी के 2 चपरासी जिन्होंने क्रान्तिकारियों से मिलकर नीमच में रखा हुआ कर्नल लारेन्स का सारा माल असबाब लूट लिया था पकड़े गये। सांगानेर से कूच कर शावर्स शाहपुरा गया। वहां के राजाधिराज ने जो क्रान्तिकारियों से मिल गया था, उन्हें अपने यहां न आश्रय दिया, न दरवाजे खोले और न उन्हें रसद आदि की सहायता दी।[13]

शाहपुरा में शावर्स को यह खबर मिली कि महीदपुर और टोंक के क्रान्तिकारियों को साथ लेकर नीमच के क्रान्तिकारी देवली, आगरा आदि स्थानों को लूटते जलाते और उजाड़ते हुए दिल्ली की ओर चले गये। उनके साथ कोटा के क्रान्तिकारी सैनिक भी मिल गये थे। इसलिए शावर्स 15–20 दिन में नीमच लौट आया। इस अर्से में अंग्रेजों की रक्षा के लिये वहां कुछ रियासतों की और बम्बई की सेनाएं भी वहां आ पहुंची।[14]

शावर्स ज्यों ही नीमच लौटा, त्योंही मेवाड़ की सेना में क्रान्तिकारियों ने यह अफवाह फैला दी कि हिन्दुओं का धर्म नष्ट करने के लिए अंग्रेजों ने आटे में मनुष्य की हड्डियां पिसवा कर मिलवा दी हैं। यह सूचना मिलते ही मेवाड़ के वकील अर्जुनसिंह सहीवाले ने तुरन्त नीमच के बाजार में जाकर आटा मंगवाया और उक्त सैनिकों के सामने उसकी रोटी बनवाकर खाई जिससे उनका सन्देह दूर हो गया। इसके बाद उसने सेना के लिये आटा पींसनेवालियों से गेहूं पिसवाये। अर्जुनसिंह की इस कार्यवाही से नीमच का सुपरिन्टेन्डेन्ट

12–ऐजेन्सी रेकार्ड, बुक नं. 13, पृ. 50; शावर्स, पृ. 22–24; वही, पृ. 22, 23, 24; वीर विनोद भाग–2 प्रकरण 18 सहीवाला अर्जुनसिंह का जीवन चरित्र पृ. 50, 53; ओझा, उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग पृ. 769

13–ए. जी. जी. का पत्र सेक्रेटरी का, नं. 117, 3146, 3247, 31 दिस. 1858, रा. अ.;
वही पृ. 2 फरवरी, 1858 नं. 1652–54, रा. अ.

14–शावर्स, पृ. 41–46

कप्तान लॉयड बहुत प्रसन्न हुआ और उसने महाराणा के पास एक खरीता भेजकर अर्जुनसिंह की प्रशंसा की ।[15]

अजमेर की जेल में विद्रोह :

इसी अवधि में 9 अगस्त, 1857 को अजमेर केन्द्रीय कारागृह के लगभग 50 बन्दियों ने विद्रोह कर जेल को तोड़ा और भाग निकले । भागने वाले कैदियों का पुलिस ने पीछा किया और उनमें से अधिकांश को मौत के घाट उतारा । वैसे अजमेर में सुरक्षा के प्रबन्ध अच्छे थे जिससे नगर में इसका कोई विपरीत प्रभाव नहीं पड़ सका । स्थानीय मुसलमानों ने एवं मेरो ने ब्रिटिश सरकार को सहयोग दिया । अजमेर में शान्ति बनी रहने के कई कारण थे । हर मेजेस्टी की रेजीमेन्ट का तथा बम्बई इन्फेन्टरी का नगर में रहना असंतुष्ट तत्वों के लिए भय पैदा करता रहा । किले में रखा हुआ बारूद और खजाने की भी बड़ी हिफाजत रखी हुई थी और स्वयं कर्नल जार्ज लारेन्स किले की मरम्मत करवाने तथा छः माह की रसद इकट्ठा करने में प्रयत्नशील रहा । इस प्रकार के प्रबन्ध से अजमेर क्रान्ति की लपटों से बचाया जा सका ।[16]

नसीराबाद में पुनः विप्लव :

उक्त घटना के कुछ दिनों बाद नसीराबाद में कोटा एवं बम्बई से सहायतार्थ आये हुए सैनिकों में 10 अगस्त 1857 को क्रान्ति के चिन्ह दिखाई दिये और जब यह मालूम हुआ कि वहां के अंग्रेजों को आन्दोलनकारी कत्ल करना चाहते हैं । सावधानी के तौर पर उनके मुखिया को गिरफ्तार कर तोप से उड़ा दिया गया और पांच मुख्य नेताओं को फांसी दे दी गई एवं भारतीय सिपाहियों को सेवामुक्त कर दिया गया । आन्दोलनकारियों का इस प्रकार दमन करने से नसीराबाद में क्रान्ति के पुनः दौर की आशंका टल गई ।[17]

नीमच में पुनः विप्लव और आसपास के क्षेत्र में हलचल :

कप्तान शावर्स और कर्नल जैक्सन आदि ने खबर सुनी कि निम्बाहेड़ा का एक मुसलमान अफसर फिरोज जो अपने को मुगल खानदान का शाहजादा कहता था और मन्दसोर के पास एक गांव में रहता था आन्दोलनकारी से मिल गया है । विद्रोहियों ने निम्बाहेड़ा के क्रान्तिकारियों से सांठगांठ करली थी, अतः नीमच की स्थिति खतरे में थी । तब शावर्स ने महाराणा से अतिरिक्त सैनिक सहायता मांगी । महाराणा ने एक पैदल कम्पनी, 50 सवार

15-शावर्स, पृ. 84–85; सहीवाला अर्जुनसिंह, पृ. 55–61;
फो. पो. 31 दिस. 1858, नं. 4238–30, रा. अ.;
डा. द्वारका प्रसाद, रोल आफ नोबिलिटी, पृ. 169–71

16-ट्रेवर-एमिसिंग चैप्टर ऑफ इंडियन म्यूटीनी, पृ. 8; फो.पो. कन्सल, 31 दिस., 1858, नं. 3146-47

17-शावर्स, पृ. 85-87, फो.पो. कन्सलटेशन, 31 दिस. 1858, नं. 3146-47, रा.अ.

और 2 तोपों को नीमच भेज दी और सादड़ी, कानोड़, बानसी, बेगू, भदेसर, अराणा, सरवाणिया, दारू, बिनोलरा आदि जो नीमच के नजदीक थे, छोटे बड़े सभी ठिकानों के सरदारों को ससैन्य नीमच जाने की आज्ञा दी, जिस पर वे सब वहां पहुंच गये।[18]

इधर शावर्स ने नीमच में मेवाड़ की विश्वस्त सेना को तैनात किया और तारीख 18 सितम्बर 1857 को 600 सवार और दो छोटी तोपें लेकर नीमच से नीम्बाहेड़ा की ओर रवाना हुआ। दूसरे दिन सवेरा होते होते उसने नीम्बाहेड़ा के पास जत्यापीपल्या गांव में डेरा डाला। मेहता शेरसिंह, मेहता फूलचन्द तथा अठाणां का रावत दीपसिंह दारू का रावत भवानीसिंह आदि सरदार मेवाड़ की सेना को साथ लेकर वहां उनसे जा मिले। इस प्रकार शावर्स के दल में 3,000 सैनिक हो गये। तब अंग्रेज अफसरों ने दो चपरासियों के द्वारा नीम्बाहेड़ा के आमिल (हाकिम) को कहला भेजा कि जब तक सिपाहियों का विद्रोह शान्त न हो जाये तब तक के लिये नीम्बाहेड़ा अंग्रेज सरकार के सुपुर्द कर दो और यहां हमारे डेरे पर आकर हमसे मिलो। उक्त आमिल ने अंग्रेज अफसरों के इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर उनके भेजे हुए चपरासी को मार डाला और निम्बाहेड़ा के शहरपनाह के दरवाजे तुरन्त बन्द कर दिये। इस पर शावर्स की आज्ञा से अंग्रेज तथा मेवाड़ के सैनिक युद्ध के लिये तुरन्त तैयार होकर निम्बाहेड़ा के दरवाजे के सामने आ डटे और उन्होंने अपनी तोपे जमा दी। फिर लड़ाई छिड़ गई। नीम्बाहेड़ा के दरवाजे को तोप से उड़ा कर उन्होंने कोट के भीतर घुसने की चेष्टा की पर दरवाजा बहुत मजबूत था, जिससे सफलता प्राप्त नहीं हुई। तदनन्तर दोनों ओर से गोलन्दाजी होती रही। अन्त में शाम हो जाने पर शावर्स की आज्ञा से युद्ध रोक दिया गया और सेना अपने डेरों को लौट गई। इस लड़ाई में उक्त सेना के 22 सिपाही मारे गये, 83 नं. पैदल पलटन का अंग्रेज कारपोरल काम आया और दो यूरोपियन अफसर घायल हुए। परन्तु अपनी शक्ति को निर्बल समझ कर रात को निम्बाहेड़ा का हाकिम और उसके सब साथी तथा सिपाही किला खाली कर भाग गये। दूसरे दिन सवेरे निम्बाहेड़ा पर अंग्रेज तथा मेवाड़ी सेना का अधिकार हो गया। कप्तान शावर्स ने बतौर अमानत के 19 सितम्बर को निम्बाहेड़ा शहर एवं जिला महाराणा के सुपुर्द कर दिया।[19] और निम्बाहेड़ा के पटेल तारा पर वहां के हाकिम को सहायता देने तथा नीमच के चपरासी को मरवा डालने का दोष लगाकर तोप से उड़वा दिया।[20]

18– शावर्स, पृ. 97-112; सहीवाला अर्जुनसिंह का जीवन चरित, भाग-1, पृ. 59

19– शावर्स–एक मिसिंग चेप्टर आफ द इंडियन म्यूटिनी, पृ. 62,
अनुमानतः सवा दो वर्ष तक निम्बाहेड़ा जिले पर मेवाड़ का अधिकार रहा और फिर अंग्रेजी सरकार की आज्ञा से यह टौंक के नवाब को वापस दे दिया गया।
वीर विनोद भाग–2, प्रकरण–18

20– रा.अ. जार्ज लारेन्स का पत्र शावर्स को, 5 सितम्बर, 1857, फाइल नं. 23, भाग–1, नं. 374, पृ. 41 लायड का पत्र लारेन्स को, 12 सितम्बर 1857, फाइल नं. 1, म्यूटीनी, भाग 3 नं. 40, पृ. 4 खरीता महाराणा स्वरूपसिंह का केनिंग को, 25 जून 1858, फाइल नं. 12 डा० वशिष्ठ राजपूताना ऐजेन्सी, पृ. 266–267

22 अक्टूबर, 1857 को निम्बाहेड़ा का हाकिम नीमच जिले के जीर्ण गांव पर मंदसोर के क्रान्ति दल को चढा लाया। जब यह खबर नीमच पहूंची तब उनका सामना करने के लिये 400 सिपाही तथा दो तोपें साथ लेकर कप्तान लॉयड, कप्तान सिमसन, कप्तान बेनीस्टर आदि 11 फौजी अफसर दूसरे दिन सायंकाल उक्त गांव में आ पहुंचे। वहां क्रान्तिकारियों से उनकी लड़ाई हुई, जिसमें अंग्रेजों की भारी हार हुई। हार कर सैना सहित वे अठाणा, पीपल्या, जावद, चित्तौड़ आदि स्थानों तक भाग खड़े हुए। इस युद्ध में अंग्रेजी सैना के दो अफसर कप्तान रीड तथा कप्तान टुकर मारे गये और पांच घायल हुए। [21]

जीरण–नींबाहेड़ा आदि में क्रान्ति :

जीरण में अंग्रेजों को हरा देने से मन्दसौर के क्रान्तिकारियों की हिमायत यहां तक बढ़ गई कि 8 नवम्बर को ये दो हजार सिपाहियों के साथ नीमच पर चढ आये। कप्तान बेनिस्टर की अध्यक्षता में 250 सवार उनका सामना करने के लिये आगे बढ़े छावनी के पीछे एक नाले के पास चार घन्टे तक लड़ाई हुई। इसके बाद बेनिस्टर और उसके सिपाही मैदान छोड़कर नीमच के किले में जा घुसे। इसी मध्य मेवाड़ के तीन सौ सवारों के साथ कप्तान शावर्स वहां जा पहुंचा। फिर लड़ाई छिड़ गई। बहुत देर तक दोनों ओर से गोलियां चलती रहीं। अन्त में शाम को लड़ाई बन्द होने पर कप्तान शावर्स, कर्नल जेक्सन, अर्जुनसिंह, सवाईसिंह, फूलचन्द तथा मेवाड़ के सरदार एवं सैनिक दाऊ होते हुए केसुन्दा चले गये। दूसरे दिन सवेरा होते ही क्रांतिकारियों ने छावनी को लूट कर जला दी और किले को घेर लिया। इसके उपरांत जावद, रतनगढ़, सींगोली आदि नीमच के आस-पास के कस्बों में भी क्रांति फैल गयी। ज्योंही यह समाचार केसून्दा में कप्तान शावर्स को मिला, त्योंही वह लेफ्टीनेन्ट फारुख हुसैन को साथ लेकर वहां से चला और बागाणा में क्रांतिकारियों के ठहरने की खबर पाकर वहां पहुंचा। वहां उनसे उसकी लड़ाई हुई, जिसमें बहुत से क्रान्तिकारी तो खेत रहे और शेष तितर बितर हो गये। इस लड़ाई में मेवाड़ की सेना के शिवदास काबरा तथा माधोसिंह राठोड़ मारे गये और शावर्स का गोपाल नामक चपरासी घायल हुआ। [22]

इस घटना के कुछ समय पश्चात् मालवा की ओर से मध्य भारत का ऐजेन्ट कर्नल ड्यूराण्ड मऊ के सिपाहियों को साथ लेकर मन्दसौर आ पहुँचा। वहां क्रान्तिकारियों से उसका सामना हुआ जिसमें फिरोज खां उससे हार कर भाग गया, पर उसके बहुत से साथी एवं सिपाही पकड़े और मारे गये। मन्दसौर और ड्यूराण्ड नीमच आया। उसके आते ही क्रांतिकारी भाग गये। इस प्रकार नीमच की रक्षा हो गई। [23]

21–शावर्स–वही. पृ. 114–116, 114 मु. ज्वाला सहाय, लॉइल राजपूताना, पृ. 181 84

22–शावर्स–वही, पृ. 110–32, सहीवाला अर्जुनसिंह का जीवन चरित्र, पृ. 64–68; रिपोर्ट, ए.जी.जी. फो.पो. रा.अ.

23–शावर्स–वही, पृ. 128–129; नीमच का वृत्तांत; ओझा, उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग–2, पृ. 770–674 मेलीसन, हिस्ट्री आफ इंडियन म्यूटीनी, भाग–4 पृ. 387; इंटेलिजेन्स रिपोर्ट, 28 अगस्त 1857, नं. 516, फो.पो; डा. सक्सेना, पोलिटिकल, अवेकनिंग, पृ. 55–58

निम्बाहेड़ा, नीमच, जीरन आदि स्थानों की अंग्रेजों की विजय का श्रेय अधिकांश में मेवाड़ के महाराणा के सैनिक सहयोग को दिया जा सकता है। इससे नीमच, खैरवाड़ा, मेवाड़ और बागड़ का भू-भाग क्रांति की लपेट से मुक्त हो गया। इससे ब्रिटिश सत्ता की नीमच, नसीराबाद तथा अजमेर के लिए संचार सुविधा सुधर गई और आवागमन के साधनों के लिए मार्ग प्रशस्त हो गया। सबसे बड़ा लाभ जो अंग्रेजों को मेवाड़ सहयोग से मिला वह यह था कि जो मेवाड़ी सरदारों का तबका ब्रिटिश राज का विरोधी था वह मारवाड़ में होने वाली घटनाओं में सक्रिय भाग न ले सका। इन क्षेत्रों में होने वाली सफलताओं ने आउवा की ब्रिटिश पराजय की कालिमा को कुछ हद तक आच्छादित कर दिया। जिसका वर्णन आगे के पृष्ठों में किया जाता है।[24]

आबू में संघर्ष:-

इसी बीच माउन्ट आबू में स्थित जोधपुर की सेना ने 21 अगस्त, 57 को प्रातः काल ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध विद्रोह कर दिया और नसीराबाद से आई हुई सेना भी उसमें मिल गई। उन्होंने अंग्रेजों की बेरकों पर धावा बोल दिया और कमाण्डेंट कप्तान हाल के मकान पर भी हमला किया। इस अवसर पर जर्नल लारेन्स ए.जी.जी. राजस्थान का पुत्र ए. लारेन्स बहुत बुरी तरह से घायल हो गया। क्रान्तिकारियों ने सरकारी खजाना लूट लिया। इसी मध्य दुर्भाग्य से उसी समय कोहरा छा गया जिससे ब्रिटिश सत्ता को अधिक क्षति नहीं हुई। वहां से क्रान्तिकारियों ने ऐरिनपुरा की ओर कूच किया। वहां प्यादे सवार और तोपची उनसे मिल गये। सबने मिलकर छावनी जलादी और उन्होंने अजमेर की ओर कूच किया।[25]

जोधपुर

आउवा (रियायत जोधपुर) में क्रान्तिकारियों की कार्यवाहियां :

क्रान्तिकारी लोग अब दूर दूर तक फैल चुके थे। एरिनपुरा में जोधपुर की सेना (जोधपुर लीजन) थी। उसने 21 अगस्त को विद्रोह करके एरिनपुरा की मुख्य सेना को दबा दिया और ले. कोरमोली को अपने साथ जाने पर विवश कर दिया। फिर क्रान्तिकारी आउवा के ठाकुर खुशालसिंह से मिल गये। खुशालसिंह ने भी खुले तौर पर विद्रोह कर दिया। कारण था कि खुशालसिंह और जोधपुर के महाराजा तथा अंग्रेजों में परस्पर अनबन थी। 8 सितम्बर 1857 को क्रान्तिकारियों और जोधपुर की राज

---

24 शावर्स, पृ. 85–110

25–वही, पृ. 25,

ए.जी.जी. की रिपोर्ट सैक्रेटरी को, रा.अ.

केपटिन हाल, 28 अगस्त, 1857, फा.नू 1, म्यूटीनी भाग–2,

लिस्ट नं. 39. पृ. 241,

ओझा, सिरोही राज्य का इतिहास, प. 311–312,

डा. वशिष्ठ, राजपूताना ऐजेन्सी, प. 269–270

सेना के युद्ध हुआ। इसमें जोधपुर की सेना को पाली के पास बिठूरा में आउवा की और जोधपुर की क्रान्ति समर्थक सेनाओं ने हरा दिया। महाराजा की सेना भाग गई, वह कुछ भी सामना नहीं कर सकी। भागती हुई सेना का पीछा करके क्रान्तिकारियों ने जोधपुर दुर्ग के किलेदार अनारसिंह और महाराजा के मंत्री को तथा कुछ अन्य लोगों को मार डाला। इस स्थिति में ले. हीटकोट बड़ी कठिनाई के साथ अपनी सम्पत्ति लेकर सोजत भाग निकला।[26]

जब जोधपुर दरबार की सेना को पाली में जोधपुर लीजन और आउवा के ठाकुर के सैनिकों ने हरा कर भगा दिया और वे अपनी तोपें, डेरे और युद्ध सामग्री छोड़ गये तो अंग्रेजी सेना में बड़ी खलबली मच गई। अब राजस्थान के ए.जी.जी. जार्ज लारेन्स ने ब्यावर में एक बड़ी सेना जुटाई। वह आउवा से पराजय का बदला लेकर ब्रिटिश प्रतिष्ठा को पुनः स्थापित करना चाहता था। जनरल लारेन्स ने 18 सितम्बर को आउवा पर चढ़ाई की। परन्तु तीन घन्टे की गोलाबारी करने पर भी वह क्रान्तिकारियों को दबा न सका और लज्जाजनक पराजय के साथ पीछे हट गया। इस हमले में अंग्रेजों की सबसे बड़ी क्षति हुई कि जोधपुर का पोलिटिकल एजेन्ट मोकमेसन (जो फौज के साथ था) और कई एक योरोपियन मारे गये।[27] क्रांतिकारियों ने केप्टिन मोकमेसन का सिर धड़ से अलग करके आउवा दुर्ग के द्वार पर लटका दिया। जनरल लारेन्स को पीछे हटकर चूलावास गांव में शरण लेनी पड़ी जो इस स्थान से तीन चार मील दूर था। 3 दिन वहां ठहर कर उसने नसीराबाद और अजमेर की ओर प्रयाण किया। जब इसकी खबर अंग्रेज सरकार को इंगलैण्ड में लगी तो जनरल लारेन्स के प्रति बड़ी अप्रसन्नता प्रकट की गई। यह कहा गया कि, "इस प्रकार चुप-चाप हार कर पीछे हटना अच्छा नहीं था क्योंकि इसका राजस्थान पर अच्छा प्रभाव नहीं पड़ेगा और अंग्रेज सरकार की प्रतिष्ठा पर धक्का लगेगा।" इस घटना से क्रान्तिकारियों का उत्साह बढ़ गया। उन्होंने मारवाड़ और मेवाड़ के लोगों के नाम एक अपील प्रकाशित की। यह अपील डीसा के विद्रोही नेता रिसालदार अब्दुल-अली, अब्बासअलीखां, शेख मोहम्मदबख्स और सूबेदार तथा जमादार और हिन्दू मुसलमान सैनिकों के नाम से प्रकाशित की गई थी। अपील निम्नलिखित थी—

"मेवाड़ और मारवाड़ के सरदार हमारे पक्ष में हैं। जो हमको धर्म के नाम पर सहायता देंगे उनको स्वर्ग में पुरस्कार प्राप्त होगा और बादशाह उनको वफादार समझ कर सम्मानित करेगा।"

---

26 मेसन का पत्र लारेन्स को, 10 सितम्बर, 1857, फाइल नं. रा.अ.; म्यूटीनी भाग-3, ए.जी.जी. की रिपोर्ट, एफ एण्ड पी.; नं. 3146–47, 31 दिसम्बर, 56; हीटकोट का पत्र, 13 सितम्बर, 1857, फाइल नं. 1, म्यूटीनी, भाग–3, रा.अ.

27. सी.एल. शावर्स–ए मिसिंग चेप्टर आफ इंडियन म्यूटीनी, पृ. 108

28. एफ. एण्ड पी. डिपार्टमेंट सीक्रेट कंसलटेशन दि. 27 नव. सन् 1857, नं. 249–251, रा.अ.

दस्त्री रेकार्ड, जोधपुर, बही नं. 18 पृ. 278–389, अ.बी.

अंग्रेजों को पूर्णतया दबोच देने के बाद आउवा के ठाकुर कुशलसिंह ने सैनिक सहायता प्राप्त करने हेतु अन्य ठाकुरों व मेवाड़ के सरदारों से पत्र व्यवहार करना आरंभ किया और अपनी स्थिति सुदृढ़ करने में लगा रहा। साथ ही वह स्वर्गीय धोकलसिंह के पुत्र को जोधपुर की गद्दी बिठाने का प्रयत्न करने लगा। 10 अक्टूबर 1857 को जोधपुर लीजन के और अन्य सैनिक जो ब्रिटिश सत्ता से विरोधी हो गये थे, वे आसोप के ठाकुर शिवनाथसिंह, गूलर के ठाकुर बिसनसिंह, आलनियावास के ठाकुर अजीतसिंह, बोगावा के ठाकुर, वन्ता के ठाकुर प्रेमसिंह, बेसवाना के ठाकुर चन्द्रसिंह और बुलगिरि के ठाकुर जगतसिंह के साथ बादशाह से सहायता लेने के लिए दिल्ली की ओर बढ़े। कुशालसिंह ने आउवा में 700 सैनिक रक्षार्थ तैनात किये।[29]

इसी बीच में मेवाड़ और मारवाड़ के ठाकुरों की गतिविधि को देखकर और आउवा पर पुनः कब्जा करने के लिये राजस्थान के ए. जी. जी. ने अंग्रेज सरकार से और अधिक सेना तुरन्त भेजने की प्रार्थना की। शीघ्र ही बम्बई से अतिरिक्त सेना आ गई। जब यह सेना आउवा के पास पहुंची तो नसीराबाद की भी कुछ सेना इससे आ मिली। अब अंग्रेजों का बल 1800 सैनिकों का हो गया जिसका नेतृत्व कर्नल होम्स ने किया। 20 जनवरी, 1858 को आउवा को घेर लिया गया। यह घेरा 5 दिन तक चला। उन्हीं दिनों बड़ा तूफान आया। मेघ गर्जन निरन्तर होता रहा है और घोर अन्धेरा हो गया। इस अन्धेरे में आउवा के कुछ सैनिक शत्रु को घेरने के लिए बाहिर निकल गये। आउवा से निकलने वाले सैनिकों का अंग्रेज समर्थक सैनिकों ने पीछा किया तो भागने वालों में से 18 तो मारे गये और 7 पकड़े गये। पुनः 124 आदमियों को सिन्ध के सवार पकड़ कर ले आये। इसमें से 25 को तो गोलियों से उड़ा दिया। फिर जांच से मालूम हुआ कि आउवा के चारों ओर रक्षा का दोहरा प्रबन्ध था। बाहर मिट्टी का कोट और अन्दर तोपखाना था। दुर्ग के चारों ओर बड़ा जोरदार जाबता था। दुर्ग की दीवार पर 50 तोपें चढ़ी हुई थीं। दुर्ग में 3 टन बारूद था और 3 हजार गोले थे। घूंस देकर किले के फाटक खुलवाये गये। फिर अंग्रेज सेना ने भीतर घुसकर इसी सामग्री से ठाकुर के महल को उड़ा दिया। आउवा के दुर्ग पर 24 जनवरी, 1958 को ब्रिटिश फौज का अधिकार हो गया। अंग्रेजों ने बदले की भावना से गांव को लूटा और आउवा के निवासियों को अमानवीय यातनाएं दी और उन पर निर्मम अत्याचार किये।[30]

आउवा के पतन का कारण स्पष्ट है, जहां अंग्रेजों की महती शक्ति और मारवाड़ के एक छोटे ठाकुर की कोई तुलना नहीं थी। अन्त में कुशलसिंह ने जो कोठारिया में जाकर रहने लगा था 8 अगस्त, 1860 को नीमच में ब्रिटिश शक्ति के समक्ष आत्म समर्पण कर

---

29. फो.पो. दि. 18 दिसम्बर, 1857 नं. 214–12, रा.अ.

30– पत्र नं. 497 ता. 29 अक्टूबर 1857, एच. एल. एडरसन, 17 नवम्बर, 1856 रा. अ.

होम का लारेन्स को पत्र 25 जनवरी, 1858 फाइल नं. 36, म्यूटीनी, 1857–58 रा. अ.

दिया । अजमेर में ऊपर लगाये गये दोषों की जांच की गई और उसको दोषमुक्त किया गया, परन्तु वह अपनी जागीर न जा सका। जब उसकी मृत्यु हो गई तब उसके पुत्र देवीसिह ने 1868 में आउवा की जागीर प्राप्त की।[31]

इसी प्रकार अपनी प्रतिकार की भावना से लारेन्स ने आसोप, गूलर तथा आलणियावास के ठिकानो के गढ़ों को नष्ट करवा दिये । इन ठिकानों के जागीरदार शिवनाथ सिंह, विशनसिंह व अजीतसिंह कुशालसिंह के सहयोगी थे और नारनोल तक पहुंच कर क्रांति को बढ़ावा देने में सक्रिय थे। आसोप के ठाकुर ने नारनोल से लौटकर आउवा की पराजय का बदला लेने के लिए 35 दिन तक राजकीय फौजों से बडसू नामक स्थान पर भीषण युद्ध किया। जब उसने आत्म समपण कर दिया तो उसे जोधपुर के किले में बन्दी बना लिया गया और उसकी जागीर जप्त करवादी गई। ठाकुर विशनसिंह और ठाकुर अजीतसिंह की गूलर और आलणियावास की जागीरों को भी जप्त किया गया। यही दशा बगड़ी ठाकुर की की गई। इन पर मुकदमें चलाये गये और उन्हें दण्डित किया गया।[32]

इस सम्पूर्ण काण्ड का अन्त कुछ भी रहा हो, यह तो अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा कि आउवा की घटना ब्रिटिश सत्ता के विरोध की एक बहुत बड़ी कड़ी थी । कुशलसिह की गतिविधि एकांकी न होकर मेवाड़ और मारवाड़ के कई सरदारों की अंग्रेजों की शक्ति के विरुद्ध निर्धारित योजना थी। ब्रुक और शावर्स के पत्र[33] जो इन ठाकुरों के आपसी पत्र व्यवहारों पर प्रकाश डालते हैं इस बात के प्रमाण हैं कि राजस्थान में ब्रिटिश सत्ता को उखाड़ फेंकने की तीव्र लगन थी। यह दूसरी बात है कि इसमें सफलता नहीं मिली, परन्तु निःसन्देह आगे होने वाली विरोधी हलचलो के लिए आउवा एक भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम का अधिदेय बना। आज भी मारवाड़ के अंचल में कुशालसिंह और उसके सहयोगियों की वीर गाथाएं गीतों की ध्वनि में बड़ी श्रद्धा से गाये जाते हैं। उसके बलिदान की छाप जन मानस के पटल पर अद्यावधि अंकित है।

जयपुर :

जयपुर में इस संग्राम के प्रति दो प्रकार के रुख थे। महाराजा के विचार अंग्रेज सरकार के अनुकूल थे और दीवान के विचार उसके प्रतिकूल थे। जब महाराजा रामसिंह नाबालिग था तो ठाकुरों को अंग्रेज सरकार से कोई सहानुभूति नहीं थी, फिर भी

31—फो.पो.कर्नल होम्स का पत्र ए.जी.जी. के नाम दि. 30, दिसम्बर 1859 नं. 1860—61, फाइल नं. 84, रजिडेन्सी, रेकार्ड रा.अ.

32—ऐजेन्सी रेकार्ड, नं. 66 फा. नं. 34, म्यूटीनी 1858—59, पृ. 3.28, रा.अ.; फो.पो, कन्सलटेशन, सीक्रेट, 28 मई, 1858, नं. 333; हकीकत बही, नं. 18, पृ. 403, अ.बी. : सनद बही, 126, 128, पृ. 328, 716 अ.बी.; डा. रा. पी. व्यास-रोल आफ नोबिलिटी इन मारवाड़, पृ. 140; डा. पी. व्यास-राजस्थान का स्वतन्त्रता का इतिहास, पृ. 110-111

33—शावर्स एवं ब्रुक के पत्र नं. 90, नं. 45, 25 मार्च व 26 नवम्बर, 1858, रा.अ.

महाराजा रामसिंह अंग्रेजों का मित्र बना रहा। जब जयपुर का पोलिटिकल ऐजेन्ट क्रान्तिकारियों की सेना को रोकने के लिये गया तो उसकी पत्नी और बच्चों को महाराजा ने अपने महल में सुरक्षित रखा। रावल शिवसिंह की (जयपुर का मन्त्री) अंग्रेजों से कोई सहानुभूति नहीं थी। उसने दिल्ली जाकर वहां की सैनिक स्थिति को देखा था। उसने युवा महाराज रामसिंह को यह सलाह दी थी कि दुहरी चाल चलनी चाहिए। जैसे हाथी के दांत खाने के और और दिखाने के और होते हैं वैसी ही राजा की नीति होनी चाहिये। उसका जयपुर के सैनिकों पर प्रभाव था जिससे जयपुर के सैनिकों ने क्रान्ति के समय में अंग्रेजों के साथ कोई सहयोग नहीं किया।[34] केप्टन हार्डकासल ने लिखा था कि "अंग्रेज सरकार जयपुर गवर्नमेन्ट के इस दावे से सन्तुष्ट नहीं हैं कि उसने अंग्रेज सरकार की सहायता करने में हृदय से साथ दिया और विद्रोह का दमन करना चाहा।" जयपुर के कई बड़े बड़े अफसर नबाब विलायत अलीखां, मियां उस्मान खां तथा फोजदार सादुल्ला खां दिल्ली गये थे, इनमें शिवसिंह प्रमुख था। जब वे लोग दिल्ली से वापिस आये और इनके अंग्रेज विरोधी विचार प्रकट हुए तो इनको गिरफ्तार कर लिया गया। इनके कुछ ऐसे पत्र भी पकड़े गये जो अंग्रेज विरोधी थे और जब उनको महाराजा के सामने रखा गया तो इनको अपराधी घोषित किया गया। उस्मान खां के घर की तलाशी हुई तो 200 हथियार मिले। इनमें विलायत खां और उस्मान खां को एक ही जिले के दो बुर्जों में अलग-अलग दुर्गों में रखा गया। सादुल्ल खां को देश निकाला दिया गया। इस प्रकार यद्यपि जयपुर में कोई उल्लेखनीय घटना, रक्तपात या लूटमार तो नहीं हुई लेकिन क्रांति की लहर से जयपुर अवश्य प्रभावित हुआ [35]

कोटा

कोटा के पोलिटिकल एजेन्ट मेजर बर्टन का वध :

15 सितम्बर, 1857 को मेजर बर्टन कोटा का पोलिटिकल एजेन्ट नियुक्त किया गया। वह उस समय नीमच में था। उसको कोटा बुलाने के लिए महाराव कोटा ने नन्द किशोर के साथ उसके लिये बग्गी और सवार भेजे। मेजर बर्टन अपनी पत्नि, पुत्री और

34- फो.सी. मोरिसन का पत्र जार्ज लारेन्स को, 14 फरवरी नं. 234;
फो.पो. केप्टन हार्डकासल का केप्टिन एडन के नाम पत्र दि. 30 दिसम्बर, 1859 नं. 777। वास्तव में केप्टन हार्डकासल और कैप्टन एडन पोलिटिकल ऐजेन्ट जयपुर में जयपुर की सेना का अंग्रेज सरकार की सेना से सहयोग के विषय में विवाद था। केप्टन एडन ने केप्टन हार्डकसल को रिपोर्ट का जोरदार विरोध किया था कि जयपुर के सैनिकों ने अंग्रेजों की सेना का साथ नहीं दिया। परन्तु केप्टन एडन ने जयपुर महाराज और जयपुर की सेना की प्रशंसा की थी। देखो-फो.पो. केप्टन एडन का पत्र ए.जी.जी. के नाम दिनांक 14 अगस्त 1857 नं. 777, फो.सी. दि. 30-12-1859, रा.अ.

35-पर्लियामेंट्री पेपर्स, नं. 77, पृ. 130-132
ए. जी. जी. की रिपोर्ट सेकेट्री गवर्नमेंट आफ इंडिया के नाम, रा. अ.

तीन पुत्रों को नीमच में ही छोड कर अपने दो पुत्रों के साथ कोटा के लिये रवाना हुआ और 12 अक्टूबर को कोटा पहुंचा। जैसे ही बर्टन और उसके पुत्र कोटा पहुंचे तो महारावल उनसे मिला। यह भेंट अजण्टी बंगले पर हुई। इसके बाद महाराव और पोलिटिकल एजेन्ट में गुप्त वार्ता हुई। उस अवसर पर वकील नन्दकिशोर के सिवाय वहां कोई नहीं था। पोलिटिकल एजेन्ट ने महाराव से आग्रह किया कि उन अफसरों को जो असन्तुष्ट हैं बर्खास्त कर दिया जाये।[36]

मेजर बर्टन के आने के पूर्व कोटा में अंग्रेजों के विरुद्ध विरोधी भावनाएं घर कर गई थी वहां की जनता और वहां की राजकीय सेना में अंग्रेजों के प्रति आक्रोश था। इस प्रकार की स्थिति उत्पन्न करने का उत्तरदायित्व लाला जयदयाल और मेहराबखान का था। जयदयाल गोकुल निवासी था और हाड़ौती ऐजेन्सी तथा कोटा राज्य में वकील का काम करता था। परन्तु स्वतंत्र विचार का व्यक्ति होने से उसकी सेवाएं समाप्त कर दी गई थी। इसी प्रकार मेहराबखां पलटन में रिसालदार था। इन दोनों व्यक्तियों ने सैनिको को अंग्रेजी सत्ता की जंजीर को तोड़ने की प्रेरणा दी थी।

15 अक्टूबर को मध्याह्न समय कोटा राज्य की पलटन ने, जिसमें लगभग तीन हजार क्रान्तिकारी थे एकाएक रेजीडेन्सी को घेर लिया। राज्य गार्ड को जिसमें सिख और बैरागी थे, क्रान्तिकारियों ने इतना दबा लिया कि वे उनका कुछ भी सामना नहीं कर सके। क्रांतिकारियों ने मेजर बर्टन और उसके दो पुत्रों को तथा मिस्टर शॉल्डर, सब असिस्टेन्ट सर्जन को तथा एक हिन्दुस्तानी ईसाई डाक्टर को मार डाला। उन्होंने मेजर बर्टन का सिर काटकर शहर में घुमाया और बन्दुक से उड़ा दिया। इस सम्पूर्ण घटना में मेहराबखां और लाला जयदयाल सम्मिलित थे और उनका नेतृत्व था।[37]

अंग्रेज अफसरों का ऐसा अनुमान था कि मेजर बर्टन का वध करने की योजना कोटा महाराव ने बनाई थी। इसी लिये उसको ऐसे समय में नीमच से वापस बुलाया था। राजस्थान के ए. जी. जी. ने लिखा है कि महाराव को विवश करके विद्रोहियों ने 9 शर्तों की एक सन्धि लिखवाई थी जिसमें मुख्य शर्त यह थी कि पोलिटिकल ऐजेन्ट को मार कर जयदयाल को मुख्य कार्यकर्त्ता नियुक्त किया जायेगा। इस बात की जांच करने के लिये एक आयोग नियुक्त किया गया था। आयोग ने महाराव को तो निर्दोष माना परन्तु मेजर बर्टन को नीमच से कोटा बुलाया इसके लिये महाराव को ही उत्तरदायित्व माना गया। आयोग ने महाराव को दोषमुक्त कर दिया तो भी उस समय अंग्रेजों में यह बात मानी जाती थी कि पोलिटिकल ऐजेन्ट और दूसरे अंग्रेजों को मारने का दोष कोटा के महाराव पर ही है। वास्तव में बर्टन के बध में महाराव का हाथ हो या नहीं अंग्रेज सरकार राजस्थान के एक अंग्रेजी राजा को अपराधी मानना उचित नहीं समझती थी। यदि ऐसा किया जाता तो कोटा में एक काफी बड़ी सेना रखनी पड़ती थी। उस समय सारे नगर में

36–ए.जी.जी. रिपोर्ट टू दी सेक्रेटरी जी.ओ.आई. रा.अ.

37–बापू श्रीपतराय का पत्र ब्रिगेडियर जर्नल लारेन्स को, 16 अक्टूबर 1857, नं. 553, फोखसी 0; ट्रेवर, चेपटर आफ इन्डियन म्यूटीनी, पृ. 12–13

उत्तेजना फैली हुई थी और एक बड़ी सेना के बिना क्रान्तिकारियों से शस्त्र नहीं डलवाये जा सकते थे ।[38]

कोटा महाराव ने सैनिक सहायता मांगी :

इस घटना के बाद क्रान्तिकारियों ने राज्य के खजाने, शस्त्रागार, भण्डार, इमारतें और कोतवाली पर कब्जा कर लिया । कोटा में 5 माह तक क्रान्तिकारियों का आधिपत्य रहा । नगर निवासियों और साहूकारों से खूब सहयोग मिला । महाराव अपने दुर्ग में कैदी की भांति रहता था । महाराव को नहीं सूझता था कि अपने प्राणों की रक्षा कैसे करे । वह अंग्रेजी सेना के आगमन का इन्तजार कर रहा था । उसने अपने रिश्तेदार राजाओं से भी सहायतार्थ प्रार्थना की थी परन्तु उसे तत्क्षण कोई भी सहायता उपलब्ध नहीं हुई । थोड़े समय के बाद करौली से प्राप्त सहायता से महाराव की स्थिति में कुछ सुधार होने पाया ।[39]

कोटा पर पुन: महाराव का कब्जा :

जब ए.जी.जी ने देखा कि कोटा की स्थिति बड़ी नाजुक है और शेरगढ़ की सैनिक टुकड़ी ने भी विद्रोह कर दिया है तो उसने बम्बई से सेना मंगवाई । पांच हजार पांच सौ सैनिक के साथ जनरल राबर्ट्स ने कोटा पर हमला किया । 29 मार्च को ब्रिटिश सेना द्वारा नगर पर गोलियां चलाना और गोले बरसाना प्रारम्भ हुआ । यह गोलाबारी लगातार एक सप्ताह तक होती रही । फिर सेना के कुछ दल नगर में घुस आये । इस पर अधिकांश क्रन्तिकारी भाग निकले परन्तु जयदयाल वकील का भाई हरदयाल संघर्ष में मारा गया । मेहराबखां का भाई करीमखां पकड़ा गया और उसे फांसी दी गई । कई क्रांतिकारियों को गोली से उड़ा दिये गये । अंग्रेजी सेना ने सारे नगर को लूट लिया और मकानों को धराशाही कर दिया । यहां तक कि कई ग्रामीण जनता पर जुर्माने किये गये और कोटा के कई गांवों को उजाड़ दिया गया, क्योंकि इन्होंने क्रान्तिकारियों को सहायता दी थी । इससे जनता के देश प्रेम और अंग्रेजो की बदले की भावना का पता चलता है । यहां तक कि जयदयाल के समर्थकों के मकान व खेत नष्ट कर दिये और कईयों के टुकड़े टुकड़े कर दिये ।[40]

---

38. एडन का पत्र, नं. 80, 28 अक्टूबर, 1857; फाइल नं. 2; म्यूटीनी, रेजीडेन्सी रेकार्ड, फो. पी. 5 अगस्त, 1859, नं. 328, रा. अ.

39. फो. सी. महाराव कोटा का खरीता ए. जी.जी. राजस्थान के नाम दिनांक 6 मार्च, 1858 नं. 342-43, एवं 28 मई 1858, रा. अ.

40. फाईल नं. 32, 1857, भाग-1, रोबर्ट्स का पत्र लारेन्स को दि. 21 जुलाई 1858 रा. अ.; ए.जी.जी. की रिपोर्ट सेक्रेट्री गवर्नमेंट आफ इण्डिया के नाम; मुन्शी ज्वाला सहाय, लायल राजपूताना, पृ. 324,-325; खड़गावत-राजस्थान स्ट्रगल, पृ० 65-68

जयदयाल और मेहराबखां का मूल्यांकन :

कोटा की क्रान्ति में जो देश भक्ति की गंध का अनुभव हम करते हैं उसका श्रेय जयदयाल एवं मेहराबखां को जाता है। इन्हीं व्यक्तियों ने सैनिकों को अपने धर्म और अधिकार के लिए लड़ने को प्रेरित किया। इनका युद्ध कौशल भी सराहनीय है कि उन्होंने लगभग 6 माह तक विद्रोह का झन्डा उठाये रखा और कोटा में अपनी शासकीय व्यवस्था स्थापित की। गांव गांव और तहसील तहसील के शासन का भार उठा कर जनमत को अपने पक्ष में लिया। इस दौरान ग्वालियर महाराज को जो पत्र लिखा गया था उसमें इन दोनों क्रान्तिकारियों की कूटनीति स्पष्ट झलकती है बड़ी चतुराई से बर्टन की हत्या में अपने को निर्दोष बतलाते हुए इस पत्र में हत्या का उत्तरदायित्व महाराज पर धकेला गया और वहां से सैनिक सहायता प्राप्त करने के लिए विद्रोही शिवपुर के राजा को पकड़ने और दलबल से ग्वालियर महाराज की सेवा करने तथा कोटा का कुछ भाग ग्वालियर राज्य के हवाले करने का आश्वासन उनकी कुशल कूटनीति का परिचायक है। अंत में जब कोटा को ब्रिटिश पंजे से मुक्त कराने की आशा न रही फिर भी अंतिम दम तक इन दोनों ने क्रांति की मशाल उज्वलित रखने में कोई कसर नहीं रखी।[41]

जब कोटा में अंग्रेजी फौजें आगजनी और हत्याओं के नृशंस कार्य में लगी हुई थी तो ये दोनो क्रान्तिकारी किसी तरह वहां से पुनः संगठन के लिए निकल पड़े। मेहराबखां गुडगांव व फिरोजपुर की ओर गया परन्तु वह 12 दिसम्बर 1859 को पकड़ लिया गया। देवली की अदालत में उस पर मुकदमा चलाया गया और उसे दोषी ठहराकर जुलाई 1860 को फांसी की सजा सुनाई गई। उसे कोटा ऐजेन्सी बंगले के निकट नीम के पेड़ पर फांसी पर लटकाया गया। इसी प्रकार जयदयाल भी पारूण, ग्वालियर, बीकानेर, काल्पी आदि स्थानों में फकीर बनकर घूमता रहा। परन्तु लीलिये नाम के व्यक्ति ने 9,000 रु० के इनाम के प्रलोभन में जयपुर के पास नन्दकुंड के निकटवर्ती गांव में उसे धोके से गिरफ्तार करवा दिया। उसके विरुद्ध भी मुकदमा चलाया गया जिसके फलस्वरुप 17 सितम्बर 1860 ई० को उसे भी कोटा एजेन्सी बंगले के सामने वाले नीम के वृक्ष पर फांसी से लटका दिया गया। इन दोनों वीरों के बयान जो देवली की अदालत के सामने दिये गये थे उनको पढ़ने से पाठक में देशप्रेम के भाव उमड़ पड़ते हैं और लगता है कि किस लगन से इन्होने देश की आजादी के लिए अपना बलिदान किया था। अंग्रेज अधिकारी कितने निष्ठुर थे कि उन्होंने उन्हें उसी बंगले के सामने फांसी दी जहां बर्टन की हत्या की गई थी। ये अंग्रेजों की कुत्सित प्रतिकार की प्रवृति का द्योतक है। स्मरण रहे कि ये फांसी लटकने वाले साहसी वीर अपने निजी स्वार्थ से प्रेरित नहीं थे, उन्होने केवल जन भावना का प्रतिनिधित्व किया था और मातृभूमि को विदेशी चंगुल से मुक्त कराने के कर्तव्य का पालन किया था।[42]

41– गवर्नर जनरल सीक्रेट्री कमेटी डिस्पेच, 1858, नं. 14

42– फो.पो., 24 फरवरी, जुलाई, अगस्त, सितम्बर, 1860, नं. 6–9, 195–197, 428–436;
खड़गावत, राजस्थान रोल इन द स्ट्रगल आफ 1857, पृ. 68;
डा. मथुरालाल शर्मा, कोटा राज्य का इतिहास, भाग–2, पृ. 629;
डा. प्रकाश व्यास, राजस्थान का स्वाधीनता संग्राम, पृ. 137–143

झालावाड़

झालावाड़ में ऐसी महत्वपूर्ण क्रान्ति की घटना नहीं हुई। अलबत्ता 25 नवम्बर, 1857 को राजराणा झालावाड़ ने एक घोषणा 43 जारी की और लोगों को आह्वान किया कि नीमच के प्रसिद्ध क्रान्तिकारी हीरासिंह को जो व्यक्ति पकड़वा देगा उसको 1000/– रुपये और जो अन्य साधारण क्रांतिकारियों को पकड़वा देगा उसको 20/– रुपये और जो सवार को पकड़वाएगा उसको 10/ रुपये पुरस्कार दिया जाएगा। जब अंग्रेजी सेना ने दिल्ली पर दुबारा कब्जा कर लिया तो झालावाड़ के राजराणा ने खुशी मनाई और राजस्थान के ए.जी.जी. को बधाई भेजी और यह इच्छा प्रकट की कि भारत में अंग्रेजों का सर्व सम्पन्न साम्राज्य जम जाये। इससे लोगो को पता लग गया कि राजाओं में कोई देश-भक्ति नहीं है। वे तो अंग्रेजी साम्राज्यवाद के समर्थक हैं।

बीकानेर

बीकानेर में कोई विद्रोह नहीं हुआ। उसकी सीमा पर जो पंजाब से और हरियाणा से मिली हुई थी। क्रांतिकारियों ने बीकानेर के कुछ गांवों पर कब्जा कर लिया था। इसको पुनः प्राप्त करने के लिये महाराजा ने अपनी सेना का स्वयं नेतृत्व करके उससे कई लड़ाइयां लड़ीं और उनसे गांव वापस छीन लिये। इस लड़ाई में 400 विद्रोही मारे गये और कुछ बंदी बना लिये गये। इसके अतिरिक्त महाराजा ने 1700 सिपाही हिसार पर कब्जा करने के लिये रवाना किये और हांसी के विद्रोहियों के विरुद्ध 21 जुलाई 1857 को 1000 सैनिक और दो तोपें भेजी। महाराजा की सैनिक सहायता को अंग्रेज सरकार ने प्रशंसनीय माना और यह सुझाव गया कि हिसार जिले के 41 गांव महाराजा को भेंट कर दिये जायें। महाराजा बीकानेर ने समस्त सूबेदार, रिसालदार, अफसर और जमादारों के नाम अपील जारी की कि वे विप्लवकारियों की सहायता न करें और बिना शर्त ब्रिटिश सेना के सामने आत्मसमर्पण कर दें। मगली और तोशाम के आक्रमण में अंग्रेजों को मुंह की खानी पड़ी जिसमें भोकमसिंह, मिट्ठुसिंह और खुमाणसिंह मारे गये। जो बीकानेर की सेना जमालपुर भेजी गई उसने क्रांतिकारियों को परास्त किया। संभवतः सभी देसी राजाओं में बीकानेर के महाराजा अंग्रेजों को सहायता देने में सबसे आगे थे। 44

डूंगरपुर

1857 में जब भारत में क्रान्ति का प्रादुर्भाव हुआ तो महारावल उदयसिंह ने नीमच की आन्दोलनकारी सेना को रोकने में अंग्रेजों की बड़ी सहायता की और खेरवाड़ा छावनी के भीलों को क्रान्ति समर्थक नहीं होने दिया। इससे प्रसन्न होकर भारत सरकार ने उसे कृतज्ञता सूचक खरीता भेजा और गोद लेने की सनद भी प्रदान की।[45]

---

43. फो.सी. दि. 29 जनवरी 1958 नं. 249-250. रा.अ; काय–द हिस्ट्री इण्डियन म्यूटीनी, भाग–1

44. फो. सी.–लेफिटनेन्ट माइड की रिपोर्ट, 18 दिसम्बर, 1853, नं. 35–36; फो. पो. आर. एच. डेविस का पत्र दिनांक 29 जनवरी 1858 का पंजाब के सेक्रेटरी और भारत सरकार के सेक्रेटरी के नाम 29 जनवरी, 1958, 289–90

45. ओझा, डूंगरपुर राज्य का इतिहास, पृ. 162

बांसवाड़ा

1857 की क्रान्ति से बांसवाड़ा भी प्रभावित होने से नहीं बच सका। यहां के कुछ सरदार भी क्रान्तिकारी हो गये। परन्तु कुशलगढ़ के रावने क्रान्तिकारियों को रोकने का प्रयत्न किया परन्तु उसे उसमें सफलता नहीं मिली। क्रान्ति की इस सेवा के उपलक्ष में अंग्रेज सरकार ने कुशलगढ़ के राव हमीरसिंह राठौड़ को खिलअत देकर सम्मानित किया।[46]

प्रतापगढ़

महारावल ने अपने इलाके में क्रान्तिकारियों का जमाव नहीं होने दिया और अंग्रजों की मदद के लिये अपनी सेना नीमच में भेजी क्रान्तिकारी दल तातिया टोपे की अध्यक्षता में भीण्डर के पहाड़ी रास्तों से होकर प्रतापगढ़ की तरफ पहुंचा। उस वक्त तीन चार हजार भील भी इनके साथ सम्मिलित हो गये थे, लेकिन वे 13 दिसम्बर को मेजर राक के पहुंच जाने से प्रतापगढ़ को न लूट सके और भाग गये। इस सेवा के उपलक्ष में ब्रिटिश सरकार ने महारावल दलपत सिंह को गोद लेने की सनद दी।[47]

शाहपुरा

जब नीमच छावनी के क्रान्तिकारी शाहपुरा में ठहरे हुए थे तो कप्तान शावर्स उनका पीछा करता हुआ शाहपुरा पहुंचा। वहां के राव लक्ष्मणसिंह ने उस समय कप्तान शावर्स की कोई मदद नहीं की और न किले के दरवाजे ही खोले। तथापित अंग्रेज सरकार ने शाहपुरा को भी दूसरी रियासतों की तरह गोद लेने के अधिकार की सनद दी।[48]

अलवर

अलवर राज्य का शासक बन्नेसिंह और उसका उत्तराधिकारी अल्पवयस्क पुत्र शिवदानसिंह क्रांति के विरोधी थे। क्रान्ति के समय दिल्ली में सैकड़ों क्रान्तिकारियों ने वहां से भाग कर अलवर में शरण ली जिनका समर्थन जनता व सैनिकों ने किया। उनको अलवर की पुलिस ने पता लगाकर गिरफ्तार कर लिया और उन लोगों को दिल्ली के अफसरों के सुपुर्द कर दिया गया। फिर भी जनता ने अपनी विरोधी भावना का जमकर प्रदर्शन किया। इस स्थिति से राज्य को भारी क्षति उठानी पड़ी और प्रशासन को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा अलबत्ता इस हलचल में न कोई अंग्रेज अलवर के सैनिकों में कोई मारा गया या आहत हुआ।[49]

---

46. अर्सकिन गजेटियर, पृ. 164; शावर्स, मिसिंग चेप्टर, पृ. 138
47. शावर्स पृ. 113–20; ओझा, प्रतापगढ़ राज्य का इतिहास, पृ. 287–293
48. शावर्स–ए मिसिंग चेप्टर ऑफ द इण्डियन म्यूटीनी, पृ. 39–40
49. पोलिटिकल ऐजेन्ट जयपुर का ए.जी.जी. को पत्र दिनांक 31 दिसम्बर 1855, नं. 3146–47, रा.अ.

भरतपुर

भरतपुर आगरा के निकट ही स्थित है। जो कुछ आगरा में हुआ उसका प्रभाव भरतपुर पर पड़े बिना नहीं रह सकता था। 31 मई 1857 को भरतपुर की सेना ने ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। इससे भरतपुर के सरदारों, अफसरों और कर्मचारियों में बड़ी सनसनी तथा उत्तेजना फैल गई। उन लोगों ने मेजर मोरीसन (पोलिटिकल ऐजेन्ट भरतपुर) से आग्रह किया कि वह तुरन्त ही भरतपुर छोड़कर चला जाये क्योंकि उन्हें यह भय था कि क्रान्तिकारी सैनिक कहीं रेजीडेन्सी पर हमला न कर दें। वहां की सेना में अधिकांश मुसलमान और पूर्बिया सिपाही थे, और यह भी संभावना थी कि भरतपुर में अंग्रेजों की विद्यमानता से उत्तेजित होकर नीमच के क्रान्तिकारी भी कहीं भरतपुर को न लूट लें। पहिले तो मोरीसन ने भरतपुर से आगरा जाना पसन्द नहीं किया परन्तु जब 5जुलाई 1857को शाहगंज के पास लड़ाई हुई और अंग्रेजी सेना को आगरे के किले में बन्द कर दिया तब मेजर मोरीसन ने स्थिति को नाजुक समझ आगरा जाना स्वीकार कर लिया। अब विद्रोही सेना के जत्थे भरतपुर से गुजरते थे एवं गुजर और मवाती अंग्रेजी सत्ता का विरोध लगातार कर रहे थे ऐसी स्थिति में भरतपुर का वातावरण सम्पूर्ण क्रांति काल में तनावपूर्ण ही बना रहा।[50]

धौलपुर

धौलपुर के महाराजा भगवंतसिंह ने भी अंग्रेजों को भारत में अपनी स्थिति दृढ़ करने के लिये बड़ी सहायता दी। यहां तक कि उन्होंने मथुरा और करौली की सीमा पर एक परगना में जहां पर स्थिति बड़ी भयंकर होती जा रही थी, एक सेना भेजी। ग्वालियर से जो शरणार्थी धौलपुर आ रहे थे उनका आतिथ्य किया गया गया और उनको सुरक्षित आगरा पहुंचाया गया। परन्तु राज्य की सेना ने और सरदारों ने क्रांतिकारियों के प्रति सहानुभूति प्रकट की। अंग्रेज अफसरों को यह आशंका थी कि महाराजा के कुछ ऊंचे अधिकारी क्रांतिकारियों से मिल गये थे। केप्टन निक्सन ने जो पोलिटिकल ऐजेन्ट था सरकार अंग्रेज के सेक्रेट्री को लिखा कि–"महाराजा की शक्ति समाप्त हो गई है। उसके दरबार को लूट लिया गया है और उसके जिले से बलपूर्वक धन इकट्ठा किया जा रहा है।" वास्तव में उसकी स्थिति अच्छी नहीं थी। विरोधियों ने उसको सब ओर से घेर लिया था और उस पर कड़ा दबाव डाला जा रहा था, यहां तक कि उसको जान से मार डालने की धमकी दी जा रही थी। इसलिए विवश होकर उसने उनकी मांगों को स्वीकार करना हितकर समझा। राव रामचन्द्र ओर हीरालालजी के नेतृत्व में 1000 क्रांतिकारी राज्य की अधिकांश तोपें लेकर आगरा की तरफ कूच करने लगे, परन्तु उन्हें ब्रिटिश सेना ने तितर-बितर कर दिया और उससे शस्त्रास्त्र डलवा लिये। क्रांतिकारियों के प्रभाव से बचने के लिये महाराजा ने पटियाला के महाराजा से सहायता के लिये प्रार्थना की। पटियाला के साथ उसका वैवाहिक संबंध था तब महाराजा पटियाला ने जो पंजाब का चीफ कमिश्नर भी था। 2,000 सिख सैनिक और 4 तोपें रक्षार्थ और व्यवस्था स्थापनार्थ

50–फो.सी.दि. 25 सितम्बर, 1857, नं 436–40 रा.अ.

रवाना की। इससे धौलपुर में व्यवस्था स्थापित हो गई क्योंकि इतनी बड़ी सेना और तोपों का मुकाबला करने का सामर्थ्य क्रांतिकारियों में नहीं था। [51]

करौली

करोली छोटी सी रियासत है। यह क्रान्ति के केन्द्रों से दूर थी। फिर भी वहां पर क्रांति हुई जो बहुत आसानी से दबा दी गयी। अंग्रेजों को भारत में राज्य सुरक्षित रखने के लिये करौली के महाराजा मदनपाल ने पूरी सहायता दी। जब मई, 1857 में क्रांति आरम्भ हुई तो उसने अपनी समस्त सेना आगरे की ओर रवाना कर दी और जितने सैनिक नये भर्ती किये जा सकते थे वे कर लिये। इसके अतिरिक्त महाराजा ने एक घोषणा अपनी प्रजा के नाम जारी की। इसमें सैनिकों की कार्यवाहियों की आलोचना की गई थी और प्रजा से कहा था कि क्रांतिकारी दल में कोई शामिल न हो और सरकार अंग्रेज पक्ष में लड़े। इसके अतिरिक्त महाराजा मदनपाल ने कोटा महाराव की भी, जो क्रांतिकारियों के भय से अपने गढ़ में स्वयं ही कैद हो गया था, सहायता की मदनपाल ने लगभग 2000 सैनिक कोटा भेज जिससे कोटा के महाराव को बड़ी सहायता मिली। [52]

टौंक

राजस्थान में सारी रियासतें राजपूतों की थी, केवल टौंक में ही मुसलमान नवाब था। सरकार ने राजस्थान के सब नरेशों और सरदारों के नाम एक परिपत्र जारी किया था जिसके उत्तर में टौंक के नवाब वजीरखां ने राजभक्ति प्रकट की और अपनी सेना के द्वारा सरकार अंग्रेज को सहायता देने का वचन दिया। परन्तु उसकी सेना तो पहले ही क्रांतिकारी हो चुकी थी। टौंक की सेना ने नवाब के विरुद्ध और क्रांतिकारियों के पक्ष में तो उत्पात मचाया ही था, परन्तु उन्होंने नीमच के नेताओं को भी लिखा था कि आगरा जाते हुवे वे टौंक होकर जाये। वास्तव में नवाब को उसके ही सैनिकों ने उसके मकान में बन्दी बना दिया था जिससे वह सरकार अंग्रेज को किसी भी प्रकार की सहायता देने में असमर्थ था। 25 अगस्त 1857 को उसने राजपुताने के ए.जी.जी. को सूचित किया कि उसकी सेना दिल्ली की ओर कूच कर गई थी अतएव उसके जिले में होकर कोई योरोपियन अधिकारी नहीं निकले क्योंकि यहां मार्ग सुरक्षित नहीं था। टौंक की जनता को नवाब का यह रुख पसन्द नहीं था ओर वे उसको ईसाई कहने लगे थे।

साथ ही अंग्रेजों को विश्वास नहीं था कि नवाब पूर्णतया अंग्रेज सरकार के पक्ष में है। उस पर सन्देह था कि उसने क्रान्तिकारियों को धन से सहायता दी थी। दिल्ली में टौंक की सेना अंग्रेजों के विरुद्ध लड़ी थी और वहां की क्रान्ति में शामिल हुई थी जिससे समझा गया था कि वह क्रान्तिकारियों का पक्षधर था। इसलिये अंग्रेज सरकार

51– ए.जी.जी. की रिपोर्ट सेक्रेट्री, भारत सरकार को, 1858, फो.पो कन्सलटेशन, 31 दि. 1858, नं. 3146–47, मई, नं. 324, पार्लियामेंटरी पेपर्स, 1860, पृ. 127.

52– ए. जी. जी. की रिपोर्ट सेक्रेट्री गवर्नमेंट आफ इण्डिया के नाम रा. म.. शर्मा एम.एल. कोटा राज्य का इतिहास, भ–2, पृ. 607–16.

ने नवाब टोंक को जो 12 हजार पांच सौ रुपये मासिक मिलते थे वे बन्द कर दिये। इसी प्रकार मेवाड़ के पोलिटिकल ऐजेन्ट को निम्बाहेड़ा जो टोंक का परगना था छीन लिया था और थोड़े समय के लिए मेवाड़ को दे दिया था।[53]

तांत्या टोपे राजस्थान में :

प्रत्यक्ष रूप से तो राजस्थान में 1857 की क्रांन्ति मार्च 1858 तक शान्त हो गई थी परन्तु पेशवा का जनरल तांत्या टोपे ने दो बार राजस्थान में प्रवेश करके पुन वातावरण को प्रज्वलित कर दिया। जब सर चार्ल्स नेपियर ने उसको अलीपुर में 22 जून, 1858 को हरा दिया तो तांत्या ने राजस्थान की ओर अपना रुख किया। ऐसा विश्वास किया जाता था कि तांत्या की सेना में लगभग 9000 सैनिक थे। इनमें 500 तो ग्वालियर के सैनिक थे और 4000 भील थे। तांत्या को आशा थी कि जयपुर और हाड़ौती से उसे सैनिक सहायता मिलेगी। उसने पहले से ही अपने सहयोग के लिए हाड़ौती और जयपुर अपने दूत भेज दिये थे। इस आशा से वह जयपुर की ओर बड़ी तीव्र गति से प्रयाण करने लगा परन्तु जनरल राबर्टस उससे भी पहिले जयपुर पहुंच गया और उसने अपनी स्थिति सुदढ़ बनाली। उधर तांत्या टोपे की स्थिति अच्छी नहीं थी क्योंकि कर्नल होम्स उसका लगातार पीछा कर रहा था। अतएव जयपुर पहुंचने के स्थान पर तांत्या ने टोंक की ओर प्रयाण किया। उसी के साथ दूसरे क्रांन्तिकारी नेता भी थे। एक बान्दा का नवाब था और दूसरा रहीम अलीखां था। टोंक के नवाब ने क्रान्तिकारियों के साथ सहयोग नहीं किया और अपने किले में घुस कर उसने दरवाजे बन्द कर दिये। नवाब ने सामना करने के लिये जो सिपाही भेजे थे वे क्रान्तिकारियों से मिल गये। तांत्या टोंक से कूच करके इन्दरगढ़ और माधोपुर होता हुआ बून्दी पहुंचा। परन्तु बूंदी के महाराव से उसने कोई सहायता नहीं मिली इसलिये वह मेवाड़ की ओर मुड़ गया।[54]

पांच हजार क्रांतिकारी सेना के साथ तांतिया[55] मेवाड़ में घुसा और माण्डलगढ़ होते हुए रतनगढ़ तथा सींगोली के रास्ते रामपुरा की ओर रवाना हुआ। परन्तु ब्रिगेडियर पार्क तथा मेजर टेलर ने उस तरफ का मार्ग रोक दिया। तब वो साल्यावास होते

53– ए. जी जी. की रिपोर्ट सेक्रेटरी गवर्नमेन्ट आफ इण्डिया के नाम पार्लियामेन्टरी पेपर्स नं. 77, पृष्ट 131–132 पेरा 131 से 136, रा.अ.

54– फारेस्ट, पृ. 571, 607; एडन का पत्र नं. 75, 24 जुलाई, 1858, रा. अ., होम्स हिस्ट्री ऑफ इण्डियन म्यूटीनी; शावर्स का पत्र 4 अगस्त 1858. रा. अ.; श्यामलदास–वीर विनोद, पृ. 1978

55– यह मरहटा ब्राह्मण नाना साहब का नौकर था। ई. 1857 के स्वतन्त्रता संग्राम में अंग्रेजों से उसकी कई लड़ाइयां हुई, जिसमें से कुछ तो उसकी जीत और कुछ में हार हुई। अन्त में ब्रिगेडियर नेपियर से गहरी हार खाकर यह मध्य भारत, राजपूताना और बुन्देलखण्ड में महीनों भागता फिरा। अन्त में ई. 1859 में यह पकड़ा गया और उसे फांसी दी गयी। ओझा उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग–2 पृ.

हुए भीलवाड़ा पहुँचा और वहां से 9 अगस्त को सांगानेर के पास कोटेश्वरी नदी के किनारे पर जनरल राबर्टस की अंग्रेजी सेना से भिड़कर मेवाड़ के पश्चिम में कोठारिया की ओर चला गया जहां रावत कोठारिया ने उसकी रसद आदि देकर सहायता की। परन्तु उसका पता लगाती हुई ब्रिटिश सेना वहां भी जा पहुंची और नवाण्या गांव के पास रूक्मगढ़ की छापर की 13 अगस्त की लड़ाई में उसको दुबारा पीछे हटना पड़ा। वहां से निकल कर वो आकोला के रास्ते चित्तौड़ से दक्षिण में होकर जाग और सींगोली गांवों को लूटता हुआ झालरापाटन पहुंचा। वहां की सेना उससे मिल गई और उसे वहां से युद्ध की सामग्री प्राप्त हुई। वहां से 3 दिसम्बर को उसने मध्य भारत में प्रवेश किया। नर्बदा के किनारे छोटा उदयपुर में ब्रिगेडियर पार्क की अध्यक्षता में अंग्रेजी सेना से उसकी पुनः मुठभेड़ हुई, जिसमें वह फिर हटा और दूसरी बार 9 दिसम्बर 1858 कुशलगढ़ होते हुए बांसवाड़ा पहुंचा। रास्ते में कुशलगढ़ के सरदार ने उसे आगे बढ़ने से रोकने की चेष्टा की, परन्तु उसे सफलता न मिली। उसकी इस खेरख्वाही के लिये अंग्रेज सरकार ने उसको सम्मान किया। बांसवाड़े पहुंचते ही क्रान्तिकारियों को मेजर लियर माउण्ट की अध्यक्षता में नीमच से अंग्रेजी सैनिक दल के रवाना होने की खबर लगी, जिससे वे सलूम्बर होते हुए जहां रावत केसरीसिंह ने तांत्या की रसद से सहायता की, उदयपुर की ओर बढ़े, परन्तु मार्ग में यह समाचार पाकर की नीमच से सेना आ पहुंची है और कप्तान शावर्स एवं मेजर राक ने उत्तर की ओर का रास्ता रोक लिया है, भीण्डर होते हुए वो प्रतापगढ़ चला गया। इस समय उसके साथ कोई 4000 भील भी थे। तारीख 23 दिसम्बर को मेजर राक से उसकी लड़ाई हुई जिसमें उसके बहुत से साथी मारे गये अथवा पकड़े गये। इस मुठभेड़ में उसके हाथी, घोड़े एवं लड़ाई का सामान अंग्रेजों के हाथ लगा। प्रतापगढ़ से भाग कर वो मन्दसोर की ओर बढ़ा, परन्तु कर्नल बैंसन ने जीरापुर में उसको पीछे हटने पर जिसके फलस्वरूप वह मेवाड़ से बाहर निकल गया। उसे मेवाड़ आने का अभिप्राय यह था कि उदयपुर, सलूम्बर, कोठारिया आदि स्थानों से उसे सैनिक सहायता मिलेगी। परन्तु सिवाय रसद या अथित्य के उसे कोई सन्तोषजनक सहयोग नहीं मिला जिससे उसे बड़ी निराशा हुई। [56]

इस प्रकार जब जब तांत्या राजस्थान में आता था तब तब अंग्रेजों की सेना ने उनको घेरने का प्रयास किया। अंतिम बार तांत्या भाग कर जयपुर और दौसा की ओर चला गया। वहां ब्रिगेडियर शावर्स ने तांत्या की सेना पर पुनः 16 जनवरी 1859 आक्रमण किया। परन्तु तांत्यां फिर भाग कर जनवरी 21, 1859 को सीकर पहुंच गया। फिर उसी दिन कर्नल होम्स सेना सहित सीकर पहुंचा और उसी रात को उसने तांत्या की सेना पर आक्रमण किया। तथा तांत्यां की सेना में अव्यवस्था मच गई। इस लड़ाई में हार कर तांत्यां जंगल में चला गया और अपने एक पुराने मित्र मानसिंह से मिला। मानसिंह ग्वालियर के पाडोन ठिकाने का छुटभैया था और वहां की गद्दी प्राप्त करने भरसक प्रयत्न कर रहा था। परन्तु उसको बार बार असफलता मिल रही थी जिससे वह बड़ा निराश था। मानसिंह ने उसको एक घने जंगल में छिपा दिया इस आशा से कि

56– शावर्स वही, पृ. 133–144; बख्शीखाना, उदयपुर बही नं. 219, ठिकाना के पत्र ऐजेन्सी रेकार्ड, लेटर बुक नं. 13, पृ. 76–79

उसकी सहायता से वह अपना स्वार्थ सिद्ध कर सकेगा। जब उसका काम बनते न दीख पड़ा तो उसने अंग्रेजो को खबर दी कि उसे यदि उपयुक्त पुरस्कार मिले तो वो तांत्या को पकड़वा सकता है। साथ ही अंग्रेज फौज के अफसर ने उनके साथ कुछ सिपाही कर दिये जिन्होंने मानसिंह के बतलाने पर उनको 7 अप्रैल, 1859 को पकड़ लिया। उस पर सैनिक न्यायालय में मुकदमा चला और 4 घन्टे की सुनवाई के बाद ही उसको 18 अप्रेल, 1859 को फांसी का दण्ड दे दिया गया। राजस्थान में तांत्या टोपे की कार्यवाहियां सन् 1858 की क्रांति की अंतिम झलक थी।[57]

तांत्या का मूल्यांकन :

वैसे तो कभी तांत्या को सफलता और कभी असफलता मिली, परन्तु मध्यभारत और राजस्थान में क्रान्ति की गतिविधि का संचालन करने का जो उत्तरदायित्व उसने अपने ऊपर लिया था उसको उसने अपने अंतिम घड़ी तक निभाया। जब क्रान्ति की गति राजस्थान में धीमी पड़ गई थी, राजा और महाराजाओं ने ब्रिटिश दासता को पूर्णरूपेण स्वीकार कर लिया था और प्रशासन की सम्पूर्ण शक्ति उसके पीछे लग गई थी, तांत्या ने पुन: संगठन करने और अंग्रेजों से विरोध रखने वाले समुदाय से सहयोग प्राप्त करने में कोई कसर नही रखी। अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए कभी वह छिपकर रहा, कभी जंगलों की राख छानी, कभी भूखा व प्यासा रहा और कभी भेष बदल कर घूमता रहा। जहां प्रशासन की सम्पूर्ण शक्ति उसको नष्ट करने को कटिबद्ध थी वह शत्रुओं के समक्ष अनभ्य बना रहा। सच तो यह था कि इस प्रकार की दृढ़ता के पीछे जनमानस का सहयोग था जिसको उसने अपनी ओर आकर्षित कर लिया था। वह तो स्वार्थी मानसिंह की वञ्चना थी जिसने एक साहसी वीर के प्राण लिवा लिये। धनाभाव का अनुभव करते हुए, अंग्रेजों की तुलना में अपनी शक्ति को निर्बल समझते हुए और संभवत: अपनी पराजय को निश्चित मानते हुए वह अपने जीवन को दांव पर लगाता रहा। ये कर्तव्यनिष्ठा का और स्वामी भक्ति का अनुपम उदाहरण है जो तांत्या के व्यक्तित्व को ऊपर उठाता है।

तांत्या को फांसी लगाना एक जघन्य कार्य था, क्योंकि उस पर हत्या का कोई आरोप नहीं था। स्वयं कप्तान शावर्स ने दी गई फांसी की सजा की तीव्र आलोचना की है और लिखा है कि ये सदैव एक अपराध बनी रहेगी, क्योंकि न्याय से इसका अनुमोदन नहीं होता।

57– वीर विनोद भाग –2, पृ. 1978 ज्वालासहाय लायल राजस्थान पृ. 184–87 तांत्या की राजस्थान की कार्यवाही के क्रम में ब्रिटिश अफसरों ने उनके संबंध में, में अपनी अपनी सूचना के अनुसार रिपोर्ट भेजी थी अतएव विभिन्न स्त्रोतों के क्रम में एक सूत्रता का अभाव है। इसका मुख्य कारण यह भी था कि वह इधर उधर जाने के मार्ग को बदलता रहता था और सही मार्ग गोपनीय रखा जाता था। जनता का समर्थन उसकी गोपनीयता का प्रमुख राज था। वह भेष बदलकर भी इधर उधर जाता था।

संघर्ष का अन्त :

अंग्रेजों की सैनिक शक्ति और नरेशों के सहयोग से ब्रिटिश भारत में और राजस्थान में 1857 के संघर्ष का अन्त अगस्त 1858 तक हो गया। अंग्रेज सरकार इसको दबाने में सफल हो गई। इस क्रान्ति की समाप्ति पर लार्ड पामर्स्टन (प्राईमिनिस्टर इंगलैण्ड) ने कम्पनी की राज्य सत्ता को समाप्त कर सम्राट और पार्लियामेन्ट की सत्ता स्थापित करने का प्रयत्न किया। कम्पनी ने इसका विरोध किया और एक आवेदन पत्र पार्लियामेन्ट में पेश किया, परन्तु उसका खण्डन लार्ड पामर्स्टन ने बड़ी योग्यतापूर्वक किया। उसने बतलाया कि कम्पनी का शासन अनुत्तरदायि था। इससे पूर्व भी सर जार्ज कार्नवालिस ने कहा कि इस पृथ्वी पर कोई अन्य सभ्य सरकार न थी और न है जो इतनी भ्रष्टचारी, विश्वासघाती तथा लूटेरी रही हो जैसा कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी 1765 से 1784 तक थी।

वास्तव में कम्पनी की मनोवृत्ति व्यवसायिक थी लोक हित की ओर उसका ध्यान नहीं था। वह तो धन एकत्रित करना चाहती थी। पार्लियामेंट ने निश्चय कर लिया कि कम्पनी का राज्य समाप्त कर दिया जाये और भारत में सम्राट तथा पार्लियामेन्ट की सर्वोच्च शक्ति स्थापित कर दी जाये। यों तो पहिले भी पार्लियामेन्ट हस्तक्षेप किया करती थी और भारत के शासन में उसका काफी हाथ था परन्तु अब 2 अगस्त, 1858 के अधिनियम से कम्पनी की सत्ता समाप्त हो गई और पार्लियामेन्ट की सत्ता पूर्णरूप से स्थापित कर दी गई।

इस व्यवस्था से अब भारत का शासन महारानी विक्टोरिया के हाथ में आ गया। उसने शासन व्यवस्था का आरम्भ 1 नवम्बर, 1858 की एक घोषणा के द्वारा किया। 1 नवम्बर, 1858 को प्रयाग में बड़ी धूमधाम के साथ एक दरबार किया गया जिसमें लार्ड केनिंग ने महारानी के घोषणा पत्र को पढ़ कर सुनाया। राजस्थान की दृष्टि से इसका महत्व यह था कि महारानी ने कहा कि "इस समय भारत में जितना मेरा राज्य है मैं उसे बढ़ाना नहीं चाहती" देशी नरेशों के साथ की गई संधियो की शर्तों का पालन करने का विश्वास दिलाया और कहा कि "मैं देशी नरेशों के अधिकारों तथा मान मर्यादा को अपने ही अधिकारो तथा मान मर्यादा के समान समझूंगी। मै राज धर्म का पालन करने के लिये जैसे अपने अन्य प्रजाओं के प्रति आबद्ध हूं वैसे ही भारत की प्रजा के प्रति भी प्रतिज्ञाबद्ध रहूंगी।" महारानी ने धार्मिक सहिष्णुता की नीति का अनुसरण करने का स्वतन्त्रता तथा समानता के व्यवहार का, प्राचीन रीति रिवाजों और सम्पत्ति के संरक्षण का वचन दिया।

1857 की क्रान्ति के उपरान्त ब्रिटिश सरकार का देशी नरेशों के प्रति दृष्टिकोण बदल गया। ब्रिटिश सरकार समझने लगी कि देशी नरेशों को निःसन्तान होने पर पुत्र गोद लेने का अधिकार प्राप्त हो गया। अब केवल कुशासन के ही आधार पर देशी राज्यों में हस्तक्षेप हो सकता था। यह हस्तक्षेप तीन प्रकार से किया जा सकता था--

1– देशी राज्य का शासन अस्थाई काल के लिये ब्रिटिश रेजीडेन्ट को सौंप दिया जाता था।

2— शासन स्टेट काउन्सल के सुपुर्द कर दिया जाता था।

3— अयोग्य शासक को हटा कर उसी वंश के किसी अन्य व्यक्ति को गद्दी पर बिठा दिया जाता था।

महारानी विक्टोरिया की घोषणा का समस्त देशी राज्यों में बड़ा ही स्वागत किया गया। राजस्थान के राजाओं और प्रजाओं ने कई प्रकार से महारानी के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट की और उत्सव मनाये। राजधानी तथा बड़े बड़े नगरों में दीपावली और आतिशबाजी के आयोजन किये गये और तोपों से सलामी ली गई। खेल-कूद और घुड़-दौड़ एवं परेड से उल्लास प्रदर्शित किया गया। योरोपियन सैनिकों को भोज दिया गया। और भारतीय सिपाहियों को मिठाई खिलाई गयी। नरेशों ने महारानी के स्वास्थ्य की कामना की और उनकी ओर से प्रसन्नता प्रकट की।

महाराणा उदयपुर ने महारानी विक्टोरिया को एक खरीता भेजा जिसमें उसके प्रति कृतज्ञता प्रकट की गई। खरीते में लिखा था कि, "घोषणा में कहा गया है कि अब इंगलैण्ड की महारानी हमारे ऊपर शासन करेगी। इससे हमको हर्ष और प्रकाश प्राप्त हुआ है। ऐसा प्रतीत होता है कि पूर्णिमा के चन्द्रमा का उदय हो गया है। मैं भावनाओं से भरा हुआ हूं और आपके प्रति अपनी राजभक्ति प्रकट कर रहा हूं। इस समय मेरा हर्ष उबल रहा है। आपने सारे भारत पर अपनी रक्षा का छत्र लगा दिया है और भारतीय प्रजा को पात्र बना दिया है। अब आप मैं और हम में कोई मध्यस्थ नहीं रहा है। मेरा तुच्छ सिंहासन स्नेह की जंजीर से आपसे जुड़ गया है। आपकी गद्दी और मेरी गद्दी में अविच्छेद सम्बन्ध स्थापित हो गया है। बड़ा आश्चर्य है कि जो घोषणा उनको उजाले से अंधकार की ओर ले जा रही थी उसको राजा महाराजा भ्रम से चांदनी की रोशनी समझ रहे थे। इससे अधिक देश का दुर्भाग्य क्या हो सकता है?

आन्दोलन की विफलता : 58

अब यह प्रश्न रह जाता है कि राजस्थान में यह आन्दोलन सफल क्यों न हो सका? इसका स्पष्ट कारण यह है कि आन्दोलन जैसे ही उत्तरी भारत में दबा दिया गया, राजस्थान में भी निर्ममतापूर्वक कुचला गया। यहां के नरेशों का अंग्रेजों को सहायता देना इसको विफल बनाने में एक बहुत बड़ा कारण था। इस तथ्य को स्वयं प्रिचार्ड ने स्वीकार किया। सरदारों व महाराजाओं के आन्तरिक वैमनस्य ने विप्लव की शक्ति में निर्बलता पैदा करदी। साधारण जनता जिसने निस्वार्थ भाव से इसमें योग दिया था संग-ठित न थी और न उसमें नेतृत्व की योग्यता थी। अंग्रेजों के अमानवीय अत्याचारों से विद्रोहियों का मनोबल गिरता जा रहा था। प्रेरणात्मक आत्मोसर्ग की कुछ एक घटनाएँ अंग्रेजी आतंक के सामने सफल न हो सकी और इस अर्थ में आन्दोलन राजस्थान में पूर्ण

58-जी. एन. शर्मा, सन् 1857 के भारतीय विप्लव में राजस्थान का योग मरू भारती, अप्रेल 57, पृ. 66

सफलता न पा सका । अंग्रेज सेनानायक सधे हुए अफसर थे जिनमें आपसी सहयोग और व्यवस्था थी । यदि क्रांतिकारियों ने चुने हुए नेताओं का मार्ग दर्शन प्राप्त किया होता तो संभवतः स्थिति में परिवर्तन की संभावना थी । इनमें रण कौशल का अभाव था ।

फिर भी कुछ एक साहसी वीरों के त्याग की कोटि ने राजस्थान में होने वाली उत्तरोत्तर स्वातंत्र्य प्राप्ति की प्रगतियो को जोवन प्रदान कर आन्दोलन की असफलता में सफलता के चिन्हों को पल्लवित रखा । इनके बलिदान की गाथाएं आज भी लोकगीतों में स्थान पाई हुई हैं ।

राजस्थान के स्वतन्त्रता आन्दोलन के प्रति एक दृष्टिकोण : [59]

आन्दोलन की घटनाओं को पुनः न दौरा कर राजस्थानीय पात्रों के दृष्टिकोण तथा उनके मूल्यांकन पर पाठकों का ध्यान आकर्षित करना आवश्यक है । इस आन्दोलन को दबाने में लगभग सभी राजस्थानीय नरेशों को अंग्रेजों की सहायता करने में प्रयत्नशील रहना पड़ा था । आन्दोलन आरम्भ होने तक जैसा कि हमने देखा, ये अंग्रेजों के हाथ की कठपुतली बन चुके थे । इन्होंने विलासिता व ऐश्वर्य के नशे में अपने कर्तव्य निर्धारण का विवेक छोड़ दिया था । राजकीय आन्तरिक विडम्बनाओं ने इन्हें अत्यधिक किंकर्त्तव्यविमूढ़ बना दिया । इनके लिये सिवाय अंग्रेजों की सहायता लेने व देने के जिसे वे दिल से ठीक न समझते हों कोई चारा नहीं था । मारवाड़ के महाराजा तख्तसिंह ने सिंधी कुशलराज की सहायता से नसीराबाद और नीमच से आने वाली आन्दोलनकारियों की सेना का, जो मारवाड़ से होकर गुजरी, पीछा किया । उन्होंने अजमेर, दौसा तथा एरनपुरा की छावनियों में आन्दोलन करने वालों को दबाने के अर्थ सेना भेजी । आन्दोलन सम्बन्धी सूचना को भेजने की सुविधा के लिए जयसलमेर और मलानी होकर जोधपुर तक ऊंटों की डाक का भी प्रबन्ध मारवाड़ राज्य द्वारा किया गया । आउवा ठाकुर को दबाने के लिए भी फौजे भेजी गई । जोधपुर से रेजिडेन्ट के कुटुम्ब को रक्षित रूप से भेजने का भी समुचित प्रबन्ध किया गया । [60]

बीकानेर के महाराजा सरदारसिंह ने बीकानेर की सीमा में होने वाले आन्दोलन को दबाने में बड़ा योग दिया । हरियाने के ईसाइयो. को आन्दोलनकारियों से बचाने तथा अजीमबेग को दबाने में महाराज ने सफल प्रयत्न किये । इस कार्य में राज्य की कई पलटने व सरदार काम आये । [61]

59– जी. एन. शर्मा, सन् 1857 के भारतीय विप्लव में राजस्थान का योग, मरू भारती अप्रेल 57, पृ. 63–66

60– अ.बी. दस्त्रों रेकार्ड जोधपुर; मारवाड़ का इतिहास भाग–2 पृ. 448–450

61– लारेन्स–डेसपैच, मुन्शी ज्वालासहाय–लायल राजस्थान पृ. 290–91 ओझा–बीकानेर का इतिहास, भाग–2, पृ. 444–49

उदयपुर के महाराणा स्वरूपसिंह ने नीमच से आये हुए अंग्रेजों को जगमन्दिर में आश्रम दिया तथा शावर्स को आन्दोलन को शमन करने में सहायता पहुंचाई ।[62]

इसी तरह कोटा-नरेश रामसिंह ने भी अपने यहां होने वाले आन्दोलन के ताण्डव को रोकने का प्रयत्न किया और मेजर बर्टन की रक्षा का उद्योग किया तथा अंग्रेजी सत्ता को पुनः संस्थापित करने में प्रयत्नशीलता बताई ।[63]

राजाओं ने चाहे जितना सहयोग किया हो, यदि यह आन्दोलन समस्त भारत में फैल जाता तो भारत अंग्रेजों के हाथ दुबारा नहीं आता, और अंग्रेज पूर्व में कई देशों के मालिक नहीं बनते । क्रान्ति का दमन करने के लिये अंग्रेजों ने बड़े छल कपट से काम किये । अंग्रेज इतिहासकार काभ ने लिखा है कि "मेरे पास कितने ही एसे पत्र हैं जिनमें हमारे अफसरों द्वारा की गई क्रूरताओं और रोमांचकारी उत्पीड़न का वर्णन है । अगर इनके विषय में मैं एक शब्द भी लिखूं तो लोग और सब बातों को भूल जायेंगे ।" नसीराबाद नीमच आउवा और कोटा में विद्रोह का दमन करने के लिये अंग्रेजों ने जो क्रूर साधनों का उपयोग किया था वह इस बात का प्रमाण है कि लोगों को पाशविक ढंग से पीसा गया, उनकी सम्पत्ति को लूट लिया गया और सबसे बड़ी लज्जाजनक और अधम बात यह की गई कि सम्पत्ति को लूटने वालों को पुरस्कृत करने के लिये एक कमेटी का निर्माण किया गया था ।[64]

उपर के विवरण से स्पष्ट है कि राजस्थानीय नरेशों ने स्वतन्त्रता संग्राम को दबाने तथा अंग्रेजी सत्ता को पुनर्संस्थापन में पूरा योग दिया यह नहीं जानते हुए कि इस योग का परिणाम उनकी स्वतन्त्रता के अपहरण का कारण बनेगा ।

इन नरेशों के कुछ साथी सरदारों ने महाराजाओं के पक्ष में रह कर अंग्रेजों की सहायता की । नीमच से भागे हुए डा. मरे तथा डा. गेन व अन्य अंग्रेजों की केसुन्दा निवासी रामसिंह तथा केसरीसिंह ने सहायता की । राव बख्तसिंह ने अंग्रेजों की स्त्रियों व बच्चों को हिफाजत से उदयपुर पहुंचाया । बाघसिंह राठौड़ बगाणा में अंग्रेजों के लिये काम आया । मारवाड़ के कुचामन-ठाकुर केसरीसिंह और खैरवे ठाकुर सावन्तसिंह ने

62– शावर्स–मिसिंग चेप्टर आफ इण्डियन म्यूटीनी, पृ. 8-104; अर्जुनसिंह–सहीवाल जीवन–चरित्र, पृ. 56; पृ. 8–104; भाग–2 पृ. 19; ओझा–उदयपुर राज्य का इतिहास पृ. भाग–2, पृ. 767–776

63– फारेस्टर–हिस्ट्री आफ इण्डियन म्यूटीनी, भाग–3, पृ. 555–56; दफ्तर ठिकाना कोटड़ी फाइल्स, डा. मथुरालाल शर्मा, कोटा राज्य का इतिहास, भाग 2, पृ. 604–28,

64– ए.जी.जी. रिपोर्ट, जी. ओ. अर्द्ध फो. पो. नं. 3146–47 एफ.सी. 31 दिसम्बर, 1858, रा. अ.

2000 सैनिक लेकर जयपुर राज्य की सीमा में अंग्रेजों की रक्षा का भार लिया। आहोर–ठाकुर वीरता से महाराजा की सहायता के लिए लड़ा। बीकानेर राज्य की ओर से लगभग 47 प्रमुख सरदारों ने अंग्रेजों के हित की रक्षा में योग दिया।[65]

परन्तु कुछ राजस्थानी सरदार ऐसे भी थे, जिन्होंने क्रांतिकारियों का साथ देकर अपने अदम्य साहस का परिचय दिया। ऐसे सरदारों में आउवा, कोठारिया, आसोप, गूलर, सलूम्बर आदि थे। परन्तु इस सम्बन्ध में हमें यह देखना है कि इन्होंने आन्दोलनकारियों का क्यों साथ दिया? यह मानना कि इन्होंने आन्दोलनकारियों का साथ इसलिए दिया था कि वे अपने स्वार्थ की रक्षा करना चाहते थे, उपयुक्त न होगा। उनका आंदोलनकारियों से मिलना यह स्पष्ट करता है कि वे अपने स्थानीय शासकों के रक्षकों को (अंग्रेजों के) दबाने में या उनके बागी व्यक्तियों को सहायता पहुंचाने में वे अपना कर्तव्य समझते थे। उन्होंने ठीक तरह समझ लिया था कि अंग्रेजों की सत्ता रहते हुए उनके परम्परागत अधिकार या संस्कृति की रक्षा को कोई उचित स्थान नहीं मिल सकता। अतएव क्रांति आरम्भ होते ही उन्होंने अंग्रेजी सेना का मुकाबला किया। ऐसी स्थिति में यह कहा जा सकता है कि उनके बलिदान और त्याग का एक मूल्य है।

अब यह प्रश्न उठता है कि साधारण जनता का इसमें क्या योग था? उस समय की कुछ एक घटनाएं हमें इस नतीजे पर पहुंचाती हैं कि मध्यम श्रेणी के कुछ व्यक्तियों ने क्रांति में भाग लेकर अपने वर्ग की भावना का परिचय दिया था। ये वर्ग अंग्रेजी सत्ता को वैसा ही खतरनाक समझता था, जैसे फ्रांस की मध्यम श्रेणी वहां के राजपद को। इस वर्ग के लोगों का न निजी स्वार्थ का मोह था या प्रभुता प्राप्त करने की इच्छा थी इन्होंने आन्दोलनकारियों का साथ देकर इसी कल्पना को बनाया हो कि अंग्रेजों के चले जाने से उनको आर्थिक हानि न उठानी पड़ेगी और न उनकी परम्परा को कोई ठेस पहुचेगी। इन्हीं भावों से प्रेरित होकर कोटा के जयदयाल व मेहराबखां ने अंग्रेजों का मुकाबिला किया। मेसन का सामना करने में आउवा के निवासी इसी भावना से प्रेरित थे। इसमें कोई सन्देह नहीं कि आम जनता में अंग्रेजों के प्रति घृणा की भावना थी और विद्रोहियों के प्रति सहानुभूति। यही कारण था कि मेसन के मरने पर राज्य की ओर से शोक नहीं मनाया जा सका और न उसके शोक में नौबत बजाना बन्द रहा। उस समय नये रेजिडेन्ट की अगवानी भी नहीं की गई क्योंकि महाराजा को भय था कि कहीं प्रजा इसका विरोध न करें। इसी प्रकार मेवाड़ रेजिडेन्सी के दो चपरासियों ने अंग्रेजों के माल–असबाब को लूटने में योग देकर तत्कालीन जनसमूह की भावना का स्पष्टीकरण किया था। जीरण गांव में अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध करने में जनता के कुछ लोगों का पूरा हाथ था। तांत्या एक लम्बे अरसे तक राजस्थान में विचरण इसी कारण कर सका था कि उसको इधर उधर छिपने के कार्य में जन–समूह का सहयोग प्राप्त था।[66]

65– ओझा : उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग–2, पृ. 768–65;
ओझा : बीकानेर राज्य का इतिहास, भाग–2, पृ. 447

66– दस्तरी वही, जोधपुर, वि. सं. 1914, अ. बी., ओझा - मेवाड राज्य का इतिहास, भाग–2 (स्वरूपसिंह)

कई अंग्रेज लेखकों ने लिखा है कि राजपूताना में इस उत्पात के कारण कोई हलचल नहीं मची और सब नरेशों ने स्वामीभक्तिपूर्वक अंग्रेज सरकार का साथ दिया, यह पूर्ण सच नहीं है। यदि ऐसा नहीं होता तो उत्पात का दमन करने में दो वर्ष और क्यों लग जाते ? वास्तव मे नीमच, नसीराबाद, आउवा, अजमेर, जयपुर, आबू, कोटा, अलवर, भरतपुर, बीकानेर, धौलपुर, करौली टौंक, झालावाड़, आदि स्थानों मे स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष हुए। कहीं थोड़े और कहीं अधिक, लेकिन सनसनी स्थान–स्थान में फैल गई। गांव–गांव में अंग्रेजों के प्रति रोष था जिसका विस्तार से वर्णन स्वयं नसीराबाद के एक वरिष्ठ अधिकारी प्रिचार्ड ने किया है।[67]

इन विभिन्न दृष्टिकोणों से यह कहा जा सकता है कि राजस्थान का योग भारतीय स्वतन्त्रता के हित को आगे बढ़ाने में सहयोगी रहा। साधारण जनता ने परम्परा तथा सामाजिक नियमों को खतरे में पाकर अंग्रेजी सत्ता को घृणा की दृष्टि से देखा और अवसर मिलने पर अपने भावों को प्रदर्शन करने में सहयोग प्रदान किया। ज्योंही क्रान्तिकारी किसी गांव से गुजरते थे तो ग्रामबासी उनको रसद देते थे और उनकी सुरक्षा का ध्यान रखते थे। राजस्थान में क्रान्ति का अंश प्राचीन परम्परा और नवीन परिस्थिति के कारण पैदा होने वाले संघर्ष का स्वरूप था। इतना अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा कि कुछ एक साहसी वीरों के त्याग की कोटि ने राजस्थान में होने वाली उत्तरोत्तर स्वातन्त्र्य प्राप्ति की प्रगतियों को जीवन प्रदान कर आन्दोलन की ऊपरीय असफलता की घटनाओं में सफलता के चिन्हों को पल्लवित रखा। आगे की घटनाएं बतलाएंगी कि इन देश प्रेमियों के बलिदान निरर्थक नहीं थे। आगे आने वाली स्वतन्त्रता सेनानियों की पीढ़ी सन् 57 की क्रान्ति से अवश्य प्रभावित हुई और उसमें देश के लिए जीवनोत्सर्ग की भावनाएं अधिक बलवती बनी।[68]

67– मेलेसन, भाग–6, पृ. 164; असंकिन, बीकानेर ऐजेन्सी, पृ. 73; इम्पीरियल गजेटियर, 1908, भाग 21, पृ. 101

68– प्रिचार्ड, म्यूटीनी इन राजस्थान, पृ. 151–163, 181

अध्याय—5

1857 के आन्दोलन के पश्चात् राजस्थान में राजनैतिक असन्तोष और जन जागृति का आरम्भ

राजस्थान की राजनैतिक स्थिति के अध्ययन के दौरान हमने पढ़ा कि 1818 ई. के पूर्व राजस्थान को मराठों ने कुचल रखा था और उसी अन्तराल में सामन्तों के दल आये दिन बखेड़े कर रहे थे। परन्तु ब्रिटिश इन्डिया कम्पनी के साथ विभिन्न राज्यों ने जब सन्धियां करली और आगे चलकर जब 1857 ई. को क्रान्ति कुचल दी गई तो मराठों के आक्रमण बन्द हो गये तथा सामन्तों की समस्याएं हल हो गई। इस स्थिति से नरेशों को शान्ति की सांस लेने का अवसर मिला। इसके उपरान्त महारानी विक्टोरिया की घोषणा से इनके हर्ष की कोई सीमा नहीं रही। बड़े उत्साह से घोषणा को दरबारों में और सभाओं में सुनाया गया, अंग्रेजी सैनिकों और अधिकारियों को भोज दिया गया और पल्टनों में मिठाइयां बांटी गई। ये नरेशों का उल्लास इस बात का द्योतक था कि कम्पनी का राज चिरस्थाई हो, उसकी छात्र छाया में उनके राज्य सुरक्षित रहें और उनकी दास्ता अखंड बनी रहे।

परन्तु ये दरबारी हर्ष था, जनता का नहीं। 1857 की क्रांति वैसे विफल सिद्ध हुई, परन्तु स्वतंत्रता के विचार तथा तत्सम्बन्धी चिन्तन नष्ट नहीं हुए थे। ब्रिटिश सत्ता के वर्चस्व को राजा महाराजा तथा सामन्तों ने स्वीकार तो कर लिया परन्तु जनमानस ने उसे स्वीकार नहीं किया। ऐसी अस्वीकृति असन्तोष के रूप में यत्र-तत्र प्रगट होने लगी। यह असन्तोष मुख्य रूप से प्राचीन परम्पराओं के समर्थन में था जिन्हे अंग्रेज अपने तथा नरेशों के माध्यम से हटाना चाहते थे।

मेवाड़ में असन्तोष :

महाराणा स्वरूपसिंह के देहावसान के पश्चात् महाराणा शम्भूसिंह का राज्याभिषेक 17 नवम्बर, 1861 को हुआ। महाराणा नाबालिग था। इसलिए गवर्नर जनरल जार्ज लारेन्स के निर्देश पर मेवाड़ के पोलिटिकल एजेन्ट मेजर टेलर की अध्यक्षता में कुछ सरदारों तथा कर्मचारियों की एक रीजेन्सी काउन्सिल की स्थापना हुई। इसमें बेदला के रावत बख्तसिंह, देवगढ़ के रावत रणजीतसिंह, भींडर के हमीरसिंह, गोगुन्दा के राजराना लालसिंह तथा मेहता शेरसिंह और पुरोहित श्यामनाथ के नाम उल्लेखनीय हैं।[1] इस काउन्सिल ने शासन को भलीभांति नहीं चलाया। इसके सदस्य मनमानी करने लगे। देवगढ़ का रावत रणजीतसिंह अपनी आराम तलबी के कारण बदनाम था अत. बेदला का ठाकुर बख्तसिंह महाराणा तथा पोलिटिकल एजेन्ट का प्रमुख सलाहकार बन गया। टेलर भी इन पंच सरदारों की हर एक बात मान लेता था और ये लोग औचित्य का बिचार न कर अपना स्वार्थ सिद्ध करने में लगे रहते थे। सत्ता की आड़ में वे विरोधियों से बदला भी लिया करते थे।[2]

1. वीर विनोद, पृ. 2057–2061
2. वीर विनोद, पृ. 2061–2062

ईडन का शासन :

मार्च 1862 को टेलर के चले जाने पर कर्नल ईडन मेवाड़ का पोलिटिकल एजेन्ट बन कर उदयपुर आया। उसने आते ही काउन्सिल के सरदारों पर सन्देह करना शुरू किया। मेहता शेरसिंह के पुत्र अजीतसिंह को सन्देह था कि ईडन उसे पकड़ने की साजिश कर रहा है। अतः वह भाग गया। कोठारी केसरीसिंह पर उसने दो लाख रुपये गबन का आरोप लगा कर उसको शहर से निकल जाने का आदेश दिया। ईडन ने पंडित लक्ष्मणराव को काउन्सिल का मीर मुन्शी और पं. गोविन्दराव को महकमा सदर का दरोगा बनाया और मौलवी मुहम्मद निजामुद्दीनखां को दीवानी व फौजदारी अदालतों का नाजिम नियुक्त किया। सरदारों को यह नियुक्तियां पसन्द नहीं आई। महाराणा का भी विचार था कि ईडन का इतना हस्तक्षेप अनुचित है। अतः सरदारों ने महाराणा के आदेश से रियासत के लोगों के हस्ताक्षर करवा कर एक प्रार्थनापत्र वायसराय के पास भेजा, जिसमें पोलिटिकल एजेन्ट ईडन की शिकायतें थी। ईडन ने भी राज्य के कर्मचारियों तथा सरदारों की शिकायतें वायसराय को लिख भेजी। वायसराय ने तुरन्त एक हुक्मनामा जारी किया जिसके अनुसार पंच सरदारों के अधिकार छीन कर ईडन को ही सम्पूर्ण अधिकार दे दिये गये। वायसराय के आदेश से सरदारों और प्रतिष्ठित नागरिकों में बड़ा असन्तोष फैला परन्तु उस समय कुछ किया नहीं जा सकता था। इस बात को सब जानते थे कि अंग्रेज सरकार ने 1857 के स्वतन्त्रता संग्राम को किस प्रकार कुचल दिया था। काउन्सिल के पंच सरदारों के स्थान पर अब मेहता गोकुल चन्द और लक्ष्मणराव को नियुक्त किया गया तथा उस कचहरी का नाम अहलियान श्रीदरबार राज्य मेवाड़ रखा गया। इस नई व्यवस्था में ब्रिटिश सत्ता के प्रभाव बढ़ाने की गंध थी।[3]

पोलिटिकल एजेन्ट कर्नल ईडन के आदेश के अनुसार कर्मचारी मनमानी करने लगे। मौलवी मुहम्मद निजामुद्दीन खां ने कुछ ऐसे नियम जारी किए जिनसे जनता में असन्तोष फ़ैलने लगा। उदाहरणार्थ अपने लेन-देन के लिए जिस किसी को शिकायत हो वह राजकीय अदालत में नालिश करें न कि पंचो में। भविष्य में कोई भी व्यक्ति लेन-देन के मामले में श्री दरबार की आण (दुहाई) नहीं दिलावे। इन नियमों का उलंघन करने वालों को दोषी घोषित किया गया।[4] वास्तव में इन सुधारों की आड़ में विदेशी सरकार देशी परम्पराएं समाप्त करना चाहती थी।

उदयपुर में हड़ताल:

इन नियमों से महाजन वर्ग बहुत क्षुब्ध हुआ। 1 जनवरी, 1864 को पूरे उदयपुर में हड़ताल रही। सभी व्यापारियों ने अपनी दुकानें बन्द रखी। वे लोग सेठ चम्पालाल के नेतृत्व में एकत्रित होकर रेजीडेन्सी पर पहुंचे, जहां पोलिटिकल एजेन्ट कर्नल ईडन रहता था। लोगों ने अपनी मांगों के समर्थन में नारे लगाये। वे मांगे निम्नलिखित थीं।[5]

3–वीर विनोद, पृ. 2067–2068

4–ओझा, उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग–2, पृ. 791

5–फो.पो. दिनांक जुलाई, 1864, नं. 30–42, रा.अ.

1–कानून मेवाड़ की परम्परा के अनुसार होना चाहिए।

2–पुलिस द्वारा व्यापारियों को तंग नहीं किया जावे।

3–किसी विरोधी पार्टी का नाम कोतवाली में दर्ज न किया जावे।

4–फौजदारी, दीवानी अदालतों तथा कोतवाली में मेवाड़ के प्रतिष्ठित पुरुषों को न्यायाधीश बनाने की प्रथा को पुनः लागू किया जावे।

5–मामूली मामलों का पुरानी प्रथा के अनुसार ही फैसला किया जावे।

6–पुरानी प्रथा के अनुसार सेठजी की दुकान पर छोटी-मोटी शिकायतें सुनी जावे।

ईडन ने बाहर निकल कर उन लोगों को बहुत समझाया पर जब उससे कोई नतीजा न निकला तब पोलिटिकल एजेन्ट ने कुछ सिपाहियों और चपरासियों को उन्हें वहां से हटाने का आदेश दिया। जब लोग नहीं हटे तो लाठी चार्ज किया गया। इस संघर्ष में कुछ व्यापारियों, सिपाहियों और चपरासियों को भी चोटें आई। अंत में एजेन्ट गवर्नर जनरल के पास जाने के लिए वहाँ से भीड़ सहेलियों की बाड़ी की तरफ चली गई। इधर ईडन ने महाराणा के साथ जाकर लोगों को शहर में आने को कहा और विश्वास दिलाया कि उनकी उचित मांगों पर विचार किया जायेगा। इस पर कई दिनों की हड़ताल तोड़ी गई।[6] शिकायतों की जांच के फलस्वरूप अदालतों के नियमों में कुछ संशोधन किया गया और मौलवी निजामुद्दीन खां को निकाल दिया गया। इस प्रकार यह आंदोलन समाप्त हुआ।[7]

मेवाड़ में ठेका और किसानों का उपद्रव :

भूमिकर–ठेका–महाराणा चाहता था कि मेवाड़ में लगान लेने के नियम अच्छे बने, लाटा या कूंता की प्रथा के स्थान पर नकद रुपया लेकर किसानों को जमीन ठेके पर दे दी जावे।[8] महाराणा ने कोठारी केसरीसिंह को इस काम के लिए नियुक्त किया। कोठारी केसरीसिंह ने बड़े परिश्रम के साथ पिछले 10 वर्ष की आमदनी का औसत निकाल कर सारे मेवाड़ में ठेके बांध दिये। इस काम में मेहता पन्नालाल और कोठारी छगनलाल ने भी सहायता की।[9] चूंकि यह प्रथा नई सी थी और प्रजा 1868-69 के अकाल तथा हैजे से तबाह हो गई थी इसका विरोध हुआ। ठेके की वसूली की सख्ती ने राज्य में असन्तोष का वातावरण उपस्थित कर दिया।[10]

6–ओझा, उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग–2, पृ. 791

7–वीर विनोद, पृ. 2069–70

8– ओझा, उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग–2, पृ. 792 794-795

9. वीर विनोद, पृ. 2211

10–एजेन्सी रेकार्ड, नं 6. 6, म्यूटीनी पृ. 28

जोधपुर में असंतोष :

हमने ऊपर पढ़ा कि मेसन की हत्या का बदला लेने के लिए एक विशाल सेना आउवा भेजी गई थी। आउवा का ठाकुर कुशालसिंह तो किसी तरह बचकर निकल गया था और बचे हुए उसके आदमियों ने तथा वहां के निवासियों ने पांच दिन तक किले की रक्षा के लिए अपनी जान की बाजी लगा दी थी। क्रुद्ध सेना ने किला, महल, कोट मकानात आदि नष्ट कर दिये। यहां तक कि आस-पास के गांवों की गढ़िया भी सुरंगों से उड़ा दी गई।[11] इस घटना को लेकर मारवाड़ में जगह जगह असन्तोष की लहर फैल गई। यहां तक कि आउवा के बलिदान को लेकर लोक गीतों का सृजन हुआ। जिनमें अंग्रेजों के प्रति घृणा और आउवा के शहीदों के प्रति भक्ति को दर्शाया गया है। ये लोकगीत आज भी मारवाड़ में बड़ी श्रद्धा से गाये जाते हैं।[12]

अंग्रेजी सत्ता मारवाड़ की इस प्रकार की विरोधी भावनाओं को दबाना चाहती थी। उसे यह संदेह था कि स्थानीय अधिकारी सरकार से असन्तुष्ट हैं और शासन सम्बन्धी कार्यों में अड़चने पैदा कर जन समुदाय को उकसाने का प्रयत्न करते हैं। इसी तरह मारवाड़ के सरदार अव्यवस्था फैलाने की गरज से अवसर मिलने पर इधर उधर लूट खसोट करते थे।[13] इस स्थिति से निपटने के लिए ए.जी.जी. ने मिस्टर टेलर नाम के एक अंग्रेजी अधिकारी को 1866 में राज्य का दीवान नियुक्त किया और मुंशी हाजीमोहम्मद को उसका नायब बनाया।[14] इस नियुक्ति का अभिप्राय यह था कि महाराजा के अधिकार कम हों और अंग्रेजों का अंकुश विरोधी भावनाओं का दमन करने में सबल बन सके। परन्तु इस नियुक्ति से स्थानीय भावनाएं और अधिक भड़की और मारवाड़ी कर्मचारी हर प्रकार का असहयोग करने लगे और उसके विरुद्ध षडयन्त्र रचने लगे। तंग आकर टेलर ने तीन महीने का अवकाश लिया और हमेशा के लिए वहां से चला गया। इस पर टेलर का दीवानी का काम हाजीमोहम्मद को सौंपा गया। हाजी ने पुराने शासकीय प्रबन्ध बदल कर अंग्रेजी ढंग से प्रबन्ध प्रारम्भ किये।[15] मुल्की व फौजी कामों पर मुसलमानों को नियुक्त किया जाने लगा। ये अंग्रेजों की साम्प्रदायिक दंगे करवाने की चाल थी जो हाजी के द्वारा जोधपुर में प्रयुक्त की गई। अब मारवाड़ी जनता और कर्मचारी ऐसे शासक के विरोधी हो गये हाजी भी छुट्टी लेकर चला गया। लोगों ने उसे वहां भी नहीं छोड़ा। गुप्त रूप से पुष्कर में उसकी हत्या कर दी गई।[16]

11- एजेन्सी रेकार्ड नं 66, म्यूटीनी, पृ. 28

12- प्रकाश व्यास, राजस्थान का स्वाधीनता संग्राम, पृ. 123

13- सनद बही नं. 128, पृ. 328

14- रेऊ, मारवाड़ का इतिहास, भाग-2, पृ. 454

15- वही, पृ. 455

16- हकीकत बही वि.सं. 1923, अ.बी.; रेऊ-मारवाड़ का इतिहास, भाग-2, पृ. 454

फिर भी अंग्रेज अपनी कूटनीति के प्रयोग से बाज नहीं आए। उनके आदेश से महाराज ने चूंगी व दाण के नियमों में हेर–फेर किया जिससे माल के आने जाने में असुविधा हो गई। 1870 में जब गवर्नमेंट ने सांभर के नमक का ठेका ले लिया तो नमक की कीमत बढ़ गई और स्थानीय व्यापारियों को इससे बड़ी हानि पहुचने लगी। जागीरदारों और व्यापारियों की सहायता से गोडवाड़, जालौर आदि भागों में मीणा, भील आदि ने उपद्रव कर दिये। इस स्थिति से निपटने के लिए राजपूताने के ए.जी.जी. लेफ्टिनेन्ट कर्नल कीटिंग ने गोडवाड़ व जालौर का प्रबन्ध राजकुमार जसवन्तसिंह को तथा जालौर का प्रबन्ध सिरोही के पोलिटिकल सुपरिन्टेन्डेन्ट को सुपुर्द कर दिया। महाराजा तख्तसिंह के अधिकारों में कमियां कर दी गई। इस प्रकार सीधे प्रबन्ध नीति ने मारवाड़ में होने वाले विरोध को और बढ़ावा दिया।[17]

जब पचपदरा, फलौदी और लूनी तट की नमक की खानो का ठेका गवर्नमेंट ने ले लिया और पिचियाक और मालकोसनी की नमक की खानों को बंद कर दिया तो इससे सम्बन्धित लोगों को हानि होने लगी। ऐसे लोगों के सहयोग से 1883 ई. में मारवाड़ के मीणों भीलो, बावरी आदि जरायम-पेशा कौमों ने स्थान-स्थान पर उपद्रव खड़े कर दिये। सरकार को इन दंगों को शान्त करने में कठिनाई का सामना करना पड़ा।

जब मारवाड़ के खालसा के गांवों में पेमाइश लगवाकर प्रति बीघे के हिसाब से लगान वसूली की प्रथा आरम्भ कर दी गई तो काश्तकारों को अपना गल्ला बेच नगद में लगान देने में असुविधाओं का सामना करना पड़ा। इससे तथा अन्य कारणों से जसवंतपुरा परगने के देवड़ों ने 1895 में बगावत कर दी। ये सभी उपद्रव राज्य और सरकार के सहयोग से शमन तो हो गए, परन्तु खेती, व्यापार और पुरानी परम्परा की ढहती हुई दीवारों के पक्ष में यह जनता की आवाज थी और अंग्रेजों के बढ़ते हुए प्रभाव के प्रति आक्रोश था।[18]

जयपुर :

1857 में और उसके बाद जयपुर का राजा महाराजा रामसिंह था। उसने अंग्रेजी शिक्षा पाई थी। हिन्दी और संस्कृत भी जानता था। उसने प्रशासनविधि पोलिटिकल रेजोडेन्टों से सीखी थी। उस पर अंग्रेजों का बड़ा प्रभावथा। उसने कलकत्ता जाकर भी अंग्रेज सरकार का वैभव देखा था। रामसिंह को शासन के पूरे अधिकार प्राप्त होने परभी वह अंग्रेज अफसरो की सलाह से काम करता था। ब्रिटिश सरकार का ध्येय था कि राजस्थान के राज्यों में ब्रिटिश भारत किसी शासन

17–ओहदा बही, नं. 3, पृ. 7, अ बी.;
ट्रीटीज एण्ड ऐगेन्जमेन्ट्स, भाग-3, पृ. 141-144

18–हकीकत बही, वि.सं. 1849, हकीकत बही नं. 29, अ.बी.;
रेऊ-मारवाड़ का इतिहास, भाग-2, पृ. 469, 470-489

प्रणाली जारी हो जावे। रामसिंह ने इसका पूरा पालन किया। पोलिटिकल ऐजेन्ट की सलाह मानकर वह शासन सम्बन्धी कार्य करता था। सरकारी पदों पर बाहर से व्यक्तियों की नियुक्तियां की जाती थी। जयपुर का शासन 19वीं शताब्दी के अन्त तक शान्तिपूर्वक तो चलता रहा परन्तु इससे राज्य में ब्रिटिश सत्ता का पलड़ा भारी होता रहा और भीतर ही भीतर अंग्रेजों के प्रति घृणा की भावना बढ़ती रही। जिस किसी कर्मचारी ने इनका विरोध किया उसको पदच्युत किया गया। 19

अलवर :

महाराजा बनेसिंह का 1857 में देहान्त हो गया तो उसका पुत्र शिवदानसिंह गद्दी पर बिठाया गया। उसकी नाबालगी में शासन का संचालन काउन्सिल आफ रीजेन्सी ने 6 वर्ष तक किया। इस अरसे से मुसलमान मंत्रियों और हिन्दू मंत्रियों में विरोध उत्पन्न हो गया। तब पोलिटिकल ऐजेन्ट की अध्यक्षता में एक काऊन्सिल 1870 में स्थापित की गई। तब 1874 में महाराजा शिवदानसिंह का निसन्तान स्वर्गवास हो गया तब ठाकुर मंगलसिंह को थाना से गोद लिया गया। उसकी नाबालगी में भी उपरोक्त प्रशासन चलता रहा। मंगलसिंह का 1892 में देहान्त हो गया। उसकी गद्दी पर उसका पुत्र जयसिंह बैठा। प्रशासन कांउसिल ही चलाती रही। आगे चलकर 1903 में जयसिंह को शासन के पूर्णाधिकार दिये गये। जब पहले पहले काउन्सिल की स्थापना की गई तो उसे बड़ा दुःख हुआ क्योंकि अंग्रेजों ने उसके अधिकार छीन लिये थे। उसने विरक्त होकर गेरूएं वस्त्र धारण कर लिये। इस प्रकार काउन्सिलों की स्थापना से जागीरदार भी नाराज थे और प्रजा में अंग्रेजों के प्रति घृणा की भावना उत्पन्न हो गई। 20

भरतपुर :

भरतपुर में 1857 के बाद महाराज जसवन्तसिंह का राज्य था। 1893 के अन्तिम मास में उसका देहान्त हो गया उनके पुत्र रामसिंह को पोलिटिकल ऐजेन्ट ने अयोग्य समझा और शासनाधिकार छीन कर उनको देवली भेज दिया और यहां की गद्दी पर उनके पुत्र महाराजा किशनसिंह को बिठा दिया। प्रशासन का संचालन एक स्टेट काउन्सिल करती थी जो पोलिटिकल ऐजेन्ट के अधीन थी। भरतपुर में इम्पीरियल सर्विस ट्रासपोर्ट कोर बनाई गयी थी जिसने सोमालीलेंड और तिब्बत अभियानों में अच्छा काम किया। इस प्रकार हस्तक्षेप की नीति से भरतपुर की प्रजा में असन्तोष का वातावरण बन गया जिसको कड़ाई से निपटा गया। 21

19- वीर विनोद, भाग-2, पृ. 1345-1346; फतसिंह, एब्रीफ हिस्ट्री आफ जयपुर, पृ. 252, 31,1 312

20- ऐचिसन, ट्रीटीज, पृ. 4050; पाउलेट-गजट अलवर, पृ. 98; ट्रैपर-राइम्स आफ राजपूताना, पृ. 159

21- फो. पो. भरतपुर पेपर्स फा. नं. 260, रा.अ.

धौलपुर :

1857 का संग्राम महाराजा भगवन्तसिंह के समय में हुआ जो 1837 में अपने पिता की मृत्यु के पश्चात् गद्दी पर बैठा था। उसने 1873 तक राज्य किया। उस वर्ष उनका देहान्त होने पर उनका पौत्र जो 9 वर्ष का था गद्दी पर बैठा। ब्रिटिश सरकार ने उसको उत्तराधिकारी मान लिया। शासन का संचालन सर दिनकर राव के सुपुर्द कर दिया गया। वह पोलिटिकल ऐजेन्ट के अधीन काम करता था। वह नाबालिग महाराजा निहालसिंह का अभिभावक था। महाराजा निहालसिंह की मृत्यु के बाद उसकी गद्दी पर उनका पुत्र रामसिंह बिठाया गया और प्रशासन पूर्ववत चलता रहा। 1905 में रामसिंह को शासन के पूर्ण अधिकार दिये गये। इस प्रकार की स्थिति ब्रिटिश सत्ता के प्रभाव को बढ़ाने में सहायक बनी जो जन आक्रोश को बढ़ावा देती रही। [22]

करौली :

1869 में महाराजा मदनपाल का देहान्त हो गया, तो उसके भतीजे लक्ष्मण को गद्दी पर बिठाया गया। उसका भी उसी वर्ष देहान्त हो गया तब जयसिंहपाल उसकी गद्दी पर बैठा। उसका भी 1875 में देहान्त हो गया तब अंग्रेज सरकार ने उसके चचेरे भाई अर्जुनपाल को 1876 गद्दी पर बिठा दिया परन्तु राज्य की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी इसलिये शासन का संचालन पूर्ववत् काउन्सिल ही करती रही। 1886 में अर्जुनपाल का देहान्त हो गया तो उसके भतीजे भंवरपाल को गद्दी पर बिठा दिया। राज्यप्रशासन पूर्ववत चलता रहा। 1889 में उसे प्रशासन सम्बन्धित पूर्ण अधिकार दे दिये, परन्तु ब्रिटिश सत्ता का दबाव उस पर बना रहा। इस दासता से जनता को घृणा थी। [23]

कोटा में असन्तोष :

1857 की क्रान्ति के परिणामस्वरूप कोटा राज्य का प्रशासन एक वर्ष तक शून्य हो गया और राज्य पर भारी ऋण लद गया, जिसकी मात्रा 90 लाख रुपये के लगभग पहुंच गई। महाराव शत्रुशाल के पास ऐसा कोई योग्य व्यक्ति नहीं था जो स्थिति को सम्भाल सकें अंग्रेज सरकार निरन्तर उस पर दबाव डाल रही थी कि रियासत का प्रबन्ध सुधारा जावे तब महाराव ने सरकार से कोई योग्य और अनुभवी व्यक्ति मांगा।

नवाब फैजअलीखां की नियुक्ति :

अंग्रेजी सरकार ने सम्पूर्ण प्रशासनिक अधिकार देकर नवाब फैजअलीखां को इस कार्य के लिये नियुक्त किया। यह पहिले जयपुर का राजमंत्री रह चुका था और वहां इसने अंग्रेजों की इच्छा के अनुसार काम किया था। कोटा मे ब्रिटिश सरकार ने इसकी बड़ी प्रतिष्ठा करवाई। नौ तोपो से इसकी सलामी होती थी। बाजार में इस पर चंवर हुआ करते थे। वह गढ के दरवाजे के अन्दर तक छतरी लगा कर जाया करता था और तामझाम में बैठा

22–वही

23–वही

हुआ हिथयापोल तक पहुंचा करता था। तब यह महाराव शत्रुशाल से मिलने आता था तो कुर्सियों पर दरबार होता था और वह कोटा नरेश के दांई ओर बैठा करता था। दरबार के अन्दर भी इसके आदमी चंवर हाथ में लिये पीछे खड़े रहते थे। शत्रुशाल इसका स्वागत करने के लिये फर्श के किनारे तक आता था और इसी प्रकार विदा करता था। उसका इत्र व पान द्वारा सत्कार किया जाता था। जितनी बार नवाब फैज अलीखां गढ़ में मिलने आता था उतनी ही बार शत्रुशाल भी "अजण्टी बंगले" (राजभवन) पर उससे मिलने जाया करता था। नवाब भी दरबार का स्वागत उसी प्रकार करता था जैसे गढ़ में उसका किया जाता था। नवाब फैजअलीखां दो वर्ष ही काम कर सका। उसने कोटा राज्य में जब से कदम रखा तब से ही महाराव शत्रुशाल एवं कोटा की जनता उससे असन्तुष्ट थी। उसकी शक्ति और प्रतिष्ठा के कारण यह असन्तोष बना ही रहा। अतः भारत सरकार ने सन् 1875 में उसे वापिस बुलाकर कोटा राज्य का शासन भार स्थानीय पोलिटिकल ऐजेन्ट को सुपुर्द कर दिया। इस तरह कोटा के राज्य प्रबन्ध की नकेल अंग्रेजों के हाथ में रहने लगी।[24]

झालावाड़ :

जालिमसिंह ने सन् 1805 में ही झालावाड़ बसाना शुरु कर दिया था और वहां अच्छा शहर बन गया था। 1837 में झाला मदनसिंह झालावाड़ का अलग राज्य बनते ही उस नगर मे रहने लगा। सन् 1846 में मदनसिंह का देहान्त हो गया और पृथ्वीसिंह गद्दी पर बैठा। भादवा सुदी तेरस सम्वत 1932 (सन् 1875) को पृथ्वीसिंह का देहान्त हुआ और दूसरे दिन जालिमसिंह द्वि. की दोहाई फेर दी गई। जालिमसिंह द्वि. का स्वभाव उग्र था। वह अपने को स्वतंत्र राजा समझता था और सन्धि की शर्तों के अनुसार था भी। परन्तु उसने नहीं समझा कि झालावाड़ रियासत अभी हाल ही में बनी थी। वह पोलिटिकल एजेन्ट का आदर नहीं करता था। दोनों में कभी नहीं बनी। सन् 1896 में पोलिटिकल ऐजेन्ट ने राजराणा में प्रशासन करने की योग्यता नहीं है ऐसी शिकायत कर दी। शायद कोई जांच नहीं की गई और पोलिटिकल एजेन्ट ने जो लिखा वही सत्य मान लिया और उसे काशी भेज दिया गया। वास्तव में पोलिटिकल एजेन्ट महराजा से घोड़ा गाड़ी आदि की सुविधाएं चाहता था जो उसने नहीं दी थी।

राजराणा जालिमसिंह द्वि. को गवर्नर जनरल ने जब गद्दी से उतारा तो सारी रियासत में बड़ा क्षोभ उत्पन्न हो गया। भारत के अखबारों ने सरकार के कार्य की कटु आलोचना की भारतीय कांग्रेस में भी इस विषय पर बड़ी चर्चा हुई और ब्रिटिश पार्लियामेन्ट में भी इस विषय पर वाद-विवाद हुआ। राजराणा को गद्दी से उतार कर अब ए.जी.जी. घोड़ा गाड़ी में बैठकर जाने लगा तो झालावाड़ के हजारों लोगों ने गाड़ी को घेर लिया और उग्र होकर पूछा कि राजराणा को गद्दी क्यों उतारा गया? सारी रियासत में शोक छा गया। 1896 में कलकत्ता में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ यहां भी सरकार के

---

24. डा. मथुरालाल शर्मा, कोटा राज्य का इतिहास, भाग-2, पृ. 655, 656, 683, 696

आदेश के विरुद्ध भाषण हुए। मि. एस. पी. सिंहा ने प्रस्ताव रखा कि अदालत में मुकदमा चलाये बिना किसी नरेश को गद्दी से नहीं उतारना चाहिए। इस प्रस्ताव का अनुमोदन श्री एस. एम. जैन ने किया। वह पार्लियामेन्ट का मेम्बर भी था और भारत का हितैषी था। बहुत कुछ वाद/विवाद होने के बाद कांग्रेस ने एक प्रस्ताव पास किया कि नियमानुसार अदालती जांच के बिना ऐसा कार्य नहीं करना चाहिए। ब्रिटिश पार्लियामेन्ट में भी इस विषय पर चर्चा हुई और यह पूछा गया कि नियमानुसार पूरी कार्यवाही के बिना राजराणा को गद्दी से क्यों उतारा गया? भारत सचिव ने उत्तर दिया कि राजराणा में प्रशासन की योग्यता नहीं थी। राजराणा के मामले को लेकर भारत में आन्दोलन हुआ। ब्रिटिश सरकार के कार्य का ऐसा व्यापक विरोध यह प्रथम बार ही हुआ था, परन्तु इस हल्ले की उपेक्षा करके सरकार ने झालावाड़ के दो हिस्से कर दिये। जो इलाके कोटा राज्य से अलग करके झालावाड़ में सम्मिलित किये गये वे फिर कोटा को ही दे दिये गये। इस प्रकार झालावाड़ की स्थिति और प्रतिष्ठा पहले की अपेक्षा कम हो गई। भवानीसिंह को जालिमसिंह द्वितीय उत्तराधिकारी घोषित किया गया। झालावाड़ की प्रजा को अंग्रेजो के बढ़ते हुए प्रभाव से घृणा हो गई।[25]

बीकानेर में असंतोष :

राजस्थान में केवल महाराजा सरदारसिंह ही ऐसा राजा था जिसने विद्रोह के समय व्यक्तिगत रूप से युद्ध में भाग लिया था। उस समय केन्द्रीय सत्ता सबसे विकट स्थिति में थी। अतः इसकी सहायता की बड़ी प्रशंसा की गई और एजेन्ट गवर्नर जनरल राजपूताना ने दूसरे सभी राजाओं से बीकानेर महाराजा की स्वामी भक्ति और सेवाएं उत्तम मानी। इन सेवाओं के उपलक्ष में बीकानेर महाराजा को हिसार जिले के 41 गांव, जिनका राजस्व 14291 रु० था। मई सन् 1862 से दे दिये गये। क्रान्ति के समय की गई प्रशंसनीय सेवाओं के उपलक्ष में गवर्नर जनरल ने महाराजा को खिलअत और उपहार दिये।[26] सरदार सिंह को एजेन्ट टू गवर्नर जनरल कप्तान हेमिल्टन अलेक्जेन्डर स्किनर को बधाई का खरीता प्राप्त हुआ।[27] महारानी विक्टोरिया द्वारा महाराजा की सहायता की प्रशंसा का संदेश सरचार्ल्स वुड ने अपने 15 दिसम्बर सन् 1859 के पत्र द्वारा भिजवाया।[28]

25– डा. मथुरालाल शर्मा– कोटा राज्य का इतिहास, भाग–2, पृ. 569

26– ता. 24–4–1860 का लार्ड केनिंग का खरीता, अ. बी.

27– ता. 11–12–1861 का कप्तान हेमिल्टन का खरीता, अ. बी.;
ता. 5–7–1861 का अलेक्जेन्डर स्किनर का खरीता, अ. बी.;
ता. 10–5–1861 का जनरल लारेन्स का खरीता, अ. बी.

28– सन् 1857 के विद्रोह में बीकानेर राज्य द्वारा अंग्रेज सरकार को दी गई सहायता सम्बन्धी महाराजा बीकानेर के निजी सचिव के कार्यालय की फाईल संख्या 48 पृ. 51;
पार्लियामेन्ट्री पेपर्स, 1860, हाउस ऑफ कामन्स पेपर नं. 77 म्यूटिनी कोरसपोन्डेन्स आदि पृ. 144, रा. अ.; सर चार्ल्स वुड का पत्र बीकानेर महाराजा के नाम अ. बी.

इन 41 गांवों के लिये बीकानेर राज्य ने काफी समय से अपना दावा कर रखा था। सिक्ख लड़ाई के बाद महाराजा ने हिन्दुमल पर भी अपने अधिकार का दावा किया था। दावा इस आधार पर किया गया था कि वह 300 वर्षों से अधिक समय तक बीकानेर राज्य के अधीन था। उनका राजस्व 30,000/- रु. था। भारत सरकार ने 41 गांव जिनका राजस्व 14,291/- रु. था देकर राज्य की सेवाओं को पुरस्कृत किया।[29] वास्तव में 1862 में इन गांवों का दिया जाना स्पष्टतः उन गांवों को वापस देना था जो जबर्दस्ती अंग्रेजों द्वारा जब्त कर लिये गये थे।

सन् 1862 में महाराजा को एक सनद प्राप्त हुई जिसमें महाराजा को दत्तक पुत्र लेने का अधिकार स्वीकार किया गया।[30] सनद में लिखा था कि जब तक बीकानेर शासन सरकार के स्वामी भक्त रहेंगे और विभिन्न संधियों और इकरारनामों की शर्तों का पालन करेंगे तब तक और पुत्र न होने पर महाराजा और बीकानेर के भावी शासक हिन्दू पद्धति और अपनी जाति के रीति रिवाज के अनुसार अपना उत्तराधिकारी गोद ले सकेंगे तथा उसे अंग्रेज सरकार स्वीकृत और पुष्ट करेगी।[31] इन प्रशंसात्मक खिलतों व अधिकारों से महाराजा फूले न समाये और मनमाने ढंग से प्रजा पर कर का भार बढ़ाने लगे।

उस समय राज्य कोष की खराब हालत होने से महाराजा को धन संग्रह हेतु सभी संभव साधन काम में लाने पड़े। राज्य के अधिकारियों पर यथा संभव अधिक से अधिक धन संग्रह करने हेतु दबाव डाला गया।[32] इसका एक परिणाम यह निकला कि राज्य के अधिकारियों ने बहुत ऊंची दर पर जनता से कर वसूल किये।[33] ये कर उन 41 गांवों से भी वसूल किये गये जो उसी समय राज्य को पुनः दिये गये थे। जब इन गांवों के निवासियों ने अंग्रेजों से शिकायत की तब हिसार के कमिश्नर को जांच के लिये भेजा गया। जांच करने पर शिकायत सत्य निकली।[34] इस पर महाराजा को लिखा गया कि सन् 1856 के बन्दोबस्त के अनुसार इन गांवों के लिये जो दर निश्चित की गई है उसका पालन किया जाए। महाराजा ने इससे सहमति प्रकट की।[35]

सन् 1868 में बीकानेर के लिये गवर्नर जनरल ने एक सहायक एजेन्ट की नियुक्ति की।[36] उसका प्रधान कार्यालय सुजानगढ़ में रखा गया। इसका मूल उद्देश्य तो जयपुर,

---

29- एचिसन, पूर्व उद्धत, भाग-3, पृ. 290-91

30- एचिसन, भाग-2 पृ. 278, पृ. 35-36 भी देखें

31- एचिसन, भाग-3, पृ. 35-36

32-एचिसन, भाग-3, पृ. 278-79

33-वही, पृ. 278-79

34-राराअबी-ता. 16-3-1968का लार्ड लारेन्स का खरीता, ता. 19-11-1968 का कर्नल कीटिंग (गवर्नर जनरल के एजेन्ट का खरीता, ता-3-6-1869 और 1869 के कप्तान पाउलेट के खरीते।

35-एचिसन, भाग-3, पृ. 278

36-पउलेट, पृ. 88

जोधपुर और बीकानेर तीनों राज्यों की सीमा पर होने वाली डकैतियों को रोकना था, पर उसे बीकानेर का शासकीय कार्य भी संभलाया गया। उक्त पद पर सर्व प्रथम कप्तान पी. डब्ल्यू. पाउलेट को नियुक्त किया गया।[37] बीकानेर के लिये पोलिटिकल एजेन्ट के रूप में कप्तान पाउलेट की नियुक्ति के बाद शीघ्र महाजन, असाणा, वायु, सीधमुख कानासर, बिरकाली, मेघाणा, हरदेशर, कनवारी साइंसर और खारबारा के ठाकुरों ने उसे एक अर्जी दी जिसमें महाराजा के विरुद्ध निम्नलिखित आरोप लगाये थे।[38]

(क) उनके पट्टे के कुछ गांव जब्त कर लिये गये।

(ख) नजराने के रूप में उनसे अनुचित धन वसूल किया गया।

(ग) उन पर भांति-भांति के कर लगाये गये।

कप्तान पाउलेट तथा तत्कालीन दीवान पण्डित मनफूल ने इन आरोपों की जांच की और अपनी रिपोर्ट में बीकानेर में होने वाली अनियमितता का ब्यौरा दिया। उसने बताया कि महाराजा रतनसिंह के शासन के अन्तिम दिनों में राज्य पर लगभग साढ़े आठ लाख रुपये का कर्ज हो गया था। सबसे अधिक खर्च सेना पर होता था। वैसे तो जागीरदारों की लूटमार की कार्यवाहियों और जैसलमेर, भावलपुर, जोधपुर, जयपुर और शेखावाटी से लगने वाली सीमाओं की रक्षा की आवश्यकता होने के कारण यह सेना रखना जरूरी था। परन्तु सेना पर होने वाले व्यय के लिए महाराजा सरदारसिंह के शासन के प्रथम 19 वर्षों में 18 दीवान बदल गये।[39] नये करों को वसूल करने के ढंग से तंग आकर लोगों में भारी असन्तोष था।[40]

पोलिटिकल एजेन्ट ने अंग्रेज सरकार को ऐसी रिपोर्ट भेजी जिसमें दर्शाया गया कि बीकानेर राज्य में जीवन और सम्पत्ति सुरक्षित नहीं है। रिश्वत देकर या सिफारिश करवाकर बड़े से बड़ा अपराधी भी बच सकता था। जागीरदारों की लूट की प्रवृत्ति से व्यवस्था हो रही है। महारा की द्रव्य मांग से कर्मचारी भ्रष्ट हो रहे हैं। इससे जनता की दुर्दशा हो रही है। ये स्थिति इसलिए बतलाई गई थी कि जिससे अंग्रेजों को आन्तरिक प्रशासन में सक्रिय हस्तक्षेप करने का अवसर मिले।[41]

---

37. पाउलेट, पृ. 88
38. रिपोर्ट आफ द पोलिटिकल एडमीनिस्ट्रेशन आन द राजपूताना स्टेट्स 1870-71 सुजानगढ़ ऐजेन्सी रिपोर्ट, पृ. 211-2131
39. पाउलेट-पूर्व उद्धत पं. 87 ये थे; इनके कुछ नाम इस प्रकार हैं-1852 गुमानसिंह वेद और लछीराम राखेचा, 1853 लछीराम, 1854 गुमानसिंह, 1865 पंडित दोजयन्ता, 1856-63 रामलाल द्वारकानी, 1864 गुमानसिंह, 1865 रामलाल, 1866 मानमल राखेचा, 1866 शिवलाल नाहटा, 1867 फतेहचन्द सुराणा, 1867 पुरोहित गंगारास, 1867 शाहमल कोटर, 1862-1868 मानमल, 1863 शिवलाल मोहता, 1868 लक्ष्मीचन्द नाहटा, 1868 विलायत हुसैन और 1869 पंडित मनफूल।
40. रिपोर्ट आन द पोलिटिकल एडमिनिस्ट्रेशन आफ द राजपूताना स्टेट्स 1870-71; सुजानगढ़ ऐजेन्सी रिपोर्ट, पृ. 203
41. वही

बीकानेर में सरदारों का असन्तोष दूर करने का बहाना :

कप्तान ब्रेड फोर्ड सरदारों का असंतोष दूर करने के बहाने बीकानेर भेजा गया। उसने वहां जाकर एक कौंसिल की स्थापना की। किन्तु कौंसिल का काम असफल रहा। राज्य में आमदनी न बढ़ सकी। बल्कि सरदारों पर रेख बढ़ा दी गई। इस नीति से वहां के सामन्तों में असंतोष और बढ़ा। भादरा और चूरू के ठाकुरों ने राज्य के अपराधियों को शरण देना शुरू किया और वे दिन दहाड़े लोगों को लूटने लगे।[42]

स्थिति की जांच के लिए 30 अगस्त, 1883 ई. को कप्तान पाउलेट बीकानेर आया और महाराजा तथा विरोधी सरदारों से मिला। सरदारों ने कप्तान पाउलेट से गुस्ताखी भी की और समझौता न हो सका। विरोधी सरदारों ने अपने अपने ठिकानों में सेना एकत्रित करना शुरू किया। उधर "महाजन" में विरोधी सरदारों की पांच छः हजार सेना इकट्ठी हो गई। बीदासर में उस समय ठा. रामसिंह (महाजन) रावत रणजीतसिंह (सोडवा) ठा. नाहरसिंह (सांत) ठा. बीजराज (पृथ्वीसर) तथा अन्य कई सरदार अपनी सेना के साथ आ डटे। कप्तान लवेट सुजानगढ़ से अंग्रेजी सेना ले आया। बिना कोई भी बात किये सरदारों को गिरफ्तार कर लिया गया और उन्हें देवली की छावनी में पांच वर्ष के लिये भेज दिया गया। उनकी जागीरें उनके उत्तराधिकारियों के नाम कर दीं गई। रेख को लेकर जो झगड़ा हुआ था वह पहले से भी सवाई और ड्योढ़ी कर दी गई। इस प्रकार की नीति से ब्रिटिश अधिकारी अपनी सत्ता की धाक बीकानेर में स्थापित करने में सफल हो गये और राज्य में असंतोष का वातावरण व्याप्त हो गया।[43]

जैसलमेर में असंतोष:

उस राज्य में महता नथमल सर्वेसर्वा बना हुआ था जो अंग्रेजों का पक्षधर था। जैसलमेर नरेश उस पर पूरा भरोसा करता था परन्तु प्रजा उसे अंग्रेजों का आदमी समझकर पसन्द नहीं करती थी। जनता के असन्तोष से तंग आकर जैसलमिर नरेश ने नथमल को ए.जी.जी. के पास अपना वकील बनाकर नियुक्त कर दिया। परन्तु नथमल ने इसको अपना बड़ा अपमान समझा और कर्नल ईडन को चतुराई से अपने पक्ष में करके इस बात पर सहमत कर लिया कि उसको पुनः पूरे अख्तियार देकर जैसलमेर को मदारूलमहाम बनाकर वापिस जैसलमेर भेज दिया जावे। कर्नल ईडन ने यह बात मान ली और सन् 1865 ई. में उसने जैसलमेर नरेश को खरीता भेजा कि "नथमल ने बड़ी खेरख्वाही से काम किया है। राजपूताना में आया तब से इनको भली भांति जानता हूं। मैं यह मुनासिब समझता हूं कि नथमल मदारूलमहाम का कार्य करे। इस पद पर अभी अजीतसिंह काम कर रहा है। उसकी मैंने शिकायतें सुनी हैं। मैं चाहता हूं कि अजीतसिंह को वकील बनाकर हमारे पास भेज दिया जावे और नथमल रियासत का काम करें। जब शिकायतें

42–रिपोर्ट आन द पोलिटिकल एडमिनिस्ट्रेशन आफ राजपूताना स्टेट्स, 1870-71

43–सोहनलाल तवारीख बीकानेर पृ. 222–226; ओझा–बीकानेर राज्य का इतिहास भाग 2, पृ. 479–85

ठण्डी हो जावेगी तब जो उचित होगा किया जावेगा। इसलिए मैं नथमल के आप की खिदमत में हाजिर होने के लिए रूखस्त कर रहा हूं और यह खरीता बतौर सनद के उसको दे रहा हूं। मुझे आशा है कि आप उसके सद्व्यवहार से सन्तुष्ट रहेंगे और उस पर कृपा रखेंगे।" इसी खरीते की पुश्त पर जैसलमेर नरेश के आदेश से इन्द्रराज मुंशी ने लिखा कि "महता नथमल इस सनद के अनुसार सेवा करें और हमारी इच्छानुसार कार्य करें। उस पर पूरा भरोसा किया जावेगा।"[44] इस प्रकार के दबाव से राजा और प्रजा में अंग्रेजों के प्रति घृणा पैदा हो गई।

जनता और जागीरदारों का सीमा विवाद पर असन्तोष :

दो वर्ष बाद मारवाड़ और बीकानेर के बीच सीमा विवाद हुआ तो, केप्टन सिविल ने दोनों राज्यों के बीच सीमा निश्चित की। इस सीमा निर्धारण को लोगों ने जुल्म माना। इस निश्चय के अनुसार जैसलमेर के कई गांवों की जमीन मारवाड़ को सौंप दी गई थी। इसको लेकर इतना विवाद खड़ा हुआ कि पुरोहित सरदारमल मारा गया। फिर गिरिराज गांव के पास सीमा के विषय में झगड़ा हो गया। बीकानेर से भी सेना आ गई और कई आदमी मारे गये और घायल हो गये। जब इसकी छानबीन की गई तो बीकानेर का अपराध सिद्ध हुआ। अंग्रेज सरकार ने बीकानेर से जैसलमेर को कई हजार रुपये हर्जाने का दिलाना चाहा, परन्तु जैसलमेर ने नहीं लिये और उत्तर दिया कि जब मौका आने पर इसका बदला लिया जावेगा।[45]

विभिन्न रियासतों में बन्दोबस्त और उससे असन्तोष:

अंग्रेज सरकार को जनता की सुविधा के बजाय रियासतों से अपना खिराज वसूल करने की बड़ी चिन्ता रहती थी। वे चाहते थे कि खिराज यथा समय पूरा-पूरा वसूल हो जाय। इसकी वसूली में प्रायः कठिनता रहती थी। मराठा काल में विभिन्न रियासतों का प्रबन्ध अस्त व्यस्त हो गया था और कृषि को बड़ी हानि पहुंची थी। इसके अतिरिक्त जयपुर और उदयपुर पर ब्रिटिश सरकार ने अत्यधिक खिराज लाद दिया था जिसके कारण उन रियासतों को अपने ही महकमों का खर्च चलाना कठिन हो गया था, और खिराज की वसूली के लिए उनको निरन्तर दबाया जा रहा था। इसलिए रियासतें किसानों को भूमिकर अदा करने के लिए दबाया करती थी। कृषक लोग जानते थे कि जो कुछ हो रहा है वह अंग्रेज सरकार के कारण हो रहा, राजाओं के कारण नहीं। इसलिए जनता में असन्तोष था परन्तु इस असन्तोष को संगठित और प्रभावशाली करने के लिए उस समय न तो कोई संगठन था और न कोई साहसी व्यक्ति था। अपने खिराज की यथा समय वसूली के लिए अंग्रेज सरकार ने चाहा कि प्रत्येक रियासत में भूमि का बन्दोबस्त किया जावे और पहले से लगा हुआ लगान ही नहीं बल्कि और अधिक लगान यथा समय वसूल करने की व्यवस्था की जावे। सरकार का उद्देश्य यह था कि इस प्रकार प्रत्येक रियासत की वार्षिक आय निश्चित हो जाने पर कोई भी रियासत यह बहाना नहीं कर सकेगी कि खिराज अदा करने के लिए उसके पास रुपया नहीं है।

44- खरीता ईडन द्वारा 12 अक्टू. 1865, रा.अ.; तवारीख जैसलमेर, पृ. 98-99

45- तवारीख-ए. जैसलमेर, पृ. 98-99

इसलिए सरकार ने यह नीति निश्चित की कि राजस्थान की प्रत्येक रियासत के बन्दोबस्त की व्यवस्था की जावे। तदनुसार अलवर, भरतपुर, बीकानेर, जोधपुर, झालावाड़, कोटा, टौंक, जोधपुर और उदयपुर, बांसवाड़ा, डूंगरपुर, प्रतापगढ़, सिरोही, करौली और बूंदी में 19वीं शताब्दी में बन्दोबस्त करवाये गये। अधिकांश रियासतों ने सरकार की सलाह मान कर चलाऊ और संक्षिप्त बन्दोबस्त करवा लिये जिनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है।

टौंक :

टौंक में पहले सरकार भूमि की उपज का साढ़े 46 प्रतिशत लेती थी और उतना ही कृषकों के लिए बचता था शेष 7 प्रतिशत पटेलों और पटवारियों को मिलता था। टौंक के नवाब ने सबसे पहले बन्दोबस्त अपनी रियासतों के सरोज क्षेत्र में करवाया। इस प्रकार बन्दोबस्त पड़ावा में भी कराया गया।[46]

भरतपुर :

1854 में ही महाराजा ने बन्दोबस्त की स्वीकृति दे दी थी परन्तु यह कार्य 1867 में शुरू हुआ और 10 वर्ष के लिए किया गया। इससे रियासत की आय लगभग 17 लाख वार्षिक से बढ़कर 20 लाख वार्षिक से अधिक हो गई।[47]

मेवाड़ :

महाराणा ने 1878 में अंग्रेजी सरकार से बन्दोबस्त के लिए कोई अनुभवी अफसर मांगा। तब 1878 में डब्ल्यू, एच, स्मिथ नामक अंग्रेज अफसर उदयपुर आया। उसने एक माह तक मेवाड़ के जिलों का दौरा कर बन्दोबस्त का कार्य किया। कुछ कारणवश वह अवकाश लेकर कुछ दिनों के लिए विलायत चला गया। सन् 1879 में मिस्टर विंगेट को पेमाइश के काम पर नियुक्त किया। जो किसान अनाज के रूप में हासिल लिये जाने की पुरानी प्रथा से परिचित थे उन्हें नकद में हासिल होने का अन्देशा था। इस स्थिति से किसानों व लेन देन करने वाले महाजनों में असन्तोष फैला। परन्तु मेहता पन्नालाल और सेटलमेन्ट आफिसर मिस्टर विंगेट ने बड़ी चतुराई से इस व्याप्त विरोध को दबा दिया।[48]

अलवर :

इस रियासत में लगान के रूप में भूमि की उपज का आधा भाग ले लिया जाता था। 1859 में पोलिटिकल ऐजेन्ट इम्पे ने 3 वर्ष के लिए बन्दोबस्त किया इससे आय में लगभग एक लाख रुपये वार्षिक की वृद्धि हो गई और 1862 के बाद प्रति वर्ष दो लाख रुपये बढ़ाने का आदेश हुआ, तब कृषकों ने बड़ी शिकायतें की इसलिए 10 वर्ष बाद सरकार ने लगान की दर घटा दी।[49]

46–ए.आर.आर. वर्ष 1867–68, पृ. 105

47–एस.सी.ए. पोलिटिकल एजेन्ट, भरतपुर एल. सं. 487/83, रा.अ.

48– सेटलमेन्ट फाइल, उदयपुर. 1800, अ.बी.

49– सेटलमेन्ट आफ लेण्ड, पृ. 214, 415, 452

धौलपुर :

इस राज्य में बन्दोबस्त प्रथम बार 1860 में हुआ था, फिर 1870 में इसको संशोधित किया गया और 1874 में पुनः बन्दोबस्त करके भूमि कर में 30 प्रतिशत की वृद्धि कर दी गई। अंग्रेज सरकार की नीति थी कि जब भी बन्दोबस्त किया जाए तब ही भूमिकर बढ़ा दिया जाय। परन्तु इससे कृषकों को क्षोभ और असन्तोष अत्यधिक हुआ। [50]

बीकानेर :

इस राज्य में सन् 1885 में खालसा भूमि का बन्दोबस्त किया गया था जिससे लगान एक लाख रुपये बढ़ गया। फिर 94 में एक अंग्रेज ने पुनः बन्दोबस्त किया, और ऐसे ही समय समय पर 1928 तक बन्दोबस्त होते रहे। [51]

जोधपुर :

इस राज्य में कर्नल लोग के 1883 में तमाम गांवों की हद बन्दी करके भूमि का बन्दोबस्त किया था जो 1893 में समाप्त हुआ था। भूमि दो भागों में विभक्त की गई थी (1) चाही और (2) बैरानी, चाही का लगान निश्चित कर दिया गया था और लगान उपज के अनुसार लिया जाना था। इस प्रकार की व्यवस्था खालसा के 566 गांवों में कर दी गई थी। [52]

कोटा :

जालिमसिंह ने जमीन को नपवाया और पुराने बीघे का दो तिहाई पूरा बीघा मान लिया गया, जमीन की चकबन्दी की गई उसकी किस्म और उपज के अनुकूल पीवल कारवान, काजू और पड़त इन तीनों भागों में विभक्त किया। भूमि का लगान नकद रुपये में लिया जाने लगा। जालिमसिंह ने नये कागजात बनवाये परन्तु पुरानी व्यवस्था नहीं बदली। फिर पोलिटिकल ऐजेन्ट पोटि ने नया बन्दोबस्त करने के लिए ब्रिटिश भारत से मुंशी दुर्गाप्रसाद को बुलाया। उसने 1876 ई. में काम शुरू किया और 10 वर्ष में समाप्त किया। उसने हाथी पर बैठकर देखा था कि जमीन का ढाल किधर है। इसलिए यह हाथीवाला बन्दोबस्त कहलाता था। पहले राज्य में सैकड़ों प्रकार की डोरियां मौजूद थी, दुर्गाप्रसाद ने केवल ग्यारह रहने दी, एक डोरी का नाप 130 फिट 8 इंच से 140 फिट 8 इंच तक रखा गया। [53]

50–वही

51–वही

52–सेटलमेन्ट फाइल, 1870–1890, अ. बी.

53–फाईनल रिपोर्ट आफ द सेकण्ड सेटलमेंट, बटलर, पृ. 22–23

झालावाड़ :

राज्य झालावाड़ में 1878 में सरसरी बन्दोबस्त किया गया और 1885 में पूरा हुआ। इससे किसानों मे असंतोष और उपद्रव होने लगे। [54]

वैसे बन्दोबस्त प्रणाली का समर्थन भूमि सुधार तथा लगान व्यवस्था में नियमितता लाने की दलील से किया जाता है, परन्तु इससे कृषक वर्ग के शोषण और सरकार के हित की रक्षा की दुर्भावना छिपी हुई थी। उस समय के राज्यों की आर्थिक स्थिति सन्तोषजनक नहीं थी जिसमें ब्रिटिश अधिकारियों की नियुक्ति द्वारा राज्यों को नये विभाग के बोझ से लाद दिया गया था। ये अधिकारी अंग्रेज सरकार के आदेशानुसार नरेशों के राज्य में काम करते थे और सर्वदा उन नियमों को लागू करते थे जिनसे ब्रिटिश सत्ता अधिक मजबूत बन सके। लगान व्यवस्था में एकरूपता लाकर सरकार के खिराज की वसूली में निश्चितता उत्पन्न कर दी गई थी न कि उसमें अकाल की स्थिति में राहत दिलाने का कोई प्रावधान रखा गया था। 19वीं सदी के लगान के आंकड़ों से एक नया प्रकाश यह पड़ता है कि राजस्थान में बन्दोबस्त के बाद दुष्काल के दौर में वृद्धि हुई थी। जो भूमि चरागाह के लिए निर्धारित रहती थी, लगान के बढ़ जाने से उसका उपयोग चराई के लिए खत्म हो गया और चारे का संकट दिन व दिन बढ़ता गया। काश्त की जमीन के अतिरिक्त चारे की भूमि या जंगल के रखत की भूमि पूंजीपतियों को बेच दी गई जिससे नये जमींदारों की जमात आई जो सर्वदा ब्रिटिश सत्ता के पोषक बनी रही। ये वर्ग नाज और घास इकट्ठा करता था जिससे अकाल नैसर्गिक न होकर मनुष्य जनित हो गया। इसके फलस्वरूप अनेक किसानों को अपनी भूमि छोड़ अन्यत्र जाकर बसना पड़ता था। इस व्यवस्था ने राज्य को खोखला कर दिया। यही कारण है कि स्वतन्त्रता आन्दोलन कृषकों की समस्या को लेकर आरम्भ हुआ। जिसका वर्णन यथा स्थान किया जायगा।

अफगान युद्ध और नरेशों का गुलामी का दृष्टिकोण :

जब ब्रिटिश सरकार का अफगानिस्तान से युद्ध हुआ [1878] तो राजस्थान के नरेशों को पुन अपनी राजभक्ति और सहानुभूति तथा खुशामद करने का अवसर प्राप्त हुआ। अब वे जानने लग गये थे कि इसके बिना उनका अस्तित्व कायम नहीं रह सकता। भरतपुर के महराजा ने अपनी भारतीय सेना पूरी ब्रिटिश सरकार के हवाले कर दी। [55] बीकानेर के महराजा ने आशा प्रकट की कि सरकार की सेना को विजय प्राप्त होगी और उसके शत्रु को उचितदंड मिलेगा। महराजा ने अपनी सेना ब्रिटिश सरकार को सुपुर्द कर दी। [56] महराजा अलवर ने भी ब्रिटिश सरकार को लिखा कि लड़ाई में उपयोग के लिये ऊंट दिये जा सकते हैं उन्होंने तत्काल ही 250 ऊंट और 50 आदमी सरकार सुपुर्द कर दिये।

54–सेटलमेंट फाईल झालावाड़, अ.बी.

55–महराजा दशरथ सिंह भरतपुर का 25 मई 1878 का पत्र राजस्थान के ए.जी.जी. के नाम. रा.अ :

56–महराजा डूंगरसिंह बीकानेर का पत्र मेजर ब्रेडफोर्ड के नाम ता. 29 नवम्बर, रा अ

महाराजा ने 300 प्यादे और 300 सवार भी ब्रिटिश सरकार को दिये और कहा कि इन सबका खर्च रियासत सहन करेगी। भरतपुर के महाराजा जसवन्तसिंह ने 500 प्यादे दिये।[57] इनके अतिरिक्त अन्य नरेशों ने भी सैनिक सहायता दी। जब काबुल में सरकार की विजय हो गई तो राजस्थान के नरेशों ने हर्ष मनाया और ब्रिटिश सरकार को बधाई के अनेक पत्र लिखे। जब काबुल के साथ ब्रिटिश सरकार की संधि हो गई तो उदयपुर के महाराणा सज्जनसिंह ने एक दरबार किया। शाही सम्मान में तोपें चलाई गई और रोशनी की गई।[58] जयपुर के महाराजा ने स्वामिभक्ति और मैत्री प्रदर्शित करने के लिए वायसराय को तार भेजा। जोधपुर के महाराजा ने भी बधाई का तार भेजकर वायसराय से निवेदन किया कि भारत की साम्राज्ञी श्रीमती महारानी विक्टोरिया को जोधपुर की ओर से शुभकामना भेजी जाये। इसी प्रकार कोटा राज्य काउंसिल ने कृतज्ञता प्रकट करते हुए लिखा कि "इस अवसर पर हम आपको विश्वास दिलाते हैं कि अंग्रेज सेना की सफलता पर हमको हर्ष प्राप्त हुआ है। हम साम्राज्ञी के दीर्घ जीवन के लिए और भारत में अंग्रेजी राज्य निरन्तर बना रहने के लिए प्रार्थना करते हैं।"[59] इस प्रकार का नरेशों का दृष्टिकोण उनकी दासता का ज्वलन्त उदाहरण है। इस स्थिति से प्रजा में राजाओं के प्रति आस्था घटने लगी।

समीक्षा :

57 की क्रांति के दबाने के बाद ब्रिटिश सरकार का ध्यान कर का भार बढ़ाने और खिराज की रकम बढ़ाने पर आकर्षित हुआ। इस ध्येय की पूर्ति के लिए सीमा विवाद, पैमाइश, शासन सुधार, जनगणना आदि सरकारी हित के मुद्दों को आधार बनाकर राजस्थान के नरेशों को निकम्मा और निष्प्राण बनाने के ताने बाने बुने जाने लगे। उनके अधिकारों की अवहेलना की जाने लगी और आन्तरिक मामलों में अधिकाधिक हस्तक्षेप किया जाने लगा। इस प्रकार पराधीनता की जंजीर से राजस्थान के नरेशों को ऐसा जकड़ लिया गया कि जो आदेश सुधार के नाम से अंग्रेजी सत्ता द्वारा प्रसारित होते थे उनकी अवहेलना करना उनके बूते के बाहर था। इसीलिए राज्यों में जन कल्याण तथा आम आदमी के हित की बात को सर्वदा नजर अन्दाज किया जाने लगा। अंग्रेजों के बढ़ते हुए प्रभाव और विजयों से चकाचोंध होकर नरेशों ने यह मान लिया कि ब्रिटिश सरकार की शक्ति असीमित है। वे अब पूरी तौर से अनुभव करने लगे कि उसकी प्रशंसा करने और उसके आदेशों का पालन करने में ही उनकी भलाई है। झालावाड़ का उदाहरण उनके सामने एक ताजा नजीर थी। संधियों के वे भाग जो उनके अधिकार से सम्बन्धित थे ताक में रख दिये गये थे और अब उनकी दुहाई देना निरर्थक था। सरकारी हस्तक्षेप बढ़ाने के लिए जो युक्ति प्रस्तुत की जाती थी वह इनको मान्य थी। अब तो नरेश इतने निष्क्रिय हो चुके थे कि वे अंग्रेजी अधिकारियों के इशारे पर नाचने लगे।

57– महाराजा जसवन्तसिंह का खरीता गवर्नर जनरल के नाम ता. 19 नम्बर, 1678. रा. अ.

58– महाराणा सज्जनसिंह का खरीता वायसराय के नाम ता. 18 जून 1879, रा. अ.

59– फारेन और पोलिटिकल विभाग माह सितम्बर, 1879, नं. 179-561, रा. अ.

परन्तु ब्रिटिश सत्ता के इस रवैये के प्रति जनता की प्रतिक्रिया दूसरी थी। जिन लोगों ने सन् 1857–58 के अत्याचारों को देखा गया था या सुनाया या जिनके स्मरण में आऊआ, कोटा और अन्य स्थानों के रक्तपात ताजा थे उनके हृदय में अंग्रेजी शासन के प्रति घृणा थी। इस क्रांति को दबाने में अंग्रेजी शासन को सफलता इसलिए मिली थी कि उनके पास नये प्रकार के हथियार थे, बहुत बड़ा सैन्य बल था और विपुल साधन थे। परन्तु 1857 के उत्पात की आग बुझी नहीं थी; वह अन्दर ही अन्दर सुलग रही थी। इसको कैसे प्रज्वलित किया जाय यह एक समस्या थी। भाग्यवश देश में कई दार्शनिकों ने इस समस्या के समाधान का बीड़ा उठाया। उन्होंने जनता में देशाभिमान और स्वाभिमान उत्पन्न करने का संकल्प लिया, जिसे धार्मिक आन्दोलन की संज्ञा दी जाती है। इस आन्दोलन ने देश को बौद्धिक जागृति दी जो सशस्त्र विदेशी सत्ता से लोहा लेने के लिए सक्षम हो गई जिसका वर्णन अगले अध्याय में है।

अध्याय—6

बौद्धिक जागरण— आर्य समाज, विवेकानन्द और थियोसोफिस्ट सोसायटी के प्रचार से राजस्थान में जागृति का स्वरूप ।

अंग्रेजी शासन ने सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक शोषण ही नहीं किया था अपितु ईसाई पादरियों ने इसके प्रभाव से धार्मिक और अध्यात्मिक प्रवृत्ति का भी शोषण करना आरंभ कर दिया । ऐसे प्रयास का अभिप्राय यह था कि भारतीय गहरी नींद में सोये रहें और अपनी संस्कृति के प्रति उपेक्षा रखें । भाग्यवश इसी युग में भारतीय भागों में उच्च कोटि की आध्यात्मिक विचारधारा के उदय के परिणाम स्वरूप जनता में धार्मिक, राजनैतिक और सामाजिक सुधारवादी भावनाओं का प्रादुर्भाव हुआ । देश के इस मानसिक विकास का श्रेय महर्षि दयानन्द, विवेकानन्द आदि को है । राजस्थान में भी इस विचारधारा की लहर पहुंची और भारतीय संस्कृति के प्रति यहां पुनः श्रद्धा की स्थापना हुई । इससे स्वाभिमान राष्ट्रीयता, देशप्रम और पुर्नउत्थान को बल मिला और विशाल आदर्श प्रेरणा के स्रोत बन गये ।

आर्य समाज द्वारा जन जाग्रति (स्वामी दयानन्द) :

19वीं शताब्दी के प्रारंभ में ई.स. 1824 में काठियावाड़ के मोरवी राज्य के टंकारा गांव में एक औदीच्य ब्राह्मण के घर में बालक मूलशंकर का जन्म हुआ[1] । बाल्यकाल से ही इस बालक में अद्भुत प्रतिभा प्रगट होने लगी और 14 वर्ष की आयु में उसने सारी शुक्ल यजुर्वेद संहिता कंठस्थ कर ली । यही बालक आगे चलकर स्वामी दयानन्द सरस्वती बना ।

सन्यास :

मूलशंकर बीस वर्ष की आयु में घर से निकल गये । उन्होंने पूर्णानन्द सरस्वती नामक विद्वान से दीक्षा ग्रहण कर अपना नाम दयानन्द सरस्वती रखा । तदन्तर स्वामीजी ने योग की क्रिया सीखना आरंभ किया और व्याकरण का गहरा अध्ययन शुरू किया । इस प्रकार वि. सं. 1911 तक वे इधर उधर घूमते रहे और विद्वानों, महात्माओं और योगियों के सत्संग से लाभ प्राप्त करते रहे । फिर स्वामीजी हिमालय की ओर गये । वहां भी इनके मानसिक संतोष का साधन नहीं मिला । तत्पश्चात् वे नर्मदा तट पर तीन वर्ष तक विचरते रहे । वहां से मथुरा जाकर प्रसिद्ध विद्वान स्वामी विरजानन्द जी से वेद और आर्य ग्रन्थों का अध्ययन करने लगे । अष्टाध्यायी महाभाष्य, वेदान्त सूत्र आदि कई ग्रन्थों का अध्ययन करने के पश्चात् अपने गुरू की आज्ञा के अनुसार हिन्दू जाति को मतमतान्तर के बंधनों से छुड़ा कर सच्चे धर्म पर लाने के लिए उन्होंने अपना कार्य आरम्भ कर दिया ।

1— शारदा, स्पीचेज एण्ड राईटिंग, पृ 144, देवेन्द्रनाथ, दयानन्द सरस्वती का जीवन चरित्र, भाग–1,पृ. 58–60.

प्रचार:

सर्वप्रथम स्वामी दयानन्द ने ई.सं. 1863 में आगरा में उपदेश देना आरंभ किया और समय-समय पर करौली, धौलपुर, ग्वालियर, जयपुर, किशनगढ़, अजमेर, पुष्कर, उदयपुर, शाहपुरा, बनेड़ा, मसूदा, चित्तौड़, इन्दौर, मथुरा, मेरठ, अनूपशहर, सोरों, शाहबाजपुर, फरूखाबाद, कानपुर, बनारस, पटना, भागलपुर, वृन्दावन, प्रयाग, जबलपुर, बम्बई, अहमदाबाद, राजकोट, पूना, लुधियाना, लाहौर, जालंधर, फीरोजपुर, रावलपिण्डी, झेलम, गुजरावाला, मुल्तान, रुड़की, दिल्ली, देहरादून, मुरादाबाद, बदायूं, बरेली, लखनऊ आदि नगरों में जाकर उन्होंने प्राचीन वैदिक धर्म का प्रचार किया। उनको अनेक स्थानों पर पंडितों से शास्त्रार्थ करना पड़ा। उनके उपदेशों से अपूर्व जागृति उत्पन्न हुई और उनके व्याख्यान सुनने से लोगों को प्राचीन वैदिक धर्म के प्रति श्रद्धा बढ़ने लगी। हिन्दू धर्म को सारहीन समझकर जो लोग अन्य धर्म ग्रहण करते थे, उन्हें जान पड़ा कि वैदिक धर्म में बड़ी उत्तमता है। इसके अतिरिक्त इनके उपदेशों से लोगों में बाल-विवाह, वृद्ध विवाह तथा बहु-विवाह बन्द करने तथा गुरुकुल, अनाथालय, विधवाश्रम, विद्यालय आदि संस्थाएं खोलकर जनता का हित करने के विचारों के अंकुर चित्त में उत्पन्न हुए। स्वामीजी की प्रेरणा से नियमित रूप से उपदेश होते रहने के लिए प्रत्येक जगह आर्यसमाज स्थापित हुए। पंजाब आदि प्रांतों में बड़ी जागृति हुई। हजारों लोगों ने वैदिक धर्म ग्रहण किया, छूआछूत मिटने लगी और वैदिक धर्म से च्युत होकर अन्य धर्मों में गए हुए व्यक्तियों की पुन: शुद्धि करके वैदिक धर्म में मिलाने की ओर प्रवृति बढ़ने लगी। आर्य समाज के प्रचार से ईसाइयत और इस्लाम की बढ़ती हुई बाढ़ एकदम रुक गई। उत्तर भारत में इसने हिन्दुओं को जागृत और प्रगतिशील बना दिया। आर्यसमाज के उदय के बाद अविचल उदासीनता की हिंदू मनोवृत्ति विदा हो गई। हिन्दुओं का धर्म एक बार फिर जगमगा उठा।

राजस्थान में स्वामी दयानन्द सरस्वती:

राजस्थान में राजनैतिक चेतना की सृष्टि करने में स्वामी दयानन्द सरस्वती और आर्य समाज का बड़ा हाथ है। स्वामी दयानन्द सबसे पहले 1864-65 में राजस्थान आये थे। तब करौली में 8 दिन ठहरने के बाद 2 दिन किशनगढ़ ठहरे और वहां से जयपुर गये। ठाकुर रणजीतसिंह अचरोल के ठिकाने में उनका बड़ा स्वागत हुआ। जयपुर महाराजा रामसिंह द्वितीय उनके भक्त थे। वहां स्वामी दयानन्द साढ़े चार मास ठहरे और अपने उपदेशामृत से लोगों को लाभान्वित किया। दूदू के ठाकुर इन्द्रसिंह भी उनके शिष्य बन गये थे। फिर पुष्कर जाते हुए रास्ते में दो दिन दूदू, दो दिन बगरू और 6 दिन किशनगढ़ ठहरे और 4 दिन अजमेर ठहर कर पुष्कर पहुंचे। वहां ब्रह्माजी के मन्दिर में उनका निवास हुआ। इस प्रकार दो वर्ष तक वे राजस्थान के प्रमुख स्थानों का भ्रमण करते रहे। हजारों लोगों ने उनके उपदेश सुने। 22 मार्च 1866 को वे मथुरा गये।

राजस्थान का दूसरा भ्रमण स्वामी दयानन्द का 1881 में हुआ। भरतपुर में 1881 में 10 से 20 मार्च तक ठहरे। जयपुर में 20 मार्च से 4 मई तक अचरोल ठाकुर की

मदनपुर की हवेली में निवास किया और वहां वैदिक धर्म सभा की स्थापना की। फिर अजमेर में 5 मई से 23 जून तक ठहरे और वहां आर्य समाज की स्थापना की। 23 जून से 18 अगस्त तक वे मसूदा में रहे। थोड़े समय ब्यावर जाकर पुनः मसूदा आये और 5 अक्टूबर तक वहां उपदेश दिया।

महाराणा सज्जनसिंह का महर्षि से सम्बन्ध :

6 अक्टूबर, 1881 को महर्षि बनेड़ा पहुंचे। वहां के सामन्त राजाधिराज गोविन्दसिंह ने जो स्वयं संस्कृत के अच्छे विद्वान थे, महर्षि का अच्छा स्वागत-सत्कार किया। उनके दोनों राजकुमार अक्षयसिंह और रामसिंह ने महर्षि को साम-गान सुनाया, जिससे उन्हे बड़ी प्रसन्नता हुई। वहां के पुस्तकालय से महर्षि ने वेद का निघंटु ग्रन्थ लेकर अपने पास की प्रति से उसका मिलान किया।[2] वहां से विदा होकर वे 26 अक्टूबर सन् 1881 ई. को चितौड़ पहुंचे। वहां महाराणा सज्जनसिंह की आज्ञा के अनुसार कविराज श्यामलदास ने महर्षि के स्वागत का समुचित प्रबन्ध करवा दिया। वे यहां से उदयपुर आये। महाराणा ने उनके रहने और भाषण की व्यवस्था नवलखा में करवाई। नियमानुसार महर्षि ने वेदोक्त आर्यधर्म का वहां प्रचार करना आरंभ किया। उनके उपदेशों को सुन मेवाड़वासी जग गये। स्वामीजी के उपदेशों को सुनने के लिए मेवाड़ के प्रतिष्ठित सरदारों में से देलवाड़े के राज राणा फतहसिंह, कानोड़ के रावत उम्मेदसिंह, शाहपुरे के राजाधिराज नाहर सिंह, आसींद के रावत अर्जुनसिंह, बड़ी सादड़ी के राजराणा रायसिंह, मामा बख्तावरसिंह, कविराज श्यामलदास, मेहता पन्नालाल, मेहता तख्तसिंह, पुरोहित पदमनाथ, बारहठ कृष्णसिंह[3] आदि प्रायः उनके पास जाया करते थे। महाराणा भी यथावकाश स्वामीजी के पास जाते थे। इससे महर्षि के प्रति उनकी श्रद्धा बढ़ती गई और जब महर्षि उदयपुर से गये तो महाराणा ने उन्हे पुनः उदयपुर आने के लिए विनयपूर्वक आग्रह किया।

अपने पूर्व प्रतिज्ञा के अनुसार बम्बई से लौटते समय महर्षि का द्वितीय श्रावण ता :11 अगस्त ई.सं. 1882 को उदयपुर आगमन हुआ। सज्जन निवास बाग के नोलक्खा नामक महल में उनको पुनः ठहराया गया। महाराणा द्वितीय श्रावण कृष्णा 14 को स्वामी जी से भेंट करने गये और तत्पश्चात नियमपूर्वक उनके पास जाने लगे।[4]

स्वामीजी के सारगर्भित उपदेशों का महाराणा के जीवन पर बड़ा प्रभाव पड़ा। महाराणा का पहले से ही संस्कृत की ओर झुकाव था। इस सत्समागम से दर्शनशास्त्रों की ओर भी उनका अनुराग बढ़ा महाराणा के हृदय पर स्वामीजी की विद्वता का सिक्का

2- शारदा, महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती का जीवन चरित्र, पृ. 162

3- कृष्णसिंह प्रसिद्ध क्रान्तिकारी ठाकुर केसरीसिंह बारहठ के पिता थे। इन्होने वंश-भास्कर की "उदधि-मन्थिनी" टीका लिखी थी। वे महाराणा सज्जनसिंह के दरबारियों में प्रमुख थे, डा. जावलिया, पालीवाल क्रान्तिकारी केसरीसिंह बारहठ, पृ. 10; रामविलास शारदा-महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी का जीवन चरित्र, पृ. 162

4- पड़ूखा हिसाब दफ्तर, वि.सं. 1939-1940, शारदा, महर्षि दयानन्द, पृ. 16

जम गया था, इसलिये वैशेषिक दर्शन, पातजंलयोग सूत्र और मनुस्मृति, आदि ग्रन्थों को वह उनसे सुना करते थे। महाराणा की स्मरण शक्ति इतनी प्रबल थी कि वो एक घंटे में मनुस्मृति के 22 श्लोकों का आशय कर लेते थे। उन्होंने महर्षि से कुछ योग सम्बन्धी क्रियाएँ भी सीखीं, परन्तु फिर बीमार रहने से वो उनमें विशेष उन्नति न कर सके।

महर्षि के सत्संग से महाराणा की दिनचर्या में बड़ा परिवर्तन हुआ और वो प्रत्येक कार्य नियत समय पर करने लगे। लोकोपयोगी कार्यों में प्रतिदिन महाराणा की रुचि बढ़ने लगी। महर्षि ने महाराणा को परामर्श दिया कि क्षत्रियों के लिए पृथक पाठशाला बनाई जाकर उन्हें शास्त्रोक्त विधि से हर तरह की शिक्षा देने के साथ शस्त्रास्त्र के उपयोग करने की शिक्षा की भी योजना बनाई जाए। महाराणा ने इस बात को स्वीकार किया, किन्तु उसने अस्वस्थ रहने से वह कार्य स्थगित रहा। मेवाड़ में राजकीय भाषा हिन्दी थी, परन्तु उसमें फारसी शब्दों का अधिक प्रयोग होता था, यह देख महर्षि ने महाराणा को राजकीय भाषा में शुद्ध नागरी को स्थान देने और साधारण लोगों के समझ में आ सके ऐसी भाषा के प्रयोग का आग्रह किया। स्वामीजी के आदेश स्वीकार कर महाराणा ने नागरी लिपि और सरल भाषा में कार्य करने की आज्ञा जारी की। महर्षि ने महाराणा को स्वदेशी वैद्यों द्वारा चिकित्सा कराने और देशी औषधालय स्थापित करने का भी परामर्श दिया था, परन्तु महाराणा का देहावसान हो जाने से यह कार्य पूरा न हो सका।[5]

महर्षि ने उदयपुर में ही सत्यार्थ प्रकाश के द्वितीय संस्करण को तैयार कर वि. सं. 1939 भाद्रपद के शुक्ल पक्ष में उसकी भूमिका लिखी और वहीं रहते समय परोपकारिणी सभा की स्थापना कर महाराणा को उसका सभापति नियुक्त किया। महाराणा ने भी उस सभा की सहायता के लिए दस हजार रुपये दिये और उसके सरदारों आदि ने भी इस कार्य में सहयोग लिया, जिससे एक अच्छी रकम एकत्र हो गई। यद्यपि स्वामीजी के शरीर में व्याधि लेशमात्र भी नहीं थी, तो भी उन्होंने शरीर को अनित्य जान अपने संग्रह किये हुए ग्रन्थ, धन और यन्त्रालय आदि को परोपकार में लगाने की आज्ञा देकर उदयपुर में ही उसका स्वीकार पत्र तैयार किया और 23 ट्रस्टियों में महाराणा के अतिरिक्त मेवाड़ से ही सात सदस्य बेदला के राव तख्तसिंह, देलवाड़ा के राजराणा फतहसिंह, आसींद के रावत अर्जुनसिंह, शाहपुरा के राजाधिराज नाहरसिंह, महाराजा गजसिंह, कविराजा श्यामलदास और पं. मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या रक्खे गये। इससे स्पष्ट होता है कि महाराणा और उनके सरदारों की रुचि होने से उदयपुर में आर्य समाज की अधिक उन्नति होने का महर्षि को विश्वास था।[6]

महाराणा ने महर्षि से षड्दर्शनों का भाष्य छपवाने का अनुरोध किया और उसके लिए 20 हजार रुपये अपनी ओर से व्यय करने का वचन दिया। 27 फरवरी 1882 को महाराणा से विदा लेकर महर्षि शाहपुरा गये। उस अवसर पर महाराणा ने स्वयं उनके

5– शारदा, महर्षि दयानन्द, पृ. 164, 165

6– हिसाब दफ्तर पड़ाखा वि.सं. 1940 अ.उ.; शारदा, पृ. 166–170

पास जाकर सम्मानस्वरूप दो सहस्र रुपये भेंट किये,परन्तु महर्षि ने उन्हें लेना स्वीकार नहीं किया। फिर महाराणा ने वह राशि परोपकारिणी सभा को दे दी।[7] जब स्वामीजी लगभग तीन मास उदयपुर में निवास करके वहां से शाहपुरा के लिए प्रयाण करने लगे तो महाराणा ने स्वामीजी को एक मान पत्र भेंट किया।[8]

शाहपुरा में :

उदयपुर से स्वामी जी शाहपुरा गये। शाहपुरा का राजाधिराज नाहरसिंह स्वामी जी का बड़ा भक्त बन गया। राजाधिराज और नगर के प्रतिष्ठित नागरिक स्वामीजी के दर्शन करने और उपदेश सुनने के लिए नित्य उनके पास आया करते थे। राजाधिराज ने भी मनुस्मृति में दिया हुआ राजधर्म उनसे सुना था। जब स्वामी जी कई मास शाहपुरा में रहकर रवाना होने लगे तो राजाधिराज ने उनको एक मानपत्र समर्पित किया।[9]

जोधपुर :

जब स्वामी जी शाहपुरा में थे तो जोधपुर के महाराजा जसवन्तसिंह का पत्र आया। अतः स्वामी जी ने जोधपुर प्रस्थान करने की तिथि निश्चित करली। महाराजा जसवन्तसिंह एक वैश्या पर मुग्ध था। इसलिए जब स्वामी जी जोधपुर जाने लगे तो शाहपुरा के राजाधिराज को चिन्ता हुई। उसका विचार था कि जोधपुर पहुंचकर स्वामीजी महाराजा के आचरण की निन्दा अवश्य करेंगे। अतः उसने स्वामी जी से निवेदन किया कि वे जोधपुर जाकर वेश्याओं के विरुद्ध प्रचार न करें। परन्तु स्वामीजी ने इस परामर्श पर कुछ ध्यान नहीं दिया। 26 मई सन् 1883 को स्वामी जी शाहपुरा से अति सम्मानपूर्वक विदा होकर 28 मई 1883 को अजमेर पहुंचे। 28 मई 1883 को वे अजमेर से रेलगाड़ी द्वारा पाली स्टेशन पर पहुंचे। वहीं स्वामीजी के लिए जोधपुर महाराजा की ओर से सवारी का समुचित प्रबन्ध था। पाली का हाकिम भी स्वामी जी की सेवा में उपस्थित था। सवारियों के साथ तीन राज्य कर्मचारी थे।[10]

31 मई को स्वामीजी जोधपुर पहुंचे। उनको नजर बाग के सामने मियां फैजुल्लाखां की कोठी में ठहराया गया। वहां पहुचते ही सर कर्नल प्रतापसिंह और रावराजा तेजसिंह स्वामीजी के स्वागत को आये और उनके लिए समुचित प्रबन्ध कर दिया। महाराजा जसवन्तसिंह के गले में उस समय पीड़ा थी। इसलिए वे उनके स्वागत के लिए नहीं आ सके। 17 दिन बाद महाराजा स्वामीजी से मिलने आये। 100/-रु. और 5 मोहर उनको भेंट की। स्वामी जी उस समय कुर्सी पर बैठे हुए थे। महाराज फर्श पर बैठने लगे। तब

7–शारदा, पृ. 170

8–पं. लेखराम–महर्षि दयानन्द सरस्वती का जीवन चरित्र, वि.सं. 2028, अनुवादक कविराज रघुनन्दनसिंह, पृ. 709-610

9–शारदा, पृ. 170-72, मानपत्र सं. 1940 मिति ज्येष्ठ कृष्णा 4 का।

10. हकीकत बही वि. सं. 1939, नु. 37, अ. बी.; मूल जी एन. शर्मा द्वारा सम्पादित, राजस्थान इन्स्टीट्यूट ऑफ हिस्टोरिकल रिसर्च, 1982–83, पृ. 69

स्वामी जी ने महाराज को हाथ पकड़ कर कुर्सी पर बिठाया और उन्हें उपदेश देना प्रारम्भ किया। उन्होंने कहा कि एकता और देशप्रेम बड़ा गुण है। 3 घन्टे तक राजा प्रजा के सम्बन्धों का वर्णन किया, राजनीति के तत्व समझाये। स्वामी दयानन्द 4 बजे से 5 बजे तक प्रतिदिन व्याख्यान देते थे। सैकड़ों लोग सुनने आते थे। अपने व्याख्यानों में स्वामी जी क्षत्रीय नरेशों के चरित्र संशोधन और गौरक्षा पर विशेष बल देते थे। स्वामी जी ने भरी सभा में वेश्या गमन के दोष बतलाये और वेश्यागामियों को खूब फटकारा।[11] स्वामीजी ने सर प्रतापसिंह को निम्नलिखित पत्र लिखा।

"श्रीयुत मान्यवर शूरवीर महाराजा प्रतापसिंह जी, आनन्दित रहो। यह पत्र बाबासाहब को भी दृष्टिगोचर करा दीजिए।

मुझको इस बात का बहुत शोक होता है कि श्रीमान तथा जोधपुराधीश रोगयुक्त शरीर वाले हैं। इस राज्य को जिसमें 16 लाख से कुछ उपर मनुष्य बसते हैं, रक्षा और कल्याण का बड़ा भार आप लोग उठा रहे हैं, सुधार और बिगाड़ भी आप ही तीनों महाशयों पर निर्भर है, तथापि, आप लोग अपने शरीर का आरोग्य संरक्षण और आयु बढ़ाने के काम पर बहुत कम ध्यान देते हैं, यह कितनी बड़ी शोचनीय बात है। मैं चाहता हूं कि आप लोग अपनी दिनचर्या मुझसे सुनकर सुधार लेवें जिससे आप मारवाड़ का ही क्या अपने आर्यावर्त देशभर का कल्याण करने में प्रसिद्ध होंगे। आप जैसे योग्य पुरुष जगत में बहुत कम जनमते हैं और जन्म से भी बहुत कम चिरंजीव, स्वल्पायु होते हैं। इसके हुए बिना देश का सुधार कभी नहीं होता। उत्तम पुरुष जितना अधिक जीये उतनी ही देश की उन्नति होगी। इस पर ध्यान आप लोगों को अवश्य देना चाहिये। आगे जैसा आप लोगों की इच्छा हो वैसा कीजियेगा।[12]

महाराजा और सर प्रतापसिंह तथा रावराजा तेजसिंह पर स्वामीजी के उपदेशों का इतना प्रभाव पड़ा कि सन् 1891 में जब वहां जनगणना हुई तो महाराजा ने और सर प्रतापसिंह ने अपने धर्म को वैदिक लिखाया।

परन्तु स्वामीजी की इस प्रकार की लोकप्रियता नन्हींजान, फैजुल्लाखां तथा अन्य मुसलमानों को अच्छी न लगी। अतः उन्होंने षडयन्त्र रचकर उनके रसोइये द्वारा दूध में 27 दिसम्बर को विष दिलवा दिया। रात्रि में उनको उदरशूल और वमन हुआ। डा. सूरजमल ने उनकी चिकित्सा प्रारम्भ की। परन्तु फिर अलीमरदानखां को स्वामीजी की चिकित्सा का भार सुपुर्द किया गया। पर जब रोग बढ़ता गया तो इसकी सूचना आर्य समाज अजमेर को भेज दी गई। बम्बई, फर्रूखाबाद, मेरठ, लाहोर आदि आर्यसमाजियों को तार द्वारा सूचित किया गया। अलीमरदानखां ने सलाह दी कि स्वामीजी को आबू

11- लेखराम-महर्षि-दयानन्द सरस्वती का जीवन चरित्र, पृ. 907

12- शारदाः पत्र दयानन्द का आश्विन वदि 3, शनिवार, सं. 1940 (22 सितम्बर, 1883) पृ. 912

भेज दिया जावे, वहां की जलवायु से उन्हें आराम हो जायेगा। रेजीडेन्सी सर्जन डा. एडम को बुलाया तो उसकी भी यही राय हुई अतएवं स्वामी जी को आबू पहुंचाया गया। वहां डा. लक्ष्मणदास के उनकी चिकित्सा करना प्रारम्भ किया। रेजीडेन्सी के डा. न्यूमेन और लक्ष्मणदास के प्रयत्न करने पर भी स्वामी जी का रोग बढ़ता गया, अतएव वे फिर अजमेर चले गये। वहां कार्तिक कृष्णा अमावश्या संवत् 1940 सन् 1883 को प्रातः काल 6 बजे स्वामी जी की जीवन लीला समाप्त हुई।[13] उदयपुर के महाराणा सज्जनसिंह ने स्वामीजी के देहान्त का शोक समाचार सुना तो उन्होंने कविता द्वारा अपनी श्रद्धांजली अर्पित की।[14]

आर्य समाज और अजमेर :

केन्द्रीय स्थिति होने से स्वामीजी ने अजमेर को आर्य समाज का प्रमुख स्थान चुना तथा अजमेर में आर्य समाज की स्थापना की एवं साप्ताहिक कार्यक्रम तथा व्याख्यानों के माध्यम से एक आर्य समाजी दल को तैयार किया। ऐसे प्रबुद्ध वर्ग में विश्वंभरनाथ टंडन, प्रभुदयाल भार्गव, चांदकरण शारदा, घासीराम, मास्टर रतनलाल आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। धीरे धीरे घासीराम की धर्मशाला राष्ट्रीय हलचलों का केन्द्र बन गई। इसी में राष्ट्रीय स्कूल और कांग्रेस का दफ्तर भी चलने लगा। राव गोपालसिंह खरवा एवं विजय सिंह पथिक जो राजस्थान के सेवा संघ के अग्रणी कार्यकर्ता थे उनके उद्देश्यों में आर्य समाज के सिद्धान्त तथा राष्ट्रीय भावनाओं का समुचित समावेश था। लोक-मान्य तिलक, डा. अंसारी, मौलाना शोकत अली आदि चोटी के राष्ट्रीय नेता अजमेर के अधिवेशन में आये थे।[15]

स्वामीजी का राष्ट्रीय भाषा का प्रचार :

स्वामीजी गुजरात के निवासी थे परन्तु वे जानते थे कि देश की राष्ट्रभाषा हिन्दी ही हो सकती है। उन्होंने जितनी पुस्तकें लिखी सब हिन्दी में लिखी। उनका पत्र व्यवहार भी हिन्दी में होता था। प्रारंभ में वे संस्कृत में भाषण देते थे, परन्तु कलकत्ता में बाबू केशवचन्द्र सेन से सम्पर्क होने के पश्चात् वे हिन्दी का उपयोग करने लगे और प्रायः हिन्दी में ही उपदेश देने लगे। कभी कभी विद्वान पंडितों से वे संस्कृत में भी वार्तालाप तथा शास्त्रार्थ किया करते थे।

स्वामीजी की दिव्य दृष्टि ने देख लिया था कि सारे भारतवर्ष में एक भाषा का प्रचार होना चाहिए क्योंकि ऐसा हुए बिना न धर्म प्रचार का ही कार्य सुगमता से हो सकता हैं और न राष्ट्रीय एकता के भावों का संचार हो सकता है। उन्होंने देखा कि

13–रामविलास शारदा–महर्षि दयानन्द का जीवन चरित्र पृ. 177–183

14–ओझा-उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग–2, पृ. 832;
मुंशी देवी प्रसाद, राजरसनामृत, पृ. 25

15–चौधरी रामनारायण-आधुनिक राजस्थान, पृ. 13,18,34

भारतवर्ष की राष्ट्र भाषा होने की केवल हिन्दी (आर्य भाषा) में ही योग्यता है। उन्होंने आर्य समाजियों को हिन्दी में काम करने की रुचि दिलाई। स्वामीजी और उनके अनुयायियों के द्वारा आर्य भाषा हिन्दी का खूब प्रचार और विस्तार हुआ। पंजाब जैसे उर्दू आक्रान्त देश में आर्य भाषा के प्रचार का श्रेय सदा के लिये आर्य समाजियों को जायेगा। 16.

स्वदेशी वस्त्रों का प्रचार :

स्वामीजी की प्रेरणा से लाला मूलराज ने स्वदेशी वस्त्र प्रचारणी सभा स्थापित की थी। पंजाब में इसके हजारों सदस्य बन गये थे और इसकी अनेक शाखाएँ भी स्थापित हो गई थी। परन्तु अभी ऐसे कार्य के लिए समय अनुकूल नहीं था। लोगों में सरकार का बड़ा भय था। इसलिए यह कार्य आगे नहीं बढ़ा। 17

राजस्थान को आर्य समाज की देन :

एक तरह से आर्य समाज ने इंडियन नेशनल कांग्रेस के लिए एवं राजस्थान में स्वतन्त्र विचारों के लिए क्षेत्र तैयार किया। उसकी शिक्षाओं के कारण लोग वैदिक धर्म का अभिमान के साथ स्वागत करने लगे। हिन्दी भाषा का खूब प्रचार होने लगा और पुराने और शुद्ध विचारों को मूल्यवान समझा जाने लगा। इन उपदेशों का परोक्ष प्रभाव यह हुआ कि लोग वैदिक धर्म की और हमारी सामाजिक धरोहर को पूर्वजों की बहुमूल्य और अनुपम देन मानने लगे। यही प्रभाव राजाओं और मध्य वर्ग के लोगों पर पड़ा। इसके अतिरिक्त जिन सुधारों का आर्य समाज द्वारा प्रचार किया गया उनसे स्वयं राजनैतिक विचार करने का, विविध प्रकार की संस्थाएं खड़ी करने का और अभूतपूर्व क्रान्तिकारी विचार करने का राजस्थान के लोगों को मार्ग मिल गया। स्वामीजी के देहान्त के बाद राजस्थान की प्रायः समस्त राजधानियों में और बड़े कस्बों में उनके सत्संग भवन बन गये और स्थानीय कई प्रभावशाली व्यक्ति उनके सभापति, मंत्री आदि निर्वाचित होने लगे। 18

इस प्रकार प्रत्येक आर्यसमाज नवीन विचारों का केन्द्र बन गया था और इसका प्रत्येक सदस्य आधुनिक बातें करता था। जब राजस्थान में राजनैतिक जाग्रति होने लगी तो प्रत्येक नगर व कस्बों के आर्य समाजी सक्रिय हो गये। अजमेर की जाग्रति के प्रेरक तो वहां प्रमुख आर्य समाजी हरविलास शारदा, चांदकरण शारदा आदि लोग थे। हरविलास शारदा कांग्रेस की प्रथम कार्यकारिणी के सदस्य थे और अजमेर ही राजस्थान की राजनैतिक जाग्रति का मुख्य केन्द्र था। यहीं राजस्थान की प्रथम व मुख्य राजनैतिक संस्था राजस्थान संघ स्थापित किया गया था। उसके कार्यकर्ता राजस्थान के प्रत्येक राज्य में पहुंचकर राजनैतिक हलचल की व्यवस्था किया करते थे। इन लोगों ने सर्वत्र खादी प्रचार, हरिजन उद्धार, प्रारम्भिक शिक्षा का प्रचार किया था। कोटा के डा. गुरुदत्त

16- पं. घासीराम महर्षि दयानन्द का जीवन चरित्र भाग-2, पृ. 668

17- मूलराज की ओटोबाइग्राफी, पृ. 95

18-पं. घासीराम, महर्षिदयानन्द का जीवन चरित्र, भाग-2, पृ.-6

इस शताब्दी के आरम्भ में क्रान्तिकारी कार्यों में सक्रिय माने गये थे। भरतपुर में जाग्रति का आरंभ आर्य समाज के कार्यकर्ताओं ने किया था, इनमें मास्टर आदित्येन्द्र व पं. जुगल किशोर चतुर्वेदी मुख्य थे। इन दोनों ने कई बार सत्याग्रह किया और जेल के कष्ट भी भोगे। इसी प्रकार धौलपुर का सत्याग्रह आन्दोलन भी आर्य समाजियों ने ही संगठित किया था। इसका नेतृत्व करने के लिए स्वामी श्रद्धानन्दजी दिल्ली से आये थे और चान्दकरण अजमेर से तथा रावराजा तेजसिंह जोधपुर से आकर इस आन्दोलन में सम्मिलित हुए थे। इस सत्याग्रह का धौलपुर के शासक पर बड़ा प्रभाव पड़ा था और उसने उत्तरदायी सरकार स्थापित करने का निश्चय कर लिया था परन्तु इसी बीच में स्वामी श्रद्धानन्दजी का देहान्त हो गया इसलिये यह कार्य स्थगित कर दिया गया। अलवर व जयपुर के प्रारंभिक राजनैतिक कार्यकर्ता भी आर्य समाजी थे या आर्य समाज से सहानुभूति रखने वाले थे। यही बात अन्य नेताओं या कार्यकर्ताओं के विषय में कही जा सकती।[19]

आर्य समाज के प्रचार का सबसे बड़ा महत्व यह था कि उसने राजस्थानियों के हृदयों में भारतीयों की भांति स्वाभिमान की भावना उत्पन्न की। जनता पर इस प्रचार का ऐसा गहरा प्रभाव था कि अंग्रेजों को यह भय हुआ कि भारत की राष्ट्रीय जाग्रति में किसी संस्था ने ऐसा प्रचार नहीं किया है जैसा आर्य समाज ने किया। इससे स्वशासन का स्वरूप लोगों के सामने रखा। एक अंग्रेज लेखक ने लिखा है कि, आर्य समाज का प्रभाव लोगों पर ऐसा पड़ रहा है कि इससे अंग्रेज सरकार की सत्ता पर बड़ा खतरा उत्पन्न हो गया है।[20]

स्वामी विवेकानन्द

विवेकानन्द का जीवन और व्यक्तित्व :

स्वामी विवेकानन्द नरेन्द्रनाथ दत्त के नाम से घर में सम्बोधित किये जाते थे। उनका जन्म 1863 ई. की 12 फरवरी को एक कलकत्ता निवासी क्षत्रिय परिवार में हुआ था। प्रारंभ में नरेन्द्रनाथ का आदर्श यूरोप था और वे ईश्वरीय सत्ता एवं धर्म को शंका से देखते थे। परन्तु रामकृष्ण परमहंस के प्रभाव से उनका परमात्मा और धर्म के प्रति तार्किक दृष्टिकोण आस्था में परिणित हो गया। अब तो उन्होंने अपना ध्येय धर्म की पुनः स्थापना और भारतीयों में आत्म-गौरव की भावना को प्रेरित करना बना लिया। राजा राममोहन राय के समय से चलने वाले बौद्धिक आन्दोलन को चरम सीमा तक पहुंचाने का श्रेय विवेकानन्द को है सन 1893 ई. की अमेरिका की उनकी यात्रा तथा शिकागो सम्मेलन में उनका भाग लेना ऐसी घटना है जिसके द्वारा हिन्दुत्व के पक्ष का ऐसा प्रचार हुआ जो न भूत में हुआ था और न वर्तमान में होने पाया है। इनके भाषण व लेखों,

19- मुखोपाध्याय, डी. एन. इन्ट्रोडक्टरी, सीताराम हिस्ट्री ऑफ कांग्रेस, जि.-1, पृ. 17

20- विचिरोल, इण्डियन अनरेस्ट, पृ. 110

कविताओं तथा विवादों में ऐसा चमत्कार था कि क्या भारत, यूरोप एवं अमेरिका में उनके सहस्त्रों की संख्या में अनुयायी हो गये। अभाग्यवश उनको हमने उनकी 39 वर्ष की आयु में ही खो दिया, जिन उद्देश्यों को लेकर वे अभिनव भारत का उत्थान करना चाहते थे उनकी पूर्ति वे करने में सफल हुए।[21]

विवेकानन्द का राजस्थान की जाग्रति में सहयोग :

वैसे तो विवेकानन्द का कार्य क्षेत्र विस्तृत था, परन्तु उनके ज्ञान और वाग्मिता का प्रभाव राजस्थान पर भी पड़ा। फरवरी, 1891 में वे अलवर पहुंचे। वहां के महाराजा मंगलसिंह उनके व्यक्तित्व तथा ओजस्वी वक्ता से बहुत प्रभावित हुए। मार्च में विवेकानन्द एक सप्ताह के लिए जयपुर गये। फिर खेतड़ी और आबू होते हुए अहमदाबाद चले गये। खेतड़ी का सामन्त अजीतसिंह तथा वहां का दीवान जगमोहनलाल उनके अनन्य भक्त बन गये। सन् 1898 में पुनः विवेकानन्द खेतड़ी आये और जयपुर, अजमेर आदि नगरों में गये। जहां जहां वे गये उनके भाषणों और लेखों से लोग इतने प्रभावित हो गये कि उनके विचार श्रोताओं के दिल में घर कर गये। उनके प्रभाव से यहां धार्मिक क्षेत्र में ही जाग्रति नहीं हुई वरन् लोगों में सामाजिक सुधारों के प्रति चेतना उत्पन्न हुई। स्वामीजी धर्म और संस्कृति के उपासक एंव प्रचारक थे। उन्होंने अपनी वाणी और कर्तृत्व से भारतवासियों में हमारे साहित्य, भाषा धर्म के प्रति जैसी जागरूकता पैदा की वैसा उद्‌बोधन वे राजस्थान के बौद्धिक वर्ग में प्रतिष्ठित कर सके। सामन्ती वातावरण में रहने वाली जनता में उन्होंने जो स्वतन्त्र विचार के प्रति अभिमान की चेतना को जगाया वह राजस्थान की देशभक्ति और राजनैतिक मानसिकता की आधार शिला बनी। नेताजी सुभाषचन्द्र बोस ने लिखा है कि "स्वामी विवेकानन्द का धर्म राष्ट्रीयता को उत्तेजना देने वाला धर्म था। नयी पीढ़ी के लोगों में उन्होंने भारत के प्रति भक्ति जगायी, उसके अतीत के प्रति गौरव एवं उसके भविष्य के प्रति आस्था उत्पन्न की। उनके उद्‌गारों से लोगों में आत्म-निर्भरता और स्वाभिमान के भाव जगे हैं।" इसमें कोई सन्देह नहीं कि जिस व्यक्ति का ज्ञान इतना समृद्ध और उदार था उसकी राजस्थान की यात्रा ने अवश्य ही परोक्षरूप में राजनैतिक जाग्रति के अंकुर बो दिये।[22]

थियोसोफिकल सोसाइटी :

यह संस्था अमेरिका में कायम हुई थी। ब्लेडवाटस्की एक रूसी महिला और कर्नल आलकाट एक अमेरिकन सज्जन इसके संस्थापक थे। ये दोनों प्रेत विद्या के अच्छे जानकार थे। फिर इनकी ब्रह्मविद्या की ओर रुचि उत्पन्न हुई। इनके विचार बड़े उदार और निर्मल थे। इनका विश्वास था कि सब धर्मों में सत्य का तत्व है। ये लोग मानते थे कि भारत, ईरान और चीन में धर्म और ज्ञान के ऐसे तत्व हैं जिनका योरोप और अमेरिका में प्रचार करना चाहिए जिससे बढ़ता हुआ भौतिकवाद कम हो। ये लोग मानवता को एक मानते

---

21. दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, पृ 582–599; मजूमदार, एन एडवान्स हिस्ट्री ऑफ इंडिया, पृ 584–86
22. दस्तूर कौमवार, संज्ञा 'ब"

थे और कहते थे कि विचार भिन्नता से मनुष्य मनुष्य मे भिन्न नहीं हो सकता। समस्त मानव जाति का आधार एवं परम सत्ता है। ब्लेडेवास्टैकी और कर्नल आलकट के साथ स्वामी दयानन्द का पत्र व्यवहार हुआ और वे सन् 1879 में भारत आये। कई स्थानों पर आर्य समाजियों ने उनका स्वागत किया। ऋषि दयानन्द बड़े प्रेमपूर्वक मिले। परन्तु दो वर्ष बाद आर्य समाज थियोसोफिकल सोसाइटी में विचार भेद उत्पन्न हो गया। फिर इस संस्था का प्रधान कार्यालय आदियार (मद्रास) में स्थापित हुआ। ब्लेडेवाटस्की बीमार होकर इंग्लैण्ड चली गई और फिर वापस नहीं आई।[23]

ऐनीबेसेन्ट का आगमन :

इंग्लैण्ड में ऐनीबेसेन्ट नामक एक विदुषी महिला इस संस्था में दीक्षित हुई और 46 वर्ष की अवस्था में सन् 1893 में वह भारत में आई। कर्नल आलकाट का 1907 में देहांत हो गया। उसके पश्चात् थियोसोफिकल सोसायटी का नेतृत्व ऐनीबेसेन्ट ने अपने हाथ में ले लिया। इस महिला की हिन्दू धर्म पर उत्कृष्ठ श्रद्धा थी। वह इसको सबसे प्राचीन और सबसे श्रेष्ठ मानती थी। भारत में आते ही उसने साड़ी पहनना शुरूकर दिया और अपना खान-पान भी ब्राह्मणों का-सा बना लिया। उन्होंने कई हिन्दू तीर्थों की यात्रा की। काशी उसको बहुत पसन्द थी। यहां उसने सेन्ट्रल हिन्दू कालेज की स्थापना की, गीता का अंग्रेजी में अनुवाद किया, रामायण का और महाभारत की संक्षिप्त कथायें लिखी और हिन्दू संस्कृति के विविध पक्षों पर ओजस्वी भाषण दिये। 1907 से 1933 तक वे थियोसोफी समाज की सभानेत्री रही।[24]

ऐनीबेसेन्ट की प्रतिभा और कार्य :

ऐनीबेसेन्ट की वक्तृत्व शक्ति बड़ी ओजस्वी और प्रभावशाली थी। उनकी भाषा बड़ी सुन्दर और सरल थी। उनका एक एक शब्द श्रोताओं के हृदय को स्पर्श करता था। मद्रास, बम्बई और काशी के उच्च शिक्षित हिन्दुओं में कितने ही थियोसोफिकल सोसायटी के सदस्य बन गये। ऐनीबेसेन्ट ने भारत के अनेक नगरों का भ्रमण किया और हिन्दू धर्म के प्रति आस्था तथा भारतीय संस्कृति के प्रति अभिमान जागृत किया उनका कहना था कि जिस जाति के पास उपनिषद्, गीता और दर्शन जैसे अमूल्य विचार रत्न हों उसको संसार के सामने सिर क्यों नीचा करना चाहिए ? वे हिन्दू सस्कृति और धर्म को सर्वांग सुन्दर मानती थी। इसके प्रत्येक पक्ष को वे विज्ञान के अनुकूल समझती थी। वह मूर्ति-पूजा वर्ण व्यवस्था, प्रेत-विद्या तंत्र मंत्र आदि किसी में कोई दोष नहीं समझती थी। इन सबका वह तर्क और न्याय से मण्डन करती थी। वे वेद उपनिषद और गीता को ही स्मृति, पुराण, धर्म शास्त्र, आदि को भी प्रमाणिक मानती थीं और इनके द्वारा हिन्दू धर्म के सम्पूर्ण प्रचलित रस्मों का समर्थन करती थीं। जब वह अद्भुत तर्क और ओजस्वनी भाषा के साथ अपनी अपूर्व वक्तृत्व कला के द्वारा पुनर्जन्म, अवतार, योग, अनुष्ठान बहु-

23- दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय पृ. 562-563

24- दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, पृ. 563-567

देव वाद आदि का विवेचन करती थी तो लोग मुग्ध हो जाया करते थे। 1914 में भाषण देते हुए उन्होंने एक बार कहा था कि निरन्तर चालीस वर्ष के चिन्तन और मनन के बाद में इस परिणाम पर पहुंची हूं कि हिन्दू धर्म से बढ़ कर वैज्ञानिक, दार्शनिक और अध्यात्मिक धर्म संसार में कोई दूसरा है। [25]

हिन्दुओं में आत्माभिमान जाग्रत किया :

अंग्रेजी पढ़े हुए विद्वानों पर और कालेज के विद्यार्थियों पर ऐनीबेसेन्ट के प्रचार का बड़ा प्रभाव पड़ा। जब योरोप के ईसाई प्रचारकों ने देखा कि उन्हीं के देश की निवासिनी एक ईसाई महिला हिन्दू धर्म का पक्ष ले रही है और उनके तर्कों का मुंह तोड़ जवाब दे रही है तो उनकी कट्टरता ठंडी होने लगी। नव शिक्षित लोगों ने अब अनुभव किया कि हिन्दू धर्म के अन्दर ऐसी कोई बात नहीं है जिसके कारण किसी को लाज्जत होना पड़े। सूक्षमता से विचार करने पर प्रकट होता है कि हिन्दुत्व के प्रत्येक अंग में अद्भुत रहस्य है। ऐनीबेसेन्ट के प्रचार से हिन्दुओं में अपूर्व जाग्रति हुई, अब वे समझने लगे कि ईसाईयों का प्रचार निर्मूल है। हिन्दू धर्म विज्ञान के प्रतिकूल नहीं है। ऐनीबेसेन्ट ने उनके परम्परागत संस्कारों की पुष्टि की। इसका शिक्षित हिन्दू समाज ने अभिनन्दन किया और डाक्टर ऐनीबेसेन्ट का वे लोग बड़ा आदर करने लगे। डा. ऐनीबेसेन्ट और उनके साथियों ने हिंदू धर्म के पक्ष में विपुल साहित्य तैयार किया, जिसको अंग्रेजी पढ़े लोगों ने बड़े चाव से पढ़ा। उनका किया हुआ गीता का अंग्रेजी अनुवाद बहुत ही प्रचलित हुआ और इसी प्रकार उपनिषदों का अनुवाद और तंत्र विषयक ग्रन्थों का भी खूब प्रचार हुआ। [26]

एनीबेसेन्ट राजनीति में :

डा. ऐनीबेसेन्ट ने भारतीय राजनैतिक आंदोलन को भी बड़ा बल दिया। होमरूल लीग की वे प्रमुख मंत्री थी और एक बार कांग्रेस की अध्यक्ष निर्वाचित हुई थी। उनके उग्र राजनैतिक विचारों के कारण सरकार ने उनको नजरबन्द कर दिया था। ऐनीबेसेन्ट ने सदैव इस बात का प्रयास किया कि भारत में राष्ट्रीयता की भावना जाग्रत हो, समस्त भारतीय अपने को एक कोम समझें और भारत उन्नत देशों के समकक्ष बनें। भारत के नव जागरण में और पूर्व तथा पश्चिम की संस्कृति के मिश्रण में एनीबेसेन्ट का बहुत बड़ा हाथ था। उन्होंने शिक्षित समाज में धर्माभिमान और स्वाभिमान जाग्रत किया, वैज्ञानिक दृष्टिकोण से हिन्दू धर्म के समस्त पक्षों का विवेचन किया तथा भारतीय संस्कृति को सुन्दर और स्वस्थ सिद्ध करने का प्रयास किया। [27]

25—दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, पृ. 564–566

26– वही, पृ. 566–567

27– रश्मिरथी, षष्ट सर्ग, इंडियन अनरेस्ट, उद्धृत, दिनकर के संस्कृति के चार अध्याय से, पृ. 566–568

थियोसोफिकल सोसायटी और राजस्थान :

एनीबेसेन्ट और सोसायटी के कार्य कलापों और प्रचार का प्रभाव राजस्थान के शिक्षित वर्ग में पहुंचा। उसके फलस्वरूप उदयपुर, जयपुर, जोधपुर, कोटा, अलवर आदि नगरों में इसकी शाखाएं स्थापित हुई। इन शाखाओं का एक स्थानीय अध्यक्ष होता था। और इसके सिद्धान्तों में विश्वास रखने वाले साधारण सदस्य होते थे। राजनीति में सक्रिय रुचि नहीं लेने के कारण राजस्थान के राज्यों में इनकी बैठकों पर या प्रचार पर कोई प्रतिबन्ध नहीं था। ये विश्व कल्याण की प्रार्थना के बाद गीता तथा अन्य धर्मों के उपदेश के अंश पढ़ते थे और उस पर विचार विमर्श होता था। इसके सदस्यों ने चन्दा इकट्ठा कर तथा केन्द्रीय कार्यालय से अनुदान प्राप्त कर पुस्तकालय और वाचनालय स्थापित किये तथा सोसायटी के भवनों का निर्माण कराया जो अद्यावधि राजस्थान के प्रमुख नगरों में विद्यमान हैं। इस सोसायटी के सदस्यों में राज्य के उच्च स्तरीय अधिकारी, शिक्षक, विद्यार्थी और प्रमुख नागरिक होते रहे हैं। शिक्षा प्रचार के माध्यम से यहां के समाज में देश–भक्ति की भावना को बढ़ावा देने से सोसायटी की महती भूमिका रही है।[28]

समीक्षा :

इन ऊपरवर्णित संस्थाओं और विचारकों द्वारा जो ज्ञान की ज्योति जगी थी, उसके प्रकाश से राजस्थान का पठित और प्रबुद्ध वर्ग समाज की बुराइयों और धर्म की रूढ़ियों को स्पष्ट देखने लगा। ये लोग गंभीरता से धर्म, समाज और देश की स्थिति से अवगत होकर बुराइयों के मूल आधार पर गंभीरता से सोचने लगे। इन विचारकों ने ऊंची और तथाकथित नीची जातियों के बीच पद प्रतिष्ठा का संघर्ष या उसका भी समाधान किया। राजनीति के विषयों पर ये वर्ग खुलकर तो सामने नहीं आ सका, क्योंकि इनमें अधिकांश राज्याश्रित थे, परन्तु उन्हें अंग्रेजी सत्ता की बुराइयों का अवश्य भान था। विद्यालय, छात्रावास, वाचनालय, और कचहरियों में अंग्रेजों की भर्त्सना दबे शब्दों में होने लगी। जिस नवोत्थान का आरंभ वेद और उपनिषद के माध्यम से दयानन्द, विवेकानन्द, एनिबेसेन्ट आदि ने किया था वह समाज के विचारधारा की रीढ़ बन गया। इस नवोत्थान ने राष्ट्रीय आन्दोलन की प्रक्रियाओं को जन्म दिया जिनका हम क्रमशः वर्णन यथास्थान करेंगे।

---

28. पं. त्रिभुवननाथ और अन्य शाखाओं के पत्र व्यहार, थियोसोफिकलसोसाइटी, उदयपुर के पुस्तकालय का संग्रह।

अध्याय—7

राजस्थान में राजनीतिक जागृति और क्रान्ति का स्वर

संस्थाओं द्वारा राष्ट्रीय राजनीतिक चेतना का विकास :

भारतीय राष्ट्रीय जागृति एक आकस्मिक घटना नहीं थी, वरन् वह उस आर्थिक शोषण और राजनीतिक असन्तोष का परिणाम था जो ब्रिटिश शासन की प्रतिक्रियावादी नीति के कारण विकसित हुआ था। भाग्यवश विदेशी सम्पर्क और शिक्षा से यहां एक ऐसा वर्ग बन गया था जो समाज में सुधार एवं भारतीय शासन व्यवस्था में हेरफेर चाहता था। इस उद्देश्य से इसी काल में कई राष्ट्रीय संस्थाओं का संगठन हुआ। उन सभी का ध्येय अपने अपने निर्धारित क्षेत्र में भारतीय राजनीति को नई दिशा देना था एवं समाज को शिक्षित कर जागरूक करना भी था। सबसे पहले 1838 में बंगाल के जमींदारों ने एक "भूमिपतियों की समिति" बनाई थी जिसके द्वारा कर मुक्त भूमि को सरकार से पुन: प्राप्त करने का प्रयत्न किया था। इसी तरह 1851 में कलकत्ता में 'ब्रिटिश इंडियन एसोसिएशन" 1852 में बम्बई में 'बम्बई एसोसिएशन"' तथा मद्रास में "नेटिव एसोसियेशन" की स्थापना हुई थी। इसी प्रकार 1861 में अवध में तथा 1866 में उत्तर-पश्चिमी प्रांत में ब्रिटिश इंडियन एसोसियेशन बना था। 1869 में दादा भाई नारोजी ने "ईस्ट इंडिया एसोसियेशन" एवं 1876 में सुरेन्द्रनाथ बनर्जी व आनन्द मोहन बोस ने "द इंडियन एसोसियेशन' नामक संस्थाओं की स्थापना की थी।[1]

इन्हीं संस्थाओं का संगठित रूप 1885 में "इंडियन नेशनल कांग्रेस" के रूप में उभरा जिसकी स्थापना का श्रेय सुरेन्द्रनाथ बनर्जी तथा एलन ओक्टोवियन ह्यूम को है। इसके संस्थापक चाहते थे कि भारत में अंग्रेजों के विरुद्ध जो असन्तोष व्याप्त है उसे वैधानिक मांग में परिणित किया जाय और उसको ब्रिटिश शासन के मित्र संस्था के रूप में परिवर्धित किया जाय। यह संस्था प्रारम्भ में अधिवेशनों तथा विनम्र विज्ञप्तियों द्वारा सरकार से सुधारों के लिए मांगे करती रही तथा राजनीतिक शांतिमय आन्दोलन भी करती रही। परन्तु यह आन्दोलन वैधानिक सीमा में था। प्राय: प्रारम्भिक प्रत्येक अधिवेशन में राजभक्ति का प्रस्ताव पास किया जाता था। इसके शुरु के सदस्य अंग्रेजी संरक्षण को भारत के लिए एक सौभाग्यपूर्ण घटना मानते थे। परन्तु धीरे-धीरे यह विश्वास घटता गया जिससे राजनीतिक भारतीय चेतना में एक नवीन और निश्चित मोड़ आया। जिसके फलस्वरूप जन शक्ति ने अहिंसात्मक आन्दोलन कर ब्रिटिश सत्ता को भारत छोड़ने के लिए विवश कर दिया।[2]

1– सुभाष कश्यप, संविधानिक विकास और स्वाधीनता संघर्ष, पृ. 55

2– सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, ए नेशन इन द मेकिंग, 1925, पृ. 114; मजूमदार, आर.सी. द ब्रिटिश पेरामाउन्टसी एण्ड इण्डियन रेनासा पृ. 536

1893 में एक "पूजा सोसाइटी' स्थापित हुई जिसका उद्देश्य था हिन्दू धर्म की बाधाओं को दूर करना। इसके नेता दामोदर हरि चापेकर और बालकृष्ण हरि चापेकर थे। ये दोनों सगे भाई थे और उन्हें लोकमान्य तिलक का आशीर्वाद प्राप्त था। ये संस्थाएं राजनीतिक अधिकारों को प्राप्त करने हेतु सरकार को ज्ञापन देती रहती थी और अपने अपने प्रांतों की सामाजिक एवं राजनीतिक गतिविधियों में भाग लेती रहती थी।[3]

गणेशोत्सव और शिवाजी उत्सव : -

इसी मध्य लोकमान्य तिलक ने लोगों को आत्मा रक्षा के लिए तैयार करने का विचार किया और उन्होंने गणेशोत्सव जारी किया। यह उत्सव पेशवाओं के समय में बड़े उत्साह से मनाया जाता था। तिलक ने इस उत्सव को पुनः प्रारम्भ किया और शिक्षित नवयुवकों को इसमें सम्मिलित होने के लिए प्रेरित किया। इसके पश्चात शिवाजी उत्सव भी मनाया जाने लगा। रायगढ़ दुर्ग में शिवाजी की समाधि की जो वर्षों से उपेक्षित पड़ी हुई थी, चन्दा एकत्रित करके मरम्मत की गई। 15 अप्रैल, 1896 को शिवाजी उत्सव मनाने के लिए रायगढ़ के दुर्ग में लोग बड़ी संख्या में एकत्रित हुए। उत्सव के प्रधान लोकमान्य तिलक थे।[4]

धर्म एवं समाज सुधार आन्दोलन :

इसी दिशा में ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज, रामकृष्ण मिशन, आर्य समाज तथा अन्य सामाजिक संगठनों ने अपूर्व भूमिका निभाई थी। भारतीय प्रत्येक बड़े नगरों व कस्बों में इनकी बैठकें होती थीं और इनके वार्षिक अधिवेशनों, उत्सवों तथा जलसों में उत्तर प्रदेश, बंगाल व पंजाब के उपदेशक व प्रचारक आया करते थे। इन लोगों को ब्रिटिश भारत की राजनैतिक स्थिति का अच्छा ज्ञान था। अपने व्याख्यानों में वे भारतीय संस्कृति और देशाभिमान के मूल्यों पर प्रकाश डालते थे। इनमें राजनैतिक चेतना पर भी संकेत रहता था। भारत की गरीबी, शिक्षा का अभाव विदेशी वस्तुओं का बढ़ता हुआ उपयोग स्थानीय दस्तकारी का ह्रास, गोरक्षा आदि विषयों का उल्लेख उनके भाषणों में अवश्य किया जाता था। परन्तु सरकार के विरुद्ध खुले तौर पर कोई व्याख्यान नहीं दिये जाते थे। न अंग्रेजी सरकार या रियासती सरकारों के विरुद्ध किसी भी प्रकार की राजद्रोहात्मक भावनाए जगाई जाती थी।[5]

प्रारम्भ में इन संगठनों में न तो स्वाधीनता अथवा अंग्रेजी शासन से मुक्ति पाने की संकल्पना थी और न ही राष्ट्रीय अभ्युदय के कार्यक्रम की संयोजनाओं को ये संस्थाएं व्यवस्थित स्वरूप दे पाई थी। इनके सदस्य बड़े जमीदार, व्यापारी या कुछ अंग्रेजी पढ़े लिखे

3–धनंजय, सावरकर और उसका समय, पृ. 6, 9, 24

4–नीलकण्ठ शास्त्री, एन एडवान्स हिस्ट्री आफ इंडिया, पृ. 699–700; मन्मथनाथ गुप्ता, राष्ट्रीय आन्दोलन का इतिहास, पृ. 246–248

5–विश्व प्रकाश–लाइफ एंड टीचिंग्स आफ स्वामी दयानन्द, पृ. 156–157

लोग थे। फिर भी इनकी सेवाओं की उपेक्षा नहीं की जा सकती। उन्होंने देश के विभिन्न भागों में राजनैतिक चेतना जागृत करने में तथा इंडियन नेशनल कांग्रेस के पथ को प्रशस्त करने में महत्वपूर्ण भूमिका को निभाया।[6]

भारतीय समाचार पत्रों द्वारा राष्ट्रीयता को योगदान :

राष्ट्रीयता के क्षेत्र में भारतीय समाचार पत्रों एवं पत्रिकाओं का समाज सुधार तथा राजनीति जागरण में बड़ा योगदान रहा है। पहला अंग्रेजी भाषा का समाचार पत्र 1816 में "बंगाल गजट" के नाम से प्रकाशित हुआ जिसमें धर्म और भारतीय समाज सुधार की चर्चा रहती थी। इसके पश्चात 1818 में बंगला में "दिग्दर्शन" तथा "समाचारदर्पण" प्रकाशित हुआ। राजा राममोहनराय ने 1821 में "संवाद कौमुदी" का साप्ताहिक पत्र, 1822 में फारसी में "मिरातउल अखबार" तथा अंग्रेजी में "ब्राह्मनिकल मैगजीन" निकाले। इन पत्रों के माध्यम से धर्म व समाज संबंधी समस्याओं के संबंध में विचार व्यक्त किये जाते थे। इनमें अवश्य ही दबी जबान में बिदेशी सत्ता की सुधारों के प्रति उपेक्षा, उदार शासन की अपर्याप्तता तथा शासकों की कार्य प्रणाली पर असंतोष का भाव अभिव्यक्त किया जाता था। इनके द्वारा वास्तविक व सच्चा जनमत तो सहसा नहीं बन पाता था, परन्तु प्रबुद्ध वर्ग में राजनीतिक चेतना का बोध कराने में ये पत्र अवश्य साधक बने। इन्होंने पठित वर्ग के जनमत को इस ओर जाग्रत किया कि अंग्रेजी साम्राज्य भारतीय जनता को नैतिक, आर्थिक और मानसिक पतन की ओर ले जा रहा है। परन्तु जब ये पत्र सत्ता की आलोचना करने लगे तो लार्ड लिटन ने 1878 ई में वर्नाक्यूलर एक्ट पास कर समाचार पत्रों पर प्रतिबन्ध लगा दिया। लिटन द्वारा पारित प्रेस एक्ट एक प्रकार से उसकी प्रतिक्रियावादी नीति का ज्वलंत उदाहरण था, जिसकी न केवल भारत में ही निन्दा हुई बल्कि ब्रिटिश पार्लियामेट में भी उसकी बड़ी आलोचना की गई।[7]

इस एक्ट की उल्टी प्रतिक्रिया हुई। देश में जन जागरण उत्पन्न करने के लिए एवं बलिदान का पाठ पढ़ाने के लिए नए समाचार पत्र एवं पुराने समाचार पत्रों ने राजनीति अस्तित्व का नारा बुलन्द किया। बंगाल में 3 मुख्य समाचार पत्र निकाले जाने लगे, जिनके नाम थे "सन्ध्या", "युगान्तर" और "बन्दे–मातरम्"। इन पत्रों से आंतकवाद को समर्थन मिलता था। युगान्तर नवयुवकों का पत्र था और वह संध्या से भी आगे बढ़ा हुआ था। बन्दे-मातरम् अंग्रेजी का समाचार पत्र था इसके सम्पादक अरविन्द घोष थे। उन्हीं दिनों पंजाब में "गदर" नामक समाचार पत्र बहुत प्रचलित था। जिसके लाला हरदयाल सम्पादक थे। उत्तर प्रदेश में भी इलाहाबाद से "स्वराज्य" नामक समाचार पत्र प्रकाशित होता था। इसको भी सरकार राजद्रोही मानती थी और 1910 में इसके

6– वही पृ. 893–94; कांग्रेस प्रेसीडेन्शियल एड्रेसेज, प्रथम सिरीज, मद्रास. 1935, पृ. 691-92.

7– मन्मथनाथ गुप्ता राष्ट्रीयता आन्दोलन का इतिहास, पृ. 150-151.

प्रकाशन पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया था। इसी प्रकार का एक अन्य समाचार पत्र मध्य प्रान्त से प्रकाशित होता था जिसका नाम "हिन्दी केसरी" था। इन पत्रों से प्रतिक्रिया वादी नीति का प्रबल विरोध करने और भारतीय सगठन की आवश्यकता को बल मिला।[8]

जब देश में संस्थाओं और समाचार पत्रों द्वारा ब्रिटिश सत्ता के प्रति असंतोष प्रगट किया जा रहा था तथा सरकार की आर्थिक नीति से देश कराहा रहा था तो उसका निराकरण सोचने के बदले ब्रिटिश सत्ता कई कठोर नियम और दमनीय कदमों को उठाकर जन आक्रोश को उत्तेजित करने में लग गई।

लार्ड कर्जन की प्रतिक्रियावादी नीति :

सन् 1899 के प्रारम्भ में लार्ड कर्जन भारतवर्ष का वायसराय बनकर आया। वह बड़ा प्रतिभावान राजनैतिज्ञ था। 1898 में मद्रास् में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ वहां उसकी प्रशंसा की गईथी कि उसके समय में उन्नति और विश्वास की नीति का अनुसरण किया जाएगा। 1899 में इण्डियन एसोसियेशन कलकत्ता ने लार्ड कर्जन को इसी आशा से अभिनन्दन पत्र भी भेंट किया। लॉर्ड कर्जन का ठाट बाट अकबर और शाहजहां जैसा था। वह बनावटी और गंभीर आवाज से उत्तर दिया करता था परन्तु इस समारोह के पश्चात् लोगों को भारत के भविष्य के विषय में निराशा होने लगी। इसके बाद शराब पीये हुए अंग्रेज सैनिकों ने बेरकपुर में डा. सुरेशचन्द्र सरकार को मार डाला। एक दूसरा प्रतिष्ठित नागरिक घोड़े पर बैठे हुए यूरोपियन लोगों के सामने से निकला तो इन लोगों ने उस पर घातक प्रहार किया जिसके परिणामस्वरूप वह मर गया। अंग्रेज जज ने हत्यारों पर केवल कुछ रुपये ही जुर्माना किया। इस प्रकार के पक्षपातपूर्ण व्यवहार से भारत में अंग्रेजों के प्रति घृणा उत्पन्न होने लगी। अंग्रेजों के जातीय अहंकार तथा भारतीयों के प्रति अपमानजनक व्यवहार ने इस घृणा को और भी बढ़ा दिया।[9]

कर्जन की शिक्षा नीति :

लार्ड कर्जन को भारत में यूरोपीय ढंग की शिक्षा का प्रचार पसन्द नहीं था। उसकी मान्यता थी कि इससे लोगों में राजनैतिक विचारों का उदय होता था और सरकार के प्रति विरोध बढ़ता था। इसी मान्यता को बल देने के लिये उसने 1901 में एक शिक्षा सम्मेलन किया और एक जांच कमेटी बिठाई। इस कमिशन ने ऐसी सिफारिशें की कि जिनसे शिक्षा का प्रचार कम हो गया। कलकत्ता और अन्य बड़े बड़े नगरों में इसका विरोध हुआ और लोगों में लार्ड कर्जन के विरुद्ध असन्तोष फैल गया। युनीवर्सिटी एक्ट भी इसी दिशा में एक प्रतिक्रियावादी कदम था।[10]

8- मन्मथनाम गुप्ता-राष्ट्रीय आन्दोलन का इतिहास, पृ. 247--248; चिरोल, इंडिया अनरेस्ट, पृ. 16-18 : महर्ता-हमारा राजस्थान, पृ. 302

9-सीडीशन कमेटी रिपोर्ट, 1918, पृ. 6,231;
फ्रेजर, इंडिया अंडर कर्जन, पृ. 16,304-320; होम. पो., मई 1909, नं. 39, रा. अ.

10-रोबर्ट्स-हिस्ट्री आफ ब्रिटिश इंडिया पृ. 547-548;
चिरोल इंडियन अनरेस्ट, पृ. 82

बंग भंग और विदेशी माल का बहिष्कार :

सन् 1905 में लार्ड कर्जन ने घोषणा की कि बंगाल के दो हिस्से कर दिये जायेंगे। इस घोषणा से लोगों पर सहसा बज्रपात-सा हुआ। बंगालियों ने समझा कि एक परिवार के दो टुकड़े किये जा रहे हैं। पूर्वी बंगाल में मुसलमानों की संख्या अधिक थी। पश्चिमी बंगाल में उतनी नहीं थी। इसलिए हिन्दुओं और मुसलमानों में फूट डालने के लिए लार्ड कर्जन ने यह उपाय किया था। इसका विरोध करने हेतु स्थान-स्थान पर सभाएँ हुई और प्रस्ताव पास किये गये कि ब्रिटिश सरकार भारतीयों की उपेक्षा कर रही है। अत: बंग-भंग का आदेश वापिस न लिया जाए तब तक ब्रिटिश माल नहीं खरीदा जावे। ब्रिटिश माल के बहिष्कार की लहर सारे प्रांतों में फैल गयी और कई स्थानों पर लोगों ने वैध आंदोलन की सीमा का उल्लंघन घर-घर में प्रवेश कर गया। विवाहों में विदेशी वस्त्रों और विदेशी नमक का व्यवहार बन्द करने का प्रचार जोरों से चला। कर्जन ने राष्ट्रीय भावना और आंदोलन को कठोरता के साथ दमन किया और बंग-भंग क्रियान्वित किया गया।[11]

उग्रवादी दल और भारतीय राजनीति :

प्रारम्भिक काल में कांग्रेस और भारत सरकार के सम्बन्ध मैत्रीपूर्ण बने रहे परन्तु ज्यों-ज्यों कांग्रेस की मांगे राजनीतिक अधिकार एवं असमानता दूर करने पर बल देने लगी त्यों-त्यों 1888 के बाद अंग्रेज सरकार की नीति में प्रतिक्रियावादी तत्त्व घर करने लगे। 1890 के बाद इन दोनों के बीच की दरार स्पष्ट होने लगी। 1892 तथा 1909 आदि के अधिनियमों से ऐसा लगने लगा कि सरकारी वर्ग कांग्रेस की मांगों की उपेक्षा कर मनमाने ढंग से नियम बनाता है। इस विरोधी नीति के कारण शिक्षित भारतीयों में नई राजनीतिक चेतना उत्पन्न हुई। उनके दल में कांग्रेस की भिक्षावृत्ति की पद्धति बेअसर समझी जाने लगी। देश के नवयुवकों में क्रांतिकारी आन्दोलन के लिए छटपटाहट होने लगी। इस प्रकार के विचार का नेतृत्व करने वालों में लोकमान्य तिलक, विपिन चन्द्र पाल और लाला लाजपतराय प्रमुख थे इसी अवधि में 1996-97 तथा 1899-1900 के भयंकर दुर्भिक्ष और महामारी के प्रकोप के समय सरकार ने राहत कार्यों में ढिलाई की नीति का अवलम्बन किया तथा पूना में जनता के साथ अमानवीय व अशिष्ट व्यवहार अपनाया। इससे नौजवानों का खून उबल पड़ा। सहसा एक नौजवान ने जिसका नाम दामोदर हरिचापेकर था पूना के प्लेग कमिश्नर रैण्ड और उनके सहायक लेफ्टिनेन्ट एयर्स्ट की हत्या कर दी। सरकार ने उस नवयुवक को फांसी पर लटकवा दिया। लोकमान्य तिलक को जिन्होंने अपने पत्र 'केसरी' में इस नृशंस कार्य के लिए सरकार की कटु आलोचना की थी। 18 महीने की सख्त क़ैद का दण्ड दिया। और प्रबोध के सम्पादक भी पकड़े गये। इन पर यह आरोप लगाया गया कि इन्होंने शिवाजी उत्सव के बहाने हत्याओं का समर्थन किया था जिससे युवक उत्तेजित हो गये। इन

11—नीलकण्ड शास्त्री, एडवांस हिस्ट्री आफ इण्डिया, पृ. 699;
काका साहब कालेकर, नवभारत के चन्द निर्माता, पृ. 62

घटनाओं ने उग्रवादी विचारों को बढावा देना शुरू किया। श्यामजी कृष्ण वर्मा पर भी संदेह किया गया कि इस कार्यवाही में उनका हाथ था। वे किसी तरह इंगलैण्ड चले गये और सरकार हाथ मलती रह गई।[12]

साथ ही रूसी क्रांन्ति और उसके साहित्य ने भी इस मत को बढावा दिया कि क्रान्ति ही एक ऐसा साधन है जिससे देश अंग्रेजों के चंगुल से निकल सकता है। देश में और विशेष रूप में बंगाल में बम बनाने के गुप्त स्थान खोजे गये और हथियारों को बनाने और इकट्ठा करने की प्रक्रियाएं आरम्भ की गई।[13]

इसी तरह फ्रांस की क्रान्ति को लेकर जो साहित्य यत्र तत्र उपलब्ध हो रहा था उसकी लोकप्रियता यहां बढने लगी। यहां एक ऐसा विशेष दल बन गया कि जो ऐसे साहित्य को पढ़ता था और उसका प्रचार करता था। गैरीबाल्डी, मेजिनी, नेपोलियन, फ्रेडरिक, लेनिन, वाशिंगटन आदि पाश्चात्य देशों के व्यक्ति नवयुवकों के आदर्श बन गये। उनके कार्य कलापों की दुहाई दी जाने लगी और उनके उदाहरण से क्रान्ति के पथ पर चलने के लिए जनता का आह्वान किया जाने लगा। जापान की रूस पर विजय ने तो लोगों पर ऐसी प्रतिक्रिया की कि वे अब मानने लगे कि यदि एक छोटा सा देश विशाल देश को पराजित कर सकता है तो क्यों नहीं भारत अंग्रेजों को यहां से निष्कासित कर सकता है।[14]

इसी युग में कुछ एक प्रकाशन इस बात पर बल देने लगे कि देश को संगठित होकर विदेशी सत्ता के साथ लड़ना चाहिये। बल प्रयोग के लिए हथियारों को चुराना एवं सैनिकों का सहयोग मांगना उपयुक्त विधि है।[15] जहां जन्मभूमि को स्वतन्त्र करना है वहां नैतिक, अनैतिक, अधार्मिक आदि विचारों का कोई स्तंभन नहीं है। जो अधिकारी वर्ग अंग्रेजी शासन का हिमायती है वह देश-द्रोही की संज्ञा में माना जाना चाहिये। आगजनी या हत्या द्वारा स्वतन्त्रता को अनुप्राणित करना बलि देने के महत्व का अंग है। युद्धोचित सामग्री के लिए लूट खसोट अथवा हत्याओं में वे क्रांतिकारी विश्वास करने लगे और समाचार पत्रों द्वारा इसका प्रचार भी होने लगा। राजनैतिक समाधान के लिए इनका विश्वास था कि सशस्त्र क्रांति ही एक अनुपम साधन है। ऐसे विचारों को पढ़कर युवावर्ग क्रांति की दिशा में सोचने लगा। बलपूर्वक ध्येय की सिद्धि प्राप्त करने की इच्छा क्रमशः प्रबल होती गई। इस प्रकार के माहौल में शांति से काम करने पर कोई ध्यान नहीं दिया गया, क्योंकि देश विदेश की घटनाओं

12– रिजोल्यूशन, 13, 14, 1904–1905, कांग्रेस बम्बई, सिडीशन कमेटी, रिपोर्ट, 1918, पृ. 231. हो पी. 1909, नं. 16, रा. अ. मजूमदार, ब्रिटिश पेरामाउंटसी इंडियन रेनासा, पृ. 581, मन्मथनाथ गुप्त, राष्ट्रीय आन्दोलन का इतिहास, पृ. 222–223

13– हो.पो. मई, 1909, नं. 30 रा. अ.

14– सिडीशन कमेटी रिपोर्ट, 1918, पृ 102

15– फ्री हिन्दुस्तान, 1909

तथा ऐसे साहित्य की उपलब्धि ने वातावरण ही ऐसा बना दिया कि भारत में सशस्त्र क्रान्ति के लिए तैयारियां की जाने लगी।[16] देशवासियों का उबलता खून एक ही दिशा में प्रवाहित होता नजर आ रहा था। इतना अवश्य मानना पड़ेगा कि इन सभी मान्यताओं के गर्भ में स्वतन्त्रता, एकता, देश-प्रेम और जनता के अधिकार की भावना निहित थी, गोया इसकी प्राप्ति के साधन और तरीके जुदे थे जिनका आजकल का विचारक अनुमदन नहीं कर सकता।[17]

इन कार्यक्रमों को व्यवस्थितरूप से चलाने एवं कार्यान्वित करने के लिए संगठनों को स्थापित किया गया। प्रारंभ में इनका ध्येय संगठनों के सदस्यों के लिए नैतिक, अध्यात्मिक, बौद्धिक और शारीरिक स्वस्थता को पुष्ट करने के लिए था। बंगाल और महाराष्ट्र में विशेष रूप से "अनुशीलन समितियां" स्थापित की गई और उनकी शाखाओं का जाल नगर, कस्बे और गांवों तक बिछाया गया। साथ ही कुछ गुप्त समितियां एवं षडयन्त्रकारी दल भी बनाये गये जो क्रान्ति का प्रशिक्षण देते थे। प्रशिक्षण में व्यायाम शस्त्रों का उपयोग तथा विशेष व्यक्तियों के आदर्शों का ज्ञान प्रमुख थे। प्रवचनों द्वारा उनमें आत्म सम्मान देश-प्रेम, आत्म बल, संयम, नियम के महत्व पर प्रकाश डाला जाता था। विद्यार्थियों से लेकर ग्रामीण जनता तक विवेकानन्द, मेजिनी, गेरीबाल्डी, कृष्ण, राम, कालिका शिवाजी, प्रताप आदि महान् व्यक्तियों के आदर्श की चर्चा की जाती थी। पौराणिक गाथाओं से देश के वैभव और महानता का पाठ पढ़ाया जाता था। इन साधनों में धार्मिक प्रेरणा के साथ देश-प्रेम के भाव गुंजित होते थे।[18] उस समय के समाचार पत्र एवं पत्रिकाएं धार्मिक कथाओं के द्वारा क्रान्ति के औचित्य का समर्थन करते थे। कई ऐसे भी दास्तान प्रकाशित किये जाते थे जिनमें साहस और शौर्य का विवरण रहता था। ये पत्र और पत्रिकाएं अंग्रेज विरोधी भावनाओं को भी प्रसारित करती थीं। "वन्दे मातरम्" का घोष राष्ट्रीय नारे के रूप में उभारा गया। बंग-भंग की समस्या तो एक जनमत उकसाने का प्रमुख माध्यम बन गया।[19]

इन गतिविधियों के अतिरिक्त स्वतन्त्रता के महत्व को प्रतिपादन करने वाली, अनेक पुस्तकों का प्रकाशन किया गया जिनको गणमान्य लेखकों ने लिखा था। ये साहित्य क्रांति के प्रचार का अच्छा साधन बनी। देश विदेश में इनको बड़ी रुचि व श्रद्धा से पढ़ा गया। " ओह् प्रिन्सेस " नामक पुस्तकों ने भारतीय नरेशों को अपने गौरव का स्मरण दिलाया और दूसरी पुस्तक " ओह् मार्टियर्स "[20] को भारतीय गदर को याद दिलाने का साधन बनाया। मेजिनी की आटोग्राफी को सावरकर ने मराठी में अनुदित किया। इसमें

16–मराठी अखबार "काल" जुलाई 1902; हो. पो. अगस्त, 1907, नं. 33, रा.उ. होम. पो. अप्रेल, 1911 नं. 7 रा. अ.

17–हो. पो. अक्टूबर, 1915, नं. 9 रा.अ.

18–सीडीशन कमेटी रिपोर्ट 1918, पृ. 3, 6, 8, 10, 12, 20, 22, 25, 93, 94, 212, 231 आदि।

19–केसरी, 15 जुलाई, 1918, पृ. 19

20–होम. पो. अप्रेल 1911, नं. 7, डिपोजिट, रा. अ.

विद्वान लेखक ने गुप्त रूप से समितियां बनाने एवं शस्त्रों को एकत्रित करने के लिए नवयुवकों को उद्बोधित किया। उसी लेखक की पुस्तक 'इंडियन वार आफ इण्डिपेन्डेन्स" ने लोगों को देश के प्रति श्रद्धा व प्रेम का पाठ पढ़ाया और उसे निरा विद्रोह न कह कर भारतीय स्वतन्त्रता के संग्राम की संज्ञा दी। इससे स्वातन्त्र्य प्रेम की महिमा उभर उठी और नौजवानों में खून उबलने लगा। "युगान्तर आश्रम", "जुल्म जुल्म गौरे जुल्म शाही" और "भवानी मंदिर" के प्रकाशन ने अंग्रेजों के प्रति विरोधी भावनाओ को प्रज्वलित कर राजनैतिक जागृति को एक नया मोड़ दिया। जिनको धार्मिक भावनाएं प्रेरित करती थीं उनके लिए 1906 में बांटे गये "भवानी मंदिर" के पर्चे ने दैविक अनुज्ञा का काम किया। इसमें संकेत था कि हर भारतवासी को अपनी भारत जननी को परतंत्रता की जंजीरों से मुक्त कराना है। इसी तरह अविनाश चन्द्र भट्टाचार्य ने "वर्तमान रणनीति" में अंग्रेजी शासन के विनाश के लिए युद्ध को प्राथमिकता दी थी और युवा शक्ति को इस युद्ध के लिए निर्भीकता से उतरने के लिए आह्वान किया था। इस प्रकार ऐसा साहित्य जिसका सृजन 20 वीं सदी के प्रथम दशक में हुआ था प्रेरणादायक बना।[21]

अनुशीलन समिति, अरविन्द घोषः

क्रान्ति को मूर्त रूप देने के लिए 1902 के आस पास बंगाल में भारत अनुशीलन समिति स्थापित हुई। बंगाल में क्रांतिकारियों को अरविन्द घोष से सर्वाधिक प्रेरणा मिली। अरविन्द घोष ने प्रारम्भिक शिक्षा दार्जलिंग के एक अंग्रेजी स्कूल में प्राप्त की थी। फिर मेनचेस्टर और लन्दन में उनकी शिक्षा हुई। फिर वे केम्ब्रिज विश्व विद्यालय में प्रविष्ट हुए तत्पश्चात उन्होंने इण्डियन सिविल सर्विस परीक्षा पास की, परन्तु घुड़सवारी में वे पास नहीं हो सके 1892 में उन्होंने केम्ब्रिज से बी.ए. पास किया। लन्दन में सर हेनरी काटन के पुत्र जेम्स काटन ने उनका महाराजा बड़ौदा से परिचय करवाया था। फिर ये महाराजा के प्राईवेट सेक्रेटरी नियुक्त हुए बड़ोदा में पूना सोसायटी वाले ठाकुर साहिब ने अरविन्द का अपने संगठन से घनिष्ठ सम्बन्ध करवा दिया था। देश-भक्ति तो अरविन्द में पहले से ही खूब भरी हुई थी। अब उनके विचार उग्र और क्रान्तिकारी बन गये।[22]

अनुशीलन समिति की शाखाएं और भारत धर्म महामण्डल :

बनारस में भी इन्द्रनाथ नन्दी और भुपेन्द्र दत्त ने अनुशीलन समिति की एक शाखा खोलने का प्रयत्न किया। 1908 में इस शाखा का प्रमुख सदस्य और संचालन शचीन्द्रनाथ सान्याल था। सान्याल का चन्द्रनगर वाले उत्तर भारतीय क्रान्तिदल के एक नेता रासबिहारी बोस से सम्पर्क हुआ। बोस ने पश्चिमी युक्त प्रान्त राजस्थान पंजाब और सीमाप्रान्त आदि के संगठनों

21-होम. पो. सितम्बर, 1914, नं. 458-49, रा. अ.; डा. उर्मिला गुप्ता—रिवोल्युशनरी मुवमेन्ट .. पा.लि. पृ. 60-70.

22-भुपेन्द्रनाथ दत्त-भारत द्वितीय स्वाधीनता संग्राम, भाग-1 पृ. 179-190

को अभिनव भारत सभा से जोड़ा। उनका उद्देश्य अस्त्र शस्त्र इकट्ठा करना, बम बनाना तथा नवयुवकों को शस्त्र क्रांति के लिए तैयार करना था। राजस्थान में वीर भारत के गुप्त संगठन द्वारा राजस्थान के निवासियों, शासकों, जागीरदारों और सैनिकों को क्रांति के लिए उद्यत रहने का आह्वान करना बोस का योगदान है। महाराष्ट्र में वीर सावरकर और श्यामजी वर्मा ने आंतकवादी आन्दोलन का संगठन किया। बीरेन्द्र घोष तथा भूपेन्द्रनाथ दत्त ने बंगाल में आंतकवादियों का नेतृत्व किया। इसी दिशा में भाई परमानन्द और बालमुकन्द सक्रिय थे। इसी प्रकार बनारस में भारत धर्म महामण्डल की स्थापना हुई और उसके कई सदस्य क्रांति की योजना के कार्यकर्ता बने[23]

राजस्थान में क्रांति का बीजारोपण :

राजस्थान में वैसे तो स्वामी दयानन्द द्वारा प्रबुद्ध वर्ग अपने अधिकारों के लिए सजग हो गया था, परन्तु इसमें गति पैदा करने का काम स्वामी ज्ञानानन्द तथा श्यामजी कृष्ण वर्मा ने किया। इनके द्वारा जो उद्बोधन मिला असका संक्षेप में परिचय अपेक्षित है।

स्वामी ज्ञानानन्द जी :

स्वामी ज्ञानानन्द भारत धर्म महामण्डल काशी (1884) के अध्यक्ष थे और हिन्दू शास्त्रों के अच्छे ज्ञाता थे तथा बड़े देश भक्त थे। इनके विचार क्रांतिकारी थे और ये अनुशीलन समिति काशी के अध्यक्ष थे। यह समिति अत्यन्त गुप्त रूप से सरकार के विरुद्ध कार्य करती थी। बंगाल, बिहार, उत्तरप्रदेश, पंजाब और राजस्थान में भी अनुशीलन समितियां बन गई थी। इनकी गतिविधियों का पुलिस को केवल अनुमान था, ठीक पता नहीं चलता था। स्वामी ज्ञानानन्द का विचार था कि राजस्थान के राजपूत नरेश स्वतन्त्रता प्राप्त करने लिये इच्छुक होंगे और क्रान्तिकारी कार्य में उनसे सहायता मिल सकेगी। इसलिये उन्होंने राजस्थान की प्रायः सभी रियासतों का दौरा किया था। वे जहां भी गये वहां उनका स्वागत हुआ। वे बंगाली थे परन्तु हिन्दी बहुत अच्छी बोलते थे। रईसों से मिलकर उन्होंने भारत की दयनीय स्थिति का उन्हें बोध कराया। अर्जुनलाल सेठी, गोपालसिंह तथा केसरीसिंह ज्ञानानन्दजी से प्रभावित हुए थे। राजस्थान में जिन लोगों से स्वामी ज्ञानानन्द का विशेष सम्पर्क था, उनमें ठाकुर केसरीसिंह बारहठ प्रमुख थे। प्रासंगिक रूप से स्वामी जी का राजस्थान की क्रान्ति में हाथ था, इसमें कोई संदेह नहीं।[24]

श्यामजी कृष्ण वर्मा–क्रान्ति अग्रदूत :

दूसरे व्यक्ति श्यामजी कृष्ण वर्मा थे जिनका जन्म भंसाली परिवार में 4 अक्टूबर सन् 1857 में कच्छ रियासत के मान्दनी नामक ग्राम में हुआ था। बचपन से ही वे प्रतिभा सम्पन्न तथा मेघावी छात्र थे। अपने विद्यार्थी जीवन में उन्होंने गुजराती, मराठी, अंग्रेजी

23– पट्टाभी सीतारमैया, हिस्ट्री ऑफ इंडियन नेशनल कांग्रेस-1, पृ 38–39

24– के.के. मित्रा टेरेरिस्ट मूवमेन्ट इन राजस्थान, जनरल आफ हिस्टोरिकल रिसर्च, भा –1–4, पृ. 18

और संस्कृत का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया था। इन भाषाओं में धारा प्रवाह भाषण देने व लिखने की उनमें अद्भुत क्षमता थी। जब वे 18 वर्ष के थे तब उनका सम्पर्क दयानन्द सरस्वती से बम्बई में हुआ और वे तब इनकी विद्वता से बड़े प्रभावित हुए। उच्च शिक्षा पाने के लिये वे लंदन गये जहां 1883 में उन्होंने आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय से स्नातक की उपाधि प्राप्त करली। वहां रहते हुए उनकी विद्वता का सिक्का जम गया और मोनियर विलियम, नार्थ ब्रुक, मेक्समूलर, बर्टलेट आदि विद्वान उनकी प्रतिभा से बड़े प्रभावित हुए। अपनी बेरिस्ट्री तथा एम.ए एस. की उपाधि प्राप्त कर वे 1885 में भारत लौटे।[25]

स्वदेश लौट कर 1885 से 1897 तक वे रतलाम, उदयपुर, जूनागढ़ आदि रियासतों के दीवान रहे तथा कई संस्थाओं से जुड़ कर देश सेवा में लगे रहे। कुछ समय उन्होंने वकालत भी की। व्यवसायिक प्रवृत्ति में उन्हें स्वदेशी वस्तुओं के प्रचार में रुचि थी अतएव वे ब्यावर, केकड़ी और नसीराबाद में काटन मीलों एवं प्रेसों के संस्थापक तथा डाइरेक्टर रहे। देशी रियासतों के संकुचित वातावरण ने, अंग्रेजों की रंगभेद-नीति एव शोषण नीति ने उनमें क्रांतिकारी विचारों को जन्म दिया। अपने सम्पर्क व लेखन कौशल से उन्होंने राजस्थान के कई नवयुवकों को देशाभिमान की प्रेरणा दी। ऐसे युवकों में दामोदरलाल राठो, बारहट केसरीसिंह एवं हरविलास शारदा आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।[26]

इस अवधि में कार्यरत रह कर उन्होंने अनुभव किया कि ऐसे दमघोटू वातावरण में देश की सेवा करना कठिन है। जब नाटू बन्धुओं की तथा तिलक की गिरफ्तारी की गई और श्यामजी पर सरकार संदेह करने लगी तो वे 1897 में भारत से विदा लेकर सदा के लिए लंदन चले गये। वहां जाकर उन्होंने राजनैतिक मंच तैयार किया जहां भारतीय युवकों को राष्ट्र भक्ति से प्ररित किया जाता था। 1905 में उन्होंने होमरूल सोसाइटी तथा इंडिया हाउस की स्थापना की और इंडियन सोशियोलोजिस्ट नामक समाचार पत्र निकालना आरंभ किया। इसी के साथ उन्होंने 6 छात्रवृत्तियों की घोषणा की जिनको देशभक्ति का वरण करने वाले नवयुवकों को दी जाती थी। इस प्रकार इंडिया हाउस, लंदन कई क्रान्तिकारियों – विनायक सावरकर, मदनलाल धींगड़ा लालालाजपतराय, हरदयाल, हंसराज आदि का क्रान्तिकारी योजना तैयार करने का केन्द्र बन गया।[27]

25– हो.पो दि. 1914, नं. 160–70, रा.अ.;
भगवत्दत्त शर्मा-दयानन्द सरस्वती के पत्र, पृ. 47, 93;
शारदा, श्यामजी कृष्ण शर्मा, पृ. 19–21; उर्मिला, रिवोल्युशनरी मूवमेन्ट इन राजपूताना, पृ. 90–91, पा.लि.

26– हो.पो. अगस्त, 1914, नं. 259–72, सितम्बर, 1919 नं. 454–57 दिस. 1914, 169–70, रा. अ; सीडीशन कमेटी रिपोर्ट, 1918, पृ. 8

27– हो. पो. फरवरी, 1918, नं. 31 रा. अ.

जुलाई 1909 में जब मदनलाल धींगड़ा द्वारा इंडिया आफिस के पोलिटिकल ए.डी. सी. कर्जन वायली की हत्या कर दी गई तो श्यामजी लंदन छोड़ कर पेरिस चले गये और 1914 में वे स्वीट्जरलैण्ड जाकर रहने लगे। 1930 में जिनेवा में उनका देहान्त हो गया। जो स्वतन्त्रता आन्दोलन तथा सामाजिक सुधारों का नेतृत्व श्यामजी कृष्ण वर्मा ने भारत, राजस्थान व विदेश में रहकर किया वह अभूतपूर्व था। व्यवसायिक उन्नति के लिए स्वदेशी व्यापार को बढ़ावा देकर उन्होंने सरकार को एक नई चुनौती दी थी। क्रांतिकारी साहित्य को प्रोत्साहन तथा क्रांतिकारी नवयुवकों के मार्ग प्रदर्शन की दिशा में वे राजनैतिक आन्दोलन के प्रेरक एवं राजस्थान की क्रांति की पृष्ठभूमि के निर्माता थे।[28]

राजस्थान और भारतीय क्रांतिकारी :

यह स्मरण रहे कि जो भारतीय क्रांतिकारी थे, चाहे तो बंगाल या पंजाब अथवा महाराष्ट्र के, वे सभी राजस्थान के गौरवमय इतिहास से तथा यहां की प्रेरणादायक क्रांतिकारी गाथाओं से भली प्रकार परिचित थे। इनके भाषणों में महाराणा प्रताप, शिवाजी, तथा मीरा के आदर्श और त्याग का जिक्र आता था। प्रशिक्षण में भी इनके बलिदानों व त्याग की कहानियां पढ़ाई जाती थीं और सुनाई जाती थी। साथ ही साथ वे राजस्थान को एक सुरक्षित प्रान्त भी मानते थे जहां गिरि गव्हारों में; बिहड़ जंगलों में तथा अथाह मरुस्थल में गुप्त ढंग से कार्य किया जा सकता था। कार्यकर्ताओं को शस्त्रों को इकट्ठा करना या छुपाने की भी यहां सुविधा अच्छी थी। यहां हर कौम का व्यक्ति शस्त्रों के उपयोग से परिचित था तथा यहां शक्ति को जुटाना सरल था। इस प्रदेश में सशस्त्र क्रांति को मूर्तरूप देना कठिन नहीं था। इन्हीं कारणों से अरविन्द घोष, रास विहारी बोस, शचीन्द्रनाथ सान्याल, मास्टर अमीरचन्द, बलराज, बालमुकन्द आदि क्रान्तिकारियों ने राजस्थान के उत्साही तथा प्राणवान व्यक्तियों से सम्पर्क साधा और उनके मस्तिष्क में क्रान्तिकारी विचारों का बीजारोपण किया।[29] ऐसे युवकों में दामोदरदास राठी, राव गोपालसिंह बारठ, केसरीसिंह, अर्जुनलाल सेठी, प्रतापसिंह आदि के नाम उल्लेखनीय है। 1907 में अरविन्द घोष को ब्यावर के कृष्णा मील में ठहराया था। यहीं से उनका सेठ दामोदर दास राठी राव गोपालसिंह का निकट सम्पर्क होने पाया। 1908 में स्वामी ज्ञानानन्दजी जब धर्म महामण्डल का एक डेपूटेशन वायसराय के पास ले गये तो राव गोपालसिंह एवं मोडसिंह उनके साथ थे। इसी प्रकार अरविंद घोष के माध्यम से मानिकतल्ला में राव गोपालसिंह का परिचय अनेकों बंगाली व क्रान्तिकारियों से करने का

28–चिरोल, इंडियन अनरेस्ट, पृ. 101;
दीपक जगदीश प्रसाद, रीवेन्जेड् इन लंदन, पृ. 30–31;
डॉ. उर्मिला गुप्ता, रिवोल्यूशनरी मूवमेन्ट इन राजस्थान, पृ. 91–93, पा.लि.

29–हो.पो. मई 1914, नं. 134–140 पार्ट बी, रा.अ.; हो पो. जनवरी 1915, नं. 134–137, पार्ट ए., रा.अ.; फो. पो. मार्च 1917, नं. 1–29, रा.अ; राजपूताना ऐजेन्सी, कोन्फीडेन्शियल, फा.नं. 51, भाग 1 अजमेर रेकार्ड, अ.बी.; डा. उर्मिला गुप्ता, रिवोल्युशनरी मूवमेन्ट राजस्थानपा. लि., पृ. 70 72

अवसर मिला था जिनमें वीरेन्द्रपाल, वारिन्द्र घोष, देवेन्द्रनाथ, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी तथा अमृत बाजार पत्रिका, युगान्तर, सन्ध्या आदि समाचार पत्रों के सम्पादक प्रमुख थे। राव गोपालसिंह का पंडित बालकिशन एवं रास बिहारी बोस से निकट सम्पर्क था। ऐसा ही सम्बन्ध रास बिहारी के राजस्थान के अन्य समाज सुधारकों जैसे बारहट केसरीसिंह और अर्जुनलाल सेठी से था। दिल्ली के प्रसिद्ध क्रान्तिकारी मास्टर अमीरचन्द का सम्बन्ध अर्जुनलाल सेठी और केसरीसिंह से था। इन गुणमान क्रान्तिकारियों ने राजस्थान के सुधारवादी कार्यकर्ताओं को क्रान्तिकारी बनाने में तथा उनका मार्ग दर्शन कराने में सफलता प्राप्त की थी।[30]

अंग्रेजी सरकार का रुख :

1905 से जो अंग्रेज विरोधी आन्दोलन राजस्थान में चल रहे थे उससे सरकार भली-भांति तो परिचित नहीं थी तथापि उनसे सतर्क अवश्य थी। इसमें गतिरोध उत्पन्न करने के लिए लार्ड मिन्टों ने अगस्त 1909 को राजस्थान के सभी नरेशों से अनुरोध किया कि वे अपने अपने राज्यों में क्रांतिकारी साहित्य व समाचार पत्रों को न आने दें न हीं उन्हें अपने राज्य में पनपने दे। इसके फलस्वरूप जयपुर, जोधपुर, कोटा, टौंक, सिरोही, उदयपुर, बीकानेर, झालावाड, राजगढ़ आदि राज्यों ने कर्मयोगी, अमृत बाजार पत्रिका, राष्ट्रमत, काल, केसरी, स्वराज्य, देश सेवक, वन्देमातरम् आदि पत्र पत्रिकाओं पर रोक लगा दी। इतना ही नहीं क्रांतिकारियों के आपसी पत्र व्यवहार, मिलने-जुलने, व्याख्यान देने पर निषेधाज्ञा लागू कर दी गई।[31]

परन्तु इन कानूनों, घोषणाओं और प्रतिबन्धनों का कारगर असर न होने पाया। विपरीत इसके दृढ़ प्रतिज्ञा एवं निष्ठावान समाज सुधारक उग्र क्रांतिकारी बन गये और उनकी प्रवृत्ति हिंसात्मक गतिविधि की ओर आकर्षित हो गई। उनकी विचारधारा में एक नया मोड़ आया। वह यह था कि शिक्षा द्वारा सामाजिक उत्थान और सुधार लाना चाहिये, परन्तु शिक्षा को बल प्रयोग से जोड़ा जाना चाहिये। वे ये भी सोचने लगे कि नवयुवकों को ऐसी शिक्षा देनी चाहिए जो स्वदेश के लिये मरने और मारने के लिये कटिबद्ध हों। सशस्त्र क्रांति उनका पूर्ण लक्ष्य बन गया और वे राजाओं, सामन्तों, नौजवानों व सैनिकों से संबंध स्थापित कर क्रांति द्वारा स्वाधीन बनने की योजना बनाने में जुट गये। ऐसे व्यक्तियों में बारहट कृष्णसिंह, बारहट केसरीसिंह, अर्जुनलाल सेठी, राव गोपालसिंह, दामोदरलाल राठी, प्रतापसिंह आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। इनकी गतिविधियों का संक्षेप में वर्णन प्रस्तुत किया जाता है।

30–कोन्फीडेन्शल रेकार्ड, फा. नं. 2. 4 अ बी.; कान्फीडेन्शल रेकार्ड फा. नं. 68 अजमेर रेकार्ड, अ.बी.

31– मिन्टो का पत्र राजस्थान के नरेशों को, फो.पो. 6 अगस्त, 1909. फो. पो. नं. 168, रा.अ.; हो.पो. 1909, नं. 16, रा.अ.; फो.पो. नं. 56-57 82, 83; फो.पो. 1910, नं. 62, रा.अ.

कृष्णसिंह बारहठ :[32]

कृष्णसिंह चारण जाति के सोढा बारहट वंश में उत्पन्न हुए थे । वे शाहपुरा राज्य के जागीरदार और विश्वस्त दरबारी थे । शाहपुरा ही नहीं वरन् राजपूताना की समस्त रियासतें इनका सम्मान करती थी और उनकी गणना एक कुशल राजनीतिज्ञ के रूप में की जाती थी । ये संस्कृत और डिंगल भाषा तथा संस्कृत व्याकरण और अन्य विषयों के अच्छे पण्डित थे । इनका बातचीत का ढंग एवं व्यक्तित्व आकर्षक था ।

शाहपुरा राजाधिराज नाहरसिंह ने इन्हें उदयपुर के महाराणा सज्जनसिंह से अपने सम्बन्ध में गलत फेमी दूर करने के लिए भेजा । महाराणा इनकी बातचीत से इतने प्रभावित हुए कि उनको पहिले तो कई महीने बड़े आदर के साथ राज्य के विशिष्ठ अतिथि के रूप में रखा और फिर उन्हें राज्य के दरबारियों में सम्मिलित कर लिया । महाराणा इन्हें अन्य राज्यों में गुप्त राजनैतिक परामर्श के लिए भेजा करते थे । ऐसे अवसरों में उनका सम्पर्क जोधपुर के महाराजा सर प्रतापसिंह से हुआ । इसी तरह श्याम जी कृष्ण वर्मा से वे अजमेर मिले थे और इन्हीं के आग्रह से वे उदयपुर के दीवान पद को संभालने के लिए राजी हो गये थे । इनके आगमन से अवांछनीय अंग्रेज अफसरों को विदा कर दिया गया था । महाराणा फतहसिंह भी इन्हें एक प्रतिष्ठित दरबारी मानते थे ।

महाराणा के साथ और स्वतन्त्र रूप से भी उनकी उदयपुर में स्वामी दयानन्द जी से भेंट हुई थी । उनकी प्रकृति एवं विद्वता का उन पर प्रभूत प्रभाव पड़ा । चित्तौड़ के स्वामी जी के भाषण के समारोह की एक बार कृष्णसिंह ने अध्यक्षता की थी जो उनकी उच्च श्रेणी के पांडित्य का उदाहरण है । इसी प्रकार जोधपुर के महाराजा जसवन्तसिंह इनसे प्रभावित हुए और उन्हें अपने यहां बुलाकर सम्मानित किया । इस प्रकार स्वामीजी एवं अन्य विचारकों से सम्पर्क होने से कृष्णसिंह के विचार राजनीति में रंग गये और वे विदेशी सत्ता के विरोधी बन गये । इनका परिणाम यह हुआ कि इनके पुत्र केसरीसिंह, जोरावरसिंह प्रपौत्र प्रतापसिंह अपने समय के महान क्रान्तिकारी बने ।

केसरीसिंह और क्रांति :

ठाकुर कृष्णसिंह के पुत्र केसरीसिंह का जन्म 21 नवम्बर, 1872 ई. को अपनी पैतृक शाहपुरा की जागीर के गांव देवपुरा में हुआ था । इनके जन्म के एक माह बाद ही उनकी मां का देहान्त हो गया । इनकी प्रारंभिक शिक्षा उदयपुर की चारण पाठशाला में हुआ और वहीं 1889 तक वे गोपीनाथ शास्त्री के संरक्षण में विद्याध्ययन करते रहे । 1890 में उनका विवाह कोटा के ठिकाने कोटड़ी के कविराज देवीदानजी की बहिन सुश्री माणिक कुंवरी से हो गया और तत्पश्चात् वे महाराजा फतहसिंह की सेवा में 1891 ई. तक राज्य कार्य करते रहे । उनको घरेलू व कविराज श्यामलदास का सानिध्य भी उनकी शिक्षा, दीक्षा व अनुभव के

---

32. वंश प्रकाश, प्रथम भाग, पृ.-12–13; पृथ्वीसिंह महता, हमारा राजस्थान, पृ.-301

लिए लाभप्रद सिद्ध हुआ । इनकी प्रशंसा से प्रभावित हो महाराव उम्मेदसिंह ने उन्हे कोटा बुला लिया और उन्हे भारतीय जातियों के संबंध में सूचना एकत्रित करने के काम में लगा दिया जिसे वे 1907 तक करते रहे ।[33]

कोटा जाने के पश्चात् केसरीसिंह के विचारों के मोड़ का युग आरंभ हुआ । उन्हें अंग्रेजों की कुत्सित नीति तथा नौकरशाही के शिकन्जे से नफरत होने लगी । उन्हें भारतीय समाज की अतीत हालत और दासता से क्षोभ उत्पन्न होने लगा, क्योंकि उन्हें अपने राष्ट्रीय गौरव पर बड़ा गर्व था । उनका हृदय भारतीय जागृति, एकता और दासता से छुटकारा पाने के लिए छटपटाने लगा । इस अभिलाषा की पूर्ति के लिए उनके राजनैतिक विचारों में उग्रता आने लगी । वे यह अपेक्षा करने लगे कि भारतीय नरेशों की सहायता से क्रांति की जाय और भारतीय स्वतंत्र राज्य की स्थापना की जाय । जब उनका संपर्क अर्जुनलाल सेठी, गोपालसिंह खरवा, रासबिहारी बोस और सतीष सान्याल से हुआ तो वे सशस्त्र क्रांति तथा ब्रिटिश विरोधी गतिविधियों के सक्रिय सदस्य बन गये । इन्होंने "चेतावणी रा चूंगट्या" शीर्षक मार्मिक सोरठे में महाराणा को 1903 के दिल्ली दरबार में सम्मिलित होने से रोका । इसी प्रकार छात्र-शिक्षा परिषद् तथा वीर भारत सभा (1910) की योजना के वे प्रवर्तक थे ।[34]

कोटा महन्त हत्याकांड :

शैक्षणिक गतिविधियों के संचालन के साथ साथ केसरीसिंह गुप्त संगठनों के साथ जुड़ गए उन्होंने अब जनता को शिक्षित करने के काम को आधार बनाया और गुप्त संगठनों की योजनाओं को बनाने में लग गये । परन्तु ऐसी योजनाओं के लिए धन की आवश्यता थी । उनकी मान्यता थी कि यदि दुराचारी व्यक्तियों से सम्पत्ति का अपहरण देश के हित के लिए लिया जाय तो अनैतिक नहीं है । शीघ्र ही उनकी निगाह एक चरित्रहीन एक व्यभिचारी जोधपुर के रामस्नेही सम्प्रदाय के महन्त प्यारेराम पर पड़ी । अत: उन्होंने 1912 ई. से अपने सहयोगियों लहरी, रामकरण, नारायणसिंह, जोरावरसिंह, लक्ष्मीलाल और हीरालाल जालोरी से परामर्श कर महन्त को लूटने की योजना बनाई । इसके अन्तर्गत यह निश्चित किया गया कि रामकरण महन्त को समझा बुझा कर किसी तरह कोटा लाया जाय ।[35]

---

33. राजपूताना एजेन्सी, कान्फीडेन्शल फाइल, नं. 51, भाग-1, अजमेर रेकार्ड,अ.बी., फो. पो., 1915 नं. 106-110, रा. अ., आर्मस्ट्रोंग, नोट आन राजपूताना कोन्स्पीरेसी, 1914, फा.नं. 51, अ.बी.; क्षात्र धर्म, अंक 3, 4, पृ. 11

34. भारत सेवक विशेषांक, अंक 18-19, दि. 14 जून 1960; शोध पत्रिका भा. 5, 1 सितम्बर 1953, पृ. 36; हरि प्रसाद, आजादी के दीवाने, 1953, पृ. 10-14

35. फोपो. जुलाई, 1915, नं. 106-110; फोपो. मई, 1916, नं, 65-67 जून, 1920, नं. 471-467; पायोनियर, 27 जून, 1914

महंत राजपरिवारों में लेन देन एवं वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करने का काम करता था। अतएव उसे सुझाया गया कि वह आऊवा ठाकुर की बाईजी का लगन कोटा राज्य के कुनाडी ठाकुर विजयसिंह के यहां करने के प्रस्ताव को लेकर चले। इस चाल को महन्त न समझा और कोटा चलने को रज़ामन्द हो गया। 23 जून 1912 महन्त को चारण बोर्डिंग हाउस में ठहराया गया जहां लहरी, रामकरण, जोरावरसिंह, नारायणसिंह, लक्ष्मीलाल, केसरीसिंह, हीरालाल आदि विद्यमान थे। पहले उसे दूध के साथ विष दिया गया और जब वह न मरा तो 25 जून लहरी ने महन्त की छुरे से हत्या कर दी और उसकी लाश को बोर्डिंग के नीचे वाले कमरे में गाड दी। जो प्रयत्न महन्त की तिजोरी की चाबियां प्राप्त करने का किया गया उसमें सफलता न मिली।[36]

इस घटना के कुछ समय बाद महन्त के लापता होने के आधार पर पुलिस ने पूछताछ आरंभ की। जब रामकरण पर संदेह होने जांच की जा रही थी तो उसने केसरीसिंह को सांकेतिक भाषा में एक पत्र लिखा कि "पुराने आटे को मछलियों को डाल दिया जाय।" इसका अर्थ स्पष्ट था कि लाश को चंबल में फेंक दी जाय। अतः 8 दिसम्बर 1912 को केसरीसिंह ने बोर्डिंग हाउस के विद्यार्थियों को कंसुवा नामक स्थान पर अपनी लड़की के विवाह में दी जाने वाली दावत में भाग लेने भेज दिया और अपने दल के सदस्यों पं. विष्णुदत्त, प्रतापसिंह, जोरावरसिंह और लक्ष्मीलाल के सहयोग से गडी हुई महन्त की लाश को टुकड़े टुकड़े करवाकर बोरियों में बन्द कर गायब करवा दिया।[37]

प्यारेराम साधु की हत्या का मुकदमा :

प्यारेराम साधू की हत्या के संदेह में रामकरण को गिरफ्तार किया गया और फिर इस सिलसिले में ठा. केसरीसिंह, रामकरण लाहेरी, हीरालाल जालोरी, लक्ष्मीलाल भटनागर आदि कई व्यक्तियों को गिरफ्तार किया गया और पुलिस ने यह मुकदमा बनाया कि एक धनवान साधु को, जिसका नाम प्यारेराम था जोधपुर से इस बहाने कोटा लाया गया कि बद्रीनाथ की यात्रा की जाए। मार्ग में कोटा के एक मकान में ठहराया गया जिसकी कुंची डा. केसरीसिंह के पास रहा करती थी। यह मकान उस समय एक राजपूत बोर्डिंग हाउस था, जिसकी कार्यकारिणी के अध्यक्ष स्व. मेजर जनरल सर ओंकारसिंह थे। जब प्यारेराम साधु को लाया गया तो स्कूलों में गर्मियों की छुट्टियां थी और राजपूत बोर्डिंग हाउस बन्द था। पुलिस ने यह आरोप लगाया कि प्यारेराम को बोर्डिंग हाउस में ठहरा कर कत्ल किया गया जिसमें डा. केसरीसिंह, रामकरण हीरालाल जालोरी और लक्ष्मीलाल भटनागर शामिल थे। इसी मामले में डा. गुरुदत्त और प. कृष्णगोपाल को भी उलझाया गया। मुकदमे की सुनवाई 8-10 महीने तक हुई। उस समय कोटा खुफिया पुलिस के उच्च कर्मचारियों का केन्द्र सा बन गया था और सारे नगर में त्रास सा बना

---

36. हो.पो. जुलाई 1914, नं. 124-128; पोयोनियर, जुलाई, 20, 26, 1944

37. फो.पो. जुलाई, 1915, न. 106-110, रा.अ., पोयोनियर, 20, 26, जुलाई, 1914; चन्द्रगुप्त वार्ष्णेय, संपादक, राजस्थान स्वतंत्रता के पहले और बाद, पुण्य संस्मरण, पृ. 1-3

रहता था कि क्या जाने किसकी तलाशी हो जाए। खुफिया पुलिस के कई लोग साधु का भेष बनाकर नगर में घूमा करते थे। ये लोग ठा केसरीसिंह और उनके साथियों की गतिविधियों को बड़ी सूक्ष्मता और सतर्कता से देखा करते थे। अपने बयान में केसरीसिंह ने वीर भारत सभा का इस हत्या से कोई सम्बन्ध नहीं बतलाया। हत्या का मूल कारण जोधपुर राज घराने की औरतों से नाजायज सम्बन्ध होना कहा गया।[38]

बीस-बीस वर्ष की लम्बी सजा :

पुलिस ने इस्तगासे में सिद्ध किया कि धनवान साधु प्यारे राम को दो क्रांतिकारी लोग कोटा तक लाये थे। परन्तु उसके बाद उसका कहीं पता नहीं लगा। इसके आधार पर अदालत ने यह मान लिया कि प्यारे राम का कोटा में कत्ल हुआ। ठा. केसरी सिंह, लाहेरी, रामकरण और हीरालाल को दोषी मानकर कारावास का दण्ड दिया गया। प्रथम तीन व्यक्तियों को 20-20 वर्ष और हीरालाल जालोरी को 7 वर्ष की सजा दी गई। लक्ष्मीलाल को इसलिए क्षमा कर दिया कि वह सरकारी गवाह बन गया था। डा. गुरुदत्त और पं. कृष्णगोपाल को रिहा कर दिया गया। उनको फंसाने के लिए पर्याप्त सामग्री नहीं थी और जो कुछ आरोप लगाए गए उनका अदालत ने पर्याप्त नहीं माना।[39]

कोटा से हजारी बाग जेल में :

ठा. केसरीसिंह और रामकरण कोटा राज्य की जेल में रखे गए जहां ठा. केसरीसिंह से मिलने के लिए कोटा के प्रतिष्ठित व्यक्ति जाया करते थे। इसकी सूचना पोलिटिकल डिपार्टमेंट को मिलती रहती थी। इसलिए पोलिटिकल ऐजेन्ट ने कोटा नरेश पर यह दबाव डाला कि ठा. केसरीसिंह को बाहर ब्रिटिश भारत की किसी जेल में भेज दिया जाए और इसका खर्चा कोटा राज्य वहन करे। इसके अनुसार उनको हजारी बाग (बिहार) जेल में भेज दिया गया। इस जेल में ठा. केसरीसिंह को अनेक यातनाएं भोगनी पड़ी। कई दिनों अनशन केवल तथा दूध पीकर कारावास की काल कोटड़ी में दिन काटे। जेल में एक दिन बहुत से कैदी मिलकर दाल की सप्लाई कर रहे थे। वहां संयोगवश कर्नल मीक ने देखा कि ठा. केसरीसिंह दाल से भारत का नक्शा बना रहा है और कैदियों को राजनीतिक भूगोल समझा रहे हैं। उन्होंने यह भी देखा कि दाल के द्वारा वे अक्षर ज्ञान भी करवा रहे हैं। इस क्षमता से प्रभावित होकर उन्होंने ठा० केसरीसिंह से बातचीत की तो उन्हें पता लगा कि वे संस्कृत के बड़े पंडित थे। उसी दिन से कर्नल मीक ठा० केसरीसिंह के साथ भद्र व्यवहार करने लगे और जब ठा० केसरीसिंह ने बिहार राज्य सरकार के अपने कारावास के विरुद्ध अपील की तो कर्नल मीक ने उन्हें सब प्रकार की उचित सहायता दी। जिसके फल-

---

38. हो. पो जुलाई, 1914, नं. 124–128, रा. अ.; जुलाई 1915, नं. 106–110; जनरल आफ राजस्थान इन्स्टीट्यूट आफ हिस्टोरिकल रिसर्च, भाग 1–3, पृ. 18
39. हो.पो. जुलाई 1915, नं. 106–110, मार्च 1920, नं. 161–169, जून 1920, नं. 471–457; डा. के.के. मित्रा, टेररिस्ट्स मूवमेंट इन राजस्थान; उर्मिला सिंगल, रिवोल्यूशनरी मूवमेंट इन राजस्थान, पृ 161–162

स्वरूप और सन् 1919 के राजनीतिक सुधार की घोषणा के कारण ठा. केसरीसिंह भारत सरकार की आज्ञा से हजारी बाग जेल से मुक्त कर दिये गए। इनका कारावास जीवन नियमित था जो वे एक तपस्वी की तरह बिताते थे। यातनाओं के मध्य उन्हें अपने सिद्धान्तों पर पूर्णनिष्ठा थी, जिसका प्रभाव उनके सहवासी कैदियों पर पड़ा।[40]

पुत्र प्रताप के देहांत का समाचार :

जिन दिनों ठा. केसरीसिंह हजारी बाग जेल में थे, उनके ज्येष्ठ पुत्र प्रतापसिंह को बम निर्माण के अपराध में पकड़कर बरेली जेल में रखा गया था और वहीं उनका देहांत हो गया था।[41] जब ठा. केसरीसिंह कारावास से मुक्त होकर कोटा आए तब स्टेशन से अपने मकान के लिए रवाना होते समय डा. गुरुदत्त ने उनसे पूछा कि आपको प्रताप के देहावसान की सूचना कैसे और कब मिली तो केसरीसिंह ने अद्भुत धैर्य के साथ उत्तर दिया कि मुझे अभी आपसे ही मिली है।[42]

जेल से मुक्ति पाकर जब उन्होंने देखा कि उनके रहने या जीवनयापन करने के साधन नहीं रहे है वे अपने ससुराल कोटड़ी में जाकर अपने पत्नी व बच्चों के साथ रहने लगे। अब क्रांतिकारियों के बिखर जाने तथा उनसे सम्पर्क टूटने पर एवं महात्मा गांधी के विचारों के प्राबल्य से केसरीसिंह जी की मनोवृत्ति-कांग्रेस विचार धारा की ओर आकृष्ट हुई। वे जमनालाल बजाज एवं अर्जुन लाल सेठी के आमन्त्रण पर सपरिवार वर्धा पहुंचे। गांधी जी के सानिध्य का उनके जीवन के लिए अच्छा अवसर मिला। वहां रामनारायण चौधरी, कन्हैयालाल कलमंत्री, विजयसिंह पथिक, सागरमल गोपा आदि का भी मिलन हुआ। उन्होंने वहां रहते हुए 1920 के कलकत्ता अधिवेशन में भाग लिया। वे अब असहयोग आन्दोलन के भी पक्षधर बन गये।[43]

1922 में जब वे पुनः कोटा लोटे तो उनकी जागीर व हवेली जब्त हो चुकी थी। आजीविका का कोई साधन न होने से और पारिवारिक विडंबना से उनका शेष जीवन सुखमय नहीं रहा। 1927 में उनकी धर्म पत्नी 1938 में उनके अनुज किशोरसिंह और 1939 में जोरावरसिंह चल बसे। वैसे तो जेल यातना से उनका शरीर जर्जरित हो चला था वह इन दैविक आघात से अधिक अस्वस्थ होता चला गया। फिर भी उनकी निष्ठा अहिंसा के निर्मल मार्ग के लिए प्रबल होती गई, उन्हें असहयोग आन्दोलन में चमत्कार दिखाई देने लगा। वे अब पुनः शेष आयु गांधीजी की सेवा में व्यतीत करने की इच्छा

40. फो.पो. जुलाई, 1915, नं. 106–110, रा.आ.; हो.पो. मार्च 1920, नं. 161–162, भा.ए.रा, रा.आ.; सुमनेश जोशी–राजस्थान के स्वतन्त्रता सेनानी, पृ. 15-16

41. राजस्थान इंस्टीट्यूट ऑफ हिस्टोरिकल रिसर्च, जर्नल, वोल्यूम प्रथम नं. तृतीय–चतुर्थ पृ. 18 में डा. के.के. मिश्रा का लेख–दी टेररिस्ट मूवमेन्ट इन राजस्थान।

42. क्रान्तिकारी बारहठ केसरीसिंह, भाग–I पृ. 4, 1–42 सुमनेश जोशी–राजस्थान के स्वतन्त्रता सेनानी, पृ. 15–16

43. राजस्थान केसरी का दीपावली अंक; पालीवाल व जावलिया क्रान्तिकारी बारहट केसरीसिंह व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृ. 37–40

रखने लगे। इस विषय में उन्होंने चौधरी को दिनांक 7 दिसम्बर 1940 को एक पत्र भी लिखा था। केसरीसिंह ने लिखा था कि, अब मैं क्रान्तिवाद को व्यवहार सम्पन्न नहीं मानता और अहिंसा के निर्मल और स्वच्छ मार्ग को श्रेष्ठ मानता हूं। इतना खुलासा इसलिये कर रहा हूं कि उस समय के केसरीसिंह और इस समय के केसरीसिंह को समझने में बापू को भ्रम न हो। मैं हिन्दू और मुसलमानों की एकता को हृदय से चाहता हूं। इतना ही नहीं मेरे लिये प्रत्येक मानव या जाति धार्मिक दृष्टि से एक है और न कोई अछूत है। केसरीसिंह ने यह भी लिखा था कि यदि गांधीजी उनके विषय में अधिक जानना आवश्यक समझें तो वे बाबू भगवानदास और बाबू पुरुषोत्तमदास टंडन से पूछ सकते हैं। गांधीजी ने चौधरी से कहा था कि, 'केसरीसिंह आयेंगे तो मुझे खुशी होगी। उनके उत्कृष्ट जेल जीवन का मुझ से सर तेजबहादुर सप्रू ने जिक्र किया था।" रामनारायण चौधरी ने गांधी जी का उतर ठाकुर केसरीसिंह को लिख दिया था, परन्तु इसके कुछ दिन बाद ही केसरीसिंह की जीवन लीला 14 अगस्त, 1941 को समाप्त हो गई।[44]

ठाकुर केसरीसिंह का जीवन विद्वता, देशभक्ति एवं स्वाभिमान से अलंकृत था। जहां तक चरित्र का प्रश्न है उनमें नैतिकता और कर्तव्य परायणता प्रमुख थे। उनके देश को दासता से मुक्त करने की प्रगाढ़ अभिलाषा थी, जिसके लिये वे आजन्म संघर्षरत रहे। उनका दिमाग इतना खुला हुआ था कि वे 1919 के पश्चात् क्रांति के विचारों से हटकर अहिंसा और लोकतन्त्रीय शासन के स्थापना के समर्थक बन गये। राजस्थान के क्रांतिकारी आन्दोलन के इतिहास में स्व. ठाकुर केसरीसिंह का नाम सदैव स्वर्णाक्षरों में अंकित रहेगा। सामन्त व्यवस्था से पीड़ित जनता को छुटकारा दिलाने के लिये आत्म बलिदान का उन्होंने अनुपम उदाहरण प्रस्तुत किया जिसको कभी विस्मरित नहीं किया जा सकता। इसमें कोई सन्देह नहीं कि राष्ट्रीय एकता, समानता एवं स्वतन्त्रता के सम्बन्ध में केसरीसिंह का नाम प्रेरणा स्तंभ बना रहेगा।

अर्जुनलाल सेठी और क्रांति :

राजस्थान के दूसरे क्रांतिकारी अर्जुनलाल सेठी थे जो जयपुर के एक दिगम्बर जैन परिवार में 9 सितम्बर 1880 को उत्पन्न हुए थे। इनके पिता चाहते थे कि वे राज्य में अच्छा पद प्राप्त करें। उस समय राज्य की राज्य-भाषा उर्दू थी और फारसी जानने वाले कर्मचारी योग्य माने जाते थे। इसलिये अर्जुनलाल सेठी की शिक्षा उर्दू और फारसी से शुरु हुई। उसी मोलवी से उन्होंने अरबी भी पढ़ी। अरबी और फारसी में इन्होंने अच्छी योग्यता हासिल करली और फिर जयपुर के महाराजा हाईस्कूल से ही एन्ट्रेंस परीक्षा पास करके प्रयाग विश्वविद्यालय से 1902 में बी.ए. की डिग्री प्राप्त की। हिन्दी भी उनको प्रिय थी। हिन्दी में उन्होंने एक नाटक भी लिखा था जिसका प्रथम संस्करण ही निकलकर

---

44. डा. शान्ति भारद्वाज, हाडोती का स्वतन्त्रता आन्दोलन, पृ. 22-26; सवाईसिंह, पुण्य स्मरण, राजस्थान केसरी ठाकुर केसरीसिंह बारहट।

रह गया। वे अच्छे लेखक थे। जिनकी रचना में "शूद्रमुक्ति" तथा 'स्त्री-मुक्ति' विशेष उल्लेखनीय है। वे जैन शास्त्र एवं जैन धर्म के प्रकांड विद्वान के रूप में प्रसिद्धि में आये।[45]

जब सेठी बी.ए. परीक्षा पास की तो प्रयाग में बड़ी राजनैतिक हलचल चल रही थी और बंग भंग के समय जो क्रांति की लहर चली थी उसका प्रभाव फैलता जा रहा था। अर्जुनलाल सेठी इससे बड़े प्रभावित हुए। जयपुर वापस आकर वे चौमू के ठाकुर देवीसिंह के प्राईवेट ट्यूटर नियुक्त हो गये। परन्तु उनका नौकरी में मन नहीं लगता था। वे स्वतंत्र रूप से और अपने ढंग से देश सेवा करना चाहते थे। इसलिए उन्होंने नौकरी छोड़कर 1907 में जयपुर नगर में एक नोहरे में जैन वर्धमान पाठशाला शुरू किया। सेठी जी इस पाठशाला में क्रांतिकारी विद्यार्थी तैयार करने लगे। साथ ही समाज सुधार व स्वदेशी आंदोलन की गतिविधि में भाग लेने लगे।[46]

वर्धमान पाठशाला में नवीन राजनैतिक विचारों के पत्र आया करते थे, और उसके पुस्तकालय में यूरोप के बड़े बड़े क्रान्तिकारियों की जीवनियां थी। विद्यार्थियों को प्रेरित किया जाता था कि वे गीता सावरकर की "वार आफ इंडियन इनडिपेन्डेन्स", अरविन्द की "कर्मयोगी" और "युगान्तर" देवरकर की "देश की बात" "डिग्बी की प्रोस्परस इण्डिया एफेल्योर" और बंकिम बाबू की "आनन्द मठ", नीहिलिस्ट साहित्य आदि पुस्तकें पढ़ा करें। सेठी जी विद्यार्थियों को अंग्रेजी राज्य के अन्याय की बातें सुनाते थे और उनमें इस राज्य को उखाड़ फैंकने के विचार भरते थे। इस पाठशाला में मिर्जापुर निवासी पं. विष्णुदत्त त्रिवेदी जो एक उग्रवादी था अध्यापन का कार्य करता था जो संस्कार के उपदेश की आड़ में विद्यार्थियों में विप्लव के भावनाएं भरता था।[47]

सेठी जी की वर्धमान पाठशाला में दूर दूर से विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त करने आते थे। उनमें ही दो जैन युवक मोतीचन्द और देवचन्द थे। कुछ विद्यार्थी लोकमान्य तिलक ने भेजे थे। विद्यार्थियों में मोतीचन्द बड़ा ही साहसी और सहनशील था। जब जयपुर के अस्पताल में उसका ऑपरेशन किया गया तो उसने क्लोरोफार्म नहीं सूंघा और बड़े ही धैर्य के साथ आपरेशन करवा लिया। आरा के महन्त की हत्या के कारण उसको फांसी की सजा दी गयी थी। वह मुस्कराता हुआ फांसी के तख्ते पर चढ़ गया था। एक अन्य विद्यार्थी जयचन्द कश्मीर के पुंछ ठिकाने का छुटभैया था। उदयपुर के कृष्णलाल वर्मा यहां विद्याध्ययन करते थे। केसरीसिंह ने भी अपने पुत्र प्रतापसिंह तथा जामाता ईश्वरदान को वहां अध्ययन के लिए भेजा था।[48]

---

45. राजपूताना ऐजेन्सी कोन्फिडेन्शल फाइल नं. 51, 68, अजमेर रेकार्ड, अ. बी.; आर्मस्ट्रांग रिपोर्ट आन राजपूताना कोन्स्पीरेसी, 15 जून 1914; हरिप्रसाद अग्रवाल आजादी के दीवाने, पृ. 61–72
46. कान्फिडेन्शल रेकार्ड. फा.नं. 4, अ.बी.
47. भगवानदास केला-देशी राज्यों की जनजागृति, पृ 26-27
48. जयपुर जूडिशियल रेकार्ड, फा. नं. 7483, 1915, रा. अ.; पालीवाल व जावलिया–क्रांतिकारी बारहट केसरीसिंह, पृ. 24-25

इस संस्था में धर्म प्रचार की आड़ में देश में सशस्त्र क्रांति करने के लिए प्रशिक्षण दिया जाता था। विद्यालय के प्रशिक्षण के बाद इनमें से सुयोग्य विद्यार्थियों को प्रशिक्षण प्राप्त करने अथवा क्रांतिकारी कार्यों के लिए गुप्त केन्द्रों या संस्थाओं में भेजा जाता था। प्रतापसिंह छोटेलाल तथा ईश्वरदान को इसी योजना के अन्तर्गत रास बिहारी बोस, सतीशचन्द्र सान्याल एवं अमीरचन्द के पास भेजा था।[49]

निमेज हत्याकांड :

दिल्ली बम कांड से प्रेरित होकर अर्जुनलाल सेठी के क्रांतिकारी दल ने सन् 1913 में निमेज के एक धनी महन्त के धन को प्राप्त करने की योजना बनाई। यह दल पं. विष्णुदत्त के द्वारा उकसाया गया था। उसकी मान्यता थी कि सशस्त्र क्रांति के लिए तथा मातृभूमि की दासता की जंजीर काटने के लिए येन केन प्रकारेण धन इकट्ठा करना चाहिये। निमेज के महन्त के पास लगभग 17000 रु. के माल का सुराग लगा था। यह दल धन लूटने के लिए यात्रा का बहाना बना जयपुर से बनारस पहुचा। पं. विष्णुदत्त बनारस में ही ठहरा और बाकी दल के लोग निमेज पहुंचे। योजना के अनुसार जयचन्द महन्तजी का रसोइया बन गया और मोतीचन्द, माणकचंद और जोरावरसिंह रात को उपासरे में ही ठहर धन गायब करने के प्रयत्न में लगे, परन्तु तिजोरी की चाबी के अभाव में वे ऐसा न कर सके। दूसरे दिन महन्त 20 मार्च किसी कार्य से लौटा तो माणकचंद ने महन्त को बातचीत में लगाये रखा ताकि धन प्राप्ति का कोई मार्ग की योजना उसके साथी बनालें, परन्तु चाबी न होने से तिजोरी न खुल सकी। विवश हो रात को उन चारों क्रांतिकारियों ने महन्त की हत्या कर दी, फिर भी सही चाबी न मिलने से उन्हें निराश हो बनारस लौटना पड़ा। जब विष्णुदत्त से बनारस और सेठी जी से जयपुर में इनकी मुलाकात हुई तो उनको बहुत कुछ बुरा भला सुनना पड़ा। इस घटना के बाद विद्यालय प्रायः बन्द हो गया और बालचन्द और देवचन्द बड़ौदा और अर्जुनलाल सेठी कुछ समय के लिए इंदौर चले गये।[50]

निमेज हत्याकाण्ड और गिरफ्तारियां :

दिल्ली लाहौर हत्याकांड, जिसका कि वर्णन यथाप्रसंग किया जायेगा, के सम्बन्ध में जब तलाशियां ली जा रही थीं तो कोटा व निमेज के महन्तों की हत्या का भी सुराग मिल गया। जब मास्टर अमीरचन्द और अवध बिहारी के घरों की तलाशी ली गई तो कुछ पत्रों में अर्जुनलाल सेठी का नामोल्लेखन मिला। इसी लाहौर में रघुवर शर्मा के घर से लिबर्टी की दस प्रतियों की सूची में, जिन्हें वितरित करना था, अर्जुनलाल सेठी का नाम था।

---

49. पालीवाल व जावलिया–क्रांतिकारी बारहट केसरीसिंह पृ. 25

50. होम पोलिटिकल, जनवरी 1915, नं. 134, जून 1918, नं. 281, रा. अ. होम जूडीशियल, मार्च, 1915, नं. 276–295; सीडीशन कमेटी रिपोर्ट, 1918, पृ. 127–128, सीक्रेट, रा. अ., उर्मिला गुप्ता, रिवोल्यूशनरी मूवमेन्ट इन राजस्थान, पृ. 153–155, पा. सि.

पुलिस को यह भी पता चला कि बम केस की तलाशी के समय अमीरचन्द के घर से अर्जुन लाल सेठी व बारहट केसरीसिंह गायब हो गये थे । तलाशी में एक गुप्त संकेत वाला अमीर चन्द के नाम पत्र भी मिला था । इन आधारों से सरकार को अर्जुनलाल सेठी का क्रान्ति-कारी गतिविधियों से सम्बन्ध होने का संदेह हो गया । परन्तु फिर भी इन पर मुकदमा चलाने के कोई प्रमाण- प्राप्त करने में सरकार विफल रही ।[51]

नितांत संदेह के आधार पर 13 मार्च, 1914 को शिवनारायण को बम्बई में गिरफ्तार कर लिया । गिरफ्तारी के बाद शिवनारायण गवाह बन गया और उसने निमेज हत्याकांड तथा अर्जुनलाल सेठी के वर्धमान विद्यालय की समस्त गतिविधियां बतला दी । इन सूत्रों को पाकर मोतीचंद, माणकचंद और विष्णुदत्त भी गिरफ्तार कर लिये गये । इधर से माणकचंद भी सरकारी गवाह बन गया और जयचंद तथा जोरावर सिंह फरार हो गये । 5 अक्टूबर, 1914 के मेकफर्सन जजमेंट के अनुसार मोतीचंद को फांसी दी गई । जोरावरसिंह की गिरफ्तारी के लिए सरकार ने 5,000 रु. के इनाम की घोषणा की ।[52]

सेठीजी के विचारों को जयपुर की पुलिस भी भली भांति जानती थी, परन्तु उन पर मुकदमा चलाना कठिन था, क्योंकि उसके विरुद्ध कोई प्रमाण नहीं मिलता था । तथापि भारत सरकार के दबाव में आकर उन्हें जयपुर रियासत ने 5 दिसम्बर, 1914 में जेल में रख दिया । इनके पकड़े जाने पर सारे भारत में तहलका मच गया । वहां उनसे बड़े-बड़े लोग मिलने आते थे और गुप्त रूप से सेठी जी बाहर संदेश भेजा करते थे । इसका भारत सरकार को पता लग गया तो जयपुर राज्य पर दबाव डाल कर उन्हे जयपुर से मद्रास प्रांत की वेलोर जेल मे भेज दिया गया । वहां उन्होंने आमरण अनशन किया, जिससे सारे देश में हाहाकार मच गया । स्वयं एनीबीसेन्ट ने 1920 में उनकी रिहाई का प्रयत्न किया । वेलोर की जेल से छूटकर जब अर्जुनलाल सेठी वापस लोटे तो कोटा राज्य के ठिकाना कोटड़ी में लगभग दो मास तक ठहरे थे । हजारी बाग की जेल से छूटकर ठाकुर केसरीसिंह बारहठ भी कोटड़ी में दुर्गादान के पास ही रहते थे । वह दुर्गादान के फूफा थे । फिर वहीं विजय-सिंह पथिक भी आने जाने लगे थे । इस प्रकार कोटड़ी समस्त क्रान्तिकारियों के मिलने जुलने का एक सुरक्षित स्थान बन गया था । कोटा सरकार इससे अपरिचित नहीं थी परन्तु उस समय पुलिस विभाग के अध्यक्ष पलायथा के जागीरदार ओंकारसिंह थे जो ठाकुर केसरीसिंह के घनिष्ठ मित्र थे । दुर्गादान ताजीमी सरदार थे इसलिये इन पर तथा उनके पास आने जाने वालों पर कोई पाबन्दी नहीं लगाई गई । अर्जुनलाल सेठी ने उस समय

51–एजीजी का पत्र सवाई माधोसिंह, जयपुर को, ता. 7 अगस्त, 1914, कान्फी-डेन्शल फाइल, नं. 129, जयपुर रेकार्ड, अ.बी.; हो.पो. राजपूताना कान्फी-डेन्शल फाइल, जुलाई, 1914, नं. 68, अजमेर रेकार्ड, अ.बी.;

52–आर्मस्ट्रोंग रिपोर्ट, 16 जून, 1914, हो.पो. जुलाई, 1914, मई 1916, नं. 65, 67, जुलाई, 1914, जुडीशियल, मार्च, 1915, नं. 276–295, जनवरी, 1915 नं. 134–137; सुर्जनसिंह शेखावत के बयान, फा. नं. 2 कान्फी. अ.बी.; उर्मिला, रिवोल्यूशनरी मूवमेंट इन राजस्थान, पृ. 157–159

कोटा नगर की गौशाला में तीन-चार व्याख्यान भी दिये थे जिनमें उन्होंने रियासतों के निरंकुश शासन, जागीरदारों के अत्याचारों और भारत सरकार के हस्तक्षेप का वर्णन किया था।[53]

1913 के पश्चात अर्जुनलाल सेठी जयपुर में कोई कार्य नहीं कर सके क्योंकि उन पर जयपुर प्रवेश करने, विद्यार्थियों को पढ़ाने तथा भाषण देने पर रोक थी। अब उन्होंने अजमेर में रहना शुरू किया और वहां के क्रांतिकारी नवयुवकों को गुप्त रूप से संगठित किया। परन्तु सेठी जी को आर्थिक संकट रहा करता था। चूंकि क्रांतिकारियों से उनका सम्पर्क था, अतः लोग उन्हे आर्थिक सहायता देते हुए डरते थे। इसलिये उनको निर्वाह के लिए भी रुपया नहीं मिला करता था। तथापि सेठीजी समाज सेवा में लगे रहे। 1921 के आंदोलन में सेठीजी ने भाग लिया तथा 1922–23 में वे प्रांतीय राजस्थान अजमेर मेरवाड़ा कांग्रेस के सक्रिय संभागी रहे। 1921 व 1930 में उन्हें पुन: जेल जाना पड़ा क्योंकि वे प्रांतीय कांग्रेस के प्रमुख कार्यकर्त्ता थे। जब 1931 में उनकी रिहाई हुई तो उनका भव्य स्वागत किया गया। उसी वर्ष वे प्रथम राजपूताना किसान मजदूर कांग्रेस के अध्यक्ष रहे। 5 जुलाई, 1934 को स्वयं गांधी जी अजमेर में सेठीजी के घर मिलने गये तथा उनसे प्रांतीय राजनीति में फिर से भाग लेने का आग्रह किया।[54]

अभाग्यवश इसी अवधि में कुछ एक तत्व उनके विरोधी हो गये जिससे उन्हें धीरे-धीरे सक्रिय कार्यों से अपना हाथ खींचना पड़ा। उनका मानसिक सन्तुलन बिगड़ गया उन्होंने घर और परिजनों को त्याग दिया और वे ख्वाजा सा. मुईनुद्दीन चिश्ती की दरगाह में फकीर की भांति रहने लगे। वहां रहकर वे मुसलमान बालकों को कुरान अंग्रेजी तथा उर्दू पढ़ाते थे। अन्त में अभाग्यवश 22 दिसम्बर, 1941 को उनकी हत्या कर दी गई। सेठीजी नि:स्वार्थ भाव से समाज सेवा करते थे और सर्वदा राष्ट्रीय हित को प्राथमिकता देते थे। यदि हम उन्हें राजस्थान की राष्ट्रीयता का जनक कहे तो अत्युक्ति नहीं होगी।[55]

खरवा के राव गोपालसिंह :

राव गोपालसिंह राजस्थान के उग्र क्रांतिकारी थे। वे राठौड़ राजपूत थे। उनका जन्म 1872 ई. में हुआ था। अजमेर मेरवाड़ा में अजमेर से ब्यावर जाने वाली रेल्वे लाइन पर खरवा कस्बा स्थित है। खरवा इस्तमरारदारी ठिकाना था और कई गांव इससे लगे हुए थे। इनकी शिक्षा अजमेर के मेयो कालिज में होने पर भी उनकी आस्था भारतीय संस्कृति पर थी और उनके विचार प्रबल क्रान्तिकारी थे। उनका यह स्वप्न था कि अंग्रेजों

53– होम पोलि. जनवरी, 1918 नं. 2, जून नं. 281-307, फो. फो. पो. अक्टूबर 1918. रा अ.; सुमनेश जोशी, राजस्थान के स्वतन्त्रता सेनानी, पृ. 10

54– ए.जी जी.का पाक्षिक मेमोरेन्डम, अप्रेल 30, 1921, फो.पो., जुलाई, 1921, नं. 245, 247, रा.अ.; कान्फीडेन्शल रेकार्ड, फा.नं. 28, अ.बी.; चौधरी, रामनारायण, आधुनिक राजस्थान, पृ. 62

55– डा. राजेन्द्रप्रसाद, आत्मकथा, पृ. 256; विश्ववाणी, मार्च 1942; हरिप्रसाद अग्रवाल, आजादी के दीवाने पृ. 65–84

का राज्य समाप्त हो जाय और भारतीयों का पूर्ववत् विस्तृत और शक्तिशाली राज्य बनाया जाय। इन विचारों को भारतीय प्रबुद्ध वर्ग क्रांतिकारी व्यक्तियों एवं अपने उग्रवादी मित्रों के सम्पर्क से प्रोत्साहन मिला।[56]

1891 से अजमेर तथा पड़ौसी राज्यों में जो आर्य समाज का प्रचार प्रबल हो रहा था उससे राव साहब बड़े प्रभावित हुए थे। वे 1898 में बनारस धर्म महा मण्डल के सदस्य बने जिससे ज्ञानानन्द जी से उनका घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित हो गया। वे राजपूत हितकारिणी सभा के भी सक्रिय सदस्य थे। सन् 1900 के आस पास खरवा में आर्य समाज के सन्यासी के भाषणों से उनकी यह मान्यता बन गई कि देश का उद्धार भारतीय शिक्षा पद्धति एवं स्वराज्य प्राप्ति द्वारा संभव है। उनके विचार प्रगतिशील थे। वे चाहते थे कि राजपूत जाति के उद्धार से समाज में प्रगति आ सकती है इसलिए इस जाति को समुचित शिक्षा और सैनिक प्रशिक्षण देना चाहिये। देश भक्ति के कारण वे अंग्रेजों को घृणा की दृष्टि से देखते थे।[57]

इन विचारों की परिपुष्टि का श्रेय अरविन्द घोष के साथ 1907 की उनकी मुलाकात को जाता है जो ब्यावर में हुई और जो दामोदरदास राठी के माध्यम से संभावित हो सकी। इसी तरह अगरतल्ला में अरविन्द ने उनका परिचय कई बंगाली क्रांतिकारियों से करवाया जिसमें वीरेन्द्रपाल तथा सुरेन्द्रपाल मुख्य थे। इसी अवसर पर अमृत बाजार पत्रिका युगान्तर एवं सन्ध्या के सम्पादकों से भी उनका मिलन हुआ था। बंगाल के क्रांतिकारियों से संबंध स्थापित होने के अतिरिक्त उनका परिचय प्रसिद्ध क्रांतिकारी पंडित बालकिशन, रास बिहारी बोस आदि से हुआ जो दिल्ली, बनारस और लाहौर षड़यन्त्र से संबंधित थे। बारहठ केशरीसिंह, अर्जुनलाल सेठी व पथिक जी से राव साहब का सम्पर्क युवावस्था से से ही हो गया था। इन भारत व प्रांत के क्रांतिकारियों में सम्पर्क स्थापित हो जाने पर उनका क्रांतिकारी कार्य करने का मार्ग प्रशस्त हो गया। वे अब सशस्त्र क्रांति एवं हिंसात्मक गतिविधि से स्वाधीनता प्राप्त करने के उद्देश्य की पूर्ति में लग गये। वे राजस्थान से हथियारों का संग्रह कर उत्तर प्रदेश भेजते थे। उन्होंने 1907 में अजमेर में एक बोर्डिंग हाऊस खोला, छात्रवृतियां देना शुरू किया और युवकों को शस्त्र और शास्त्रों की शिक्षा देने का प्रबन्ध किया। कुछ व्यक्तियों को राजस्थान में उपदेश देने के लिए नियुक्त किया क्रांतिकारी युवक तैयार करते थे और उन्हें सुसंस्कृत बनाते थे। कुछ गोपनीय संदेश भेजने के लिए ये लोग सांकेतिक शब्दों का प्रयोग भी करते थे। मोड़सिंह, नारायणसिंह और लहरी की सहायता से गोला-बारूद, हथियार, तलवारें, बर्छे आदि जगह-2 इकट्ठे किये गये जो यदा कदा सशस्त्र क्रांति के लिए उपयोग में लिए जा सकते थे। उनका एक उत्साही

56-फाइल नं. 1065, 1915-25, अजमेर रेकार्ड अ. बी.; पृथ्वीसिंह महता, हमारा राजस्थान, पृ. 320

57-हिस्ट्री शीट राव गोपालसिंह, राजपूताना ऐजेन्सी, फा. नं. 1065, अजमेर रेकार्ड; फा. नं. 51, अजमेर रेकार्ड, अ. बी.

दल भी तैयार हो गया जिसने राजनैतिक हत्याकांडों में सक्रिय भाग लिया था और जोधपुर सेना से संबंध स्थापित किया था ।[58]

सशस्त्र विद्रोह की योजना और रावगोपालसिंह :

जब सरकार को राव गोपालसिंह पर कोटा व निमेज के महन्तों की हत्याओं के बारे में संदेह हो गया जिससे वह उनसे लहरी को शिक्षित करने और विष्णुदत्त को राजपूताना में बुलाने के संबंध में पूछताछ करने लगी । ए.जी.जी. ने भी उन्हें सावधान कर दिया कि वे क्रांतिकारी गतिविधियों से अपना हाथ हटालें । परन्तु उन पर इसका कोई प्रभाव न पड़ा और वे अधिकाधिक विद्रोही कार्यों में रुचि लेने लगे । जब रास बिहारी बोस ने सेना व जनता में विद्रोह की आग भड़काने की तैयारी कर ली थी तो राव साहब ने भी अपने सक्रिय सहयोग का आश्वासन दिया था और शस्त्रों को उनके पास भेजा थे । स्वयं राव साहिब ने राजस्थान में 19 फरवरी, 1915 के दिन भारतीय भागों में की जाने वाली सशस्त्र क्रांति में योगदान की तैयारी कर ली थी । संकेत मिलने पर उनकी योजना थी कि नसीराबाद के जंगल में छिपे उनके सहस्त्रों सहयोगी रेलवे लाईन को उड़ा देंगे, यातायात को ठप्प कर देगें और पुलिस चौकियों तथा नसीराबाद, नीमच आदि छावनियों के शस्त्रागारों पर कब्जा कर लेंगे ।[59]

अभाग्यवश सशस्त्र क्रांति की सूचना सरकार को मिल गई । इसलिए भारतीय सैनिकों को चौकियों से हटा दिया गया । और छावनियों पर कडे प्रबन्ध कर दिये गये । संदिग्ध सैनिकों का कोर्ट मार्शल किया गया और कई क्रांतिकारियों को गिरफ्तार कर लिया गया । परन्तु रास बिहारी बोस, पिंगले, शचीन्द्रनाथ सान्याल, प्रतापसिंह आदि फरार हो गये । जब निर्धारित समय पर संकेत न मिल सका तो राव गोपालसिंह ने शीघ्र अपने दल को तितर-बितर कर अस्त्र-शस्त्रों को गायब कर दिया । इस तरह सशस्त्र क्रांति विफल हो गई ।[60]

राव गोपालसिंह की गिरफ्तारी :

जब मनीलाल ने, जो सरकारी गवाह हो गया था, सभी विद्रोह की योजना का विवरण दे दिया तो राव गोपाल सिंह से अजमेर कमिश्नर ने उनसे केसरीसिंह, विष्णुदत्त, नारायणसिंह, वीर भारत समिति, सशस्त्र विद्रोह की योजना आदि से अपने सम्पर्क के सम्बन्ध में स्पष्टीकरण मांगा । जब उनके उत्तर से सरकार सन्तुष्ट नहीं हुई तो उन्हें 24

58—कान्फीडेन्शल रेकार्ड, फा.नं. 2, अ.बी., कान्फीडेन्शल फाईल, नं. 51, भा–1,– अजमेर रेकार्ड, अ.बो.; उर्मिला, रिवोल्यूशनरी मूवमेन्ट इन राजस्थान, पृ. 133–137.

59—हो.पो. जुलाई 1915 नं. 516–529, रा. अ.; मार्च, 1917, नं. 1-2–9; शितिश चन्द्र दास, लाइफ स्टोरी आफ रास बिहारी बसु; प्रसन्न चटर्जी, रास बिहारी बसु पृ. 584

60—कान्फीडेन्शल रेकार्ड, फा नं. 4, अ.बी; हो.पो. फरवरी, 1916, नं. 516–519 रा. अ.; सीडीशन कमेटी रिपोर्ट 1918, पृ. 154

घन्टे में खरवा, छोड़ 36 घन्टे में टाडगढ़ पहुंचने के 25 जून 1915 को आदेश दिये गये। पहले तो आदेश की अवहेलना करने और अंग्रेजी टुकड़ी का मुकाबला करने की उन्होंने योजना बनाई परन्तु उनके हितैशियों के सुझाव से वे टाडगढ़ मोडसिंह, भूपसिंह, मोहनसिंह, लक्ष्मी नारायण के साथ रवाना हो गये। वहां उन्हें तहसीलदार की निगरानी में उसी सीमा में रखा गया। अंग्रेजी सेना ने खरवा को घेर तलाशियां ली और वहां की जनता को खूब सताया। परन्तु 10 जुलाई, 1915 को राव गोपालसिंह और उनके साथी टाडगढ़ से गायब हो किशनगढ़ एक शिवालय में जा छिपे। परन्तु 12 अक्टूबर, 1915 को उन्हें बन्दी बनाया गया और 2 वर्ष के कारावास का दंड देकर अजमेर रखा गया। मार्च 1920 में आम क्षमादान के अन्तर्गत उन्हे कुछ पाबन्दियों के साथ रिहा कर दिया।[61]

अपनी रिहाई पर उनका स्वागत बड़े सम्मान के साथ किया गया। 1920 में राव साहब को अजमेर मेरवाड़ा प्रान्तीय राजनैतिक परिषद् के सभापति, द्वितीय परिषद के स्वागताध्यक्ष और 1931 के प्रथम रियासती हितैषी सम्मेलन के सभापति चुना गया। वे अच्छे लेखक और वक्ता थे। अपने आदर्शों कर्तव्य निष्ठा तथा ध्येय के प्रति विश्वास आदि गुणों के द्वारा वे बड़े लोकप्रिय थे। ऐसे देश भक्त की मृत्यु 13 मार्च, 1939 में हो गई।[62]

दामोदरदास राठी :

दामोदरदास राठी राजस्थान के कुशल व्यवसायी थे। साथ ही क्रांतिकारी विचारों के समर्थक थे। उनका विचार था कि राजस्थान में बड़े क्रांतिकारी देश भक्त मिल सकते हैं। उन्होंने बाहर से कितने ही क्रांतिकारी अपने पास बुला लिये थे और क्रांति को प्रोत्साहन देते रहते थे।

दामोदरदास राठी का जन्म 8 फरवरी, सन् 1884 ई. मारवाड़ के पोकरण नगर में हुआ था उनकी प्रारम्भिक शिक्षा एक ट्यूटर द्वारा हुई थी। फिर उन्होंने ब्यावर के मिशन हाई स्कूल से मेट्रिक परीक्षा पास की। उनको साहित्य, इतिहास, धर्म और राजनीति का अच्छा ज्ञान था। वे लोकहित के राष्ट्रीय कार्यों की ओर झुके हुए थे। 1892 ई. में उन्होंने ब्यावर में कृष्णा मिल स्थापित की थी और 15-16 वर्ष की आयु से ही उसके काम का संचालन भली भांति करते थे। श्यामजी कृष्ण वर्मा जो आगे चलकर बड़े क्रांतिकारी हुए इस मिल के मैनेजर बनाए गये थे। उनके संसर्ग से ही राठी भी क्रांतिकारी बन गये थे। दामोदरदास राठी क्रांतिकारी कार्यों के लिए खुले हाथ आर्थिक सहायता दिया करते थे। प्रथम विश्व युद्ध के समय रास बिहारी बोस और राजा महेन्द्र प्रताप ने

61–कोन्फीडेन्शल, नं. 51, भाग–2, अजमेर रेकार्ड, अ. बी.; कोन्फी, फाइल, नं. 56, भा.–1, अजमेर रेकार्ड, अ. बी.; पुलिस फाइल, नं. 106, भा. 1. राज मारवाड़, अ. बी.; हो. पो. अप्रेल 1918, मार्च 1921, नं. 9–31, रा. अ.; उर्मिला–रिवोल्यूशनरी मूवमेन्ट राजस्थान, पृ. 165–170

62–हरिप्रसाद अग्रवाल, आजादी के दीवाने, पृ. 38,47

योजना बनाई थी कि 21 फरवरी, 1915 को सारे देश में सशस्त्र क्रांति की जाए। अजमेर और नसीराबाद की सैनिक छावनियों पर कब्जा करने का काम खरवा के राव गोपालसिंह और विजयसिंह पथिक को सौंपा गया था। इस काम के लिए इन दोनों क्रांतिकारियों ने हजारों नौ जवानों को तैयार किया था और बड़ी मात्रा में बन्दूकों और कारतूसों का संग्रह कर लिया था। इसके लिए धन दामोदरदास राठी ने दिया था। दामोदरदास राठी बाल गंगाधर तिलक और अरविन्द घोष को भी एक बार ब्यावर लाए थे। राठी का सम्पर्क दादा भाई नौरोजी, पण्डित मदन मोहन मालवीय, मोतीलाल घोष (अमृत बाजार पत्रिका के सम्पादक) तथा वयोवृद्ध नेता सुरेन्द्रनाथ बनर्जी से भी था। लाला लाजपतराय से तो उनका अति निकट का सम्बन्ध था।[63]

राठी जी ने कई वाचनालय, पुस्तकालय, पाठशालाएं, छात्रावास और शिक्षा मण्डल स्थापित किए। उन्होंने ही ब्यावर का सनातन धर्म स्कूल और मारवाड़ शिक्षा मण्डल स्थापित किया था राठी सब काम हिन्दी में करते थे। उन्होंने ब्यावर में नागरी प्रचारिणी सभा की स्थापना की और अजमेर मेरवाड़ा की अदालतों में हिन्दी का प्रयोग करने के लिए आन्दोलन किया था। राठी जो स्वदेशी वस्त्रों और अन्य स्वदेशी वस्तुओं के प्रयोग पर जोर देते थे। इस प्रकार वे राष्ट्र प्रेम और देश भक्ति और अंग्रेज विरोधी भावनाओं का प्रचार करते थे। राठी जी की प्रेरणा से ही भारत के अन्य प्रान्तों में बसे मारवाड़ियों ने शिक्षण संस्थाएं, औषधालय वाचनालय, पुस्तकालय, छात्रावास और कन्या पाठशालाएं स्थापित की थी। उन्होंने हिन्दी विश्वविद्यालय को भी 11,000 रु. और भारतीय ग्रन्थ माला को प्रचुर धन राशि सहायतार्थ दी। इसके अतिरिक्त राठी जी, अर्जुनलाल सेठी, ठा. केसरीसिंह बारहठ, राव गोपालसिंह खरवा और विजयसिंह पथिक को आर्थिक सहायता करते थे। इनकी मिल में बंगाल के प्रसिद्ध पत्रकार अमृतलाल चक्रवर्ती भी काम करते थे। उनके विचार क्रांतिकारी थे उनसे भी राठी जी बड़े प्रभावित हुए थे। समय समय पर राठी जी देश के उग्र नेताओं को अपने यहां बुलाया करते थे। राठी जी का देहान्त अल्प आयु में ही अर्थात 34 वर्ष की अवस्था में ही 2 जनवरी, 1918 को हो गया। "आपकी मृत्यु का दुखद समाचार पाकर सारा भारत शोक मग्न हो गया। आपके निधन पर अनेकों स्थानों पर शोक सभाएं हुई, और सभी प्रमुख पत्रों ने आपकी अकाल मृत्यु पर अनेकों आंसू बहाये।"[64]

कुंवर प्रतापसिंह और क्रान्ति :

कुंवर प्रतापसिंह राष्ट्र प्रेमी ठाकुर केसरीसिंह के पुत्र थे। इनकी माता का नाम माणिकदेवी था जिनकी दक्षिण कुक्षि से इनका जन्म 24 मई 1893 ई. को उदयपुर में हुआ था। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा कोटा में हुई और फिर मैट्रिक तक इन्होंने दयानन्द

63– हरिप्रसाद अग्रवाल, आजादी के दीवाने, पृ. 48–50; सक्सेना शंकर सहाय– बिजोलिया का किसान आन्दोलन, पृ. 60–61

64– केला, देशी राज्य की जन जागृति पं. 26–27; सुमनेश जोशी – राजस्थान के स्वतंत्रता सेनानी, पृ 33–36; हिन्द केसरी अंक 10-1-18; हरिप्रसाद अग्रवाल, आजादी के दीवाने, पृ. 56; प्रताप, दिनांक 7-1-1918

एंग्लो वैदिक स्कूल अजमेर में पठन किया। कुछ समय इन्हें जयपुर के बर्द्धमान पाठशाला में भी प्रशिक्षण मिला था। यहां अमीरचन्द के सम्पर्क में आने से उनके राष्ट्रीय विचारों में उग्रता आ गई। अपने पिता व चाचा जोरावरसिंह की क्रांतिकारी भावना तथा कोटा केस के कारण पूरे परिवार पर ब्रिटिश शासन ने वारंट निकाला जिसके फलस्वरूप केसरीसिंह को पकड़ लिया गया और उन्हें आजीवन कारावास भुगतने का दण्ड दिया गया। इस घटना के कुछ दिन पूर्व मार्च 1914 को प्रतापसिंह और जोरावरसिंह शाहपुरा से गायब हो गये और अज्ञातवास के लिये चल दिये। इनकी सम्पत्ति व जागीर सरकार द्वारा छीन ली गई। सम्पूर्ण परिवार बेघरबार हो गया। [65]

अपनी क्रांतिकारी भावनाओं को मूर्त रूप देने के लिये कुंवर प्रतापसिंह दिल्ली चले गये और वहां रास बिहारी के दल के अमीरचन्द के दल में रहकर काम करने लगे। इनके उत्साह से प्रभावित होकर रासबिहारी ने उन्हें क्रान्तिकारी कामों के लिये प्रशिक्षण प्राप्त करने की सुविधा दी। मास्टर अमीरचन्द के निर्देशन में बसन्त कुमार विश्वास तथा अपने चाचा जोरावरसिंह के साथ 23 दिसम्बर 1912 ई. के दिल्ली बम काण्ड में इन्होंने अपूर्व भूमिका निभाई थी। जब दिल्ली में एक बहुत बड़ा दरबार हुआ था और वायसराय लार्ड हार्डिंग अपने लावाजमे सहित ठाठ बाट के साथ सजे हुए हाथी पर बैठ कर चांदनी चौक के बाजार से गुजर रहा था कि उस समय उस पर बम फेंका गया। वायसराय बाल बाल बच गये पर उनका अंग रक्षक मारा गया। इस कार्यवाही में रास बिहारी बोस, ठा. केसरीसिंह सिंह के भाई जोरावरसिंह, प्रतापसिंह, मोतीचन्द आदि व्यक्तियों पर संदेह किया गया। जांच के दौरान मोतीचन्द को सजा हुई। अपने जेल जीवन काटकर जब वह वापस सेठी के पास लौटा तो महन्त की हत्या के अपराध में उसे फांसी दी गई। जयचन्द जो संभवत: वास्तविक अपराधी था हरिद्वार में जाकर तपस्या करने लगा और जब वह वहां से भी निकल भागा तो पुलिस उसको पकड़ने में असमर्थ रही। वह चलने में इतना तेज था कि पुलिस के घुड़सवार भी उसको नहीं पकड़ सकते थे। इस केस में प्रतापसिंह तथा उनके बहनोई पकड़े गये, परन्तु सबूत के अभाव में बाद में उन्हें छोड़ दिया गया।[66]

"दिल्ली बम कांड के कुछ ही वर्षों बाद प्रताप के नाम बनारस षडयन्त्र केस के कारण गिरफ्तारी वारंट जारी हुआ। परन्तु प्रताप कुशलता से बच निकले और सिंध पहुंच गए। वहां हैदराबाद में एक डाक्टर के पास कम्पाउण्डरी करते रहे। समय मिलने पर वह पुस्तकालय जाकर क्रांतिकारी साहित्य पढ़ कर युवाओं में क्रांतिकारी विचार पैदा करने में लगे रहते थे। वहां से एक बार वे बीकानेर जा रहे थे कि बीच में ही आसानाड़ा स्टेशन पर एक विश्वासघाती स्टेशन मास्टर के धोखे से पकड़े गये। बनारस षडयन्त्र केस में मुकदमा चलाया गया। इसी मामले में उनको 5 वर्ष के कठोर कारावास की सजा दी गई

65– सीडीशन कमेटी रिपोर्ट, 1918, पृ. 184

66– होम. पो. जुलाई, 1915, नं. 134–137, 1917, नं. 1–29, 1941 नं. 1–2, रा.अ.: डिप्टी एस.पी.के बयान, फा.नं. 15, कोन्फी. रेकार्ड अ.बी.

श्रौर बरेली सेन्ट्रल जेल में रखा गया । इसी केस में रास बिहारी बोस, विष्णु पिंगले और शचीन्द्र नाथ सान्याल भी थे । विष्णु पिंगले को 23 मार्च, 1915 ई. को पकड़कर फांसी दी गई ।" 67

"गुप्तचर विभाग के निर्देशक चार्ल्स क्लीवलैण्ड को बोस की खोज में पसीना श्रा रहा था । निराश हो वे बरेली पहुंचे, क्योंकि वे जानते थे कि कुंवर प्रतापसिंह रास बिहारी बोस के ग्रत्यन्त विश्वास पात्र रहे हैं और उन्हें उनसे क्रान्ति दल के रहस्य अवश्य ज्ञात होंगे । चार्ल्स क्लीवलैण्ड ने प्रतापसिंह को रास बिहारी के बारे में सभी रहस्य प्रगट करने के लिए बहुत ही फुसलाया । उन्हें अनेक प्रकार के लालच दिए । ऊंचे पद देने, परिवार की जब्त जागीर को लौटाने, चाचा तथा पिता को दोषमुक्त करने के प्रलोभन दिए परन्तु प्रताप बिल्कुल भी विचलित नहीं हुए, तब उनकी कोमल भावनाओं को उभारने के लिए कहा गया, 'तुम्हारी माता रात दिन रोती है, वह तुम्हारी रिहाई न होने पर प्राण त्याग देगी । अतः क्रांति दल का भेद बतलाकर तुम स्वयं की तथा अपनी माता की जान बचा सकते हो"

"शायद क्लीवलैण्ड साहब यह नहीं जानते थे कि वे वीर प्रतापसिंह उस गौरवशाली वंश का युवक था जिसने समस्त जीवन मातृ भूमि की स्वतंत्रता के लिए अर्पित कर दिया था । प्रताप ने क्लीवलैण्ड को जो उत्तर दिया वह उनके महान उज्जवल चरित्र का प्रतीक है । उनका उत्तर था "तुम कहते हो कि मेरी माता मेरे लिए दिन रात रोती है । मेरी मां को रोने दो । मेरी मां को हंसाने के लिए हजारों माताओं को रुलाना नहीं चाहता ! यदि मैं मेरे साथी क्रांतिकारियों की माताओं को रुलाने का कारण बना तो वह मेरी मृत्यु होगी और मेरी मां के लिए घोर कलंक होगा ।"68

"उत्तर सुनकर क्लीवलैण्ड हतप्रभ रह गये और उन्होंने डायरी में लिखा, = मैंने आज तक प्रतापसिंह जैसा वीर और विलक्षण बुद्धि युवक नहीं देखा । उसको सताने में हमने कोई कसर नहीं रखी । परन्तु वाहरे धीर वीर, वह तनिक भी विचलित नहीं हुआ । गजब का कष्ट सहने वाला था, हमारे सभी उपाय बेकार गये, हम सभी हार गये । उसी की बात अटल रही । वह विजयी हुआ ।"69

बरेली जेल में अमानुषिक यातना हंसते हंसते भुगत कर स्वतंत्रता प्रेमी प्रताप का निधन 7 मई, 1913 ई को हो गया । भारत के स्वतन्त्रता संग्राम के इतिहास में वे अपनी अमिट छाप छोड़ गये हैं इसमें कोई सन्देह नहीं ।

67– राजस्थान पत्रिका, 4 मई, 1986, पृ. 4– किशोर क्रांतिकारी प्रतापसिंह, श्री गोवर्धनलाल पुरोहित का लेख; उ.फो.पो. 1917, 1920, नं. 471–487

68–गोवर्धनलाल पुरोहित–किशोर क्रांतिकारी प्रतापसिंह, राजस्थान पत्रिका, 4 मई, 1986, पृ. 4

69– हरिप्रसाद अग्रवाल, आजादी के दीवाने, पृ. 29; महता–हमारा राजस्थान, पृ. 323–327

राजस्थान में अन्य क्रांतिकारी घटनाएं–जयपुर

सन् 1915 में जयपुर के क्रांतिकारी नवयुवकों ने वहां के रेजीडेन्ट और प्रधानमंत्री के विरुद्ध एक पर्चा बांटने का निश्चय किया। उस समय महाराजा माधोसिंह जयपुर के राजा थे। उस समय खुले तौर पर राजनैतिक प्रचार नहीं हो सकता था इसलिए यह पर्चा साइक्लोस्टाइल पर छापा गया और अर्द्ध रात्रि को वितरण किया गया। उस समय आंधी चल रही थी और घोर अंधेरा था। प्रातः होते ही शहर में सनसनी फैल गयी। कई जगह यह पर्चा चिपका हुआ था। लोगों के झुण्ड पर्चा पढ़ने लगे। पुलिस को यह पता नहीं लगा कि यह पर्चा किसने छापा है। दो मास बाद साइक्लोस्टाइल एक वकील के यहां से ढूंढ लिया गया। पुलिस ने आगे की गतिविधि जानने की बड़ी कोशिश की परन्तु कोई भेद नहीं खुला। इसी अर्से में ठा. केसरीसिंह बारहठ का पुत्र प्रतापसिंह भी जयपुर आये थे (1915) प्रतापसिंह के साथ शचीन्द्र सान्याल भी था। पर्चा रामनारायण चौधरी ने लिखा और उमरावमल जैन ने उसे साइक्लोस्टाइल किया एवं व्यंजन विलास कंपनी के मैनेजर राम छव ने उसे बांटा था। छानबीन के फलस्वरूप उमराव मल जैन को गिरफ्तार कर लिया गया फिर भी उसने अन्य सहयोगियों का पता नहीं दिया। एक अर्थ में क्रांतिकारी भावना का उद्देश्य अवश्य पूरा हो गया।[70]

हाड़ौती :

कोटा में इस शताब्दी के आरम्भ में कोई क्रान्ति की लहर नहीं पहुँची थी। बंगाल के आतंकवाद की खबरें यू.पी. से आने जाने वालों की जबानी शिक्षित समाज में फैलती थी। परन्तु उस समय शिक्षित वर्ग बहुत सीमित था। लगभग चार प्रतिशत लोग लिखना पढ़ना जानते थे और वह भी बहुत साधारण। जब महन्त प्यारे राम की हत्या का मुकदमा चला और उसमें केसरीसिंह बारहठ, हीरालाल जालोरी, लक्ष्मीलाल भटनागर, डा. गुरुदत और एक दो व्यक्ति और फंस गये तो क्रान्ति की कुछ चर्चा होने लगी थी। इसका कारण यह था कि उपरोक्त व्यक्ति प्रतिष्ठित और लोकप्रिय थे। जनता उनके साथ सहानुभूति थी। जब इस्तगासे के बयान हुए तो उनकी चर्चा शहर में और फैली और लोगों के विचारों को जानने के लिए ब्रिटिश भारत से नजाने कितने ही गुप्तचर कोटा में आ पहुंचे प्रत्येक मुहल्ले में एक दो गुप्तचर साधु वेश में, राजगीर के वेश में, अपाहिज के वेश में या पंडित या फकीर के वेश में दिखाई देते थे। जानने वाले जान जाते थे कि ये लोग कौन हैं और क्यों मुहल्ले में चक्कर काट रहे हैं। इस्तगासे के वकील मूलचन्द को तथा सरकारी गवाह लक्ष्मीलाल भटनागर को लोग चुपके चुपके गालियां देते थे और उसकी निन्दा करते थे। अभियुक्त के वकील नवाब हामिदअली बेरिस्टर की जो कोटा केस के लिए लखनऊ से आये थे जनता की दृष्टि में इज्जत थी। उन्होंने पुलिस के प्रपंचों और कुत्सित उपायों का खूब उद्घाटन किया था। इससे यह स्पष्ट था कि लोगों की सहानुभूति अभियुक्तों के साथ थी। जब केसरीसिंह बारहठ आदि को लम्बे कारावास की सजा सुनाई गई तो मुकदमें की बातें तो समाप्त हो गई परन्तु उनके इष्ट मित्र उनके परिवार के साथ सहानुभूति प्रगट किया करते थे। केसरीसिंह के कुटुम्ब में उनके रिश्तेदार

70–चौधरी रामनारायण, वर्तमान राजस्थान, पृ. 24–45

कविराजा दुर्गादान, जागीरदार कोटड़ी, के परिवार और हीरालाल जालोरी के घर तथा उनके भाई मुंशी मोहूलाल के यहां आने जाने वाले लोग क्रान्ति की बातें करते थे अन्यथा क्रांति का अध्याय कुछ समय के लिए समाप्त हो चुका था।[71]

प्रथम विश्व युद्ध के अन्त में जब केसरीसिंह बारहठ हजारी बाग जेल से छूट कर 1919 कोटा आये तो वे कविराजा दुर्गादान जागीरदार कोटड़ी के यहां ही ठहरे। उनके पास निर्वाह का कोई साधन भी नहीं था। इसलिये वे अपनी पत्नी के भतीजे कविराजा साहब के ही लम्बे अर्से के लिये मेहमान बन गए। उनके आते ही कोटड़ी पुनः राजनैतिक चर्चा का केन्द्र बन गया। अब समय भी बहुत बदल चुका था और ब्रिटिश भारत में ऐसी बड़ी बड़ी घटनाएं हो चुकी थीं जिनके कारण वातावरण राजनैतिक तनाव से परिपूर्ण था. इसका प्रभाव कोटा नगर में पहुंचे बगैर नहीं रह सकता था। अब कोटा में उत्तर प्रदेश से निकलने वाले उग्र विचार धारा के समाचार पत्र भी आने लगे थे। इनमें "प्रताप" "राजस्थान केसरी और और भविष्य" मुख्य थे जिनमें राजस्थान की हलचल के समाचार भी छपा करते थे। इसलिये कोटा, बूंदी तथा बारां आदि कस्बों में एवं झाला-वाड़ में अब 100–200 व्यक्ति ऐसे थे जो राजनैतिक क्षेत्र में सक्रिय तथा उनके विचार राजनैतिक बन गये थे और स्वराज्य के आन्दोलन से सबकी सहानुभूति थी। कोटड़ी में केसरीसिंह से मिलने के लिये हीरालाल जालोरी, गोपाललाल कोटिया, अब्दुल्ला साईकिल वाला, हरिभाई किंकर, अभिन्नहरि, गोरीलाल गुप्ता, नयनुराम, अभिन्नहरि, सेठ मोती-लाल, काला बदल और कई अन्य व्यक्ति प्रायः आया करते थे। उन्हीं दिनों में विजय-सिंह पथिक भी कोटड़ी आया जाया करते थे। अर्जुनलाल सेठी भी जेल से मुक्त होने के पश्चात् दो मास तक कोटड़ी में रहे थे। यह सब कोटा में कविराजा दुर्गादान के मेहमान रहा करते थे। राजनैतिक चर्चा के साथ साथ कविराजा दुर्गादान के यहां गोष्ठियां भी हुआ करती थीं।[72]

इस प्रकार 1915 के पश्चात् राजस्थान की क्रांति का प्रथम चरण समाप्त होता है। इसकी अत्यधिक गोपनीयता ने इस आन्दोलन की योजनाओं को जनमानस तक पहुंचाने में सक्षमता नहीं अर्जित की जिससे साधारण जनता को इस ओर सक्रिय योगदान के लिए नहीं सम्मिलित कर सकी। अंग्रेजों की तुलना में विद्रोही दल के पास न तो धन था और न शस्त्रों का पूरा संग्रह था। केवल उत्साह और लगन इनके अभाव में अपर्याप्त साबित हुए। जहां ठाकुर केसरीसिंह, राव गोपालसिंह, अर्जुनलाल सेठी, भूपसिंह, दामोदरदास राठी देशाभिमान के लिए आत्मोत्सर्ग के लिए तैयार थे वहां शिवनारायण रामकरण और माणकचन्द आदि जैसे मुखबिरों ने इनकी योजनाओं को शत्रुओं के हाथ सौंपकर इन देश भक्तों के प्रति अन्याय करने में कोई कसर न रखी। फिर भी यह स्वीकार करना पड़ेगा कि क्रांति का यह प्रथम चरण आगे आने वाले कृषक आन्दोलन अथवा भविष्य में होने वाले विद्रोह और विद्रोहियों के लिए एक आदर्श प्रस्तुत करने का माध्यम बना। जब तक प्रथम चरण के विद्रोही नेता जीवित रहे वे सर्वदा क्रांति के आदर्शों से जनता को प्रोत्साहित करते रहे और भावी पीढ़ी का मार्ग प्रदर्शन करते रहे।

71–डा. मथुरालाल के संस्मरण के आधार पर

72–रामनारायण चौधरी, वर्तमान राजस्थान, पृ. 52–59

वैसे सरकारी पुलिस विभाग एवं खुफिया पुलिस क्रांतिकारी तत्वों पर तथा शैक्षणिक संस्थाओं पर 1915 से कड़ी निगरानी रखने लगे और राजस्थान के नरेश हर संभव प्रयत्नों से इनकी गतिविधियों को कुचलते रहे तथा समाचार पत्रों पर पाबंदी लगाते रहे। तथापि जनता की निष्ठा विद्रोहियों के प्रति उत्तरोत्तर बढ़ती गई। गुप्त रूप से प्रबुद्ध वर्ग पाबन्दी लगाये गये समाचार पत्रों—जैसे प्रताप, राजस्थान केसरी, तरूण राजस्थान आदि चाव से पढ़ता था। कुछ एक ठाकुर, राजा और महाराजा भी क्रांतिकारियों की गतिविधि से सहानुभूति रखते थे। [73]

इधर महात्मा गांधी के सत्याग्रह आन्दोलन ने देश की क्रांतिकारी मनोवृति को दूसरी ओर मोड़ दिया जिसके फलस्वरूप उग्र क्रांतिकारियों के दृष्टिकोण में गांधीवादी विचारधारा की ओर झुकने लगे। छोटे लाल जैन, रामनारायण चौधरी, पथिक आदि नेताओं ने क्रांति की धारा को कार्य प्रणाली को नया स्वरूप देने का प्रयत्न किया। फिर भी क्रांति की विचार धारा अपने नये स्वरूप में प्रवाहित होती रही। इस प्रवाह में गति उत्पन्न करने में भगतसिंह, राजगुरू और बटुकेश्वर की फांसी ने आग में घी डालने का काम किया। इससे देश का उग्रवादी युवादल फिर से भड़क उठा। इसकी चिनगारी राजस्थान तक पहुंची और अजमेर और उसके निकटवर्ती इलाके इसकी लपेट में आ गए। [74]

अजमेर तथा पुष्कर की दीवारों को उग्रवाद भड़काने के नारों से भर दिया गया। यत्र-तत्र "भगतसिंह जिन्दाबाद" एवं "खून का बदला खून से" आदि नारों से दीवारें रंग दी गई" कई क्रांतिकारी दलों का संगठन किया गया। एक रेल्वे वर्कशोप के कर्मचारी ने जिसका नाम चिरंजीलाल शर्मा था सन् 1931 में क्रांतिकारी दल को स्थापना की वह बम बनाने की योजना में लग गया। इसी प्रकार ज्वाला प्रसाद शर्मा ने एक क्रांतिकारी दल को बनाया जिसके सदस्य रमेशचन्द्र व्यास, रामचन्द्र बापट, लक्ष्मीनारायण, जमालउद्दीन, चन्द्रभान, हेमचन्द्र उर्फ रामसिंह, राधे बिहारी, धर्मेन्द्र शिवहरे, मूल चन्द, बाल किशन कौल आदि थे। स्वामी कुमारानन्द और बाबा नृसिंह दास आदि ने भी अपना एक दल बनाया जिसकी विचार धारा क्रांति के अनुकूल थी। इन दलों की गुप्त मन्त्रणा होती थी और उनके सदस्यों को बन्दूक, पिस्तोल आदि शस्त्रों के चलाने का प्रशिक्षण दिया जाता था। हटूंडी तथा अनासागर के निकटवर्ती पहाड़ियों में इनके केन्द्र थे जहां क्रांति की योजनाओं के लिए इनके सदस्य एकत्रित होते थे। अर्जुनलाल सेठी और विजय सिंह पथिक इन दलों के मार्गदर्शक थे। [75]

73-कोन्फीडेन्शल फाइल, नं. 129, भा. 2, जयपुर रेकार्ड, अ. बी.; फा. नं. 18, 1932 रा. अ.; चूडगर, इंडियन प्रिन्सेस अंडर ब्रिटिश प्रोटेक्शन, पृ. 214-15: नृसिंह द्वारा राजस्थान की पुकार पृ. 51-52

74-अजमेर रेकार्ड, 1931, अ.बी., राजस्थान संदेश, दि. 17, अगस्त, 1931

75-पाक्षिक रिपोर्ट, फो.पो. 1921, नं. 66-67, नं. 121; अजमेर रिकार्ड, फा. नं. 43, 1931, अ बी; हो डि. फा. नं. 18,1933, रा.अ.; सुमनेश जोशी, स्वतन्त्रता संग्राम के सेनानी, पृ. 380,81,88; नृसिंहदास, राजस्थान की पुकार, पृ. 29-30 115-125, बाबा नृसिंहदास, पार्टी प्लेज, पृ. 13-14,; उर्मिला गुप्ता, रिवोल्यूशनरी मूवमेन्ट इन राजस्थान, पृ. 214-218; रामनारायण चौधरी, वर्तमान राजस्थान, पृ. 163-166

अजमेर के कमिश्नर की हत्या का प्रयास :

पं. ज्वाला प्रसाद, रामचन्द्र नरहरि बापट और उनके साथियों ने अजमेर के चीफ कमिश्नर जिपसन् की हत्या करने की योजना 25 अप्रेल 1932 ई. में बनाई। इसका कारण यह था कि चीफ कमिश्नर बंगाल से लाए गए आतंककारियों पर जिन्हें देवली में रखा था कड़ी यातना दिलवा रहा था। ज्वाला प्रसाद के साथी रामचन्द्र बापट ने चीफ कमिश्नर पर दिन के 11 बजे कचहरी में पिस्तोल चलाया, परन्तु वह विफल हो गया। फिर भी इस घटना से सारे नगर में तहलका मच गया। बापट को गिरफ्तार कर लिया गया और उसे धारा 307 के अन्तर्गत 1932 को 10 वर्ष का कारावास का दण्ड दिया गया।[76]

गवर्नमेंट कालेज के चपरासी से रुपया लूटने का प्रयास :

धन के अभाव की पूर्ति के लिए पं. ज्वाला प्रसाद और उनके साथियों ने जिनमें रामचन्द्र बापट जगदीशदत्त मदन गोपाल, हेमचन्द्र भी थे ने एक योजना बनाई कि जब कालेज का चपरासी इम्पीरियल बैंक से अध्यापकों का वेतन लेकर आवे तो उसको लूट लिया जाय। ज्वाला प्रसाद के हाथ में पिस्तोल थी, जिससे डरा कर चपरासी का थैला छीन कर बापट और मदनगोपाल को भाग जाना था। परन्तु चपरासी के हाथ से थैला नहीं छीना जा सका और पुलिस को देखते ही ज्वाला प्रसाद और उनके साथी भाग गये। इस प्रकार यह योजना भी विफल हो गई।[77] आगे धन प्राप्ति के लिए सेठ सूरजमल घीया के घर जयपुर और शेखावाटी में डाका डालने की योजनाएं बनाई गई पर खुफिया पुलिस द्वारा पता लग जाने से वे विफल हुई।[78]

वाईसराय की हत्या का प्रयास और मेओ कालिज का बम केस :

1934 के प्रारम्भ में पं. ज्वाला प्रसाद ने योजना बनाई कि जब वायसराय बीकानेर आये तब उसको मार दिया जाए। ज्वाला प्रसाद ने दो रिवोल्वर प्राप्त किये और रामचन्द्र बापट को साथ लेकर वह बीकानेर गये। परन्तु वहां उन्होंने देखा कि वायसराय की सुरक्षा के लिये बड़ा कठोर प्रबन्ध था। इसलिये वह षडयंत्र भी विफल हो गया। वायसराय की हत्या का अन्य प्रयत्न पुन: उसी वर्ष किया गया। पर ज्वाला प्रसाद को मालुम हुआ कि जब वायसराय अजमेर होकर गुजरेगा तो संदिग्ध लोगों की तलाशी ली जावेगी और उसके पास हथियार मिलेंगे। इसलिये उसने अपने अस्त्र शस्त्र तथा कारतूस एक मकान में जो मैयो कालेज से कुछ दूरी पर खाली पड़ा था, छिपा दिये और मकान के दरवाजे में ताला लगा दिया। परन्तु किसी प्रकार पुलिस को उसका पता लग गया और फतहचन्द तथा नारायण चपरासी को गिरफ्तार कर लिये गये और उन्हें डेढ़ वर्ष का कारावास का दण्ड दिया गया।[79]

76–रा. अ. फा. ई. नं. 18/7/32 पोलेटिकल 1932, होम पोलेटिकल पुलिस रिपोर्ट फा इ. नं. 44/ 7, 39 हो. पो.

77–हो. पो. जगदीशदत्त के बयान, 1 जुलाई 1933, पुलिस के समक्ष, फाईल नं. के. डब्ल्यू. 44/63 रा. अ. के. एस. सक्सेना, पोलिटिकल मुवमेन्ट एण्ड अवेकनिंग इन राजस्थान, पृ. 221

78–हो. पो. फा. नं. 44, 1935

79. हो पो. फाइल नं. के. डब्ल्यू. 44/63/35, रा.अ., फतेहचन्द के बयान, फा.नं. 44, 1935, रा.अ. : सक्सेना —पोलिटिकलमूवमेन्ट, पृ. 222

पुलिस अफसर डोगरा पर प्रहार :

सरकार ने क्रान्तिकारियों की इन गतिविधियों पर काबू पाने के लिये पंजाब के उप अधीक्षक प्राणनाथ डोगरा को अजमेर में नियुक्त किया। उसने शंभूनारायण नामक चौदह वर्ष के बालक को संदेह में गिरफ्तार कर कड़ी यातना से मरवा दिया। क्रांतिकारियों को उसकी हत्या से बड़ा क्षोभ हुआ। बदले की भावना से उन्होंने भी उसकी हत्या की योजना बनाई इस कार्य के लिये 4 अप्रेल, 1935 नियत करके यह काम ज्वाला प्रसाद के सुपुर्द किया। ज्वाला प्रसाद ने रामसिंह को भी अपने साथ लिया। योजना इस प्रकार बनाई गई कि डोगरा को सिनेमा दिखाने के लिये लाया जाय और सिनेमा समाप्त होने के पश्चात् वह जब घर जाने लगे तो उसको गोली से मार दिया जाए। इसके अनुसार डोगरा को सिनेमा ले जाया गया। जब डोगरा सिनेमा देख कर वापस जा रहा था तो रास्ते में ज्वाला प्रसाद और रामसिंह छिपे हुए थे। जैसे ही वह उसके पास से निकला कि रामसिंह ने डोगरा पर गोली चलाई तो वह साईकल से गिर पड़ा और चिल्लाने लगा। ज्वालाप्रसाद ने अपने कुछ साथियों को छिपाया और उन्हें कोटा के मार्ग से आगरा पहुंचा दिया। परन्तु रामसिंह को पुलिस ने पकड़ लिया। फिर ज्वालाप्रसाद को भी अजमेर में गिरफ्तार कर लिया गया। इधर रामसिंह और मांगीलाल नामक व्यक्ति पर डोगरा की हत्या का प्रयास करने के जुर्म में मुकदमा चलाया गया। जिसमें मांगीलाल छूट गया पर रामसिंह को 7 वर्ष का कारावास हुआ और ज्वालाप्रसाद को भी नजरबंद कर दिया। उसे 29 मई 1935 तक अर्थात् एक मास तक जेल में रख फौजदारी की हवालात में भेज दिया गया। हवालात से ज्वाला प्रसाद ने अपने भाई कालीचरण से एक सिगरेट की डिब्बी और सिगरेट मंगवाई जिसका आशय रिवोल्वर से था। फिर ज्वालाप्रसाद ने खुफिया पुलिस के डिप्टी सुपरिन्टेन्डेन्ट मुमताज हुसैन को धमकी भरा पत्र लिखा कि गिरफ्तार किये गये लोगों को तुरन्त बिना शर्त छोड़ दिया जाए, अन्यथा उसकी भी वही गति होगी जो डोगरा की हुई है।[80]

तब राजस्थान के ए.जी.जी. ने भारत सरकार से लिखा पढ़ी करके ज्वालाप्रसाद को दिल्ली की जेल भिजवा दिया। 1938 में ज्वालाप्रसाद को जेल से मुक्त कर दिया गया। परन्तु यह शर्त रखी गई कि हम किसी भी क्रांतिकारी कार्य में शामिल नहीं होगा। ज्वालाप्रसाद ने यह शर्त नहीं मानी और भूख हड़ताल कर दी। उसने महात्मा गांधी को भी इस बात की सूचना दे दी। जब गांधीजी ने बीच बचाव करके उसको छुड़वा लिया। जब वह दिल्ली से अजमेर पहुंचा तो रेल्वे स्टेशन पर उसका विशाल जन समूह ने भव्य स्वागत किया। 22 मार्च 1939 को ज्वालाप्रसाद को बधाई देने के लिए एक बड़ी सभा का आयोजन किया गया। जयनारायण व्यास उसके अध्यक्ष थे। इसमें कांग्रेस के हितैषियों ने बड़े उबलते हुए भाषण दिए। एक वक्ता, बाबा नृसिंहदास ने लोगों से अपील की कि वे पं. ज्वालाप्रसाद का अनुकरण करें और देश को आजाद करें। क्रांति समाप्त होने के पश्चात भी ज्वालाप्रसाद अपना कार्य करते रहे। इसी वर्ष द्वितीय महायुद्ध

80–पोलेटिकल, हो.पो. फाइल नं. एच.डब्ल्यू.. 244/44/63/35, रा.अ.

का आरम्भ हो गया और ब्रिटिश में ही नहीं राजस्थान में भी सत्याग्रह बंद कर दिया गया।[81]

अजमेर में पुन: हलचल-ज्वाला प्रसाद का जेल से भागना :

अजमेर में 26 जनवरी 1940 को स्वतन्त्र दिवस मनाने के प्रश्न को लेकर पुन: उपद्रव प्रारम्भ हो गये। रेलवे वर्कशाप में भी हड़ताल हो गई। इनको लेकर ज्वाला प्रसाद को अगस्त 14 में पकड़ लिया गया। जब 1942 में ज्वाला प्रसाद जेल में था उस समय महात्मा गांधी ने भारत छोड़ो आंदोलन शुरू किया। ज्वालाप्रसाद ने जेल से भागने की योजना बनाई। 1944 में वह सफलता पूर्व भाग निकला। उसने जयपुर, बम्बई, इंदौर आदि नगरों में छिपकर पुलिस से अपनी जान बचाई। जब भारत स्वतन्त्र हो गया तब वह प्रगट हुआ।[82]

ज्वाला प्रसाद के कारावास के पश्चात् क्रांतिकारी संगठन समाप्त हो गया। बढ़ते हुए गांधी जी के प्रभाव से ज्वाला प्रसाद कांग्रेस में शामिल हो गया। पथिक अजमेर से आगरा चले गये। अर्जुनलाल सेठी का 1941 में देहान्त हो गया। उसी वर्ष ठाकुर केसरीसिंह का भी देहान्त हो गया। इस प्रकार क्रांतिकारियों का दल बिखर गया।

समीक्षा-

यह ठीक है कि इन क्रान्तिकारियों को ब्रिटिश सरकार की सत्ता के मुकाबले सफलता नहीं मिली परन्तु उनका एक अर्ध शताब्दी का प्रयत्न पूर्ण विफल भी नहीं कहा जा सकता। किसी घटना को सफलता व असफलता के नाप दण्ड से नहीं आंकना चाहिये। उस घटना की अन्तर आत्मा को टटोल कर उसमें निहित नि: स्वार्थ भावनाओं और देश की आजादी की लगन को देखना उपयुक्त होगा। राजस्थान के ये सभी क्रान्तिकारी अपने उद्देश्य में सच्ची भावना से प्रेरित थे। उन्हें देश की दासता, विदेशी सत्ता और नरेशों की अकर्मण्यता से क्षोभ था। वे अपने देश वासियों को इस स्थिति से मुक्ति दिलाना चाहते थे। यदि इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए अपनाए गए ढंग परिस्थितिवश कारगर नहीं हुए तो क्रान्ति को असफल कह कर टाला नहीं जा सकता। क्रान्ति के साथ साथ महात्मागांधी का सत्याग्रह और असहयोग आन्दोलन जनमानस को प्रभावित कर रहा था और ब्रिटिश सत्ता को कुंठित करता जा रहा था। इस प्रवाह में सशस्त्र क्रान्ति न टिक सकी। स्वयं कई क्रांतिकारी महात्मा जी की नीति से प्रभावित हो गये। अलबत्ता इन क्रान्तिकारियों के कारनामे आगे आने वाले कृषक और आन्दोलन तथा कांग्रेस के कार्यकर्त्ताओं के लिए प्रेरणा के स्रोत बने। जनता पर भी इस क्रांति का प्रभूत प्रभाव पड़ा। इस दृष्टि से क्रांति सर्वथा सफल हुई।

81- मांगीलाल व रामसिंह के बयान, 7 अप्रेल, 3 मई, 1935 पत्र चीफ कमिश्नर का भारत सचिव; ज्वाला प्रसाद का अपने भाई को पत्र, भारत सरकार से 5 अक्टूबर, 35 के आदेश फा नं. 44/63/35 हो. पो ; गोपनीय रिपोर्ट सुपरिन्टेन्डेन्ट अजमेर फा.नं. 44/7/38; के.एस.सक्सेना, पोलिटिकल मूवमेंट एण्ड अवेकनिंग इन राजस्थान पृ. 224-227

82- फाइल नं. 94/17/41, पो. 1941, फा. नं. 3/9/44, पो.हो. पत्र नं. 20 चीफ कमिश्नर का होम विभाग को, जून 1944, रा.अ.; सुमनेश जोशी, राजस्थान में स्वतन्त्रता सेनानी पृ. 388-389
बाबा नरसिंहदास, डोंगरा शूटिंग केस, पृ. 8, 10, 35

अध्याय 8

कृषकों का अत्याचार के विरुद्ध आन्दोलन (1913-1947)

कृषक और आन्दोलन की पृष्ठभूमि :

राजस्थान, भारत के अन्य प्रदेशों की भांति कृषि प्रधान प्रान्त है जिसमें कृषकों का सीधा सम्बन्ध राज्य से या जागीरदारों से रहा है। परम्परा के अनुसार कृषक और राज्य या जागीरदारों के सम्बन्ध मधुर थे। वे अपनी उपज का कुछ भाग अपने स्वामी को उपहार के रूप में देते थे और आवश्यकता पड़ने पर अपनी सेवाएं सहर्ष उन्हें समर्पित करने में अपना गौरव समझते थे। राज्य या जागीरदार उन्हें अपना वात्सल्य प्रेम देकर प्रसन्न रखते थे और युद्ध के अवसर पर उनकी हर प्रकार की सुरक्षा की व्यवस्था कर उनकी सहायता करते थे।

परन्तु राज्यों का ईस्ट इंडिया कंपनी से सम्बन्ध स्थापित होने के पश्चात स्थिति में एक नया परिवर्तन आया। इधर राजे-महाराजे तो अंग्रेजों की छत्र-छाया में मौज शौक का जीवन बिताने लगे और उधर उनके सामन्त भी अपने स्वामियों का अनुसरण करने में पीछे न रहे। जब अंग्रेजों को एक निश्चित खिराज राज्यों को देना होता था तो उन्होंने अपने जागीरदारों से भी सेवा के बदले निश्चित कर (छटुंद) लेना आरंभ कर दिया। सामन्त अपना निश्चित कर देने के बाद पूर्णतः निश्चित होते गये और वे अपनी जागीर में स्वच्छन्द हो गये। शनैः शनैः ये स्वच्छन्दता निरंकुशता में परिणित होती गई। क्रमशः यह कृषकों का ऐच्छिक उपहार के रूप में बदल गया और एक शोषण की कुत्सित प्रणाली बन गई।

ज्यों ज्यों जागीरदार के खर्चे और निरंकुशता बढ़ती गई त्यों त्यों कृषकों का आर्थिक भार बढ़ता गया। लगान के अतिरिक्त कई लागतें ली जाने लगी जिनकी संख्या 100 से अधिक तक जा पहुंची। यदि जागीरदार के यहां विवाह, जन्म-मृत्यु, त्यौहार आदि का अवसर आता तो इन्हें विशेष लागतों की अदायगी करनी पड़ती थी। गढ़ बनवाने, कवेलू ढकने, जेवर बनाने, घास काटने, हल चलाने, शिकार पकड़ने आदि विषयों का ठिकाने का खर्च कृषकों और दस्तकारों पर था। कपड़े सीना, जूते बनाना, रंगाई करना आदि सभी काम व्यवसायियों को जागीरदार के लिए बिना पारिश्रमिक के करना पड़ता था। शिकार के अवसर पर या सरकारी अधिकारियों के दौरे पर किसान ठंडी रात में भी चौकसी के लिए लगाये जाते थे। उनकी गाड़ियां, हल खेत के औजार, यहां तक की महिलाएं और बच्चे राजकीय उपयोग के लिए निर्धारित थे जिनका बिना कीमत दिये काम में लेना जागीरदार का विशेष अधिकार था। ठिकानेदार लागबागों को अमानवीय ढंग से वसूल करता था। फसल की बुवाई हो या कटाई, शादी हो या मरण, दुष्काल हो या महामारी ठिकाना बिना किसी विवेक के कर वसूली करता था। इसके अतिरिक्त बेगार प्रथा से वह

इतना त्रसित था कि उसके न करने पर उसे कठोर यातना का भागी होना पड़ता था। न्याय प्राप्त करने की किसान कल्पना भी नहीं कर सकता था।[1]

ऊपर के अध्याय में क्रांतिकारियों की गतिविधि का वर्णन किया गया है। ये क्रांतिकारी कृषकों के बढ़ते हुए असंतोष से जुड़ गए और उसमें एक नये जीवन का संचार कर दिया। कृषकों का असंतोष स्वभावतः जनता का असन्तोष था और उनकी आवाज में अपनी आवाज मिलाना युक्ति एवं नीति संगत भी था। अतएव क्रांतिकारियों एवं कृषकों के सहयोग ने एक ऐसे आन्दोलन को जन्म दिया जिसमें जनता के क्रन्दन की आवाज थी। ये आन्दोलन बिजोलिया, बेगूं, बूंदी, सीकर, शेखावाटी, मारवाड़, बीकानेर आदि स्थानों में केन्द्रित हो गया। इन आन्दोलनों के गर्भ में ठिकानों द्वारा किसानों का आर्थिक शोषण था, जिनमें बिजोलिया आन्दोलन सबसे अग्रणी और प्रेरणादायक कहा जा सकता है।

बिजोलिया का कृषक आंदोलन (1913-1922, 1927-1941)

बिजोलिया मेवाड़ का एक प्रथम श्रेणी का जागीरी इलाका था। यहां के उमराव रावजी कहलाते थे, जिन्हे महाराणा के दरबार में 16 सरदारों में बैठक मिलती थी और प्रथम श्रेणी के मजिस्ट्रेट के अधिकार प्राप्त थे। यह प्रदेश विन्ध्याचल के ऊंचे पठार पर बसा हुआ लगभग 259 वर्ग कि. मि का छोटे बड़े 83 गांवों का एक समूह था। मुख्य कस्बे की बस्ती 4 हजार और कुल इलाके की कोई 12000 थी। इस इलाके को ऊपर-माल अर्थात ऊंचा पठार एवं उर्वरा भूमि कहते हैं।[2] यहां का किसान जो धाकड़जाति का था आर्थिक शोषण से दुखी था। उसे उस पर लादी गई लागतों का भान था। मध्यप्रदेश व उत्तरी भारत की सीमा के सन्निकट होने से वे लोग जागरूक थे। लागते इतनी कठोरता से वसूल की जाती थी और इतनी अधिक थी कि यहां का किसान दमन और शोषण रहा था। इस समूची स्थिति के विरूद्ध पहला विस्फोट बिजोलिया में हुआ। जब 1897 ई. में गिरधरपुरा के धाकड़ गंगाराम के पिता की मृत्यु के अवसर पर अनायास सभी कृषक एकत्रित हुए तो उनके सयानों ने ठिकाने के अत्याचार का प्रतिकार के उपाय पर विचार कर बेरीसाल के नानजी पटेल और गोपाल निवास के ठाकरी पटेल के नेतृत्व में एक दल महाराणा फतेहसिंह को कष्ट की गाथाओं से परिचित कराने के लिए भेजा। उनके 6 या 7 माह के प्रयत्न के फलस्वरूप महाराणा ने एक सहायक माल हाकिम हमिद हुसेन को मामले की जांच के लिए नियुक्त किया। उसने कुछ लागतों को हटाने की सिफारिश की। ठिकाने ने उस समय तो कुछ लागतों को हटाने का आदेश दिया परन्तु उसने साम, दाम, दण्ड भेद आदि उपायों से दमन चक्र को बनाये रखा। बल्कि राव पृथ्वीसिंह ने

1. उदयपुर का कान्फीडेन्शल रेकार्डस, फा. नं. 31, ए, 1921-22, अ. बी.; लगान बिजोलिया, फा. नं. 10, कान्फी. रेकार्ड, डि. उदयपुर, अ. बी.; बोम्बे क्रोनिकल, 12 मई, 1942, पृ 4; ठाकुर देशराज पृ. 231-45

2- राजपूताना गजेटियर्स, भाग-2, ए. पृ. 99-100; पट्टा बिजोलिया, फा. नं. 124; बस्ता नं. 13, अ.बी.; एनल्स, भा-2, पृ. 743-45

पुरानी लोगों को बदस्तूर बनाये रखा और महाराणा के तलवार बन्दी दिये जाने के बहाने कुछ एक नये कर वसूल करने शुरू कर दिये ।[3]

इधर ठिकाने की भेद व दमन नीति ने आन्दोलन को शिथिल कर दिया था कि साधु सीताराम[4], ब्रह्मदेव तथा फतह करण चारण ने किसानों का 1913 में पुनः संगठन करने का बीड़ा उठाया। उसके नेतृत्व में लगभग 100 किसान रावजी से अपनी दुख गाथा सुनाने महलों गये परन्तु उन्होंने मिलने से इन्कार कर दिया। इधर रावजी ने विवाह प्रति व्यक्ति पांच रुपये "चंवरी कर" लगा दिया तो लोगों ने विवाह करना बंद कर दिया और खेत जोतने पर रोक लगा दी। यहां तक कि किसानों ने खालसा तथा ग्वालियर की भूमि पर बसने और वहां खेती करने की योजना बनाई। संगठन के इस निर्णय पर लगभग 10 हजार किसानों की भूमि पड़त रही। इस नीति से ठिकाने की आय को बड़ा धक्का पहुंचा। प्रतिकार में सीताराम, फतहकरण एवं ब्रह्मदेव को जो इस संगठन और योजना का नेतृत्व कर रहे थे, देश निकाला दे दिया गया और पुनः दमन चक्र या प्रयोग प्रारंभ कर दिया। इस नीति से आन्दोलन में कुछ शिथिलता आ गई, परन्तु किसानों का रोष शान्त न हुआ। [5]

जब किसानों पर दमन चल रहा था माणकलाल वर्मा, जो ठिकाने की सेवा में थे, अपने पद से त्याग देकर आन्दोलन-कारियों के साथ हो गए। बिजोलिया रावजी के देहावसान पर मेवाड़ सरकार ने 1914 में ठिकाने पर मुंसरमात कायम कर दी, क्योंकि बालक केसरीसिंह नाबालिग थे। अमरसिंह राणावत तथा नायब मुन्सरीम, डूंगरसिंह भाटी की अध्यक्षता में ठिकाने का दमन पुनः शुरू हो गया। लाग बाग तथा बेगार चालू रखी गई और युद्ध का चंदा इक्ट्ठा किया जाने लगा। प्रजा वैसे ही 1916 के भीषण अकाल से पीड़ित थी। फिर भी भूखी प्रजा ठिकाने के संघर्ष के लिए कटिबद्ध थी। नितान्त कृषक क्रांति में अधिक जान डालने के लिए साधु सीताराम ने पथिक जी को आन्दोलन के नेतृत्व करने के लिए अनुरोध किया।[6]

3- वही, फा.नं. 38, ए, 1931-32, सक्सेना, पथिक, पृ. 126-127, सक्सेना, बिजोलिया किसान आन्दोलन का इतिहास, पृ. 41-44

4- ये बेरागी वैष्णव साधु थे। इन्होंने बनारस में शिक्षा प्राप्त करने के उपरान्त बिजोलिया में मित्र मण्डल की स्थापना की एवं वाचनालय और पाठशाला को चलाया। ये वैधक तथा ज्योतिष भी जानते थे और स्थानीय भाषा में कविता बनाकर लोगों में जागृति पैदा करते थे, फा.नं. 19 कान्फीडे., अ.बी.

5- फो.पो फा.नं. 596, 1922-23, रा.अ. उदयपुर कोन्फीडेन्शल फाइल, नं. 124 बी.नं. 13, अ.बी.

6- अमरसिंह राणावत की रिपोर्ट, कान्फीडेन्शल रेकार्ड, फा.नं. 38 ए (अ.बी.) पथिक जी का बयान मेवाड़ अदालत, पृ. 79-80, चौधरी, पृ. 66-67; के.एस. सक्सेना, पोलिटिकल, पृ. 150-151, एस. एस. सक्सेना, पथिक, पृ. 128-130.

पथिक का नेतृत्व

पथिक 1916 के अन्त में बिजोलिया आये। उन्होंने लोगों को अपनासा साहस और देश भक्ति का पाठ पढ़ाया। वहां जाकर माणिकलाल वर्मा और साधु सीताराम के सहयोग से विद्या प्रचारिणी के कार्य में गति उत्पन्न की। पाठशालाएं और पुस्तकालय के माध्यम से ठिकाने के अत्याचार से छुटकारा पाने के उपायों से लोगों को अवगत कराया। उनकी कार्य प्रणाली में क्रांतिकारियों के साहस, तिलक की कूटनीति और गांधी जी के सत्याग्रह का सामन्जस्य था। उन्होंने किसानों में कष्ट सहन कर मारपीट न करने और अपनी मांग पर डटे रहने का पाठ पढ़ाया। वे खुद छिप कर रहने लगे और ठिकाने के खिलाफ, रियासत में शिकायतों का और अखबारों में प्रकाशन का दुधारा खांडा चलाने लगे। पंचायत का मजबूत संगठन कर लिया गया। इस संगठन का कार्य माणिकलाल, मन्नालाल पटेल, लक्षण पटेल तथा जगन्नाथ संचालन करते थे। उसकी एक केन्द्रीय कमेटी बनाई गई और गांवों में उसकी शाखायें स्थापित हो गई। पंचायत बोर्ड अवैध लाग बाग और लगान न देने के लिए किसानों का मार्गदर्शन करता था। सभी ग्रामवासी इस यज्ञ में शरीक हुए। आन्दोलन के लिए बाहर से वित्तीय सहायता न मांग कर किसानों से ही कोष इकट्ठा कर लिया। यह स्वावलम्बन आखिर तक रहा और इसी में एक बड़ी सीमा तक बिजोलिया की सफलता का रहस्य था।[7]

गांव गांव में किसानों ने सत्याग्रह छेड़ दिया। ठिकानों की आज्ञायें न मानना, उसे कोई कर न देना और उसकी अदालत व पुलिस से सम्बन्ध न रखना मुख्य कार्यक्रम बना। ठिकाने ने भय, प्रलोभन और दमन के सभी हथकंडे आजमायें। बूढे किसानों के साथ मारपीट की गई, उन्हें जेल में ठूंसा गया, जुर्माने व जब्तियां हुई और अन्त में उनकी खड़ी फसलें तक नष्ट कर दी गई। पथिक की सूझ विलक्षण थी। उनके सुझाव पर पंचायत ने यह तय किया कि सत्याग्रह जारी रहे, सत्याग्रही लोग शराब छोड़ दें, शादी और मोसर बन्द रक्खें और बिजोलिया की सारी जमीन पड़त रख कर आस पास के ग्वालियर, इन्दौर, कोटा और बूंदी के इलाकों में खाने भर की खेती कर लें। किसानों में फूट डालने वालों का असर न पड़ने दें। उनकी आर्थिक शक्ति मजबूत रखने और ठिकानों को झुकाने के लिये यह कार्यक्रम बड़ा जरूरी था। इस पर अमल भी इतनी कड़ाई से हुआ कि पांच, छः वर्ष तक ठिकाने को न लगान मिला और न मुकदमें उनकी कचहरी में गये और युद्ध का चन्दा न देने के लिए किसान कटिबद्ध हो गये। शराब की दुकानों का बहिष्कार रहा और शादी गमी के काम रुके रहे। ठिकाना बुरी तरह कर्जदार हो गया। महाराजा फतेहसिंह की नीति भी जागीरदार रावजी के खिलाफ और सत्याग्राहियों के कुछ अनुकूल थी।[8]

---

7. नवीन राजस्थान, 2 जुलाई, 1922, बूंदी इंगलिश रेकार्ड, फा. नं. 9 बिजोलिया ऐजिटेशन, 1922 अ.बी. रामनारायण चौधरी, आधुनिक राजस्थान, पृ. 47–48

8. राजस्थान केसरी, 31 अक्टूबर, 1920, पृ. 4 प्रताप कानपुर, 1 मार्च, 1921; सक्सेना, पथिक, 130–143; महता पृथ्वीसिंह, हमारा राजस्थान 223–33 राजस्थान केसरी 5 दिसम्बर 1920.

इस महान कार्य में पथिक ने खूब कष्ट उठाये। उन्हें गुप्त जीवन की सारी असुविधाएं सहन करनी पड़ी, रूखी-सूखी खाकर संतोष करना पड़ा और कई बार फाका करके दिन गुजारने पड़े। मेह बरसते समय खेतों में और भयंकर पशुओं से भरे जंगलों में उन्हें अंधेरी रातें बितानी पड़ी और हर दम एक क्रूर शत्रु के घेरे में दांतों के बीच जीभ की तरह घूमना पड़ा।[9] भाग्यवश इनको माणिक्य लाल वर्मा जैसे सहयोगी मिले थे जो हर क्षण इनकी नीतियों को मूर्त रूप देने के लिए उद्यत रहते थे। इसी तरह साधु सीताराम बड़े अनुभवी व्यक्ति थे। उनमें अपनी बात दूसरों के गले उतारने की अच्छी कला थी। मेवाड़ी भाषा में संस्कृत का पुट लगाकर उसको आकर्षक बनाने में वे निपुण थे। वैद्यक तथा ज्योतिष के चुटकले तथा व्यवहारिक युक्तियां उन्हें खूब याद थीं। इनकी वाणी का नवयुवकों पर बड़ा प्रभाव पड़ता था।[10]

वन्देमातरम का चमत्कार-

इस आन्दोलन की लोकप्रियता इतनी बढ़ गई थी कि उस समय वन्देमातरम की आवाज ऊपर माल (बिजोलिया) के कोने-कोने में गूंजती थी। हर स्त्री-पुरुष का यही अभिवादन था। एक छोटे से क्षेत्र में मातृभूमि की पूजा के भाव नर-नारी, बाल-वृद्ध सभी की हृदयतन्त्री में बज रहे थे। पंचायत के संगठन में डाकवाले का पद बड़े भरोसे और महत्व का था। मगर तुलसी भील बिजोलिया के किसानों को एक असाधारण सन्देशवाहक मिला था। उसने सब तरह के भय और प्रलोभनों से ऊपर उठ कर पंचायत की सेवा की। चलने वाला इस गजब का था कि कई बार सुबह उमाजी के खेड़ से रवाना होकर शाम को कोटा पहुंच जाता और दूसरे दिन सुबह लौट आता था। इस प्रकार यह 24 घण्टे में 70 मील का लगातार सफर कर लेता था। ऐसे सैंकड़ों कार्यकर्त्ता पथिक जी के जादू से पैदा हो गये थे।[11]

पथिक की प्रेरणा से किसानों ने पंचायत की कार्यवाही से सम्बन्धित सभी दैनिक राजनीतिक कार्य करने आरंभ किये। स्थिति को बिगड़ती देख ब्रिटिश सरकार ने मेवाड़ राज्य तथा जागीरदारों को आन्दोलन को दमनकारी तरीके से कुचलने के आदेश दिये। इसके अनुसार बिजोलिया में हजारों किसान तथा कई नेता गिरफ्तार कर लिए गए, जिनमें साधु सीताराम, माणिक्य लाल वर्मा, रामनारायण चौधरी, प्रेमचन्द भील सम्मिलित थे। किसानों की स्त्रियां और बच्चे भी इससे वंचित नहीं रखे गये। जागीरदार ने सभी किसानों की भूमि पर जब्ती बिठादी, उनके मकान धराशायी कर दिये गये, उनके हल और बैलों को रावले भेजा गया। उनके सामान को नीलाम बोल दिया गया। खेतों के इंधन व भूसे एवं खड़ी फसल को अग्नि के हवाले कर दिया। जेल में भी कई पाशविक यातनाओं

9–बिजोलिया ऐजिटेशन, नं. 13, प्रेस कटिंग, अ.बी; रामनारायण चौधरी, आधुनिक राजस्थान का उत्थान, पृ. 47–48

10–फो.पो. फा. नं. 428, 1923, पाक्षिक, अ.बी.

11–फो.पो. फा. नं. 428, 1923, फा. नं. 596 (सी.), 1922–23, रा.अ.; रामनारायण चौधरी, आधुनिक राजस्थान उत्थान पृ. 49, 63, 66

से कृषकों और नेताओं को दण्डित किया गया जिसका वर्णन लेखनी की शक्ति के बाहिर है। इस प्रकार की यातनाओं और ठिकाने की हठधर्मी एवं यहां के पुरुषों, स्त्रियों और बूढ़ों की दृढ़ता के समाचार भारत वर्ष के कोने कोने में फैल गए। महात्मा गांधी, मदन मोहन मालवीय, तिलक, गणेशशंकर विद्यार्थी आदि राष्ट्रीय नेता यहां के प्रत्येक नागरिक की राष्ट्रीय भावना से बड़े प्रभावित हुए समाचारपत्रों ने इस आन्दोलन की देश में धूम मचादी। इस विषय स्थिति का संचालन पथिक जी कोटा में रहकर और रात रात गांव में घूमकर तथा रात्रि सभाओं में मन्त्रणा द्वारा करते रहे। अपनी गुप्तचर व्यवस्था से वर्मा जी जेल से ही राजकीय गतिविधियों का पता लगाते रहे और उसके अनुसार संगठन के कार्यक्रम को चलाते रहे। उन्होंने गुप्त रूप से प्रचार करके जनता के मनोबल को इतना मजबूत बना दिया था कि उसको राज्य, पुलिस व किसी सत्ता का कोई भय ही न रहा समस्त ऊपरमाल अंचल सत्याग्रह सम्बन्धी गीतों से गूंज रहा था। इतना ही नहीं उपरमाल सेवा समिति द्वारा युवकों को देश भक्ति के मन्त्र से दीक्षित कर एक बड़ी युवक मंडली तैयार करली।[12]

प्रथम कमिशन :

जब मेवाड़ सरकार ने देखा कि किसान अपनी मांगों पर अड़े हुए हैं और ठिकाना अपनी वसूली में कोई रिआयत नहीं कर कर रही है तो महाराणा ने एक कमिशन की नियुक्ति की जिसके सदस्य ठाकुर अमरसिंह (मुन्सीरीम बिजोलिया), अफजल अली (मजिस्ट्रेट) और बिन्दूलाल (मांडलगढ़ का हाकिम) थे। इस कमिशन ने सबसे पहिले माणिक्यलाल वर्मा तथा साधू सीता राम को जेल से मुक्त कर दिया और 51 अन्य कृषक बन्दियों को छोड़ दिया। कमिशन ने जब पाया कि वास्तव में किसानों की हालत दयनीय है और ओसतन 13-14 रुपये की वार्षिक आय तक साधारण किसान की है तो उसने सिफारिश की कि बिजोलिया के किसानों की शिकायतें न्यायसंगत हैं परन्तु ठिकाना कामदार हीरालाल, धूली लाल और मुन्शी मुहम्मद आजिम ने किसी तरह कमिशन की रिपोर्ट को रद्दी की टोकरी में डलवा दिया और ठिकाने के रवैये में कोई परिवर्तन नहीं किया। पथिक ने किसानों को माल की जमीन को हांकने और बोने की सलाह तो दे दी परन्तु उन्हें पिलाई की जमीन, जिस पर हासिल अधिक था, जोतने से मना कर दिया। इस पर ठिकाने ने दोनों किस्म की जमीन पर हासिल वसूल करने और न देने वालों को कई प्रकार की अमानवीय यातना देने के आदेश दिये।[13]

पथिक ने इस प्रकार के निर्मम अत्याचार के विरुद्ध आवाज उठाई और "प्रताप" के सम्पादक गणेश शंकर विद्यार्थी को इस प्रकार की स्थिति से अवगत कराया। जब इसका प्रचार समाचारपत्रों द्वारा किया गया तो यह दुर्व्यवहार भारतीय समस्या बन

12- उदयपुर कोनफी. फा. नं. 124, बी.एन. 13, अ.बी.; फोर्टनाइटली रिपोर्ट नं. 48, 59, 61, 1921, 22„ 23, फाईल नं. 428 अ.बी.

13- प्रताप (कानपुर) 1 मार्च 1920; बूंदी इंगलिश रेकार्ड फा. नं. 9, 1922 अ.बी.

गया। महात्मा गांधी ने इसमें अपनी रुचि ली और पथिक को बम्बई अपने पास बुलाकर तथा अपने निजी सचिव महादेव भाई को बिजोलिया भेजकर आन्दोलन सम्बन्धी जानकारी प्राप्त की। राजपूताना मध्य भारत सभा ने भी महाराणा को लिख भेजा कि वह अपने प्रतिनिधि को भेजकर स्थिति से अवगत होना चाहती हैं। साथ ही किसान पंचायत ने भी ठिकाने को चेतावनी दी कि या तो वह इस समस्या का समाधान ढूंढ निकालें, अन्यथा उसे हड़ताल की व्यवस्था करनी होगी और किसी भी किस्म की जमीन को नहीं जोता जायगा।[13]

द्वितीय कमिशन :

जन आन्दोलन जोर पकड़ने लगा तो महाराणा ने फरवरी 1921 को एक दूसरे कमिशन को ठिकाने की स्थिति एवं कृषकों की मांग की जांच करने को नियुक्त किया। इसके सदस्य पंडित रमाकान्त मालवीय, ठाकुर राजसिंह और महता तखतसिंह थे। इस बार कमिशन की बैठक उदयपुर में रखी गई जिसमें किसानों के आठ प्रतिनिधि, जिसमें माणिक्यलाल वर्मा एवं कालूराम पटेल सम्मिलित थे आमन्त्रित किये गये। कृषकों ने लगान में कमी करने और लाग-बाग तथा बेगार समाप्त करने की मांग कमिशन के सम्मुख रखी जिसको उसके सदस्यों ने उचित माना। परन्तु इस बार भी इनकी सिफारिशों पर कोई ध्यान नहीं दिया गया। बल्कि अंग्रेजी सरकार ने मेवाड़ राज्य पर यह आरोप लगाया कि इससे निपटने में ढिलाई बरत रहा है। ब्रिटिश सरकार का राजनीतिक विभाग इस बात से चिन्तित था कि कहीं बिजोलिया का आन्दोलन रूसी बोलशिविक आन्दोलन का रूप न ले ले, अतएव उसका सुझाव था कि हर प्रकार के उपाय से उसे कुचल डालना चाहिये।[14]

इधर पथिक ने शराब बन्दी तथा काज और मोसर की फिजूलखर्ची बन्द करने तथा अपने उदर पोषण के लिए ग्वालियर, बूंदी, कोटा आदि स्थानों में जाकर खेती की सलाह दी। किसान पंचायत ने भी इन सुझावों के साथ बिजोलिया की जमीन को बिना जोते रखने के लिए किसानों को आगाह किया। इनसे यह भी अनुरोध किया कि वे न्याय निर्णय के लिए ठिकाने की अदालत में न जाय। इससे ठिकाने की आय को खूब हानि होने लगी और उस पर कर्ज का भार बढ़ गया।[15]

13- प्रताप, 10 मार्च, 1920; नवीन राजस्थान, 2 जुलाई, 1922; प्रताप 26 जनवरी, 1920; डा. पेमाराम, द एग्रेरियन मूवमेन्ट इन राजस्थान, पृ. 22-23.

14- एजीजी का 4 फरवरी 1920 का पत्र महाराणा फतहसिंह को, उदयपुर कोन्फीडेन्सल रेकार्ड, फा. नं. 38, बी, अ. बी. राजस्थान केसरी, 31 अक्टूबर, 1920, पृ. 4, वही 7 नवम्बर, 1920, पृ. 14, डा. पेमाराम– द ऐग्रेरियन मूवमेन्ट इन राजस्थान, पृ. 24–25

15- बिजोलिया किसान आन्दोलन का इतिहास, पृ. 109-10.

इस प्रकार की व्यवस्था कर पथिक जी 1920 में वर्धा पहुंच गये और वहां से माणिक्यलाल के सहयोग से आन्दोलन के मार्ग का प्रदर्शन करते रहे। वहां से राजस्थान केसरी निकालने लगे और उसके माध्यम से किसानों के क्रन्दन की आवाज देशवासियों के कानों तक पहुंचाते रहे। महात्मा जी ने मदनमोहन मालवीय जी के द्वारा महाराणा को समझाने का प्रयत्न किया पर इसमें कोई सफलता नहीं मिली। पथिक जी ने रामनारायण चौधरी को बिजोलिया की स्थिति के अध्ययन के लिए 1920 में भेजा। उन्होंने ठिकाने में घूमघूम कर स्थिति का जायजा लिया। वे भी इस नतीजे पर पहुंचे कि ठिकाने के अत्याचार स वहां का कृषक पीड़ित है, परन्तु उनमें एक जोश और दृढ़ता है। वहां का कोना कोना राष्ट्रीय भावनाओं से प्रेरित है और "वन्देमातरम' का घोष क्या पुरुष, स्त्री या बच्चों को नई प्रेरणा दे रहा है। उसने मेवाड़ रेजिडेन्ट को, जो दौरे पर उधर आया था उसे ठिकाने की ज्यादती के बारे में बतलाया। इस अवसर पर जब ठिकाने ने रजिडेन्ट के स्वागत के लिए जबरन दूध, दही आदि बिना मूल्य के देने तथा बेगार के लिए बाध्य किया तो उन्होंने इसका डटकर विरोध किया। पुनः स्थिति को निकट से देखने और आन्दोलन को गति देने के लिए फरवरी 1921 को पथिक वर्धा से अजमेर आ गये। उनके यहां आने से मेवाड़ के अन्य भागों में भी आन्दोलन की लपटें पहुंची। इस पर पथिक का मेवाड़ में प्रवेश निषेध कर दिया और जून 1921 को राजसिंह बेदला को बिजोलिया के किसानों को समझाने और युवा जागीरदार को सलाह देने महाराणा ने भेजा। परन्तु फिर भी स्थिति गंभीर बनी रही और किसान अपने उद्देश्यों पर अडिग रहे।[16]

यह स्थिति देखकर अंग्रेजी हुकूमत ने बिजोलिया संबंधी समस्याओं का समाधान निकालने के लिए 1922 में एक बड़ासा कर्मचारी मंडल [17] वहां पहुंचा। ब्रिटिश सरकार की ओर से ए.जी.जी. हालैण्ड, उनके सेक्रेटरी ओगेंलवी और मेवाड़ के रेजीडेन्ट विल्किंसन, रियासत की ओर से बाबू प्रभात चन्द चटर्जी दिवान और पं. बिहारी लाल जी कौशिक दाण (सायर) हाकिम और ठिकाने के प्रति-निधि के तौर पर कामदार हीरालाल, फौजदार तेजसिंह और मास्टर जालिमसिंह इस मंडली में थे। किसानों को बुलाया गया तो उन्होंने राजस्थान सेवा संघ के प्रतिनिधियों को भी आमन्त्रित करने पर जोर दिया। रामनारायण चौधरी उन दिनों वहीं थे। संघ के मंत्री के रूप में उनके नाम ए. जी. जी. के केम्प से इस आशय का पत्र आया कि साहब रावजी व किसानों में समझौता कराने आये हैं। आप सहायता देंगे तो वे खुश होंगे सत्याग्रहियों की तरफ से रामनारायण चौधरी, माणिक्यलाल वर्मा, पंचायत के सरपंच मोती चन्द और मंत्री ये चार आदमी इसमें भाग लेने गये थे। बिजोलिया कस्बे के बाहर एक बगीचे में साहब का डेरा था। वहीं खुले मैदान में मंडल की बैठक प्रारम्भ हुई। वह दृश्य बिजोलिया के क्या सम्भवतः राजस्थान के, इतिहास में अभूतपूर्व था। सारे इलाके की जनता मानों वहां उमड़ आई थी। सत्याग्रही विजय गर्व अनुभव कर रहे थे। परन्तु उनमें मर्यादा का

16–राजस्थान केसरी, 5 दिसम्बर, 1920, पृ.; रामनारायण चौधरी, पृ. 46-50; डा. पेमाराम, द एग्रेरियन मूवमेंट इन राजस्थान, पृ. 26–27

17–पाक्षिक रिपोर्ट, नं. 61, 31 जनवरी, 1922; फो.पो.फा.नं. 428-पी(गुप्त), 1923, रा.अ.

अभाव न था। यह आधुनिक राजस्थान की तारीख में पहला अवसर था जब कि किसान जैसे दबे हुवे वर्ग को सिर ऊंचा करना नसीब हुआ। जो लोग घेरों में बिठाये जाते थे उन्हीं के प्रतिनिधियों को बराबर कुर्सियां मिलीं, जिन बड़े साहबों के दर्शन दुर्लभ होते थे उन्हें एक दिन के बजाय आ5 दिन ठहरना पड़ा और जिन आन्दोलनकारियों को भयंकर प्राणी समझ कर दूर रखने के लिये अनेकों प्रयत्न किये जाते हैं उनकी सहायता मांगी गई। इतना ही नहीं उस दिन तो ऐसा दिखाई पड़ा मानों नेतृत्व राज्यसत्ता के हाथ से निकल कर जनता जनार्दन के हाथों में आ गया हो। भीड़ को व्यवस्थित करने का काम ठिकाने की पुलिस के बजाय पंचायत के बूढ़े कोतवाल ने किया।[18]

बैठक की कार्यवाही :

इस उत्साहपूर्ण वातावरण में समझौते की बातचीत प्रारम्भ हुई। सर्व प्रथम किसानों का शिकायत नामा प्रस्तुत किया गया। हालैण्ड एक एक मुद्दा पढ़ कर सुनाता और दोनों पक्ष की दलीलें सुनता। छोटो-मोटी लागतों पर कोई विशेष वाद-विवाद नहीं हुआ, और वे माफ कर दी गई। ऐसे मसलों पर ए. जी. जी. जिस सफाई और आत्म विश्वास के साथ फैसला देते थे उससे मालूम होता था कि उस आदमी को अपने अधिकार का कितना मान अपने कर्त्तव्यपालन का कैसा दृढ़ निश्चय और समय और स्पष्टता का कितना ख्याल था। ठिकाने के प्रतिनिधियों के उज्र प्राय: लम्बे भाषण और वाद-विवाद से भरे होते थे। इस पर हालैण्ड को एक से अधिक बार कहना पड़ा "मुझे भाषण नहीं चाहिये।" उधर किसानों के पंच छोटा और निश्चित उत्तर देते थे। साहब ने उनकी प्रशंसा की और विपक्षियों को उनसे प्रेरणा लेने का संकेत किया। ए. जी. जी. ने सत्याग्रहियों के संयम और बल के प्रथम दर्शन किये और वह उनका प्रशंसक बन गया। उधर हालैण्ड बोलता और उनके दूसरे साथी मूर्ति की तरह बैठे देखते या उनका लिखाया लिखते। इधर मोतीचन्द जवाब देते और बाकी लोग चुपचाप सुनते रहते। साहब ने अपना पाइप जलाया तो सरपंच महोदय ने चिलम सुलगाई। किसानों ने समता का भाव प्रकट किया और साहब ने मुस्करा कर उनकी भावनाओं का सम्मान किया। सवाल जवाब बहुत थोड़े विषयों पर हुये। किसान पक्ष के सच्चे होने की अधिकारियों पर छाप पड़ चुकी थी। उन्हें व्यापक दृष्टि से राजस्थान के असंतोष की इस जड़ को मिटाना ही था। अपनी परम्परागत नीति के अनुसार ये अंग्रेज भी फौज साथ लाये थे, जिसे वहां से दस मील दूर मांडलगढ़ में रखा गया था। किसानों को आश्चर्य हुआ और उन्होंने महाराणा फतहसिंह को आदर सहित याद किया कि उसे बूढ़े भारतीय ने निरंकुश शासक होकर भी पेट के लिये लड़ने

18. बिजोलिया रिपोर्ट, एजीजी, नं. 59, नं. 428, 1921-23 (अ. बी.) मेमोरेन्डम, नं. 61, 31 जनवरी, 1922, रा. अ.; फो. पो. नं. 428, 1923 रा. अ.; नवीन राजस्थान 2 जुलाई, 1922; रामनारायण चौधरी आधुनिक राजस्थान का उत्थान, पृ. 54-57.

वालों पर भी सैनिक कार्यवाही नहीं की। वे भयभीत नहीं हुये और समझौते की बातचीत आत्म-सम्मान के साथ हुई। अन्त में बेगार का प्रश्न आया।[19]

हालैण्ड का प्रस्ताव था कि किसान अपना यह कर्तव्य स्वीकार करते हैं कि जब कोई राज्य कर्मचारी उनके मार्ग से आयेगा तो वह उचित कीमत पर उसे सवारी, मजदूरी और सामान उपलब्ध करवायेंगे। कीमत का निर्णय सरपंच करेगा और जबरदस्ती किसी हालत में न की जायेगी। किसानों ने अपनी सद्भावना के प्रमाण स्वरूप इतना और बढ़ा दिया कि महाराणा साहब व रावजी की सेवा का कोई मूल्य नहीं लिया जाएगा। ए.जी.जी. बोले, 'जाहिरा ढांचे को बहुत न छेड़ कर भी आपने तो भीतर से मेरी तजवीज की काया ही पलट दी।" किसानों को सम्बोधन करके उसने कहा 'मेरे लिये तो आपने जगह ही नहीं रखी। इसमें विनोद भी था और गाम्भीर्य भी, परन्तु किसानों का कोमल भाव था वह स्थान एक विदेशी नौकर शाह को वे कैसे दे सकते थे। "हालैण्ड" की आलोचना ठीक थी। साहब ने समझौते की अपनी मजूरी की घोषणा की। किसानों ने अपनी स्वीकृति दी और जनता ने वंदेमातरम् के गगनभेदी नारे के साथ उसका समर्थन किया। समझौते के अनुसार किसानों की अधिकतर मांगें स्वीकार करली गई, बेगार प्रथा का अंत कर दिया गया और अधिकांश लाग-बाग समाप्त कर दी गई। किसानों के विरुद्ध चलने वाले मुकद्दमों को वापिस लेने और खेती नहीं किये गये वर्ष का लगान न लेने का आश्वासन दिया गया। इस प्रकार आंदोलन का प्रथम चरण समाप्त हुआ।[20]

बिजोलिया में पुनः आंदोलन–1927–1941 :

जब हालैण्ड द्वारा किया गया समझौते का ठिकाने ने पूरी तौर से पालन नहीं किया तो किसानों को फिर लगान न देने पर उतारू होना पड़ा। इधर ट्रेंच, जो मेवाड़ सरकार का बन्दोबस्त का उच्च अधिकारी था, माल की जमीन की पेमाईश की और भू-राजस्व की फरवरी 1927 से बढ़ोतरी कर दी। इसके विरुद्ध माणिक्यलाल वर्मा तथा रामनारायण चौधरी के नेतृत्व में 21 मार्च 1927 को गोवर्धन निवास में पंचायत की बैठक हुई और उसमें सत्याग्रह को पुनः आरंभ करने छटूंद लाग तथा माल भूमि पर बढ़ा हुआ लगान न देने का निर्णय लिया गया। ज्योंही पथिक कैद से छूटने को थे तो उनके तथा माणिक्य लाल वर्मा और चौधरी का बिजोलिया प्रवेश पर रोक लगा दी। पथिक के छूटते ही उनका 27 अप्रेल से मेवाड़ निषिद्ध कर दिया गया। और वही नियम चौधरी पर भी लागू किया गया। फिर भी किसान अपने सिद्धांत पर डटे रहे और उन्होंने 20 मई 1927 को सामूहिक रूप से माल की जमीन से इस्तीफे दे दिये। ठिकाने ने मामले को महकमाखास उदयपुर के पास भेजा और मेवाड़ राज्य ने उसकी स्वीकृति दे दी। वास्तव में यह समय बड़ा विकट

19– बिजोलिया रिपोर्ट, नं. 55, 428, 1921–23 अ. बी.; सक्सेना, पोलिटिकल मेवमेन्ट एण्ड अवेकनिंग इन राजस्थान, 1953–54; चौधरी, वर्तमान राजस्थान, पृ. 92–97

20– पाक्षिक रिपोर्ट नं. 72, 15 जुलाई 1922, फा.नं. 18, फो.पो. रा.अ.; एम एस. सक्सेना, पथिक, पृ. 176–179.

था, क्योंकि राजस्थान सेवा संघ के कार्यकर्ताओं में मतभेद हो जाने से संस्थान के काम में अवरोध हो गया था। पथिक और चौधरी का मेवाड़ प्रवेश रोक दिया गया था जिससे उन्हें बिजोलिया आंदोलन मे अपना हाथ खींच लेना पड़ा। यह अवसर उपयुक्त समझकर ठिकाने ने आठ हजार बीघा जमीन नये खाते दारों को नए लगान दर पर सुपुर्द कर दी। पुराने किसानों पर पुनः दमन चक्र आरंभ हो गया।[21]

स्थिति में नया मोड़ लाने के लिए माणिक्यलाल वर्मा के अनुरोध पर 1929 से जमनालाल बजाज और हरिभाऊ उपाध्याय बिजोलिया आंदोलन का नेतृत्व करने के लिये तैयार हो गए। इसके आदेश के अनुसार किसानों ने शांति पूर्ण ढंग से सत्याग्रह किया। उपाध्यायजी ने कई मर्तबा ट्रेन्च से तथा सरकार से माल की जमीन को कृषकों को लौटाने के लिए मिले। परंतु संतोषजनक समाधान के बजाय ठिकाने ने किसानों को कई प्रकार से डराया धमकाया और विविध प्रकार की यातना दी। गांधी जी के भारतीय सत्याग्रह के फलस्वरूप उपाध्याय जी बन्दी बना दिये गये तब भी बिना उनके नेतृत्व के किसान फिर भी अपनी माल की भूमि प्राप्त करने के संघर्ष में लगे रहे। तब माणिक्यलाल वर्मा ने उनका नेतृत्व संभाला। 1931 की अक्षय तृतीया के दिन किसानों ने जब्त की हुई जमीन को बल पूर्वक जोतना शुरु कर दिया। तब ठिकाना और उदयपुर राज्य ने दमन नीति चलाई। इस पर लगभग 26 कृषकों को गिरफ्तार करके बुरी तरह पीटा गया। परन्तु कृषक फिर भी नहीं दबे और अपनी भूमि जोतते रहे। कुछ किसानों को फिर गिरफ्तार किया गया। परन्तु कुछ दिन बाद छोड़ दिया गया। सब मिल कर 40 किसान गिरफ्तार किये गये। मदनसिंह ने जो सुपरिन्टेन्डेन्ट पुलिस थे वहां खूब ज्यादतियां की परन्तु इन ज्यादतियों से किसान नहीं घबराये। सत्याग्रह और फैलता गया। फिर मई मास मे तरूण राजस्थान के पूर्व सम्पादक अचलेश्वर प्रसाद जो वहां गये उनको गिरफ्तार करके पुलिस ने पीटा परन्तु 8 दिन बाद उन्हें भी छोड़ दिया गया। इस आन्दोलन में स्त्रियां भी सम्मिलित थीं जिनमें शोभालाल गुप्त की पत्नी विजया, रामनारायण चौधरी की पत्नी अंजना देवी, दुर्गा प्रसाद की पत्नी विमला देवी, चन्द्रभान की पत्नी दुर्गा हरि. भाऊ उपध्याय की पत्नी भागीरथी, लादूराम जोशी की पत्नी तुलसी के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उन्होंने साहस के साथ सत्याग्रह किया और पुलिस के अत्याचारों को सहन किया। कितने ही किसान जो शान्तिपूर्वक अपने काम में थे गिरफ्तार कर लिये गये। किसी को कम और किसी को अधिक समय के लिये जेल में भेजा गया। इस अरसे में जमनालाल बजाज ने उदयपुर जाकर वहां के दीवान सुखदेव प्रसाद से भेंट की। उसने भी शोभालाल गुप्त को बिजोलिया के किसानों से बातचीत करने के लिये भेजा। परन्तु बिजोलिया पहुंचते ही उसकी पुलिस ने गिरफ्तार कर लिया और खूब पीटा। ठिकाने की दमन नीति पूर्ववत् चलती रही। सैकड़ों किसान गिरफ्तार कर लिये गये। उनकी सम्पत्ति जब्त कर ली गई। जब स्थिति बहुत ही भयावह हो गई तो सर सुखदेव प्रसाद ने जमनालाल बजाज के बीच बचाव से कृषकों को 23 जुलाई 1931 को आश्वासन दिया कि उनकी जमीनें उन्हें वापिस लौटा दी जावेगी।

21– अर्धशासकीय पत्र नं. 92, 25 मार्च, 1927,; कान्फीडेन्शल फा. नं. 89, 1925-1927, अ.बी.; पत्र मखसूद अली, कामदार बिजोलिया दीवान को, 19 अप्रेल, 1927, अ.बी.

परन्तु उसको पूर्णरूप से कार्यान्वित नहीं किया गया तो वर्मा ने पुनः आन्दोलन की चेतावनी दी जिस पर उन्हें कुंभलगढ़ के किले में सपरिवार कैद कर लिया। जब उन्हें 1933 में छोड़ा गया तो उनके मेवाड़ प्रवेश पर रोक लगा दी गई। अन्त में पं. लक्ष्मी लाल जोशी की सिफारिश से राघवाचार्य ने माल की जमीन पुराने किसानों को 6 रु. प्रति बीघा देने पर लौटा दी और 1941 में आन्दोलन का दूसरा सोपान समाप्त हुआ। डा. मेहता ने भी इस निर्णय में पूरी रुचि ली थी।[22]

बेगूं में किसान आन्दोलन (1921–25)

बिजोलिया आन्दोलन की सफलता से प्रेरित होकर बेगूं (मेवाड़) ठिकाने के कृषकों ने भी 1921 से आन्दोलन कर दिया, क्योंकि वहां भी लगान व लाग–बाग को लेकर उन्हें रावजी ने अत्याचारों से पीड़ित कर रखा था। वहां राजस्थान सेवा संघ के माध्यम से पथिक जी एवं माणिक्यलाल वर्मा तथा रामनारायण चौधरी द्वारा जन–जाग्रति हो रही थी। किसानों ने बेगूं ठिकाने के इलाकों में मद्यपान एवं छूआछूत समाप्त करने तथा स्वदेशी वस्त्र का उपयोग करने का संकल्प किया था, जो वहां के ठाकुर को असह्य था। कालावड और चांदाखेड़ी में किसानों ने अपनी बैठक में ठिकाने को बेगार एवं लगान न देने का निर्णय लिया। इसी प्रकार किसानों की बैठकें खेड़ा, गोविन्दपुरा और अमरपुरा गांव में भी हुई। यहां भी लगान न देने का निश्चय किया गया। इस आन्दोलन को कुचलने के लिये बेगूं राव ने मेवाड़ राज्य से सहायता मांगी। ठिकाने द्वारा दमन नीति का प्रयोग किया गया। कई लगानदाताओं को गिरफ्तार किया गया, निर्मम ढंग से उनको मारा गया और पीटा गया। 1922 में मंडावरी में भी किसानों के सम्मेलन को गोलियों के बौछार से तितर बितर किया गया। घास, फूस नाज आदि की गाड़ियां जला दी गई। इस अवसर पर हिंसात्मक रवैये से बालक, बूढ़े और स्त्रियों के साथ हिंसात्मक एवं बर्बर यातनाओं का प्रयोग पुलिस कर्मचारी करने में पीछे न थे। इन अमानवीय अत्याचारों से तंग आकर बेगूं के सरपंच के नेतृत्व में रेवेन्यू कमिश्नर, ट्रेन्च से हस्तक्षेप करने की अपील की गई। 1923 को ट्रेन्च सैनिक टुकड़ी के साथ गोविन्दपुरा गांव पहुंचा जहां हजारों कृषक तथा महिलाएं और बच्चे सार्वजनिक सभा में अपनी मांगों को लेकर इकट्ठे हो रहे थे। बजाय उनको आश्वासन देने के गांव में आग लगा दी गई और भीड़ पर गोलियां बरसाई गई। इसके फलस्वरूप दो व्यक्तियों की घटनास्थल पर मृत्यु हो गई और कई घायल हो गये। लगभग 100 बच्चे 500 व्यक्ति गिरफ्तार किये गये। सैनिकों ने गांवों के घरों में घुस कर नागरिकों को पीटा और अबलाओं के सतित्व को नष्ट किया। इस घटना की देश के पत्रों में बड़ी निन्दा हुई। इसके विपरीत मेवाड़ सरकार ने इसका दोषी पथिक एवं हरिजी मानक को माना। उन पर आरोप लगाया गया कि उन्होंने महाराणा की आज्ञा का उलंघन किया, राज्य विरोधी कार्यों में भाग लिया तथा आतंकवादी साहित्य का वितरण किया। वैसे तो इन आरोपों की जांच के

---

22. महकमाखास, उदयपुर नं. 17456–23 अप्रेल, 1927, अ. बी.; फा. नं. 89; त्याग भूमि 8 मई 1931; फो.पो.फा. नं. 379, सन् 1932, रा. अ.; वही नं. 389, 1931–32, उदयपुर कोन्फी, नं. 381 पुलिस रिपोर्ट, 14 मई 1931, एस. पी. का पत्र जी. पी. उदयपुर फा. नं. 118; अ. बी.; उदयपुर कोन्फी, रेकार्ड, फा. नं. 27, 1940, अ. बी.

लिए जो आयोग बिठाया गया था उसने इन्हें निरपराधी घोषित किया था, परन्तु मेवाड़ सरकार ने अपने विशेष अधिकारों के माध्यम से पथिक का तथा नोला धाकड़, डूंगजी धाकड़, घनश्याम ब्राह्मण आदि को कठोर कारावास का दंड दिया। पथिक को पीछे रिहा तो कर दिया गया पर मेवाड़ प्रदेश के लिए रोक लगा दी गई। अंत में किसानों और ठिकाने के बीच 1925 के बन्दोबस्त द्वारा समझौता होने पर अधिकांश मांगे मान ली गई और बेगूं का आन्दोलन समाप्त हो गया।[23]

मेवाड़ में –अन्य स्थानों में कृषकों का आन्दोलनः–

बिजोलिया और बेगूं के किसान आन्दोलन से प्रेरित होकर मेवाड़ के कई ठिकानों व खालसा जिलों के किसानों ने लगान, बेठ–बेगार, लाग–बाग आदि प्रमुख मुद्दों को लेकर आन्दोलन छेड़ दिया। ऐसे ठिकानों में भीडर, गुडला, पारसोली, बसी, जामोली, भैंसरोड़, धरियावद, परशाद, काछोला, आदि थे तथा खालसा में मांडलगढ़ व राशमी तथा मात्रिकुंडिया आदि स्थान भी सम्मिलित थे। ब्रिटिश रेजिडेन्ट ने मेवाड़ राज्य को इससे निपटने के आदेश दिये। फलतः कुछ एक जगह आयोग द्वारा जांच करवाई गई तथा पुलिस को भी इनको सख्ती से दबाने को कहा गया। धागणमऊ में गिरदावल मोडीलाल ने महिलाओं और बालकों तक को दण्डित करने से नहीं छोड़ा। मडावरी गांव में गोलियां चलाई गई और स्त्रियों पर अत्याचार किये गये। ऊमरचाना तथा खेमकेखंड़े में पकड़ धकड़ की गई। भेरूलाल धाकड़ को, जो सरपंच था, गिरफ्तारी की गई। बसी ठिकाने में तो 2000 धाकड़ जो पालक गांव में एकत्रित हुए थे, उन पर लाठी चार्ज किया गया और उनके 17 मुखिया गिरफ्तार हुए। मांडलगढ़ के आन्दोलन का नेतृत्व कालू, नवला, किशना आदि धाकड़ों ने किया। इनको प्रेरणा रामनारायण चौधरी तथा मथुरालाल ब्राह्मण देते रहे। चांदा खेड़ी बागपचली, खेड़ह, गोविन्दपुरा में भी 1500 के लगभग किसानों ने मिलकर सरकार का विरोध किया। इन विरोधियों को जमकर पिटाई की गई, परन्तु कृषक अपनी मांगों पर अटल रहे। अन्त में सरकार को जनमत के सामने झुकना पड़ा और आन्दोलनकारियों की अधिकांश मांगें स्वीकार कर ली गयी।[24]

23– फो.पो.नं. 428, 1923, अ, बी;–महकमाखास, फा. नं. 121, 1922 अ. बी. कोनफि. फा. नं. 130, 1922, रा.अ. होम. पोलि. फा. नं. 18, 1922, 593, 1923; राजस्थान केसरी, 19 जन, 1921; फा.नं. पृ.8, 1921, 26 जून 1921 नवीन राजस्थान 2 अप्रेल, 1922; अ. बी, –महकमाखास, फा. नं. 145, 1923, फा. 129, 123; फा. नं 123, 1923; रामनारायण चौधरी, पृ. 115– 116, 135, 137; पथिक के बखान, मेवाड़ कोर्ट, पृ. 94, अ. बी; कोन्फी फा. नं. 100, 1937 अ. उदयपुर

24– फो.पो. नं. 46, जून 1921, पाक्षिक मेमोरेण्डम, नं. 43, 30 अप्रेल, 1921 रा.अ. ; फो. पो. नं. 428, 1923, पाक्षिक मेमोरेण्डम नं. 45, 31 मई 1921; बोम्बे क्रोनिकल, 25 मई, 1921; राजस्थान केसरी, 19 जून 1921, 26 व 29 जून 1921 पृ. 13; उदयपुर कोन्फीडे. फा.नं. 130, 1922, अ.बी.; पाक्षिक मेमोरेण्डम, 15 मार्च, 1922, रा.अ. होम पोलिटिकल फा.नं. 18, 1922; मेमोरेण्डम नं 85, 31 जनवरी, 1923; मेहता मनोहरसिंह का महकमाखास को पत्र फा.नं. 145 15, 1923, दूसरा पत्र मार्च, 1923, नं. 145, अ.बी.; ट्रेन्च की रिपोर्ट, फा. नं. 129, 1923

बरड़ (बूंदी) का काण्ड :

बिजोलिया के प्रजा पीड़ने और किसान आन्दोलन से सारे राजस्थान में क्षोभ व्याप्त था। कहीं अधिक था और कहीं कम, अतः सर्वत्र जगीरदारों और नरेशों के अत्याचारों का विरोध होने लगा था। हरिभाई किंकर, रामनारायण चौधरी और पं नयनूराम कई बार बरड़ के इलाके में गये थे और उनकी प्ररणा से किसानों ने 15 जून 1922, में रियासत का बड़ा विरोध किया और सत्याग्रह आरंभ किया था इस पर पं. नयनूराम[25] और हरिभाई किंकर[26] को गिरफ्तार कर बून्दी की जेल में रख दिये गये। इस स्थिति की जांच करने के लिये रामनारायण चौधरी और उनके दो तीन साथी बरड़ पहुंचे तो उन्हें ज्ञात हुआ कि प्रजा के साथ बड़े अत्याचार किये गये थे। रियासत की सेना ने हाकिम इकराम हुसैन के इशारे पर सत्याग्रही स्त्रियों पर आक्रमण किया और उनमें से कई को भाले मार कर आहत कर दिया। 1923 में गोलीकाण्ड में नानक[27] नाम का भील मारा गया। कितनी ही स्त्रियों के शरीरों पर और सिर में चोटे आई थीं। कारण यह था कि बरड़ के किसान बेगार लाग –बाग और अन्य करों का डट कर विरोध कर रहे थे और स्त्रियां उनका साथ देती थी। गांव गांव में पंचायतें कायम हो गई। नीमाना में 30 मई, 1922 को लगभग चार पांच हजार कृषकों ने राज्य के वतीरों का विरोध किया। डाबी, बराड़, बरुंदा, गरज आदि में भी ऐसे संगठनों ने राज्य के विरूद्ध आवाज उठाई। लकड़ेश्वर, हुन्डेश्वर महादेव

25– नयनूराम राजस्थान सेवा संघ की बून्दी शाखा की बागडोर संभाल रखी थी। यहां के कृषक आन्दोलन को निश्चित दिशा देने का श्रेय इन्हें है। वे समय समय पर पथिक द्वारा दिये गये निर्देशनों को बून्दी में क्रियान्वित करते थे। यहां के आन्दोलन को उन्होंने अहिंसात्मक बनाया। ये हाड़ौती के प्रथम और कर्मिष्ट नेता थे। इस क्षेत्र की वे राजनैतिक चेतना और लोग जागरण के अग्रदूत थे। इनकी हत्या 1941 में एक निर्दयी विरोधी दल द्वारा करवाई गई थी, जब कि वे रामगंज मंडीसे अपने गांव निमाणा जा रहे थे। (सुमनेश जोशी–राजस्थान में स्वतन्त्रता संग्राम के सेमानी, पृ. 152–153)

26– हरिभाई किंकर एक सार्वजनिक कार्यकर्त्ता थे। उन्होंने पथिकजी के सहयोग के रूप में रहकर चित्तौड़ की विद्या प्रचारिणी की तथा राजस्थान सेवा संघ की निष्टा से सेवा की। लोक जागरण के लिए वे लोकगीत की धुनें बनाकर राजनैतिक चेतना को जागृत करते थे। उनमें पदलोलुपता का अभाव था और धनाभाव के संकट के रहते हुए वे अपने उद्देश्यों से कभी नहीं हटे।

27– नानक भील एक निर्भीक, साहसी और सत्यनिष्ठ पं. नयनूराम का विश्वास पात्र कार्यकर्त्ता था। वह लोक गीत गा गा कर जनता में जागरण करता था और हाडोती अंचल में जनचेतना जगाता था। डाबी नामक गांव मे जब किसानों का राज के अत्याचार के विरुद्ध सम्मेलन हो रहा था और वह मंच पर झंडा गीत गा रहा था कि पुलिस ने उनकी पीठ पर गोली लगा दी। वह खून से लथपथ अवस्था से उठकर वन्देमातरम् के उच्चारण के लिये सो गया (सुमनेश जोशी–राजस्थान में स्वतन्त्रता के सेनानी, पृ. 70–71).

में चराई, मवेशी निकासी, लगान आदि विषयों को लेकर विरोध प्रदर्शित किया गया। 1936–1945 तक ऐसा विद्रोह सजग बना रहा। इस इलाके में लाग–बाग भी बड़ी संख्या में ली जाती थी और भूमिकर में भी वृद्धि कर दी गई थी। बून्दी राज्य में रिश्वत का बड़ा ही दौर था। छोटे बड़े सभी कर्मचारी प्रजा को चूसा करते थे। रामनारायण चौधरी ने खूब अच्छी जांच करके अपनी रिपोर्ट प्रकाशित की जिसका बून्दी नरेश पर केवल इतना प्रभाव हुआ कि कुछ शिकायत दूर कर दी गई और आन्दोलन आगे चल कर 1943 तक समाप्त हुआ। गूजरों ने भी इसमें सक्रिय भाग लिया था। 1936–1945 में गूजरों ने स्वतन्त्ररूप से चराई के कर को लेकर तथा अन्य मांगों को लेकर विद्रोह कर दिया जिसे शांत कर दिया गया।[28]

इन ऊपर वर्णित क्रांति तथा बिजोलिया एवं बेंगू आंदोलन में जो सजीवता दिखाई देती है उसको अनुप्राणित करने वाला व्यक्ति पथिक था। इसी तरह इन दोनों कृषक आन्दोलनों में सक्रिय सहयोग देने वाले व्यक्ति माणिक्यलाल वर्मा थे। अतएव इनके योगदान का क्रमशः वर्णन अपेक्षित है।

विजयसिंह पथिक :

पथिक राजस्थान में क्रांति और कृषक आन्दोलन के अग्रदूत थे। वे उत्तर प्रदेश के पश्चिमी भाग में स्थित बुलन्दशहर के पास बसे हुए एक गांव गूठावली के गूजर परिवार में उत्पन्न हुए थे। बचपन से ही उन पर 1857 की क्रांति की घटनाओं का जिनका अनुभव इनके परिवार को था, प्रभाव था। उनकी शिक्षा विधिपूर्वक नहीं हुई परन्तु उन्होंने हिन्दी की अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली थी और वे अंग्रेजी की पुस्तकों का भी अर्थ निकाल लिया करते थे। वे हिन्दी में कविताएं लिखा करते थे। वे क्रांति के उग्र विचारों को छन्दोबद्ध भाषा में व्यक्त कर दिया करते थे उन दिनों पश्चिमी उत्तरप्रदेश के क्रांतिकारियों का जिनमें शचीन्द्र सान्याल तथा रासबिहारी बोस मुख्य थे उन पर प्रभाव पड़ा और वे क्रांतिकारी समिति के जिसका नाम अनुशीलन समिति था, सदस्य बन गये। पथिक जी भी काम हाथ में लेते थे उसको लगन के साथ पूरा किया करते थे। इस कर्त्तव्यपरायणता के कारण क्रांतिकारियों ने उनको बड़ा उपयोगी सदस्य समझा। उस समय क्रांतिकारियों या आंतकवादियों के पास शस्त्रों का अभाव था। उनमें से कुछ लोग बम बनाना जानते थे। परन्तु इसके लिये सामग्री का संग्रह करना और फिर गुप्त रूप से बम का कहीं निर्माण करना बड़ा

28– हो.पो.नं. 18, 1922, बूंदी राज्य का पत्र पो. एजेन्ट को. नं. 592, 599, मई, 1922, रा.अ; बूंदी रेकार्ड नं. 252, फा नं. 148, 1924, बूंदी रेकार्ड नं. 252, 1922, राज्य का पत्र एजेन्ट को नं. 88, 1922–23, बूंदी रेकार्ड नं. 23, 1923, नं. 243 1942–43; नवीन राजस्थान, जून 1922; राजस्थान, सेवा संघ रिपोर्ट 30 जून 1922; नवीन राजस्थान, अप्रेल 1923, राजस्थान सेवा संघ रिपोर्ट, 1928; बूंदी रेकार्ड, नं. 45,80, 1945; राकेश, हाड़ौती का स्वतन्त्रता का आन्दोलन, 197–202.

आवश्यक था । इसलिए पथिकजी को राजस्थान में भेजा गया कि वे तलवार, कटारे, भाले. बन्दूकें और बरछियां एकत्रित करके अपनी समिति के सदस्यों के पास भेजें । पथिक का जन्म का नाम भोपसिंह था । ऐसे कामों के लिए राजस्थान में आकर उन्होंने अपना नाम विजयसिंह रख लिया था । उन्होंने दाढ़ी और मूंछें भी राजपूत शैली की रखली थी और वे राजपूती ढंग का साफा बांधने लगे थे । वे अपने को राजपूत कहा करते थे । पथिक ने तोड़ेदार बन्दूकों की मरम्मत करने और खाली कारतूसों को पैरने का काम सीखने के लिए अजमेर के रेलवे वर्कशाप में नौकरी करली और वहीं के सुखदीन मिस्त्री को अपने दल में मिला लिया ।[29]

राजस्थान में क्रांति की नयी योजना :

हथियारों की खरीद और संग्रह के साथ साथ राजस्थान में क्रांतिकारी संगठन बनाने की योजना देकर भी रासबिहारी ने पथिक और भाई बालमुकुन्द को राजपूताना में भेजा था । रासबिहारी बोस की योजना थी कि अंग्रेज विरोधी राजाओं को भी क्रांति के लिए प्रोत्साहित करने का प्रयत्न किया जाए । भाई बाल मुकुन्द जोधपुर के राजघराने में इस दृष्टि से क्रियाशील थे । राजस्थान के प्रसिद्ध क्रांतिकारी ठाकुर केसरीसिंह बारहठ राजपूताना के कई राजाओं में देश प्रेम की भावनाएं जागृत करने में लगे हुए थे । रास बिहारी बोस के आदेशानुसार पथिक कई राजपूत राजाओं से मिले और जोधपुर तथा कई अन्य राजाओं से उन्होंने अच्छे संबंध स्थापित कर लिये । वे खरवा ठाकुर गोपाल सिंह के निजी सचिव बन गए और राजाओं को भावी विप्लव में सहायता देने के लिए प्रेरित करने लगे।[30]

क्रान्ति की योजना विफल हो गई :

रासबिहारी बोस के प्रयत्न से क्रांतिकारियों से सैनिकों का संबन्ध स्थापित हो चुका था। राजस्थान में खरवा के ठाकुर तथा देश भक्त व्यवसायी दामोदरदास राठी की सहायता से पथिक को अजमेर, ब्यावर व नसीराबाद पर अधिकार कर लेने का भार सौंपा गया था । पथिक जी तेजी के साथ क्रान्तिकारी शक्तियों को संगठित करने में लग गये थे । योजना यह थी कि 21 जनवरी, 1915 का पंजाब, देहली, उत्तर भारत तथा राजस्थान में एक साथ सशस्त्र विद्रोह आरम्भ कर दिया जाय परन्तु दुर्भाग्य से 19 जनवरी को ही सरकार को इस आन्दोलन की सूचना मिल गई और पंजाब के क्रान्तिकारी पकड़ लिये गये । राजस्थान में पथिक, खरवा ठाकुर गोपालसिंह, ठाकुर मोड़सिंह तथा सवाई सिंह आदि 21 जनवरी, 1915 को खरवा स्टेशन से कुछ दूर जंगल में कई हजार सैनिक व क्रान्तिकारी दल लिए हुए विप्लव आरम्भ करने का संकेत पाने की प्रतिक्षा कर रहे थे । रात्रि को दस बजे के बाद अजमेर से अहमदाबाद जाने वाली गाड़ी से रास बिहारी को भेजा हुआ क्रान्तिकारी व्यक्ति खरवा के स्टेशन से गाड़ी आगे निकलने पर बम का धड़ाका

29- सीडीशन कमेटी रिपोर्ट, 1918, पृ. 21; पृथ्वीसिंह मेहता – हमारा राजस्थान, पृ. 305–306

30- आर्मस्ट्रोंग रिपोर्ट, राजपुताना कोन्फीड्रेसी, 15-6-1914; राजपुताना ऐजेन्सी कान्फी. फाइल, नं. 51, भाग-1, फा. नं. 2, अ. बी.

करता। यह अजमेर ब्यावर तथा नसीराबाद पर आक्रमण करने का संकेत था। किन्तु संकेत नहीं मिला। अगले दिन संदेशवाहक ने आकर लाहौर में घटी घटनाओं की उन्हें सूचना दी। तुरन्त ही पथिक ने तीस हजार बन्दूकों तथा अन्य अस्त्र शस्त्रों तथा गोला बारूद को गुप्त स्थानों में छिपा दिया और क्रांतिकारी सैनिकों को बिखर जाने का आदेश दिया।[31]

मोर्चा बन्दी और फिर नजरबन्दी :

क्रान्ति की योजना की इस असफलता के बाद पथिक अपने दिल्ली के एक साथी रलियाराम के साथ बड़ोदा तक जाकर सब साथियों को सावधान कर आये। अब यह निश्चितता ही थी कि वे किसी भी अन्य समय गिरफ्तार कर लिये जाएंगे। ऐसा ही हुआ। सात-आठ दिनों के पश्चात् पुलिस ने खरवा पर छापा मारकर गोपालसिंह और पथिक आदि को गिरफ्तार करने की तैयारी की जिसकी खबर उन्हें मिल गई। भोपालसिंह [पथिक] ने चुपचाप आत्मसमर्पण कर अंग्रेजों की जेल में अनिश्चित काल तक सड़ने और साधारण चोर डाकुओं और खूनियों की तरह फांसी पर लटकाए जाने की उपेक्षा उन सबने लड़कर मरने का निश्चय किया। अन्य साधारण सदस्यों को खरवा से हटा दिया गया। इसके बाद ठाकुर गोपालसिंह, उसके चाचा मोडसिंह, भोपसिंह, रलियाराम और सवाईसिंह नाम के 5 साथी बहुत से शस्त्रास्त्र और खाने पीने लायक काफी सामान लेकर खरवा के गढ़ से निकल कर रातों रात पास के जंगल में बना ओहदी (शिकारी बुर्ज) में जा डटे और वहां मोर्चाबंदी की।[32]

शिकारी बुर्ज में घेराबन्दी :

अजमेर का अंग्रेज कमिश्नर खुद 500 सैनिकों की टुकड़ी लेकर उन्हें खोजता हुआ वहीं आ पहुंचा, और उन्हें चारों ओर से घेर कर आत्मसमर्पण के लिए बाध्य करने लगा। किन्तु उन्हें मरने मारने के लिए आमादा देखकर उसे भय हुआ कि कहीं सचमुच ही उन्हें दो चार दिन उनसे लड़ना पड़ा तो चारों तरफ की जनता उनकी मदद के लिए उसके खिलाफ उलट पड़ेगी। फिर साथ की हिन्दुस्तानी फौजी टुकड़ी की राजभक्ति पर भी उसे भरोसा नहीं था। ऐसी दशा में यदि मुकाबला हो जाता तो सारे राजस्थान में आग भड़क उठना भी असंभव नहीं था। जहां तक हो सके गोली चलाने की नोबत न आने देने का आदेश उसे ऊपर से भी था।[33]

31- मणिलाल के बयान, फा. नं. 1, सुर्जनसिंह के बयान फा. नं. 2, सांवलराम के बयान फा. नं. 4, कोन्फीडेन्शल रेकार्ड, अ. बी.; शंकर सहाय सक्सेना, बिजोलिया का किसान आन्दोलन, पृ. 60-61

32- फो. पो. सीक्रेट, 1 मार्च, 1917, नं. 1-29, रा. अ.; सक्सेना, विजयसिंह पथिक, पृ. 104-105

33-फो. पो. सीक्रेट, 1 मार्च 1917, नं. 1-29, रा. अ.

अंग्रेज कमिश्नर का समझौतों का प्रयास और नजरबन्दी :

अंग्रेज कमिश्नर ने राव गोपालसिंह और पथिक को कहलाया कि अभी तो उनके ऊपर कोई विशेष अभियोग या दोषारोपण भी नहीं है सिर्फ संदेह में ही गिरफ्तार किया जा रहा है। यह भी संभव है कि उनमें से किसी पर कोई अपराध साबित ही न हो, ऐसी दशा में सरकार से मुकाबिला करके अपने ऊपर अपराध ओढ़ने में कोई बुद्धिमानी नहीं है। बहुत सी बहस मुबाहिसे के बाद यह समझौता हुआ कि उन्हे किसी हालात या जेल में बन्द कर किसी ऐसी जगह नजरबन्द किया जाएगा जहां आसपास जंगल में शिकार की पुरी सुविधा हो। शिकार के लिये बन्दूक तलवार आदि शस्त्र और सवारी के लिए घोड़े सदा उन्हें मिलते रहेंगे और उनके पास जहां तकदृष्टि पड़े कोई फौज पुलिस आदि का पहरा उस रूप में न रखा जाएगा जिसमें उन्हें कैदी होने का भान हो।[34]

टाडगढ़ के किले में नजरबन्दी और वहां से फरारी :

इस समझौते के अनुसार राव गोपालसिंह और पथिक को मेवाड़ और मारवाड़ की सीमा पार स्थित टाडगढ़ के किले में नजरबन्द किया गया जहां आसपास तीन मील तक जंगल में उन्हें शिकार आदि के लिए जाने की खुली छूट थी। किन्तु इनके 15 दिन बाद ही सोमदत्त नामक एक व्यक्ति मुखबिर हो गया। लाहोर षडयंत्र के मामले की जांच में उसने भोपसिंह का नाम भी लिया जिससे उसे गिरफ्तार कर तुरन्त लाहोर भेजने का हुकम टाडगढ़ पहुंचा। लाहोर से गिरफ्तार के इस वारंट की सूचना मिलते ही भोपसिंह साधु का वेश बनाकर पहरेदारों से बच कर टाडगढ़ किले से 10 जुलाई 1915 को नीचे के सघन जंगल में रम गये।[35]

टाडगढ़ के बयावान जंगलों में :

वे जंगल जंगल भटकते हुए "गुरला" गांव में पहुंचे। वह जागीर का गांव था। उनके पास उस समय केवल सात आने शेष रह गये थे। गुरला के ठाकुर साहब ने उन्हें जनाने (रनवास) में छिपा दिया और उनकी चिकित्सा करायी। इससे ठाकुर साहब की देशभक्ति और क्षत्रित्व का परिचय मिलता है। जब पथिक जी स्वस्थ हो गये तो उन्होंने गुरला छोड़ दिया और वे साधु के वेश में भिनाय पहुंचे। वहां उनके व्यक्तित्व से प्रभावित होकर अधिक लोग आने जाने लगे और गुप्तचर भी चक्कर काटने लगे। फिर उन्होंने वह स्थान छोड़ दिया और खारी तट में छिपे हुए अस्त्रशस्त्र निकाल कर राजपूत का वेश धारण किया और उस कुटिया को छोड़ कर चल पड़े। वहां से भेंगटिया होते हुए कांकरोली पहुंचे। पथिक जी को कांकरोली में कुछ देशभक्त युवक मिले। उनका एक छोटा सा दल था। उस युवक दल ने राजसमंद तालाब के निकट भाणा नामक गांव में पथिक जी के रहने

34–शंकर सहाय–बिजोलिया का किसान आन्दोलन, पृ. 61

35– फो. पो. सीक्रेट, 1 मार्च, 1917, नं. 1 29, रा. अ.; बहादुर भगवानसिंह के बयान, रिवेतूज्ड इन लंदन: डा. सक्सेना, 'पोलिटिकल मूवमेन्ट एण्ड अवेकनिंग इन राजस्थान, पृ. 138.

का प्रबन्ध किया । पथिक जी ने उन युवकों का मार्गदर्शन करना प्रारम्भ कर दिया और एक पाठशाला खोली जिसके द्वारा वे बालकों में भी देशभक्ति के भाव भरने लगे। कांकरोली का युवक दल पथिक जी के मार्गदर्शन में सक्रिय हो गया तो पुलिस तथा गुप्तचर विभाग उस क्षेत्र में अधिक सतर्क हो गया।[36]

पथिक जी को यह सूचना मिली की गुप्तचर विभाग को उन पर संदेह हो गया है। उन्होंने वह स्थान एकाएक छोड़ दिया। वहां से हट कर वे मोही चले गए और एक परिचित डूंगर सिंह भाटी के पास रहे। वहां भी उन्होंने एक पाठशाला स्थापित की। वहां कुछ समय ठहरकर अधिक सुरक्षित स्थान की खोज में जहाजपुर पहुंचे। वहां भी उन्होंने एक पाठशाला स्थापित की। जब उन्हें लगा कि जहाजपुर भी उनके लिए सुरक्षित स्थान नहीं है तो वे चित्तौड़ चले गये, और वहां विद्या प्रचारिणी सभा की स्थापना की। उनकी कल्पना थी कि चित्तौड़ में वे इस संस्था के माध्यम से एक सबल क्रान्तिकारी संगठन खड़ा करेंगे।

चित्तौड़ से दो किलो मीटर दूर ओछड़ी गांव के जागीरदार ठाकुर भूपालसिंह थे। पथिक जी को ठाकुर भूपालसिंह चित्तौड़ से ओछड़ी ले आये। वहां उन्होंने विद्या प्रचारिणी सभा की शाखा खोली। ओछड़ी के समीप ही पुठोली ठाकुर से भी पथिकजी का घनिष्ठ परिचय हो गया था और कभी कभी पुठोली भी जाकर रहते थे।[37]

क्रांति की असफलता के बाद :

क्रांति की इस असफलता के बाद पथिक जी के सारे साथी बिखर चुके थे। बन्दूकों और हथियारों का संग्रह भी अस्त व्यस्त हो चुका था। इस समय तक अर्जुनलाल सेठी जयपुर जेल से मद्रास की वेलूर जेल में नजरबन्द थे और ठाकुर केसरीसिंह बारहठ हजारी बाग जेल में अपनी लम्बी कारावास अवधि पूरी कर रहे थे। केसरीसिंह बारहठ और राव गोपालसिंह का रासबिहारी बोस जैसे क्रांतिकारियों से स्पष्ट संबंध होने की सूचना मिलने से राजपूताना के राजाओं की गर्दन भीतर ही भीतर ऐसी दबी की वे अब क्रान्तिकारियों की तरफ देखने तक का साहस नहीं कर सकते थे। अंग्रेजों ने देशी राजाओं के उन सभी सैनिकों और सेना अधिकारियों को जिनका क्रान्ति की योजना और क्रान्तिकारियों के साथ सम्बन्ध होने का जरा भी संदेह हुआ, रियासती सेनाओं से चुन चुन कर उत्तरी अफ्रीका में लड़ाई के मैदान पर भिजवा दिया था। किसी बहाने उन्हें अपदस्थ करके उन पर कड़ी नजर रखना आरम्भ कर दिया। दूसरे उन्होंने भारत में गोरी सेनाओं की संख्या भी इसके बाद तुरन्त बढ़ा दी और भारतीय सेनाओं को युद्ध के मोर्चे पर बाहर भेज दिया। ऐसी दशा में विदेशों से जाकर शस्त्रास्त्र भेजने का नया सिरे से प्रबन्ध करने के सिवाय भारत के क्रान्तिकारियों के लिए अब कोई चारा नहीं रहा। क्रान्ति की योजना की असफलता के बाद अप्रेल 1915 में स्वयं रासबिहारी को भी भारत के बाहर जाना

36- डिफेन्स ऑफ इंडिया एक्ट, 8 मार्च, 1915; बिजोलिया किसान आन्दोलन का इतिहास, पृ. 61-62, सक्सेना, विजयसिंह पथिक, पृ. 108-111

37- सक्सेना, पथिक, पृ. 115-120.

पड़ा। ऐसी स्थिति में पथिक समाज सुधार, विद्या प्रचार और जन जागृति के कामों में रुचि लेने लगे। आस पास के मेवाड़ के गांवों में उनकी ख्याति बढ़ने लगी।[38]

अब पथिक की रुचि क्रांतिकारी गतिविधियों से हट कर रचनात्मक काम की ओर होने लगी। विद्या प्रचारिणी सभा तथा उनकी शाखाओं के द्वारा उन्होंने उसको मूर्त रूप तो दे दिया था, फिर भी उनकी क्षमता के उपयोग के क्षेत्र की अपेक्षा थी। भाग्यवश 1913 में बिजोलिया में ठिकाने के विरुद्ध कृषकों का आन्दोलन का श्रीगणेश हो चुका था। वहां एक कर्मठ नेता की आवश्यकता थी जिसकी पूर्ति सीताराम दास ने उनके आमन्त्रण द्वारा की। बस उनकी विचारधारा का स्थान कृषक क्रांति ने ले लिया। वे 1916 में बिजोलिया पहुंच गये।[39]

पथिक ने विशेष उल्लेखनीय कार्य उदयपुर के बिजोलिया व बेगूं ठिकाने में 1916 से 1921 तक किया। वहां के किसानों से लाग-बाग के विरुद्ध सत्याग्रह करवाया और लगान देना बन्द करवा दिया। पथिक रात्रि में तो बिजोलिया और उस से सम्बद्ध गांवों में प्रचार कार्य करते थे, किसानों का उत्साह बढ़ाते थे और प्रातः काल होते होते ऊंट पर सवार होकर बून्दी के मार्ग से कोटा आ जाते थे तथा वहां कोटड़ी ने जागीरदार कविराजा दुर्गादान के यहां दिन बिता कर पुनः सायंकाल बिजोलिया चले जाते थे।[40]

सर्व प्रथम पथिक जी ने शिक्षा प्रचारार्थ बिजोलिया में पाठशाला चलाई। विद्यार्थियों के मानसिक विकास के साथ साथ उनके शारीरिक विकास के लिये खेल, व्यायाम, परेड़ के प्रशिक्षण की व्यवस्था की। इसके आड़ में वे रात्रि को कृषकों संगठित करने का काम करते थे। इसी अवधि में पत्र पत्रिकाओं में इस आन्दोलन की गतिविधि की सूचना भेजते थे। ये उनकी सूझबूझ थी कि यह आन्दोलन देशव्यापी समस्या बन गया। गांधीजी, तिलक मदनमोहन मालवीय जैसे चोटी ने नेताओं का ध्यान इस और आकर्षित कर इसमें नवजीवन का संचार किया। इस आन्दोलन को सुदृढ़ बनाने के लिये उन्होंने बिजोलिया और बून्दी में पंचायतें स्थापित कर दी जो एक प्रकार से जन सत्तात्मक समानान्तर संगठन था। इस आन्दोलन की सफलता का सम्पूर्ण श्रेय पथिक जी को जाता है। इस आन्दोलन को मेवाड़ के ठिकानों और खालसे के गांवों में पहुंचाना उन्हीं की देन थी।[41]

38– डिफेन्स ऑफ इंडिया एक्ट, 1915.

39– साधुराम के बयान, फा. नं. 19, कोन्फीडेन्शल रेकार्ड, अ. बी.; तरुण राजस्थान, 21 जुलाई, 1924, फा. नं. 9 बिजोलिया एजीटेशन, 1922, अ. बी., सक्सेना, पथिक, पृ. 266; सक्सेना–पद्मजा बिजोलिया आन्दोलन, पृ. 108

40– नवीन राजस्थान, जुलाई, 1922 शंकरसहाय सक्सेना पद्मजा बिजोलिया का किसान आन्दोलन. पृ. 82–9081

41–फा. नं. 10, 32, कोन्फीडेन्शल, अ. बी.; नवीन राजस्थान, 18 जून, 1922; नवीन राजस्थान, जुलाई, 1922; सक्सेना शंकरसहाय–बिजोलिया का किसान आन्दोलन; पृ. 82 से 90.

बिजोलिया के आन्दोलन को एक सीमा तक सफल बनाकर बाकी का काम उन्होंने माणिक्यलाल वर्मा पर छोड़ दिया और वे पत्रकार तथा समाज सुधारक बन गये। उनको हिन्दी लिखना तो अच्छा आता ही था। अजमेर के माली पाड़े में एक मकान लेकर वहां उन्होंने अपना प्रेस जमाया और वहां से एक साप्ताहिक पत्र नवीन राजस्थान निकालने लगे। सम्पादन का अधिकांश काम उनके सहयोगी रामनारायण चौधरी करते थे। वह समाचार पत्र भी दो तीन वर्ष चला। फिर सरकार की कुदृष्टि और अर्थाभाव के कारण यह बन्द हो गया। पथिक के विचारों की गांधीवादी से भी संगति नहीं होती थी। इसलिये वे इधर उधर घूमकर और अपने ढंग से लोगों में जागृति उत्पन्न करने का कार्य करने लगे। अन्त में पथिक अजमेर में श्रीनगररोड़ पर रहने लगे। और अपने सेवाभाव से जन जागरण के कार्य में लगे रहे। अन्त में 28 मई; 1954 में इस महान् क्रान्तिकारी ने महाप्रयाण किया।[42]

पथिक जी एक सफल शिक्षक, प्रभावशाली वक्ता उच्च कोटि के लेखक, पत्रकार, कवि और साहित्यकार थे। उनमें एक निष्ठावान नेता के गुण थे जिसके फलस्वरूप उनका जन-आन्दोलन सफलता की मंजिल तक पहुंच सका। उनका बिजोलिया तथा बूंदी सत्याग्रह भावी उत्तरदायी सरकार के सृजन का सुदृढ़ साधन बना। जब कभी राजस्थान में क्रांति की चर्चा की जायगी पथिक जी का नाम उसके जनक के रूप में अवश्य लिया जायगा।

माणिक्यलाल वर्मा :

पथिक जी के सहयोगियों में माणिक्यलाल वर्मा थे जिनका जन्म 4 दिसम्बर, 1897 ई. को बिजोलिया ठिकाने के पैतृक गृह में हुआ था। तीन पीढ़ी से उनके वंशज ठिकाने की सेवा में थे। उच्च शिक्षा न प्राप्त कर सकने पर भी उन्हें हिन्दी, उर्दू, संस्कृत का अच्छा ज्ञान था। जब पथिक जी 1916 में बिजोलिया आन्दोलन की बागडोर हाथ में लेने आये तो इन्होंने अपनी ठिकाने की सेवा से छुटकारा पा लिया और कृषकों को लाग-बाग से मुक्ति दिलाने के काम में लग गये। उन्हें कई बार इस आन्दोलन के दौरान कठोर कारावास की यातनाओं को भोगना पड़ा था पर वे अपने देश सेवा के ध्येय से कभी विचलित नहीं हुए। पाठशालाओं के संचालन और लोकगीत के माध्यम से उन्होंने बिजोलिया और बेगूं तथा समस्त मेवाड़ में जन चेतना को बढ़ावा दिया। पथिकजी को जो इस आन्दोलन में सफलता मिली उसमें वर्मा जी के सहयोग का बहुत बड़ा हाथ था। जब जब पथिक जी को भूमिगत रहना पड़ा था जब उन्होंने इस आंन्दोलन से अपना हाथ खींच अन्य देशहित प्रवृत्ति की ओर लग गये तो वर्मा जी ने इस आन्दोलन को आशातीत गति दी आन्दोलन के दूसरे चरण का संवाहन लगभग वर्मा जी ने किया। माल की भूमि किसानों को पुनः दिलाने के प्रयास में उन्हें 1932–33 में कुंभलगढ़ के कठोर कारावास के कष्ट झेलने पड़े, परन्तु इसमें उन्हें पूरी सफलता मिली।[43]

42–फोर्ट नाइटली मेमोरंडम, नं. 428, 1923, अ. बी; उदयपुर, महकमाखास, फाइल नं. 89, 1925–27, फाईल नं. 381, 1932; लीडर, जुलाई, 1931

43–बूंदी रेकार्ड, फा. नं. 9. 1922 ए. पी; उदयपुर कान्फीडेन्शल रेकार्ड, फा. नं. 38/अ. नं. 4 अ. बी; कान्फी. नं. 89, 1925–27, अ. बी; लीडर, 3 जुलाई, 1932;

फिर भी वर्मा जी को इससे सन्तोष नहीं हुआ। उनमें सेवाभाव के प्रति अटूट श्रद्धा थी। उन्होंने मेवाड़ प्रजामण्डल की स्थापना तथा बागड़ के भीलों की सेवा तथा समाज सुधार आदि रचनात्मक कार्य किये जिसका वर्णन यथास्थान किया जायगा। ऐसा कर्मनिष्ठ, स्पष्ट वक्ता, जन सेवक 24 जनवरी, 1969 को हम से उठ गया। राजस्थान के जन आन्दोलन के इतिहास में वर्मा जी का नाम एक अग्रणी के रूप में अमर रहेगा। आज भी बिजोलिया एवं बेगूं आन्दोलन उनकी उत्कृष्ट उपलब्धि का प्रतीक है।[44]

अलवर में कृषकों का आन्दोलन और नीमूचाणा काण्ड :

मेवाड़ की भांति अलवर राज्य में भी किसानों ने आन्दोलन किया। यहां 80 फीसदी खालसा भूमि थी बाकी भूमि इस्तमरारदार, जागीर और माफी में विभक्त था। राजपूत विशेषतः इस्तमरारदार थे और जागीरदार भी अधिकांश वे ही थे। माफीदारों में राजपूत ब्राह्मण, कानुनगो, चारण आदि थे। अलवर में 1987 ई. से 1900 ई. तक और तत्पश्चात 1923-24 में बन्दोबस्त किया गया जिसमें लगान में वृद्धि की गई, परन्तु कुछ भूमिपतियों को लगान की दर में रियायतें भी की गई। परन्तु राजाओं के निजी खर्चों के बढ़ने से तथा रियासत की आर्थिक दशा संतोषजनक न होने से लगान के अतिरिक्त कई अन्य कर, नजराना, लाग आदि लगाये जाते थे जिससे आय व्यय का तलपट बराबर हो सके। इस स्थिति में किसान असन्तुष्ट होते जाते थे और उनकी कठिनाइयां बढ़ती जाती थी।[45]

जब पंडित टिक्कू ने 1923-24 में पैमाइश करवाई तो इसके फलस्वरूप लगान की दर बढ़ा दी गई और राजपूत कृषकों को कोई रियायत न दी। विशेषरूप से बानसूर और थानागाजी निजामत में बढ़ी हुई दरों से लगान वसूल किया जाने लगा। यहां के राजावत और शेखावत कृषक बढ़ी हुई दरों से लगान देने से इन्कार हो गये। वे तो पुरानी दर से उसे देना चाहते थे। अक्टूबर 1924 को माधोसिंह और गोविन्दसिंह के नेतृत्व में आन्दोलन की योजना बनाई गई और उसे क्रियान्वित करने के लिए उनकी बैठकें अलग-अलग स्थानों में की गई, इस बात पर जोर देने के लिए कि पुरानी दर से ही लगान वसूल किया जाय। अपने संगठन को मजबूत बनाने के लिए उन्होंने 1924 में क्षत्रीय महासभा दिल्ली का सहयोग भी मांगा और अपनी कठिनाइयों का ब्यौरा पुकार नामक पुस्तिका में प्रकाशित किया। इसमें जागीरदारों द्वारा लगाई गई लागतों का भी जिक्र किया गया था। आन्दोलनकारियों ने अस्त्र शस्त्र भी जमा कर राज्य की नीति का विरोध करने का निश्चय कर लिया। महाराजा अलवर और अंग्रेज सरकार को भी विज्ञप्तियां और तार भेजे गये कि उनकी मांगों पर वे विचार करें।[46]

44- शंकरसहाय सक्सेना, जो देश के लिए जिये, 80-258

45- इम्पीरियल गजट, भाग-5, पृ. 265, डायर की बन्दोबस्त की रिपोर्ट, 1900-1901, पृ. 152.

46- अलवर जुडीशियल रेकार्ड, फा.नं. 315, 1925, अ.अ.;
अलवर जागीर रेकार्ड, नं. 741, 1925, अ.अ.

जब इन मांगों पर कोई ध्यान नहीं दिया गया तो किसानों ने अपने खलियान से नाज को बिना राज्य का भाग दिये गाड़ियों में भरकर अपने घर पहुंचा दिया और वे हर कीमत पर सरकार से संघर्ष के लिए उतारू हो गये। 6 मई, 1925 को अलवर सरकार ने अस्त्र-शस्त्र पर रोक लगा दी और उन्हें एक जगह इकट्ठा होने से मना कर दिया। साथ ही 7 मई को महाराजा अलवर ने एक कमिशन जांच के लिए बिठा दिया जो इनकी मांगों पर विचार करे। इस कमीशन के सदस्य इन्सपेक्टर जनरल पुलिस,इंसपेक्टर जनरल शिक्षा विभाग और बानसूर के तहसीलदार थे।[47]

उसी दिन कमीशन के सदस्य नीमूचाणा पहुंचे, जहां राजपूत किसानों की एक सभा हो रही थी। अन्य स्थानों से भी सशस्त्र कृषक दुर्गा के नाम पर मिटने के लिए एकत्रित हो रहे थे, जिनकी संख्या लगभग 800 के थी। कमिशन ने बजाय समझौते की बातचीत किये उनको कुचल देने का निर्णय लिया। 13 मई, 1925 को सैनिक दल नीमूचाणा आ पहुंचा और पूरे गांव को घेर लिया कमाण्डर छज्जूसिंह ने मशीनगनें चलाने के आदेश दिये। रियासत की फौज ने प्रदर्शनकारियों पर खुला वार किया और गांव में आग लगा दी। इस अवसर पर 144 घर जला दिये गये, 60 पशु और लगभग 50 व्यक्ति मारे गये, सैकड़ों पुरुष, स्त्री, बच्चे और पशु हताहत हुए और 39 व्यक्तियों को गिरफ्तार किया गया। प्रताप के संवाददाता को घटनास्थल पर नहीं पहुंचने दिया। फिर भी तरुण राजस्थान एवं प्रताप के प्रतिनिधियों ने किसी तरह जाकर स्थिति का जायजा लिया और घटना का विवरण प्रकाशित कर दिया। इससे सारे देश में सनसनी फैल गई। महात्मा गांधी ने भी इस हत्याकांड की निन्दा की। रियासती सरकार ने जांच के लिए कमिशन बिठाकर उनके निर्णय के अनुसार कुछ लोगों को छोड़ दिया और नाममात्र का हर्जाना गांववालों को देकर सारे मामले पर लीपा-पोती कर दी। परन्तु लगान के सम्बन्धी रियायतें देने में सरकार को किसानों के सामने झुकना पड़ा और आंदोलन समाप्त कर दिया गया।[48]

भरतपुर में किसान आन्दोलन 1931–33

अलवर की भांति भरतपुर रियासत में 1900 में पैमाइश की गई, और उसके अनुसार लगान बढ़ा दिया गया। इस बढ़े हुए लगान के अलावा मलबा,पटवार और सड़क,अस्पताल तथा शिक्षा के विकास के लिए कर लिया जाता था। इस प्रकार के कर भार से किसान दबते जा रहे थे। उन्होंने एक अपील निकाल कर तमाम किसानों को संगठित होने का आह्वान किया और 23 नवम्बर, 1931 को स्टेट कोन्सिल के पास लगान घटाने के सम्बन्ध में प्रार्थना पत्र भेजा। जब इस पर कोई ध्यान नहीं दिया गया तो भोज नामक नम्बरदार के नेतृत्व में लगभग 500 किसान कोन्सिल के कार्यालय के सामने जमा हुए और उन्होंने बढ़े हुए

47– अलवर जुडीशियल फाईल नं. 315, 1925, अ.अ.

48– अलवर जुडीशियल रेकार्ड फाईल नं. 315. 1925, अ. अ; तरुण राजस्थान, 31 मई, 1925, 14 जून 1926, पृथ्वीसिंह महता, हमारा राजस्थान, पृ. 382; डा० पेमाराम, द एग्रेरियन मूवमेन्ट इन राजस्थान. पृ. 240–244.

तथा पुराने लगान न देने का ऐलान किया। इससे सरकार बौखला गई और 24 नवम्बर, 1931 भोज नम्बरदार को गिरफ्तार कर लिया और उसे 9 महीने के कारावास और 25 रुपये की सजा दी गई। ये दमनकारी कदम आन्दोलन को न दबा सके। अन्त में कोंसिल को विवश हो नई दरों से लगान की वसूली पांच वर्ष के लिए स्थगित कर देनी पड़ी जिससे आन्दोलन शांत हो गया।[49]

जयपुर रियासत में कृषकों का आन्दोलन 1922-1947 :

जयपुर रियासत में जागीरदारों के इलाकों में अन्य राज्यों की तरह कृषकों पर लगान, लाग-बाग तथा करों का भार अधिक था। इनमें अधिकांश कृषक जाट थे जो सीकर, खेतड़ी, शेखावाटी, तोरावाटी, आदि क्षेत्रों में बसे हुए थे। ये क्षेत्र आन्दोलन के केन्द्र बन गये क्योंकि मूलत: संघर्ष किसानों और जागीरदारों के बीच था।[50]

सीकर ठिकाने का आन्दोलन :

सीकर जयपुर राज्य का एक बड़ा ठिकाना था। जिसका भूभाग 1455वर्ग में प्रसारित था। इसमें लगभग आधी भूमि ठिकाने को और आधी पर भोमियां और कृषक थे जो जागीरदार को लगान देते थे। भू-राजस्व की स्थिति में अनेक विषमताएं थी, कहीं बटाई में तो कहीं पांती में या नगद में लगान की वसूली होती थी। इसके अतिरिक्त अनेकों लाग-बाग, मापा आदि कर थे। इस प्रकार किसानों के उपज का अधिकाश भाग ठिकानेदार और ठिकाने के अधिकारियों के बीच बंट जाता था, बेचारे किसानों के पास अपनी उपज का एक थोड़ा हिस्सा ही जीवनयापन के लिए बच पाता था। 1922 में जब सीकर के रावराजा ठाकुर कल्याणसिंह ने उपज का पचास प्रतिशत लेना आरंभ किया तो किसानों ने संगठित हो इसका विरोध किया। ठाकुर ने कई किसानों की निर्मम पिटाई की और जबरन उनसे लगान वसूल किया गया। जब किसानों ने 1923 में जयपुर महाराजा तथा वहां के रेजिडेन्ट को इस दमन की शिकायत की तो पुरानी दरों से लगान वसूल करने तथा नई लागें न लगाने के आदेश ठाकुर को दिये गये। जब इन आदेशों का ठीक तरह पालन नहीं किया गया तो 1924 में पुन: आन्दोलनकारियों को जयपुर जाकर अपनी मांगों पर जोर देना पड़ा। परन्तु जब रियासत ने इस पर कोई ध्यान नहीं दिया तो तरुण राजस्थान के सम्पादक और राजस्थान सेवा संघ के मंत्री ने समझौते का प्रयत्न किया। जब इसमें कोई सफलता नहीं मिली तो चौधरी जी ने गांव गांव जाकर किसानों को एकता और संगठन के लिए तैयार कर दिया। इससे राज्य चिन्तित हो उठा और उसने रामनारायण चौधरी तथा हरिब्रह्मचारी का सीकर तथा जयपुर राज की सीमा में प्रवेश निषिद्ध कर दिया। तरुण राजस्थान पर भी रोक लगा दी गई। मार्च 1925 तक कई किसानों को भी कठोर कारावास का दण्ड दिया।[51]

49– भरतपुर कान्फीडेन्शल रेकार्ड, फा. नं. 63, 1931, फा. नं. 98, 1931–32 फा. नं. ए. एफ./33, भाग-1, 1933–34, अ. बी.: डा. पेमाराम' द एग्रेरियन मूवमेन्ट इन राजस्थान, पृ. 260–261

50– सेन्सस रिपोर्ट राजपूताना, 1931

51– जयपुर जुडीशियल फाइल नं. 7483, भाग–7, फा. नं. 13, भाग–1, 1925, अ. बी.; तरुण राजस्थान, 5 अप्रेल, 1925, डा. पेमाराम, द एग्रेरियन मूवमेन्ट इन राजस्थान, पृ. 146–149.

जब महकमाखास के प्रमुख रेनोल्डस ने यह देखा कि आन्दोलन दमन से नहीं काबू में आ रहा है तो उसने रावराजा को लगान में कमी करने को लिखा जिससे किसानों का आन्दोलन दब जाय। परन्तु रावराजा टालमटोल करता रहा। अप्रेल, 1925 को एक कमिशन भी स्थिति की जांच के लिए बिठाया गया, परन्तु इसकी रिपोर्ट पर भी ठिकाने ने अमल नहीं किया। तब तो किसानों में असंतोष अधिक फैला। इस समय भरतपुर के ठाकुर देशराज ने किसानों की अगवाई की और उनकी कठिनाइयों का विवरण राजस्थान सन्देश नामक पत्र में देकर देश का ध्यान इस ओर आकर्षित किया। 1913 में अखिल भारतीय जाट महासभा तथा राजस्थान जाट सभा के सदस्यों ने भी सीकर इलाके में घूम-घूम कर किसानों में जागृति का संचार किया। 20 जनवरी से 26 जनवरी 1934 में प्रजापति जाट महायज्ञ का आयोजन किया गया जिसमें मास्टर चन्द्रभान, चौधरी हरूसिंह तथा ठाकुर देशराज चौधरी देवसिंह आदि ने सक्रिय भाग लिया। परन्तु इस प्रकार जाटों के विराट आयोजन को ठिकाना खतरनाक मानता था। अतएव उनकी गतिविधि को रोकने के लिए चन्द्रभान सिंह जो आयोजन का मंत्री था गिरफ्तार कर लिया। इससे किसानों में और अशांति पैदा हो गई और लगभग 200 जाटों ने जयपुर सरकार को ठिकाने की दमन नीति के विरुद्ध ज्ञापन दिया। इस कार्यवाही से रुष्ट होकर ठिकाने ने पृथ्वीसिंह, चौधरी हरूसिंह, चौधरी तेजसिंह आदि 18 इनके नेताओं को गिरफ्तार कर लिया और कई स्त्रियों के साथ मारपीट की। इसी तरह जब कत्तातल के इसके विरोध में जाटों ने सभा की तो इसमें भी कई नेताओं को जिसमें गणपतसिंह, जोवनसिंह, राधामल आदि मुख्य थे गिरफ्तार किये गये। सिंहोत के ठाकुर ने अपने यहां स्त्रियों को बाल खींच कर घसीटा और अपमानित किया। इस नृशंस दमन के विरुद्ध 10,000 स्त्रियों ने संगठित हो सरकार से सिंहोत ठाकुर मानसिंह को दंडित करने की मांग की।[52]

जब बर्बरता की कोई सीमा न रही तो जाट पंचायत में अधिक मजबूती पदा हो गई और अब किसान लगान न देने पर उत्तर आये। इस पर रावराजा ने अत्याचारी चक्र को और जोरों से चलाया। कर वसूली की सख्ती में स्त्रियों के आभूषणों का अपहरण करना आरंभ कर दिया और घरों के फर्शों तक को भी खोद दिया गया जहां से गड्डा हुआ धन लगान के बजाय लिया जा सके। जाट पंचायत को अवैध घोषित किया गया। यहां तक छोटूराम चौधरी की जो जाटों का वरिष्ठ नेता था, आन्दोलन से प्रभावित क्षेत्रों में जाने से रोक लगा दी। खालसा के जाटों को भी लगान देने इन्कार करने पर इसी प्रकार की यातनाएं दी गई। अब तो प्रजामण्डल जयपुर ने भी तथा जाटों की अन्य राज्यों की संस्थाओं ने भी इस आन्दोलन में रुचि लेना शुरु किया, जिसके फलस्वरूप जयपुर रियासत ने

52–जयपुर रेवैन्यू रेकार्ड, फाइल नं. 4352, फाइल नं./678,
जयपुर जुडिशियल रेकार्ड, 7483, भाग–10, अ.बी.; नेशनल काल, 14 मार्च, 1934, पृ 1; अर्जुन, 21 अप्रेल 1934; विश्वामित्र, 27 अप्रेल 1934; डा. पेमा राम, द एग्रेरियन मूवमेन्ट इन राजस्थान, पृ. 150–155.

लगान में रियायतें कर दीं और ज्योंहीं 1947 में देश का वातावरण बदला सीकर के आन्दोलनकारियों की मांगें मान ली गई तथा लाग–बाग एवं बेगार समाप्त कर दिये गये ।[53]

शेखावाटी का कृषक आन्दोलन :

जयपुर के शेखावाटी में उदयपुरवाटी, सिंघानीवाटी, नरहरवाटी और झुँझुनूवाटी के क्षेत्र सम्मिलित थें । इनमें सभी ठिकानेदार थे, जिनकी संख्या 421 थी । बडी जागीर में नवलगढ़ मंडावा, डूंडलोद, बिसाऊ और मालासर थे जो सम्पूर्ण क्षेत्र का पचत्तर प्रतिशत भाग था । इस भाग के जागीरदार मनमाना लगान लेना, न्याय में अनियमितता करना, किसी को इच्छानुसार तंग करना या दंडित करना अपना विशेष अधिकार मानते थे । इनके इस बतीरे से वहां के किसान दुःखी थे । इस स्थिति से छुटकारा पाने के लिए 11 जुलाई, 1924 को जाट किसानों ने जागीरदारों की महकमाखास, जयपुर में शिकायत कर दी । इसी अवधि में जब मलसीसर ठिकाने के ठाकुर ने एक रुपया प्रति बीघा सिवाय लगान के किसानों से वसूल करना चाहा तो उन्होंने देने से इन्कार कर दिया । ठाकुर ने क्रुद्ध होकर अपने 50–60 सेवकों को भेजकर किसानों को खूब पिटवाया । इनकी सहायता के लिए ज्योंही रामनारायण चौधरी सीकर से वहां पहुंचे तो इनके जयपुर रियासत में प्रवेश पर रोक लगा दी । इसी तरह बोडापानी–खंडाला के 25 सवारों तथा 50 आदमियों ने ढाणी गंगाराम को लूटा और वहां के ग्रामवासियों को पीटा और उन्हें "खोड़" में डाल दिया । मंडावा ठाकुर भी इस तरह के व्यवहार से बाज न आये । इस पर किसानों ने बगड़ में 5 नवम्बर, 1925 को एक सभा का आयोजन किया और उसके पदाधिकारियों को चुना । रामसिंह प्रेसिडेन्ड, बूढ़ा जाट वाइस प्रेसीडेन्ट और रतनसिंह मन्त्री निर्वाचित हुए । ये जाट नेता गांव गांव जाकर जाटों में एकता का सन्देश देते रहे । इन विद्रोही गतिविधियों की ओर जयपुर सरकार का ध्यान आकर्षित करने की पहल मंडावा डूंडलोद एवं नवलगढ़ के ठाकुरों ने की । राज्य ने एक कमिशन की नियुक्ति की जिसने किसानों की कुछ मांगों का समर्थन किया । इस पर इन ठिकानेदारों को आगाह किया गया कि कृषकों को लगान देने में रियायत बर्ती जाय और लाग-बाग के भार को हल्का किया जाय । नितान्त ठिकानों को किसानों की कुछ मांगे माननी पड़ीं और आंदोलनकारियों से सद्व्यवहार का आश्वासन देना पड़ा ।[54]

परन्तु 1929 को खेतड़ी के एक ठिकानेदार ने लगान और लागतों में वृद्धि कर दी जिसको लेकर नौ गांवों के काश्तकारों ने लगान देना बन्द कर दिया । इस पर ठिकानेदारों ने उनकी जमीनों को दूसरे काश्तकारों के नाम कर दी । 1931 में देशराज ने अपने पत्र के माध्यम से कृषकों की मांगों को उचित ठहराया और भारतीय कृषक मण्डलों ने इनका समर्थन किया । झुंझुनू में आयोजित कृषक अधिवेशन में लाग-बागों, नाप की जरीब तथा पशुओं पर लगाये गये कर का विरोध किया गया । इस पर खेतड़ी ठिकाने ने सख्ती

53– जयपुर जूडीशियल रेकार्ड, 7433, भाग–6, 1938, फाइल 4326, फाइल नं. 3748, 1939, अ. बी.

54–जागीर फाईल नं. 13, भा–1, 1925, फाईल नं. 2549, भाग–1 1925–26, अ.बी.

का रूप अपनाया। हनुमानपुरा गांव को 16 मई 1934 को जला दिया गया जिसमें 23 घर राख के ढेर बन गये और कई बच्चे व महिलाएं जख्मी हो गये। डूंडलोद के ठाकुरने भी जयसिंहपुरा गांव पर हमला बोल दिया। कई किसानों को घोड़े की पूंछ से बांध कर घसीटा गया। इसमें कुछ 15 जाट पुरुष और स्त्रियों की हत्या हुई। इस गोलीकांड से शेखावाटी का कृषक उत्तेजित हो गया। नेतरामसिंह चौधरी गोविन्दराम तथा हरलालसिंह और तारकेश्वर वर्मा ने इस नृशंस कृत्य के विरुद्ध जयपुर सरकार से शिकायत की, फिर भी ठिकानेदार अपने दमनचक्र के प्रयोग से बाज न आये। हरलालसिंह और तारकेश्वर शर्मा के लिए वारंट इजरा किये गये इस अभिप्राय से कि कार्यकर्ताओं और किसानों में भय व्याप्त हो जाय। परन्तु नेतरामसिंह जिन्हें समाज सेवा का बीड़ा उठा रखा था और जो एक कर्मठ किसान नेता थे सामन्ती अत्याचारों को समाप्त करने में जुट गये। किसानों को जागृत करने के लिए उन्होंने गांव गांव में पाठशालाएं खोलीं और ठिकाने के शोषण के विरुद्ध जनमत जागृत किया। इन सेवाओं को राजद्रोह की संज्ञा दी गई और उन्हें कई बार कारावास की कठोर यातनाओं को भोगना पड़ा। इन्होंने बुद्धराम, चिमनराम, सरदार हरलालसिंह, पन्नेसिंह आदि के सहयोग से शेखावाटी के आंदोलन में जान फूंक दी और वहां के किसान आंदोलन को सजीव बनाये रखा। इसी बीच प्रजामण्डल के कार्यकर्ताओं ने भी अकाल राहत कार्य में शेखावाटी क्षेत्र के कृषकों की बड़ी सेवा की। परन्तु इस समाजसेवी कार्य को सरकार ने इस इलाके के लोगों को भड़काने का माध्यम माना। अतएव जमनालाल बजाज जो इस योजना के प्रमुख थे उनके जयपुर प्रवेश पर रोक लगा दी। उन्हें एक फरवरी, 1939 को अन्य किसान आन्दोलनकारियों के साथ गिरफ्तार कर लिया गया। सरकार ने किसानों को शांत करने के लिए बन्दोबस्त की रेख के अनुसार लगान वसूल करने की व्यवस्था की। फिर भी किसान सन्तुष्ट नहीं थे, क्योंकि जागीरदार घटी हुई दरों को लागू नहीं करवाना चाहते थे। परन्तु ज्योंहि लोकप्रिय मंत्रिमंडल बना उसने उदारता से किसानों को राहत दे, लाग-बाग और बेगार बन्द कर आन्दोलनकारियों की सभी समस्याओं को निपटा दिया। इस तरह शेखावाटी का आन्दोलन समाप्त हुआ।[55]

मारवाड़ में किसानों का आन्दोलन, 1923–1947

किसानों के आन्दोलन जो राजस्थान के अन्य भागों में हो रहे थे उसका प्रभाव जोधपुर में भी पड़ा। इसका प्रारंभ नर व मादा पशुओं की निकासी को छूट से जो 29 अक्टूबर, 1929 से जोधपुर सरकार ने दी थी, हुआ। ये पशु अजमेर, नसीराबाद बम्बई, अहमदाबाद आदि स्थानों में कत्ल करने के लिए खरीदे जाते थे। हजारों की संख्या में पशु मारवाड़ से बेचे जाने लगे और उन्हें रेल द्वारा यत्र-तत्र भेजा जाने लगा। इससे कृषकों को अपनी खेती, दूध, दही, घी आदि के व्यवसाय में हानि होने लगी। शीघ्र ही मारवाड़ हितकारिणी सभा एवं कृषकों ने इसका विरोध किया और जोधपुर महाराजा के पास इस हुकम को रद्द करने के लिए

55–जुडिशियल फा.नं. 7438, भाग–6, 1934, फा.नं. 2549, भाग–5, 1943, अ. बी; जयपुर गजेटियर, 1 फरवरी, 1946; डा. पेमाराम, द एग्रेरियन मूवमेंट इन राजस्थान, पृ. 191–205

प्रार्थना पत्र भेजे । कई कृषक और स्वयंसेवक रेलों की पटरी पर लेटकर पशुओं को बाहर जाने से रोकने लगे । 15 जुलाई, 1924 को उन्होंने गंग श्याम मन्दिर आम सभा आयोजित कर ऐसे घातक नियम का विरोध किया । इस आन्दोलन का नेतृत्व जयनारायण व्यास ने किया । उनके इस अभियान में शिवकरण जोशी ने प्रमुख रूप से सहयोग दिया । पहिले तो सरकार ने कई कार्यकर्ताओं को बन्दी बनाकर इसको समाप्त करने का प्रयत्न किया, परन्तु जब इसमें उसको सफलता नहीं मिली तो पहली सितम्बर, 1924 से पशु घास और भूसे की निकासी बन्द कर दी । यह कृषकों की मारवाड़ में पहली विजय थी ।[56]

पुनः 1929 में मारवाड़ हितकारिणी सभा ने जागीरदारों के विरुद्ध आन्दोलन चलाया जो किसानों से बेगार और भारी मात्रा में लगान वसूल करते थे । इस आन्दोलन में भाग लेने वालों में प्रमुख रूप से जयनारायण व्यास, आनन्दराज सुराणा, भंवरलाल सर्राफा, हेमचन्द्र छंगानी आदि थे । मारवाड़ में किसानों की माली हालत संतोषजनक नहीं थी क्योंकि खेती की भूमि उपजाऊ नहीं थी । लालबागों की संख्या 123 के लगभग थी जिनकी अदायगी के बाद उनके निर्वाह के लिए बहुत थोड़ा नाज बचता था । सर्व प्रथम रायपुर बगड़ी और बलुन्दा से लगान व लाल-बाग न देने का सत्याग्रह आरम्भ किया गया । तरुण राजस्थान द्वारा ठिकानों के अत्याचारों का विवरण आम जनता के समक्ष रखा गया । पहिले तो राज्य ने किसानों पर इन नेताओं के प्रभाव को कम करने का प्रयत्न किया परन्तु ऐसा न होने पर इन्हें गिरफ्तार कर लिया और उन पर नागौर की विशेष अदालत में मुकदमा चला दिया । अदालत ने इन्हें दोषी ठहराया और जयनारायण व्यास को 5 वर्ष का कठोर कारावास और एक हजार का जुर्माना तजवीज किया । उनके सहयोगी भंवरलाल सर्राफा तथा आनन्द राज सुराना को चार वर्ष का कारावास और एक हजार प्रति व्यक्ति जुर्माने की तजवीज की । परन्तु जब असहयोग आन्दोलन के बन्दी छोड़ दिये गये तो इन्हें भी 9 मार्च, 1931 को रिहा कर दिया ।[57]

जागीर क्षेत्रों के आन्दोलन का प्रभाव खालसा के गांवों में भी पड़ा । वहां के किसानों ने बीगोडी की दर जो बहुत ऊंची थी उसको कम करने, लाग-बाग तथा बेगार न लेने आदि को लेकर राज्य का विरोध किया । चित का बारिया में 8 जुलाई, 1931 को मालियों ने अपनी बैठक में बीगोड़ी न देने की घोषणा की । मारवाड़ पीपुल कान्फ्रेंस के 25 नवम्बर, 1931 की पुष्कर के अधिवेशन में जिसकी सदारत चांदकरण शारदा ने की थी और जिसमें कस्तूरबा गांधी प्रमुख अतिथि बेगार, बीगोड़ी की समस्याओं पर प्रस्ताव पारित किये गये और उनका विरोध किया गया । 1932 की अप्रेल में आयोजित नागौर पट्टी के पंचों ने बीगोड़ी को समाप्त करने का आग्रह किया अन्यथा उन्हें अपने पट्टे लौटाने के लिए विवश होने का ऐलान किया । इसका समर्थन नागौर, बिलाडा, पर्वतसर, फलौदी,

---

56–जोधपुर कोन्फीडेन्शल फा. नं. 106, भाग-1, 1922, अ. बी.; मारवाड़ गजट, नोटिस नं. 4410, 30 सितम्बर, 1925; फो.पो. फा. नं. 158, 3, पी, 1925, रा. अ., डा. पेमाराम, द एग्रेरियन मूवमेंट इन राजस्थान. पृ. 207–208.

57–तरुण राजस्थान, 25 मार्च, 1929, 16 सितम्बर, 1929; नागौर की विशेष अदालत का फैसला, जोधपुर जागीर रेकार्ड, फा.नं. सी 4/3 भाग–2, 1982 अ.जी.

मेड़ता, डीडवाना, सांभर और जोधपुर के किसानों ने किया। सरकार ने इस सम्बन्ध में कुछ रियायतों की घोषणाएं की परन्तु बीगोड़ी की दर में कमी करने पर कोई विचार नहीं हुआ, जिससे किसान असन्तुष्ट बने रहे।[59]

जब 1939 तक कृषकों की लाग–बाग के सम्बन्ध की मांगों का कोई संतोषजनक समाधान नहीं हो सका तो मारवाड़ लोक परिषद् ने इस प्रश्न को पुनः उठाया। जागीरदार कई लागों को पूर्ववत् लेते रहे, गोया इनमें से कई लागों को लेने से जोधपुर राज्य ने इन्हें मना कर दिया था। परन्तु सरकार फिर भी जागीरदारों की पक्षधर बनी रही और जब 7 सितम्बर, 1939 को कृषकों ने आन्दोलन करने का निश्चय किया तो 28 मार्च, 1940 को लोक परिषद् को अवैध घोषित कर दिया। जागीरदारों ने अपने अपने क्षेत्र में किसानों के मवेशियों को चराने से रोका और जिसने उसका उल्लंघन किया उन्हें "फाटक" में बंद कर दिया। जो किसान लाग–बाग देने से और बेगार करने से मना करने लगे उनके नाज को बिना लटाई सड़ने दिया और उन्हें खूब पीटा गया। कई जागीरदारों ने तो उन्हें खेत जोतने से रोक दिया और नई लागों को लगाकर उन्हें तंग किया जाने लगा। लोकपरिषद के वरिष्ठ सदस्य, जिनमें चौधरी जयाराम, सी. आर. चौपासनी वाला, कन्हैयालाल वैद्य, इन्दरमल, मोहन लाल जोशी, स्वामी चेनदास 'मारवाड़ के जागीर के गांव मे किसानों की सहायता के लिए जाते थे उन पर हमले किये जाते थे और उन्हें सभाएं करने से रोका जाता था। जोधपुर राज्य की सरकार जागीरदारों की हिमायत में कृषकों पर किये जाने वाले जुल्मों को रोकने में असमर्थ थी।[59]

चंदावल की दुःखद घटना – 1942

28 मार्च, 1942 को मांगीलाल नामक लोक परिषद् के सदस्य ने उत्तरदायी सरकार दिवस मनाने के लिए आसपास से सदस्यों को चंदावल में आमन्त्रित किया। वहां के ठाकुर ने उन्हें आयोजन को न होने दिया और सोजत से आने वाले लोगों को, जो इसमें भाग लेने आये थे, उन्हें ठिकाने की पुलिस ने लाठी और भालों से मारा जिनमें कई व्यक्ति घायल हुए, मिट्ठा लाल, मारकण्डेश्वर, विजयशंकर, रामसुख, चांदमल, हरिराम आदि को गहरी चोटें लगीं और उन्हें जोधपुर के राजकीय अस्पताल में भर्ती कराया गया। जिन गांव वालों पर परिषद के साथ सहानुभूति थी उन्हें अपने घरों से घसीट कर बाहर निकाला गया और पीटा गया। इस नृशंस कृत्य की सर्वत्र निन्दा हुई। देश के कई भागों से जोधपुर महाराज के नाम तार और प्रार्थना–पत्र भेजे गये और घटना की जांच करने पर बल दिया

58– जोधपुर कोन्फीडेन्सल रेकार्ड, 1929–31, अ. बी., जोधपुर हवाला रेकार्ड, भाग–3, 1931–1935, अ. जो, जोधपुर जागीर रेकार्ड, फा. नं. 4/3, 1932, अ. जो., डा. पेमाराम, द एग्रेरियन मूवमेन्ट इन राजस्थान, पृ. 211–217

59– लोकपरिषद बुलेटिन, भाग 2, जनवरी, 1941, भाग–6, मई, 1941 एडमिनिस्ट्रेशन रेकार्ड फाईल नं. सी/11/2, भाग–1, भाग–7, 1941 अ. जी.

गया। परन्तु बजाय मामले की जांच के जयनारायण व्यास तथा उनके कई सहयोगियों को गिरफ्तार कर लिया। महात्मा गांधीजी ने भी इस दुःखद घटना की निन्दा की। जब चारों ओर से जांच कमेटी के लिए दबाव आने लगे तो कृषकों की कुछ मांगों को न्यायसंगत घोषित किया गया और मामले को किसी तरह दबा दिया गया।[60]

डाबडा काण्ड– 1947

जब जागीरदार और जोधपुर की सरकार किसानों के कष्टों को नजरअन्दाज करते गये तो मारवाड़ लोक परिषद गांव गांव घूमकर लोकमत को किसानों के प्रति सहानुभूति पूर्ण बनाने तथा उन्हें जागृत करने में जुट गये। इसी दौरान जब मथुरादास माथुर, द्वारकादास पुरोहित, सी.आर. चौपासनीवाला, राधाकृष्ण बोहरा, किशनलाल शाह, नरसिंह कछावा, बंशीधर तथा हरिन्द्रकुमार डीडवाना से 13 मार्च, 1947 को डाबडा पहुंचे, जहां उन्हें एक सभा को संम्बोधित करना था तो उनके साथ 600 जाट किसानों का समूह था। ज्योंहि ये लोग जागीर प्रथा लाग-बाग बेगार आदि के नारे लगाते कोट के पास पहुंचते त्योंहि जागीरदार के हथियार से लस लगभग 600 पिछलग्गुओं ने इस समूह को घेर लिया। लगभग आधा घंटे बन्दूकें चलाई गई और तलवारों और भालों से घेरी हुई भीड़ पर प्रहार किये गये। जुलूस में भाग लेने वालों में जग्गू जाट, जुन्नीलाल चौधरी और उसका लड़का मोतीराम मारे गये। चौधरी रामूराम जो इस सम्मेलन में भाग लेने आ रहा था गोली का शिकार बना। रामूराम का इकलौता पुत्र किशनाराम घायल हो गया और अपनी आंखों की ज्योति खो बैठा। रुघाराम असंख्य गोलियां खाकर धराशायी हुआ। आक्रमणकारियों ने केवल पुरुषों पर ही वार नहीं किया, उन्होंने मोतीराम की पत्नी के कान और पन्नाराम की औरत केसर के पाँव काट दिये। पन्नाराम, जिसने परिषद के सदस्यों को अपने यहां ठहराया था, दुष्टों ने उसके घर जाकर उसे गोलियों से उड़ा दिया। इस कत्लेआम में निष्ठावान नन्दराम के सीने की गोलियां की बौछारों ने छलनी बनाया।[61]

इस हत्याकांड की खबर सम्पूर्ण देश में फैल गई। जयनारायण व्यास से एक सार्वजनिक सभा में इस जघन्य कृत्य करने वालों को दण्डित करने की मांग की। कई पत्रों ने जिनमें बम्बई के वन्देमातरम् जयपुर की लोकवाणी, जोधपुर के प्रजासेवक और दिल्ली के हिन्दुस्तान टाइम्स प्रमुख थे, जागीरदार के अमानुषिक कारनामे की घोर निन्दा की। परन्तु जोधपुर सरकार ने दोषी व्यक्तियों को दण्डित नहीं किया, बल्कि जागीरदार ने इस सम्मेलन के आयोजकों पर मुकदमा चलाया। जब सामन्ती व्यवस्था इस पर मौन रही तो लोकप्रिय सरकार ने 22-

---

60– प्रजा सेवक, 30 मार्च, 1942, वीर अर्जुन, 1 अप्रेल, 1942, हिन्दुस्तान, 22 अप्रेल, 1942, मारवाड़ किसान सभा, जोधपुर, प्रजामण्डल रेकार्ड, फाइल नं. 3, पृ. 56-57, अ. बी.

61– मारवाड़ लोक परिषद् फाइल नं. 5, अ.बी., प्रजा सेवक, 26 मार्च, 1947.

जून 1948 को तथा 6 अप्रेल 1949 के नियमों द्वारा किसानों के हकों को बहाल कर दिया। इस प्रकार मारवाड़ क्या, अन्य राजस्थान के किसानों की करुण गाथा का अध्याय समाप्त हुआ।[62]

इस डाबडा आयोजन के प्राण मथुरादास माथुर अपने हृदय के उद्‌गार प्रगट करते हुए तथा यहां के शहीदों को श्रद्धान्जलि अर्पित करते हुए लिखते हैं–

"करीब आधी शताब्दी तक राजनीतिक जीवन में रहते हुए, जब मैं मुड़कर पीछे देखता हूं तो, सबसे अधिक झकझोरने वाली घटना डाबडा की ही लगती है। पिछले 40 वर्षों से नागौर की राजनीति से जुड़ा होने के कारण, डाबडा के शहीदों को शहादत मेरे दिल से अलग होना ही नहीं चाहती। इसकी केवल यही वजह नहीं है कि उस घटना में मेरे पर भी प्राण-घातक हमला हुआ था, बल्कि इसलिए भी को जो लोग डाबडा हत्या–काण्ड में शहीद हुए उनसे मेरा भावनात्मक सम्बन्ध भी हो गया था। असमय ही उनको दर्दनाक हत्या ने जहां तक और अस्थायी रूप से जिले के राजनीतिक जीवन में शून्य भर दिया, वहीं इस घटना ने सामन्ती सत्ता के ताबूत को ध्वस्त करके रख दिया"[63]।

बीकानेर में कृषकों का आन्दोलन

बीकानेर में कृषकों का आन्दोलन दो भागों में विभक्त किया जा सकता है, क्योंकि दोनों भागों की समस्याएं अपनी स्थानीय विशेषताओं के कारण विभिन्न हैं। एक भाग गंग केनाल क्षेत्र और दूसरा बीकानेर का जागीर कांड था। पहला भाग नये बसे हुए कृषकों का है दूसरा भाग जागीर खंड के कृषकों का जो पुस्तानी किसान हैं और जिसका सीधा सम्बन्ध जागीरदारों से था। इन पर दोहरा स्वामित्व का अंकुश था जो बीकानेर राज्य और ठाकुरों में निहित था।

जिन सिख जमींदारों ने गंग केनाल क्षेत्र में जमीन खरीदी थी उनकी समस्याएं पानी के देने के अनुपात, पानी की दरें और जमीन के खरीदने की किश्तों व सूद जमा कराने आदि के सम्बन्ध में थी। इन मामलों में कृषक सुविधाएं चाहते थे। अपनी मांगों को लेकर उन्होंने 20 अप्रेल, 1926 को जमींदार एसोसिएशन बनाया और उसके द्वारा समय समय पर राज्य सरकार को ज्ञापन आदि देकर अपनी कठिनाइयों की ओर ध्यान आकर्षित किया। सरकार नाम मात्र की रियायतों से कृषकों को शांत करने में लगी रही, परन्तु वाजिब मांगों का समाधान न हो सका। उदाहरणार्थ 1931 में लगान की दरों में और किश्तों में कुछ रियायतें दी गई परन्तु उपज की कीमतों में गिरावट आ जाने से इन रियायतों का कोई लाभ जमीदारों को न मिल पाया। 15 जून, 1933 के करनपुर में किये गये जमींदार एसोसिएशन के वार्षिक अधिवेशन पर पानी देने और लगान घटाने पर

62–जोधपुर गजट, 19 जून, 1948; डा. पेमाराम, द एग्रेरियन मूवमेन्ट इन राजस्थान, पृ. 236–237..

63–मथुरादास माथुर, डाबडा के अमर शहीद, पृ. 10.

जो मांग रखी गई इस पर सरकार द्वारा समुचित रूप से विचार नहीं किया गया। 1933 से 1941 तक ब्याज की दरों व लगान की दरों में कमी को लेकर आन्दोलन चलता रहा। इन दरों में दो आना प्रति रुपया कमी तो कर दी परन्तु सतलज में पानी कम होने से पानी देने में वृद्धि न हो सकी। इसका मूलसिंह, राजूराम, दरबारासिंह, गुरुदयालसिंह, प्रो. गंगासिंह, लाभसिंह, गुरनामसिंह, मेलाराम, तारासिंह आदि सरकार का विरोध करते रहे और इश्तिहारबाजी से राज्य की हठधर्मी का पर्दाफास करते रहे। इस पर कई एक नेताओं की गिरफ्तारियां की गई और उनकी जमीनों पर कब्जा कर लिया गया। 1943 में गंगासिंह की मृत्यु के बाद महाराजा सादुलसिंह ने आन्दोलन को समाप्त करने के अभिप्राय से पानी व लगान की दरों मे काफी कमी की जो पूर्व की दरों की तुलना में संतोषजनक थी। इस प्रकार की रियायतों से गंग केनाल क्षेत्र के कृषकों को राहत मिली और लगभग 1946 तक इनकी अधिकांश मांगें मान ली गई।[64]

सीकर और शेखावाटी क्षेत्र में किसानों के आन्दोलन से बीकानेर के जागीरी के किसानों में भी अपने अधिकारों के प्रति सजगता पैदा हुई उन्होंने बीकानेर महाराज गंगासिंह से 18 दिसम्बर 1934 को प्रार्थना की कि उनके ऊपर थोपी गई लाग-बाग और बेगार को हटाया जाय और अत्यधिक लगान की दर को घटाया जाय अन्यथा उन्हें लगान एवं लाग-बाग न देने के लिए विवश होना पड़ेगा। इनकी न्यायपूर्ण प्रार्थना पर बिना ध्यान दिये 11 अप्रेल, 1935 के नियम को बनाकर सरकार ने जागीरदारों को लगान न देना या उसके लिए किसानों को उकसाना जुल्म करार दिया। बेगार व लाग-बाग को लेकर आंदोलन का प्रथम श्रीगणेश जीवन चौधरी के नेतृत्व में उदसर में हुआ। इस समय बीकानेर के प्रजामण्डल के कार्यकर्ताओं ने भी इनको अपना सहयोग दिया। इन्होंने महाराजा से मिलने की अभ्यर्थना की, परन्तु उन्हें मिलने नहीं दिया गया। बजाय इसके उन्हें डराया धमकाया गया और उनके साथ मार-पीट की गई। जीवन चौधरी पर 100 रुपये दण्ड किया गया और मघाराम वैद्य, लक्ष्मणदास, बाबू, मुक्ताप्रसाद और सत्यनारायण प्रसाद को जो प्रजामंडल के कार्यकर्ता थे, 17 मार्च, 1937 को बीकानेरय राज से निष्कासित कर दिया गया। इस कार्यवाही से किसानों को अपने अधिकार के लिए लड़ने के हौंसले में और अधिक वृद्धि हुई।[65]

64- बीकानेर कान्फीडे; फाइल नं. सी.एक्स. 1929, अ.बी., एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट, बीकानेर, 1930-31, पृ.39, 1939-40, पृ.51, 1941-42, पृ.59, बन्दोबस्त रिपोर्ट गंग केनाल कालोनी, 1946, प.80, डा. पेमाराम, द एग्रेरियन मूवमेन्ट इन राजस्थान, पृ.27-290.

65- बीकानेर कान्फीडेंशल फाइल, पत्र नं. 232 फाइल नं.3, 1931. अ.बी., बीकानेर राज पत्र नं. 29 भाग-51, 31 मई, 1931, डा. पेमाराम द एग्रेरियन मूवमेन्ट इन राजस्थान, प. 290-91.

ठिकाना महाजन में विद्रोह

महाजन बीकानेर राज्य का प्रथम श्रेणी का ठिकाना था। यहां के किसानों पर 1927 से ठिकानेदार लगान व लाग–बाग सतत बढ़ाते जा रहे थे जिससे यहां का किसान बड़ा दुःखी था। इनको चराई, बिक्री तथा पशुओं की खरीद पर भी कर देना पड़ता था। उन्होंने 13 दिसम्बर, 1938 से 1941 तक इन करों के विरोध में महाराजा, रेविन्यू कमिश्नर तथा जागीरदार के पास प्रार्थना-पत्र भेजे परन्तु उन्हें बार बार निराशा हुई। महाजन का जागीरदार भोपालसिंह बड़ा अड़ियल था जो किसी न किसी बहाने करों की वसूली मनमाने ढंग से कर लेता था। बजाय इस पर रोक लगाने के राज्य सरकार ने उसे उघाई और वसूली में छूट दे रखी थी। 16 जनवरी 1939 को महाजन के जाट खींवसर में इकट्ठे हुए जिसमें कई अन्य गांवों के जाट भी सम्मिलित हुए जिसमें तारू जाट, सरदारा जाट आदि भी थे। उन्होंने मिलकर निश्चय किया कि जब तक उनकी मांगों को नहीं मान लिया जायगा वे लगान आदि नहीं देंगे। परन्तु ठिकाने के कामदार ने वसूली के लिए सख्त कदम उठाये जिसमें उसे सफलता नहीं मिली। अन्त में बीकानेर राज्य के अधिकारियों के बीच बचाव से ठिकाने तथा किसानों के बीच समझौता हुआ जिसमें बकाया रकम की वसूली, मूंगा लाग और लगान की दर में रियायतें बर्ती गई और जिन्हें ठिकाने से निकाल दिया गया था उन्हे पुनः गांव में प्रवेश की आज्ञा दे दी गई तब आंदोलन शांत हुआ।[66]

इस घटना को लेकर किसानों ने कई गांवों में लगान न देने का निश्चय किया जिसमें दुधवाखारा का आंदोलन रायसिह नगर में गोलियां चलाने की घटनाएं प्रमुख हैं। दुधवाखारा के आंदोलन के संबध में हनुमानसिह जो इसका नेतृत्व कर रहा था 1945 व 1946 तथा 1947 में गिरफ्तार किया गया, परन्तु ठिकाने का विरोध क्या पुरुष और क्या स्त्री ने किया। इसी तरह रायसिंह नगर में प्रजापरिषद् के तत्वावधान में आयोजित किसानों के जुलूस पर गोलियां बरसाई गई जिसमें कई लोग घायल हुए और बीरबल सिंह इस अवसर शहीद हुआ। कंगाड में भी आन्दोलनकारी किसानों को पीटा गया आर स्त्रियों के साथ अमानुषिक व्यवहार किया गया। सम्पूर्ण गांव अग्नि का शिकार बना। ये घटनाएं 1947 तक होती रहीं जो बीकानेर राज्य की बर्बरता के नमूने हैं।[67]

समीक्षा :

कृषकों के आंदोलन को क्रियात्मक रूप देने में दो धाराओं का प्रमुख योगदान था। इसमें एक तो प्राचीन काल से चली आने वाली पंचायत संस्थाओं की भूमिका थी जो बड़ी बलवती रही, जिससे सभी कृषक उस संस्था की छत्रछाया में अनुशासन से जुड़े हुए रहे।

66– रेविन्यू कमिश्नर सदर रेकार्ड, फाइल नं. 55, 194, अ.बी., रेविन्यू रेकार्ड, बीकानेर, फा.नं. 364–65, 443, 1942, अ.बी.

67– वीर अर्जुन, 25 नवम्बर, 1946, पृ. 4; हिन्दुस्तान, 6 नवम्बर, 1946, बीकानेर राजयन, 18 जनवरी, 1947.

दूसरी धारा स्वयंसेवी संस्थाओं की सक्रिय सेवाएं थीं, जिन्होंने जनता के कष्ट में कन्धे से कंधा भिड़ाकर आन्दोलन को सफल बनाया। उनका भारतीय नेताओं से संबंध एक वरदान था जिससे स्थानीय आंदोलन की गति-विधियों से देश की जनता अवगत होती रही और उसके सहयोग से आंदोलन में सजीवता बनी रही। राजस्थान के कृषक भारतीय स्वाधीनता संग्राम के अग्रणी सैनिक थे जिन्होंने बार बार अपने रक्त और त्याग से देश के प्रति श्रद्धा का परिचय दिया। जब जब कृषक आन्दोलन को निर्दयता से कुचलता गया देश जागता गया और स्वतन्त्रता की ज्योति क्रमशः प्रज्जवलित होती रही। इस आंदोलन में इतना बल था कि रियासती और जागीरदारी व्यवस्था को मन्द गति से इनकी मांगों को मांगना पड़ा। यही कृषक दल आगे आने वाले सत्याग्रह और असहयोग आंदोलन के सक्रिय सहयोगी बन गए। इन्होंने न केवल राजस्थान वरन भारत की स्वाधीनता की लड़ाई में सक्रिय योगदान दिया वरन यह कृषक आन्दोलन स्वतन्त्रता आन्दोलन के पहलुओं का अंग बन गया। सबसे महत्वपूर्ण विशेषता कृषक आन्दोलन की यह भी थी कि अपने विविध चरणों में इसका स्वरूप सत्य अहिंसा पर आधारित रहा। कई कृषक पुरुष और स्त्रियों को अपना बलिदान देना पड़ा पर उन्होंने कदापि हिंसात्मक तरीकों का आश्रय नहीं लिया। सबसे बड़ी उपलब्धि कृषक आंदोलन की यह भी थी कि उसने ठिकानों की सुदृढ़ दीवारों को अपने दृढ संकल्प की शक्ति से ऐसा जर्जरित कर दिया कि उत्तरोत्तर वे ढहती गई और ज्योंहि आजादी का शंखनाद हुआ सामन्त प्रथा का भूत सर्वदा के लिए विलुप्त हो गया।

अध्याय 9

जनजाति के आन्दोलन (1821-1947)

पृष्ठभूमि—

राजस्थान के स्वतन्त्रता के इतिहास में जनजाति की भूमिका एक बड़े महत्व की है। इस जात की अधिक संख्या दक्षिण-पश्चिमी, पूर्वी व उत्तर पूर्वी राजस्थान में है। सिरोही, डूंगरपुर, बांसवाड़ा और उदयपुर के पर्वतीय भाग में इनकी जनसंख्या लगभग 45 प्रतिशत है। ढूंढार में मीणों की बस्तियां हैं हाडौती में सहेरिया जनजाति की है। जहाजपुर और प्रतापगढ़ में मीणे पाये जाते हैं। जनजाति के लोग प्राचीनतम जातियों में से एक हैं और इनका जीवन वन्य जीवन और वन की उपज से सम्बन्धित है। वे प्राचीनकाल से लकड़ी काटना, कोयले बनाना, वन-उपज का संग्रह करना, पशु-पालन व खेती करना, महुए से शराब बनाना आदि कामों को करते आये हैं। स्वयं उत्पादक और स्वावलम्बी होने से इनमें स्वतन्त्रता के प्रति प्रेम और ममता स्वभावजन्य है। जब प्राचीन परम्परा या उनके अधिकारों पर यदि कभी प्रहार होता है तो इनके विरोध का कोई ठिकाना नहीं रहता। देवी, भैरव और तन्त्रादिक मान्यताओं में विश्वास होने से साहसी होते हैं। भूत, प्रेत, भोरे इनकी आराधना के माध्यम होते हैं। साधारण जीवन बिताने के कारण जनजाति के लोग मित्र भी होते हैं। अपने देश एवं देशरक्षकों के लिए वह हर क्षण बलिदान के लिए उद्यत रहते हैं। राजस्थान के इतिहास से स्पष्ट है कि यहां की शौर्य की उपलब्धियों में भीलों व मीणों का अपूर्व योगदान रहा है। इन के शस्त्रों में तीर कमान मुख्य हैं, जिनके प्रयोग में वे दक्ष माने जाते हैं।[1]

राजस्थान की जनजाति में कई भेद हैं जिनमें भील, मेव, मीणे, सहेरिया आदि मुख्य हैं। प्राचीन काल में मेवाड़, बागड़, ढूंढार तथा हाडौती के क्षेत्रों में जनजाति का बाहुल्य होने से उनकी शक्ति वहां बढ़ी-चढ़ी थी। वहां उनकी स्वतन्त्र इकाइयां थी। आठवीं शताब्दी में जब हूणों का प्रभुत्व राजस्थान के कई भाग में था तो ये लोग भी ढूंढार, चित्रकूट, छप्पन वागड़ तथा खैराड क्षेत्र में शक्ति सम्पन्न एवं स्वतन्त्र थे। जब राजपूतों का प्रसार यहां बढ़ने लगा इनका प्रभाव उत्तरोत्तर क्षीण होता गया। इन्होंने जन-जातियों को छल या बल से अपनी अपनी इकाइयों से उखाड़ फेंका। वे लोग जंगलों की ओर जाकर बस गये और ज्योंही उन्हें अवसर मिलता था तो वे राजपूतों पर हमला करते थे और फिर हार जाने पर दब भी जाते थे। परन्तु पन्द्रहवीं सदी से इनमें मेलजोल बढ़ता

1- हम्मीररासो छंद 77 (न.प्र.सभा); नैणसी री ख्यात, भा. 1. पृ. 106-9, अनुवाद रामनारायण; वंशभास्कर, भा.-2, पृ. 1627; राजपूताना गजट, भा.-1, पृ. 184; टाड, एनल्स्स, भा.-1, पृ. 184

गया जिसके फलस्वरूप इनका उपयोग देश की रक्षा के लिए लाभप्रद सिद्ध हुआ । ढूंढार, डूंगरपुर, बांसवाड़ा, कोटा, प्रतापगढ़ आदि राज्यों की स्थापना और विस्तार का इतिहास इनके संघर्ष और आपसी समझौते की स्थिति पर अच्छा प्रकाश डालता है । जब ब्रिटिश सत्ता की स्थापना हुई तो इस जनजाति के अर्द्ध स्वतन्त्र जीवन पर आघात पहुंचा। जिससे उनमें आत्माभिमान का भाव पुनः जागृत हुआ वे इनसे संघर्ष के लिए उद्यत हो गये । परन्तु एक विशिष्ट नीति से अंग्रेजों द्वारा इनको उच्च पद दिये गये, इनकी सैनिक छावनियां बनाई गई और उन्हें ब्रिटिश सत्ता के अधीन किया गया । फिर भी इनको पूर्णरूप से दबाने में सरकार सफल न हो सकी और वे संघर्ष करते रहे । इस संघर्ष का इतिहास भील एवं मीणों के सन्दर्भ में अपना एक महत्व रखता है । [2]

(1) भीलों में असंतोष और ब्रिटिश सत्ता का विरोधः

राजस्थान के स्वतन्त्रता के इतिहास में भीलों का विदेशियों के शासन और नियमों का विरोध करना एक महत्वपूर्ण विषय है । चूंकि प्रारंभ से ही वन जन्य वस्तुओं का उपयोग बिना रोक-टोक के वे करते रहे और जब ब्रिटिश शासन के अनुरूप सिरोही, बाँसवाड़ा, डूंगरपुर और उदयपुर में इसकी व्यवस्था राज्यों ने नए सिरे से करना आरंभ किया तो उन्हें ये व्यवस्था अनुचित लगी । उन्होंने यह महसूस किया कि उनकी सरकार ब्रिटिश सत्ता के दबाव से उनकी प्राचीन परम्पराओं पर प्रहार करना चाहती है और उन्हे अपने जन्म जात अधिकारों से वंचित रखना चाहती है । कर्नल टाड इस स्थिति को जानता था । उसने 12 मई, 1825 ई. को भीलों और ब्रिटिश सरकार के बीच समझौता किया जिसके अनुसार उन्होंने सरकार को चोरी, डकैती या डाकाजनी न करने और अंग्रेजों के शत्रुओं को पनाह न देने और कम्पनी की आज्ञा मानने का आश्वासन दिया । इसी नीति का विस्तारीकरण आगे किया गया जब 1840 में मेवाड़ भीलकोर की स्थापना की गई जिससे इनकी सैनिक क्षमता का उपयोग ब्रिटिश स्वार्थ के लिए किया जा सके । इनके मुखियाओं को सेना में ऊंचे पद वितरित किये गये जिससे एक विशिष्ट तबका खरीद लिया गया । इस व्यवस्था की सफलता 1858 की क्रान्ति के दबाने में देखी जा सकती है जबकि भीलकोर ने क्रान्ति को दबाने में ब्रिटिश अधिकारियों को अपना पूर्ण सहयोग दिया ।[3]

वैसे तो एक तबके को ब्रिटिश कूटनीति ने अपने वश में कर लिया था, परन्तु अब तक कई भीलों के गांव "पालों" में संगठित थे जिनमें बहुसंख्यक भील रहते थे जो अपनी मान्यताओं और परम्परागत अधिकारों के प्रति ममता रखते थे । एक प्रकार से उनमें संगठन

2-बर्ली शिलालेख 443, ई.पू.; घोसुण्डी शिलालेख; भावनगर शिलालेख, भा-5 पृ. 83-87; हस्तिकुंडी शिलालेख, भा. 10, पृ. 20; नाथ शिलालेख, वि.सं. 1026; पृथ्वीराज रासो, भा. 1, पृ. 149; आर्क्योलोजिकल सर्वे आफ इन्डिया जि. 20 पृ. 30.

3-नायक, भील, ए स्टडी, पृ. 24; एचिसन, कलेक्शन ऑफ ट्रीटीज, भा. 3, पृ. 13; शावर्स, ए मिसिंग चेप्टर, आफ दी इंडियन म्युटिनी, पृ. 25-31; मेवाड़ भीलकोर खेरवाडा, रेजिडेन्सी रेकार्ड्स, उदयपुर, फाइल नं. 6, बस्ता नं. 33, 1892.

था जिसके तत्वावधान में वे अपने सामाजिक और धार्मिक बंधन से जुड़े हुए थे। इनके विरुद्ध बनाए गए नियमों को वे अपना अपमान समझते थे। अंग्रेज जाति के प्रति उनकी कोई आस्था न थी। जब से सहायक सन्धियों और सिपाहियों की क्रान्ति के फलस्वरूप शासन व्यवस्थाओं में सुधारों की लहर देशी राज्यों में फैली तो भीलों में उनके प्रति प्रतिक्रियाओं का भी दौर आरंभ हो गया। इन सुधारों से उनमें स्वाभाविक गौरव की भावनाएं उत्तेजित हुई। जिसके फलस्वरूप 1868 में मेवाड़ के खरवर पाल के भीलों ने सरकारी आदेशों का उल्लंघन कर उपद्रव करना आरंभ कर दिया। मेजर मेक्सन ने जो मेवाड़ भीलकोर का प्रमुख था उसने महाराणा को लिखा कि जिले के शासन में सुधार की आवश्यकता है क्योंकि राज्य के अधिकारी जिनमें मेहता रघुनाथसिंह और मोतीसिंह मुख्य है भीलों के साथ निष्ठुरता एवं अन्याय पूर्ण व्यवहार करते हैं और मनमाना कर वसूल करते हैं। इस पर महाराणा ने 100 पैदल और 150 घुड़सवार भीलों को दबाने के लिए भेजे इस सेना ने अमानुषिक यातनाओं के द्वारा भीलों को दबा दिया परन्तु उनमें फिर भी सरकार के प्रति आक्रोश बना रहा। इधर मिर्जा रहीम बेग एक पुलिस अधिकारी था एवं पं. आनन्दराव जो एक शासकीय अधिकारी थे अपने अत्याचारों से भीलों में रोष को अधिक उत्तेजित करने में कसर न रखी। राज्य ने भीलों को राहत पहुंचाने के बजाय दमन नीति के द्वारा असन्तोष को दबाना चाहा पर इससे विद्रोह की भावना शमन न हो सकी।[4]

वैसे तो भीलों में असंतोष व्याप्त था ही कि सरकार ने सति प्रथा बंद करने, जनगणना किये जाने, शराब बनाने पर रोक लगाने, डाकिनों की जांच पड़ताल करने चुंगी व पुलिस की स्थापना करने, अंध विश्वासों को नियन्त्रण करने लगान व न्याय सबंधी नियमों में संशोधन करने आदि के नियम लागू कर दिये। ये परिवर्तन युग युगान्तरों से चली आ रही परंपराओं का उल्लंघन समझा गया। उदाहरणार्थ जनगणना के सबंध में यह भ्रांति फैल गई कि इसका अभिप्राय भीलों को सेना में भर्ती कर अफगानिस्तान के मोर्चे पर भेजने को योजना है। एक हास्यप्रद यह भी अफवाह उड़ गई कि जनगणना इसलिए की जा रही है कि जो मोटे पुरुष हैं उन्हे मोटी औरतें सुपुर्द की जायेगी और जो दुबले हैं उन्हें दुबली। इस प्रकार ज्योंही नये शासकीय नियम बनने लगे भीलों में उनका विरोध किया जाने लगा।[5]

बारापाल और मगरा जिले के भीलों का विद्रोह:

वैसे तो भीलों में असंतोष व्याप्त था ही कि बारापाल में उपद्रव की आग भड़क उठी। 25 मार्च, 1881 को भूमि संबंधी विवाद को लेकर बारापाल के थानेदार ने एक सवार को

4-मेक्सन का पत्र महाराणा को, 20 अप्रेल, 1868, रा.अ., ए.जी.जी. का पत्र नं. 51-58 फो.पो. 1876, रा.अ., निक्सन, मेवाड़ ऐजेन्सी रिपोर्ट 1870-71; ए.जी.जी. का पत्र सेक्रेटी भारत सरकार के सेक्रेटरी को, 19 जून 1876, फो.पो.नं. 51-53, रा.अ.

5-रा.अ.फो.पो.अप्रेल 1881, नं. 25-29, रा. आ; स्ट्रेटन, मेवाड़ ऐजेन्सी रिपोर्ट, 1880-81; वीर विनोद, भा. 2, पृ. 2217-28, हिसाब दफ्तर, पड़ाखा, वि. सं. 1939, पृ. 24; वीर विनोद, भा. 2, पृ. 2217-28.

पहुना के भीलों को बुलाने भेजा। सवार ने जबरन उनको ले जाने के लिए पकड़-धकड़ की। इस बल प्रयोग के विरोध में कुछ भील, जो पास खड़े थे, सवार पर टूट पड़े और उसे मार डाला। अब तो दो तीन हजार भील एकत्रित हो बारापाल आ धमके और उन्होंने बारापाल के थानेदार, पांच सवार, शराब के ठेकेदार और कुछ सोलह लोगों को मौत के घाट उतार दिया। आस-पास की चौकियां और कई दुकानें जलादी गईं कई हजार भीलों ने देवी के मन्दिर में एकत्रित हो प्रतिज्ञा की कि वे सरकार का डट कर विरोध करेंगे। उदयपुर से खेरवाड़े का मार्ग रोक खेरवाड़े के भील भी उलट पड़े।[6]

जब इस प्रकार के उपद्रव की सूचना महाराणा सज्जनसिंह को मिली तो उन्होंने भीलों के दमन के लिए एक सेना भेजी, जिसमें मामा अमानसिंह, मि. लोनार्गन और श्यामदास प्रमुख थे। मार्ग में मेवाड़ की सेना और भीलों की मुठभेड़ होती गई और भील जहां-तहां भाग कर पुनः हमलावार होते रहे। अलसीगढ़ और कोटड़े के भील भी बिगड़ उठे। उन्होंने कामदार तथा पुलिस के कई सिपाहियों को मार डाला, केवड़े की चौकियां जला दी और परसाद गांव में मगरा हाकिम अखेसिंह को घेर लिया। कोटड़ा, पाई आदि स्थानों में भी भीलों ने भी अत्याचार के विरुद्ध आवाज उठाई।[7]

गधेड़ा धाटी की ओर भी सेना ने भीलों का पीछा किया, जहां लड़ाई के छिड़ते ही भील भाग खडे हुए। इसके उपरान्त छः सात हजार भीलों ने ऋषभदेव के मन्दिर को जा घेरा। इस समाचार से सेना के अधिकारियों का ध्यान इस ओर गया। बड़ी शीघ्रता से सरकारी फौज, रास्ते में लड़ते भिड़ते, ऋषभदेव पहुंची। उधर से पोलिटिकल ऐजेन्ट का प्रथम असिस्टेंट कर्नल ब्लेयर और बन्दोबस्त का अफसर मि. विगेट भी 19 अप्रेल, 1818 वहां पहुंच गये। ये लोग भीलों के मुखियाओं से मिले। उनके समक्ष भीलों ने अपनी मांगों में शराब का ठेका न दिया जाय, जकात की चौकियां उठा ली जाय तथा सरकारी अधिकारी अपने अधिकारों का दुरुपयोग न करें आदि बातों को रखा।[8]

जब समझौते की बात चल रही थी कि कुछ भीलों तथा सैनिकों में पुनः तनाव पैदा हो गया। इधर कर्नल ब्लेयर ने बम्बई से सेना मंगवाने के आदेश भेज दिये। इस स्थिति से झगड़े का वातावरण फिर उत्पन्न हो गया। परन्तु कविराज श्यामलदास एवं कस्बे के महाजनों के बीच बचाव से भील शांत हुए। उन्होंने पालों पर लगने वाली "बुराड़" अर्थात वार्षिक कर को आधा कर दिया और उन्हें विश्वास दिलाया कि उनकी उचित मांगों पर विचार किया जायगा। भीलों ने भी सरकारी अधिकारियों की हत्या के एवज में जुरमाना देना स्वीकार किया और विश्वास दिलाया कि वे अपराधियों को सरकार को सौंप देंगे। इस तरह भीलों का उपद्रव शांत हुआ और महाराणा की फौज 25 अप्रेल को उदयपुर लौट आई।[9]

6-फो.पो. अप्रेल 1881, नं. 25-39, रा.अ.

7-वही

8-फो. पो. अप्रेल 1881, नं. 148, रा. अ.

9-फो.पो. अप्रेल 1880-81, नं. 313, मेवाड़ ऐजेन्सी रिपोर्ट, 1880-81, रा. अ., वीर विनोद भा. 2, पृ. 2217-28. फो.पो.-कर्नल ब्लेयर का ए.जी.जी. राजपूताने के नाम पत्र ता. 18 अप्रेल, 137-79, रा.अ.

इसके बाद भौराई के भीलों ने 21 मार्च, 1882 ई. में गिरदावर दयालाल चौबीसे को घेर लिया और फसाद खड़ा कर दिया। नटारे के भीलों ने भी उपद्रवियों का साथ दिया। महाराणा ने मामा अमानसिंह को भेज कर वहां शांति स्थापित कर दी। इस सेवा के उपलक्ष्य में महाराणा ने मामा जी को सोने के लंगर देकर सम्मानित किया। भविष्य में उपद्रव को दबाने के लिए वहां किला बनाकर थाने की स्थापना कर दी गई। इस घटना में 4 भील मारे गये, 8 गिरफ्तार किये गये, लगभग 100 मवेशी पकड़े गये और तीन बन्दूकें बरामद की गई।[10]

इन विविध आन्दोलनों का आस पास के भीलों पर भी बड़ा प्रभाव पड़ा। मेवाड़-मठीकांटे के रेलमार्ग पर भीलों ने शस्त्रों के बनाने के लिए लोहा चुरा लिया और बढ़ी हुई निमक की दरें देने से इन्कार कर दिया। किसी तरह इस बखेड़े को भी समेट लिया गया, परन्तु भविष्य में आन्दोलन की संभावना को रोकने के लिए पुलिस कर्मियों की संख्या बढ़ा दी गई और गश्त की व्यवस्था कड़ी कर दी गई। इनके नेताओं से अच्छे व्यवहार का आश्वासन ले लिया गया।[11]

मेवाड़ और डूंगरपुर के भीलों ने सोम नदी की मछलियों को मारने के मसले को लेकर विवाद छिड़ गया जिससे उस भाग में शांति भंग हो गई। परन्तु मोतमिदों, पंचों और सरकारी अधिकारियों के बीच-बचाव से विवाद समाप्त कर दिया गया और पर्वतीय भाग में शांति स्थापित करने के प्रयत्न किये गये यह विवाद भी दोनों दलों के परम्परागत अधिकारों को लेकर उठा था।[12]

इन उन्नीसवीं शताब्दी के भीलों के आन्दोलनों को जो अधिकार के महत्व को लेकर थे, शक्ति और समझौतों से दबा दिया गया, परन्तु भीलों का संताप का पूरा निराकरण नहीं होने पाया। वैसे तो भील संगठित थे परन्तु अच्छे नेतृत्व के अभाव के कारण आन्दोलन में गति उत्पन्न नहीं होने पाई गोया इनमें जोश और परम्परा के प्रति ममता अवश्य बनी रही।

मेवाड़ में भीलों का पुनः आन्दोलन (1917-1947).

बिजोलिया के किसान आन्दोलन से भोमट के भीलों में अपने पर होने वाली ज्यादतियों को लेकर संघर्ष करने का जोश पैदा हुआ। इस क्षेत्र के जागीरदार जिनमें पहाड़ा प्रमुख था बड़ा शक्तिशाली था जो भीलों से बेठ, बेगार तथा मनमाना लगान लेना अपना अधिकार मानता था। भील इस व्यवस्था से बड़े दुखी थे। उन्होंने इस अधिकार के विरुद्ध आवाज उठाई पर जागीरदार अपने वतीरे से बाज नहीं आ रहा था महाराणा तथा खेर-

---

10-खरीता 20 अप्रेल, 1881, फा.नं. 137-139, रा.अ. कर्नल वाल्टर मेवाड़ ऐजेन्सी रिपोर्ट, 1882-83, स्ट्रेटन का पत्र एजीजी को, 24 अप्रेल, 1882; फो.पो. जून 1882, नं. 82-92, रा.अ.

11-फो. पो. अप्रेल, 1883, नं. 66-73, रा. अ.

12-फो. पो. फरवरी 1884, नं. 131, रा. अ.

वाड़ा के असिसटेन्ट रजिडेन्ट ने उनको कुछ रियायत देने का जागीरदार से सिफारिश की परन्तु उस पर अमल न हो सका जिससे भोमट के अन्य ठिकानों में भी लाग–बाग शरबरा और बेगार की समस्या लेकर कई ठिकानों के भील उलट पड़े। ऐसे ठिकानों में भाडोल, पानरवा, जवास, ओगना, जूड़ा, पानरवा, मादड़ी आदि थे।[13]

भाग्यवश ऐसे समय में मोतीलाल तेजावत जैसे कर्मठ नेता का नेतृत्व उन्हें मिला। प्रथम चरण के भील आन्दोलन में नेतृत्व का अभाव था उसकी पूर्ति 1921 में तेजावत ने की। उन्होंने इनको बेठ, बेगार या ठिकानों को लगान न देने के लिए कटिबद्ध कर लिया। सम्पूर्ण भोमट क्षेत्र में पंचायतों का एक संगठन खड़ा किया गया। तेजावत जो निर्णय लेते थे उसको ढोल के घोष से गांव गांव सुनाया जाता था और उनके आदेशों के न पालन करने वालों को गांव की पंचायत दंडित करती थी। उनका ऐसा सम्मान था कि वे मेवाड़ के गांधी माने जाने लगे। स्थिति पर काबू पाने के लिए जनवरी, 1922को मेवाड़ सरकार ने भीलों के लिए हासिल व बेगार में कुछ रियायतें देने की घोषणा की, परन्तु साथ ही 50 से अधिक आदमियों को इकट्ठा होने पर रोक लगादी और मोतीलाल को गिरफ्तार कराने वाले के लिए 500 रु. इनाम देने का एलहान किया।[14]

इधर कुछ रियासतों के कारण कुछ एक ठिकानों में भील हासिल जमा करने को रजा-मन्द हो गये, परन्तु कोटड़ा के क्षेत्र में साधारण स्थिति नहीं आ सकी। मोतीलाल भी सिरोही, ईडर, पालनपुर आदि रियासत में भीलों में उत्साह बनाये रखने के लिए प्रचार कार्य में लगे रहे। परन्तु 7 मार्च, 1922 को जब वह ईडर रियासत की एक "पाल" में अपने 2,000 साथियों के साथ पड़ाव डाले हुए थे कि मेजर सरन ने भीलकोर की सहायता से पडाव को घेर लिया और उस पर गोलियां बरसाना आरंभ किया। इसके फलस्वरूप सरकारी रिपोर्ट के आधार पर 22 मोतीलाल के दल के लोग मारे गये और 29 घायल हुए। राजस्थान सेवा संघ ने हताहतों को संख्या हजार से भी ऊपर बतलाई। फिर भी मोतीलाल और उसके साथियों की हिम्मत बनी रही और अपनी मांगों को लेकर 1921–1929 तक वह संघर्ष करते रहें।[15]

सरकार हर प्रकार से उन्हें पकड़ने का प्रयास करती रही और जब इसमें सफलता न मिली तो उसने उनके साथियों की पकड़ धकड़ शुरू की। अन्त में 3 जून, 1929 को उन्हें ईडर पुलिस ने खेडब्रह्मा में उसे गिरफ्तार कर मेवाड़ राज्य के सुपुर्द कर दिया। उन पर सिपाहियों पर हमला करने और भाडोल ठिकाने के नाज के गल्ले लूटने का इलजाम लगाकर गिर्वा न्यायालय ने दस वर्ष का कठोर कारावास का दंड तजवीज किया।

13–उदयपुर रेजिडेन्सी रेकार्ड, फा. नं. 19 पी. नं. 60, 1917, अ. बी.

14–फो. पो. फा. नं. 428 पी, 1923, रा. अ.; जागीर रेकार्ड, फा. नं. 87, बी. नं. 65, 1921–22 अ. बी.

15–फो.पो. फाइल नं. 428–पी 1923, रा.अ.

1935 में मणिलाल कोठारी ने उनकी जेल से मुक्ति का प्रयत्न किया परन्तु उस पर कोई निर्णय नहीं लिया गया। परन्तु 23 अप्रेल, 1936 में जब उन्होंने मेवाड़ से बाहिर न जाने का आश्वासन दिया तो उन्हें छोड़ दिया गया। उस पर भी मोतीलाल पर कड़ी निगाह रखी गई, जो एक तरह नजरबन्दी थी।[16]

जेल से मुक्त होने पर वह अपने सहयोगियों भंवरलाल पालीवाल, श्रीकृष्ण चित्रकार, मास्टर बलवंतसिंह आदि से गुप्त मन्त्रणा करते रहे और जब "भारत छोड़ो" आंदोलन चला तो वह पुनः सक्रिय हो गये। इस पर इन्हें फिर गिरफ्तार किया गया। पुनः छूटने पर उन्होंने भीलों की सेना में भर्ती नहीं किये जाने पर आन्दोलन छेड़ दिया जिनको लेकर उन्हें फिर गिरफ्तार किया। अन्त में 3 फरवरी, 1947 को उन्हें पूर्णतः आजाद कर दिया गया। इस प्रकार मेवाड़ में भीलों का आन्दोलन उनकी विजय के साथ समाप्त हुआ। जिन मौलिक अधिकारों के लिए सरकार का ये विरोध करते थे उसमें उनका पूरी सफलता मिली।[17]

सिरोही और भील आन्दोलन (1921–1947):

मेवाड़ में भीलों के आन्दोलन का प्रभाव सिरोही में पड़ा, क्योंकि मेवाड़ और सिरोही के भीलों के निवास की पट्टी मिली जुली थी और दोनों का जागीरदारों के क्षेत्र में लाग-बाग, बेगार, सूखड़ी आदि की समस्याएं समान थी। यहां समय समय पर तेजावत आते जाते रहते थे और भीलों की वेष-भूषा में रहकर गांव गांव में संगठन की व्यवस्था करते थे। उन्होंने भवानी के नाम पर फौजदार और पत्र वाहक बना रखे थे। उन्होंने भीलों को "एकी" में रहने की शपथ दिला रखी थी। वे एक रुपया चार आना और पांच पाइला मक्का प्रति हल देने के अतिरिक्त लाग–बाग या बेगार से मुक्ति चाहते थे। अपनी मांगों को लेकर भीलों ने कई गांवों में अपने गल्लों को घरों में बिना हासिल दिये जमा कर लिया और मांगों की चौकीदारी करने से इन्कार कर दिया। मूंगथला के राजकीय गोदाम को और लगान वसूल करने वाले कर्मचारी की पिटाई की और बिना रोक टोक की पर्वाह किये कई सभाओं का आयोजन किया।[18]

सिरोही राज्य में भील हत्याकाण्ड:

इस प्रकार सिरोही में भीलों ने राज्य के अनुचित आदेश का विरोध करना शुरु कर दिया था। पोशीना में 1800 बन्दूक लेकर भील इकट्ठे हुए थे। वहां की स्थिति को देखने के लिये विजयसिंह पथिक पहुंचे। सिरोही के दीवान उस समय पं. रमाकान्त मालवीय थे

16– उदयपुर कोन्फीडेन्शल रेकार्ड, फा.नं. 40, 1935 अ.बी.

17. उदयपुर कान्फीडेन्शल रेकार्ड, फा. नं. 116, 1939, 1940, अ. बी.

18. सिरोही सदर आफिस फाइल, नं. 372-भा. 2, 1922, अ. बी., सिरोही सदर आफिस रेकार्ड, नं. 367, नं. 1921-22, अ. बी., जोधपुर कोन्फीडेन्शल फाइल न. 106, भा. 1, 1922, अ. बी., डा. पेमाराम द एग्रेरियन मूवमेन्ट इन राजस्थान, पृ. 100-102

जो पं. मदनमोहन मालवीय के पुत्र थे। सिरोही में भीलों का नेतृत्व तेजावत ने किया था। जब पथिक सिरोही के भील क्षेत्र में पहुंचे तो उनका बहुत अच्छा स्वागत किया गया परन्तु उनके लौटते ही फिर भीलों का उत्पीड़न होने लगा। वास्तव में ए. जी. जी. का दबाव था कि प्रजा के साथ कोई रियायत नहीं की जावे और लाग-बाग जो परम्परा से चली आ रही है कम नहीं की जावे। इसलिये मालवीय भी कुछ नहीं कर सकते थे। उधर भील लोग बहुत उत्तेजित हो रहे थे। उनका दमन करने के लिये सिरोही राज्य की पुलिस ने सीवा, पिंडवाड़ा, वेलोरिया, भूला नवावास आदि गावों में कई बार गोलियां चलाईं परन्तु गोलियां चलने पर भी वे शांत नहीं हुए। माणिक्य लाल वर्मा भीलों के मध्य में पहले से ही थे। फिर रामनारायण चौधरी व सत्यभक्त वहां पहुंचे तो मालुम हुआ कि राज्य के कर्मचारियों ने बड़ी निर्दयता के साथ गोलियां चलाईं और कई भीलों की निर्मम हत्या की गई। राज्य की और से कहा यह जाता था कि भील लोग बाहर के लोगों का नेतृत्व नहीं चाहते यह बात सफेद झूठ थी। राजस्थान के नेताओं के पास कितने ही पत्र और तार सहायतार्थ पहुंचे थे जिन से विदित होता है कि भीलों ने बड़ा कड़ा सत्याग्रह किया था और रियासत ने भी क्रूरता करने में कोई कसर नहीं रखी थी। राजस्थान सेवा संघ की रिपोर्ट के अनुसार 640 मकान, सैंकड़ों भील नर-नारी मशीनगन के शिकार हो गये थे। और 600 बेलगाड़ियां जलाकर खाक कर दी गई थी। किसानों का अन्न जला दिया गया था, या लूट लिया था और अनाज की कोठियां एक सप्ताह तक जलती रही थी। पुलिस ने 325 परिवारों को तहस-नहस कर दिया था। भील लोग केवल यह चाहते थे कि राज्य और साहूकार उनके साथ अत्याचार न करें, बढ़ा हुआ लगान घटाकर पूर्ववत कर दिया जाए और बेगार तथा लाग-बाग बंद कर दिए जाएं। बोहरे लोग जो उनका खून चूस रहे थे उनसे बचाया जाए आदि। जब जांच की रिपोर्ट अखबारों में प्रकाशित हुई तो कर्मचारी बौखला उठे। सरकार तथा रियासत उत्तेजित हो गई। इन्हीं समस्याओं को लेकर आगे भी भील आन्दोलन करते रहे और राज्य इन पर जुल्म ढाता रहा। उस समय नियम यह था कि भारत की धारा सभा में किसी रियासती मामले की चर्चा या आलोचना नही की जाय। परन्तु राजस्थान के नेताओं ने इंग्लैण्ड के मजदूर संगठन से अपना सम्बन्ध जोड़ लिया था। मजदूर नेताओं में ऐनीहडसन मुख्य थीं। उसकी राजस्थान की जनता के साथ बड़ी सहानुभूति थी। राजस्थान के नेता एनीहडसन के पास रियासतों और ठिकानों के अत्याचारों का हाल भेजा करते थे इनके आधार पर ब्रिटिश पार्लियामेंट में प्रश्न पूछे जाते थे और इनका उल्लेख कई ब्रिटिश और अमरीकन अखबारों में छपता था। पार्लियामेन्ट में पूर्व भारत मंत्री पेट्रिक लारेन्स राजस्थान के कृषकों की विशेष सहायता करते थे। उनके प्रश्नों के आधार भारत सरकार से जबाब तलब किया जाता था।[19]

19- फो.पो. फाइल नं. 954, 1922-23, पी. (सीक्रेसी) 1922-23, रा.अ.; तरुण राजस्थान, 10 मई, 1922; सदरलैंड का पत्र थोमसन को 1932, नं. 45, फो.पो. रा.अ., चौधरी-वर्तमान राजस्थान पृ. 71-72, केला, राज्यों की जन जागृति पृ. 63

ओझा- सिरोही राज्य का इतिहास, पृ. 297-298,206-312

1923 में तेजावत ने भीलों का पुन: संगठन किया और "एकी" आन्दोलन चलाया। जगह-जगह भाषण और मन्त्रणा के आयोजन किये जाने लगे। जिसके अपराध में जैसा कि ऊपर पढ़ा 1929 में उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया और 9 वर्ष तक उदयपुर के केन्द्रीय कारावास में रखा गया। आगे चलकर प्रजा-मण्डल ने इस आन्दोलन में पूरी रुचि ली जिसका नेतृत्व गोकुल भाई भट्ट ने बड़ी निष्ठा के साथ किया। जिसके फलस्वरूप 1947 तक भीलों पर लादी गई बेगार और लाग-बाग समाप्त कर दी गई।[20]

डूंगरपुर में भील उपद्रव:

डूंगरपुर का क्षेत्र भील जाति के बाहुल्य से भरा है। इनमें स्वाभिमान और विदेशी सत्ता से विद्वेश स्वभावतः था उनके परम्परागत अधिकारों पर जब अंग्रेजी शासन से हस्तक्षेप होने लगा तो विद्रोह, डाकाजनी लूटपाट आदि पर उतारू हो गये। महाराजा जसवन्तसिंह ने उनके दबाने के लिए अपनी सेना भेजी पर उसे सफलता नहीं मिली। विवश होकर उसे अंग्रेज सरकार से सहायता मांगनी पड़ी। 1825 में सैनिक दबाव से भीलों के साथ लूट खसौट न करने, विद्रोहियों को शरण न देने, कम्पनी की आज्ञा मानना, डूंगरपुर दरबार को वार्षिक खिराज देने का इकरारनामा कराया गया। इसी प्रकार एक दूसरे इकरारनामे पर डामर, नाथा आदि 22 भीलों के मुखियों के हस्ताक्षर हुए। सेमलवाड़ा, देवल और नांदू के भीलों ने भी इकरारनामे पर दस्तखत किये।[21]

किसी तरह दबाव से भीलों को शांत तो कर दिया था परन्तु बराड की अदायगी और वसूली के समय विलायती सिपाही एवं राज्य के कर्मचारी भीलों को बड़ा तंग करते थे जिससे उनमें बड़ा असंतोष था। एक बार अवसर पाकर जब महारावल दौरे पर था तो भीलों ने उसके सामान को लूट लिया और पोलिटिकल ऐजेन्ट के कैम्प पर भी आक्रमण कर बहुत सा सामान ले गये। सन 1867 में देवल की पाल के भीलों ने बराड़ देने से इन्कार किया और विद्रोह कर खेरवाड़ा जाने वाला मार्ग रोक दिया। उन्होंने देवल के थानेदार को भी मार डाला। बराड़ वसूली के लिये भेजे गये विदेशी सिपाहियों (अरब, मकरानी और सिंधी) को भी मार भगाया। सागर के पास विलायती बेड़े के 14 सिपाही मारे गये। महारावल ने उसी समय हथाई के ठाकुर रघुनाथसिंह को सेना देकर उनके विरुद्ध भेजा। उसने भीलों से समझौता करना चाहा और भीलों के मुखिया लालूड़ा तथा मरवा से बातचीत की। किन्तु कुछ कारणवश अनबन हो गई और रघुनाथसिंह ने दोनों मुखियाओं को मरवा डाला। अब तो भील और उपद्रव करने लगे। महारावल की सेना उन्हें नहीं दबा सकी तो "मेवाड़ भीलकोर" की सहायता ली गई। उनके कई

20- फो.पो. फाइल नं. 276, पो. 1929, रा.अ; फोपो. फा. नं. 185, 1925, पत्र नं. 821, 1928-29; अर्जुन, मई 1931; राजस्थान नवम्बर, 1935; फो. रेकार्ड, बी.एन. नं. 4 1935, उदयपुर रेकार्ड नं.. फा. नं. 116, 1939 अ. उदयपुर, नवजीवन, 1946.

21-ट्रीटीज, एंगेजमेन्ट्स ऐण्ड सनद्ज. पृ. 60-61

मुखिया कैद कर लिये गये और उन्हें कड़ा दण्ड दिया गया। विलायती और मकरानी बेड़ों के सैनिक, जो प्रजा पर अत्याचार करते थे उनमें से 187 व्यक्तियों को राज्य से निकाल दिया गया। इस प्रकार भीलों में शान्ति स्थापित हो गई।[22]

अंग्रेज सरकार के आदेशानुसार सन् 1881 में राजपूताने में जनगणना का कार्य आरंभ हुआ तो महारावल ने भी अपने राज्य में गणना का काम शुरू करवाया था। यह मनुष्य गणना प्रथम बार की जा रही थी, जिसको लेकर उसके सम्बन्ध में लोगों में कई प्रकार की धारणएं बनने लगी। जब कर्मचारी घर घर जाकर नम्बर लगाने लगे तो लोगों के अनुमान में सत्यता दिखाई देने लगी कि यह गणना प्रत्येक व्यक्ति से रुपये लेने के लिये की जा रही है। मेवाड़ में इसी समस्या को लेकर भीलों ने उपद्रव किया था, जिससे डूंगरपुर के भीलों पर इसका प्रभाव पड़ना स्वभाविक था। जब इस तरह से उपद्रव होने की आशंका बढ़ने लगी तो ऐसे भ्रमों का यथा समय निराकरण करने का राज्य द्वारा अभियान चलाया गया साथ ही झोपड़ियों की संख्या का अनुमान लगाकर गणना के काम को पूरा कर दिया गया, जिससे उपद्रव ने अपना वृहद-रूप नहीं धारण किया।[23]

परन्तु डूंगरपुर में पुनः 1913, 1922, 27 में आन्दोलन हुए जिनको राज्य ने सैनिक कार्यवाही द्वारा दबा दिया। सरकार ने उनके जीवन स्तर को उठाने का कोई प्रयत्न नहीं किया। इसकी पूर्ति वनवासी संघ की शाखा ने उस इलाके के भीलों के लिए सामाजिक सुधार और राजनीतिक जागृति का बीड़ा उठाया। उनके लिए पाठशालाएं खोली गई और उन्हें आर्थिक सहायता देने की योजनाएं बनाई गई। राज्य को संघ के ये कार्यक्रम अखरने लगे। संघ द्वारा उनसे बेगार में काम लेने की प्रथा तथा लगान वसूली में की जाने वाली सख्ती की निन्दा की गई। परन्तु राज्य ने इस संघ के कार्यकर्ताओं के साथ निर्दयता का व्यवहार किया। पुलिस ने कार्यकर्ताओं की गिरफ्तारियां, निर्मम पिटाई का दौर आरंभ किया परन्तु संघ और कांग्रेस के कार्यकर्ता, जिनमें श्री भोगीलाल पण्डया, गौरीशंकर उपाध्याय और चन्दूलाल के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं, अपने प्रचार कार्य से विचलित नहीं हुए। इन सेवाओं के लिए इनको कई अमानुषिक यातनाएं भोगनी पड़ी थीं।[24]

बांसवाड़ा और भीलों का उपद्रव :

डूंगरपुर की भांति बांसवाड़ा के इलाके में भीलों की अधिक बस्ती थी। राज्य की ओर से उन्हें बेठ–बेगार में खूब घसीटा जाता था। थोड़ी बहुत जमीन पर यदि वे खेती करते थे

22– फो.पो. खरीता ता. 20 अप्रैल, 1881, 137-139, रा. अ.; ओझा,डूंगरपुर राज्य का इतिहास, पृ. 165–6

23– फो.पो. खरीता ता. 20अप्रैल, 1881. जी, 137-39, रा.अ. ; ओझा, डूंगरपुर राज्य का इतिहास, पृ.–175–76

24– एचीसन भा 3, 55–57, 61, 472–474, सदरलैंड का पत्र, 1843, नं. 29-30, फो.पो. (रा. अ.); नवीन 6 जून, 1940, नव जीवन, 20 अगस्त 1645; केला, देशी राज्य का शासन पृ. 382-83 मुशी ज्वालासहाय वाये राजपूताना, जि. 1, पृ. 523; के.एस. सक्सेना,पृ. 135–186

तो उनसे बराड़ मनमानी वसूली की जाती थी। जब बांसवाड़ा महारावल के तथा अंग्रेज के बीच संधि हो गई तो राज्य को एक बहुत बड़ी रकम सरकार को देना होता था। इस रकम की पूर्ति भीलों से बाराड़ वसूल कर ली जाती थी जब वे बराड़ या वेठ-बेगार देने में आनाकानी करते थे तो राज्य इनको दबाने के लिए मकरानी तथा विलायती सिपाहियों के दल भेजता था। ये दल भीलों के साथ बड़ा कठोर व्यवहार करता था दल के नेता उन लोगों को अधिक सूद पर लेन देन करते थे और यदि उनसे रुपयों की वसूली नहीं होती थी तो उनके बाल बच्चे या महिलाओं को छीन कर दास बना लिया जाता था और उनसे पशुवत व्यवहार किया जाता था। कभी कभी आत्माभिमान के सम्मान में वे लोग इन विलायिती को मार डालते थे। 1927 में अंग्रेजों के हस्तक्षेप से विलायती को राज्य में नौकर रखने पर रोक लगा दी गई।[25]

बांसवाडा रियासत के चिलकारी, शेरगढ़, दोहद, सूंथ आदि स्थानों के भील नये नये करों तथा पुलिस चौकियां के बनने शराबबन्दी आदि परम्परा विरुद्ध किये गये परिवर्तनों से रुष्ट होकर सैलाना, झाबुआ, कुशलगढ़ आदि राज्यों में जाकर वारदातें करने लगे [1873-74] इनको दबाने के लिए मालवा भीलकोर तथा स्थानीय सेना को लगाया गया परन्तु भील उपद्रव करते रहे। दूसरे वर्ष पीपलखूंट व मोरीखेडा में फिसाद छिड़गया क्योंकि पीपलखूंट के भीलों ने मोरीखेड़ा वालों के विरुद्ध एक डकैती की मुखबरी की, जिससे उत्तेजित होकर एक का दूसरे पर आक्रमण तथा प्रत्याक्रमण होता रहा। इसमें दो आदमी भी मारे गये। अन्त में असिस्टेन्ट पोलिटिकल एजेन्ट ने इनमें राजीनामा करवा दिया। वैसे ये मामला आपसी झगड़े का था। परन्तु मुखबिरी करना इस कौम के लिए सरकारी वफादारी समझा गया जिसको मोरीखेड़ा वाले भील सहन न कर सके। उनमें एसे मामलों को अपनी स्थानीय पंचायत में तै करना ठीक माना जाता था। सरकारी हस्तक्षेप उनके लिए अपमान सूचक था।[26]

इसी तरह गोविन्द गिरी नामक साधू ने मानगढ़ पहाड़ पर धूनो जमाकर भीलों में सुधार तथा उनकी संगठन का बीड़ा उठाया उसके उपदेश इतने प्रभावशील थे कि वे उसके भक्त बन गये और उसके नेतृत्व में अपने अधिकारों की मांग करने लगे और राजाज्ञा की उपेक्षा करना आरंभ किया। गोविन्द गिरी की योजना, ऐसा बतलाया जाता है कि, स्वतन्त्र भील राज्य की स्थापना की थी और सामाजिक सुधारों द्वारा भीलों को एक सशक्त कौम बनाना था। अंग्रेज सरकार तथा बांसवाड़ा राज्य इन गतिविधियों को 1913 से रोकने के प्रयत्न में लग गई। वहां धूनी पर एकत्रित भील समुदाय पर गोलियां चलाई गई जिसमें कई भील हताहत हुए और गोविन्द गिरी को जीवित पकड़ लिया गया।[27]

25- मुंशी ज्वाला सहाय, वाकाये राजपूताना, भा. 1, पृ. 533; ओझा, बांसवाड़ा राज्य का इतिहास, पृ. 185.

26- वाकाये राजपूताना, भा. 1, पृ. 547-548; ओझा-बांसवाड़ा राज्य का इतिहास पृ. 190-191.

27-ओझा-बांसवाड़ा राज्य का इतिहास, पृ. 206.

जो काम बांसवाड़ा, डूंगरपुर, झाबुआ, सूंथ आदि राज्यों में गोविन्द गिरी ने आरंभ किया था उसको बांसवाड़े में स्थापित प्रजामण्डल ने पूरा किया। आदिवासियों से जबरन लेवी वसूल की जाती थी उनसे मुफ्त में बेगार ली जाती थी। सर्वश्री भूपेन्द्रनाथ त्रिवेदी, हरिदेव जोशी, धूल जी भाई भावसार, मणि शंकर जानी, सिद्धशंकर झा, मोहनलाल त्रिवेदी, नटवरलाल भट्ट आदि कर्मठ कार्यकर्ताओं ने आदिवासियों पर होने वाले जुल्मों के विरुद्ध आवाज उठाई। उन्होंने भीलों की पंचायत से कुछ कार्यकर्ताओं को चुना। ऐसे व्यक्तियों में दाला भगत, देवा भगत, दीपा भगत, सूरजी भगत हेमता, भगत, कुबला मछार आदि थे। इन्होंने इनके सहयोग से आदिवासियों में जुल्म से मुक्ति पाने की तीव्र आकांक्षा को जागृत किया। इसी अर्से में केला-मेला गांव में लेवी वसूली के सिलसिले में एक आदिवासी किसान के साथ पुलिस ने सख्ती का व्यवहार किया। भीलों में स्वतन्त्रता के प्रति आस्था बन चुकी थी। शीघ्र ही पुलिस के विरुद्ध बांसवाड़े के इलाके में विद्रोह का विगुल बजा दिया गया। उन्होंने रास्ते रोकने के लिए वृक्ष काट कर मार्ग को रोक लिया जिससे पुलिस इस भाग में प्रवेश न करे। बात की बात में वहां हजारों भील सशस्त्र इकट्ठे हो गये। अंत में डा. मोहनसिंह मेहता, जो बांसवाड़े के दीवान थे उनसे नेताओं की बातचीत हुई और मामला रफा दफा कर दिया गया।[28]

जंगलात के कर्मचारी भी भीलों से जबरन चूंगी वसूली करते थे और उनके लिए उपयोगी लकड़ी काटने पर रोक लगाते थे, जिससे भील बड़े रुष्ट थे संयोगवश कुछ जंगलात के कर्मचारियों ने एक आदिवासी महिला से कुएं पर अभद्र व्यवहार किया जिसके फलस्वरूप महिला ने उन्हें खूब पीटा। वे खून से लथपथ हो भाग निकले। इन भागे हुए कर्मचारियों ने पुलिस में रिपोर्ट की। डेरा गांव के लोगों को पकड़ने के लिए पुलिस ने पूरे गांव पर 25 दिन तक घेरा डाला, परन्तु अन्त में पुलिस को घेरा उठाना पड़ा और गांव वालों के संगठन के मुकाबले जनता की विजय हुई।[29]

बांसवाड़ा और डूंगरपुर क्षेत्र में आदिवासियों में शिक्षा का प्रचार, उनकी स्थिति का भान कराने, पहाड़ियों की टेकरियों पर पाठशालाएं स्थापित करने एवं शोषित आदिवासियों को शोषणमुक्त समाज की रचना का पाठ पढ़ाने में भी हरिदेव जोशी सर्वदा अग्रणी रहें। इनकी अकाल राहत कार्य की योजना और अन्न वितरण की प्रणाली एक आदर्श व्यवस्था रही है इस क्षेत्र के भील श्री जोशी के ऋणी है जिन्होंने इनमें एकता की चेतना उत्पन्न करने उन्हें अपने आर्थिक व सामाजिक स्तर को उन्नत करने का अथक परिश्रम किया, जिसके फलस्वरूप इन्हें कई अमानुषिक यातनाओं को भुगतना पड़ा। आज भी उनमें जनजाति के उत्थान के लिए एक तीव्र छटपटाहट है। वे जब कभी इस समुदाय में जाते हैं तो अपनापन अनुभव करते हैं और पूर्णतया उनमें ही खो जाते हैं।[30]

28—सुमनेश जोशी—राजस्थान में स्वतन्त्रता संग्राम के सेनानी, पृ. 357-358.

29—वही, पृ. 358—359

वही, पृ. 753—754

30—सुमनेश जोशी, राजस्थान में स्वतन्त्रता संग्राम के सेनानी, पृ. 753—754.

अन्य स्थानों में भीलों के उपद्रव:

सिरोही और मेवाड़ के भील आन्दोलनों ने मारवाड़ इलाके के बाली और गोडवाड़ क्षेत्र में भीलों ने लगान देने से इंकार किया। राज्य ने सरदार रिसाले को 1922 में भेज कर उनको दबाने का प्रयत्न किया परन्तु इसमें पूर्ण सफलता नहीं मिली। अन्त में जब सिरोही राज्य और भीलों में समझौता हुआ तभी इस राज्य के भील और गरासिया शांत हुए। इसी प्रकार प्रतापगढ़, लुहारु आदि क आदिवासियों ने बेगार और अत्यधिक बराड़ वसूली के विरुद्ध आन्दोलन किया जिसे पूर्णतः नहीं दबाया जा सका। राजस्थान के एकीकरण के समय ही इनकी समस्याएं सुलझ सकी।[31]

ऊपर वर्णित भील आन्दोलन में राष्ट्रीय भावना को जागृत करने में कुछ निष्ठावान जन सेवकों का योगदान रहा है जिनसे इस आन्दोलन में एक नये जीवन का संचार हुआ। ऐसे सेवकों में गुरुगोविन्द गिरी तथा मोतीलाल तेजावत के नाम उल्लेखनीय हैं।

गोविन्दगिरी और भील आन्दोलन:

गोविन्दगिरी का जन्म 30 दिसम्बर सन् 1858 में डूंगरपुर के बांसिया गांव में एक बनजारे के घर में हुआ था। भीलों में सामाजिक एवं राजनैतिक जागृति गोविन्द गिरी ने की थी। गोविन्द गिरी ने भील मोणों और गरासियों को संगठित किया। गिरी पर स्वामी दयानन्द का बड़ा प्रभाव था। जब स्वामी दयानन्द 1880 में अजमेर और मेरवाड़े होते हुए उदयपुर पहुंचे तब गोविन्द गिरी का उनसे सम्पर्क हुआ था। फिर 25 वर्ष तक (1883 से 1908) वह भीलों को नया संदेश देने में लगा रहा। उस पर 1857 की क्रांति का भी प्रभाव था। वह ब्रिटिश सत्ता को चुनौती देना चाहता था। अत: उसने 1883 में 'सम्प-सभा" की स्थापना की। सम्प-सभा का उद्देश्य पिछड़ी जातियों का संगठन और उनका सुधार करना था। इसके लिए उसने कुछ नियम बनाये थे जिनमें मुख्य निम्न थे :–

1– शराब न पीना
2– चोरी और लूट–मार न करना
3– डाका न डालना
4 - गांव–गांव में स्कूल खोलना
5– नित्य स्नान, भगवत पूजा तथा हवन करना
6– पिछड़ी जातियों की आर्थिक स्थिति सुधारना

31–स्टर्लिंग का पत्र बुक को, 1828, नं. 14; रिचार्ड का पत्र सदरलैंड को 18 अगस्त, 1841, नं 118, फो.पो; सदरलैंड का सर्कूलर राजपूताना स्टेट्स को, 1847, नं. 21-30, फो. पो. रा.अ.

कान्फीडेन्शल रिपोर्ट, 5 फरवरी, 1922, नाना पुलिस चौकी से आई.जी.पी.जोधपुर को पत्र; कान्फीडेन्शल रिपोर्ट, 11 फरवरी, 1922, हाकिम बाली से आई. जी'पी. जोधपुर को; कान्फीडेन्शल रिपोर्ट, फा.नं. 106, भा. 1, 1922

7– अपनी पंचायतों से सब फैसले करवा लेना और अदालत में न जाना

8– बेगार नहीं देना तथा अन्याय का मुकाबला करना

9– स्वदेशी वस्त्रों का उपयोग करना।[32]

उसकी वाणी में ऐसी मधुरता थी कि बांसवाड़ा, डूंगरपुर, गुजरात आदि भागों के भील गोविन्द को अपना नेता मानते थे। गोविन्द का निवास छाणी नामक पहाड़ी पर था। उधर के ब्राह्मण और महाजन भी उसके त्याग से प्रभावित होकर उसके अनुयायी बन गये थे। 1903 में जनता के आग्रह पर गोविंद ने मानगढ़ की पहाड़ी पर अपनी धूणी लगाई। 1903 में उसने वहां सम्प-सभा का अधिवेशन करवाया जिसमें डेढ़ लाख लोग उपस्थित हुए। उनको उसने अपने सिद्धान्त समझाये। फलतः दक्षिण, राजस्थान के भील जाग उठे और अन्याय का मुकाबला करने के लिए कटिबद्ध हो गये।[33]

शुरू में छोटे छोटे ठाकुरों और जागीरदारों तथा राज्य के अफसरों को इस आंदोलन के साथ सहानुभूति थी। परन्तु अंग्रेज अधिकारी इसको पसन्द नहीं करते थे। वे दूर की बात सोचते थे। उनको यह भय था कि यदि भील संगठित हो जायेंगे और स्वदेशी आन्दोलन के प्रभाव से उनमें राजनैतिक जागृति आ जायेगी तो एक बड़ा दल अंग्रेज राज्य का विरोधी बन जावेगा। अतएव अंग्रेज सरकार ने राजाओं पर दबाव डाला कि भीलों के जागरण को दबाया जाय। 1908 के बाद यह दमन कार्य शुरू हुआ बांसवाड़ा के महारावल को भीलों से सहानुभूति थी। उन्होंने दमन कार्य में ढील की तो अंग्रेज सरकार ने उसको शासन के अयोग्य बतलाया और उनको गद्दी से उतार दिया तथा बांसवाड़ा का समस्त शासन कुछ समय के लिए अंग्रजों ने अपने हाथ में ले लिया।[34]

अंग्रेज अधिकारियों ने जब यह देखा कि स्थानीय नरेश गोविन्द का दमन करने में सक्रिय नहीं हैं तो अंग्रेज सेना 7 दिसम्बर, 1908 को उसके विरुद्ध भेजी गई जो उन पर टूट पड़ी और धूणी के आस पास कितने ही भील धराशायी कर दिय गये। इधर गोविन्द गुरु पर एक थानेदार को मार डालने का अपराध लगाया गया और उसको 20 वर्ष की सजा दी गई जो अपील करने पर 10 वर्ष की रह गई। रिहाई के बाद वह एक झोंपड़ी बनाकर रहने लगा और फिर वहीं पर उनकी मृत्यु

32–पुलिस रेकार्ड, फा.नं. 78, 107; 1920–22, रा.अ; वागवर वर्ष 15, अंक 1, पृ 49; भील राइजिंग, फा नं. 338, 1922, रा.अ.

33– डा. बृजमोहन जावलिया – क्रांतिकारी गुरु गोविन्दगिरी पा.ली. पत्र 3–7; भगवतीलाल जैन, स्वतंत्रता संग्राम में भगत आन्दोलन का योगदान, पृ. 17 दुबे डूंगरपुर राज्य का इतिहास, पृ. 44-56 सक्सेना, पोलिटिकल अवेकनिंग, पृ. 167, 68, 72.

34– हमारा राजस्थान पृ. 297

हो गई। अब वहां उनके नाम का चबूतरा है जहां प्रति वर्ष मेला लगता है। आज भी कई भील अपने को भगत भील मानते हैं और मदिरा मांस का प्रयोग नहीं करते।[35]

राजस्थान में आदिवासियों में सामाजिक, धार्मिक और आध्यात्मिक सुधार एवं राजनीतिक जागरण का श्रीगणेश स्वामी गोविन्द द्वारा किया गया था। सम्प-सभा की स्थापना उसका एक वैधानिक कदम था जिससे राजस्थान, गुजरात और मालवा के भील संगठित हो सकें। आदिवासियों के आचरण सुधार तथा उनमें भारतीय संस्कृति के तत्वों में श्रद्धा उत्पन्न करने के द्वारा उसने एक क्रान्तिकारी कार्यक्रम को जन्म दिया। गोविन्द केवल धार्मिक नेता ही नहीं था वरन् उसे देश के प्रति अगाध प्रेम था। भीलों को स्वाभिमानी, स्वावलम्बी तथा स्वशासित रहने की प्रेरणा देकर और स्वतन्त्रता आन्दोलन की भूमिका को निभाकर उसकी मृत्यु 1920 में हो गई। उसने अपने त्याग से अमर कीर्ति अर्जित की। उसके द्वारा सामाजिक सुधार के संदेश ने भीलों को अपनी कमजोरी का ज्ञान करा एक जागरुक जाति बना दिया। राजनैतिक चेतना उत्पन्न कर गोविन्दगिरी ने भीलों में ब्रिटिश सत्ता से संघर्ष करने की शक्ति पैदा करदी।

राजस्थान में भीलों का आन्दोलन और मोतीलाल तेजावत का नेतृत्व :

जहां गोविन्द गिरी के नेतृत्व में सामाजिक और आध्यात्मिक पक्ष था तो मोतीलाल तेजावत (1886–1963) के विचार उग्र राजनैतिक थे। वह 1857 की क्रांति को जारी रखना चाहता था उसने लगभग 5000 भील एकत्रित कर जिनमें लगभग 1800 के पास तोड़ेदार बंदूकें थीं, एक शस्त्र दल अपने समर्थकों को तैयार कर लिया था। उसने दांता और सिरोही के भीलों को भी अपने पक्ष में सम्मिलित कर लिया और सबको इस मुद्दे पर समझाया कि मेवाड़, सिरोही, डूंगरपुर, दांता, ईडर आदि में अलग-अलग भूमि कर की व्यवस्था है जो ठीक नहीं है। यहां पट्टे भी एक से नहीं दिए जाते हैं। इस उद्बोधन से चारों ओर भीलों ने आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया। मोतीलाल तेजावत के नेतृत्व में भीलों का राज्यों और अंग्रेज सरकार के विरुद्ध यह व्यवस्थित प्रथम आन्दोलन था। राज्यों और अंग्रेज सरकार ने इसको उनकी सत्ता को चुनौती का कठोर कदम माना[36]।

ईडर राज्य ने घोषणा जारी करके भीलों का एक स्थान पर एकत्रित होना बन्द कर दिया और मोतीलाल तेजावत का राज्य में प्रवेश रोक दिया। यह भी आदेश दिया कि उसको कोई अपने यहां नहीं ठहराये।[37]

35– ओझा–बांसवाड़ा का इतिहास, पृ. 206; शोध पत्रिका, वर्ष 1, अंक 2, पृ. 62, 65, 66; रामचन्द्र दुबे, डूंगरपुर राज्य का इतिहास, पृ. 44–56; शिवलाल कोटड़िया, डूंगरपुर एक सिंहावलोकन, पृ. 12–13, सुमनेश जोशी, स्वतन्त्रता संग्राम के सेनानी, पृ. 1–7

36–फाइल नं. 40, बस्ता नं. 4, अ.बी.; सिरोही पोलिटिकल रेकार्ड, नं. 80, 1022–28; रेजिडेन्सी रेकार्ड, उदयपुर, 1922.

37–आदेश ईडर राज्य 5 फरवरी, 1922 रा.अ., डी.ओ. नं. 2867, 17 स्पे. 1918, मेवाड़ रेजीडेन्सी।

सिरोही मे भी जो भीलों का आन्दोलन हुआ जिसका प्रमुख उद्बोधक मोतीलाल था। वहां एक सम्मेलन करने की योजना बनी सम्मेलन में भील लोग रियासत के प्रति भक्ति प्रगट करके कुछ प्रार्थना करना चाहते थे परन्तु रियासत ने दमन प्रक्रिया को अपना कर उनको उत्तेजित कर दिया। तब महात्मा गांधी ने मोतीलाल तेजावत और राजस्थान के ए.जी.जी. मिस्टर हालेण्ड को समझा बुझाकर परस्पर बातचीत करने को तैयार किया। परन्तु ए.जी.जी. ने शान्तिमय साधनों का उपयोग नहीं कर 8 मई, 1922 को भीलों के दो गांव जला दिये और रोहड़ा तहसील में शान्त भीलों पर गोलियां चलवा दीं। विजयसिंह पथिक को भी पकड़ लेने का प्रयत्न किया गया। इसमें कोई सन्देह नहीं कि सिरोही में भीलों के साथ बड़ी क्रूरता की गई थी। यह खबर अनेक समाचार पत्रों में प्रकाशित हुई।[38]

4 जून, 1929 को मोतीलाल को ईडर राज्य की पुलिस ने गिरफ्तार कर लिया और मेवाड़ राज्य के सुपुर्द कर दिया। उदयपुर राज्य ने उसे 9 वर्ष तक जेल में रखने की तजवीज की।[39]

3 नवम्बर, 1935 को मोतीलाल की रिहाई के वास्ते प्रयत्न किया गया। माणकलाल कोठारी (गुजरात निवासी) उदयपुर गया और वहां महाराणा, उनके दीवान और अंग्रेज रेजीडेन्ट से मिला परन्तु मेवाड़ राज्य ने कहा कि मोतीलाल को उन्हीं परिस्थितियों में छोड़ा जा सकता है जब वह यह लिख कर दे दे कि वह राज्य के विरुद्ध किसी कार्यवाही में सम्मिलत नहीं होगा और महाराणा की आज्ञा के बिना राज्य के बाहर नहीं जावेगा। कोठारी जेल में मोतीलाल से मिला। उसने रियासत की शर्तें मान ली परन्तु उसने अपनी दो शर्तें रखी –

1– रियासत यह कहे कि उन्होंने कोई कसूर नहीं किया और

2– जिन लोगों ने उनके विरुद्ध षड़यन्त्र किया था उन पर उसको मुकदमा चलाने का अधिकार हो। रियासत ने ये दोनों शर्तें मान ली। 16 अप्रेल को मोतीलाल ने रियासत की शर्ते मान कर जेल से मुक्ति प्राप्त कर ली। मुक्त होने के बाद तेजावत खादी प्रचार का कार्य करना चाहता था परन्तु महाराणा ने चाहा कि वह कंजर और सांसी लोगों का सुधार करे और इसके लिये उसको राज्य से खर्च दिया जावेगा। मास्टर बलवन्त सिंह मेहता का भी तेजावत जी के कार्य क्षेत्र में सुधार योजना में सक्रिय सहयोग था।[40]

38–फाइल नं. 106 ए 1922, पुलिस रेकार्ड, फाइल नं. 178, 1920–21, रा.अ., भील राइजिंग, 1922; फा.नं. 388 रा.अ., फाइल नं. 372, भाग–2, 1922, फाइल नं. 80 1922–23, अ–सिरोही।

39– फाइल नं. 428 (गुप्त), 1929, रा. अ.

40– राजस्थान, ता. 4 मई, 1947

तेजावत की पुनः गिरफ्तारी

जब 1942 में भारत छोड़ो आन्दोलन चला तब तेजावत को पुनः गिरफ्तार करके [11 वर्ष तक मेवाड़ में] जेल में रखने के आदेश हुए। 1946 में मोतीलाल ने उदयपुर पुलिस से कहा कि उसे भीलों में सुधार कार्य करने की छुट्टी दी जाय परन्तु उसे इजाजत नहीं मिली। अन्त में स्वतन्त्रता के वातावरण में 3 फरवरी, 1947 को उसे मुक्त किया गया। मुक्ति होने पर उसका लोगों ने बड़ा भव्य स्वागत किया गया। दिसम्बर 5, 1963 को इस प्रसिद्ध क्रान्तिकारी की मृत्यु हो गई। आज भीलों की उन्नति के भवन श्री तेजावत के त्याग की दृढ़शिला पर आधारित है।[41]

यह सत्य है कि गोविन्द गिरी और मोतीलाल तेजावत ने जो आदिवासियों को लेकर आन्दोलन किया था वह समय समय पर दबा दिया गया, परन्तु इन्होंने इस अबोध जाति को अपने गौरव की जो प्रेरणा दी थी वह स्थाई सिद्ध हुई। इनके व्यक्तिगत जीवन की सादगी और त्याग इतने प्रेरणामूलक थे कि इन आदिवासियों की जीवन पद्धति में नया मोड़ आया। इन नेताओं का स्वराज्य और स्वावलम्बन का संदेश इतना प्रभावशील था कि आगे आने वाले कार्यकर्ताओं के लिए ये भील अपूर्व सहयोगी बने रहे। जब बेठ-बेगार, सागड़ी प्रथा आदि जुल्मों के प्रति अन्य रियासतों में आवाज उठाई गई तो राजस्थान की आदिवासी जाति ने इसका पूर्ण समर्थन दिया। जो भी रचनात्मक कार्य इस प्रदेश में किये गये उनका इन्होंने सहर्ष स्वागत किया। सम्प सभा की स्थापना स्वयं में एक ऐसा संगठन था जिसने विदेशी सत्ता का डट कर मुकाबला किया। इसी संस्था के तत्वावधान में रह कर इन्हें यह भान हुआ कि डूंगरपुर, वागड़, सिरोही आदि के दुर्गम भाग में वे सदियों में अपना पंचायती स्वराज्य भोगते थे, जिनको शोषण करने वाले दलालों और विदेशी शासकों ने उनसे छीना है, इनको नैतिक और आर्थिक स्थिति में गिरावट लाने में यह शोषण प्रक्रिया उत्तरदायी है। ये भावना उनके हृदय में धधकती रही और वे सदा विदेशी सत्ता से घृणा करते रहे। इनके आन्दोलनों में एक पीड़ा थी जिसमें राष्ट्रीयता की गंध थी। यही स्वराज्य की पृष्ठ भूमि बनी।

(2) मीणों का ब्रिटिश सत्ता का विरोध

ढूंढार क्षेत्र में, जैसा कि हमने ऊपर कहा, मीणों की संख्या अधिक थी और उस क्षेत्र में कई इकाईयाँ थीं जिनमें भूमि पर स्वामित्व भोगने में वे स्वतंत्र थे। खेराड़ में भी मीणे शक्तिशाली थे। जिस प्रकार राजस्थान के शासकों की प्रशासकीय व्यवस्था में अंग्रेजों ने हस्तक्षेप करना शुरू किया उसी प्रकार इन मीणों को निर्बल बनाने के लिए कई सुधारों के बहाने उनके स्वतन्त्र जीवन पर लगाम डालने के प्रयत्न किये गये। इनको दिलेर तथा अनुशासित देखकर ब्रिटिश सत्ता को भय था कि इनके द्वारा उसके प्रभाव को वे चुनौती दे सकते हैं। उन्नीसवीं एवं 19वीं शताब्दी में सुपरिण्डेण्टेण्ट आफ मीणा डिस्ट्रिक्ट, मेर क्षेत्र

41–नवजीवन, ता. 3 फरवरी, 1947; फाइल नं. 4, का रेकार्ड एस, डब्ल्यू, 40 1935, भ. उ.; फाइल नं. 116, बी. न. 12, 1939, अ. बी.; फाइल नं. 27. बस्ता नं. 4. तजावत सम्बन्धी, अ. बी.; सुमनेश जोशी, राजस्थान में स्वतन्त्रता संग्राम के सेनानी, पृ. 166–179

आदि शासकीय इकाइयों को बनाकर इन पर अंकुश रखने का प्रबन्ध किया गया। कर्नल टॉड ने टॉडगढ़ बनाकर वहां फौजी मुकाम बनाया। इसके साथ समझौते किये, इनको मीणा रजिमैन्ट में भर्ती किया जाने लगा और उनके मुखियाओं की सेना में ऊंचे पद दिये जाने लगे। 1855 में खेरोड़ के मीणों के लिये देवली में एक छावनी और उनकी निगरानी के लिये पुलिस चौकियां स्थापित की गई।[42]

फिर भी विविध क्षेत्रों के मीणों जो खेती करते थे, डकैती करते थे या इधर उधर लूटमार करते थे। उन्हें अंग्रेजों से घृणा थी वे उन्हें अपना शत्रु समझते थे क्योंकि उनके परम्परागत अधिकारी इन्होंने नई प्रशासकीय व्यवस्था द्वारा कुठाराघात किया था। यहां तक कि 1821 में मेरो ने अंग्रेजी थाने लूट लिये और पुलिस अधिकारियों की हत्या कर दी, सन् 1857 ई. में मेवात के मेवों ने अंग्रेजों के विरुद्ध बगावत की और 1857 के विद्रोह में भी मीणों ने विद्रोहियों का साथ दिया था जब वे जयपुर होकर दिल्ली जा रहे थे। राजू रावत ने अपने अदम्य साहस से 12 वर्ष तक अंग्रेजों का मुकाबला कर फांसी के तख्ते पर चढ़ मेरवाड़ा में गीतों का नायक बना।[43]

जब येन-केन प्रकारेण साम-दाम-दण्ड-भेद की नीति पूर्ण सफल न हो सकी और मीणे पूर्ण रूप से कब्जे में नहीं आ सके तो इनको अपराधी जातियों की संज्ञा में शुमार कर कठोर कानूनों द्वारा इन पर नियन्त्रण करने की युक्ति की गई। 1871 ई. में अपराधी जाति अधिनियम बनाकर और समय-समय पर इस नियम में संशोधन कर इस जाति के जीवन को सन्त्रस्त एवं दूभर बना दिया। इस काले कानून के अन्तर्गत इस जाति के सभी व्यक्तियों का पंजीकरण अनिवार्य था। उनके रहने के स्थान निश्चित कर दिये गये और उन्हें निर्धारित समय हाजरी दर्ज करानी होती थी। इधर उधर आने जाने के लिए अनुज्ञा-पत्र प्राप्त करना आवश्यक था। इनके पहिचान के लिए पुलिस थाने में इनके अंगुलियों के निशान रखे जाते थे। इन नियमों के उल्लंघन करने वालों को तीन वर्ष की सजा भुगतनी पड़ती थी और 500 रु. जुर्माना देना पड़ता था। पुलिस के उच्च अधिकारी को इन्हें तीन से छः माह की सजा देने की छूट थी जिसकी कोई अपील नहीं की जा सकती थी। सबसे कानून की कठोरता में इनके अबोध बालक व अबलाएं भी सम्मिलित थीं। पुलिस की खुली छूट ने इन पर बेगार प्रथा को लाद दिया और जब इनको पुलिस थानों के पास रखा जाता था तो इन्हे कई अत्याचारों व बलात्कार का भी शिकार होना पड़ता था। ये धीरे-धीरे पुलिस से सांठ-गांठ जोड़कर चोरी डकैती करने में कुशल हो गए जिसका फल यह हुआ कि बजाय इनको शांति प्रिय जनता बनाने के उन्हें अवांछित तबके में परिणित कर दिया।[44]

42- अजमेर सेटलमेन्ट रिपोर्ट, 1875, पृ. 46, 47: इंडिया गजेटियर, जि. 1, पृ. 99; आर्कियोलोजिकल सर्वे, जि. 20 पृ. 30; इण्डियन एन्टीक्वेटी, जि. 3 पृ. 85-87 रावत सारस्वत, मीणा इतिहास, पृ. 191-195

43- बेन, नोट्स आन जयपुर, पृ. 12. वीर विनोद, 1952, 1955, 2184, रावत सारस्वत, मीणा इतिहास पृ. 192-195

44- राजस्थान डिस्ट्रिक्ट गजेटियर अलवर, पृ. 128-129; राजस्थान डिस्ट्रिक्ट गजेटियर, अजमेर, पृ. 111; रावत सारस्वत, मीणा इतिहास, पृ. 216-219

सन् 1924 में जब अपराधी जाति अधिनियम को लागू किया गया तो समाज के सेवाभावी एवं प्रबुद्ध वर्ग का ध्यान इस ओर गया। उन्होंने "मीणा जातिसुधार कमेटी" नामक संस्था की स्थापना की जिसका उद्देश्य मीणाओं के सामाजिक कुरीतियों को समाप्त करना और उसमें शिक्षा का प्रचार करना था। इस अभिप्राय: से छोटूराम झरवाल, महादेवराव पबडी तथा जवाहरराम माणेलाज आदि मीणाओं ने गांव गांव घूमकर शराब पीने एवं अश्लील गीत या नृत्य करने की निन्दा की और जगह जगह चटशालाओं के खोले जाने पर बल दिया। सन् 1928 में इस समिति के उद्देश्य और गतिविधि के सम्बन्ध में एक पुस्तिका का प्रकाशन भी किया गया जिसे मीणाओं में एक संगठन एवं सुधार की भावना जागृत हो।[45]

सन् 1942 में सूरजभान बंरवा के प्रयत्नों से "अखिल भारतीय मीणा क्षत्रीय महासभा" का अधिवेशन दिल्ली में आयोजित हुआ जिसमें जयपुर क्षेत्र से प्रतिनिधि के रूप में भंवरलाल, विरधीचन्द तथा भूथालाल गये। इस सम्मेलन में मीणाओं में प्रचलित कुरीतियों तथा अपराधी जाति अधिनियम का विरोध किया गया। सन् 1944 में मगनसागर नामक मीणा साधु ने मीनपुराण और मीनपुराण भूमिका को लिखकर गौरवपूर्ण गाथाओं द्वारा इस जाति की गरिमा का लोगों को भान करवाया। इसी वर्ष नीमका थाना, शाहजहांपुर, जयपुर और 1946 में पुष्कर में सम्मेलन हुए जिनमें मीणाओं में वर्ग भेद, इनमें चलित कुरीतियों एवं अपराधी जाति अधिनियम के उन्मूलन सम्बन्धी प्रस्ताव पारित किये गये।[46]

इस प्रकार मीणा जाति सुधार-समिति ने एक सशक्त संगठन कर सम्पूर्ण मीणाओं को अपने अधिकारों के प्रति जागृत कर दिया। जयपुर राज्य को विवश हो 1946 में दादरसी कानून तथा स्त्रियों की हाजरी और सजायाफता व्यक्ति के पंजीकरण की व्यवस्था को समाप्त करना पड़ा। इन सम्मेलनों के आयोजनों एवं कार्यक्रमों में राजस्थान के कर्मठ कार्यकर्ताओं ने भाग लिया जिनमें हरिभाऊ उपाध्याय, ज्वालाप्रसाद शर्मा, हीरालाल शास्त्री, जयनारायण व्यास, रामकरण जोशी आदि प्रमुख थे। भारतीय स्वतन्त्रता के साथ इस जाति को भी क्रमशः इन बंधनों से पूर्णरुपेण मुक्त कर दिया गया। बल्कि कई ऐसे नियम और योजनाए बनाई गई जिनसे इनको लाभान्वित किया गया।[47]

जनजाति आन्दोलन पर एक दृष्टि

ऊपर के वर्णन में हमने देखा कि गोविन्दगिरी नामक व्यक्ति ने भीलों के सुधार का बीड़ा उठाया। उसने ' सम्प सभा " स्थापित कर उनके संगठन को एक शक्ति प्रदान की। इतना ही नहीं उसने भील बाहुल्य क्षेत्र में भील राज्य स्थापना का भी प्रयत्न किया। इससे

45- रावत सारस्वत, मीणा इतिहास, पृ-220

46- रावत सारस्वत, मीणा इतिहास, पृ. 218-225

47- जयपुर गजट संख्या 5547, पृ. 5, 1 जून 1946 असाधारण गजट जयपुर, 10 अगस्त, 1946, रावत सारस्वत, मीणा इतिहास, पृ. 225-227.

डूंगरपुर, बांसवाड़ा और ब्रिटिश राज्य बड़ा चिन्तित हो गया। गोविन्दगिरी को अंत में कारावास की यातना भोगनी पड़ी और उसके आन्दोलन को कुचलने का प्रयत्न किया गया, परन्तु गोविन्द की यातना और प्रयत्न निष्फल नहीं रहे। उसके द्वारा सामाजिक सुधार के संदेश ने भीलों की अपनी कमजोरी का भान करा एक जागरूक जाति बना दिया। राजनैतिक चेतना उत्पन्न कर गोविन्दगिरी ने भीलों में ब्रिटिश सत्ता से संघर्ष करने की शक्ति पैदा कर दी। अब केवल उनमें किसी उद्‌बोधक की आवश्यकता थी। वह उद्‌बोधन मोतीलाल तेजावत द्वारा मिला। जहां नैतिक बल की उपलब्धि भीलों को गोविन्द गिरी से प्राप्त हुई थी वहां राजनैतिक शक्ति तेजावत द्वारा संचारित की गई।

भीलों के प्रारम्भिक आन्दोलनों को समय समय पर दबा दिये गये, परन्तु उनकी भावना को नहीं दबाया जा सका। 1921–22 में ईडर, बांसवाड़ा भोमट, डूंगरपुर, सिरोही, दांता प्रतापगढ़ आदि स्थानों में आन्दोलनों का पुनः विस्फोट हुआ। भाग्यवश अब तक भील अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हो चुके थे तो उन्हें मोतीलाल तेजावत जैसे कर्मठ नेता का भी नेतृत्व प्राप्त हुआ जहां नैतिक बल की उपलब्धि भीलों को गोविन्द गिरी से प्राप्त हुई थी वहां राजनैतिक शक्ति तेजावत द्वारा संचारित की गई। भूराजस्व और पट्टों की समानता के प्रश्न को लेकर उसने ईडर, दांता और सिरोही में भीलों को आन्दोलनकारी बनाया। पिंडवाड़ा और रोहिड़ा में सभाएं आयोजित की और जनवरी 1922 में वे पोषीना में 1800 हल्की बंदूकें लेकर लगभग 5000 भील इकट्ठे हो गये। इस संगठन का नेतृत्व तेजावत ने किया। उसे अपराधी घोषित किया गया और इसीलिए उसे कई बार जेल जाना पड़ा, पर वह अपने सिद्धान्तों से कभी विचलित नहीं हुआ। उसी के परिश्रम का फल है कि आज भील जाति समाज का सशक्त संगठन है।

भीलों की भांति मीणा जाति का आन्दोलन भी अपने आप में एक ऐसा आन्दोलन है जिसमें छोटूराम, महादेवराम, जवाहरराम, सूरजभान, मगनसागर, भूंथालाल, लक्ष्मीनारायण स्वामी कणपुरी, कानसिंह, अरिसालसिंह आदि सेवाभावी मीणा व अन्य वर्ग के व्यक्तियों ने इस जाति की कुरीतियों के उन्मूलन और शिक्षा के प्रसार का सराहनीय प्रयत्न किया। धीरे-धीरे अमानुषिक यातनाओं और बंधन से इन्होंने इनको छुटकारा दिलाया। कई सम्मेलनों के आयोजनों से मीणाओं में संगठन की भावना जागृत हुई और इनमें वर्ग भेद समाप्त हुआ। निर्भीकता और स्वातन्त्र्य प्रेम ने इनमें नागरिक अधिकार प्राप्त करने की क्षमता पैदा की और उनमें नए जागृति के दौर का शुभारम्भ हुआ। इसका फल यह हुआ कि मीणा जाति को अनुसूचित जन-जाति मान कर उसे निर्वाचित प्रक्रिया में एक विशिष्ट स्थान मिला।

इस प्रकार के जन-जाति के आन्दोलनों में उनकी परम्परा और लोक जीवन के प्रति अगाध आस्था झलकती है। उनकी ब्रिटिश सत्ता और उसके आश्रित देशी राज्यों के रवैयों के प्रति भी जो घृणा थी इस बिन्दु की ओर संकेत करती है कि ये जाति अपनी निजी स्वतन्त्रता और जातिगत स्वाभिमान के अनन्य पोशक हैं। कई बर्बर यातनाओं के भुगतने पर भी वे अपनी मान्यताओं से विचलित नहीं हुए। यदि इनकी पंचायतों में कोई निर्णय लिया गया तो उसमें संगठन का अनुशासन प्रथम था। उनकी स्वतन्त्र जीवन के प्रति निष्ठा

ने राजनीतिक जागृति को एक गति दी और उसके परिपालन से यह प्रमाणित कर दिया कि भूखी-नंगी प्रजा पर अत्याचार सफल नहीं होते, क्योंकि उसमें स्वाभिमान और देश प्रेम के गुण विद्यमान होते हैं–जैसे जन जाति में थे। इन पर लगाई गई कई पाबन्दियां जो समय-समय पर हटा दी गई इस बात का प्रमाण हैं कि संगठन में एक शक्ति है। यातनाओं के दौर से गुजर कर इन्होंने और उनके नेताओं ने जनता में सांत्वना, साहस और आशा का सन्देश दिया। इनके संगठनों की उपलब्धियों से देशवासियों में एक बार फिर भविष्य के प्रति और राष्ट्रीय नेतृत्व के प्रति आस्था और विश्वास की लहर दौड़ गई।

अध्याय–10

सामाजिक एवं राजनैतिक संस्थाएं तथा पत्रकारिता और जन-जागरण

(1878–1948)

प्राक्कथन:

कृषक आंदोलनों तथा भीलों के आदोलन एवं क्रांति के दौर से यह स्पष्ट है कि राजस्थान में राजनीतिक वातावरण बदल रहा था । पाश्चात्य सभ्यता, उसके साहित्य, विधि व्यवस्था, भारतीय नेताओं के कार्यकलाप एवं देश में स्थापित सेवाभावी संस्थाओं आदि का यहां अनिवार्य प्रभाव पड़ रहा था साथ ही देशी राज्यों के शासकों एवं उनके अधिकारियों के दमन चक्र से जनता में राष्ट्रीय एकता और स्वाधीनता की भावनाएं दृढ़ता की ओर बढ़ रही थी । 1861 से 1919 का भारतीय स्वतन्त्रता का संघर्ष प्रतिनिधि संस्थाओं की स्थापना के लिए आवश्यक बल दे रहा था और उधर उन्नीसवीं सदी के अन्तिम चरण से 1948 तक भारतीय नेता स्वयं सेवी संस्थाओं तथा राजनैतिक संस्थाओं एवं पत्र–पत्रिकाओं के माध्यम से जन-जागरण की प्रक्रियाओं में लग रहे थे ।[1]

राजस्थान इस दिशा में नहीं पिछड़ा । यहां के निष्ठावान कार्यकर्त्ता, जिनमें पथिकजी, श्री रामनारायण चौधरी, श्री माणिक्यलाल वर्मा, श्री जयनारायण व्यास श्री मोहनलाल सुखाड़िया, श्री हीरालाल शास्त्री, श्री गोकुल भाई भट्ट, श्री जमना लाल बजाज, श्री मथुरादास माथुर, श्री छगनराज चौपासनी वाला, श्री अचलेश्वर प्रसाद, श्री द्वारकादास, श्री रघुवरदयाल, श्री प्रेमनारायण माथुर, श्री सूरज प्रकाश 'पापा', श्री भोगीलल पाण्ड्या, श्री हरिदेव जोशी, श्री गोकुल लाल असावा, श्री ज्वालाप्रसाद, श्री नरहरी बापट, श्री देवीशंकर तिवारी, श्री लादूराम जोशी, श्री टीकाराम पालीवाल, श्री अभिन्नहरि, श्री राजबहादुर, श्री नेतरामसिंह गोरीर, श्री ताडकेश्वर, श्री भोलानाथ श्री रघुवर दयाल आदि अनेक गणमान्य स्वतन्त्रता सेनानियों के नाम उल्लेखनीय है । कुछ संस्थाओं से जुड़ कर समाज सुधारक प्रवृतियों की दिशा में प्रयत्नशील थे । पाठशालाओं वाचनालयों, सभाओं, अधिवेशनों, व्याख्यानों, बैठकों, सदस्यता अभियानों आदि के माध्यम से जन–साधारण मे सच्ची स्वाधीनता के भाव पैदा करना उनका प्रमुख लक्ष्य रहा । उस गन्तव्य की ओर सफल यात्रा इन संस्थाओं का ध्येय था । ऐसी संस्थाओं में राजस्थान सेवा–संघ, हरिजन सेवा–संघ, नारेली का प्रशिक्षण केन्द्र देशी राज्य प्रजा परिषद, मारवाड़ लोक परिषद आदि प्रमुख थी । इनका उद्देश्य समाज सुधार के साथ राजनैतिक भी था, जिनका क्रमशः वर्णन इस प्रकार है––

1– 1861 की धारा, 9, 23, 44, 47, 1874 की धाराएं 1, 1892, धारा 5; इलबर्ट, पृ. ऊ. पृ. 108; मोंटेग्यू–चेम्सफोर्ड रिपोर्ट, पैरा 69, पृ. 72; लखपतराव-यंग इंडिया, पृ. 137; रिपोर्ट फ्रान्चाइस कमेटी, 1919; अधिनियम 1919, धारा 33, 96

राजस्थान सेवा संघ:

राजस्थान सेवा संघ की स्थापना 1919 में वर्धा में हुई और 1920 में यह संस्था अजमेर में स्थानान्तर कर दी गई। यह संघ हिंसा का प्रयोग नहीं करना चाहता था, शांतिमय उपायों से सुधार करना इसका ध्येय था। इस संस्था के अग्रणी पथिकजी चाहते थे कि इसमें ऐसे युवक सदस्य बनाये जाएं जिनके जीवन का उद्देश्य राजस्थान की सेवा करने का ही हो और वे लोग कोई दूसरा धन्धा न करें और अपना सारा समय राजस्थान की राजनैतिक सेवा में लगावें। श्री रामनारायण चौधरी पथिक जी से सहमत हो गये परन्तु कुछ कार्यकर्ता निजी समस्याओं के कारण सक्रिय भाग लेने के लिए तैयार नहीं हुए अतः इस संस्था में शुरू में प्रमुख रूप से केवल पथिकजी, श्री हरिभाई किंकर और श्री रामनारायण चौधरी ही सम्मिलित हुए। कार्यकर्ताओं के वेतन के संबंध में यह निश्चिय हुआ कि अपने और अपने आश्रितों के लिये 15/ मासिक से अधिक कोई न ले। क्रमशः कई कार्यकर्ता इस संस्था को सहयोग देने लगे और उनके सदस्य भी बन गये और उसकी शाखाएं जयपुर, कोटा, जोधपुर और बूंदी में भी खोल दी गई।[2]

संघ की कार्यविधि–

संघ के कार्य की पद्धति संक्षेप में यह थी की रियासतों के लोगों को अपनी कष्ट कहानी सुनाने के लिए संस्था के दफ्तर में बुलाया जाता था और लिखित रूप में या मौखिक रूप में उनके कष्ट सुने जाते थे। जब किसी इलाके के लोग अपने कष्टों के निवारणार्थ सहायता लेने आते तो किसी विश्वस्त कार्यकर्ता को उस क्षेत्र में भेजा जाता था। वहां पहुंचकर जनता के कष्टों की जांच करता और उनको पंचायत के प्रतिनिधि के रूप में कार्य करता था। संघ की सलाह के अनुसार पंचायत अपनी मांगें ठिकाने और रियासत के सामने दरख्वास्तों के रूप में पेश कर देती थी। काफी समय तक इन्तजार करने के बाद सुनवाई न होती तो किसान ठिकाने के विरुद्ध सत्याग्रह का कदम उठाते थे। संघ की ओर से कम से कम एक कार्यकर्ता किसानों को रास्ता दिखाने के लिए उन्हीं में रहने के लिए भेज दिया जाता था। उसकी सलाह से पंचायत लोगों से निश्चित कार्यक्रम पर अमल करवाती थी। इधर संघ जनता की शिकायतों का अखबारों में प्रकाशन करता था। पंचायत के साप्ताहिक अधिवेशन होते थे। उनमें गांव गांव के प्रतिनिधि आते थे और सप्ताह भर की खास-खास घटनाओं पर विचार करते थे। कार्यक्रम में खादी–प्रचार, नशों का निषेध, शिक्षा प्रसार, कुरीतियों का निवारण, देश में एकता स्थापित करना और राज्य व ठिकाने के हानिकारक कार्यों को रोकना मुख्य अंग थे। ब्रिटिश अधिकारियों द्वारा समाज सुधार के कार्यों में हस्तक्षेप का विरोध किया जाता था। जनता की ओर से किसी प्रकार का हिंसात्मक काम न हो उसकी पूरी सावधानी बरती जाती थी। संस्था के उद्देश्य और विचारों को बच्चों और स्त्रियों में गीतों के द्वारा लोकप्रिय बनाया जाता था। अखबारों के माध्यम से जनता तक ये विचार प्रसारित करवाये जाते थे।[3]

2– केला भगवानदास, देशी राज्यों की जन जागृति पृ. 64

3– सेवासंघ की प्रचार की पुस्तिकाओं व पर्चों के आधार पर, अ.बी.

सेवा संघ के इस कार्य प्रणाली एवं प्रचार से ब्रिटिश सरकार चिन्तित थी। 23 व 30 दिसम्बर, 1923 में "तरुण राजस्थान" में सरकार विरोधी खबरों के प्रकाशन के आधार पर रामनारायण चौधरी और शोभालाल गुप्ता की गिरफ्तारी का वारंट 1 मार्च 1924 को इजरा किया गया। दोनों अभियुक्तों को सिटी मजिस्ट्रेट, अजमेर के सम्मुख उपस्थित होना पड़ा। इस मुकदमे में श्री रामनारायण चौधरी तो बरी कर दिये गये, परन्तु श्री शोभालाल को दो वर्ष के कठोर कारावास की यातना तजवीज की गई।[4]

इस प्रकार कार्यकर्ताओं की पकड़ धकड़ से नवजात संस्था की गतिविधि में बाधा उपस्थित हो गई तथा धीरे धीरे इनमें कार्यप्रणाली के सम्बन्ध में मतैक्य भी नहीं रहने लगा। फलत: 1928 तक सेवा संघ समाप्तसा हो गया। परन्तु इतना अवश्य था कि संघ की सहायता से सैकड़ों कृषकों को राजा व जागीरदारों के अत्याचारों से राहत मिली और उसके सदस्यों के सहयोग से कृषक आन्दोलन को बल मिला। जनता को भी इस संस्था के माध्यम से नव चेतना के बढ़ावे में सहायता मिली।

अखिल भारतीय हरिजन सेवा संघ और राजस्थान हरिजन सेवा संघ: --

1932 में अखिल भारतीय हरिजन सेवा संघ स्थापित हुआ। सेठ घनश्यामदास बिड़ला इसके अध्यक्ष थे, श्री अमृतलाल ठक्कर महामंत्री थे और प्रोफेसर नारायणदास मलकानी सहायक मंत्री थे, संघ का प्रधान कार्यालय दिल्ली में कायम हुआ। वहीं से हिन्दी में "हरिजन सेवा संघ" पूना से अंग्रेजी "हरिजन" और बम्बई से गुजराती "हरिजन बन्धु" प्रकाशित होने लगे। इस प्रकार संघ के तीन साप्ताहिक मुख्य पत्र निकलने प्रारम्भ हुए। इनके सम्पादक क्रमश: श्री वियोगीहरि, श्री महादेव देसाई और श्री चन्द्रशंकर पाण्ड्या थे। सबके लिए मार्ग दर्शन गांधी जी का था।

केन्द्रीय व्यवस्था के लिए श्री ठक्कर बापा ने उत्तरदायित्व लिया। संघ के वैतनिक कार्यकर्ताओं के लिए सत्याग्रह से अलग रहना जरूरी था। ऐसा सोचा गया था कि सत्याग्रह और हरिजन सेवा संघ दोनों साथ साथ नहीं हो सकते। संघ की शाखा स्थापित करने के लिए श्री ठक्कर बापा अजमेर आये। श्री हरिविलासजी शारदा को बिड़लाजी ने राजपूताना शाखा का अध्यक्ष मनोनीत किया और श्री रामनारायण चौधरी को मंत्री नियुक्त किया। वैसे राजपूताने में हरिजन सेवा का कार्य बड़ा कठिन था। यह प्रान्त राजनैतिक धार्मिक और सामाजिक कट्टरता का गढ़ था। यहां आत्माभिमान और ऊंच-नीच की भावना बड़ी प्रबल थी। प्रत्येक राज्य की सरकार समझती थी कि हरिजनों की सेवा के बहाने राजनीति के विचारों का प्रचार किया जा रहा है। अंग्रेजों को भी हरिजन सेवा का काम पसन्द नहीं था। वे राजाओं को बहकाते थे कि कांग्रेस वाले हरिजन-सेवा की आड़ में राजनैनिक गड़बड़ मचाना चाहते हैं।[5]

4-तरुण राजस्थान, 2 व 30 मार्च एवं 16 नवम्बर, 1924

5-फा. नं. 156, हरिजन सेवा संघ बिजोलिया, अ. बी.

सन् 1929 में गांधी जी ने प्रजा सेवक समिति का विधान तैयार किया था। जिसमें कार्य कर्त्ताओं के लिए नम्रता, कुशलता और सच्चाई की नीति स्थिर की थी। राजस्थान के लिए श्री रामनारायण चौधरी ने इन्हीं नियमों के साथ नियम बनाया कि हरिजन सेवा संघ के वैतनिक कार्यकर्ता सत्याग्रह में कोई काम नहीं करेंगे। इतना ही नहीं वे राजनीति से कोई सम्बन्ध नहीं रखेंगे। इसके प्रचार के लिए श्री रामनारायण चौधरी ने सारे राजस्थान का दौरा किया। वे जहां जाते थे वहां के नरेश से अनुमति प्राप्त कर लेते थे। बांसवाड़ा राज्य के अतिरिक्त किसी भी राज्य ने उनका प्रवेश निषेध नहीं किया।[6]

अजमेर में अभूतपूर्व दृश्य

उन्हीं दिनों हरिजन सेवा संघ के तत्वावधान में अजमेर में एक अपूर्व जुलूस निकाला गया। यह सवर्ण हिन्दुओं का था। जिनमें सभ्य शिक्षित और उच्च वर्ग के लोगों के हाथों में झाड़ू और टोकरियां थी। जुलूस का नेतृत्व स्वर्गीय बेरिस्टर गौरी शंकरजी कर रहे थे और पीछे सैकड़ों लोग जा रहे थे। हरिजनों के मोहल्लों में पहुंच कर इन लोगों ने सफाई की। इस दृश्य को देखकर हरिजन भी चकित रह गये। इस घटना का समाचार राजस्थान के बड़े बड़े नगरों में पहुंचा तो वहां के उच्च वर्ग के लोग हरिजनों से सहानुभूति रखने लगे और उनके लिये कई पाठशालायें खोली गई। इनके बच्चों को वस्त्र दिये गये तथा उन्हें स्वतंत्रता पूर्वक बाजारों में घूमने की प्रेरणा दी गई।[7]

नरेली का प्रशिक्षण केन्द्र–

इस बढ़ते हुए काम को सुचारू रूप से चलाने, प्रान्त को जागृति में उससे यथेष्ट परिणाम निकालने और कार्यकर्ताओं में एक हद तक सर्वतोमुखी प्रतिभा पैदा करने के लिए एक ऐसे केन्द्र की जरूरत महसूस हुई जिसमें हरिजन सेवकों की तालीम दी जा सके। सन् 1934 में अजमेर से 7 मील पूर्व नरेली एक छोटे से गांव में श्री माणिक्यलाल वर्मा तथा उनके सहयोगियों ने सेवा आश्रम खोला। प्रान्तीय संघ के अधीन जितने शिक्षक और कार्यकर्ता थे उनके लिए यहां आकर छः महीने तक रहना अनिवार्य किया गया। उनके लिए जरूरी था कि वे खादी पहने, उसको कातना सीखें, शिक्षण कार्य करें और गांधी साहित्य का अध्ययन करें। जब ट्रेनिंग शुरू होती थी तो वे गांव की सफाई करते, गांव के गंदे मुहल्लों में झाड़ू लगाते, मिट्टी खोदते, भोजन बनाते और अपना सब काम अपने हाथों से करते थे। यह सब काम वे खुशी से न करते, यदि उनमें एक प्रकार की सेवा की भावना काम न कर रही होती। इसी भावना के कारण सारे आग्रहों और पूर्वाग्रहों की उपेक्षा करके वे राजनैतिक हेतुओं और झगड़ों से अलग रहे, छूत अछूत को बिना किसी भेदभाव के खान-पान और रहन सहन में एक साथ रहे और जलवायु रुपया पैसा और कौटुम्बिक व सामाजिक विरोध सम्बन्धी कठिनाइयों की परवाह न करके भी अपना कर्तव्य पालन करते रहे। हरिजन सेवक संघ के इतिहास में कार्यकर्ताओं का पहला

---

6. फा. नं. 147, जोधपुर. 4, 1942, अ. बी.

7. फा नं. 147, 6, 1942, अ. बी.

प्रशिक्षण केम्प राजपूतानाशाखा ने ही खोला था और उसी ने पहले पहल हरिजनों से भी अधिक दरिद्र भीलों की सेवा का आयोजन किया था। नरेली से इस तरह कोई सौ कार्यकर्ता ट्रेनिंग पाकर बाहर निकले। आगे चलकर भी इनमें से अधिकांश लोग हरिजन सेवा, खादी या प्रजामण्डल के कार्य में लगे रहे।[8]

इस आश्रम के सदस्य हरिजनों में शिक्षा प्रचार और सामाजिक सेवा करने लगे। साथ ही वे लोगों को संगठित भी करने लगे। इस कार्य के लिये श्री अर्जुनलाल सेठी ने भी अजमेर के पास कल्याणपुरा गांव को केन्द्र बनाया। उद्देश्य यह रखा कि मेड़, गूजर, चमार, बलाई आदि जातियो में जाग्रति फैलाई जाए और उनकी पंचायतें गठित की जाए। धीरे धीरे प्रायः प्रत्येक राज्य में हरिजन सेवा संघ स्थापित हो गये।[9] इसमें राजनैतिक कार्यकर्ता ही सदस्य थे, परन्तु प्रत्यक्ष में यह कहा जाता था कि संघ का उद्देश्य केवल अछूतों का उद्धार करना है। बड़े बड़े नगरों में अछूतों के लिए पाठशालाएं स्थापित कर दी गई थीं। हरिजनों को पढाने के लिये राजस्थान में अध्यापक नहीं मिलते थे। इसलिए पंजाब और उत्तर प्रदेश से अध्यापक बुलाये गये थे। इन लोगों को अध्यापन कार्य का तो अनुभव था ही परन्तु गुप्त रूप से ये राजनैतिक प्रचार भी करते थे। परन्तु इनके प्रचार में उग्रता या राज्य का प्रत्यक्ष विरोधी नहीं था। हरिजनों को साफ सुथरा रहना सिखाया जाता था। अपने कपड़े धोने के लिये इन्हें साबुन दिया जाता था और अध्यापक नदियों, तालाबों और कहीं कुओं पर ले जाकर विद्यार्थियों से उनके कपड़े धुलवाते थे। उस समय हरिजनों को सार्वजनिक नलों से पानी नहीं लेने दिया जाता था। उच्च वर्ण के हिन्दु उनको बलात भगा देते थे और सरकार की ओर से भी हरिजनों को कोई सहायता नहीं दी जाती थी। विद्यालय द्वारा हरिजन बच्चों को खादी के कुर्ते और पायजामे दिये जाते थे। इसके लिये अध्यापक जनता से चन्दा इकट्ठा किया करते थे और उन्हे हरिजन सेवक संघ के भी अनुदान मिला करता था। अध्यापकों का वेतन संघ ही दिया करता था। बड़े-बड़े शहरों में सहभोज की व्यवस्था की जाती थी। वर्ष में एक या दो बार ऐसा भोज होता था उसमें हरिजन स्नान करके और साफ कपड़े पहन कर आते थे और हिन्दू ब्राह्मण वैश्य, जाट आदि उनके साथ बैठकर भोजन करते थे। ऐसी व्यवस्था करने में प्रत्येक नगर के आर्य समाजी प्रायः आगे रहते थे और आर्य समाज मन्दिरों में ही ऐसे भोज की व्यवस्था की जाती थी।[10]

राजस्थान के हरिजनोद्धार के कार्य को देखने के लिये श्री ठक्कर बावा तथा श्रीमती रामेश्वरी नेहरू ने भी इस कार्य को देखने के लिये राजस्थान का दौरा किया था। सभी क्षेत्रों में उनके साथ सम्मान पूर्वक व्यवहार किया गया और वे हरिजनों की बस्तियों को और इन लोगों के क्षेत्रों को साफ सुथरे देखकर बड़े सन्तुष्ट हुए।[11]

---

8. वही फा. नं. 156,6 1948, अ.बी.
9. तरुण राजस्थान, 2 व 30 मार्च, 16 नवम्बर, 1924; चौधरी वर्तमान राजस्थान, पृ. 258, 275
10. फा. नं. 147, 157, 161, 1942–1948, अ. बी.
11. वही

रामनारायण चौधरी द्वारा हरिजनों की दशा का वर्णन--

रामनारायण चौधरी ने समस्त राजस्थान में हरिजनों के उद्धार का लगन के साथ काम किया था। इस कार्य में वे गांधी जी के अत्यन्त निकट थे। चौधरी ने महात्मा गांधी को हरिजनों की दशा का लिखित वर्णन भेंट किया था जो निम्नलिखित है:--

"पता नहीं मनुष्य किस तरह इतना विवेक भ्रष्ट और हृदयहीन बन सका होगा और हिन्दु जैसे दयाप्रधान धर्म में यह अमानुषिकता क्यों कर घुसी होगी कि इन्सान को हैवान से भी बदत्तर समझा जाने लगा आत्मवत् सर्व भूतेषु का नित्य पाठ करने वाले लोग अपने ही समाज के एक समूचे अंग को अछूत और अदृश्य तक मानने लगे, उनसे गंदे से गंदा काम लेने लगे, उन्हें कम से कम और खराब से खराब अन्न वस्त्र देने लगे और ऊपर से तिरस्कार व ताड़ना का दंड भुगताने लगे। शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक सारी उन्नति के द्वार इन अभागों के लिए बन्द कर दिये गये। उनको छूना पाप है, देखना पाप उनकी छाया तक पड़ना पाप गिना जाने लगा। यहां तक कि देव दर्शन भी उनके लिये निषिद्ध हो गया। ऐसी दशा मे बेचारे हरिजन क्या तो पढ़े, लिखे, क्या व्यवसाय उद्योग करें, क्या समाज और देश की उन्नति में भाग लें और क्या ईश्वर प्रदत्त शक्तियों का विकास करें? पानी के लिये तरसते रहें, मगर कुए बावड़ी पर पैर नहीं रख सकते। शिक्षा के लिये उत्सुक है पर स्कूल में भर्ती नहीं हो सकते। भूख लगी है, मगर पैसा देकर भी होटल ढाबे में नही खा सकते। हृदय हरिदर्शन को आतुर है, मगर मंदिर की देहली नहीं लांघ सकते। चमड़ा ये कमाते, कूड़ा करकट ये उठाते, टट्टी पेशाब ये साफ करते है, गरज यह कि वे सब काम करते जो माता करती है और जिनके बिना समाज दो दिन जिन्दा नहीं रह सकता। मगर हिन्दू समाज है कि आत्माभिमान में अंधा होकर इतनी बहुमूल्य सेवाओं को घृणा, जुल्म और शोषण से चुकाता है? और किसी रूप में बदला देना ही नहीं जानता। अजमेर के मलूसर मुहल्ले में स्टेशन देखा और मनुष्यों को मलमूत्र के कुंड में काम करते पाया तो दिल ग्लानि के मारे भर गया। जब मालवा का हाल सुना कि वहां सवर्ण लोग हरिजन स्त्रियों के सिरों पर मैले के घड़े फोड़कर और उनके साथ खुले रूप में कुत्सित व्यवहार करके उत्सव मनाते हैं तो ऐसे लगा कि मानवता हिन्दू समाज को छोड़कर रसातल चली गई और दण्ड स्वरूप उसके गले में गुलामी का तागा डाल गई है। हरिजनों की दुःख गाथा यहीं समाप्त नहीं होती। सवर्ण गेहूं और शक्कर खाते हैं तो हरिजनों को जौ, बाजरे और गुड़ का ही मौसर नहीं। ऊंची जाति के मंदिर पर सोने का कलश चढ़े तो नीचों के भगवान का घर बिना कलश के ही रहना चाहिये। हरिजन अपने दूल्हे को घोड़े पर चढ़ा कर ले जायेगा तो सवर्ण वर राज के लिये हर जगह हाथी कहां से आयेगा? उन्हें साईकिल पर बैठने की मनाई। द्विज के सामने मजाल हैं जो अछूत खाट पर बैठ जाएं। मुंह लगाकर हुक्का पी ले या स्त्री जूता पहन कर निकल जाए। यह अभिशाप सवर्णों में भी आपस में मौजूदा था। किसी राजपूत गांव में बनियों और शूद्रों को राजपूतों के सामने इसी तरह अपमानित होना पड़ता था। बदले में ठाकुर साहब को सेठ जी के आगे कमर बांधे सलाम झुकाते हर किसी मिल के दरवाजे पर देखा जा सकता था। झालावाड़ राज्य में एक लखपति हरिजन के सामने ब्राह्मण देवता को हाथ बांधे भीख मांगते भी पाया गया। रेलवे और सरकारी विभाग में अछूत हाकिमों की खुशामद करते हुए रात दिन ठाकुर साहब, पण्डितजी और सेठजी सभी देखे जाते थे। फिर

भी भले ही कुत्ते बिल्ली छू जायें, मन्दिर में चले जायें और घर भर में चक्कर लगाते रहे, मगर हरिजन का कहीं गुजर नहीं । उनके मकान देखे तो अंधेरे तग और फूस मिट्टी के ढेर जहां हवा रोशनी और कुशादगी का नाम नहीं । खाना जूठा और सड़ा, बासी और कपड़ा उतरा हुआ मिले मगर काम करना पड़े कड़ी से कड़ी मेहनत का । न सर्दी का लिहाज न धूप और वर्षा का ख्याल । डांट–डपट और गाली गलोच ऊपर से । ऐसी नारकीय यातनाओं को कहां तक सहा जाए ? ऐसी हालत में क्या आश्चर्य यदि लाखों विधर्मी हो जाएं और अनेकों धर्म और जाति के कट्टर दुश्मन बन जाएं ?[12]

खडलाई आश्रम :

वर्मा जी हरिजन सेवा कार्य को अजमेर कार्यकर्त्ताओं के हाथ सौंपकर रचनात्मक काम करने के लिए वागड़ (डूंगरपुर-बांसवाड़ा) राज्य की ओर चल पड़े । वहां सार्वजनिक कार्य करने वाले भोगीलाल पण्डया थे जो डूंगरपुर के हाई स्कूल में अध्यापक थे । उनकी सहायता से उन्होंने बागड़ प्रदेश का सर्वेक्षण किया और देखा कि वहां के आदिवासियों की दशा बड़ी शोचनीय थी । उनको आर्थिक हालत पर उन्हें तरस आया । जो कार्य वहां बाबा लक्ष्मणदास तथा भोगीलाल पण्डया कर रहे थे उसे आगे बढ़ाने के लिए उन्होंने खडलाई में 1934 में एक आश्रम की स्थापना की और भीलो के बच्चों को पढ़ाना शुरु किया । साथ ही भीलों की पालों में घूम-घूम कर उन्हें शराब न पीने तथा अन्य सामाजिक कुरीतियों को समाप्त करने की शिक्षा दी, महाजनों से कर्ज लेने से उत्पन्न हानियों से उन्हें अवगत कराया । आश्रम में खेती करने, पढ़ने, स्वच्छ रहने, दस्तकारी काम करने आदि का प्रशिक्षण दिया जाता था । इस आश्रम के कार्य को गति देने के लिए आस-पास की पालों में भी पाठशालाएं खोली गई । भाग्यवश उन्हें कुछ एक कर्मठ कार्यकर्ताओं का भी सहयोग मिल गया जिनमें हरिदेव जोशी, कल्याण जी विद्यार्थी, गौरीशंकर उपाध्याय, चंदू भाई, रेवाशंकर, हेमराज, मदनसिंह, भैरूलाल, गोवर्धनलाल, जगन्नाथ भाई आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं । आश्रम के कार्यकर्ता भीलों के लड़के लड़कियों को पढ़ाते थे और रात्रि को युवक तथा प्रौढ़ों की शालाएं चलाते थे । जब भीलों में वर्मा जी में तथा पण्ड्या जी में विश्वास उत्पन्न हो गया तो उन्होंने भीलों की पंचायतों "द्वारा" शराब, दापा एवं सागड़ी प्रथा के विरोध में प्रचार आरम्भ किया । जब यह कार्य सन्तोषजनक प्रगति में था तो वर्मा जी बागड़ क्षेत्र से मेवाड़ क्षेत्र की ओर बढ़े और वहां का कार्य पण्ड्या जी व जोशीजी के नेतृत्व में सुचारु रूप में चलता रहा । आज भी यह कार्य राजस्थान सेवा संघ के तत्वावधान में चल रहा है जिससे भील समुदाय लाभान्वित हो रहा है ।[13]

राजस्थान में भारतीय कांग्रेस

1884 तक भारत में राजनैतिक हलचल अवैध और अव्यवस्थित रूप से चलती रही । यही ढंग राजस्थान में था । सन् 1885 में ए. ओ. ह्यूम नामक एक उच्च

12–रामनारायण चौधरी; आधुनिक राजस्थान का उत्थान, पृ.

13–नवजीवन, जून 1940, 20 अगस्त, 1945; रामनारायण चौधरी, आधुनिक राजस्थान का उत्थान, पृ. 134-137; सक्सेना, जो देश के लिए जीए, पृ. 80-99.

अंग्रेज अधिकारी ने इस हलचल को कांग्रेस की स्थापना द्वारा वैधरूप दिया। उसकी मान्यता थी कि ऐसी संस्था बन जाने से बंगाल के जोशीले नवयुवक उग्र और उद्धत मार्ग से हट कर वैध मार्ग पर चलने लगेंगे। तत्कालीन वायसराय भी इस विचार से सहमत था। इसी प्रकार की समस्या को लेकर ह्यूम के मन में भारतीय नेशनल कांग्रेस के संगठन का विचार आया था। दादा भाई नोरोजी जो अर्थ शास्त्र के बड़े विद्वान पारसी सज्जन थे और इंगलैण्ड की पार्लियामेंट के सदस्य भी बन गये थे, कांग्रेस में शामिल हो गये। कांग्रेस ने भारत की स्वतंत्रता के लिए बहुत काम किया। परन्तु प्रथम 20 वर्ष तक तो इसने सम्राट के प्रति निष्ठा के प्रस्ताव पास किये या नौकरियों में असमानता दूर करने या प्रशासनिक सुधारों की मांग पर ही बल दिया। परन्तु कांग्रेस ने धीरे-धीरे राजनैतिक अधिकार और पूर्ण स्वराज्य की मांग को लेकर आन्दोलन छेड़ दिया।

राजपूताने के नरेशों ने कांग्रेस के ध्येय को जो स्वराज्य था, अप्राप्य और अत्यन्त दूर समझा। मुसलमानों के नेता सर सैयद अहमद खां कांग्रेस के शुरू से ही विरोधी थे। उनको यह डर था कि आखिरकार कांग्रेस जनतंत्रात्मक शासन स्थापित करेगी जिसमें बहुसंख्यक लोगों का प्राधान्य होगा। अत: मुसलमानों की आवाज में उतना जोर नहीं होगा जितना हिन्दुओं के स्वर में। वह चाहता था कि या तो कांग्रेस समाप्त हो जावे या हिन्दू और मुसलमानों के राजनैतिक अधिकार बराबर हों। यह दोनों ही बातें नहीं हो सकती थी परन्तु सर सैय्यद अहमद ने प्रयत्न नहीं छोड़ा और अन्ततोगत्वा उन्हीं के तथा जिन्हों के प्रयास के परिणाम स्वरूप आगे जाकर पाकिस्तान का निर्माण हुआ।

जब कांग्रेस की स्थापना हुई तो महाराजा जयपुर राजस्थान में बुद्धिमत्ता और दूरदर्शिता की दृष्टि से अग्रणी माने जाते थे। इसलिये सर सैय्यद अहमद ने महाराजा जयपुर को पत्र लिखा कि वे कांग्रेस में सम्मिलित न हों और प्रत्यक्ष रूप से उसका साथ न दें। उन्होंने महाराणा को लिखा कि 'कांग्रेस के समकक्ष एक दूसरा संगठन बनाया गया है जिसका नाम इंडियन पेट्रिओटिक एसोसियेशन है। यह संगठन स्पष्टरूप से ब्रिटिश पार्लियामेंट का, अंग्रेजी पत्रकारों का और ग्रेटब्रिटेन की जनता का ध्यान आकर्षित करेगा कि भारत की सारी कौमें और भारतीय नरेश राष्ट्रीय कांग्रेस के मन्तव्यों और ध्येयों से सहमत नहीं है।[14] यह संगठन भारत में शान्ति बनाये रखेगा और ब्रिटिश शासन की नींव दृढ़ करेगा और भारत के लोगों के हृदयों से उन दुर्भावनाओं को दूर करेगा जिनको सारे देश में कांग्रेस के समर्थक उभार रहे हैं और जिनके कारण ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध बड़ा असन्तोष फैल रहा है। साथ ही ए.ओ. ह्यूम भी महाराजा जयपुर को पत्र लिखा जिसमें सैयद के पत्र का खण्डन किया और इस बात पर जोर दिया कि राष्ट्रीय कांग्रेस का वास्तविक उद्देश्य तो ब्रिटिश राज्य को सुदृढ़ करना और राजाओं और प्रजा की तथा समस्त जातियों की ओर विभिन्न धर्मावलम्बियों की, जो इस विशाल राज्य में निवास करते है समृद्धि को बढ़ाना है।[15]

14-सर सैय्यद अहमद का 25 अगस्त 1888 का पत्र महाराजा जयपुर के नाम एफ. एण्ड. पी. रा. अ.; 1 जनवरी 1889 नं. 3-4 एस. सी. रा. अ.

5-ह्यूम का पत्र महाराजा जयपुर के नाम जयपुर रेजीडेन्सी की डायरी में एफ. एण्ड पी. दिनांक 1 जनवरी 1889 नं. 3-4, सीक्रेट, रा अ.

महाराजा जयपुर ने इन पत्रों पर कोई ध्यान नहीं दिया क्योंकि वे इनमें उलझना नहीं चाहते थे।

कांग्रेस के ध्येय और मन्तव्य से सारा देश परिचित हो गया और राजस्थान के अजमेर नगर में भी उसकी ध्वनि आ पहुंची। अजमेर किसी राजा के अधिकार में नहीं था। वहां सीधा ब्रिटिश सरकार का राज्य था। इसलिये राज्यों की अपेक्षा अजमेर में अधिक विचार स्वातन्त्र्य था। अजमेर के राजकीय कालेज के कुछ विद्यार्थियों ने एक कांग्रेस कमेटी बनाई। उसमें चार प्रमुख सदस्य थे, रामगोपाल कायस्थ, फतहचन्द्र खूबिया, हर विलास शारदा और जगदीश प्रसाद दीपक।[16] 1888 में कांग्रेस का चतुर्थ अधिवेशन प्रयाग में हुआ था उसके प्रधान जार्ज मूल थे। इस अधिवेशन में अजमेर से हरविलास शारदा तथा गोपीनाथ माथुर एवं किशनलाल उपस्थित थे।[17] धीरे धीरे कोटा, करौली और धौलपुर में भी कांग्रेस की शाखाएं बनी पर वे अधिक सक्रिय न हो सकीं।[18]

देशी राज्य प्रजा परिषद (स्टेट्स पीपुल्स कान्फ्रेन्स)

स्थानीय समस्याओं को लेकर राजस्थान की रियासतें ही नहीं, सारे भारत की रियासतें चाहती थी कि एक अखिल भारतीय देशी राज्य प्रजा परिषद संगठित की जाए। इसका प्रथम अधिवेशन 17-18 दिसम्बर, 1927 बम्बई में हुआ। वहां प्राय: 67 देशी राज्यों के 600 प्रतिनिधि आये और उन्होंने अपने अपने प्रान्त में परिषदों की स्थापना का संकल्प किया।

इसके उद्देश्य राज्यों उत्तरदायी शासन की राजाओं के नेतृत्व में स्थापना, स्थानीय संस्थाओं की स्वतन्त्रत नता के नागरिक अधिकारों व न्याय को मान्यता, राजाओं के खर्चे से राज्य के खर्चों का प्रथक्करण तथा न्याय की स्वतन्त्र स्थिति आदि थे। इसमें निर्वाचन द्वारा कार्यकारिणी के 75 सदस्य निर्वाचित होने का प्रावधान था। राजस्थान को इन 75 सदस्यों में से 7 स्थान प्राप्त हुए थे जिनके नाम ये थे - पं. नेनूराम शर्मा कोटा, श्री शंकरलाल वर्मा अजमेर, श्री जयनारायण व्यास जोधपुर, श्री कन्हैयालाल कलयन्त्री फलोदी, श्री त्रिलोकचन्द माथुर करौली, श्री रामदेव पोद्दार और श्री श्रीकृष्ण पोद्दार।[19]

इस संस्था की स्थापना नरेशों और अंग्रेजों की आंखों में खटकने लगी। बीकानेर के महाराजा गंगासिंह को इससे अत्यन्त क्षोभ हुआ। उन्होंने अपनी प्रतिक्रिया में बम्बई में भाषण[20] देते अपने पूर्वजों की तलवार की ओर अपनी शस्त्र शक्ति की चर्चा की।

16-जगदीश प्रसाद दीपक, रिवेन्ज्ड इन लंदन।

17-देखो रिवेन्ज्ड इन लंदन।

18-हर प्रसाद, आजादी के दीवाने पृ. 122

19-रिपोर्ट आल इंडिया स्टेट्स पीपुल्स कान्फ्रेन्स, बम्बई, 1927

20- स्पीचेज डिलिवर्ड बाई हिसहाइनेस बीकानेर, 1928, नं. 17 न्यूज पेपर, अ.बी.

अभिप्राय यह था कि जो राज्य शस्त्र के द्वारा कायम किया गया है उसको शस्त्र शक्ति के बिना कोई छीन नहीं सकता। इस समय जनता राज्य छीनने की चर्चा नहीं कर रही थी। केवल प्रशासनिक सुधारों की चर्चा थी। लोग चाहते थे कि हरिजनों का उद्धार हो, चर्खा संघ स्थापित हो, खादी का उत्पादन और उपयोग हो, मद्य निषेध हो और शिक्षा का अधिक प्रचार हो। परन्तु हमारे देशी नरेशों का प्रायः यह रुख था कि वे अपनी जनता के सामने तो शस्त्र प्रदर्शन करते थे और अंग्रेजों के सामने अत्यन्त विनीत बन जाते थे।

राजपूताना देशी राज्य परिषद्–

राजस्थान के राजनैतिक कार्यकर्ताओं की आकांक्षा थी कि सब रियासतों की प्रजा का एक सम्मिलित संगठन बन जाए। इस इच्छा के फलस्वरूप ही मध्य भारत राजस्थान राजनैतिक सभा स्थापित की गई थी। परन्तु उसने कुछ वर्ष काम किया और परस्पर मतभेदों के कारण वह भंग हो गई। तब स्टेट्स पीपुल्स कान्फ्रेन्स की शाखा के रूप में एक देशी राज्य परिषद के निर्माण का विचार हुआ। कार्यकर्ताओं का विचार था कि इंडियन कांग्रेस तो ब्रिटिश भारत का प्रतिनिधित्व करे, देशी राज्य परिषद उसी प्रकार भारत की समस्त रियासतों की प्रतिनिधि सभा बन जाए, और राजस्थान की इसकी शाखा राजस्थान का प्रतिनिधित्व करे। तदनुसार श्री विजयसिंह पथिक, श्री रामनारायण चौधरी, श्री केसरीसिंह बारहठ, श्री दामोदर लाल राठी आदि के प्रयत्नों से देशी राज्य परिषद् की एक शाखा राजपूताना को प्रान्त मानकर बनाई गई। इसका प्रथम अधिवेशन 23 व 24 नवम्बर 1928 ई. को अजमेर में हुआ। इसके प्रधान श्री अमृतलाल जी सेठ थे उन्होंने एक लम्बा भाषण दिया था जो 31 पृष्ठ की पुस्तिका में मंत्री स्वागतकारिणी समिति अजमेर ने प्रकाशित किया था। स्वागतकारिणी के मंत्री श्री रामनारायण चौधरी थे। इस भाषण के महत्वपूर्ण अंश यहां उद्धृत किये जाते हैं।[21]

"मित्रों, इस सम्मानजनक एवं उत्तरदायित्व पूर्ण पद के लिये निर्वाचित करके आपने मुझे जो गौरव प्रदान किया है उसका मैं कितना आदर करता हूं इसका आप ख्याल भी नहीं कर सकते।"

मित्रों आपका जन्म उस भूमि में हुआ है जिसका उदाहरण संसार में शायद ही मिल सके। राजपूताना और राजपूतों का खयाल एक साथ ही उठता है। उदयपुर, जोधपुर, बूंदी और कोटा के राजपूत कभी नहीं झुकने वाले थे। चतुर जाट और श्रद्धालु भीलगण, इन सबका गौरव बढ़ाते थे। महान प्रताप की आत्मा आज भी अनुपमेय है।

"मित्रों आपका समस्त प्रान्त हमारे उन नृपतियों के शासन में है जिनमें अधिकांश महान और प्राचीन राजवंशों से सम्बन्ध रखते हैं।

21- यह पुस्तिका भास्कर महादेव सिद्धये, मुबंई प्रेस से छपी थी।

''एक प्रकार से आप समस्त देशी राज्यों के प्रजाजनों के प्रतिनिधि हैं। इसलिए आपकी आवाज समस्त देशी राज्यों के प्रजाजनों की आवाज समझी जा सकती है और वह आवाज क्या है ? क्या आप सुखी और सन्तुष्ट हैं ? जैसा कि हमारे भावनगर के जाम साहिब आपको इंगलैण्ड में प्रकट करना चाहते थे ? क्या आप देशी राज्यों में प्रचलित वर्तमान काल की शासन व्यवस्था और नीति के प्रेमी और उपासक हैं, जैसा कि महान् पटियाला नरेश इंगलैण्ड की, वस्तु स्थिति से अपरिचित, जनता को बतलाते हैं ? क्या वास्तव में आप ब्रिटिश भारत निवासी तथा अन्य प्रजाजनों की अपेक्षा सबसे कम टैक्स देते हैं, जैसा कि पटियाला के मि. रशबुक विलियम्स ने अभी कुछ दिन पूर्व बताया है ? क्या आपके नृपतिगण अपने जीवन के प्रतिक्षण आपके हित के लिए ही मरते पचते रहते हैं ? क्या वे आपसे प्राप्त की हुई आपकी कमाई बहुत सोच समझकर किफायत के साथ खर्च करते हैं जैसा कि राजपीपला नरेश ने इंगलैन्ड के पत्रों में प्रकाशित कराया है ? और अन्ततः यह कि आप देशी राज्यों की वर्तमान शासन प्रणाली का परिवर्तन चाहते हैं या नहीं ? ये उन प्रश्नों में से कुछ प्रश्न हैं जिनका उत्तर आपको अपनी कान्फ्रेन्स द्वारा देना है।

''मैंने आपने बिजौलिया आन्दोलन का अध्ययन किया है, उदयपुर राज्य में घटित होने वाली घटनाओं पर ध्यान रखा है। जयपुर और जोधपुर से कुछ-कुछ परिचित हूं। बीकानेर के सम्बन्ध में तो मुझे बहुत सी बातें मालूम हैं और पिछले दिनों से अलवर के प्रभुजी के कारनामों और उनके शासन का अध्ययन करता रहा हूं और मैं कहूंगा कि राजपूताने की वर्तमान आन्तरिक स्थिति देखकर मेरा हृदय बैठ गया है।

'मैं एक सिद्धान्त पर विश्वास रखता हूं और मैं कहता हूं कि अत्याचार को सहन करना अपमानजनक है, फिर चाहे अत्याचारी कोई हो। हम सब उदयपुर के राजवंश से प्रेम रखते हैं। वह राजपूतों को महान और प्रशस्त केन्द्र स्थान है। पर यदि महाराणा भी किसी ऐसे कार्य के लिए आज्ञा दें जो न्याय नीति के विरुद्ध और अनुचित हो तो हमें उनसे यह बात स्पष्ट कह देनी चाहिए। किसी आदमी के ऐसे कार्य को सहना जो कानून और नीति की दृष्टि से उचित न हो, अत्याचार है। उस आज्ञा का पालन करने से इन्कार कर देना ही धर्म है। राजपूतों ने अपने प्राणों और सांसारिक सम्पत्ति को अपने सिद्धान्तों से अधिक मूल्यवान कभी नहीं समझा। उन्होंने अपने आदर्शों को सदैव संसार की समस्त वस्तुओं से उच्च स्थान दिया है और आज उन्हीं राजपूतों के वंशज नीमूचाणा के हत्याकाण्ड को सहन करते हैं। मुझे उस दिन मालूम होने लगा कि या तो सच्ची राजपूती की अन्त्येष्टि हो चुकी है अथवा अपने जीवन की अन्तिम घड़ियां गिन रही हैं।

'स्वेच्छाचारी नृपति अपनी आवश्यकता और ऐश के सिवा शायद ही कभी किसी अन्य विषय की ओर ध्यान देता हैं। राज्य को वह अपनी सम्पत्ति और भोग-विलास का साधन मानता है। वह प्रजाजनों की आवश्यकता और स्थिति के अनुसार व्यवहार नहीं करता, वह जो एकदम अपनी व्यक्तिगत सम्पत्ति मानकर खर्च करता है और चाहता है कि वह जो कुछ भी कहे उसे बिना उजर माना जाए। वह किसी बात का हिसाब नहीं देगा, किसी

के आगे वह उत्तरदायी नहीं है, यहां तक कि उसके राज्य की व्यवस्था की, नाम मात्र की वार्षिक रिपोर्ट भी, जो प्रायः मनगढ़न्त होती है, प्रजाजनों से छिपाकर रखी जाती है। देशी रियासतों में केवल थोडी सी रियासतों में प्रजा प्रतिनिधि संस्थाएं हैं और जहां कहीं ऐसी संस्थाएं हैं वहां वे दक्षिण भारत की दो एक रियासतों को छोड़ कर नाम मात्र की, ढकोसला मात्र और अनभिज्ञों को धोखा देने के लिए है। सार्वजनिक हितों से सम्बन्ध रखने वाले महकमें सदैव धनाभाव से बेकार पाये जाते हैं। ऐसे महकमें केवल आक्षेपों से बचने के लिए जीवित रखे जाते हैं। राष्ट्र निर्माण सम्बन्धी कार्य का तो स्वप्न भी नहीं देखना चाहिये।" प्रत्येक नृपत्ति के शासन की की सामान्यतः यही स्थिति है। वह वर्तमान संसार के इतिहास से कोई शिक्षा ग्रहण करने को तैयार नहीं है। यदि नृपत्तियों ने इस काल में कोई बात सीखी है तो वह अपने महत्व, अपनी स्थिति अपने रुआब और अपने सन्धि अधिकारों के संबंध में भ्रमपूर्ण धारणा है। वे स्वतंत्र नृपत्ति होने का स्वप्न देखते हैं और एक स्वतन्त्र शासक की पूरी शान का दिखावा करने का प्रयत्न करते हैं।

"ऐसे नृपत्ति को यह बता देने की आवश्यकता है कि तुम मालिक नहीं सेवक मात्र हो। तुम प्रभुजी नहीं हो सेवक जी हो। राज्य तुम्हारी सम्पत्ति नहीं है, वह तो केवल सुप्रबंध के लिए तुम्हें सौंपा गया है। यदि तुम अपने को अयोग्य प्रबन्धक सिद्ध करते हो, जैसा कि तुमने कर ही दिया है, तो तुम्हारी सेवाएं समाप्त कर देने योग्य हैं। जो रुपया स्टेट तुम्हें देती है वह तुम्हारा निजी नहीं है, ताकि उसे तुम मनमाने ढंग से भोगविलास में उड़ाते रहो। वह रुपया प्रजाजनों का है और उन्हीं की भलाई के लिए खर्च किया जाना चाहिये। यदि तुम इसके विपरीत आचरण करते हो तो अमानत में खयानत करते हो और एक अपराधी के रूप में बन्द किए जाने काबिल हो। सारांश यह है कि उन्हें यह बता देने का समय आ पहुंचा है कि श्रीमानों, भले प्रकार से प्रजाजनों की इच्छा के अनुसार व्यवहार करो उनके हित के लिए कार्य करो, उनकी सेवा करने का पूर्ण प्रयत्न करो, यदि ऐसा न करोगे तो तुम्हारे लिये कोई स्थान नहीं होगा और तुम्हें उसी प्रकार विश्राम लेना पड़ेगा जिस प्रकार तुमसे कहीं अधिक बड़े और शक्ति सम्पन्नों को लेना पड़ा है।

"अपनी प्रधान संस्था को निज शक्ति के अनुसार अधिक शक्ति सम्पन्न बनाने का प्रयत्न अवश्य करते रहिये। मैं अखिल भारतीय देशी राज्य प्रजा परिषद् की बात कह रहा हूं। बम्बई के अधिवेशन के बाद एक वर्ष के भीतर हमारी इस संस्था ने प्रशंसनीय कार्य कर दिखलाया है। अपनी क्रियाशीलता का अच्छा परिचय दिया है। इस कान्फ्रेन्स के प्रयत्न से ही भारत सरकार हमें मानने लगी है। नृपतियों की संख्या कमेटी भी हमारे अस्तित्व स्वीकार किये बिना नहीं रह सकेगी। अब हमारी बात हर कोई सुनने लगा है। अब तक रियासत का अर्थ केवल नृपति ही समझा जाता था, प्रजाजनों के लिए कोई स्थान नहीं था पर अब यह परिस्थिति बदल गई है। हमारी अखिल भारतवर्षीय संस्था ने हमारे लिए एक ऐसा स्थान प्राप्त कर लिया है जिसकी अवहेलना नहीं की जा सकती। देशी राज्यों के 7 करोड़ अभागे—दुःखी लोगों को मानो जबान मिल गई है। और सबको दुःख दर्द की दास्तान सुनने के लिये बाध्य कर रहे हैं। हमें और भी शक्ति सम्पादित करनी चाहिये। कान्फ्रेन्स आगामी अधिवेशन दिल्ली में होने वाली है, हमें उचित है कि हम उसको प्रचण्ड रूप से फल बनाने का प्रयत्न करें।

कुछ वर्ष बाद श्री अमृतलाल सेठ ने ब्यावर में भी भाषण दिया। उसका विषय भी अजमेर के भाषण से मिलता जुलता था।

जब अजमेर की शाखा का प्रभाव अच्छा पड़ा तो श्री जयनारायण व्यास ने मारवाड़ में इसकी शाखा की स्थापना तथा 11 व 12 अक्टूबर, 1929 को उसके अधिवेशन करने की तैयारियां करली। परन्तु राज्य के प्रधान डोनाल्ड फील्ड ने उसको होने से रोका और उन्हें 23 सितम्बर 1929 को ही गिरफ्तार कर लिया। फिर भी व्यास जी का साहस नहीं टूटा। उन्होंने 24 व 25 नवम्बर 1931 को. जेल से मुक्त होने के बाद, उसका अधिवेशन पुष्कर में आयोजित किया। इसमें जोधपुर राज्य के दमनकारी रवैये की बड़ी निन्दा की गई और राज्य में नागरिक स्वतन्त्रता तथा विद्योन्नति संबंधी कई उपयोगी प्रस्ताव पारित किये गये। इन क्रियात्मक गतिविधि से राजस्थान की कुछ एक रियासतों की जनता ने भी अपने अपने स्थानों पर इस संस्था की शाखाओं को जन्म दिया। 1933 में सिरोही पीपुल्स कान्फ्रेन्स को बम्बई में और बीकानेर की इसकी शाखा द्वारा 1936 में कलकत्ते में स्थापना की गई। इन दूर स्थित शाखाओं के माध्यम से राजस्थान के कार्य-कर्त्ता अपने भागों की गतिविधि को सजीव रखने लगे, जहां स्थानीय पदाधिकारियों के नियम कारगर सिद्ध नहीं होते थे।[22]

जहां तक उपलब्धियों का प्रश्न हैं आल इंडिया पीपुल कान्फ्रेन्स तथा उसमें भाग लेने वाले सदस्यों तथा शाखाओं के द्वारा राजस्थान में वैधानिक असमानता का संतुलन हो सका और उसके द्वारा शासकीय संस्थाओं के नियमों को परिवर्तन करने का मार्ग प्रशस्त हुआ। साथ ही स्वायत्त शासन प्रणाली के निर्माण के लिए जनमत बनने में इस संस्था व सदस्यों का अपूर्व सहयोग रहा। इसके अधिवेशनों में कांग्रेस के कार्यकर्त्ताओं से मिलने के अवसर राजस्थान के लिए वरदान सिद्ध हुए। यहां की समस्याओं के प्रति भारतीय नेताओं को संवेदना होने लगी और ऐसा वातावरण बना कि स्थानीय नेताओं का सहयोग देश की स्वतन्त्रता के लिये वांछनीय माना जाने लगा। महात्मा गांधी और पं. नेहरू जी के समय समय पर जो रुचि राजस्थान के सम्बन्ध में ली थी उसमें से 2 जनवरी 1946 तक होने वाले स्टेट्स पीपुल्स कान्फ्रेन्स जो उदयपुर में आयोजित हुई, और जिसका अध्यक्षत्व पंडित जी ने किया, स्वतन्त्रता आन्दोलन के उत्साह को परिवर्धित करने में बड़ी अनमोल सिद्ध हुई। उन्होंने यहां कहा था कि जो राज्य नागरिक अधिकारों को मान्यता नहीं देता उसकी शासन व्यवस्था की इति श्री होना चाहिये। यह कथन राज्यों के विलीनीकरण का शीघ्र ही बिन्दु बना। जो कांग्रेस की जनता की स्वातन्त्रयता सम्बन्धी मांगें थी वे ही मांगें इस संस्था की थी जिससे ब्रिटिश भारत और देशी राज्य की मूल मांगों द्वारा ऐक्य स्थापित करने के पुष्ट आधार निर्मित हो गये। परम्परागत मान्यताओं से आविर्भूत राजस्थान इस संस्था से जुड़ने से लाभान्वित हुआ इसमें कोई सन्देह नहीं।[23]

22-फा.नं. 63, 1929 ए.बी.;
वही, फा.नं. 6; सी.नं. 71-73, नेहरू मेमोरियल लाईब्रेरी न्यू दिल्ली।

23-आल इंडिया स्टेट्स पीपुल्स कान्फ्रेन्स पेपर्स, 1927-1933, फा. नं. 25/6 पृ. 737, नेहरू म्यूजियम लाइब्रेरी पंडित जी का अध्यक्षीय भाषण, आल इंडिया स्टेट पीपुल्स कान्फ्रेन्स, 1946 प्रस्ताव, नेहरू मेमोरियल म्यूजियम लाईब्रेरी;

वैसे यह परिषद सामूहिक समस्याओं को हल करने में सफल नहीं हुई, परन्तु इसके माध्यम से एकता का स्वर निकला जिसने राजस्थान की जनता में नये भावों को प्रोत्साहन देने में सहायता प्रदान की। देशी राज्य भी अब महसूस करने लगे कि उनका विरोध एक ऐसा संगठन कर रहा है जिसके पीछे जनता का प्रबल समर्थन है। इस परिषद् के कार्यकर्ता अखिल भारतीय कांग्रेस के निकट आये और उन्होंने गांधी जी एवं पं. नेहरु जी जैसे चोटी के नेताओं को राज्यों की समस्या से अवगत करा उन्हें राज्यों की समस्याओं के प्रति रुचि लेने एवं पथ प्रदर्शन करने को आकर्षित किया।

मारवाड़ हितकारिणी सभा –

जोधपुर स्वतन्त्रता के आन्दोलन मे प्रारम्भ से ही बड़ा प्राणवान रहा है। यहां भाग्यवश कई निष्ठावान कार्यकर्ता थे जिनका नेतृत्व श्री जयनारायण व्यास जैसे व्यक्ति ने किया था। यहां की सरकार दमन नीति और ब्रिटिश राज्य की पक्षधर थी। सर डोनाल्ड फील्ड एवं सर सुखदेव प्रसाद जैसे कठोर दीवान के समय लोक संस्थाओं का चलाना व लोकोपयोगी काम मे रुचि लेना लोहे के चने चबाना था। फिर भी देश प्रेम की उमंग और उत्साह की यहां कोई कमी न थी। इन भावनाओं की प्रतीक मरुधर हितकारिणी सभा थी जिसकी स्थापना 1915 में की गई। इसने कुछ म्युनिसिपल तथा पुलिस के कठोर नियमों को नगर में हड़ताल के द्वारा निरस्त करवाया था। फिर इसका नाम 1917 में मारवाड़ हितकारिणी सभा में परिणत कर दिया गया और उसके कार्य क्षेत्र में जनता को अपने अधिकारों के प्रति जागृत करने, सामाजिक एवं औद्योगिक सुधार आदि विषय सम्मिलित कर लिये गये। अब सभा में बोलने, शिक्षा प्राप्त करने, प्रेस एक्ट, म्युनिसिपैलिटी में सुधार लाने आदि मुद्दों पर बल देना प्रारंभ किया। इसी सभा के तत्वावधान में "स्टेट्स पीपुल्स कान्फ्रेन्स का अधिवेशन 11-12 अक्टूबर, 1929 का जोधपुर में आयोजित करने की तैयारी की गई। परन्तु राज्य ने इस पर पाबन्दी लगाकर कार्यकर्ताओं के उत्साह को भंग कर दिया। यहां तक कि इसके कार्यकर्ताओं तथा श्री जयनारायण व्यास पर यह आरोप लगाया गया कि वे राज्य के विरुद्ध मिथ्या प्रचार करते हैं। इसी अपराध में उन्हें 23 सितम्बर 1929 को गिरफ्तार कर लिया। राजद्रोह के मुकदमे की सुनवाई 23 अक्टूबर से आरंभ हुई जिसके दौरान श्री व्यास के लिए पांच वर्ष का कठोर कारावास एवं एक हजार रुपये के जुर्माना की तजवीज की गई।[24]

इस कार्यवाही की अखबारों में बड़ी निन्दा हुई। यह कहा गया कि ये दमन नीति पैशाचिक शासन और मध्यकालीन बर्बरता की प्रतीक है। अपने अधिकारों के लिए लड़ना या ऐसी सरकार के विरुद्ध आवाज उठाना कोई अपराध नहीं है। ब्यावर एवं

24– रा.अ.फो.पो.फा.नं. 153, सी. 1925 व फा.नं. 158; प्रिन्सली इंडिया, 19 जुलाई, 1926; यंग राजस्थान, सितम्बर, 29, 1929; हिन्दुस्तान टाइम्स, अक्टूबर 4, 1929; रा.रा.अ.बी.फा.बी.डी. 6, 27-9-29 से 25-11-30; डा. लक्ष्मणसिंह पोलिटिकल एण्ड कोन्स्टिट्यूशनल डेवलपमेन्ट इन प्रिन्सली स्टेट्स इन राजस्थान, पृ. 46-47। गांधी–इरविन समझौते के उपलक्ष्य में जयनारायण व्यास आनन्दराज सुराना और भंवरलाल सर्राफ छोड़ दिये गये।

अन्य कई नगरों में सभाओं व संस्थाओं द्वारा इस घटना की कटु आलोचना की गई। राज्य के इस रुख से सभा के कार्यकर्ताओं ने अन्य संस्थाओं द्वारा अपने जन-आन्दोलन को जीवित रखा। इस सभा की गतिविधि को संचालित रखने के उपरान्त श्री व्यास ने कुछ आलोचनात्मक पुस्तक तथा विज्ञप्तियां निकाली जिनमें स्वराज्य की उपलब्धियां और गांधीवादी प्रमुख हैं। इस प्रकार का साहित्य और प्रचार चातुर्य ने श्री व्यास को सरकार की निगाह में एक कांटा और प्रजा की निगाह में मारवाड़ का एक कर्मनिष्ठ नेता बना दिया। सभा द्वारा आयोजित कार्यक्रम आने वाले रचनात्मक आन्दोलन का सुदृढ़ सोपान था।[25]

मारवाड़ यूथ लीग—

मारवाड़ हितकारिणी सभा के कार्य में शिथिलता आने से जब 1931 में मारवाड़ यूथ लीग की स्थापना विद्यार्थियों और नौजवानों के द्वारा की गई। इसके सदस्य लगभग वही लोग थे जिन्होंने" मारवाड़ हितकारिणी सभा में काम किया था। उद्देश्य भी सभा के अनुरूप थे। मई 1931 को लीग के कार्यकर्ताओं ने सराफा बाजार में राष्ट्रीय झंडे को फहराया और विदेशी माल की बिक्री को रोका। पुलिस ने दमन द्वारा भीड़ को तितर-बितर कर दिया। 11 जून 1931 को जोधपुर में लीग ने पुनः एक सभा आयोजित की और पुलिस व राज्य के अत्याचारों की निन्दा की और कई प्रस्ताव स्वतन्त्र जीवन के सम्बन्ध में पारित किये महात्मा गांधी से भी राज्य के विरुद्ध असहयोग आन्दोलन प्रारंभ करने की अनुमति मांगी। 16 जून की सभा में विदेशी वस्त्रों की दुकानों व शराब की दुकानों पर धरने दिये गये और श्री जयनारायण व्यास को ब्यावर में स्टेट्स पीपुल्स कान्फ्रेन्स बुलाने के लिए आग्रह किया। लीग के माध्यम से गांवों में लाग-बाग विरोधी आवाजें उठाई गई। इस संस्था को तथा आन्दोलन को दबाने के लिए 1932 में श्री छगन राज चोपासनी वाला और श्री अचलेश्वर प्रसाद को गिरफ्तार कर लिए गए और सभाओं और ऐसे प्रचार को अवैध घोषित कर दिया गया। इस लीग के कार्यक्रम के अन्तर्गत स्वायत्त शासन, नागरिक अधिकार, शिक्षा एवं चिकित्सा सुविधा आदि मुद्दे उठाये गये थे जो जनमत पैदा करने में बड़े उपादेय सिद्ध हुए।[26]

सर्वहितकारिणी सभा चूरू—

बीकानेर के आन्दोलन का प्रारंभ 1912 में चूरू में सर्वहितकारिणी सभा की स्थापना से होता है। इस संस्था का काम सामाजिक एवं शिक्षा के क्षेत्र में ही सीमित नहीं था परन्तु अर्द्ध राजनैतिक काम भी इसमें सम्मिलित थे। इसी तरह बीकानेर भी सद्विद्या

25—रा. रा. अ. बी. बी. डी. 14, 15 पोलिटिकल एजीटेटर्स जोधपुर, 3 यंग राजस्थान, अक्टूबर 10, 1929, अक्टूबर 3, 1923, प्रिन्सली इंडिया, अक्टूबर 18, 1929

26—फ्री प्रेस जनरल जून 13, 1931; बाम्बे क्रोनिकल, जून 16, 1931; हिन्दुस्तान टाइम्स 19 जून; त्याग भूमि, अजमेर जून 19 जुलाई, 10, 1931; मारवाड़ गजेटियर, 7 मार्च, 1932; जोधपुर राज्य की एडमिनिस्ट्रेटिव रिपोर्ट, 1931-32.

प्रचारिणी सभा की भी स्थापना 1920 मे की गई जिसके द्वारा घूसखोरी और अन्याय के विरुद्ध आवाज उठाई गई थी। बीकानेर राज्य ने इन संस्थाओं की गतिविधि रोकने के लिए कई नियम बनाए जिनमे इनके कार्यकलापों को रोका गया। यहां तक कि धर्म विजय तथा "सत्य विजय" नामक नाटकों के अभिनय से जन-जागरण होने की संभावना से बीकानेर के अधिकारी चिन्तित हो गये। बाहर से आने वाले राजनैतिक कार्यकर्ताओं पर रोक लगाई गई। जो व्यक्ति स्टेट पीपुल कान्फ्रेंस में रुचि लेते थे या बीकानेर के विरुद्ध साहित्य लिखते थे उन पर कड़ी निगाह रखी जाने लगी। कई लोगों को 1932 में गिरफ्तार कर लिया गया और उनके विरुद्ध अभियोग लगाकर 6 मास से 7 वर्ष तक की सजा की तजवीज करदी गई। उनको वकील द्वारा पैरवी करने की भी इजाजत नहीं दी गई। वैसे इन अभियुक्तों की आवाज कुशासन के विरुद्ध थी न कि नरेश के विरुद्ध तथापि दमन नीति का कठोर चक्र ऐसी संस्थाओं और जन हितैषियों के विरुद्ध चलाकर बीकानेर राज्य की सर्वत्र बड़ी आलोचना हुई। जगह-जगह सभाओं के आयोजनाओं के द्वारा ऐसे कुत्सित शासन को अविकासवादी और क्रूर बतलाया गया।[27]

प्रजाप्रतिनिधि सभा, कोटा -

प्रथम युद्ध प्रारंभ होने के पहिले कोटा में शांति थी, परन्तु 1918 मे जब से प्रजा प्रतिनिधि सभा की स्थापना हुई तो नागरिकों की शिकायतों को महकमाखास के सम्मुख रखने के अधिकार की मांग की गई। थोड़े समय के उपरान्त इस सभा ने राजनैतिक अधिकारों का नारा लगाना शुरू किया और अन्य ब्रिटिश भारतीय भागों की भांति विदेशी वस्तुओं को जलाना, धरना देना आदि प्रक्रियाओं को अपनाना शुरू किया। कोटा राज्य ने भी पब्लिक सेफ्टी एक्ट, सिडीशियस मीटिंग एक्ट, पब्लिक सोसाइटी रजिस्ट्रेशन एक्ट आदि से नागरिक अधिकारों पर प्रतिबन्ध लगा दिये जिससे एक ही वर्ष में यह सभा निष्क्रिय कर दी गई।[28]

इसी प्रकार जब 18 अक्टबर 1920 को अनाज के भावों के ऊंचे दामों को लेकर विरोध प्रारम्भ हुआ तो राज्य द्वारा 127 व्यक्तियों को गिरफ्तार कर आन्दोलन को कुचल दिया गया। इसका फल यह हुआ कि कोटा में 1926 तक प्रजा द्वारा (1931 को छोड़) कोई उत्तेजनात्मक घटना न होने पाई। यहां तक कि 1934 की नेशनल कांग्रेस में भी

27—डेली मिलाप, लाहोर, जनवरी 28, 1932; कर्णवीर, जून 11, 1932; प्रिन्सली इंडिया, जुलाई 27, 1932, पृ. 8; बोम्बे क्रोनिकल, दिसम्बर, 20, 25, 1933, 35; फ्रीप्रेस जर्नल, मई 1932, दिसम्बर 19, 1933; डा. लक्ष्मणसिंह, पोलिटिकल एण्ड कोन्स्टिट्यूशनल डेवलपमेन्ट, पृ 48-51

28—कोटा कोन्फिडेन्शल फाइल नं. 12133, महकमाखास, कोटा; दीवान कोटा का पत्र ... रजिडेन्ट फा. नं. 753, मई 14, 107, अ. बी.

यहां का कोई प्रतिनिधि भाग न ले सका। इसका प्रमुख कारण राज्य के अंकुश का बड़ा दबाव था जिससे यहां आन्दोलन में संतोषजनक गति नहीं आ सकी। फिर भी लोगों की भावना को न दबाया जा सका।[29]

राजपूताना मध्य भारत सभा, अजमेर--

इस सभा का कार्यालय अजमेर में था। यह सभा 29 दिसम्बर, 1919 को दिल्ली कांग्रेस के अवसर पर चांदनी चौक के मारवाड़ी पुस्तकालय में स्थापित हुई थी। देशी राज्यों की प्रजा का यह प्रथम राजनैतिक संगठन था। इस सभा ने एक साप्ताहिक पत्र निकालने का भी निश्चय किया और यह कार्य श्री जमना लाल बजाज की सहायता से शुरू हुआ। इस सभा के प्रमुख सदस्य राजस्थान में भ्रमण करते, स्थान-स्थान पर पाठशालाएं कायम करते और नगरों में कार्यकर्त्ताओं को राजनैतिक आन्दोलन के लिए संगठित करते थे। श्री चांदकरण शारदा और श्री कन्हैया लाल कलयंत्री इसके बड़े सक्रिय कार्यकर्त्ता थे। ये लोग जनता के दुःख दर्द को सम्बन्धित राज्य के नरेश, दीवान या बड़े हाकिम के सामने रख कर उसके निवारण का काम करते थे और नरेशों की अध्यक्षता में उत्तरदायी सरकार की मांग पेश करते थे। इस प्रकार का काम इन्होंने जयपुर और अलवर से आरंभ किया था। बूंदी नरेश ने प्रारंभ में इनके साथ उदारता का रुख अपनाया था और उत्तरदायी सरकारी की ओर कदम बढ़ाने का वचन भी दिया था किन्तु पोलिटिकल ऐजेन्ट के दबाव के कारण वे कुछ नहीं दे सके। आरम्भ में इसका नरेशों ने विरोध नहीं किया। इसमें केवल जागीरदारों और बड़े-बड़े अधिकारियों के कार्यों पर टीका टिप्पणी की जाती थी। व्यापक रूप से रियासतों के प्रशासन की त्रुटियां भी बताई जाती थीं। इसने खेतड़ी पीसांगन, बिसाउ, बिजोलिया, बूंदी, बीकानेर आदि स्थानों के अत्याचारों का विरोध किया। सिरोही के भीलों और गिरासियों के आन्दोलन का समर्थन किया। बूंदी राज्य में प्रचलित बेगार का विरोध किया तथा उनके लिए एक जांच कमेटी बिठाई। जयपुर के तोरावाटी के भोमियों का फैसला करवाया। इस सभा के अग्रणी कार्यकर्त्ता निम्नलिखित व्यक्ति थे।[30]

1- श्री विजयसिंह पथिक	अजमेर
2- श्री चांदकरण शारदा	,,
3- श्री गणेशनारायण सोमाणी	जयपुर
4- श्री स्वामी नरसिंह देव	,,
5- डा. अम्बालाल दाधीच	अजमेर
6- कुंवर मदनसिंह	करोली

29-अ कोटा-दीवान कोटा का पत्र कोटा रजिडेन्ट को, नं. 163, फा.नं. 12/13, अक्टूबर 25, 1920; कोटा दरबार का पत्र कालविन को, जनवरी 29, 1932; डा लक्ष्मणसिंह पोलिटिकल पृ. 51-53.

30-रिपोर्ट आफ द राजपूताना मध्य भारत सभा; 1937-39, दुर्गा प्रिंटिंग प्रेस, अजमेर।

7– ी राजा बहादुर गोविन्द लाल — बम्बई
8– श्री ठाकुर केसरी सिंह पित्ती — कोटा
9– श्री कन्हैयालाल कलयंत्री — फलौदी
10– श्री सुखसम्पत्तिराय भण्डारी — इन्दौर
11– श्री जमना लाल बजाज — सीकर
12– श्री अर्जुनलाल सेठी — जयपुर
13– श्री गणेश शंकर
14– श्री केसरीसिंह बारहट

खेतड़ी[31] (जयपुर) के अत्याचार--

खेतड़ी ठिकानों में किसानों के प्रति कुछ कठोरताएं की जाती थी, इन लोगों में स्वाभिमान और संघर्ष की भावना उत्पन्न करने के लिये एक सेवा समिति बनाई गई। श्री गुलाबराय नेमाणी, श्री धर्म किशोर श्रीवास्तव व श्री बाबू प्यारेलाल गुप्त आदि को इस कार्य के लिये स्वयं सेवक बनाया। उन्होंने खेतड़ी के रेतीले जंगल मे एक प्याऊ लगाई। इसमें ये स्वयं सेवक गरीब किसानों को पानी पिलाने का प्रबंध करते थे। इस प्याऊ पर आस-पास के किसान प्रत्यक्ष में तो पानी पीने आते थे परन्तु वास्तव में ये स्वयं सेवक लोगों को विरोध और संघर्ष की युक्तियां और विधियां समझाते थे। खेतड़ी के रावराजा को यह अच्छा नहीं लगा। उन्होंने यह सेवा समिति भंग कर दी और तीन स्वयं सेवकों को गिरफ्तार कर लिया और जेल भेज दिया। सभा ने यह समाचार ज्ञात होते ही सब समाचार पत्रों में इसकी तीव्र आलोचना की। सभा के मंत्री कुंवर चांदकरण जी शारदा, कन्हैया लाल जी कलयंत्री, अजमेर सेवा समिति के दलपति श्री रामकृष्ण और कुछ स्वयं सेवकों को साथ लेकर, मार्ग में अनेक कष्ट सहकर, घटनास्थल पर पहुंचे। चिड़ावा (जयपुर) और खेतड़ी के लोग जागीरदार के अन्याय से बहुत भयभीत थे। परन्तु श्री चांदकरण शारदा आदि के पहुंचने पर उनमें साहस आया। ठिकाने ने चिड़ावा में बहुत से लोगों को गिरफ्तार कर लिया। इनमें मुख्य पं. भीष्मदेव जी शास्त्री व बंशीधरजी स्वर्णकार थे।

खेतड़ी के रावराजा की ओर से पूर्ण प्रयत्न किया गया कि कुंवर चांदकरण आदि धर्मशाला में नहीं ठहरने पावें। उनके भोजन का प्रबन्ध न हो। परन्तु सभा के कुछ लोग रावराजा के आदेशों का उल्लंघन करने के लिए कटिबद्ध थे।

नितान्त तीसरे पहर चिड़ावे के चौक में सभा का आयोजन किया गया, परन्तु ठिकाने की पुलिस ने सभा नहीं होने दी। ठिकाने के कोतवाल और पुलिस ने आकर जबरदस्ती दरिया उठा दी और लोगों को भगाने का प्रयत्न किया, परन्तु सत्याग्रही अड़े रहे और भाषण देते रहे। तदनन्तर श्री चांदकरण स्वयं सेवकों को लेकर खेतड़ी पहुंचे और और राव राजा से मुलाकात करके सब मामला शान्ति से निपटाने का प्रयत्न किया, परन्तु खेतड़ी के रावराजा ने मिलने से इन्कार कर दिया। तब श्री चांदकरण ने खेतड़ी के मजिस्ट्रेट से मुकदमें की दफाएं तथा बयानों की नकले आदि मांगी, परन्तु मजिस्ट्रेट ने यह रूखा जवाब

31- फाईल नं. 74, 92, 93, 104, 1920–30, अ बी.

दे दिया कि उजरत देने पर भी हमारे राज्य में नकलें देने का कायदा नहीं है। इन्हें जेल में स्वयं सेवकों से मिलने भी नहीं दिया गया। लम्बी बातचीत के बाद स्वयं सेवकों को मजिस्ट्रेट ने बुलाया और गुलाबरायजी को माफी मांगने के लिये काफी डराया, धमकाया परन्तु उन्होंने और स्वयं सेवकों ने माफी मांगने से इन्कार कर दिया।

इसी बीच में रामगढ़ (जयपुर) के डाक्टर श्री अमरसिंह भी आकर सत्याग्रह में सम्मिलित हो गये, क्योंकि खेतड़ी रावराजा ने रामगढ़ सेवा समिति के उत्साही सेवक बंशीधर जी को गिरफ्तार कर लिया था। खेतड़ी के राव राजा का विचार था कि मारवाड़ी चुपचाप जुल्म सह लेते हैं परन्तु जब उन्होंने कलकत्ते के मारवाड़ियों का तीव्र आन्दोलन देखा और राजस्थानियों की एक मात्र प्रतिनिधि संस्था राजपूताना मध्य भारत सभा के मंत्री और स्वयं सेवकों का सत्याग्रह देखा और उन्हें जेल के कष्ट भोगने को उद्यत देखा तो ये भयभीत हो गये और उन्होंने चिड़ावा और रामगढ़ के स्वयं सेवकों को फौरन छोड़ दिया। सभा की भारी विजय हुई और सभा की उपलब्धि का यश और गौरव सारे राजस्थान में फैल गया।

पीसांगन सत्याग्रह में सभा की भारी विजय –[32]

अजमेर इलाके में एक इस्तमरारी इलाका है, जिसका नाम पीसांगन है। वहां के राजाजी ने लोगों पर एक नया कर लगाया। प्रजा पहले ही बेगार लागतों व करों से पीड़ित थी। उन्होंने नये कर का विरोध किया और इसकी सभा को सूचना दी। सभा के मंत्री कुंवर चांदकरण शारदा वहां गये, राजा जी से सुलह के लिए बहुत प्रयत्न किये परन्तु जब वे सफल नहीं हुए तो वहां ग्राम हितकारिणी सभा को दृढ़ किया। गांव में एक शारदा पुस्तकालय खोला गया, जहां लोग समाचार पढ़ने जाते थे और राजनैतिक बातें करते थे। जब प्रजा ने टेक्स देने से इन्कार किया तो राजा जी ने लोगों को जेल में रखा उन पर मुकदमे भी चलाये गये, परन्तु प्रजा डरी नहीं। सभा ने अजमेर के कमिश्नर से इस विषय में निवेदन किया और उसके बीच बचाव से राजाजी ने टेक्स और बेगार माफ कर दी। इस प्रकार अन्त में सभा की विजय हुई।

जयपुर और बीकानेर राज्य में कार्य–[33]

सेठ जमनालाल बजाज श्री चांदकरण शारदा, श्री गौरी शंकर भार्गव, कुंवर नारायण सिंह और श्री कन्हैयालाल कलयंत्री आदि शेखावाटी में खद्दर के प्रचारार्थ और सेवा समितियों के स्थापनार्थ दौरा किया। परन्तु वास्तव में खद्दर की आड़ में राजनैतिक आन्दोलन की तैयारी की गई थी। इन लोगों ने सीकर, लक्ष्मणगढ़, फतेहपुर, बिसाऊ, रामगढ़ आदि स्थानों में सभाएं की और उनमें व्याख्यान दिये। इन स्थानों पर पाठशालाओं व पुस्तकालयों का निरीक्षण भी किया गया। यह शिष्ट मण्डल जयपुर के विविध भागों में गया और इसने जनता में राजनैतिक चेतना उत्पन्न की। जयपुर सरकार ने इसके कार्यों

32– रिपोर्ट राजपूताना मध्य भारत सभा, 1937–38

33– 191, भा. 2–8, 1920–1938

में हस्तक्षेप नहीं किया। परन्तु ज्योंही डेपूटेशन चुरू पहुंचा, तो इसके लिए विपत्ति शुरू हो गई। बीकानेर के आई. जी. पी. ने इसको बीकानेर रियासत से वापिस जाने को कहा परन्तु मण्डल ने इसके लिये लिखित आज्ञा मांगी, जो उनको नहीं दी गई। इस कारण सेवा समिति ने चुरू में व्याख्यान दिये और अभिनन्दन पत्र भी स्वीकार किया। परन्तु पुलिस रातभर पहरा लगाती रही और सुबह सेठ जमनालाल बजाज को उनके ननिहाल में भोजन करने जाने से रोका। इस पर सत्याग्रह किया गया, आखिरकार श्री जमनालाल बजाज और उनके साथी भोजन करने गये और पुलिस उनको रोकने में विफल हुई।

इसके पश्चात् सभा के कार्यकर्ता रतनगढ़ के लिए रवाना हुये, वहां पर माधोप्रसादजी एम. ए. की अध्यक्षता में काफी जनता इसके स्वागत के लिये उपस्थित थी। परन्तु बीकानेर की पुलिस ने उनको बेंते मारकर स्टेशन के प्लेटफार्म से बाहर कर दिया और सेठ जमनालाल बजाज व श्री चांदकरण शारदा आदि को जो प्लेटफार्म पर उतर आये थे, जबरदस्ती सिपाहियों ने गोदी में उठाकर गाड़ी में ढकेल दिया।

सिरोही के भील और सभा की सेवा

ईडर और सिरोही राज्य की भील जनता भी बहुत दुखी और दरिद्र थी। दुर्भिक्ष के कारण उनकी हालत और भी चिन्ता जनक हो गई थी, उनको भारी टैक्स देने पड़ते थे। जब महाराज ने उनकी ओर ध्यान नहीं दिया तो उन्होंने सत्याग्रह शुरू कर दिया। ईडर, मेवाड़ और सिरोही के शासकों को भीलों का संगठन बुरा लगा। उन्होंने उन पर नाना प्रकार के अत्याचार किये। सभा के सहकारी मंत्री भीलों के अत्याचारों की तहकीकात करनें स्वयं सिरोही गये, इनकी सहायातार्थ कन्हैयालाल जी कलयंत्री स्वयं कलकत्ता चन्दा एकत्रित करने गये उस समय श्री चांदकरणजी शारदा जेल में थे, जेल से छूटने के बाद सभा की ओर से श्री चांदकरणजी शारदा, श्री अर्जुनलाल सेठी, पं. रामचन्द वैद्य, डाक्टर अम्बालाल जी आदि सिरोही के दीवान पं. रमाकान्त मालवीय से भीलों की सहायतार्थ मिले। इन्होंने भीलों को दुख दर्द दूर करने का आश्वासन दिया। सभा कि ओर से 100 कुरते और 200 टोपियां भीलों में बांटी गई।[34]

बून्दी के अत्याचार और सभा–

उसी समय बून्दी राज्य में भी असन्तोष फैल रहा था, चारों और घूसखोरी थी कृषि को राज्य भर में कोई सुविधा नहीं थी। इन समाचारों को सुनकर सभा ने अपना प्रतिनिधि उनकी सहायतार्थ तथा तहकीकात के लिये भेजा। उस समय बूंदी शहर में न कोई अच्छी सड़क थी और न ही कोई म्यूनिसिपल कमेटी। स्टेट कर्मचारियों का वेतन बहुत ही कम था, इसलिये रिश्वत खूब ली जाती थी सभा की ओर से श्री कलयंत्री जी ने बून्दी नरेश तथा

34– फो.पो. फाइल नं. 954–1 (सीक्रेसी) 1922–23, 428–पी, 1922–23, रा.अ.

अधिकारियों से मिलना चाहा, वहां के दीवान पन्नालाल तथा तीन चार अधिकारियों से वे मिले और वहां उन्होंने बून्दी नरेश से मिलकर निम्नलिखित बातें निवेदन की :-

1. प्रत्येक 200 घरों के गांव में एक हिन्दी स्कूल कायम किया जावे, और हर एक कस्बे में एक लोअर मिडिल अंग्रेजी स्कूल खोला जावे।

2. हर एक गांव में निर्वाचित पंचों की पंचायत समितियां कायम की जावे।

3. कस्बों में और राजधानी में नगरपालिकायें कायम की जावे, जिसमें आधे सदस्य सरकारी और आधे सदस्य प्रजा द्वारा निर्वाचित रहा करें।

4. राज्य की कौंसिल में प्रजा द्वारा चुने हुये सदस्य नियुक्त किये जावें।

5. आय व्यय का बजट प्रति वर्ष बनाकर कौंसिल के द्वारा जनता के सम्मुख रखा जाये।

6. अनुचित लागतें और बेगार उठा दी जाये।

7. कंजरों की लूट खसोट रोकने का शीघ्र प्रबन्ध किया जावे।

8. राजनैतिक कैदियों के खानपान का प्रबन्ध भिन्न प्रकार और सुविधाजनक हो।

9. स्वयं दरबार प्रतिदिन प्रजा की पुकार सुना करें।

इसका उत्तर देते हुए दीवान पन्नालाल ने बतलाया कि राज्य में बेगार प्रथा बन्द कर दी गई है और राजनैतिक कैदियों को भी सुविधायें दी गई है। शेष बातों का यथासम्भव शीघ्र ही कार्यान्वित करने की चेष्टा की जायेगी। [35]

राजपूताना मध्य भारत सभा के अधिवेशन--[36]

5 नवम्बर सन् 1921 में राजपूताना मध्य भारत सभा की कार्यकारिणी सभा की बैठक मारवाड़ी पुस्तकालय चांदनी चौक दिल्ली में रात्रि को 8-30 बजे आरम्भ हुई।

इस अधिवेशन के अवसर पर सेठ जमनालाल बजाज कुंवर चांदकरण शारदा, स्वामी नरसिंह देव सरस्वती, डाक्टर अम्बालाल दाधीच, श्री कन्हैयालाल कलयंत्री, श्री भूरालाल बया, श्री मांगीलाल कोठारी, श्री गणेशनारायण सोमाणी, श्री केसरलाल अजमेर, श्री केसरलाल कटारिया जयपुर, श्री सागरमल बियाणी सीकर, श्री हरीकृष्ण सादाणी

35- रा.अ.फ.पो. फाईल नं. 596 पी (सीक्रेट) 1922-23, फो.पो. नं. 74 पी. 1923; तरुण राजस्थान, 13 जनवरी, 1924; राजपूताना मध्यभारत अजमेर की रिपोर्ट-अजमेर प्रेस।

36- रिपोर्ट राजपूताना मध्य भारत सभा, 1937-38, दुर्गा प्रिंटिंग प्रेस अजमेर।

सांभर, श्री रामप्रसाद दुरकूट सांभर, श्री जानकीप्रसाद शर्मा बगड़हटा रतनगढ़, श्री केदारनाथ गोयल का दिल्ली, श्री कुन्दनमल पारख जावरा, श्री कालूराम नाहर जावरा, श्री शिव पूजनसहाय सम्पादक-मारवाड़ी सुधा, श्री कर्ण कविजी सम्पादक महेश्वरी दिल्ली, श्री उदित मिश्र बीकानेर, श्री विश्वनाथ गुप्त बी.ए. दिल्ली श्री निरंजन शर्मा भरतपुरी, सम्पादक वैभव दिल्ली, श्री पुनमचन्द मेहरा, दिल्ली, प्रोफेसर सुधाकर दिल्ली डा० भानकरण शारदा, श्री ज्वालाप्रसाद गुप्त दिल्ली, श्री मगनलाल शर्मा उदयपुर श्री गोपाल प्रसाद चौबे दिल्ली, श्री धर्मकिशोर श्री वास्तव चिड़ावा, श्री माणिलाल कोठारी लोमड़ी, श्री जगन्नाथदास अधिकारी भरतपुर, श्री ब्रजमोहनलाल जी जयपुर आदि उपस्थित थे।

इस कार्यकारिणी के सभापति सेठ जमनालाल बजाज थे। सभा में सात प्रस्ताव स्वीकृत किये गये। सातवां प्रस्ताव देशी राज्यों के अत्याचारों से सम्बन्धित था। उन पर विचार होकर सर्व सम्मति से निम्नलिखित प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

(1) यह सभा खेतड़ी राज्य के प्रति घृणा प्रकट करती है, क्योंकि राज्य ने सेवा समिति चिड़ावा को बन्द करके व स्वयं सेवकों को अकारण गिरफ्तार करके बड़ा अन्याय किया है।

यह सभा जयपुर महाराजा से प्रार्थना करती है कि खेतड़ी राजाजी से इस कुत्सित कार्य के लिये जवाब मांगे और भविष्य में ऐसे अन्याय अपनी रियासत में न होने देने के लिये प्रबन्ध करें। फलस्वरूप खेतड़ी राजाजी को जयपुर बुलाये गये थे।

(2) यह सभा चिड़ावा के वीर स्वयं सेवकों श्री गुलाब राय जी निर्माणी, श्री धर्मकिशोर श्रीवास्तव, तथा श्री प्यारेलाल आदि को उनकी दृढ़ता पर हार्दिक बधाई देती है, और आशा करती है कि वे देश हित में सदा वीरता दिखाते रहेंगे।

(3) आज कई मास हुए कि पं. शिवचन्दनजी शर्मा ज्योतिर्विद् मंत्री सनातन धर्म सभा को जयपुर राज्य से गिरफ्तार कर रखा है। उन पर न कोई बकायदा मुकदमा चलाया जा रहा है और न कोई कारण ही जनता पर प्रकट हुआ है, अस्तु जयपुर राज्य से प्रार्थना की जावे कि पंडितजी पर या तो कोई केस चलाया जावे या यदि वे निरपराध हैं तो उन्हें तुरन्त छोड़ दिया जावे। फलस्वरूप पंडितजी छोड़ दिये गये।

(4) राजपूताना मध्य भारत सभा की कार्यकारिणी समिति का यह अधिवेशन महाराजा बीकानेर के राज्य में ही श्री जमनालाल बजाज, श्री कुंवर चांदकरण शारदा और श्री गौरी शंकर भार्गव के प्रति किये गये असभ्य और कानून विरुद्ध वर्ताव के प्रति घृणा प्रगट करती है और उक्त नेताओं ने जिस वीरता और सहिष्णुता का परिचय दिया है उस पर बधाई देती हैं, और इस प्रस्ताव की नकल महाराजा बीकानेर के पास भेजती है कि वे सभा को सन्तोषजनक उत्तर दें और भविष्य में ऐसी कुत्सित कार्यवाही कभी न होने दें।

(5) यह सभा अखिल भारतीय राष्ट्रीय महासभा से प्रार्थना करती है कि वह अपनी नीति देशी राज्यों के प्रति स्पष्ट बतला दे।

(6) उदयपुर महाराणा के ब्रिटिश सरकार द्वारा अधिकार छीन जाने का विषय प्रस्तुत हुआ, सर्व सम्मति से निश्चय हुआ कि इस पर आगामी अहमदाबाद कान्फ्रेन्स में विचार हो।

राजपूताना मध्य भारत सभा का पंचम् अधिवेशन अहमदाबाद–

28 दिसम्बर सन् 1921 को राजपूताना मध्य भारत सभा का पंचम अधिवेशन अहमदाबाद में हुआ। राजा बहादुर गोविन्द लाल जी पित्ती इसके सभापति थे।

आगामी वर्ष कार्यकारिणी की सभा फिर हुई, इस सभा के अवसर पर अनेक गण-मान्य सज्जन उपस्थित थे। इस अवसर पर राजा बहादुर गोविन्दलाल पित्ती ने देशी राज्यों पर एक बहुत ही विचारपूर्ण भाषण दिया। इसमें निम्नलिखित प्रस्ताव पारित हुए–

1–सभा ने राज्यों में स्वदेशी प्रचार, अछूतोद्धार और शराब निषेध सम्बन्धी आन्दोलन में भाग लेने के लिये लोगों से अपील की।

2–सभा ने नागपुर अधिवेशन में पास हुए चतुर्थ अधिवेशन के प्रस्तावों का समर्थन किया।

3–पुनः एक बार जयपुर महाराजा का ध्यान शिवानन्दजी की ओर दिलाया गया जो कि कारागाह में अकारण कष्ट भोग रहे थे।

4–सभा ने देशी राज्यों से अपील की कि वे उस निषेध को जो कि उन्होंने कानपुर के निर्भीक पत्र प्रताप, वर्धा के राजस्थान केसरी और दिल्ली से निकलने वाले वैभव पर लगा रखा है, हटालें।

5–गोवध का प्रधान कारण गौ विक्रय है अतः गौ विक्रय पर रोक लगाने का प्रस्ताव पारित हुआ।

प्रबन्धकारिणी का विशेष अधिवेशन दिनांक 10–8–22 को हुआ उसमें निम्नलिखित प्रस्ताव पारित हुए :–

1–श्री चांदकरण शारदा, श्री गणेश शंकर विद्यार्थी, श्री ब्रह्मचारी हरिजी तथा श्री सेठी को जेल से पुनः सकुशल लौट आने पर बधाई दी गई।

2–सभा की ओर श्री कलयंत्री को उनकी सेवाओं के उपलक्ष में धन्यवाद दिया गया। दिनांक 3–9–22 को सभा का एक और अधिवेशन हुआ, स्वामी नृसिंहदेव सर्व सम्मति से सामयिक सभापति चुने गये।

अन्य स्थानों की संस्थाएँ–

राजस्थान की संस्थाओं में सबसे अग्रणी व साहस सम्पन्न किसानों की संस्थाएं थीं। इन संस्थाओं को ब्रिटिश सरकार और राज्य अपनी सारी कोशिशों के बावजूद ध्वस्त नहीं कर सकी। इसका मूल कारण कृषकों की पीड़ा वास्तविक थी और उनके नेताओं में दृढ़ता

और अपने कर्तव्यों के प्रति ईमानदारी और निष्ठा थी । इनका विस्तृत वर्णन कृषक आन्दोलनों के साथ किया जा चुका है । यहां इतना लिखना पर्याप्त होगा कि इन संस्थाओं ने नए कीर्तिमान स्थापित कर शोषण को परास्त कर शांति को विजय दिलाई ।

राजस्थान में अन्य संस्थाएं भी इस प्रारंभिक काल में बनी, जिन सभी का नामोल्लेखन करना विषयान्तर होगा । सच तो यह था कि वे लगभग सभी स्थानीय थीं और उनके मूल में निहित स्वार्थ या जातीय भावनाएं थीं । जब सर्वत्र राजस्थान में आंदोलन चल रहे थे, इस प्रारंभिक काल में जोधपुर में यंग मुस्लिम एसोसिएशन, मुस्लिम लीग तथा अलवर में मेओं का संगठन बना और भी कई जातियों व विचारकों की सभाएं बनीं । परन्तु क्योंकि इनके वातावरण में जातिवाद की बू थी और राष्ट्रवाद का कोई उनमें उचित स्थान न था इनको स्वतंत्रता के आंदोलन के वर्णन में सम्मिलित नहीं किया जा रहा है ।[37]

राजस्थान में समाचार-पत्र, पत्रिकाएं आदि–[38]

अंग्रेजी राज्य के विरुद्ध बढ़ते हुए राष्ट्रीय आन्दोलन की गति और शक्ति के बारे में जानकारी प्राप्त करने के साधन सीमित थे, विशेषकर राजस्थान के बीहड़ जंगलों में या अपार रेगिस्तान में इनका पहुंचना कल्पनातीत था । इसके उपरान्त यदि कोई सूचना यहां पहुंचती थी जिसमें लोकतन्त्रात्मक बातों का समावेश होता था उनको नरेशों के शासकीय प्रबन्ध अवरुद्ध कर देते थे । ऐसी स्थिति में समाचारों का प्रकाशन या प्राप्ति एक समस्या था । जैसा कि सर्वविदित है कि राजनैतिक जागरण और प्रान्तों की अपेक्षा बंगाल में सबसे पहले हुआ था और यहीं अंग्रेजी और बंगला में समाचार पत्र प्रकाशित होने लगे थे । प्रथम पत्र अंग्रेजी में निकला था जिसमें लार्ड हेस्टिंग्ज की पत्नी की कुछ अवांछनीय आलोचना थी । इसके फलस्वरूप उसे बंद कर दिया गया था । फिर भी समाचार-पत्र निकलते ही रहे और जब कांग्रेस की स्थापना हुई तब तो इनकी सं. 10 से भी अधिक हो गई । यहां से वर्तमान कालीन भारतीय पत्रकारिता का श्री गणेश हुआ ।

वैसे तो समाचार पत्रों पर कई प्रतिबंध थे फिर भी उनका प्रकाशन और मुद्रण राजस्थान में होने से नहीं रहा । राजस्थान में सर्व प्रथम बंगाल के समाचारों के समय से मिलते जुलते काल में उदयपुर से "सज्जन कीर्ति–सुधाकर" नामक साप्ताहिक पत्र प्रकाशित होने लगा । इसमें केवल प्रशासन समाचार प्रकाशित हुआ करते थे, जिससे प्रजा को राजकीय नियमों और शासकीय परिवर्तनों की जानकारी होती थी । वैसे तो उस युग के पत्रों में आलोचनात्मक लेख या सूचना का कोई स्तंभन नहीं था परन्तु फिर भी मास्टर कन्हैयालाल के द्विभाषी साप्ताहिक पत्र रोजे–उल–तालीम या "राजपूताना समाचार" जो

37– पाइनियर, दि. 4 1932; ट्रिब्यून, दिस. 4, 1932, आई.जी.पी.जोधपुर से एस. पी. जोधपुर, अप्रेल 12, 1939, फा. नं. 44, अ. बी.; रा. रा.अ. बी; पत्र होम डिपार्टमेन्ट गवर्नमेंट आफ इन्डिया से चीफ कमिश्नर अजमेर, अप्रेल 30, 1940, फा. नं. 53, पं. अ. बी. फा. नं. 24[1932] मेओ एजीटेशन (समाचार पत्र) अ; बी;

38– डा. मनोहर प्रभाकर, रोल ऑफ राजस्थान प्रेस, पृ. 1-42.

जयपुर से प्रकाशित होता था, उसमें मानव हित एवं सरकारी कारोबार की आलोचना भी प्रकाशित होती थी। इसके 13 अक्टूबर 1856 के अंक में एक अंग्रेज इन्जीनियर के भ्रष्टाचार का ब्यौरा था। ऐसे समाचार मूलत: जन-आन्दोलन के आधार बने। इसी प्रकार 1881 के उदयपुर से प्रकाशित 'विद्यार्थी सम्मिलित हरिश्चन्द्र चन्द्रिका मोहन चन्द्रिका" के सम्पादकीय लेखन में सरकार के विरुद्ध सच्चे समाचारों को उजागर करने और पत्रों की स्वतन्त्रता की वकालत की गई थी। ऐसे लेखन स्वतन्त्रता के वातावरण को बनाने में अवश्य ही उपादेय थे। अंग्रेजी का पत्र राजस्थान टाइम्स अजमेर से निकलने लगा। इसका प्रथम अंक 8 अगस्त, 1885 में निकला था इस पत्र का उद्देश्य यह था कि जहां पर भी बुराइयां हों उधर जनता का ध्यान आकर्षित किया जावे और उनका सुधार किया जावे। इस पत्र के साथ एक हिन्दी का भी पत्र निकलने लगा था जिसका नाम "राजस्थान पत्रिका" था। उस समय भी इनके सम्पादक और लेखक सरकार की आलोचना करते थे। इनका सम्पादन श्री बक्षी लक्ष्मणदास योग्यता और साहस के साथ करते थे। 'राजस्थान टाइम्स, ने जयपुर की ऐजेन्सी के कार्य की कटु आलोचना की तो काउन्सिल ने बक्षी लक्ष्मणदास पर मान हानि का का अभियोग लगाया जिसमें सम्पादक को डेढ़ वर्ष का कारावास दिया गया। इसके बाद 1889 में समर्थदान चारण ने "राजस्थान समाचार" निकालना शुरू किया।" इसका सम्पादन और मुद्रण इतनी योग्यता और कुशलता से किया जाता था कि कोई कोई खबरें तो इसमें पायोनियर से भी पहले प्रकाशित हो जाती थी।[39]

इसी प्रकार अजमेर से 1885 में 'राजपूताना हैराल्ड" अंग्रेजी में प्रकाशित होता था जिसका सम्पादक हनुमानसिंह था, जिसने राजस्थान के ए. जी. जी. के सम्बन्ध में कड़ा अभियान छेड़ा था। इस पत्र में बन्दोबस्त के घोटाले की भी आलोचना निर्भीकता से निकली थी। राजपूताने गजेटियर जो अजमेर से 1885 में निकलना आरंभ हुआ था, उसका सम्पादन मौलवी मुराद अली बड़ा निर्भीक लेखक था। उसने राजस्थान नरेशों के अत्याचार और रहस्यमय घटनाओं को प्रकाश में लाकर जनता में निडर और स्वछन्द विचारों को प्रोत्साहित किया। इसी समय राजपूताना–मालवा टाइम्स 1885, ने शासन की बुराइयों को उजागर कर जन आन्दोलन को बढ़ावा देने में बड़ा योगदान किया[40]

1922 में राजस्थान सेवा संघ द्वारा प्रकाशित 'नवीन राजस्थान" ने भीलों और कृषकों की दर्दभरी कहानियों को गांव गांव में सुनवाई जिससे जन संगठन को बड़ा बल मिला। जब सरकार ने इसे बंद किया तो "तरुण राजस्थान" श्री शोभालाल गुप्ता के सम्पादन में निकलने लगा। जब श्री गुप्ता को जेल जाना पड़ा तो श्री राम-

---

39–दीपक, जगदीशचन्द्र रिवेन्ज इन लन्दन; राजपूताना टाइम्स, 8 अगस्त, 1885; राजस्थान पत्रिका; 12 अगस्त, 1885.

40–राजपूताना हेराल्ड, मार्च 30, 1985; के. एस. सक्सेना, पोलिटिकल अवेकनिंग, पृ. 118; राजपूताना गजट, फरवरी, 1896.

नारायण चौधरी ने इस पत्र का सम्पादन किया । इस पत्र ने नीमूचाणा, सिरोही, जोधपुर आदि के काण्डों का खूब भंडा फोड़ किया । "राजस्थान वीकली" ब्यावर से ऋषिदत्त ने 1923 से निकालना शुरु किया जिसमें जोधपुर, जयपुर, उदयपुर हाड़ौती आदि भागों के जनमानस के संकल्पों का उन्मीलन होता रहा । श्री जयनारायण ने मारवाड़ी भाषा में "आगीवाण" को 1937 में ब्यावर से निकाल कर जागीरदारी और सामन्ती प्रथा का कच्चा चिट्ठा राजस्थान के कौने कोने तक पहुंचाया और कई सामाजिक और राजनैतिक बुराईयों से लड़ने के लिए जनता को कटिबद्ध किया ।[41]

जब असहयोग आन्दोलन राजस्थान में जोरों पर था और स्वतन्त्रता का शंखनाद कानों-कानों तक गूंज उठा था । 1932 में श्री ललित नारायण गोयल ने प्रभात का प्रकाशन आरंभ किया । उसके सम्पादक मडल में श्री सिद्धराज ढढ्ढा भी थे । पहले ये साप्ताहिक था, 1938 में उसे दैनिक कर दिया गया । कुछ समय इसे श्री सत्यदेव विद्यालंकार ने चलाया परन्तु आर्थिक संकट के कारण यह बन्द हो गया । 1947 में बाबा नरसिंह दास ने इसे साप्ताहिक बनाकर फिर चालू कर दिया । इस पत्र ने राजस्थान के नागरिकों के ज्ञानवर्द्धन तथा आत्म सम्मान और राजनैतिक चेतना को बढ़ावा देने में पूर्ण योग दिया ।

नवज्योति जो 1936 में श्री रामनारायण चौधरी द्वारा सम्पादिव होता था, जन आकांक्षाओं का बड़ा समर्थक रहा । "नव जीवन" भी 1939 में अजमेर से प्रारंभ हुआ और नागरिक अधिकारों का पूर्ण समर्थक रहा । इसमें श्री हरिदेव जोशी जैसे प्रतिष्ठित लेखकों की कहानियां निकलती थी जो आदिवासियों के जीवन की तथा उनके उत्थान की अभिलाषा की सच्ची तसवीरें हुआ करती थी । श्री कनक मधुकर इसके सम्पादक हैं । "जयभूमि" जयपुर समाचार और प्रचार ने भी जयपुर से निकल कर राजस्थान के स्वतन्त्रता संग्राम की लहर को झोपड़ियों तक पहुंचा इस महायज्ञ की बड़ी सेवा की । यही स्थान लोकवाणी का रहा है जिसके सम्पादन में श्री देवीशंकर जी तिवाड़ी, श्री सिद्धराज ढढ्ढा, श्री जवाहरलाल जैन श्री पूनमचन्द जैन, श्री राजेन्द्र शंकर भट्ट जैसे गणमान्य विचारक, विद्वान और लेखक रहें हैं । **राजस्थान पत्रिका तो आलोचनात्मक लेखों से राजस्थान के जन–जागरण में अग्रणी है । इसके सम्पादक श्री कुलिश अपने आप में पत्रकारिता विधा के स्तम्भ हैं ।** आजाद सैनिक, मारवाड़ी गौरव, युवक, युवक हृदय, काल की दुनियां, अखंड नवयुग, दीन बन्धु अधिकार, धरती का लाल, चंबल, किसान संदेश, उदयपुर समाचार आदि अपने अपने ढंग से राष्ट्रीय आन्दोलन तथा वर्तमान शासन सम्बन्धी समाचारों से जन समुदाय की सेवा करते हैं ।[42]

41–डॉ. मनोहर प्रभाकर, रोल ऑफ राजस्थान प्रेस, पृ. 22-24.

42–हीरालाल शास्त्री, प्रत्यक्ष जीवन शास्त्र, पृ. 64; भंवर सुराना का शोध प्रबन्ध; डा. मनोहर प्रभाकर, रोल आफ राजस्थान प्रेस, पृ.–25–34.

इस प्रकार राजस्थान के अनेक प्रतिष्ठित पत्र और पत्रिकाओं ने जिनके नाम इसमें प्रविष्ठ नहीं होने पाये हैं, राजनैतिक विचारों का प्रभूत आदान-प्रदान कर राजस्थान की आजादी की लड़ाई को विजय प्राप्त करने में पूर्ण सहयोग दिया। इस संघर्ष के प्रथम चरण में अजमेर और द्वितीय चरण में जयपुर–राजनैतिक विचारों का यदि केन्द्र बना तो इसका श्रेय पत्र-पत्रिकाओं को है। इन केन्द्रों की विचारधाराओं पर जनमानस अपना जनमत बनाता रहा। इस सम्पूर्ण काल में असहयोग आन्दोलन की जड़ें इन संस्थाओं और पत्रों के द्वारा ऐसी जम गई कि इससे आगे आने वाली प्रजामंडलों की संस्था को पल्लवित होने तथा नव चेतना को प्राणवान बनाने में अधिक कठिनाई नहीं हुई। ब्रिटिशराज्य और नरेशों की क्रूर नीति गांधीजी के शांति प्रधान आन्दोलन को निरस्त करने में असमर्थ सिद्ध हुई जिसका वर्णन अगले अध्याय में प्रस्तुत है।

अध्याय-11

राजस्थान में असहयोग एवं सत्याग्रह आन्दोलन और प्रजामण्डल (1917-1941)

गांधी युग और राजस्थान :

जनवरी 1915 में दक्षिण अफ्रीका से भारत लौटने पर प्रथम महायुद्ध के दौरान गांधीजी ने अंग्रेजी सरकार की पूरी सहायता की। परन्तु रोलट एक्ट 1919 के प्रश्न को लेकर गांधीजी की सत्ता के प्रति सहानुभूति विरोध में परिणित हो गई। सम्पूर्ण देश में विरोध की लहर दौड़ गई, सरकार के विरुद्ध प्रदर्शन एवं हड़तालें होने लगी। पकड़-धकड़ व दमन-चक्र की तीव्र गति ने देश में स्वाभिमान को बड़ी ठेस पहुंचाई अन्यायपूर्ण गिरफ्तारियां, 13 अप्रेल, 1919 को मानव हृदय को दहलाने वाली अमृतसर में जलियानवाला की घटना तथा पंजाब में मार्शल ला द्वारा प्रशासन के अत्याचारों से गांधीजी के विचारों में एक मूलभूत परिवर्तन आया। वे अब सहयोग से असहयोग की ओर बढ़ते गये। कांग्रेस के दिसम्बर 1920 के नागपुर अधिवेशन में पास किये गये प्रस्ताव से सरकारी उपाधियों, सेवाओं, स्कूल और कालेजों, अदालतों, विधान सभाओं की सदस्यताओं और चुनावों के बहिष्कार करने के निर्णयों ने देश में स्वतन्त्रता की भावनाओं को एक नए मार्ग पर चलने की दृष्टि दी। इन निर्णयों में अहिंसात्मक असहयोग की नीति सहारा लिया गया था। इसके अन्तर्गत राष्ट्रीय विद्यालयों तथा पंचायत अदालतों की स्थापना, अस्पृश्यता का अन्त, हिन्दू मुस्लिम एकता, विदेशी वस्तुओं, का बहिष्कार तथा स्वदेशी वस्तुओं को बनाने का रचनात्मक प्रावधान था। इस प्रकार के नैतिक आन्दोलन में सत्य और अहिंसा की नीति थी जो प्रेरणा दायक थी।[1]

सरकार की इस नीति के फलस्वरूप कांग्रेस एक जन आन्दोलन का मंच बन गया। लाखों भारतवासी इसके अनुयायी हो गये। इसको दबाने के लिए सरकार ने कांग्रेस तथा खिलाफत समिति को गैर कानूनी घोषित कर दिया। 1921 के अन्त तक चोटी के नेता जिनमें मोतीलाल नेहरू, चितरंजन दास, लाजपत राय, मौलाना आजाद, अलीबन्धु आदि गिरफ्तार कर दिये गये और लगभग 50 हजार देश प्रेमी सीखचों में बन्द कर दिये गये स्वयं गांधीजी भी 10 मार्च 1922 को गिरफ्तार किये गये और उन्हें छः वर्ष की सजा दी गई।[2]

1- रिपोर्ट आफ इण्डियन नेशनल कांग्रेस, लाहौर, 1920 पार्लियामेन्टरी डिबेट्स, सिरीज 5, जि. 131

2- आर. कूपलैण्ड, इंडिया, एरी-स्टेटमेंट, आक्सफोर्ड, 1945, पृ. 119; मजूमदार, एन एडवांस हिस्ट्री आफ इंडिया, पृ. 985; यंग इंडिया, 1922

सत्ता की इस नीति से आन्दोलन की गति धीमी नहीं पड़ी। इससे जनता की जागृति को एक नई दिशा मिली। विदेशी व्यापार के बहिष्कार से ब्रिटिश व्यापारिक हितों को भारी हानि पहुंची और स्वदेशी प्रयोग ने अनेक बुनकरों को रोजगार उपलब्ध कराया। खादी सभी कांग्रेस जनों के राष्ट्रीय वर्दी बन गई।

भारतीय असहयोग आन्दोलन और राजस्थान :

राजस्थान का भारतीय आन्दोलन के साथ सक्रिय सम्पर्क फरवरी, 1920 से राज्य बन्दियों के छोड़ने से प्रारंभ होता है। अर्जुनलाल सेठी, केसरीसिंह बारहठ, ठाकुर गोपाल सिंह आदि क्रान्तिकारी जब जेल से छूटकर आये तो वे पुनः सृजनात्मक कार्य में लग गये। जमनालाल बजाज का राजपूताना–मध्य भारत–सभा के अजमेर अधिवेशन का सभापतित्व करना एक ऐतिहासिक घटना थी। बजाज जब गांधी जी के सानिध्य में जाकर वर्धा रहने लगे तो श्री रामनारायण चौधरी, श्री स्वामी नरसिंहदेवजी, माणिक्यलालजी, छोटेलाल जी तथा पथिकजी का भी संबंध गांधीजी से हुआ। इन कार्यकर्त्ताओं पर गांधीजी की असहयोग नीति का प्रभाव पड़ा। यहीं से राजस्थान की गतिविधि में एक नया मोड़ आया। जमनालाल बजाज कांग्रेस की नई कार्यकारिणी के सदस्य बनाये गये और एक मुश्त में उन्होंने तिलक स्वराजकोष में एक लाख रुपया भेंट किया। इनकी देखादेखी अन्य मारवाड़ी व्यापारियों ने भी आन्दोलनार्थ कांग्रेस की जी खोलकर सहायता की। इस तरह जुलाई 1921 तक तिलक स्वराजकोष में एक करोड़ का चंदा जमा हो गया। इस प्रकार राजस्थान की प्रतिष्ठा राजनीति में स्थापित हो गई जो सामन्ती वातावरण में दुष्कर थी। वे इस परिवेश में कांग्रेस के कार्यकर्ताओं के निकट आने लगे और राजस्थान में सृजनात्मक कार्य का श्री गणेश हुआ। गांधीजी की विभिन्न प्रवृत्तियाँ, हरिजन आन्दोलन, खादी आंदोलन, ग्रामोद्योगों आदि प्रवृत्तियां यहां आरंभ हो गई।[3]

जब समस्त भारत में राजनैतिक आन्दोलन में उग्रता बढ़ी तो देशी नरेशों को भी अपनी सत्ता की सुरक्षा के लिए चिन्ता हुई और वे संगठित होकर परिस्थिति का सामना करने के लिए प्रयत्न करने लगे। अंग्रेजी सरकार ने देशी राज्यों को आश्वस्त करने के लिए नरेन्द्र मण्डल की स्थापना की। 8 फरवरी 1921 को दिल्ली में पुराने किले के दीवाने आम में सम्राट की ओर से कनाट के ड्यूक द्वारा इस मण्डल का औपचारिक उद्घाटन किया गया। उन्होंने कहा कि वायसराय विधिपूर्वक भारतीय नरेशों से उनसे सम्बन्धित विषयों में सलाह देता रहेगा और उनके हितों की रक्षा करता रहेगा। बीकानेर के महाराजा गंगासिंह इस मण्डल के प्रथम चांसलर चुने गये और इस पद पर उन्होंने 1926 तक काम किया। इस मण्डल के द्वारा राजाओं पर होने वाले पत्र और पत्रिकाओं द्वारा छापेजाने वाले समाचारों पर अंकुश लगाने की सिफारिश की गई और उनके परम्परागत वंशाधिकारों की पुष्टि की गई। इसकी आड़ में राजस्थान के नरेशों ने अपने यहां चलने वाले आन्दोलनों को कुचलने के प्रयास किये गये जिनका वर्णन यथा स्थान किया जायेगा। इसी प्रकार 1927 में

3– पृथ्वीसिंह, महता, हमारा राजस्थान, पृ. 342 348, 349, 350.

साईमन कमिशन का बहिष्कार तथा 1928 की नेहरू रिपोर्ट का समर्थन और पूर्ण स्वराज की मांग के स्वर राजस्थान के आन्दोलन में प्रतिध्वनित थे। जब भारतवर्ष मे 26 जनवरी 1930 को पूर्ण स्वाधीनता दिवस मनाने का निश्चय किया गया तथा 12 मार्च, 1930 को गांधीजी ने ऐतिहासिक डंडी मार्च द्वारा नमक कानून तोड़ा और वे बन्दी बनाए गए तो राजस्थान में भी इसकी प्रतिक्रिया हुई। इन मुद्दों को लेकर राजस्थान में अजमेर सत्याग्रह का केन्द्र बन गया और पुराने राष्ट्रवादी नेता–पथिक, अर्जुनलाल सेठी, हरिभाऊ उपाध्याय, जीतमल लूणियां आदि अपने भाषणों तथा सत्याग्रह के द्वारा यहां की जनता के उत्साह के स्रोत बने। कई महिलाओं ने भी इसमें भाग लिया। राजस्थान की सरकारों ने सविनय अवज्ञा आन्दोलन का उत्तर लाठी चार्ज से दिया भाषणों और राष्ट्रवादी पत्रों व कार्यकर्ताओं की गतिविधियों को गैर कानूनी करार दे दिया गया। राज्यों ने कई आपातकालीन अध्यादेश जारी किये और दमनचक्र को पूरे वेग से चलाया।[4]

राजस्थान में अब तक जो कार्यकर्त्ता गुप्त रीति से क्रांतिकारी तरीकों से सत्ता के विरुद्ध लड़ना चाहते थे वे गांधी जी के सत्याग्रह से प्रभावित होने लगे और समय समय पर उनसे मार्ग दर्शन लेते रहे। गांधीजी का राजनैतिक मंच पर आना राजस्थान के लिए एक वरदान था। यहां के कार्यकर्त्ता अब राजनैतिक आन्दोलन को जारी रखने के लिए जन कल्याणार्थ कार्यों में लग गए। उन्होंने गोलमेज सम्मेलनों से (1930–32) तथा गांधी इरविन समझौते से (1931) में दिये गये आश्वासनों को पूरा क्रियान्वित न होते पाकर ब्रिटिश सत्ता तथा राजस्थानी नरेशों से पूर्ण निराशा हो गई। फलत: उन्हें यहां संगठित रूप से संस्थाओं व पत्र– पत्रिकाओं के माध्यम से काम करना ही एक मात्र मार्ग दिखलाई दिया।[5]

महात्मा गांधी व पंडित जवाहरलाल नेहरू की प्रेरणा से राजस्थान के लगभग सभी राज्यों में सामाजिक व राजनैतिक संगठनों का निर्माण होने लगा था जिनका वर्णन पिछले अध्याय में किया गया है। अब उन संस्थाओं के सदस्य राजनैतिक दल के रूप में काम करने के लिये कृत संकल्प हो गये। प्रत्येक राज्य में उन्होंने प्रजा मण्डल के नाम की संस्था को संगठित किया इन सभी प्रजा मंडलों का एक ही ध्येय था जो ब्रिटिश भारत की कांग्रेस का था और साधन भी वही था जिसका उपयोग गांधीजी किया करते थे -अर्थात् सत्याग्रह। इन संगठनों की ये मांगें थी–लोगों को भाषण देने का अधिकार हो, सभा व संगठन आदि वे बना सके तथा संवैधानिक सुधारों से प्रजा की स्वतन्त्रता की रक्षा हो। वैसे प्रजामण्डल को संस्थाओं का मूर्तरूप, प्रत्येक राज्य में आगे पीछे आया, परन्तु यहां के कार्यकर्ता गांधीजी द्वारा संचालित सत्याग्रह के आन्दोलन को अपने–अपने प्रांत में चलाते रहे और जब उन्हें अवसर मिला तो उन्होंने प्रजामण्डलों की

4–नरेन्द्र मण्डल की कार्यवाही, नवम्बर, 1926, पृ. 1–14; रिपोर्ट आल पार्टी कान्फ्रेंस, 1928, पृ. 18–24; इंडियन क्वाटरली रजिस्टर 1928, जिल्द, 2, पृ. 293; मित्रा, एन्युल रजिस्टर, 1929, भाग–2 पृ 300; पट्टाभि सीतारमय्या, हिस्ट्री आफ नेशनल कांग्रेस, भाग–1, पृ. 559

5–मित्रा, एन्युल रजिस्टर, 1932, जि. 2, पृ. 233–253; हाउस ऑफ कामन्स रिपोर्ट, जि. 276; सी. वाई. चिन्तामणि इंडियन पालिटिक्स सिन्स द म्यूटिनी, लन्दन, 1940 पृ 173–174.

स्थापना कर दी। गांधीजी का यह शान्तिपूर्ण प्रतिरोध और असहयोग आन्दोलन का प्रयोग राजस्थान में एक नया क्रान्तिकारी कदम था जिसने यहां के लोकजीवन में एक मूलभूत परिवर्तन कर दिया।

मेवाड़ में स्वतन्त्रता आन्दोलन :

वीर भूमि मेवाड़ भारतीय स्वतन्त्रता के इतिहास में सदियों से अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाने में अग्रणी रहा है। वर्तमान युग में भी बिजोलिया आन्दोलन का स्थान एक रचनात्मक आन्दोलनों में है। वैसे तो इसका विस्तार से वर्णन ऊपर के अध्याय में किया जा चुका है परन्तु मेवाड़ के आंदोलन में व कैसे प्रेरणा का श्रोत रहा है और उसकी व्यापकता किस सीमा तक रही थी उसका यहां दोहराना अप्रासंगिक न होगा। 1913 से 1930 की अवधि में इस आन्दोलन ने जनता में विद्रोह के स्वर को निकालने के साहस को जन्म दिया तथा अपने देश के गौरवमय अतीत में नवीन विश्वास पैदा किया इसमें कोई संदेह नहीं। इसी से प्रेरित होकर मेवाड़ के सपूत इस आन्दोलन में सम्मिलित हो गये या उसके सहभागी बन गये या अनेक देश प्रेमी मेवाड़ से बाहर जाकर गांधीजी के सत्याग्रह में सम्मिलित हो गये। या उनके सहभागी बन गये। इस आन्दोलन का संचालन पथिकजी ने इस कुशलता से किया कि श्री माणिक्यलाल वर्मा, श्री रामनारायण चौधरी एवं सीताराम साधु जैसे कर्मठ सहयोगियों ने दलित और दरिद्र वर्ग से कंधे से कंधा मिलाकर निष्ठा के साथ राष्ट्रीयता की भावना को एक अनुपम प्रगति दी। इन्होंने मेवाड़ में एक स्वयंसेवकों की ऐसी कतार खड़ी कर दी कि जो अहर्निश देश सेवा में लगे रहते थे। ऊपर माल के गांवों में पंचायतों को कायम कर तथा स्वदेशी वस्त्रों और उद्योगों का प्रचार कर जनता में नव जागरण का शंख फूंका गया। उन्हीं की प्रेरणा से स्वनामधन्य प्रताप के यशस्वी सम्पादक स्वर्गीय गणेशशंकर विद्यार्थी प्रताप में बिजोलिया आन्दोलन की रोमांचकारी घटनाओं का, किसानों की वीरता और जनता की उदारता का, विस्तार से विवरण छापने लगे। अन्य समाचार पत्र भी इस आन्दोलन के समाचार देने लगे जिससे यहां की घटनाओं की धूम भारतवर्ष में मच गई। 1919 में पथिकजी के प्रयत्न से अमृतसर के कांग्रेस के अधिवेशन में स्वयं लोकमान्य तिलक ने बिजोलिया के सम्बन्ध में प्रस्ताव रखा और केलकर ने उसका समर्थन किया। इन्ही के प्रयास से गांधीजी महामना मालवीय, श्री महादेव देसाई व जमनालाल बजाज एवं श्री उपाध्याय जैसे कर्मठ नेता मेवाड़ के आन्दोलन के प्रति सहयोग की भावना रखने लगे जिससे इस आन्दोलन का गौरव अधिक बढ़ा और भावी पीढ़ी के लिये प्रेरणा का स्रोत बना। स्वयं गांधीजी ने 1922 में अहमदाबाद के कांग्रेस अधिवेशन में आये हुये 29 प्रतिनिधियों से कहा कि तुम जो मेवाड़ राज्य में कर चुके हो वह आदर्श है। भला इस आन्दोलन की इससे अधिक क्या उपलब्धि हो सकती है।[6]

बिजोलिया आन्दोलन की सफल गति ने, जैसा ऊपर वर्णन किया गया है बेगूं, पारसोली, धांगणमऊ आदि जागीर के इलाकों में किसानों को जागृत किया। ब्रिटिश शासन के संकेत पर मेवाड़ राज्य ने इन आन्दोलन को कुचलने में कोई कसर न रखी। यहां तक कि ट्रेंच के नेतृत्व में भेजी गई एक सैनिक टोली ने बेगूं के गोविन्दपुरा गांव को घेर लिया और

6-पाक्षिक रिपोर्ट, फा. नं. 421, पी. फो. पो., राज. अ; एस. एस. सक्सेना, विजयसिंह पथिक, पृ. 179-180.

निःसहाय कृषकों पर गोलियों की बौछार कर दी। इस गोली काण्ड में कई हताहत हुए और एक निरपराध जयनगर का रूपा धाकड़ मारा गया। गोली चलने की खबर गांव में फैली और चारों ओर भगदड़ मची। भागती हुई औरतों के नाड़े (इजारबन्द काटे गये और उन्हे नंगा कर और अन्य प्रकार से अपमानित किया गया। इस पैशाचिक कांड के बाद लगभग 500 व्यक्ति गिरफ्तार किये गये। उन्हें कई प्रकार की यातनाएं दी गई। इस नारकीय प्रवृत्ति का फल यह हुआ कि देश की आजादी के लिए मेवाड़ की भूखी नंगी प्रजा स्वतन्त्रता के लिए बलि चढ़ने को कटिबद्ध हो गई मेवाड़ राज्य को कई शहीदों के प्राण लेने के बाद अन्ततोगत्वा 1930 तक झुकना पड़ा और उसे उनकी लाग-बाग व बेगार प्रथा को समाप्त करने के लिए विवश होना पड़ा। इस सम्पूर्ण अवधि में पथिकजी, वर्माजी एवं उनके अनेक साथियों को कई बार जेल की कठोर यातना भोगनी पड़ी। वर्मा जी की कुम्भलगढ़ की नजरबन्दी और पथिक जी का कैद किया जाना सामन्ती निरंकुशता की हृदय विदारक घटनाएं हैं, जिन्होंने मेवाड़ के स्वतन्त्रता सेनानियों को भ्रष्टाचार और अत्याचार से मोर्चा लेने के संकल्प को मजबूत किया और अन्याय से मोर्चा लेने की क्षमता को बढ़ावा दिया।[7]

उदयपुर नगर और हलचल :

बिजोलिया सत्याग्रह का प्रभाव जैसा कि ऊपर वर्णित है, उदयपुर के नागरिकों पर भी पड़ा। 8 जुलाई 1932 को प्रातः बहुत से लोग एकत्रित होकर पीपली घाट पहुंचे और उन्होंने महाराणा से निवेदन किया कि नये कर हटा दिये जायें और सर सुखदेव प्रसाद को तथा भ्रष्टाचारी अधिकारियों को अपने अपने पदों से हटा दिया जाय। इस प्रदर्शन के संचालन में रोशनलाल बोर्दिया तथा मास्टर बलवन्तसिंह थे। इनकी काफी पिटाई की गई। सर सुखदेव प्रसाद ने सेना बुलाकर चौगान और त्रिपोलिया पर खड़ी कर दी। वह गोलियां चलवाना चाहता था परन्तु महाराणा ने नहीं चलाने दी। तब सर सुखदेव प्रसाद ने लाठियां चलाने का आदेश दिया, जिसमें लगभग 50 व्यक्ति घायल हुए और एक वृद्ध हिन्दू का शव पिछोला तालाब में तैरता हुआ मिला तथा 64 व्यक्तियों को गिरफ्तार किया गया। इससे जन आन्दोलन बंद नहीं हुआ बल्कि और भी उग्र होकर सात दिन तक चलता रहा। इस तनाव से जब यह आंदोलन मेवाड़ के अन्य भागों में भी फैलने लगा तो अन्त में 13 जुलाई, 1932 को महाराणा के आश्वासन पर नगर में शांति स्थापित हुई।[8]

7– रिपोर्ट बेगू गोविन्दपुरा, जुलाई 13, 1923, पी. 13, अ.उ.; उदयपुर की विशेष अदालत में दिए गए पथिकजी के बयान के आधार पर; त्याग भूमि, 8 मई व 12 जून 1931; पत्र जमनालाल बजाज, 30 जुलाई 1931, पत्र व्यवहार दिल्ली; एस.एस. सक्सेना, जो देश के लिये जिए, पृ. 70–78; एस एस. सक्सेना, बिजयसिंह पथिक, पृ. 209–212 के.एस. सक्सेना, पोलिटिकल अवेकनिंग. पृ. 156–157; दीपक, जगदीश चन्द्र, जब जनता जागी, पृ. 10.

8– कोनफीडेन्शल रिपोर्ट, 9 जुलाई, 1932, फा.नं. 379, फो.पो.रा.अ.; कोन. रिपोर्ट 13 जुलाई, मेवाड़ रजिडेन्सी से सेक्ट्री एजेन्ट गवर्नरजनरल, फा.नं. 379 पी, 1932, फो.पो.रा.अ.

मेवाड़ के इस प्रथम चरण के आंदोलन ने जो मुख्यतः किसानों से एवं उनकी समस्याओं से सम्बन्धित था, अन्य राष्ट्र प्रेमियों को भी सम्मिलित कर दिया। राष्ट्रीयभावना से प्रेरित होने से रोकने के लिए अखबारों पर रोक लगा दी गई थी फिर भी मेवाड़ में जाग्रति होती रही और पथिकजी के कई सहयोगी हो गये और उन्होंने दृढ़ता से उनका साथ दिया। उदाहरणार्थ कई युवक जिनमें श्री केसरीसिंह, श्री नारायण श्री गोकुल लाल, हीरालाल प्रभृति ने आन्दोलन में गति उत्पन्न करने के लिए चंदा जुटाया। इसी तरह श्री रामजी पटेल, श्री अमरचन्द, श्री किशनराम आदि वर्माजी के साथ अधिकारियों से बातचीत करने और कृषकों के मनोबल को बनाये रखने में सहायक रहे। भीलवाड़े के प्रेमचन्द विश्नोई 1929 में बिजोलिया आंदोलन में भाग लेने के अपराध में गिरफ्तार हुए और पुलिस द्वारा उनकी खूब पिटाई हुई। चित्तौड़ के घनश्याम लाल जोशी ने साधु सीताराम और पथिकजी का बिजोलिया और बेगूं के आंदोलन में सक्रिय साथ दिया। 1923 के बेगूं हत्याकांड के समय इनके पांव में गोली लगी और घायल अवस्था में ही इन्हें 500 व्यक्तियों के साथ गिफ्तार किया गया। इन्हें डेढ़ वर्ष पथिकजी के साथ जेल की यातना भोगनी पड़ी। यहां तक कि सरकार ने इनके खेत और कुएं जब्त कर लिये, परन्तु वह राष्ट्रीय भावना से विचलित नहीं हुए। श्री वीरदीचन्द धाकड़ को 1923 में राजद्रोह का अपराधी घोषित किया गया और 4 वर्ष जेल और 3 वर्ष नजरबन्दी से दंडित किया गया। जहाजपुर के मथुरादास वैद्य 1922 से ही राष्ट्रीय सेवा में लग गये और सन् 23 से 28 तक पथिकजी के सहयोगी बने रहे। जेल को यातना में इन्हें उल्टा लटकाया जाता था और खोडे में पांव दिये जाते थे[9]।

इधर बिजोलिया आंदोलन की सफलता ने तथा भारत व्यापी गांधीजी के प्रभाव और असहयोग आन्दोलन के वातावरण ने मेवाड़ में कुछ ऐसे नवयुवकों का दल तैयार हुआ जिसने अपने-अपने जिले में राष्ट्रीयता की भावना का प्रसारित किया। ऐसे नवयुवकों ने मेवाड़ से बाहर जाकर भी सत्याग्रह में सक्रिय भाग लिया। उदाहरणार्थ उदयपुर के श्री चिमन लाल बोदिया ने 1930 के नमक सत्याग्रह के समय गोधरा में सत्याग्रह किया। वे प्रयागराज में विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार में गिरफ्तार किये गये। कांकरोली के श्रीनारायण नमक सत्याग्रह में तीन बार जेल गये। सलूम्बर के श्री घनश्या ने ठिकाने के विरुद्ध आंदोलन किया। नाथद्वारा निवासी रघुनाथ पालीवाल 1924 से राष्ट्रीय प्रवृत्तियों में भाग लेने लगे और तभी से खादी पहिनने का व्रत भी ले लिया। चित्तौड़ के घनश्याम जोशी 1919 से जागीरदारों के अत्याचारों के विरुद्ध भाषण देते थे। एक बार जागीरदार के द्वारा उन पर घातक हमला किया गया और उन्हे गिरफ्तार भी कर लिया। नाथद्वारे के नरेन्द्रपाल चौधरी अपने उग्र विचार के कारण 1930 में स्कूल से निष्काषित किये गये थे और उन्हें नमक सत्याग्रह में

9–इश्तिहार मजरिया राज महकमाखास, नं. 4555, 10433, 21 जून 1923, अ. उ;
लिन्च ब्लोसे का पत्र आबू से महाराणा को, नं. 2258, 6 जुलाई, 1923, अ. उ;
त्याग भूमि फाईल 1930–31;
सुमनेश जोशी–राजस्थान में स्वतंत्रता संग्राम के सेनानी, पृ. 461,506,509,513,
एस.एस. सक्सेना–जो देश के लिये जिये, पृ. 71.

भाग लेने के कारण बड़ोदा में बन्दी बनाया गया था । श्री प्रेम नारायण माथुर जवाहर लाल नेहरू व मौलाना आजाद की बरेली की भेंट से बड़े प्रभावित हुए और उन्होंने तब से खादी पहिनने, सरकारी नौकरी न करने और राजनीति व शिक्षा के क्षेत्र में काम करने का संकल्प लिया । श्री बलवन्तसिंह महता प्रताप जयन्ती के संचालक के नाते कई राज कई राजनीतिक नेताओं के संपर्क में आये और प्रताप जयन्ती के मंच से निष्ठावान् व्यक्तियों द्वारा आजादी के भाषणों से जनता में राष्ट्रीयता का प्रसार करते रहे । वे सन् 1921 में लाहौर कांग्रेस और 1930 में कराँची कांग्रेस में उदयपुर से डेलीगेट बनकर गये । उदयपुर के रंगलाल मारवाड़ी ने नमक सत्याग्रह में भाग लिया और 1932 में बार कौन्सिल के जनरल सेक्रेट्री के नाते बम्बई में गिरफ्तार किये गये । जहाजपुर के मथुरा प्रसाद वैद्य 1932 के आंदोलन में कलकत्ते में पिकेटिंग करते हुए पकड़े गये । लेखक को भी 1932 में गवर्नमेंट कालिज अजमेर से विदेशी वस्त्रों व शराब बहिष्कार के पिकेटिंग करने के कारण निष्कासित किया गया था । इसे रोजमर्रा पुष्कर की घाटी में छोड़ दिया जाता जहां से पैदल अजमेर आकर पुनः आंदोलन में शरीक होने का सौभाग्य प्राप्त होता था । ऋषभदेव के भंवरलाल वर्मा 1933–34 में नरेली आश्रम में प्रशिक्षण लेने गये राष्ट्रीय भावना से श्रीमती नारायणी देवी श्री माणिक्यलाल की पत्नी अपने पति व स्वयंसेवकों के साथ रह कर निष्ठा से मेवाड़ आंदोलन की भागी बनी रहीं । श्री प्यारचन्द विश्नोई की धर्मपत्नी श्रीमती भगवती देवी रचनात्मक कार्यकर्त्ता रही है, जिन्होंने नरेली आश्रम में 1933–34 रह कर हरिजन जातियों में समाज सुधार और शिक्षा प्रचार किया । इस प्रकार मेवाड़ आंदोलन के प्रथम चरण में सैंकड़ों देश-वासियों ने मेवाड़ में स्वतंत्रता आंदोलन की मशाल को प्रज्वलित किया ।10

मेवाड़ प्रजा मण्डल :

वैसे तो भारतीय व स्थानीय स्थलों पर मेवाड़ के कई कार्यकर्ता राष्ट्रीय गतिविधि में लगे हुए थे, परन्तु संगठन के अभाव में राजनीतिक चेतना का काम अधूरा था । इधर श्री माणिक्यलाल वर्मा बिजोलिया आन्दोलन को सफलता के मंजिल तक पहुंचा कर डूंगरपुर इलाके के भीलों के उद्धार में लग गये थे । परन्तु उन्हें इस सेवा कार्य से पूर्ण संतोष नहीं था । उनकी अब यह मान्यता बनती जा रही थी कि रचनात्मक कार्य का एक सीमा तक ही लाभ और महत्व है । इससे भी महत्वपूर्ण काम जन साधारण में राजनीतिक चेतना तथा जन जागरण है । वे अब इस नतीजे पर पहुंचे कि सर्व साधारण की समस्याओं का स्थाई हल सत्ता पर जनता का अधिकार में निहित है, अतएव इस काम के लिए संगठित शक्ति को राष्ट्रीय आन्दोलन के लिए सबल और तीव्र बनाना चाहिये । इस धारणा को लेकर वर्माजी ने डूंगरपुर के आश्रम को पण्ड्याजी को सौंप अजमेर की ओर प्रयाण किया । अब वे अजमेर गये तो वहां देखा कि 1935 के उपरान्त ब्रिटिश प्रान्तों में

10– इंडिया स्टेट पीपुल्स कान्फ्रेन्स, बम्बई, 18 नवम्बर 1935, बी. 11, अ.उ ; सुमनेश जोशी, राजस्थान में स्वतन्त्रता संग्राम के सेनानी, पृ. 176 508,-275,451–518; के. एस. सक्सेना, पोलिटिकल मूवमेन्ट एण्ड अवेकनिंग इन राजस्थान, पृ. 219.

उत्तरदायी शासन स्थापित हो गये हैं और वहां के कार्यकर्ता अपने क्षेत्र में दूसरे का हस्तक्षेप पसन्द नहीं करते। कोटा जाकर भी उन्होंने स्थानीय कार्यकर्ताओं की उनके प्रति उदासीनता पाई। अतएव वे उदयपुर आये, इस अभिप्राय से कि राज्य में उत्तरदायी शासन की मांग को लेकर जनता को संगठित किया जाय। राज्य इनके वर्चस्व को समझता था, इसलिए इन्हें सरकारी अधिकारी की भांति वैतनिक रहकर राज्य में रचनात्मक काम करने के लिए कहा गया। भला जो व्यक्ति देश के लिए समर्पित हो चुका था वह राज्य का जर खरीद गुलाम कैसे बन सकता था? उनका मानस अब हरिपुरा कांग्रेस के निर्णय के अनुसार एक राजनीतिक संस्था की स्थापना पर सुदृढ़ बन गया।[11]

साधनों के अभाव में वर्माजी साइकिल से मेवाड़ प्रजामण्डल की स्थापना के उद्देश्य से स्थानीय वातावरण का अध्ययन व कार्यकर्ताओं से परामर्श करने निकल पड़े। उन्हें गुलाबपुरा से श्री मथुरालाल काला, शाहपुरा से श्री रमेशचन्द्र ओझा तथा श्री लादूराम व्यास, जहाजपुर से श्री मोहनलाल पुरोहित और श्री मथुरा प्रसाद वैद्य, भीलवाड़े से श्री रामचन्द्र वैद्य, चित्तौड़ से श्री सेवालाल जी अग्रवाल तथा खूबचन्दजी जैसे निष्ठावान सहयोगियों ने अपने अपने क्षेत्र में मेवाड़ प्रजामण्डल की शाखाओं को स्थापित करने और वर्माजी को पूर्ण सहयोग देने का आश्वासन दिया। इस प्रकार के सम्पर्क से उन्हें विश्वास हो गया कि उनके साथ कई ऐसे कर्मठ कार्यकर्ता हैं जो सामन्त कद और ब्रिटिश साम्राज्य का समूल नष्ट करने के लिए कटिबद्ध हैं।[12]

जब इस अभियान से वर्माजी उदयपुर लौटे तो उन्होंने पाया कि ब्रिटिश राज्य के आदेशानुसार मेवाड़ सरकार का रवैया राष्ट्रवादियों के लिए बड़ा क्रूर होता जा रहा है और राजनीतिक वातावरण क्षोभपूर्ण हो गया है। लोग वाक् स्वातन्त्र्य और सभा स्वातन्त्र्य की जोर से मांग कर रहे हैं, परन्तु मेवाड़ राज्य इन मांगों को स्वीकार नहीं करना चाहती। उन्होंने देखा कि साथ ही साथ प्रजामण्डल की स्थापना के लिए जनता उत्सुक थी। अब तो माणिक्यलाल वर्मा ने मास्टर बलवन्तसिंह मेहता, श्री हीरालाल कोठारी श्री भूरेलाल बया, श्री रमेशचन्द्र व्यास, श्री भवानी शंकर वैद्य, श्री जमनालाल वैद्य, श्री परसराम तथा श्री दया शंकर श्रोत्रीय से जो निष्ठावान, सार्वजनिक कार्यकर्ता एवं गांधीवादी थे, परामर्श कर प्रजामण्डल का विधान तैयार किया। 24 अप्रेल, 1938 को मेहता बलवन्तसिंहजी के साहित्य कुटीर में मेवाड़ प्रजा मण्डल की स्थापना कर दी गई और उसका कार्यालय श्री रघुनाथ के मकान में खोला गया। श्री बलवन्तसिंह प्रजामण्डल के अध्यक्ष, श्री भूरेलाल बया उपाध्यक्ष तथा श्री वर्मा इसके महामन्त्री निर्वाचित हुए। प्रचा-

---

11—कान्फीडेन्शल फाइल, माणिक्यलाल वर्मा, मिलने बाबत, नं. 22, 16–5–38; एस.एस. सक्सेना, जो देश के लिए जिए पृ. 100–103, अ.उ.

12—कान्फीडेन्शल फाइल, पेंपलेट प्रकाशक माणिक्यलाल वर्मा, नं. 21, अ.उ
मोहनलाल सुखाड़िया–मेवाड़ प्रजा मण्डल, 1938–45, पृ. 1–3; केला, देशीराज्य में जनजागृति, पृ. 240–41;
एस.एस. सक्सेना, जो देश के लिए जिए, पृ. 103–108.

साथ एक बोर्ड भी कार्यालय का लगा लिया गया, सदस्यता के फार्म तथा विधान को छपवाकर वितरित किये गए। लोगों में इतना उत्साह था कि देखते-देखते तीन दिन में मण्डल के दो हजार व्यक्ति सदस्य बन गए।[13]

मेवाड़ सरकार के लिए प्रजामण्डल की स्थापना असह्य थी। वह किसी स्थिति में इस प्रकार की राजनीतिक संस्था के पक्ष में नहीं थी। अतः 11 मई, 1938 की राज्य की विशेष आज्ञा से मेवाड़ प्रजामण्डल को गैर कानूनी घोषित कर दिया गया। पुलिस ने मण्डल के कार्यालय पर धावा करके उसके नाम की तख्ती को बलात हटा दिया और माणिक्यलाल वर्मा और रमेशचन्द्र व्यास को आदेश दिया कि वे मेवाड़ छोड़कर अन्यत्र चले जायं।[14]

वर्मा जी ने शीघ्र ही प्रजामण्डल के समस्त कागजात श्री शंकर सहाय सक्सेना के मार्फत अजमेर भिजवा दिये और गिरफ्तारी के बजाय बाहर रह कर सत्याग्रह करने की योजना में लग गये। सबसे पहले वे उदयपुर से वर्धा गये जहां से गांधीजी का आशीर्वाद प्राप्त किया और फिर अजमेर आकर नई कार्यकारणी का गठन किया जिसमें वर्माजी, श्री शोभालाल गुप्त, श्री प्रेमनारायण माथुर, सरदारसिंह कोठारी और डा. अंबालाल सम्मिलित किये गये। क्योंकि प्रजामण्डल तथा सभा सोसायटी पर मेवाड़ सरकार ने प्रतिबंध लगा रखा था अतएव यह निश्चय किया गया कि विजयदशमी के दिन मेवाड़ में सत्याग्रह आरंभ कर दिया जाय।[15]

परन्तु मेवाड़ सरकार ने प्रजामण्डल द्वारा सत्याग्रह छेड़ने के पूर्व ही पुलिस को सतर्क कर दिया और दमन चक्र आरंभ कर दिया। प्रो. प्रेमनारायण माथुर मेवाड़ से निकाले गये और क्रान्तिकारी उत्साही युवक श्री रमेश व्यास जो प्रजामण्डल का साहित्य घंटाघर के के बाहर बाजार में बांट रहे थे उन्हें गिरफ्तार कर लिया।[16]

13- कान्फीडेन्शल फाइल, प्रजामण्डल नं 20, धान मन्डी थाना रिपोर्ट 30 अप्रैल, 1938, अ-उ; एस.एस. सक्सेना जो देश के लिए जिए पृ. 108-110.

14- कान्फीडेन्शल फाइल नं. 20, बिना इजाजत संस्था-प्रजामण्डल का यम करने निस्पत रमेशचन्द्र, माणिक्यलाल, बलवन्तसिंह, हुकमीचन्द वगैरा, साइन बोर्ड रिपोर्ट पुलिस, 14-5-38; एस.एस. सक्सेना, जो देश के लिए जिये, पृ. 108.

15- माणिक्यलाल वर्मा का पत्र जमनालाल बजाज को, 8 अक्टूबर, 1938, पत्र व्यवहार, नई दिल्ली

16- कान्फीडेन्शल फाईल, प्रजामण्डल, नं. 14, 17-5-38, अ.उ., प्रजामण्डल, मेवाड़ प्रजामण्डल क्या चाहता है?, प्रजामण्डल जय बोलो, मेवाड़ का किसान और बोपारी सू अरज नामक हेन्ड बिल, नं.30, 30, नवम्बर, 38, जनवरी 1939, व.उ.

मेवाड़ में पूर्व से ही तीव्र क्षोभ था जो सरकार की गतिविधि से राज्य में सर्वत्र फैल गया। जब प्रजामण्डल ने सविनय आज्ञा भंग जारी किया तो लोगों ने उसका बड़े उत्साह से स्वागत किया। इन भावनाओं को दबाने के लिये राज्य ने सभी सभाएं और संघ तथा सम्मेलन कानून के विरुद्ध घोषित कर दिये। परन्तु राजनैतिक कार्यकर्ताओं में इतना जोश था कि जिन्होंने सरकार के आदेश की उपेक्षा कर के एक सभा बुलाई। लोगों में भी राजनीतिक भावना स्वतन्त्रता की अभिलाषा के लिए जागृत हो गई थी। वे राज्य के किसी भी ऐसे आदेश को मानने के लिये तैयार नहीं थे जिसके द्वारा उनकी स्वतन्त्रता पर प्रतिबंध लगाया जाय। श्री भंवालाल जोशी ने राज्य की नीति का विरोध करने के लिए एक सभा का आयोजन किया जिसमें 3000 की संख्या में जनता उपस्थित थी जिसने प्रजामण्डल की नीति का समर्थन किया गया।[17]

मेवाड़ में उदयपुर के अतिरिक्त भीलवाड़ा, जहाजपुर, चित्तौड़, नाथद्वारा आदि स्थानों में भी आम सभाएं हुईं और प्रजा मण्डल की नीति का अनुमोदन तथा सरकारी रवैये की निन्दा की गई। इस अवसर पर दिनांक 28 नवम्बर, 1938 को अनेक कार्यकर्ताओं की गिरफ्तारियां की गईं जिनमें श्री भूरेलाल बया, मास्टर बलवन्तसिंह, अमृतलालजी यादव, जयचन्दजी रेगर, पुरुषोतमजी अग्रवाल, दयाशंकर श्रोत्रीयजी, भवानीशंकरजी, श्री मथुराप्रसाद वैद्य, रामचन्द्रजी वैद्य, रूपलालजी सोमानी, गोकुललालजी धाकड़, कन्हैयालालजी धाकड़, वर्माजी की धर्मपत्नी श्रीमती नारायणीदेवी, रमादेवी ओझा, रमादेवी भारतीय, प्यारचन्दजी विश्नोई, भगवतीदेवी विश्नोई, नरेन्द्रपालजी चौधरी, नन्दलाल जोशी, रामसिंह भाटी, भंवरलाल आचार्य, उमाशंकर द्विवेदी, शम्भूलाल सनाढ्य आदि अनेक सत्याग्रही एक के बाद दूसरे गिरफ्तार किये गये जिनको सराड़ा, सेन्ट्रल जेल उदयपुर, कुंभलगढ़, गिराई आदि जेलों में रखे गये और उन्हें विभिन्न प्रकार की यातनाएं दी गईं। कुछ लोगों को सरकारी नौकरी से निकाला गया और कई एकों को अपने मकान व जायदाद, खेत, कुए आदि से वंचित किया गया। इसके अतिरिक्त कुल संदिग्ध व्यक्तियों पर जिनमें श्री जनार्दनराय पोटा, प्रो. शंभूदयाल जगधारी, श्री भूरेलाल गेलड़ा, श्री कृष्ण पंचोली, श्री अमृतलाल वैद्य, श्री ओंकारलाल वैद्य तथा श्री मुरलीधर हैडमास्टर पर नजर रक्खी गई और उन्हें प्रजामण्डल को सहयोग न देने की चेतावनी दी गई। कुछ व्यक्तियों को दण्डित कर मोड़ दिया और कुछ लोगों को मेवाड़ से निष्कासित किया गया। नाथद्वारा में पुरुषों के साथ महिलाओं ने भी आन्दोलन में भाग लिया जिसके लिए उन्हें बन्दी बनाया गया।[17]

17–फो पो. प्रजामण्डल गिरफ्तारी, नं० 13/ 34, 28 अक्टूबर, 1938, अ.उ.; प्रजामण्डल के कार्यकर्ता जेल में, पी. 40, 52, 70, 71 अ.उ.; थाना रिपोर्ट, नं. 16, 13–10–38, 28–11–38, अ.उ.

17–फो.पो. प्रजामण्डल गिरफ्तारी, नं. 13/ 34, 28 अक्टूबर, 1938, अ.उ. प्रजामण्डल के कार्यकर्ता जेल में, पी. 40, 52, 70, 71, अ.उ; थाना रिपोर्ट, नं. 16 13–10–38, 28–11–38, अ.उ.

आन्दोलन में तेजी लाने के लिए वर्माजी ने जमनालाल बजाज एवं कुछ व्यापारियों से चन्दा इकट्ठा कर आन्दोलन को बाहिर रह कर प्रभावशाली बनाते रहे। इस गतिविधि को रोकने के लिए पुलिस ने जासूसी द्वारा वर्माजी को देवली बुलाया और वहां जब वे निवृत होने शाम को बाहर निकले तो उन्हें पुलिस के एक दस्ते ने घेर कर पकड़ लिया, और घसीट कर ऊंवा नामक मेवाड़ के गांव में 2 फरवरी, 1939 को गिरफ्तार कर लिया और नंगा कर खूब पिटाई की। उनके ऊपर मेवाड़ प्रदेश निषेध आज्ञा के उल्लंघन के दोष में जहाजपुर न्यायालय ने दो साल की सख्त सजा दी। और उन्हें सेन्ट्रल जेल और पीछे कुंभलगढ़ बन्दी रखा गया। उनके साथ साधारण कैदी का व्यवहार तथा वैसा ही भोजन और निवास की व्यवस्था थी। पनी के भारी होने से तथा मिट्टी मिले आटे की रोटी खाने से उनको खून की दस्तें लगने लगीं और पेट के रोग से पीड़ित रहने लगे। अब गांधी जी ने उनके साथ किये गये अमानुषिक व्यवहार की निन्दा की तथा पत्र-पत्रिकाओं में उनके स्वास्थ्य सम्बन्धी अधिक चर्चा की गई तो सरकार ने उन्हें 8 जनवरी, 1940 को रिहा कर दिया। इसी अवधि में मेवाड़ का सत्याग्रह बदस्तूर चालू रहा। उदयपुर के पन्नालाल दर्जी, मोहनलाल सोनी, रोशनलाल बडिया, चन्दुलाल सुखवाल, नन्दलाल मोही, हिसार के धनराज आन्दोलन को चलाते रहे जिसको सरकार रोक न सकी, क्योंकि जनता में बड़ा उत्साह था। जगह जगह वन्देमातरम् के नारे सुनाई देते थे और आजादी के गीत गाये जाते थे। साथ ही जब प्रजामण्डल के कार्यकर्ता अकाल सहायता में गांव गांव लोगों को राहत पहुंचाने लगे तो प्रजामण्डल की ओर जनता की श्रद्धा और बढ़ गई। परन्तु गांधीजी के आदेश से 3 मार्च 1939 में सत्याग्रह बंद कर दिया गया, क्योंकि उनका विश्वास था कि सरकार अपनी नीति पर पुनः विचार करेगी। फिर भी प्रजामण्डल अपने सेवा कार्य में लगी रही। इधर 22 फरवरी 1941 को मेवाड़ के दीवान ही विजय राघवाचार्य के सुझाव पर महाराणा ने प्रजामण्डल पर रोक को हटा कर उसे राजनीतिक काय करने की छूट दे दी। इस प्रकार मेवाड़ के स्वतन्त्रता संग्राम का दूसरा चरण बड़ी सफलता से समाप्त हुआ। इस अवधि में प्रजामण्डल की साख जनता में एवं उसकी धाक सरकार में जम गई। प्रजामण्डल पर प्रतिबन्ध हटने पर मेवाड़ में जिला एवं परगना स्तर पर इसकी शाखाएं स्थापित हो गई और बडी संख्या में इसके सदस्य बनाये गये। यह मण्डल इतना प्रभावशाली बन गया कि इसकी रिपोर्ट पर सर टी. राघवाचार्य, जो मेवाड़ के प्रधानमंत्री थे, कई भ्रष्ट एवं दोषी अधिकारियों को पदच्युत कर दिया। जनता में जागृति और सरकार को सजग करने के लिए 1941 में प्रजामण्डल का अधिवेशन बुलाया गया जिसके अध्यक्ष वर्मा जी थे। इसमें आचार्य कृपलानी, श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित और राजस्थान के राज्यों, जिलों और गांवों से अनेक सदस्य सम्मिलित हुए। इसमें उत्तरदायी शासन और विधान सभा की स्थापना, नागरिक अधिकार आदि मुद्दों की मांग की गई।[18]

18– पत्र सत्यनारायण सर्राफ का जमनालाल बजाज को, 16 दिसम्बर, 1938, पत्र-व्यवहार, नई दिल्ली, पुलिस रिपोर्ट, फा. नं 8/8/39 पो. 1939, हां. पो. रा. अ., जमनालाल बजाज का पत्र हरविलास शारदा को, पत्र व्यवहार, नई दिल्ली, हरिजन, ता. 18-2-39. उपाध्याय का पत्र मुसाहिब आला, पी. 71. 17-11-38, सुखाड़िया, प्रजामण्डल, पृ. 3, के. एस. सक्सेना, पोलिटिकल मूवमेन्ट, पृ. 218.

मारवाड़ में आन्दोलन :

मारवाड़ अपने स्वतन्त्रता के लिए मध्यकालीन इतिहास में प्रसिद्ध राज्य रहा है। हमारे काल में भी इस भावना का उदय 1920 से हुआ जब कि "मारवाड़ सेवा संघ" की स्थापना की गई। इस संघ का सम्बन्ध राजस्थान सेवा संघ से था। मोटे रूप से इस संस्था का उद्देश्य जनता के दुःखों का निवारण करना तथा जहां अत्याचार हो वहां लोगों की सहायता करना। परन्तु इस सेवा की आड़ में संघ का एक और उद्देश्य था कि वह मारवाड़ रियासत के प्रशासन की आलोचना करे और उसके विरुद्ध आन्दोलन करे। इसके अग्रगण्य पदाधिकारी श्री जयनारायण व्यास, श्री कानमल, श्री भंवरलाल सर्राफ, दुर्गाशंकर श्रीमाली श्री प्रयागराज भंडारी और गिरधरलाल जैसलमेरिया थे। ये लोग स्वयं खादी पहिनते थे और उसका प्रचार करते थे। ये लोगों से अनुरोध करते थे कि वे विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार करे। जन जागरण के लिए वे अजमेर से समाचार पत्रों को मंगा कर लोगों को निःशुल्क बांटते थे। इसके सदस्यों ने 1921 के अहमदाबाद कांग्रेस अधिवेशन में भी भाग लिया।[19]

जब राज्य के श्यामबिहारी दीवान ने अंग्रेजी तोल का प्रचलन जारी किया तो मारवाड़ सेवा संघ के कार्यकर्ताओं ने नये तोल का तीव्र विरोध किया। लोग इसके विरुद्ध नारे लगाते थे."श्याम बिहारी 'कच्चा' मारवाड़ का तोल पक्का।" परिणाम यह हुआ कि जोधपुर में पुराना तोल चलता रहा। ये बात तो छोटी सी थी परन्तु संघ के प्रभाव से जनता की आवाज की यह एक महत्वपूर्ण विजय थी। इसी तरह मादा पशु निकासी को लेकर संघ के कार्यकर्ताओं ने, जैसा कि ऊपर के अध्याय में वर्णन किया गया है, 29 अक्टूबर 1923 को आंदोलन छेड़ दिया। फलतः 15 अगस्त, 1924 को सरकार ने मादा पशु निकासी की आज्ञा वापस ले ली। वैसे तो इस संस्था का काम लोकहित में था परन्तु सामन्ती वातावरण के कारण यह संस्था अधिक प्रभावशील न हो सकी और उसके सदस्यों की संख्या में वृद्धि न होने पाई।[20]

इस स्थिति से संघ के कार्यकर्ता हतोत्साहित न हुए। उन्होंने जून 1924 को एक नये संगठन की स्थापना की जिसका नाम "मारवाड़ हितकारिणी सभा" रखा गया। इसके सदस्य प्रारंभ में वे ही थे और उसके उद्देश्य में भी कोई परिवर्तन नहीं था। एक विशेष उद्देश्य यह रखा गया था कि लोकोपकारी कामों में अधिक तेजी लाई जाय और महाराज के प्रति श्रद्धा और सद्भाव रखे जाय जिससे जनहित सम्पादन में बाधाएं न आ सके। वैसे तो इस संस्था का ध्येय राजनीतिक था, परन्तु प्रारंभिक अवस्था में इसके कार्यकर्ता

19–सिंघी और कल्ला, देशी रियासतों में जन क्रांति, पृ. 31; जयनारायण व्यास, मारवाड़ में जागृति और उसे रोकने के उद्योग, पृ. 5–6; घनश्यामलाल व्यास, हमारे मास्टर साहब, पृ. 35; डा. सोभागमल माथुर, स्ट्रगल फार रेस्पोन्सिबल गवर्नमेन्ट, पृ. 14

20– छगनराज चौपासनी वाला, मेरे जीवन के कुछ संस्मरण, लोक जीवन जोधपुर, 17 नवम्बर, 1980, पृ. 31; कस्टम सर्कुलर, नं. 8, अक्टूबर 1, 1924; प्रिंसली इंडिया, मई 30, 1925.

निरर्थक महाराजा से टकराव में नहीं आना चाहते थे। इस नीति से इसके सदस्यों की संख्या भी बढ़ गई और मावा निकासी की रोक हो जाने से जनता में इसके प्रति विश्वास उत्पन्न हो गया।[21]

बढ़ती हुई संख्या की लोकप्रियता सर सुखदेव प्रसाद सहन न कर सके। उन्होंने इस संस्था की होड़ में 'राजभक्त देश हितकारिणी सभा" की स्थापना की जो राजभक्ति की दुहाई देने लगी। परन्तु ये युक्ति कारगर न सिद्ध हुई क्योंकि जनता का मानस मारवाड़ हितकारिणी सभा के प्रति निष्ठावान् बन चुका था। ज्योंही सभा ने सर सुखदेव के भ्रष्टाचार का भंडा फोड़ना शुरू किया तो वे बौखला गए। उन्होंने सभा के प्रमुख व्यक्तियों को, जिनमें प्रतापचन्द सोनी, शिवकरण जोशी और सेठ चांदमल सुराना मुख्य थे, 19 मार्च, 1923 को मारवाड़ से निष्कासन के आदेश दे दिये। साथ ही जयनारायण व्यास, आनन्दराज सुराणा, अब्दुल रहमान अन्सारी, अमरचन्द मूथा, कस्तूरचन्द और बच्छराज व्यास को 10 नम्बरी ठहराया गया। उनको प्रतिदिन पुलिस में हाजरी देने और पुलिस चोकी पर रात को सोने के लिए बाध्य किया गया।[22]

जयनारायण व्यास जो एक आत्माभिमानी व सच्चे देशप्रेमी थे इस वातावरण में रहना नहीं चाहते थे। वे स्वेछा से ब्यावर चले गये और तरुण राजस्थान के सम्पादन का काम करने लगे। वे वर्तमान मारवाड़ के शीर्षक से राज्य के भ्रष्टाचार पर लेख लिखने लगे और बाहिर रह कर आन्दोलन की गति का संचालन करते रहे। इस प्रकार के लेखों से तथा निर्देशन से मारवाड़ हितकारिणी सभा ने एक आम सभा का आयोजन किया जिसमें मारवाड़ में उत्तरदायी शासन और जनता के मूल अधिकारों की मांगे की गई। न्याय और शासकीय विभाग के पृथक्करण एवं भाषण और लेखन सम्बन्धी स्वतन्त्रता पर जोर दिया गया। इस पर मारवाड़ सरकार ने राजद्रोहियों के विरुद्ध कानून बनाया और चेतावनी दी कि ऐसे अपराधियों पर सख्त कार्यवाही की जायेगी।[23]

जयनारायण व्यास जो ब्यावर से इस आन्दोलन का नगर में संचालन कर रहे थे। 1928 ई. में इसे गांवों की ओर भी ले गये। उन्होंने गांवों में अपने कार्यकर्त्ताओं को भेज उन्हें उनकी कठिनाइयों से अवगत कराया उन्होंने पाया कि जागीरदार व सरकार इन बेसहारा लोगों से मनमाने कर वसूल करते हैं और उनसे कई लाग बागें लेते हैं। बिना पारिश्रमिक के दिये उनसे बेगार ली जाती है। सभा ने मुद्दों को आन्दोलन का भाग बनाया और उन ज्यादतियों से उनको छुटकारा दिलाने का बीड़ा उठाया। राज्य के कठोर रवैये तथा बेगार एवं लाग बाग के विरुद्ध स्वयं जयनारायण व्यास और भीमराज ने पर्चे बांटे और लोगों को तैयार किया कि वे गांवों में जाकर राज्य के अत्याचार एवं शोषण के विरुद्ध आवाज उठाएं।[24]

21– फा.नं. 158, 3, पी.फो.पो.रा.अ.; दुर्गादास, अगस्त 20, 1925.

22– युग जीवन, पृ. 25; प्रिंसली इंडिया, 19 जुलाई, 1926; किशनपुरी, मेमोयर्स ऑफ मारवाड़ पुलिस, पृ. 125; शोभाग माथुर, स्ट्रगल फार रिस्पोंसिबल गवर्नमेंट, 22–24.

23– गोपनीय पत्र 21 सितम्बर, 1925 मेकफरसन, जोधपुर रजिडेन्ट से पेटरसन एजीजी राजपूताना, फा.नं. 158, 3, पी, 1925, फो.पो. रा.अ.

24– के. एस. सक्सेना, पोलिटिकल मूवमेंट एण्ड अवेकनिंग, पृ. 208.

ग्रामीण प्रचार का स्वर महत्वपूर्ण साबित हुआ। इसके फलस्वरूप सुमेरपुर की स्थिति इतनी नाजुक हो गई थी कि जोधपुर से सेना सुमेरपुर भेजी गयी और उसे आदेश दिया कि वहां के गैर सैनिक अधिकारियों को शान्ति स्थापित करने में सहायता दी जाए। भील और गिरासिया इस आन्दोलन में सबसे आगे थे। सैनिक दबाव से स्थिति पर काबू तो पाया गया परन्तु जन भावनाओं को दबाया न जा सका। इस प्रकार के विरोध को बढ़ावा देने के लिए अन्य जिलों को भी सम्मिलित किया गया। इसी उद्देश्य से जयनारायण व्यास ब्यावर से बगड़ी गये और सोजत तथा जैतारण के जिलों के सामाजिक और आर्थिक कार्य करने लगे। इससे बगड़ी का ठाकुर बड़ा नाराज हुआ और उसने कार्यकर्ताओं पर कई बार हमले किये। परन्तु कार्यकर्ता अडिग रहे।[25] उन्होंने सुखदेव प्रसाद को हटाने की मांग की और अन्त मे उसको हटना पड़ा।[26]

जब मारवाड़ आन्दोलन की गति ठीक चल रही थी तो व्यास जी पुनः जोधपुर लौटे और अपने साथियों से परामर्श के उपरान्त मारवाड़ हितकारिणी सभा का अधिवेशन 11-12 अक्टूबर, 1929 को जोधपुर करने का निश्चय किया गया। अधिवेशन के प्रबन्ध के लिए एक प्रबन्ध कारिणी समिति का गठन किया गया जिसके सिरेहमल ढढ्ढा अध्यक्ष आनन्दराज सुराणा प्रयागराज, अब्दुल रहमान अन्सारी और जयनारायण व्यास मन्त्री एवं सरदारमल थानवी कोषाध्यक्ष नियुक्त हुए। गांवों प्रतिनिधियों को बिना शुल्क उसमें भाग लेने के लिए आमन्त्रित किया गया। इसी अवसर पर सभा ने दो पुस्तिकाओं का प्रकाशन भी किया। एक का नाम "पोपा बांई की पोल' और दूसरी का नाम "मारवाड़ की अवस्था" था सरकार ने दोनों पुस्तिकाओं का जब्त कर लिया। मारवाड़ हितकारिणी सभा पर रोक लगा दी गई और उनके प्रमुख कार्यकर्ताओं को 23 सितम्बर 1229 गिरफ्तार कर लिया गया। जयनारायण व्यास को दौलतपुरा और आनन्दराज को बाड़मेर के गिदाव नामक निर्जन स्थान में बन्दी बना कर भेज दिया तथा भंवर सर्राफ का 14 अक्टूबर दीपचंद 1926 को पुलिस हिरासत में रखा गया। इसके पश्जात् नरसिंहदास, लूकड़, जवाहरलाल, दाऊदयाल जैसलमेरिया और जयनारायण गज्जा को भी कारावास का दण्ड दिया गया।[27]

मारवाड़ हितकारिणी सभा के प्रमुख व्यक्तियों को पकड़ने की देश में तीव्र आलोचना की। ब्यावर में इस सम्बन्ध में एक आम सभा आत्माराम फोफलिया की अध्यक्षता में हुई जिसने इस राज्य की जघन्य नीति की निन्दा की। बम्बई में भारतीय देशी राज्य सभा ने इस कार्य को अन्यायपूर्ण बतलाया। कई समाचार-पत्रों ने जिनमें ट्रिब्यून, यंग राजस्थान आदि ने सभा करना और निरंकुश शासन के विरुद्ध आवाज उठाना नागरिकों का अधिकार बतलाया। इस सम्बन्ध में की गई सम्पूर्ण कार्यवाही को सामन्तशाही का नग्न स्वरूप कहा जा सकता है।[28]

25- रामनारायण चौधरी, हमारा राजस्थान, पृ. 8 74, 80, 81, 83, 142-43; छगनराज चोपासनीवाला- मेरे जीवन के कुछ संस्मरण, लोक जीवन पृ. 3 नवम्बर 21, 1980.

26- फाइल नं. 155,3, पी फो-पो, रा.अ.

27- एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट जोधपुर, 1929-30, पृ-15.

28- यंग राजस्थान, अक्टूबर, 2, 3, 1929; ट्रीब्यून, अक्टूबर 2, 1929.

जब जयनारायण व्यास आदि नजरबंद या जेल में थे तो विद्यार्थियों में हलचल मची। दो विद्यार्थी गांधी टोपी पहन कर परीक्षा देने आये। प्रिंसीपल पी.पी. साहनी थे। उन्होंने मना किया परन्तु विद्यार्थी नहीं माने। इस पर तीन विद्यार्थियों को कालेज से निकाल दिया गया। फिर उनको काशी विश्वविद्यालय में भर्ती कर लिया गया और वहीं उन्होंने अपनी शिक्षा पूरी की। उनके नाम भीमराज पुरोहित, मनमोहन व्यास और बद्रीदास कांठा थे।[29]

जयनारायण व्यास, आनन्दराज सुराना और भंवरलाल सुराना को जिन्हें बन्दी बनाया गया था। राजद्रोह के अपराधी माने गये। उनके मुकदमें की सुनवाई के लिए एक ट्रिब्यूनल बिठाई गई जिसके न्यायाधीश माधोसिंह और मोतीलाल अग्रवाल थे। विशेष अदालत की बैठक नागौर में की गई। सरकारी पक्ष का नेतृत्व मारवाड़ के आई.जी.पी. कोठावाला को सुपुर्द किया गया और राजपूताना स्टेट पीपुल्स कान्फ्रेन्स द्वारा रघुनाथ सहाय और चिरंजीलाल अग्रवाल को सफाई पक्ष से रखा गया। अभियुक्तों ने सफाई पक्षों में सबूतों के रूप में बड़े-बड़े लोगों के नाम लिखवाये जिनमें पं. मदन मोहन मालवीय सरतेज बहादुर सप्रू और सर शादीलाल थे। विशेष अदालत ने इन गवाहों को बुलाने से इन्कार कर दिया और अपराधियों की सजा की तजवीज 20 जनवरी, 1930 को सुना दी गई। इसके अनुसार जयनारायण व्यास को पांच वर्ष का कठोर कारावास की अवधि का दण्ड ओर 1000 रु. जुर्माना तजवीज किया गया। जुर्माने न देने पर एक वर्ष की कठोर कारावास की अवधि निर्धारित की गई। आनन्दराज सुराना और भंवरलाल को चार वर्ष का कठोर कारावास और प्रत्येक पर एक हजार रु. जुर्माना देने का दण्ड दिया गया। रकम की अदायगी न होने पर कठोर कारावास काल में एक वर्ष की अवधि बढ़ाने का प्रावधान रखा गया। इसके विरुद्ध इन्होंने चीफ कोर्ट में अपील की परन्तु नामंजूर करदी गई।[30]

जब महात्मा गांधी ने नमक सत्याग्रह प्रारम्भ किया तो इस अखिल भारतीय आजादी के आन्दोलन में जोधपुर कैसे पीछे रह सकता था। पीपाड के सेठ और करांची में रहने वाले फतेहराज पुरोहित आदि कई जोधपुर प्रवासियों ने इस यज्ञमें अपनी अपनी आहू-तियां दीं। तब ब्यावर में तरुण राजस्थान समाचार पत्र में काम करने वाले नवयुवक अचलेश्वर प्रसाद (पहले अचल दास) ने भी अजमेर में 1930 के नमक सत्याग्रह में भाग लिया उनको अजमेर जेल में कैद कर लिया गया।[31]

29- छगनराज चोपासनीवाला, मेरे जीवन के कुछ संस्मरण, लोक जीवन जोधपुर, 17 नवम्बर पृ. 4

30- हिन्दुस्तान टाइम्स, मई, 16, 1929; बोम्बे क्रोनिकल, सितम्बर 29, अक्टूबर, 19 जनवरी, 23 1929 तरुण राजस्थान, अक्टुबर 21, 1929; सोभाग माथुर, स्ट्रगल फार रिस्पोंसिबल गवर्नमेंट, पृ. 24-32; मेहता, हमारा राजस्थान, पृ. 388.

31- लोक जीवन 21 नवम्बर 1930, पृ. 3; अचलेश्वर प्रसाद का कुल जेल जीवन का अनुभव 1928-1942 तक सात वर्ष का रहा। अपने पत्र प्रजा सेवक के माध्यम से उन्होंने राजपूताने की रियासतों के जन आन्दोलन को आगे बढ़ाया और रियासती जनता को राजनैतिक रूप से प्रशिक्षित, जागृत, संगठित और संघर्षरत बनाया; सुमनेश जोशी, राजस्थान में स्वतन्त्रता संग्राम के सेनानी, पृ. 679.

प्रबल आन्दोलन और नये संगठन :

1931 में जब गांधी–इर्विन समझौता हो गया तो जयनारायण व्यास और उनके सहयोगियों को जेल से मुक्त कर दिया। इस मुक्ति को जोधपुर में बड़े हर्ष से मनाया गया। उसी वर्ष ब्रिटिश भारत में सविनय आज्ञा भंग के आन्दोलन ने प्रबल रूप धारण कर लिया। इसका प्रभाव भारतीय रियासतों पर होना ही था। जोधपुर में जनता ने राज्य के विरुद्ध आन्दोलन प्रारंभ कर दिया और हितकारी सभा को पुनः जीवित करने का प्रयत्न किया। कुछ आन्दोलनकारियों ने एक अलग ही संगठन बनाया और उसका नाम बाल भारत सभा रक्खा। यह सभा भी अल्प समय में लोकप्रिय हो गई। एक तीसरा संगठन भी बना जिसका नाम मारवाड़ यूथलीग था। उसने चरखा संघ और खादी भंडार का 30 मई 1931 को उद्घाटन समारोह मनाया। उसी समय चोपास–नीवाला ने प्रभात फेरिया निकालना प्रारम्भ किया। आन्दोलनकारियों ने एक ऐसा पर्चा छपवाकर बांटा जिसमें मारवाड़ प्रशासन के भ्रष्टाचार का ब्यौरा था। इस पर आन्दोलनकारियों के विरूद्ध तुरन्त ही कार्यवाही की गई। जयनारायण व्यास, मानमल गणेशलाल व्यास, अभयमल मेहता और सभा के अन्य सदस्य जेल में रख दिये गये। छगनलाल चौपासनीवाला को पकड़ कर बुरी तरह पीटा गया। यहां तक कि उनका गला दबाया गया। ये आन्दोलनकारी 26 जनवरी, 1931 को राष्ट्रीय ध्वज फहराना चाहते थे। इसी सम्बन्ध में अचलेश्वर प्रसाद शर्मा को भी नजरबन्द कर दिया गया। 27 मई 1931 को हितकारिणी सभा और बाल भारत सभा गैर कानूनी घोषित कर दी गई। फिर भी चौपासनीवाले ने कानून भंग करके सर्राफा बाजार में 26 जनवरी, 1931 को राष्ट्रीय ध्वज फहराया। उसे पुलिस गिरफ्तार करके थाने में ले गई। 1932 में मारवाड़ दरबार पब्लिक सेफ्टी अध्यादेश जारी हुआ जिससे मारवाड़ के लोगों में नागरिक स्वतंत्रता बहुत सीमित हो गई। डागा केस में जयनारायण गज्जा, नरसिंह दास तापड़िया कानमल को तीन माह की सजा दी गई।[32]

गोलमेज परिषदें के पश्चात अंग्रेज सरकार ने 17 अगस्त, 1932 में कोम्यूनल अवार्ड दिया उस समय अंग्रेज सरकार के प्रधानमंत्री रैमेज मेकडोनाल्ड थे। इस कानून का गांधीजी ने विरोध किया और आमरण अनशन शुरू कर दिया। जोधपुर में गांधीजी के अनशन ने हलचल मचा दी। अचलेश्वर और छगन राज चौपासनीवाला ने हरिजन आन्दोलन का संचालन और खद्दर बेचने का कार्य अपने हाथ में लिया। अचलेश्वर को अजमेर से लौटते हुए मारवाड़ जंक्शन पर ही गिरफ्तार कर लिया और दौलतपुरा जेल में रक्खा।[33]

32–मारवाड़ स्टेट गजेटियर, 7 मार्च 1931, हिन्दुस्तान टाइम्स, 24 अप्रेल, 14 सितम्बर, 12 दिसम्बर, 1931.

33–मारवाड़ स्टेट गजट फा.नं. 18/ 5/32, पो. 7 मार्च, 1932 हो.पो., रा.अ.

मारवाड़ राज्य प्रजा परिषद् का प्रथम अधिवेशन इसी बीच 24, 25 नवम्बर, 1931 में बुलाया गया। इसके मंत्री स्वयं व्यास थे। अधिवेशन में कस्तूरबा गांधी, मणीलाल कोठारी और काका कालेलकर भी आये थे। इसके अध्यक्ष अजमेर के चांदकरण शारदा तथा प्रबन्धकारिणी समिति के अध्यक्ष जीतमल लूनिया थे। इस अधिवेशन को असफल बनाने के लिये जोधपुर सरकार ने कई आदमी उसमें भेजे। जब चांदकरण शारदा अपना भाषण पढ़ रहे थे तो जोधपुर से आये हुए निसारअहमद ने शारदा के सिर के ऊपर लटके हुए गैस के हंडे को फोड़ दिया। तब उसकी बहुत पिटाई की गई। परन्तु जयनारायण व्यास ने उसको बचाया। इस अधिवेशन में जोधपुर से छगनराज चौपासनीवाला, अभयमल जैन, जयनारायण गज्जा, मानमल जैन और नरसिंहदास लूंकड़ आये थे। नागौर से भी दो सदस्य आये थे। इसमें भाग लेने के अपराध में 5 मार्च, 1932 के आदेश के अन्तर्गत जोधपुर सरकार ने लूंकड़, गोधा, दाउदयाल आदि को जेल और जुर्माने की सजा दी। जब जुर्माना नहीं दिया गया तो उनकी दुकानों का माल जब्त कर लिया गया। अभयमल जैन और गज्जा को रेलवे की नौकरी से निकाल दिया गया।[34]

जोधपुर प्रजामण्डल 1934–1937 :

जोधपुर राज्य के 5 मार्च 1932 के अधिनियम के अनुसार जनता या किसी संस्था द्वारा संचालित आन्दोलनों पर पर पूरी रोक लगादी गई थी। सरकारी अधिकारियों व कर्मचारियों पर भी ऐसे किसी आन्दोलन में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से भाग लेने की मनाई थी। ऐसा करने पर उन्हें नौकरी से निकाले जाने तथा ग्रेच्युएटी या बोनस से हाथ धोने की धमकी दी गई। परन्तु सरकार के इस रुख का सच्चे देश भक्तों पर कोई असर नहीं हुआ। जिनको देश से प्रेम था या जिन्हें कराहती हुई प्रजा पर तरस था वे अपनी निष्ठा से राष्ट्रीय सेवा में लगे हुए रहे। मारवाड़ का प्रबुद्ध नागरिक चाहे वह मारवाड़ में रहता था या बम्बई इत्यादि प्रान्तों में उद्योग-धंधे में कार्यरत था वह भारतीय आन्दोलन से सम्पर्क साधे हुआ था। साथ ही अभी तक मारवाड़ में जनहित सम्पादन के लिए जो आन्दोलन हुए थे उसमें देश प्रेमियों ने अपनी क्षमता और दृढ़ता का परिचय दे एक संगठन शक्ति की मिसाल जनता के समक्ष उपस्थित की थी। जब भारतीय कांग्रेस की नीति ने सिद्धान्ततः यह स्वीकार कर लिया था कि देशी राज्यों की समस्याएं भी देश की महत्वपूर्ण समस्याएं हैं तो स्थानीय नेताओं को इससे बल मिला। नितान्त उन्होंने एक संगठन की 1934 में स्थापना की जिसका नाम "प्रजामण्डल" इसके संस्थापक मानमल, अभयमल मेहता और छगनलाल चौपासनी वाले थे। उसके अध्यक्ष भंवरलाल सर्राफ और मन्त्री अभयमल जैन थे। इस संस्था का मुख्य उद्देश्य जोधपुर रियासत में उत्तरदायी शासन की स्थापना एवं जनता के मौलिक अधिकारों का संरक्षण करना था। इसका अर्थ यह था कि इसके कार्यकर्ता लोकराज की स्थापना के लिए राजतन्त्र से खुला संघर्ष करने के लिए कटिबद्ध थे।[35]

34–हिन्दुस्तान टाइम्स, 14 नवम्बर, 1931; त्याग भूमि, नवम्बर 22, 1931; बाम्बे क्रोनिकल, 28 नवम्बर, 1931 फरवरी 23, 1932, मार्च, 1932;

सोभागमल माथुर स्ट्रगल–फार रेसपोन्सिबल गवर्नमेन्ट, पृ. 33–36

35–मारवाड़ राज्य का गजट, 7 मार्च, 1932, फा. नं. 18/5/32 हो. पो. रा. अ.

परन्तु डोन लडफील्ड जो मारवाड़ राज्य का दीवान था वह राजतन्त्र का पूर्ण समर्थक था और जागीरदारों के विरुद्ध कोई शिकायत सुनने के लिए तैयार नहीं था। राज्य के आदेश से भाषण देने या सभा करने आदि पर पाबन्दी थी। जयनारायण जैसे तपे हुए नेता को देश निकाला था जिससे सक्रिय आन्दोलन में रुकावट पैदा हो गई थी। स्थानीय कार्यकर्ता इस ताक में थे कि कोई अवसर मिले जिसको लेकर आन्दोलन में गति लाई जा सके और प्रजामण्डल अपने उद्देश्यों की पूर्ति कर सके। जब कृष्णा नामक युवती के मामले की चर्चा होने लगी जिसके साथ एक राज परिवार के व्यक्ति ने बलात्कार किया था तथा राज्य द्वारा आठवें दर्जे से उच्च शिक्षा के स्तर तक के विद्यार्थियों की फीस भी बढ़ा दी तो प्रजामण्डल ने इन दोनों मुद्दों को लेकर संघर्ष छेड़ दिया। इनको लेकर महाराजा व दीवान को कई ज्ञापन भी दिये गये और विरोध में कृष्णा व शिक्षा दिवस मनाया गया। जून 21, जून 25, अगस्त 18 सन् 1936 को जोधपुर में आम सभाएं भी आयोजित की गई परन्तु राज्य ने इन पर गौर करने के बजाय प्रजामण्डल को अवैध घोषित कर दिया।[36]

भाग्यवश जुलाई 1936 को डा. पट्टाभी सीतारमैया, जो स्टेट पीपुल कान्फ्रेन्स के अध्यक्ष थे अपने सेक्रेटरी मणी शंकर त्रिवेदी के साथ जोधपुर आये और राज्य की दुर्दशा तथा उसकी शिक्षा के प्रति उपेक्षा सम्बन्धी आम जनता के समक्ष भाषण दिया। इसी तरह पं. जवाहरलाल नेहरू ने 16 मई, 1936 को मारवाड़ी विद्यालय बम्बई में अपने भाषण में राज्यों में होने वाली ज्यादतियों की निन्दा की और इस बात पर बल दिया और कहा कि भावी स्वतन्त्र भारत में देशी राज्यों की जनता के अधिकार समान होंगे। पंडितजी के इस वक्तव्य का मारवाड़ में स्वागत किया गया और उन्हें बधाई के पत्र भेजे गये। इन चोटी के नेताओं से प्रजामण्डल के सदस्यों का सम्पर्क राज्य के लिए असह्य हो गया। उसने बिना किसी कारण बताए श्री अभयमल जैन, श्री मानमल जैन और सी. आर. चौपासनीवाला को पुलिस स्टेशन ले जाया गया और उन्हें कुछ समय के लिए अलग-अलग किलों में ले जाकर बन्दी बना दिया। इधर से जब व्यास जी का देश निष्कासन का काल समाप्त हो रहा था और वे मारवाड़ जंकशन पहुंचे तो उन्हें पुनः पाली ले जाया गया और ब्यावर जाकर छोड़ दिया। जब इस कार्यवाही की आम सभा में निन्दा की गई और उनके जोधपुर प्रवेश की मांग की गई तथा संघ शासन की आलोचना की गई तो पुनः श्री अभयमल जैन, श्री मानमल जैन और सी. आर. चौपासनीवाला को क्रमशः पर्वतसर, दौलतपुरा और बाली के किले में नजरबन्द कर दिया। परन्तु परिस्थिति को बिगड़ती देख उन्हें 1937 सितम्बर के तीसरे हफ्ते में मुक्त कर दिया। परन्तु मुन्शी पुरुषोत्तम प्रसाद, श्री अचलेश्वर प्रसाद, श्री अभयमल जैन, श्री मानमल जैन, श्री रणछोड़ घठ्यानी आदि के मकानों की तलाशी ली गई। अभयमल के घर तिरंगे झंडे को उतार कर जब्त कर लिया गया और श्री अचलेश्वर प्रसाद को गिरफ्तार कर ढाई वर्ष की कठोर जेल यातना दी गई। दिसम्बर 1937 तक श्री चौपासनीवाला को भी मारवाड़ की "अवस्था नामक" पुस्तक अपने यहां रखने तथा श्री पुरुषोतम प्रसाद नैयर को संघ शासन के

36—हिन्दुस्तान टाइम्स, 11 जून, 1936

विरुद्ध प्रचार करने के अपराध में बन्दी बना कठोर कारावास की सजा दी गई। राज्य की इस कार्यवाही की चारों ओर निन्दा हुई और प्रजामण्डल, जो प्रजा के अधिकारों के लिए संघर्ष कर रहा था और अधिक लोकप्रिय हो गया। सरकार ने उसकी बढ़ती हुई प्रतिष्ठा को देखकर मण्डल को अवैध घोषित कर दिया।[37]

मारवाड़ में होने वाले अत्याचारों से राष्ट्रीय कांग्रेस के सदस्य चिन्तित हुए और राज्य की प्रजा की दशा सुधारने के लिए मारवाड़ प्रजा मण्डल का मार्ग दर्शन करने लगे। सितम्बर, 1937 को जब पं. जवाहरलाल नेहरू अजमेर जाते हुए मारवाड़ जंक्शन से गुजरे तो मारवाड़ की जनता ने उनका भव्य स्वागत किया और एक अभिनन्दन पत्र भेंट किया। पंडितजी ने लोगों को विश्वास दिलाया कि ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध ब्रिटिश भारत और देशी राज्यों की जनता एक है। उन्होंने अपने भाषण में देशी राज्यों के पिछड़ेपन और उनमें शिक्षा के प्रसार की आवश्यकता पर बल दिया। इसी प्रकार भूला भाई देसाई लंदन से लौटते हुए जोधपुर से गुजरे तो इनसे प्रजामण्डल के कार्यकर्ता हवाई अड्डे पर मिले और उनको नगर की आम सभा में स्वागत पत्र भेंट किया। उन्होंने प्रत्युत्तर में कहा कि अब समय की मांग यह है कि राजाओं को अपनी प्रजा की शक्ति पर निर्भर रहना चाहिये न कि ब्रिटिश सत्ता पर [38]

1938 तक राज्य मे आन्दोलन की गति बड़ी विषम हो गई। जबकि प्रजामण्डल के तथा अन्य संस्थाओं के लगभग सभी कार्यकर्ता जेल में थे, बचे हुए स्वयं सेवक तथा जनता का जोश यथावत् था। इसी अवधि में 23 जनवरी, 1938 को श्री सुभाषचन्द्र बोस विलायत से भारत आते हुए जोधपुर हवाई अड्डे पर उतरे। जोधपुर में गिरदीकोट पर एक आम सभा का आयोजन किया गया। उन्होंने नौजवानों को भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम में प्रमुख हिस्सा लेने के लिए आव्हान किया और बतलाया कि सफलता प्राप्त करने का यही सुनहरी अवसर है जिसे हाथ से नहीं जाने देना चाहिये इस थोड़े समय के सम्पर्क ने विद्यार्थी वर्ग में एक नये जीवन का संचार किया। राष्ट्रीय कार्यकर्ताओं के साथ मिलकर जोधपुर के युवावर्ग ने जन चेतना में हाथ बटा कर आन्दोलन को तीव्र कर दिया। जसवंत कालिज के होस्टल में भाषण देते हुए प्रिन्सिपल ने विद्यार्थियों को होस्टल एवं कालेज से निकालने की धमकी दी तथा पुलिस ने आतंक का दौर चलाया तो उसका प्रभाव जागृत वर्ग पर न पड़ सका। बल्कि उनमें अधिक जोश की वृद्धि हुई।[39]

37–नेशनल काल, 7 अक्टूबर, 1936; नव ज्योति अगस्त 1, 1937; हिन्दुस्तान टाइम्स, 24 सितम्बर, 1937, 4 मार्च, 4 जुलाई, 1938; डा. सोभाग माथुर, स्ट्रगल फार रेस्पोन्सिबल गवर्नमन्ट पृ. 48-55

38–हिन्दुस्तान टाइम्स. अक्टूबर 13 1936, सितम्बर, 1937; नेशनल काल, 2 जुलाई, 1937

39–हिन्दुस्तान टाइम्स, जुलाई 25. 1937; नव ज्योति, 1 अगस्त 1937;
जोधपुर कांग्रेस कमेटी की पुस्तिका, 22 जनवरी, 1939; हिन्दुस्तान (हिन्दी), 1 फरवरी 1938,
स्टेट्समैन, नवम्बर 4, 1937;
हिन्दुस्तान टाइम्स नवम्बर 15, 23, 1937;
फा. पो. नं. 31, 1938, अ. जोधपुर; डा. जी. एन. शर्मा. सुभाषचन्द्र बोस एण्ड हिज जोधपुर विजिट, जोधपुर युनीवर्सिटी सेमीनार, 1983

लोक परिषद् :

जब प्रजामण्डल नागरिक अधिकार रक्षा सभा और अन्य संस्थाओं को गैर कानूनी घोषित किया गया तो मई 1938 में मारवाड़ लोक परिषद् की स्थापना हुई। इस संस्था ने जागीर प्रथा का विरोध करना शुरू किया। इसका उद्देश्य था कि राज्य में उत्तरदायी शासन को स्थापित किया जाय और जनता के मत को सर्वोपरिता दी जाय। निर्वासित होते हुए भी इस संस्था के प्रमुख उद्बोधक व्यास जी थे और श्री रणछोड़ भट्टानी इसके अध्यक्ष थे। परिषद् को नवम्बर 13, 1938 तथा दिसम्बर 6, 1938 को श्रीमती विजय-लक्ष्मी पंडित एवं श्री सुभाष बोस के क्रमश: जोधपुर आने से बड़ा बल मिला और अब वह दृढ़ता से काम करने लगी।

परिषद के तत्वावधान में आन्दोलनकारियों ने पर्चों और पुस्तिकाओं द्वारा राज्य के विरुद्ध प्रचार करना शुरू किया तो इस प्रकार के साहित्य को जब्त कर लिया गया। इस साहित्य में गरीबों की आवाज, अमानत का हिसाब, उत्तरदायी शासन की स्थापना जोधपुर नौकरशाही की बौखलाहट आदि मुख्य मुद्दे थे। उनकी म्युनिसिपैलिटी के चुनाव एवं जयनारायण व्यास को जोधपुर प्रवेश करने देने की मांग थी। मारवाड़ के जागीर इलाकों के लोग भी लोक परिषद के साथ थे। उनकी मुख्य शिकायत यह थी कि किसानों से जागीरदार सैकड़ों अनुचित कर ले रहे थे। उनमें कुछ कर एसे भी थे जिनकी वसूली मुख्य न्यायालय ने बन्द करा दिये थे, क्योंकि यह कानून के विरुद्ध और शासन नीति के विरुद्ध मानी जाती थी। फिर भी इनकी वसूली ठिकानेदार करते थे। विशेष विरोध लटाई विधि और जागीरदारों द्वारा अदालती अधिकारों के दुरुपयोग का किया जा रहा था बेचान के दस्तावेजों पर भी जागीरदार चौथान लेते थे। इसी प्रकार रहननामों पर भी कर लिया जाता था। इन अनुचित करों की ओर मारवाड़ लोक परिषद ने राज्य सरकार का ध्यान आकर्षित करने की कोशिश की। परन्तु उन्हें कोई सफलता नहीं मिली। इतना ही नहीं जागीरदार लोग करों में वृद्धि करते रहे और रियासत उनकी पीठ ठोकती रही।[40]

उत्तरदायी सरकार के लिये मांग :

मारवाड़ लोक परिषद उत्तरदायी सरकार के लिये और भी अधिक जोर से मांग करने लगी और सरकार की दमनकारी नीति का विरोध करने लगी। इसका नेतृत्व श्री जय-नारायण व्यास श्री अचलेश्वर प्रसाद शर्मा, श्री पुरुषोत्तम प्रसाद, श्री किशोरीलाल मेहता, श्री अभयमल जैन, श्री सी. आर. चौपासनीवाला और श्रीगणेशलाल व्यास कर रहे थे। सरकार ने उनको गिरफ्तार करके श्री जयनारायण को जालोर, अचलेश्वर प्रसाद श्री

40- सी.नं. 97, 1941, जयनारायण व्यास और किसानों की समस्या सम्बन्धी फाईल अ.बी;

वैद्य कन्हैयालाल–प्रोग्रेसिव जोधपुर अन्डर ब्रिटिश प्राईमिनिस्टर सर डोनाल्ड फिल्ड, पृ. 25, आबू कलेक्शन यूनिवर्सिटी ऑफ राजस्थान, जयपुर।

किशोरमल मेहता को दौलतपुरा, श्री पुरुषोत्तम प्रसाद को पर्वतसर तथा गणेशलाल व्यास और अभयमल को सिवाना के दुर्गों में एक वर्ष के लिये नजरबन्द कर दिया और मारवाड़ लोक परिषद को 29 मार्च, 1940 को गैर कानूनी घोषित कर दिया। इस परिषद की जो शाखाएं मारवाड़ राज्य के अन्य भागों में थी वे भी गैर कानूनी मानी गई। साथ ही सरकार ने नगर में दफा 144 धारा लागू करके सभाएं करना बन्द कर दिया। परन्तु इस से भी आन्दोलन समाप्त नहीं हुआ, बल्कि और भी तीव्र हो गया। प्रमुख नेता सारे जेल में थे इसलिए मथुरादास माथुर को आन्दोलन का डिक्टेटर बनाया गया और उसकी घोषणा ढोल बजा कर की गई।41

तब इस सभा बन्दी-कानून के विरुद्ध एक बहुत बड़ा जुलूस अप्रेल 1, 1940 को निकाला गया। उसमें आगे आगे श्री मनोहर मल जैन, श्री रणमल जैन, श्री देवीसिंह भाटी आदि थे, लोक राष्ट्रीय गान गाते जाते थे और जुलूस मुख्य बाजार में होकर निकल रहा था। जोधपुर सरकार ने 1932 के अध्यादेश के अधीन उन लोगों में से कितनों ही को गिरफ्तार कर लिया जो बाजार में जुलूस को देखने के लिए एकत्र हो गये थे। इसके बाद तुरन्त ही एक वानर सेना का जुलूस निकाला गया। यह भी मुख्य बाजार में होकर निकाला। बच्चे "लोक परिषद जिन्दाबाद" और 'महात्मागांधी की जय" के नारे लगा रहे थे। इन लोगों में से तीन बच्चों को पुलिस ने गिरफ्तार कर लिया परन्तु फिर उनको छोड़ दिया। 42

2 अप्रेल में एक और प्रबल आन्दोलन की व्यवस्था की गई जिसमें लोक परिषद् ने जागीरदारों की कार्यवाहियों के विरुद्ध सत्याग्रह करने का निश्चय किया। उसके कार्यकर्ताओं का कहना था कि जागीरदार लोग जर्मनी के नाजी बन गये हैं जो किसानों के लिये ही नहीं महाराजा के लिए भी अहितकर हैं। परन्तु सर डोनाल्ड फील्ड ने इस पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया। जब जुलूस शहर से निकल रहा था मौलाना नियासुद्दीन, भाई परमानन्द, श्री हुकुमराज मेहता और श्री वृद्धिचन्द जोशी को गिरफ्तार कर लिया गया। बावजूद जोर के दमन के आन्दोलन में किसी प्रकार की शिथिलता नहीं आई। 2 अप्रेल, 1940 को श्री मथुरादास माथुर को, जो मारवाड़ लोक परिषद् के प्रथम डिक्टेटर थे, 1932 को अध्यादेश के अधीन गिरफ्तार करके एक वर्ष के लिये परबतसर भेज दिया गया। श्री मथुरादास माथुर लगभग 10,000 व्यक्तियों का नेतृत्व कर रहे थे। इन्होंने आन्दोलन को धैर्य, उत्साह और अहिंसात्मक वृत्ति से संचालित किया था। पुलिस ने लाठी प्रहार किया जिसमें 30 से अधिक व्यक्ति आहत हुए। श्री माथुर के पांव को बड़ी गंभीर चोट आई। 10 अप्रेल को ऐसे ही जुलूस पर पुलिस ने फिर हमला बोला और प्रमुख सत्याग्रहियों को गिरफ्तार किया।

41- बस्ता 19 फाईल 19/24 पोलीटिकल और कोन्फीडेन्शल, 1940, अ. बी., फा. नं. 24/1 मारवाड़ लोक परिषद गैर कानूनी, 1940, अ. बी., फा. न. 43/1 लोक परिषद् गैर कानूनी, 1940, अ. बी.

42- फा. नं. 43/1-2-3 गिरफ्तार और कैद, 1940, अ. बी., नव जीवन, 20 मई, 1940

इस हमले में लगभग 100 आदमियों के चोटें आई। इसके बाद मारवाड़ छात्र संघ के प्रधान श्री तारकेश्वर प्रसाद शर्मा को भी गिरफ्तार कर लिया, परन्तु विशेष अदालत ने उसको 26 अप्रेल, 1940 को छोड़ दिया। तब लोगों ने मांग की कि इस क्रूरता की निष्पक्ष जांच की जाय और पुलिस के अत्याचारों को प्रकाश में लाया जाए। परन्तु सरकार ने कोई ध्यान नहीं दिया और वह बेरोकटोक मारपीट करती रही। प्रतिदिन यही कार्यवाही होती थी। जून 1940 में पं. जवाहरलाल नेहरू ने स्टेट पीपुल्स कान्फ्रेन्स के प्रधान की हैसियत से द्वारकानाथ कचरू को जोधपुर की राजनैतिक स्थिति की जांच कर रिपोर्ट करने को जोधपुर भेजा। उन्होंने बताया कि रियासत की हालत बहुत खराब है, यहां तक कि टाइप राइटर की भी रजिस्ट्री कराना पड़ता है। इसी तरह 5 जनवरी, सन् 1941 को मारवाड़ छात्र सम्मेलन किया जाने वाला था। उस पर भी प्रधानमंत्री ने रोक लगा दी। इन गिरफ्तार किये गये व्यक्तियों को अलग-अलग स्थानों व किलों मे कैद किया गया था – जैसे डीडवाना, जालौर, परबतसर, सिवाना, बाली आदि। श्री मथुरादास के बाद कन्हैयालाल मनिहार, इंदरमल जैन तथा बाबूलाल जो दूसरे, तीसरे और चौथे डिक्टेटर थे गिरफ्तार किये गये। आनन्दराज सुराना, श्री तुलसीदास राठी, भंवरलाल सर्राफा, जयकृष्ण मूंदडा छगनलाल पुरोहित आदि भी बन्दी बना लिये गये। श्रीसूरजप्रकाश पापा भी इस आन्दोलन के सक्रिय भागी थे।[43]

जब सरकार ने देखा कि सख्ती से आन्दोलन पर काबू नहीं पाया जा रहा है तो उसने लोक परिषद् के साथ जून 1940 में समझौता कर लिया। इसके अनुसार लोक परिषद् को मान्यता दे दी गई और राजनैतिक बन्दियों को कैद मुक्त कर दिया। जब ये राजनैतिक बन्दी जेल से छोड़े गये तो शहर में जुलूस के साथ उन्हें घर लाया गया और नागरिकों ने उनका भव्य स्वागत कर उनके उत्साह को बढ़ाया और उनके प्रति अपनी अपूर्व श्रद्धा प्रकट की। इसी तरह 8 जून, 1941 को म्युनिसिपल चुनाव में लोक-परिषद् बहुमत से विजयी हुई और श्री व्यास इसके प्रथम अध्यक्ष बने। श्रीमती सरोजनी नायडू ने लोक परिषद् की सफलता की प्रशंसा बड़े मार्मिक शब्दो में कर कार्यकर्ताओ का हौसला बढ़ाया।[44]

ये आन्दोलन जोधपुर नगर तक ही सीमित नहीं था। इसका प्रभाव गांवों में भी फैल गया। रायपुर ठिकाने के कृषकों ने अप्रेल, 1941 में जागीरदार के विरुद्ध आंदोलन किया जो मनमाना कर इनसे वसूल करता था और जनता पर अनेक प्रकार के दबाव डालकर करों की वसूली करता था इन अत्याचारों से तंग आकर वहां की जनता भाषणों तथा जुलूसों

43– बस्ता नं. 18 फा नं. 17/22, 1940, अ.बी.; कान्फीडेन्शल फाईल 43/1-5/1. 1940 अ.बी. हिन्दुस्तान टाइम्स, 31 मार्च 1940; वीर अर्जुन 31 मार्च 1940; वीर अर्जुन 1 अप्रेल 1940; हिन्दुस्तान टाईम्स 14 अप्रेल, 1940, उपरोक्त 20 अप्रेल, 1940; नेशनल हैराल्ड, अगस्त, 26, 1940.

44– फा.नं. 16, 1940, मारवाड़ लोक परिषद् पत्र व्यवहार, अ.बी; वीर अर्जुन, 20 जून, 1940, 15, 1941; बोम्बे क्रानिकल, मई 16,, 1940 डी. शोभाग माथुर, स्ट्रगल फार रिस्पोन्सिबल गवर्नमेंट इन मारवाड़, पृ. 77–91;

द्वारा अपनी मांगों को मनवाने में लग गयी। जोधपुर की सरकार एवं ठिकाने के जागीरदार को ये ढंग कतई पसन्द नहीं था। उनको दबाने के लिये 500 कृषक गिरफ्तार कर लिए गए और उन्हें दंडित किया गया। फिर भी आन्दोलन शान्त न हुआ। यह देख कर उन्हें छोड़ दिया गया, जिससे कुछ समय शान्ति स्थापित हो गई। ये शान्ति आगे के सत्याग्रह को और बलवान बनाने के लिये थी, न कि अपने कर्त्तव्य से हटने के लिए।[45]

इन दमनकारी करतूतों से लोक परिषद् अधिक उग्र होने लगी तो राज्य ने इसके कुछ सदस्यों का एडवाइसरी बोर्ड में लेने की तथा उन्हें कुछ अधिकार देने की बात की तो इसके सदस्यों ने उसे निरा दिखावा कह कर उसके प्रस्ताव को अस्वीकार कर लिया। अब तो परिषद् ने निर्धारित कर लिया कि जागीरदारों के अत्याचार के विरुद्ध तथा कृषकों के पक्ष में आन्दोलन की गति को तीव्र किया जाय। जब राज्य के प्रमुख दीवान, जो अंग्रेज था, उसके पास इस नाशीवाद की इतिश्री करने की मांग की ता उसने कोरा जवाब दे दिया तथा 5 जनवरी, 1941 को मारवाड़ छात्र सम्मेलन होने जा रहा था उस पर प्रतिबन्ध लगा दिया।[46]

जयपुर राज्य में जन जागृति का प्रथम चरण :

अंग्रेजों के साथ सन्धि होने के पश्चात् जयपुर में ब्रिटिश सत्ता के साथ विरोध की छुटपुट घटनाओं का होना प्रारम्भ हो गया था जिनका वर्णन पिछले अध्यायों में यथास्थान किया जा चुका है। इस विरोध का व्यवस्थित स्वरूप श्री अर्जुन लाल सेठी के द्वारा 1908 में स्थापित विद्यालय मे सामने आता है। तबसे जयपुर क्रांतिकारी गतिविधियों का केन्द्र बनता है और यहीं से जन जागृति का श्रीगणेश होता है। साथ ही यहां के कार्यकर्ता अपनी अपनी भावना के अनुसार समाज सुधार की संस्थाओं में भाग लेते हैं जिनसे जनहित सम्पादन होता रहता है। ऐसी संस्थाओं में सनातन धर्म मण्डल, समाज सुधारक मण्डल, जयपुर हितकारिणी सभा आदि मुख्य थीं। उदाहरणार्थ पं. हीरालाल शास्त्री की प्रेरणा से जयपुर हितकारिणी सभा स्थापित हुई जिसके अध्यक्ष बालचन्द्र शास्त्री और मन्त्री केसरलाल कटारिया थे। इसी प्रकार युवकों के लिए छात्रावास, छात्र मण्डल प्रयास परिषद आदि संस्थाएं बनी। इस संस्थाओं के माध्यम से शिक्षा का प्रचार होने लगा और सार्वजनिक सेवा भी होती रही। राष्ट्रीय भावना जगाने वाला साहित्य भी इन संस्थाओं में मंगवाया जाता था जिसे पढ़ कर युवा वर्ग में देश के प्रति श्रद्धा पैदा होती थी। इस दिशा में आर्य समाज का भी बड़ा योगदान था। इन प्रवृत्तियों में मुन्शी नानकराम जौहर, पंडित सूरजनारायण शर्मा, पं सूर्यनारायण आचार्य श्री शिव किशोर तिवाड़ी, श्री श्यामसुन्दर शर्मा, श्री नौरंगराय खेतान, आदि विशेषरूप से रुचि लेते थे।[47]

45– हिन्दुस्तान टाइम्मस, 5 अप्रेल, 1941; वीर अर्जुन 7 अप्रेल, 1941

46– फा. नं. 97, कानफी., किसानों की समस्या, 1941, अ.बी; प्रजा सेवक, 12 नवम्बर, 1941

47- सुमनेश जोशी, राजस्थान में स्वतन्त्रता संग्राम के सेनानी, पृ. 547–48.

इन विविध प्रवृत्तियों का प्रभाव जन मानस पर पड़ा और उसे अपने देश तथा संस्कृति पर नाज होने लगा। उस समय जयपुर में फारसी भाषा के इस्तेमाल का बोलबाला था। जो लोग इस भाषा को जानते थे उनका सरकारी नौकरियों में प्रवेश संभव था। इसी तरह लम्बे समय से रिजेन्सी की हकूमत रहने से अंग्रेजी का भी प्रचलन बढ़ने लगा। ये बात कुछ एक प्रबुद्धों को अखरने लगी और 1922 में हिन्दी को राजभाषा बनाने के लिए जयपुर में जोरदार आन्दोलन चला। इस आन्दोलन के मुख्य प्रवर्तक ठाकुर कल्याणसिंह, श्री श्याम-लाल वर्मा आदि थे। इनके प्रभाव से लोगों में हिन्दी के प्रति रुचि बढ़ी और उसके पठन-पाठन व लेखन प्रक्रियाओं को बढ़ावा मिला।[48]

भारत में गांधी युग के आरम्भ होते ही जयपुर में भी देश के प्रति श्रद्धा और अपने अधिकारों के लिए ममता की भावना जागृत हुई। अब लोगों को यह अखरने लगा कि उनके महाराजा, जो जनता से एकत्रित किया हुआ धन का उपभोग अपने लिए करते हैं और उसका उपयोग जनहित के लिए केवल आंशिक रूप से ही होने पाता है। अधिकारी वर्ग भी शोषण प्रक्रियाओं को अपने हित सम्पादन के लिए अपनाते हैं जिससे गरीब प्रजा पर करों का भार बढ़ता जाता है। व्यौपारी वर्ग मनमाने भाव बढ़ाते जाते हैं जिससे साधारण आवश्यकता की वस्तुएं जनता को उपलब्ध नहीं होतीं। सन् 1925-26 के दुष्काल ने जब असहाय प्रजा की कमर तोड़दी तो सरकार अपनी आय को बढ़ाने के लिए अनाज निकासी द्वारा राज-कोष को भरने में लगी रही। इस स्थिति में अनाज निकासी के मसले को लेकर शहर में हड़ताल हुई जिसके फलस्वरूप राज्य को निकासी की आज्ञा को वापस लेना पड़ा।[49]

इसी प्रकार नाबालिगी शासन के दौरान अंग्रेजों ने राज्य से बाहर के अधिकांश लोगों को नौकरियां दी, इस कारण स्थानीय मेधावी युवकों में बेरोजगारी बढ़ने लगी। राज्य में व्याप्त भ्रष्टाचार से भी जनता बहुत असन्तुष्ट थी। लोग किसी अवसर की तलाश में थे कि सितम्बर 1, 1927 को जयपुर राज्य में एक घटना घटी। उस दिन एक तांगे वाले और एक पुलिस के सिपाही के बीच झगड़ा हो गया। इस पर जनता ने पुलिस के खिलाफ विशाल प्रदर्शन किया। इस घटना की खबर कोतवाली पहुंची और शीघ्र ही वहां से 40-50 सिपाही और इन्सपेक्टर व सब इन्सपेक्टर घटनास्थल पर पहुंच गये। वहां पर उन्होंने निर्दोष लोगों पर लाठी चार्ज कर दिया। गिरफ्तार किये गये व्यक्तियों को कोतवाली ले जाया गया।[50]

48-दस्तूर कोमवार का हिन्दी में संकलन इसी काल में तोजी रेकार्ड से किया गया था।

49-तोजी रेकार्ड, वि.सं. 1982-84, अ.बी.

50-फाईल नं. 5 पं. हीरालाल शास्त्री-कलेक्शन, पेपर्स रिगार्डिंग स्ट्राइक इन जयपुर सिटी (1927-28) पेज नं. 1; हिन्दुस्तान टाइम्स 4 सितम्बर 1927, नेहरू मेमोरियल लाइब्रेरी, तीन मूर्ति, नई दिल्ली।

पुलिस के इस व्यवहार का बहुत विरोध हुआ, यह खबर आग के समान सारे शहर में फैल गई और आधे घन्टे के भीतर ही भीतर सारे शहर में हड़ताल हो गई । शहर में शीघ्र ही क्रोधित लोगों के झुण्ड के झुण्ड एकत्रित हो गये और सारे शहर में जुलूस निकाला गया । इन लोगों की मुख्य मांग थी कि दोषी पुलिस कर्मियों को दण्ड दिया जाय, नये टेक्स जो लगाये गये हैं बंद किये जायं, शासन का भ्रष्टाचार समाप्त किया जाय तथा नाबालिग महाराजा को मेयो कालेज से वापिस बुला लिया जावे जिससे कौंसिल को हटाया जा सके । यह भीड़ कौंसिल के आफिस में भी पहुंची तथा सारे अफसरों और अदालत के अधिकारियों से अनुरोध किया कि वे सब अपना काम बन्द करें ।[51]

कोतवाली पर आक्रमण :

इसी मध्य भीड़ का एक भाग कोतवाली पहुंचा और धीरे धीरे कोतवाली पर लगभग पांच हजार लोगों की भीड़ एकत्रित हो गई । भीड़ ने रास्ते में आई.जी. पुलिस, कौंसिल के प्रेसीडेन्ट अन्य अफसरों की कारें भी रोकी। धीरे-धीरे भीड़ का व्यवहार उग्र होता गया और वह यह मांग करने लगी कि दोषी पुलिस अधिकारियों को पदच्युत किया जावे । भीड़ ने कोतवाली पर पत्थर फैंकना शुरू कर दिया, इस पर पुलिस द्वारा लाठी चार्ज हुआ । यह क्रम देर तक चलता रहा । कुछ समय बाद कोतवाली पर मिलेट्री पुलिस आ गई और उसने भीड़ पर गोली चला दी, जिसके फलस्वरूप एक मुसलमान मारा गया तथा 37 लोग घायल हो गये । घायलों में पांच पुलिस कर्मी भी थे । जिस समय यह गोली कांड हुआ उस समय कोतवाली पर न तो कोई मजिस्ट्रेट था और न ही पुलिस का कोई उच्च अधिकारी उपस्थित था । गोलीकांड के बाद भी भीड़ डटी रही । लेकिन अचानक मूसलाधार वर्षा होने के कारण भीड़ छंट गई सारे शहर में उस दिन हथियार बन्द सिपाही गश्त लगाते रहे । जयपुर की महारानी ने कौंसिल के प्रेसीडेन्ट को सूचित किया कि वे तब तक अन्न एवं जल ग्रहण नहीं करेंगी जब तक नगर में शान्ति स्थापित नही हो जातीं । [52]

सरकार ने उसी दिन एक असाधारण गजट प्रकाशित करके एक जांच कमीशन की नियुक्ति की, जिसका कार्य सितम्बर, 1927 को जयपुर शहर में हुई गोलीकांड की जांच करना था । उसके सदस्य चीफ कोर्ट के जज. राय बहादुर नानकराम जोहरी और सेशन जज सैयद इफतखार हुसन थे । [53]

51- ए. जी. जी. राजपूताना का पत्र पोलिटिकल सेक्रेटरी को, 7 सितम्बर, 1927, फा.नं. 673-पी, 1927, रा. अ.

52- फाइल नं. 5 पं. हीरालाल शास्त्री कलेक्शन–पेपर्स रिगार्डिंग स्ट्राइक इन जयपुर सिटी (1928–29); हिन्दुस्तान टाईम्स 4 सितम्बर 1927, नेहरू मेमोरियल लाईब्रेरी, तीन मूर्ति, नई दिल्ली ।

53- फाईल नं. 5 द जयपुर गजट एक्स्ट्रा आर्डीनरी पब्लिश्ड बाय आर्थोरटी रजिस्टर नं. 93, नं. 4420, 2 सितम्बर, 1927; नोटेफिकेशन नं. 9870, नेहरू मेमोरियल लाईब्रेरी तीन मूर्ति, नई दिल्ली ।

जनता द्वारा प्रस्तुत मांगें:

2 सितम्बर तथा 4 सितम्बर को जयपुर शहर के बाहर एक सार्वजनिक सभा हुई जिसमें लगभग 20 हजार लोग उपस्थित थे। जनता की मांगें सरकार के समक्ष प्रस्तुत करने के लिये 30 व्यक्तियों की एक समिति बनाई गई, जिसमें 15 हिन्दू तथा 15 मुसलमान सदस्य थे। मांगों सम्बन्धी प्रस्ताव जनता के सामने रखे गये, जिसे जनता ने निर्विरोध पारित कर दिया जो सरकार के आश्वासन पर पांच दिन की हड़ताल समाप्त कर दी गई।

मुख्य मांगें:

1– दोषी पुलिस अधिकारियों को पदच्युत किया जावे।
2– जांच कमीशन में जनता द्वारा निर्वाचित दो सदस्य लिए जाएं।
3– स्टेट कौंसिल में भी जनता के दो निर्वाचित सदस्य लिए जाएं।
4– रियासत के बाहर के व्यक्तियों की नियुक्ति पर प्रतिबन्ध लगाया जावे।
5– नाबालगी शासन अर्थ नीति की जांच के लिए एक समिति बैठाई जाय।[54]

वायसराय को खुली चिट्ठी:

अगले वर्ष 3 अगस्त, 1928 को वायसराय के जयपुर आगमन पर जनता की ओर से उन्हें एक खुली चिट्ठी दी गई, इसमें लिखा गया था कि नाबालगी शासन के दौरान हर क्षेत्र में बेकारी बढ़ी है। लोग हीनता की भावना से ग्रस्त हैं। राज्य में न तो स्टेट बैंक है और न ही कृषि बैंक। कोपरेटिव सोसाईटी का तो सवाल ही नहीं उठता। प्राथमिक शिक्षा पर कोई पैसा खर्च नहीं किया जाता है। एक लम्बे समय से जयपुर राज्य की एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट भी प्रकाशित नहीं की गई। सार्वजनिक निर्माण विभाग और राजस्व विभाग के ठेके बाहर के लोगों को दिये जाते हैं। जो कि यहां के लोगों को मिलने चाहिये। चोरी, डकैती, हत्या आये दिन की बात हो गई है, तथा स्त्रियों–बच्चों व सम्मानित नागरिकों की रक्षा का कोई प्रबन्ध नहीं है। इसी के दौरान 5 अप्रेल, 1931 में मोतीलाल दिन मनाया गया जिसमें पुलिस ने पुनः दमनचक्र चलाया और खादी भंडार के कर्मी–गुलाबचंद चौधरी, कुंदनलाल, किशोरसिंह आदि को गिरफ्तार किया गया और उन्हें कारावास का दण्ड दिया गया।[55]

जयपुर में जनजागृति का दूसरा चरण और प्रजामण्डल की स्थापना:

सरकार की दमनकारी नीति का मुकाबला करने तथा जनता में राजनैतिक जागृति को बढ़ावा देने के लिए कुछ समाज सेवी व्यक्ति एक जन संगठन की आवश्यकता महसूस

54–रा.अ. ए.जी.जी., राजपूताना की चिट्ठी पोलिटिकल सेक्रेटरी को कोनफी. नं. 24 7 सितम्बर, 1927; हिन्दुस्तान टाइम्स, 7 सितम्बर, 1927; फा. नं. 5 पेपर रिगार्डिंग स्ट्राइक इन जयपुर सिटी 1927–28.

55–एन ओपन लेटर टू हिज एक्सीलेन्सी द वायसराय आफ इंडिया, पृ. 51–53, 3 अगस्त, 1928, त्यागभूमि, 6 व 8 मई, 1931.

करने लगे। अतः 1931 में जमनालाल बजाज, कपूरचन्द पाटनी आदि ने जयपुर प्रजा-मण्डल की स्थापना की। इस प्रारंभिक काल में चर्खा संघ के सहयोग से मण्डल ने खादी के प्रचार का काम संतोषजनक किया। इसमें श्री देशपाण्डे, कपूरचन्द पाटनी, केसरलाल कटारिया आदि ने अच्छी रुचि ली। सीकर, तोरावाटी, उदयपुरवाटी में चलने वाले कृषक आन्दोलन को संगठित करने और उनको सहयोग देने में भी मण्डल का हाथ था। 1930-31 में जयपुर के कई कार्यकर्ताओं ने जो मण्डल से सहानुभूति रखते थे नमक सत्याग्रह में भाग लिया जिनमें बंशीलाल लुहाड़िया, हनुमान शर्मा, डाक्टर रघुबर दयाल चतुर्वेदी; राधाकृष्ण बजाज, देवीनारायण शर्मा आदि मुख्य थे। श्री मदनलाल खेतान, ओमदत्त शास्त्री, हंसराज, श्री नेतराम शर्मा, रूपचन्द सोमानी, श्री विजय चन्द जैन, सोमदेव ग्रोवर, कपूरचन्द छाबड़ा आदि कई कार्यकर्ता जयपुर राज्य के देहाती इलाकों तथा अजमेर आगरा आदि स्थानों में जाकर समाज सेवा व आन्दोलन करते रहे। परन्तु समय दे सकने वाले कार्यकर्ताओं के अभाव में जयपुर प्रजामण्डल अधिक सक्रिय न हो सका।[56]

कुछ कार्यकर्ताओं ने जयपुर प्रजामंडल को पुनः संगठित करने की आवश्यकता को महसूस किया जिससे जन जागृति में नव-जीवन का संचार हो सके। इस संबंध में सेठ जमनालाल बजाज की प्रेरणा से पं. हीरालाल शास्त्री को वनस्थली से बुलाया गया और 1937 में उसको फिर से संगठित किया गया। मण्डल की कार्यकारिणी के अध्यक्ष श्री जमनालाल बजाज, उपाध्यक्ष श्री चिरंजीलाल मिश्रा, जनरल सेक्रेट्री श्री हीरालाल शास्त्री एवं संयुक्त मंत्री श्री कपूरचन्द पाटनी बने। वनस्थली के प्रायः सभी कार्यकर्त्ता यथा-सर्व श्री चन्द्रशेखर भट्ट, टीकाराम पालीवाल, कल्याण शर्मा, वीरेन्द्र चौहान, धीरेन्द्र सिंह भदौरिया, रामभजन दास, बदरीनारायण खूंटेटा, हनुमान शर्मा, बदरीनारायण खेरा, श्यामसुन्दर माथुर, किशन सिंह बारड, वेंकटेश पारीख, प्रजामण्डल के कार्य को लगन से करने लगे। प्रजामण्डल के काम में सर्व श्री लादूराम जोशी, टीकाराम पालीवाल, पूर्णचन्द जैन, रामकरण जोशी तथा कई सेवा भावी किसान कार्यकर्त्ताओं ने भी अपना पूरा सहयोग दिया।[57]

प्रजा मण्डल की प्रमुख विशेषताएं थी कि जयपुर राज्य में महाराजा जयपुर की छत्र-छाया में एक उत्तरदायी सरकार की स्थापना हो जिससे जनता के मौलिक अधिकारों को प्राप्त किया जा सके और राज्य का बहुमुखीय विकास हो सके मंडल का प्रमुख फर्ज यह भी निर्धारित किया गया कि वह शिष्टता से परन्तु प्रभाव पूर्ण शब्दों में सरकार को आगाह कर दे कि जयपुर रियासत के नागरिक राज्य की प्रतिक्रियावादी नीति से पूर्णरूपेण असन्तुष्ट है। विधान में प्रजामण्डल का मुख्य कार्यालय जयपुर में और उसकी शाखाएं जिला एवं तहसीलों आदि में स्थापित करने का प्रावधान रखा गया।[58]

56-पृथ्वीसिंह मेहता, हमारा राजस्थान, पृ. 410, सुमनेश जोशी, राजस्थान में स्वतन्त्रता संग्राम के सेनानी, पृ. 290, 552-636

57-सुमनेश जोशी। राजस्थान में स्वतन्त्रता संग्राम के सेनानी, पृ. 290

58-चिरंजीलाल मिश्रा के द्वारा जयपुर राज्य के आई.जी.पी. यंग को 7 मार्च 1937 को लिखा गया पत्र फा.नं. 4 भाग-21 पृ. 97-98, नेहरु मेमोरियल लाइब्रेरी तीन मूर्ति-नई दिल्ली, फाईल नं. 856 पृ.नं. 178-1821, अ.बी.

इसने प्रारंभ से ही राज्य को सजग कर दिया कि यदि सरकार समय के अनुकूल नहीं चलेगी तो उसके दूरगामी परिणाम अहित कर होंगे। जब इस प्रकार की चेतावनी बेअसर हुई तो मण्डल ने राज्य के लिए धारा सभा की स्थापना, बोलने व लिखने की स्वतन्त्रता, लाग-बाग को हटाने और अकाल ग्रस्त क्षेत्रों में लगान वसूली न किये जाने की मांगें रखीं। उस समय जयपुर के इंसपेक्टर जनरल आफ पुलिस एफ. एल. यंग थे। उनको यह भय हुआ कि कहीं प्रजामण्डल महाराजा जयपुर को हटाने का विचार तो नहीं कर रहा है। अतः उन्होंने 24 मार्च, 1937 को हीरालाल शास्त्री को इस सम्बन्ध में पत्र 59 लिखा कि राज्य सरकार प्रजामण्डल के इस अधिकार को मानने को तैयार नहीं हैं कि वह ऐसी संस्था हैं जो जनता का प्रतिनिधित्व करती है। यदि प्रजामण्डल अपनी समस्त शक्ति को सामाजिक कार्यों में लगावें तो उसकी इस प्रकार की कार्यवाही से उसको जनता के दुःखों, कष्टों या आवश्यकताओं का पता चल सकता है ऐसी सूरत में उसको यह आसान होगा कि वह विभिन्न राज्य अधिकारियों से मिलकर जनता के कष्टों का निवारण कर सकें।

यंग का विचार था कि प्रजामण्डल अपने प्रचारकों को नियंत्रण में रखने में असमर्थ है। विशेषकर किसान वर्ग में उसके प्रचारक किसानों को यह कह कर भड़काते हैं कि उन्हें भारी लगान देना पड़ता है, जो उन्हें नहीं देना चाहिए। कोई भी संस्था जो किसानों या ग्राम वासियों का प्रतिनिधित्व करने का प्रयत्न करती है और उनके तथा कथित दुखों या कष्टों का निवारण करने की भावना या आकांक्षा जागृत करती है. विशेष रूप से राजपूताने के अज्ञानी किसानों में, तो ऐसा वर्ग निश्चित रूप से आसानी के साथ नियंत्रण से बाहर हो जावेगा।

जिन सुधारों की बात प्रजामण्डल कर रहा है वे वे सुधार पहले से ही राज्य सरकार के विचाराधीन हैं और अगर राज्य सरकार ने उनको मान लिया तो प्रजामण्डल अनायास ही यह जताने का प्रयास करेगा कि जो भी सुधार हुए हैं वे सब उसके प्रयत्नों के फलस्वरूप हैं।

प्रजामण्डल के जनरल सेक्रेट्री हीरालाल शास्त्री ने यह स्पष्ट किया कि प्रजामण्डल का कार्य तो मात्र जनता की शिकायतों को दूर करने का है वह महाराजा जयपुर को

59— फाईल नं. 4 पार्ट 2 पृ. 95 नेहरू मेमोरियल लाइब्रेरी, तीन मूर्ति-नई दिल्ली, फा. नं. 4, पार्ट 2, मि. यंग द्वारा शास्त्री को पत्र, 24 मार्च, 1937, पत्र पृष्ठ 73-74, नेहरू मे. मो. लाई., वनस्थली समाचार-सम्पादक डा. रामेश्वर गुप्त 16 जनवरी 1975, पृ. 16, फाईल नं. 4 पार्ट 1, पेपर्स डीलिंग विथ द एक्टीविटिज आफ जयपुर राज्य प्रजामण्डल 1923-46, हीरालाल शास्त्री, नोट, 8 अप्रेल 1938, प्रत्यक्ष जीवन शास्त्र- श्री हीरालाल शास्त्री (1970) अध्याय 3 राजनीति (1936-1962) पृ. 66, जयपुर सरकार का विश्वासघात- सत्यदेव विद्यालंकार-सम्पादक हिन्दुस्तान नई दिल्ली पृ. 38-39.

हटाना नहीं चाहता, वरन् उनके अधीन एक उत्तरदायी सरकार की स्थापना करना चाहता है। उन्होंने 24 जुलाई, 1937 को यंग को एक पत्र लिखकर सूचित किया कि प्रजामण्डल के कार्य निम्नलिखित उद्देश्यों से प्रेरित हैं।[60]

1. सरकार और प्रजा में अच्छे सम्बन्ध हों।
2. लोगों को एसोसियेशन बनाने, लिखने और बोलने की स्वतन्त्रता हो।
3. लड़के और लड़कियों की शिक्षा के लिए अच्छे विद्यालय एवं स्कूल स्थापित हों।
4. किसी भी व्यक्ति की दवा की कमी के कारण मृत्यु न हो।
5. कृषि, उद्योग एवं व्यापार की उन्नति हो।

दिनांक 30-7-37 को जयपुर राज्य प्रजामण्डल की जनरल कमैटी की मीटिंग में निम्नलिखित प्रस्ताव अंग्रेजी में निर्विरोध पारित किया गया:—

हीरालाल शास्त्री को यह अधिकार दिया गया कि वे इस प्रस्ताव की भावना के अनुसार और मण्डल के प्रेसीडेन्ट की सलाह के अनुसार यंग से वार्ता जारी रखे।[61]

प्रजामण्डल का अधिवेशन :

इस समय तक जयपुर राज्य प्रजामण्डल ने शहरों में ही नहीं बल्कि कई कस्बों और गांवों में कई हजार सदस्य बनाने में सफलता प्राप्त करली थी और जयपुर शहर तथा राज्य की सभी निजामतों में मण्डल की शाखाओं का संगठन हो चुका था। इस प्रकार जब प्रजामण्डल का काम तेजी से बढ़ा तो सन् 1938 के प्रारंभ में यह तय हुआ कि जमनालाल बजाज को प्रथम प्रजामण्डल का अधिवेशन का सभापति बनाया जाए।[62] अतएव प्रजामण्डल का अधिवेशन प्रारम्भ होने से पहले श्री हीरालाल शास्त्री ने एतियातन यंग को एक पत्र[63] लिखकर सूचित किया कि सरकार को प्रजामण्डल के आगामी अधिवेशन में हस्तक्षेप

60— प्रत्यक्ष जीवन शास्त्र भाग 4 पत्र व्यवहार श्री एफ.एस. यंग. आई.जी. की ओर से पं. हीरालाल शास्त्री को 24 मार्च को लिखा गया पत्र पृ. 53-54; फाईल नं. 4 पार्ट 2 जयपुर राज्य प्रजामण्डल क्या चाहता है, इस बारे में मण्डल की ओर से श्री यंग को दिया गया लीफलेट 24 जुलाई, 1937, नेहरू मेमोरियल लाइब्रेरी तीन मूर्ति, नई दिल्ली।

61— प्रत्यक्ष जीवनशास्त्र, पत्र व्यवहार भाग 4, रेजूलेशन एट दी मिटिंग आफ द जनरल कमेटी आफ द-जयपुर राज्य प्रजा मण्डल पृ. 342-44.

62— फाईल नं. 4 पार्ट 5, आर्टीकल रिटन आन जयपुर राज्य प्रजामण्डल बाय हीरालाल शास्त्री 1937-45, दिनांक 29 नं. 1937 पृ 51-57, नेहरू मेमोरियल लाईब्रेरी तीन मूर्ति नई दिल्ली।

63— फाईल नं. 4 पार्ट 2, हीरालाल शास्त्री के द्वारा यंग को 18 मार्च, 1938 को लिखा गया पत्र पृ. 46, नेहरू मेमोरियल लाईब्रेरी तीन मूर्ति नई दिल्ली।

करने का कोई अधिकार नहीं है । हम शांति का वातावरण बनाये रखना चाहते हैं तथा एक वक्तव्य प्रकाशित करना चाहते है, जिससे सरकार और मण्डल के संबंधों पर प्रकाश डाला जा सके । उसी समय आई.जी यंग ने सुपरिन्टेण्डेन्ट सर्किल इन्सपेक्टर और स्टेशन हाउस ऑफिसर को पत्र लिखा, जिसमें उन्होंने प्रजामण्डल की गतिविधियों पर ध्यान रखने को कहा । निर्णय के अनुसार जयपुर राज्य प्रजामण्डल की ओर से एक पर्चा नगर में वितरित किया गया, जिसमें लिखा गया था कि जयपुर प्रजामण्डल का प्रथम अधिवेशन जमनालाल बजाज की अध्यक्षता में 8–9 मई, 1938 को होगा । पर्चे में जयपुर राज्य की जनता से सहयोग के लिये अपील की गई । दिनांक 1–4–38 को यह अपील सर्वश्री चिरंजीलाल मिश्र, सोहनलाल गोलेछा गोविन्दनारायण तिवाड़ी, चिरंजीलाल अग्रवाल, सुरजबक्ष घीसा, जहीर हुसैन सौदागर, हरिशचन्द्र शर्मा, रघुनाथ सहाय शर्मा कपूरचन्द पाटनी, हीरालाल शास्त्री, देवीशंकर तिवाड़ी, देवकीनन्दन जोशी, मुरलीधर शर्मा आदि के हस्ताक्षर से प्रसारित हुई । इस अपील पर शेखावाटी, सीकर तोरावाटी, आमेर, दौसा, हिंडोन, गगापुर, सवाई माधोपुर, मालपुरा और सांभर के प्रमुख कार्यकर्ताओं के भी हस्ताक्षर थे ।[64]

राज्य के अधिकारियों ने अधिवेशन के अवसर पर अध्यक्ष के जूलूस को नगर के भीतरी भागों से होकर निकलने की अनुमति नहीं दी । फिर भी जिस मार्ग से होकर यह जूलूस निकला हजारों की संख्या में स्त्री-पुरुषों ने उसमें भाग लिया । इस जयपुर के प्रथम प्रजामण्डल के अधिवेशन (8 मई, 1938) में 7–8 हजार व्यक्ति सम्मिलित हुये । उसमें उत्तरदायी शासन, नागरिक स्वतन्त्रता तथा प्रथा के अभियोग पर खुली चर्चा हुई और कई प्रस्ताव पास हुए । सीकर ठिकाने की स्थिति पर भी एक प्रस्ताव पारित हुआ । इस अवसर पर जमनालाल बजाज ने भाषण[65] देते हुए कहा,

---

64– फाइल नं. 4 पार्ट 2, नेहरू मेमोरियल लाईब्रेरी तीन मूर्ति, नई दिल्ली;
प्रत्यक्ष जीवन शास्त्र, हीरालाल शास्त्री, भाग 2, अध्याय 3, पृ. 67;
प्रत्यक्ष जीवन-शास्त्र पत्र व्यवहार कपूरचन्द पाटनी के द्वारा 22 फरवरी, 1938 को लिखा गया पत्र पृ 247–48;
मि यंग आई. जी. पी. द्वारा जयपुर स्टेट के सुपरिन्टेन्डेन्ट, सर्किल, इसपेक्टर स्टेशन हाऊस आफिसर को 27 फरवरी 1939, को लिखा गया पत्र फा नं 4 पार्ट 3 पृ. 20, हीरालाल शास्त्री पेपर्स नेहरू मेमोरियल लाइब्रेरी, नई दिल्ली;
फाईल नं 4 पार्ट 5 जयपुर राज्य प्रजामण्डल पर हीरालाल शास्त्री द्वारा लिखे लेख नेहरू मेमोरियल लाईब्रेरी तीन मूर्ति, नई दिल्ली;
फाईल नं. 4 पार्ट 2 हीरालाल शास्त्री द्वारा यंग को 18 मार्च 1938 को लिखा गया पत्र, नेहरू मेमोरियल लाईब्रेरी तीन मूर्ति, नई दिल्ली;
जयपुर राज्य प्रजा मण्डल का पहला वार्षिक अधिवेशन, जयपुर राज्य की जनता से सहयोग की अपील, हिन्दुस्तान टाईम्स प्रेस नई दिल्ली द्वारा मुद्रित, 9 मई, 1938;

65–जयपुर राज्य प्रजामण्डल-प्रथम वार्षिक अधिवेशन जयपुर 1938, सभापति जमनालाल बजाज का भाषण–हिन्दुस्तान टाईम्स प्रेस नई दिल्ली द्वारा मुद्रित । प्रकाशक मंत्री स्वागत समिति प्रथम वार्षिक अधिवेशन जयपुर राज्य प्रजामण्डल 9 मई, 1938

"मेरी समझ से प्रजामण्डल ने अपने काम की शुरुआत ठीक ढंग से नीति रखकर की है। राज्य का सहयोग न मिलने की अवस्था में भी अपने निश्चित कार्यक्रम को पूरा करने और अपने अन्तिम लक्ष्य को प्राप्त करना ही है। हमारा उद्देश्य उत्तरदायी शासन स्थापित करना, जनता को नागरिकता के अधिकार दिलाना और जयपुर राज्य की सर्वांगीण प्रगति करना है। बाज-बाज नरेशों को परम्परागत संस्कारों के कारण इन अधिकारों का प्रजा को देना अटपटा और अवांछनीय भले ही लगता है, परन्तु जमाने के तकाजे को सब अन्दर ही अन्दर मान रहे हैं।

उत्तरदायी शासन की जो मांग की जाती है उससे इधर कुछ राजा लोग यह समझ लेते हैं कि ऐसी मांग करने वाले उनके दुश्मन हैं। उधर देश में ऐसे विचार रखने वाले कार्यकर्त्ता भी हैं जो देशी राज्य के कुशासन को देखकर कहते हैं कि देशी राज्यों को मिटा ही देना चाहिये, ये प्रजा पर भार रूप रहे हैं और ऐसे ही रहेंगे। इनकी बदौलत ब्रिटिश साम्राज्यवाद की जड़ें मजबूत हो सकती हैं, इनका उपयोग जनता के शोषण में ही होगा।

'हमारी कांग्रेस ने देशी राज्यों के लोगों की इस मांग का समर्थन किया है कि वहां उत्तरदायी शासन हो और बोलने, लिखने तथा सभा संगठन करने का अधिकार मिले। यहां तक कि कांग्रेस ने अपने हरिपुरा अधिवेशन के प्रस्ताव में यह भी कह दिया है कि उसे संघ शासन की ऐसी कोई योजना मान्य नहीं होगी, जिसमें देशी रियासतों की जनता और ब्रिटिश राज्य की जनता के राजनैतिक और नागरिक अधिकार प्रायः समान न हों। इससे कांग्रेस के प्रति भी देशी नरेशों के मन में ऐसे भाव कहीं नहीं पाये जाते हैं कि कांग्रेस तो हमको मिटा देना चाहती है। कांग्रेस की यह कोशिश जरूर है कि वह देशी राज्यों की जनता और नरेश दोनों की सेवा करे, दोनों का हित चाहती है और इसलिए उसने इस बात की कोशिश की है कि देशी नरेशों और उनकी जनता के सम्बन्धों में आमूल सुधार और परिवर्तन हों। इसके लिए कांग्रेस की आकांक्षा यही रही है कि वह लोकमत को इतना जागृत कर दे जिससे उत्तरदायी शासन की उसकी मांग को कोई रोक न सके। इसके मानी यह हुए कि यहां के नरेश भले ही नरेश बने रहें मगर वे जो राजकाज करे वह जनता के महज नाम पर नहीं बल्कि दरअसल उसकी इच्छा, सलाह और स्वीकृति से करे। देशी नरेश अब तो उसी अवस्था में कायम रह सकते हैं जब वे लोगों के और जनता के ही बल पर रहना चाहें। उसके लिये उन्हें उनके और लाखों करोड़ों प्रजाजनों के मध्य में आज जो भयंकर अन्तर पड़ गया है, उसे बहुत कुछ मिटा देना होगा। नाममात्र के सुधारों से अब प्रजा को संतोष नहीं हो सकता, क्योंकि एक तो अब लोग जाग उठे हैं और दूसरे उनके हाथ अहिंसा का हथियार लग गया है। इसके बल और प्रभाव का उन्हें अनुभव हो गया है, वे समझ गये हैं कि निहत्थे के लिये और जो हिंसा का अवलम्बन नहीं करना चाहते, उनके लिये यह अमोघ अस्त्र है। ऐसी दशा में तो यह आशा करता हूं कि देशी नरेश उन बहुतेरे लोगों की सहानुभूति और सद्भावना अपनी तरफ से न हटने देंगे।

उन्होंने राजा महाराजाओं से भी निवेदन किया कि वे दिल से सचमुच ही राजा महाराजा की तरह ऊंचे और महान बने अपनी प्रजा की मांगों पर विचार करें। साहस के साथ और बिना किसी बात को दिल में रखे शासन सुधार की दिशा में

आगे बढ़ें और उन्हें स्वराज्य (सेल्फ गवर्नमेन्ट) वास्तविक रूप में दें न कि उसकी छाया उत्तरदायी शासन व नागरिक अधिकारों की प्राप्ति का बीड़ा जयपुर प्रजामण्डल ने उठाया है।

उन्होंने कार्यकर्त्ताओं को ईमानदारी और सच्चाई से कार्य करने की प्रेरणा दी और देशी राज्यों की जनता से अपील की कि वह पूरी ताकत से संघ शासन का विरोध करें। उन्होंने जयपुर में लागू किये गये पब्लिक सोसाइटी एक्ट का विरोध करते हुए कहा कि एक ओर जनता चाहती हैं कि उसे बोलने, लिखने और संगठन की पूरी आजादी मिले, जो अधिकार उसे अभी तक नहीं प्राप्त हैं, उन्हें लेने की तैयारी कर रही है, वहीं जयपुर राज्य में उलटा उनका यह अधिकार भी छीनने की कोशिश की जा रही है। यह जनता की हार्दिक इच्छा और उनके जन्म सिद्ध अधिकार व समय की मांग के बिल्कुल प्रतिकूल है प्रजामण्डल को उचित है कि उसके लिये आवश्यक आन्दोलन करें।"

उन्होंने आगे कहा,[66] "एक बात जो जयपुर की जनता को बहुत अखर रही है, वह है श्रीमान् महाराजा साहब का जनता के सम्पर्क में न आना। इस युग में जो राजा या अधिकारी जनता की उपेक्षा करता है उसे अपने नजदीक लाने की या खुद उनके नजदीक जाने की कोशिश नहीं करता उसका जनता की प्रतिष्ठा या आदर का पात्र बना रहना कठिन हो जाता है। यह एक आम शिकायत है कि जयपुर राज्य का शासक अंग्रेज परस्त है।

जयपुर राज्य से कुछ लोग भिन्न भिन्न कारणों से भिन्न भिन्न समय पर निर्वासित किये गये हैं। खास खास हालातों में किसी को भी निर्वासित करने का अधिकार राजा के हाथ में रह सकता है। मगर उसका उपयोग उसी हालत में होना चाहिए जब समाज में अशान्ति और दुराचार फैलाने वाले आततायी गुण्डों से तुरन्त ही कोई भयंकर उत्पात हो जाने की संभावना हो और अदालत में मुकदमा चलाने जितना समय न हो। मगर यहां तो इस अधिकार का प्रयोग लोगों पर होता है जो राज काज पर टीका करते हैं या अधिकारियों से मतभेद रखते हों। अतएव इन मर्यादाओं का ख्याल रखे बिना जो निर्वाचन जयपुर राज्य से हुए हैं उनको मैं अनुचित समझता हूं। जयपुर दरबार को चाहिये कि वह निर्वासन आज्ञाओं को तुरन्त वापिस ले ले।

इस अवसर पर 3-4 हजार महिलाओं ने भाग लिया तथा वनस्थली की लड़कियों ने भी भाग लिया।[66]

इस प्रकार प्रजामण्डल का अधिवेशन धूमधाम और अभूतपूर्व सफलता के साथ सम्पन्न हुआ। इसके साथ जयपुर रियासत के इतिहास में एक नए युग का सूत्रपात हुआ।

66- प्रत्यक्ष जीवन शास्त्र-हीरालाल शास्त्री- वनस्थली विद्यापीठ, पृ. 559

रियासत में प्रथम बार स्वतन्त्र वातावरण का अनुभव किया गया। इससे राज्य भर में प्रजामण्डल का दबदबा हो गया।[67]

राज्य सरकार द्वारा दमन नीति का अनुसरण :

जयपुर प्रजामण्डल की प्रवृत्तियां जयपुर रियासत के अधिकारियों की आंखों में बुरी तरह खटकने लगी। उस समय जयपुर के प्रधानमंत्री सर बीचम सेन्ट जान थे। प्रजामण्डल की गतिविधियों से डरकर राज्य सरकार ने दमन नीति अपनाई। दमनकारी कानूनों, विज्ञप्तियों एवम् आज्ञाओं की भरमार हो गई। सबसे पहले राज्य ने 30 मई, 1938 को असाधारण गजट प्रकाशित किया। जिसमें प्रकाशित एक्ट के अनुसार सरकार से रजिस्ट्री कराए बिना कोई संस्था कार्यवाही नहीं कर सकती थी। इस कानून के अनुसार प्रजामण्डल पर एक प्रकार से प्रतिबंध लग गया।[68]

प्रजामण्डल के मंत्री की विज्ञप्ति :

जयपुर राज्य प्रजामण्डल के जनरल सेक्रेट्री ने एक विज्ञप्ति प्रसारित की जिसमें लिखा गया था कि 30 मार्च, 1938 को जयपुर गजट में प्रकाशित कानून सारे शहर में चर्चा का विषय बना हुआ है, समाचार-पत्रों का लिखना है कि इसका एकमात्र उद्देश्य जयपुर प्रजामण्डल को दबाना है। प्रजामण्डल इस कानून का विरोध करेगा। राज्य प्रबुद्ध और अधिकांश लोगों की आवाज को दबाना चाहता है। इस बारे में प्रजामण्डल के प्रतिनिधि और सरकार के बीच में बातचीत हो चुकी है। मण्डल सरकार से यह आश्वासन चाहता है कि यह कानून मण्डल का अहित और विरोध नहीं करेगा। मण्डल के वैधानिक मामलों और आने वाले अधिवेशनों में कोई हस्तक्षेप नहीं करेगा। मण्डल तो केवल लोगों के सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक स्तर को ऊंचा उठाना चाहता है। प्रजामण्डल की मुख्य मांग यह थी कि एक विधान सभा की तत्काल स्थापना की जाए, बिना पूर्व सूचना के नागरिकों को एकत्रित होने का अधिकार हो, प्रेस को स्वतंत्रता दी जाए, स्थानीय नागरिकों की सुविधा के लिए एक रोजगार विभाग की स्थापना की जाए, लाग बाग अवैध घोषित की जाए, और अकाल प्रभावित क्षेत्रों में भू-राजस्व की वसूली स्थगित कर दी जाए। परन्तु राज्य ने इस ओर कोई ध्यान नहीं दिया तथा दमनकारी नीति का सहारा लिया।[69]

67– वनस्थली का वानप्रस्थी–डा. मदनगोपाल शर्मा पृ. 11

68– फाईल कोनफिडियेंशिल, 846,24 बी. जयपुर राज्य प्रजामण्डल 1929–30; द जयपुर गजट एक्ट ओडनरी वोल्यूम बी.सी. 3-3, मार्च 1938; 4687, होम डिपार्टमेन्ट नोटिफिकेशन, 29 मार्च 1938, अ.बी.

69– 20 अक्टूबर, 1938 को श्री हीरालाल शास्त्री के द्वारा जमनालाल बजाज को लिखा गया पत्र। पत्र-व्यवहार नई दिल्ली।

प्रजामण्डल के प्रस्ताव :

13 नवम्बर, 1938 को प्रजामण्डल की एक जनरल कमेटी की मीटिंग हुई उसमें राजनैतिक सुधार सम्बन्धित निम्नलिखित प्रस्ताव पारित हुए ।[70]

1– सरकार जनता के साथ सहयोग करे ।
2– लिखने और बोलने की स्वतंत्रता हो ।
3– कृषि सम्बन्धित सुधार शीघ्र लागू किये जाएं ।
4– नगरपालिका का चुनाव हो ।
5– स्वास्थ्य सम्बन्धित सुविधाएं प्राप्त हों ।
6– बच्चों की प्राथमिक शिक्षा के लिए और स्कूल खोले जाएं ।
7– नुक्ता, विवाह आदि पर किये जाने वाले खर्चे कानून द्वारा कम कराये जाएं ।

प्रेस एक्ट :

राज्य सरकार ने प्रेस एक्ट बनाकर साइक्लोस्टाईल तक रखने के लिए भी राज्य की पूर्व अनुमति प्राप्त करना अनिवार्य कर दिया । कर्मचारियों को नियमों के अन्तर्गत आदेश दिया गया कि वे अपने आश्रित व्यक्तियों को राजनैतिक प्रवृत्तियों में भाग लेने से रोकें । जुलूसों पर भी प्रतिबंध लगा दिया गया । लागतों को अदा न करने के लिए उकसाने को गैर कानूनी करार दिया गया ।[71]

18 जनवरी, 1939 को स्टेट काउन्सिल जयपुर द्वारा पारित जयपुर लोक समितियों का अधिनियम 1939, जयपुर राज्य के असाधारण गजट में प्रकाशित किया गया ।[72]

जमनालाल बजाज ने 10 अक्टूबर, 1939 को वर्धा से महाराजा जयपुर को एक तार भेजा जिसमें उन्होंने इस विषय पर महाराजा और उनके बीच हुई वार्ता का उल्लेख करते हुए प्रस्ताव किया कि जैसा कि तय हो चुका है, लोक समितियों का संशोधित अधिनियम शीघ्र प्रकाशित किया जाए ताकि किसी प्रकार की गलत धारणा न रहे । इस तार को 16 नवम्बर, 1939 को उचित कार्यवाही हेतु प्रधानमंत्री जयपुर राज्य को प्रेषित कर दिया गया । 6,8 दिसम्बर 1939 को लोक समितियों सम्बन्धी कानून पर स्टेट काउन्सिल की मीटिंग

70–फाईल नं. 4 पार्ट 2, 13 नवम्बर 1938 को जयपुर प्रजा मण्डल की जनरल कमेटी की मीटिंग में पारित प्रस्ताव, पृ. 68, नेहरू मेमोरियल लाइब्रेरी तीन मूर्ति नई दिल्ली ।

71–15 दिसम्बर 1938 को स्टेट कौंसिल द्वारा जयपुर गजट में प्रकाशित विज्ञप्ति ।

72–अ.बी.फाईल कोन्फिडेंशल 846, 24 बी. जयपुर राज्य प्रजामण्डल 1939-40 रजिस्ट्रेशन नं. 98; द जयपुर गजट एक्स्ट्रा ओडनरी वोल्यूम 10 जनवरी 1939 नं. 4012, कौंसिल आफ स्टेट जयपुर नोटिफिकेशन नं. 74 पी.एम.ओ. जयपुर सोसाइटी एक्ट 1939

हुई। इस कानून के संशोधन पर दिनांक 6 दिसम्बर, 1939 तथा 8 दिसम्बर, 1939 को विचार किया गया और यह निश्चित किया गया कि प्रजामंडल की अवान्छनीय गतिविधियों को ध्यान में रखते हुए उसे लोक समितियों के पंजीयन के बारे में आवश्यक सुरक्षात्मक प्रावधानों से छूट देना घातक होगा।[73]

प्रजामण्डल संघर्ष की ओर :

जिन दिनों राज्य सरकार प्रजामण्डल की गतिविधियों पर विभिन्न कानूनों, विज्ञप्तियों एवं आदेशों द्वारा नियंत्रण करने में संलग्न थी, उन्हीं दिनों सन् 1939 में जयपुर राज्य के कई भागों में अकाल की भयंकर स्थिति उत्पन्न हो गई थी। ऐसी परिस्थिति में प्रजामण्डल ने अकाल पीड़ितों की सहायता के लिये योजनाबद्ध तरीके से काम करना प्रारम्भ किया। अकाल पीड़ितों की सहायता के लिये प्रजामण्डल ने समितियां बनाई, जो मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटी की देखरेख में कार्यरत हुई। गायों के लिए सस्ती दर पर घास की बिक्री के केन्द्र खोले गये तथा कुए आदि खोदे गए। प्रजामण्डल की योजना के अन्तर्गत अकाल पीड़ितों के लिए उद्योग धन्धे खोलकर उनकी तकलीफ दूर करना भी शामिल था। रिलीफ सोसाइटी ने इस उप समिति को 20 हजार रुपये खर्च करने का अधिकार दिया था, तथा उप समिति स्वयं भी चन्दा एकत्रित कर रही थी। घास की आवश्यक व्यवस्था की गई। किन्तु राज्य के अधिकारी प्रजामण्डल के अकाल सहायता कार्य में रुकावटें डाल रहे थे। प्रजामण्डल ऐसे निर्दोष जन हितकारी कार्यों से अपने आप को हटाने को तैयार नहीं था। इसी समय गजट एक्स्ट्रा आर्डिनरी के निकलने से लोगों में एक भय फैल गया कि अगर वे अकाल पीड़ित क्षेत्र में काम करेंगे तो उन पर किसानों को लगान न देने के लिए भड़काने का अपराध लगाया जा सकता है। फिर भी हीरालाल शास्त्री, पं देवी शंकर जी तिवारी और उनके सहयोगियों ने लोगों से अनुरोध किया कि वे अधिक से अधिक संख्या में प्रजामण्डल के सदस्य बनें और अकाल राहत कार्य में लग जाय।[74]

सत्याग्रह आन्दोलन :

जब जयपुर प्रजामण्डल के अध्यक्ष जमनालाल बजाज प्रजामण्डल की ओर से जयपुर रियासत में अकाल पीड़ितों के लिए सहायता कार्य को संगठित रूप प्रदान करने के लिए आ रहे थे और 29 दिसम्बर, 1938 को जब वे जयपुर रियासत की सीमा में प्रवेश करने लगे तो उन्हें रोक दिया गया तथा यह आदेश दिया गया कि वे बिना आज्ञा रियासत में न आवें। जमनालाल बजाज पर लगाई गई यह निषेधाज्ञा सवाई माधोपुर स्टेशन पर तामील करवाई गई जहां से जयपुर स्टेट रेलवे प्रारंभ होती थी। इस पर जमनालाल

73–फाईल कोन्फिडेन्शल 846, 24 बी. जयपुर राज्य प्रजामण्डल 1939–40; जमनालाल बजाज के द्वारा जयपुर हिजहाईनेस को 10 अक्टूबर 1939 को भेजा गया तार अ. बी.; फाईल कान्फिडेंशल 846, 24 बी. जयपुर राज्य प्रजामण्डल 1939–40, दिनांक 8 दिसम्बर 1939 को हुई काउन्सिल मीटिंग को कार्यवाही।

74– फाइल नं. 4 पार्ट 4, 11 नवम्बर 1938, नेहरू मेमोरियल लाईब्रेरी नई दिल्ली जयपुर सरकार का विश्वासघात, सत्यदेव विद्यालंकार पृ. 34।

बजाज ने घोषणा कि कि वे पहली फरवरी, 1939 को राज्य के इस आदेश का उल्लंघन करते हुए सत्याग्रह करेंगे। इससे पूर्व जमनालाल बजाज महात्मागांधी से परामर्श करके ही जयपुर के लिए रवाना हुए थे। उस समय गांधी जी ने उन्हें सलाह दी थी कि यदि उनके विरुद्ध निशेधाज्ञा जारी की जाए तो उसकी उसी समय अवहेलना न की जाए। तथा रियासत के अधिकारियों को उस पर पुनर्विचार करने का अवसर दिया जाए। अतः बजाज सवाई माधोपुर से दिल्ली लौट गये। हीरालाल शास्त्री तथा हरीभाऊ उपाध्याय उनसे मिलने दिल्ली गये। वहां से सभी सत्याग्रही गांधीजी का आशीर्वाद लेने बारडोली पहुंचे और 3 जनवरी, 1939 को गांधी जी से मिले।[75]

स्थिति इतनी अधिक विस्फोटक बन गई कि गांधी जी ने जयपुर काउन्सिल के प्रेसिडेन्ट को पत्र लिखा कि यदि जयपुर के अधिकारियों ने अपना दृष्टिकोण नहीं बदला तो कांग्रेस के सम्मुख कड़ा कदम उठाने के अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं रह जायेगा।[76] वास्तव में सविनय अवज्ञा आन्दोलन शुरू होने के पश्चात जयपुर के प्रधानमंत्री सर बींचम सेट जोन का पूर्ण तानाशाही रवैया बन चुका था। प्रजामण्डल की गतिविधियों पर अपने विचार प्रकट करते हुए सर बींचम जान ने कहा था कि, "राज्य किसी भी मण्डल या संस्था का यह अधिकार स्वीकार नहीं कर सकता कि वह जनता की कठिनाइयों का प्रतिनिधित्व करने वाली संस्था है। भारतीय राज्यों में अभी ऐसा करने का समय नहीं आया है।[77] जमनालाल बजाज ने भी जयपुर स्टेट काउन्सिल के प्रेसिडेन्ट के नाम 7 जनवरी, 1939 के एक पत्र[78] लिखा जिसमें निषेधाज्ञा को अनुचित बताते हुए उस पर फिर से विचार करने और मण्डल पर लगे प्रतिबन्धों को हटाने का अनुरोध किया गया था।[79] उन्होंने यह भी लिखा कि यदि 31 जनवरी, 1939 तक उनकी यह प्रार्थना स्वीकृत नहीं हुई तो वे इस निषेधाज्ञा को तोड़कर जयपुर रियासत में प्रवेश करेंगे। इस पत्र का मसविदा स्वयं गांधी जी ने तैयार किया था।[80]

75– प्रत्यक्ष जीवन शास्त्र–हीरालाल शास्त्री अध्याय 3, पृ. 67, वनस्थली का वानप्रस्थी डा. मदनगोपाल शर्मा, पृ. 39, वनस्थली समाचार-डॉ. रामेश्वर गुप्त–गुरुवार 16 जनवरी, 1945, वर्ष 8 अंक 155–56, पृ. 18, वनस्थली विद्यापीठ।

76– महात्मा गांधी का प्रेस को दिया वक्तव्य द हिन्दुस्तान टाईम्स दिनांक 16 जनवरी, 1939.

77– द हिन्दुस्तान टाइम्स 27 जनवरी, 1939.

78– जमनालाल बजाज के द्वारा जयपुर स्टेट कौंसिल के प्रेसिडेन्ट के नाम 7 जनवरी, 1939 का लिखा गया पत्र (नेहरू मेमोरियल)

79– फाईल नं. 4 पार्ट, जमनालाल बजाज द्वारा आई. जी. को 7 जनवरी, 1939 को लिखा गया पत्र पृ. 17 नेहरू मेमोरियल लाइब्रेरी तीन मूर्ति, नई दिल्ली।

80– वनस्थली का वानप्रस्थी डा. मदनगोपाल शर्मा पृ. 39.

जयपुर के अधिकारियों ने जमनालाल बजाज के पत्र का लगभग एक माह व्यतीत हो जाने पर भी कोई जवाब नहीं दिया। जयपुर गजट के विशेष संस्करण द्वारा प्रजामण्डल को एक संस्था के रूप में गैर कानूनी घोषित कर दिया गया। ऐसी परिस्थिति में जमनालाल बजाज के पास निषेधाज्ञा को तोड़ने के अलावा और कोई विकल्प नहीं रह गया था।[81]

अतएव जमनालाल बजाज के नेतृत्व में 1 फरवरी, 1939 को सत्याग्रह शुरु करने का वर्किंग कमेटी ने निर्णय लिया और उसके सदस्यों ने जनता से यह अपील की कि जनता सत्य और अहिंसा के आधार पर अपना आंदोलन चलावे। उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि प्रजामण्डल के सत्याग्रह का उद्देश्य उत्तरदायी सरकार की स्थापना करना तथा नागरिक स्वतंत्रता प्राप्त करना है। जब खेजड़े वाले रास्ते के शास्त्री भवन में रात के समय बैठक हो रही थी कि प्रजा मण्डल की वर्किंग कमेटी के सदस्यों–हरीशचन्द्र शर्मा, चिरंजीलाल अग्रवाल, कपूरचन्द पाटनी, हंस डी. राय और हीरालाल शास्त्री को गिरफ्तार कर लिया गया। इन सभी सदस्यों को मोहनपुर गांव के एक मकान में ले जाकर बन्द कर दिया गया।[82]

प्रजामण्डल के प्रमुख नेताओं की गिरफ्तारी के पश्चात् जमनालाल बजाज ने अध्यक्ष की हैसियत से प्रजामण्डल के संविधान को स्थगित कर देने की घोषणा की और जयपुर की जनता को यह अनुमति दे दी कि उनकी गिरफ्तारी के बाद जनता महाराजा की अधीनता में जनता सरकार कायम करने तथा भाषण, लेखन, संगठन आदि नागरिक स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए सविनय अवज्ञा आंदोलन प्रारम्भ कर दें। साथ-साथ उन्होंने जनता से यह भी अपील की कि वे सत्य और अहिंसा के आधार पर अपना-अपना आन्दोलन चलावें। उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि प्रजामण्डल के सत्याग्रह का उद्देश्य उत्तरदायी सरकार की स्थापना करना तथा नागरिक स्वतंत्रता प्राप्त करना है जमनालाल बजाज ने अपनी अनुपस्थिति में काम करने के लिए 5 सदस्यों की एक समिति बनाई और यह निर्देश भी दिया कि समिति सविनय अवज्ञा आन्दोलन के बारे में जब भी आवश्यक हो गांधी जी से राय लें तथा उसके अनुसार कार्य करें इस पर जयपुर राज्य ने 18 जनवरी, 1939 को सरकारी गजट में इस आशय का कानून प्रकाशित किया गया कि राज्य में कोई भी संगठन बिना रजिस्टर्ड हुए कार्य करेगा तो कठोर दण्ड का भागी होगा। यह कानून उन सभी संगठनों को भी समाप्त करने के लिए पर्याप्त था जिनका राजनीति से कोई सम्बन्ध नहीं था और जो मानवीय और रचनात्मक प्रवत्तियों में संलग्न थे। वास्तविकता तो यह थी कि जयपुर राज्य प्रजामण्डल की शान्तिपूर्ण और वैधानिक गतिविधियों को राज्य किसी तरह सहन नहीं करना चाहता था। वह यह भी नहीं चाहता था कि प्रजामण्डल का प्रभाव और शक्ति बढ़े क्योंकि उसको भय था कि वह उसकी मध्य युगीन सत्ता और अधिकारों के लिए बड़ा भारी और खतरनाक सिद्ध होगा।[83]

81–जयपुर गजट, द चीफ सैक्रेटरी जयपुर स्टेट 30 मार्च, 1938

82–के.एस. सक्सेना–द पोलिटिकल मूवमेंट एण्ड अवेकनिंग इन राज. पृ. 198
प्रत्यक्ष जीवन शास्त्र हीरालाल शास्त्री अध्याय 31 पृ. 67

83–कोन्फिडेन्शल, 846–24, बी, जयपुर गजट एक्सट्रा आर्डिनरी, 18 जनवरी 1939 नं. 4842 ग्र.बी.

इधर प्रजामण्डल ने सत्याग्रह के लिए पूरी तैयारी करली थी। सत्याग्रहियों की सूची में उस समय तक लगभग दो हजार नाम लिखे जा चुके थे जिनमें महिलाऐं भी काफी संख्या मे सम्मिलित होने के लिए तैयार थीं। सत्याग्रह के सचालन के लिए योग्य एवं अनुभवी कार्यकर्ताओं की अच्छी व्यवस्था की गई थी।

जयपुर रियासत के प्रधानमन्त्री सर बीचम सेन्ट जान द्वारा जनता के अहिंसात्मक आन्दोलन को हिंसा से कुचलने की धमकी को महात्मागांधी ने बहुत गम्भीर समझा। उन्होंने अपनी टिप्पणी में लिखा—

"कांग्रेस ताकत न होते हुए भी इन्तजार करती रहे ओर चुपचाप देखा करे तथा जयपुर की प्रजा को मानसिक तथा नैतिक रूप से मरने दे। खासकर जब कि एक प्राकृतिक अधिकार पर लगाई गई ऐसी पाबन्दी के पीछे ब्रिटिश साम्राज्य का पंजा हो। ऐसा कांग्रेस के लिए संभव नहीं। जयपुर के प्रधानमन्त्री अगर गोरी सत्ता के बल पर यह सब कर रहा हो तो कम से कम उसको इस पद से हटा ही देना चाहिए"[84]

अन्त में जमनालाल बजाज 1 फरवरी की संध्या को जयपुर पहुंचे। रास्ते में जगह-पर उनका भव्य स्वागत हुआ। जवाहरलाल नेहरू, डा. राजेन्द्रप्रसाद, आदि नेताओं ने उनको बधाई के संदेश भेजे। स्टेशन पर 3-4 हजार लोगों की भीड़ उनके स्वागत के लिए उपस्थित थी। उन्होंने उपस्थित जनता को एक संक्षिप्त भाषण दिया, जिसमें उन्होंने बताया कि उनका संघर्ष महाराजा से नहीं बल्कि गोरे दीवान की गोराशाही से है। तत्काल अधिकारियों ने उन्हें गिरफ्तार करके कई सौ मील घूमाने के पश्चात मथुरा ले जाकर छोड़ दिया, जहां से वे आगरा चले गये। जयपुर प्रजामण्डल को गैर कानूनी घोषित कर देने के कारण उसका मुख्य कार्यालय आगरा में खोल दिया गया।[85]

जमनालाल बजाज 4 फरवरी को आगरा से सीकर के लिए पुनः रवाना हुए। रवाना होने से पूर्व उन्होंने कहा था कि इस बार बिना शारीरिक ताकत का प्रयोग किए जयपुर के अधिकारी उन्हें जयपुर से बाहर नही निकाल सकेंगे। 6 फरवरी को प्रातः उनकी गाड़ी जयपुर पहुंची। आई.जी.पी. सुपरिन्टेन्डेन्ट पुलिस तथा अन्य कर्मचारी वहां मौजूद थे। स्टेशन के बाहर मोटरें और लोरियां भी तैयार थीं। पर सेठजी को तो वहां उतरना ही नहीं था। इसलिए उन्हें निराश होकर लौट जाना पड़ा। सुपरिन्टेन्डेन्ट पुलिस अपनी एक टुकड़ी के साथ उसी गाड़ी से उनके साथ रवाना हो गये। रींगस में जमनालाल बजाज को उतार लिया गया। इससे पहले फुलेरा स्टेशन पर जमनालाल बजाज ने 200 ग्रामीणों के सम्मुख भाषण दिया। रींगस से जमनालाल को कार द्वारा अजमेर रोड़ पर जयपुर से 50 मील दूर छापरवाड़ा डाक बंगले मे ले जाया गया। 16 फरवरी को प्रातः 1 बजे इन्सपेक्टर जनरल आफ पुलिस मिस्टर यंग ने उनसे चलने के लिए कहा पर वह यह विश्वास न दिला सका कि उन्हें जयपुर में ही रखा जाएगा। इसलिए सेठजी जाने को तैयार न हुए

84-हिन्दुस्तान टाइम्स, 26 जनवरी, 1939.

85-उपाध्याय और जोशी, राजस्थान के ज्योति स्तंभ पृ. 225

अतः उन्हें जबर्दस्ती उठाकर मोटर में पटक दिया गया। इससे उनके चोट भी आई। उनकी कार दिल्ली की सड़क पर होती हुई अलवर पहुंची। लेकिन जब उन्होंने अलवर रियासत में उतरने से इंकार कर दिया तो उन्हें वापिस बैराठ के निकट मोरटी के डाक बंगले में ले जाकर रखा गया। पुनः संध्या को जबरदस्ती उन्हें कार में बिठाकर रातभर की यात्रा के बाद भरतपुर की सीमा में उतार दिया गया। उतारते समय जबरदस्ती करने से उनके चोटें ग्राईं। उनके कपड़े फट गये और वे खून से सन गये। यहां से पैदल चलकर वे समीप के स्टेशन पर पहुंचे जहां से वे आगरा चले गये। इस प्रकार जयपुर के अधिकारियों ने जमनालाल बजाज के साथ गिरफ्तारी और निर्वासन का पैशाचिक नाटक खेला।[86]

किन्तु जमनालाल बजाज ने चिरंजीलाल मिश्र के साथ पुनः फरवरी में बैराठ के रास्ते मोटर से जयपुर राज्य में प्रवेश किया। गांधी जी ने उन्हें बिना नोटिस दिये प्रवेश करने की अनुमति दे दी थी। घनश्यामदास बिड़ला चाहते थे कि प्रवेश करने में जल्दी न की जाए, किन्तु जमनालाल बजाज रुकना नहीं चाहते थे। इस बार जयपुर राज्य को हार माननी पड़ी। पुलिस पार्टी ने उन्हें रोका ग्रौर इन्सपेक्टर जनरल पुलिस मि. यंग ने स्वयं उन्हें अपनी मोटर में बिठाकर मोरा सागर के डाक बंगले में नजरबन्द कर दिया। मोरा सागर रेलवे स्टेशन से 25 मील ग्रौर जयपुर से 75 मील दूर जगल में पहाड़ी की तलहटी में बामनवास में स्थित है। इसी में जमनालाल बजाज को रखा गया। उनके पास एक नौकर, एक डिप्टी सुपरिन्टेन्डेन्ट पुलिस ग्रौर 60 कान्सिटेबिल रखे गये। यह एक निर्जन स्थान था तथा उसके ग्रास पास हिंसक पशु विचरण करते थे।[87]

इधर जयपुर में 5 फरवरी से नागरिक अधिकारों की प्राप्ति के लिए सत्याग्रहियों के जत्थे निकलने लगे। प्रथम सत्याग्रही टुकड़ी चिरंजीलाल मिश्र के नेतृत्व में निकली। सत्याग्रहियों के हाथ में झण्डे थे। बड़ी संख्या में जनता सत्याग्रहियों के साथ हो जाती थी पुलिस प्रतिदिन कुछ सत्याग्रहियों को दूर जंगल में ले जाकर छोड़ दिया करती थी।

12 फरवरी को जयपुर में प्रभात फेरी निकली, सभाग्रों में भाषण हुए। पुलिस ने जुलूस पर लाठी चार्ज किया जिससे कई व्यक्ति घायल हुए। सत्याग्रहियों को गिरफ्तार किया गया तथा उसी दिन चिरंजीलाल मिश्र को भी गिरफ्तार करके मोहनपुरा कैम्प में भेज दिया गया। मोहनपुरा कैम्प में सत्याग्रहियों की आवश्यक सुविधा नहीं मिलने से उन्होंने अनशन कर दिया। इन सत्याग्रहियों के विरुद्ध मुकदमें की कार्यवाही मोहनपुर केम्प में ही चलाई गई। इनके अनशन को देखकर जयपुर शहर में भी बड़ी जोरदार हड़ताल की गई।[88]

1939 में सत्याग्रह के एक जत्थे का नेतृत्व वकील मदन मोहन शर्मा ने किया। लगभग 30-40 सत्याग्रही गिरफ्तार हुए उनमें से कुछ के नाम इस प्रकार है: सर्व श्री

86– हीरालाल शास्त्री–प्रत्यक्ष जीवन शास्त्र ग्रध्याय 3, पृ. 68.

87– वनस्थली समाचार, पृ. 8

88– वनस्थली का वानप्रस्थी–डा. मदनगोपाल शर्मा पृ. 39; प्रत्यक्ष जीवन शास्त्र–हीरालाल शास्त्री अध्याय 3 पृ. 68.

टीकाराम पालीवाल, हरलालसिंह, ताड़केश्वर शर्मा (झुंझुनू), राधाकृष्ण पुरोहित (सीकर वाले) रामनिवास बगड़का (बोम्बे) आदि। 1939 की जनवरी से लेकर 1939 की मार्च तक इस प्रकार जत्थे सफलतापूर्वक निकलते रहे। हर चौथे पांचवे दिन करीब ढाई सौ आदमी जेल में पहुंचने लगे। अन्य गिरफ्तारियों में सर्व श्री लादूराम (शेखावाटी), चन्द्रशेखर, राम प्रताप जोशी, पं. देवीशंकर तिवारी विश्वेश्वर, हरिप्रसाद आदि थे। इन सत्याग्रहियों की मुख्य मांगें थी कि पब्लिक सोसाइटी एक्ट को रद्द किया जावे और उन्हें बोलने एवम् लिखने की स्वतंत्रता दी जावे।[89]

जब कई सत्याग्रहियों का स्वास्थ्य मोहनपुरा कैम्प में खराब हो गया तो कुछ सत्याग्रहियों को मोहनपुरा कैम्प से हटाकर लाम्बा में रखा गया जहां सांप आदि विषैले जन्तुओं का भय अधिक था। यहां चिरंजीलाल मिश्र जेल में बहुत बीमार हो गये। सत्याग्रह को चलाने के लिए जयपुर के बाहर से सत्याग्रहियों को बहुत सहायता मिल रही थी। इस अर्से में महिलाओं का जत्था रमादेवी के नेतृत्व में संगठित हुआ था। नगर में इतना उत्साह था कि 12 मार्च को पूरी रियासत में जयपुर दिवस मनाया गया। परन्तु महात्मा गांधी के परामर्श पर अन्य रियासतों के साथ साथ जयपुर में भी 18 मार्च, 1939 को यह सत्याग्रह स्थगित कर दिया गया। गांधी जी का इस सम्बन्ध में यह विचार था कि सत्याग्रह स्थगित हो जाने पर रियासतों को अपने कार्य कलापों पर पुनः विचार करने का अवसर मिलेगा। साथ ही वे वाइसराय और राजाओं को अपनी सलाह पर अमल करने का समय भी देना चाहते थे। राज्य ने भी सभी सत्याग्रहियों को छोड़ दिया। जब सत्याग्रहियों को छोड़ दिया। जब सत्याग्रही जेल से छोड़े गये तो जयपुर शहर में उनका भारी स्वागत हुआ और जुलूस निकाला गया।[90]

प्रजामण्डल के सत्याग्रह बंद करने में यह शर्त रखी थी कि जयपुर में हिन्दुस्तानी प्राईमिनिस्टर की नियुक्ति की जाए। इस पर अंग्रेजी सत्ता ने अपने ही एक आदमी राजा ज्ञाननाथ की नियुक्ति कर दी। इसी बीच जमनालाल बजाज को रिहा कर दिया गया, क्योंकि उनके घुटने में भयंकर दर्द होने लग गया था तथा उनका स्वास्थ्य भी बहुत गिर गया था। इस पर सत्याग्रह के उपरान्त भी प्रजामण्डल ने अपने प्रचार को बंद नहीं किया उसके सदस्य जगह-जगह सरकार के विरुद्ध नारे लगाने लगे, नेताओं ने जनता के समक्ष जगह-जगह भाषण दिये। पं देवीशंकर तिवारी पर, जो इस आन्दोलन के अगुआ थे पुलिस की कड़ी निगरानी थी। स्वयं हीरालाल जी शास्त्री दौसा हिण्डौन, चिड़ावा आदि

89– मदनगोपाल शर्मा–प्रजामण्डल के कार्यकर्त्ता से 16 मार्च को लिखा गया साक्षात्कार; सुमनेश जोशी–राजस्थान में स्वतन्त्रता संग्राम के सेनानी, पृ. 557.

90– फाईल नं. 846 कोन्फिडेंशल महकमा खास जयपुर, डेली रिपोर्ट पृ. 250, 29 मार्च, 1939, अ.बी;

फाईल नं. 846 महकमाखास मेडीकल रिपोर्ट फ्राम लाम्बा कैम्प प्राइमिनिस्टर जयपुर को पृ. 283, दिनांक 3-4-40 अ.बी; फाईल नं. 846 महकमा खास–लाम्बा कैम्प की डेली रिपोर्ट, अ.बी.

जगह गये और अपने भाषण देते रहे । इस पर 1 जनवरी, 1940 को राज्य सरकार के द्वारा एक आदेश जारी किया गया, जिसमें राज्य कर्मचारियों को यह आदेश दिया गया था कि वे राजनैतिक मामलों पर बिल्कुल बातचीत नहीं करे और अपने विचार प्रकट न करें । प्रत्युत्तर में जयपुर प्रजामण्डल ने राज्य के दमनकारी नीति का विरोध करते हुए जनवरी, 1940 में एक अपील प्रसारित की जिसमें राज्य में तुरन्त उत्तरदायी सरकार स्थापित करने की मांग की गई थी । इस अपील ने राज्य के प्रधानमंत्री ज्ञाननाथ को धमकी भी दी । आई.जी. पुलिस ने मान्यता प्राप्त स्कूलों को यह आदेश दिया कि वे अपने विद्यार्थियों को प्रजामण्डल से सम्बन्धित गतिविधियों से दूर रखें । इसी प्रकार के आदेश गृह मंत्री हरीसिंह अचरोल ने भी जारी किये । 1 फरवरी, 1940 के अन्तिम सप्ताह में पुलिस ने प्रजामण्डल के कार्यालय पर छापा मारा और उसके कागजात जब्त कर लिये ।[91]

सीकर का आन्दोलन और जयपुर प्रजामण्डल :

सीकर के कृषक आंदोलन और वहां की गतिविधि का वर्णन पिछले अध्याय में किया जा चुका है जिसमें अन्ततोगत्वा कृषक सफल हुए 1947 तक रावराजा को इनकी लगभग सभी मांगों को मान लेना पड़ा, लाग-बाग तथा बेगार प्रथा समाप्त कर दी गई, लगान की दरें निर्धारित कर दी गई और वहां के निवासियों को ठिकाने के उच्च पद पर नियुक्तियां होने लगी । राजपूत और जाट किसानों के साथ भेद-भाव की नीति में परिवर्तन करना पड़ा । इन उपलब्धियों के लिए कई नेताओं की जाने गई और कई लोगों के घर बर्बाद हो गये और अनेकों को जेल में अमानुषिक यातनाएं भोगनी पड़ीं ।[92]

1922-30 तक सीकर का आन्दोलन कृषि प्रधान समस्याओं को लेकर चला था । परन्तु ज्योंही, 1931 में जयपुर प्रजामण्डल की स्थापना हुई और 1936-37 में उसका पुन: संगठन हुआ तो यहां के आन्दोलन में एक राजनैतिक चेतना का नया मोड़ आया । भरतपुर के जाट नेता, ठाकुर देशराज ने अपने सम्पर्क से एवं लेखों से सीकर व शेखावाटी

91-- महकमा खास जयपुर कोन्फिडेन्शल 846, जिल्द 4 प्रजामण्डल जयपुर, 1939-40 अ.बी.;
जयपुर स्टेट गवर्नमेन्ट द्वारा 1 जनवरी, 1940 को प्रकाशित गजट; फाईल नं. 846 जयपुर प्रजामण्डल पृ. 58 नोट्स आन प्रजामण्डल एक्टीविटीज, अ.बी.;
8 जनवरी, 1940 को कपूरचन्द पाटनी की ओर से जमनालाल बजाज को लिखा गया पत्र व्यवहार नं. 125; 9 फरवरी, 1940 को चिरंजीलाल अग्रवाल की तरफ से जमनालाल बजाज को लिखा गया पत्र व्यवहार नं. 118;
फाईल नं. 13 कोन्फीडेन्शल 490, ओफिस नोट इमडियेट सीक्रेट डी. ओ. नं. 311-31 मई, 1940 अ.बी.; फाईल नं. 13, कोन्फीडेन्शल 490 सीक्रेट डी. ओ. नं. 933, पी. 31, मई, 1940 अ.बी.; नव जीवन, दिनांक 4 मार्च, 1940.

92- जयपुर जुडीशियल रेकार्ड, फा.नं.ज.-2-7483, भाग-10, अ.बी., फा.नं. 6/ एन.डब्ल्यू.आर./सी.वी.अ.जयपुर ।

समस्या को अखिल भारतीय जाट सभा का अंग बना दिया। इस सभा के सदस्यों ने सीकर का दौरा कर जाटों में नया जोश पैदा किया। जाट कमेटी की स्थापना खेतड़ी के बूढा जाट के नेतृत्व में की गई। 20 से 26 जनवरी 1934 में "जाट महायज्ञ" के आयोजन ने देश के विभिन्न कोनों से सीकर में जाटों को एकत्रित किया और उन्हें एकता का संदेश किया। ठिकाने द्वारा की गई चौधरी गुरुसिंह और श्री चन्द्रभान सिंह और पीछे श्रीचन्द्राजी गनपत सिंह, जीवनराम और राधेमल की गिरफ्तारियों ने तथा सिहोत ठाकुर द्वारा महिलाओं को अपमानजनक ढग से व्यवहार और मारपीट ने जाटों में जागृति का संदेश घर घर पहुंचाया। अप्रेल, 1934 में कतराताल में 10,000 महिलाओं का सम्मेलन अपने आप में एक उद्बोधन का साधन बना। जिसमे ठाकुर की अमानुषिक निर्दयता की खुलकर निन्दा की गई।[93]

उत्तरदायी शासन की मांग :

आन्दोलन करने वालों ने एक सीकर पब्लिक कमेटी बनाई जिसने 10 जून, 1938 को सीकर दिवस मनाया। इसकी अध्यक्षता कमेटी के प्रधान ठाकुर जेलसिंह ने की। उस दिन नगर में पूर्ण हड़ताल रही। सायंकाल एक बड़ी आम सभा हुई जिसमें राव राजा से उत्तरदायी शासन की मांग की गई जो ठुकरा दी गई। इस सभा के बाद सीकर की स्थिति बिगड़ती ही गई। वायुमण्डल में इतना तनाव आ गया कि आये दिन लोगों और पुलिस में मुठ भेड़ हो जाती थी। जुलाई, 1938 को लोगों और पुलिस में बात ही बात में फिसाद हो गया और बड़ी भीड़ एकत्रित हो गई। पुलिस ने भीड़ को हटाने के लिए गोलियां चलाई तो लोगों ने इसका उत्तर गोलियो से दिया। इस झगड़े में एक पुलिस कान्स्टेबल और दो नागरिक मारे गये, नागरिकों में एक जगन पुरोहित भी था। सीकर दिवस बम्बई में रहने वाले सीकर निवासियों ने भी मनाकर क्षोभ प्रगट किया।[94]

रावराजा के विरुद्ध जयपुर की सैनिक कार्यवाही :

जब सीकर में कृषकों और रावराजा के बीच संघर्ष चल रहा था स्थिति में एक नया मोड़ आया। राव राजा सीकर और महाराजा जयपुर के परस्पर सम्बन्ध अच्छे नहीं थे, उस समय सीकर का कामदार केप्टन वेब था। वह भी राव राजा के विरुद्ध षडयंत्र किया करता था। उसकी प्रेरणा से जयपुर राज्य ने राव राजा सीकर को गिरफ्तार करने के लिए सशस्त्र पुलिस रवाना की। ठिकाने के पक्षधर दो रेल के डिब्बों में लगभग 100 राजपूत तलवारों, बन्दूकों और लाठियों से सज्जित होकर सीकर आ गये। सीकर रेलवे स्टेशन पर जयपुर

---

93. जुडीशियल रेकार्ड, फा.नं.जे.-2-7483, भाग-7, अ.बी.; फा.नं. 39. 1934, अ.बी.।

94– सीकर जांच कमीशन के समक्ष एवं कल्याणसिंह का बयान, बद्रीनारायण सोधानी का दामोदर मेंदड़ा को 24 अप्रेल, 1938, का पत्र;

द हिन्दुस्तान टाइम्स दि. 13 जून, 1938

द हिन्दुस्तान टाइम्स दिनांक 21 जून, 1938, 6 जुलाई, 1938.

राज्य की पुलिस के लोग पहले से ही खड़े थे। 5 जुलाई 1938 को वहां दोनों दलों मे भिडण्त हो गई और गोलियां चली जिसमें 5 निर्दोष व्यक्ति मारे गये और कुछ आहत हो गये। तब प्रजामण्डल की ओर से सेठ जमनालाल बजाज, खेतान और पोतदार शान्ति स्थापित करने के लिये वहां पहुंचे। इस अवसर पर जयपुर के अधिकारियों ने कितने ही लोगों को गिरफ्तार कर लिया जिनमें कई राजपूत सरदार और रावराजा सीकर का प्राईवेट सेक्रेट्री भी सम्मिलित था। पं. जवाहर लाल नेहरू ने जो उस समय लन्दन में थे इस घटना "की खबर पढ़ी तो उन्होंने कहा' लोगों के भाग्य का हमसे गहरा सम्बन्ध हैं, पहली जरूरत तो यह है कि गोलियां क्यों चली इसकी स्वतंत्र रूप से जांच की जावे। वास्तविकता यह है कि अधिकांश भारतीय राज्य अब बेकार हो गये हैं। पहले उनकी उपयोगिता होगी परन्तु अब नहीं है। अब उनको आमूलचूल बदलना होगा।[95]

अब तो जाट किसान सभा इतनी संगठित हो गई थी कि जब रावराजा ने जयपुर राज्य के विरुद्ध जनता से सहयोग मांगा तो उन्होंने कई सामाजिक व आर्थिक सुधारों की मांग की जिन्हें ठिकाने ने नामन्जूर कर दी। इन मांगों को सीकर निवासियों ने 11-12 सितम्बर, 1938 को आयोजित पंचायत में व्यवस्थित रूप मे रखा। ऐसी मांगों में शिक्षा के विस्तार, छात्रावास का निर्माण, नागरिक अधिकारों में समानता तथा लाग-बाग को उन्मूलन एवं लगान की दरों में कमी आदि सम्मिलित थे इस प्रगतिशील सुधार व्यवस्था की मांगों में जयपुर प्रजामण्डल का मार्ग-दर्शन था। क्योंकि सीकर के कई सेवा-भावी नेताओं का सम्बन्ध इस संस्था से हो चुका था। ऐसे व्यक्तियों में सर्वश्री मास्टर चन्द्रभान सिंह, चौधरी ईश्वरसिंह, चौधरी हारसिंह हरदेव सिंह, चौधरी गोरुसिंह, देवसिंह, पृथ्वी सिंह, चौधरी गणेशराम, पन्हेसिंह आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय है।[96]

शेखावाटी का आंदोलन तथा जयपुर प्रजामण्डल :

सीकर के भांति शेखावाटी क्षेत्र में भी ठाकुरों और कृषकों में संघर्ष चल रहा था जिसका वर्णन ऊपर के अध्याय में दिया गया है। जब 1931 में जयपुर प्रजा मण्डल की स्थापना हो चुकी थी तो यहां भी उसी वर्ष जाट सभा का संगठन हुआ। अखिल भारतीय जाट महासभा के कार्यकर्ता इस क्षेत्र में घूम घूम कर भाषणों तथा साहित्य विवरण द्वारा जाटों के संगठन का मजबूत बनाने में जुट गये। 11 से 13 फरवरी, 1932 को अखिल भारतीय जाट महासभा का 23वां अधिवेशन झुन्झुनू में आयोजित किया गया जिसमें प्रगतिशील विषयों को लेकर जैसे लगान कम करने टिड्डीदल के निवारण, अकाल राहत, शिक्षा प्रसारण, ब्याज की दरें कम करने, हिन्दी भाषा का राजकीय पत्रावलियों में उपयोग करने

95-द हिन्दुस्तान टाइम्स दिनांक 7 जून, 21 जून, 1938; द हिन्दुस्तान टाइम्स के विशेष संवाददाता द्वारा जवाहर लाल नेहरू से भेंट, 14 जुलाई 1938 द हिन्दुस्तान टाइम्स

96- जयपुर ज्युडिशियल रिपोर्ट, फा.नं.जे.-2-7483, भा.-6, 1938, पेज नं. 98, अ.बी.;

डा. पेमाराम, द. एग्रेरियन मूवमेंट इन राजस्थान, पृ. 165-67.

पर बल दिया गया। इन मांगों से स्पष्ट था कि अब जाट समुदाय अपने अधिकारों के लिये जागरूक था और जयपुर राज्य तथा देश के राजनैतिक वातावरण से पूर्णत: अवगत था। इन्हीं मागों को विविध रूप से विस्तारित कर अपने ज्ञापनों में जो, जयपुर शासन को 1935 तक और आगे के वर्षों में वे देते रहे, उनमें अपने क्षेत्र की उन्नति तथा ठाकुरों की शासन व्यवस्था का खोखलापन स्पष्ट झलकता है।[97]

जब 1936-37 में जयपुर प्रजामण्डल का पुन: संगठन हुआ तो शेखावाटी के प्रमुख नेता नेतरामसिंह गोरीर का हीरालाल शास्त्री से परिचय हुआ। वहीं जाट सभा का विलीनीकरण प्रजामण्डल के साथ हो गया और तब से इस क्षेत्र के अनेक कार्यकर्ता समान रूप से शेखावाटी और जयपुर राज्य में सक्रिय कार्य करते रहे। ऐसे व्यक्तियों में चौधरी श्री घासीराम, चौधरी श्री बुद्धाराम, श्री नेतराम सिंह, श्री तारकेश्वर, चिमनराम, चौधरी लादूराम, सरदार हरलाल सिंह, नरोत्तमलाल जोशी, संत कुमार शर्मा, श्री विद्याधर, ख्यालीराम, ताराचन्द, पन्नेसिंह आदि प्रमुख थे। इनके प्रयास से और योगदान से शेखावाटी में पेमाइश की शुरूआत हुई और कृषकों की हालत में बहुत सुधार हुए। संगासी, हनुमानपुरा और गोरीर गांव कृषक आन्दोलन एवं सत्याग्रह के केन्द्र बन गये। 1938 में सेठ जमनालाल बजाज ने जो प्रजामण्डल के अध्यक्ष थे, शेखावाटी का दौरा किया और किसानों को बढ़ी हुई दर से लगान न देने के लिए चेतना उत्पन्न की। 1938 में किसान पंचायत तथा जयपुर प्रजामण्डल ने एक होकर लाग-बागों का जो निरस्त कर दी गई थी और जिन्हें जागीरदार किसानों से जबरदस्ती वसूल करते थे समाप्त करने का फिर से आन्दोलन चलाया। इस पर सरदार हरपालसिंह, श्री तारकेश्वर शर्मा, चौधरी लादूराम, पन्नेसिंह और नेतराम को गिरफ्तार कर लिया गया। फिर भी आन्दोलन चलता रहा। 1 मार्च, 1939 को जयपुर प्रजामण्डल ने "किसान" दिवस मना शेखावाटी आन्दोलन को सशक्त बनाया जिसको देखकर जयपुर राज्य ने पेमाइश द्वारा निर्धारित दर से लगान वसूल करने के आदेश दिये। कुछ ठिकानो ने जिन्होंने राज्य की आज्ञा की अवहेलना की, वहां संघर्ष चलता रहा और अंत में 1941 तक नई दरें और कुछ रियायतों की घोषणा राज्य सरकार को करनी पड़ी।[98]

इस प्रकार कृषक आन्दोलन प्रजामण्डल के सहयोग से आगे बढ़ता रहा और प्रत्येक चरण में उनकी कुछ न कुछ मागें सरकार को मानने को विवश होना पड़ा। परन्तु इस आन्दोलन को चलाने में अनेक शेखावाटी के कार्यकर्ताओं को सरकार का कोप भाजन बनना पड़ा। उदाहरणार्थ डूंडलोद ठिकाने के जयसिंहपुरा में किसानों को बेदखल करने के

97– ज्युडीशियल रेकार्ड, फा. नं. जे. 2–2549. भा. 5, 1934, पेड नं. 70 अ. बी.

98– कान्फीडेन्शल डी. ओ. नं. 684, दिसम्बर 6, 1938, आई. जी. पी. से जयपुर प्रधानमंत्री को, बही नं. 698, 8 दिसम्बर, 1938, पंचायत पत्रिका, ज्युडीशियल रेकार्ड, फा नं. 5525, भा. 2, 1939, पेड नं. 89, अ. बी., कोन्फीडेन्शल डायरी, 31 मई, 1941, आई. जी.पी. जयपुर से प्राईम मिनिस्टर, जयपुर, अ. बी.

1939 के हमले में अनेकों किसान घायल हुए एवं टीकूराम मारा गया। इन ग्रान्दोलन-कारियों को व्यक्तिगत रूप से भी बड़ी हानि पहुंचाई जाती थी। जब कि नेतराम सिंह को 1940 में सेन्ट्रल जेल भेज दिया था तो उनके घर पर छापामार कर उनके सभी निजी कागजात पुलिस उठाकर ले गई। श्री ताड़केश्वर शर्मा ने जब लगानबन्दी आन्दोलन में भाग लिया तब उन्हें 2 वर्ष की कठोर कारावास की यातना दी गई। जिसमें पूरे एक वर्ष तक इन्हें काल कोठरी में रखा गया। बेरी ग्राम में चौधरी भगवान राम भी ठिकाने के लोगों की लाठी चार्ज में घायल हो गये। इन सब विपत्तियों के बावजूद शेखावाटी के अनेक कृषक नेता अपने मन्तव्य पर डटे रहते थे। जब श्री नेतरामसिंह को 1939-40 में जयपुर की सेन्ट्रल जेल में थे तो उन्हें दूसरे विश्व युद्ध की अंग्रेजों की विजय के लिए प्रार्थना करवाई जाती थी। इन्होंने अपने साथियों के साथ ऐसा करने से इन्कार कर दिया। उन्होंने तो निर्भीकतापूर्वक यही कहा कि हम तो ब्रिटिश सल्तनत का नाश चाहते हैं, हमें उनकी विजय से क्या लेना देना है। जेलर ने फौरन हाथ में खड़ी-हथकड़ी और पांव में डंडा बेड़ी लगाकर उन्हें काल कोठरी में डाल दिया। जब वे जेल यातना से मुक्त हुए तो उन्हें परम्परा के अनुसार चन्द्रमहल के सामने जाकर महाराज को सलामी देने ले जाया गया। उनके साथ लादूराम जोशी और हरलालसिंह भी मुक्त हुए थे। इस समय भी रिवाज के विपरीत निर्भीकता से सलाम करने से इन्होंने इन्कार कर दिया थोड़ी ही देर में हजारों नागरिक वहां इकट्ठे हो गये। पुलिस ने लाठी चार्ज से भीड़ को हटाना चाहा, परन्तु जनता की भीड़ जुलूस में परिणित हो गई और अपने निर्भीक नेताओं को सम्मान के साथ श्री हीरालाल शास्त्री के मकान पहुंचा दिया।[99]

बीकानेर में जन जागृति :

बीकानेर राज्य में भी कोई विधान नहीं था। शासन महाराजा की इच्छानुसार चलता था। उन पर किसी प्रकार की रोक टोक नहीं थी। इतना ही नहीं महात्मा गांधी के जय के नारे को भी राजद्रोह समझा जाता था। ग्राधुनिक विचारों के लोगों को ऐसा प्रशासन अच्छा नहीं लगता था। ब्रिटिश भारत में अंग्रेजी राज्य के विरुद्ध जो राजनैतिक ग्रान्दोलन चल रहा था उसका बीकानेर के लोगों पर भी इसका प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। बीकानेर राज्य में जाग्रति लाने के लिए सर्व प्रथम स्वामी गोपालदासजी चूरू ने पहल की ग्रोर 1913-14 में सर्व हितकारिणी सभा की स्थापना की। इसका उद्देश्य यही था कि जनता को अपने ग्रधिकार तथा स्वराज्य के लिए जागरूक किया जाय, उसे अपनी स्वतन्त्रता का बोध कराया जाय एवं उनमें अंग्रेजों के प्रति विरोधी भावना का संचार किया जाय। स्वामीजी ने इस क्षेत्र में विविध प्रवृत्तियों तथा प्रान्तीय कांग्रेस की सदस्यता द्वारा जनता की अनुपम सेवा की ओर प्रयत्न किया कि लोगों में स्वशासन के लिए क्षमता पैदा हो जाय। इस सभा के अन्तर्गत पुस्तकालय, पाठशालाएं, वाचनालय, ग्रौषधालय, महिलाश्रम स्थापित किये गये। जन सेवा और जन जागृति का लक्ष्य लेकर बीकानेर

99—सुमनेश जोशी, राजस्थान में स्वतन्त्रता संग्राम के सेनानी, पृ. 133, 136, 157-160, 672 ग्रादि।

राज्य के अनेक कस्बों और गांवों में सभा की शाखाएं खोली गई। इन शाखाओं में पत्र-पत्रिकाएं, उद्बोधक साहित्य मंगवाया जाता जिससे जनता में सर्वांगीण विकास का श्रीगणेश हुआ।[100]

इसी तरह पंडित चंदनमल बहड़, गांधीजी के रोलेट एक्ट के विरोध एवं उपवास से प्रभावित होकर 1919 से सक्रिय राजनीति में उतरे। इन्होंने चूरू में "हितकारी दल" के सगठन की स्थापना की और एक देश प्रेमियों के दल को तैयार किया। अपनी लोकप्रियता के कारण वे 1929 में स्थानीय नगरपालिका के चुनाव में विजयी हुए। सदस्यता के दौरान पालिका के सदस्यों के अधिकारों के लिए संघर्ष किया और तत्कालीन सामन्तवादी विपत्तियों का विरोध किया। 1930 मे 26 जनवरी को जब देश में स्वाधीनता दिवस मनाया गया तब इन्होंने अपने साथी गोपालदास, महन्त गणपतिदास, शांति शर्मा एवं मालचन्द्र शर्मा के साथ चूरू के सर्वोच्च शिखर धर्म स्तूप पर तिरंगा झंडा फहराया। सरकार ने इसको अपराध मानकर अपने साथियों सहित उन्हें चूरू नगरपालिका की सदस्यता से हटा दिया। ये दूसरी बात थी कि पंडित मदनमोहन मालवीजो की मध्यस्थता के कारण इन्हें पुनः अपने पदों पर रख लिया गया।[101]

जिस राज्य में स्वराज्य, स्वतंत्रता, नागरिक अधिकार एवं गांधी का नाम लेना अपराध था और जहां खद्दर पहिनना बागियों की वर्दी समझी जाती थी वहां के देशाभिमानी नागरिकों के लिए रहना असह्य हो गया। सरकार की प्रतिक्रियावादी नीति से तंग आकर जनता में त्रास व्याप्त था। जो स्वयंसेवी संस्था या कार्यकर्त्ता सुधार की चर्चा करते थे उन्हें दण्डित किया जाता था ताकि भविष्य में उसे ऐसी हरकतें करने का साहस न हो। महाराजा को यह भी पसन्द नहीं था कि बाहर के लोग बीकानेर राज्य में आकर राजनैतिक चर्चा करें या खुलेरूप में किसी प्रकार की राजनैतिक अथवा प्रशासनिक मांग पेश करें। गुप्त रूप से भी यदि ऐसा किया जाता था तो उसके पीछे राज्य के गुप्तचर लगे रहते थे इसलिए जब सेठ जमनालाल बजाज, श्री अर्जुनलाल सेठी और श्री चांदकरण शारदा बीकानेर गये तो उनको राज्य ने प्रवेश से रोका गया।[102]

महाराजा गंगासिंहजी जो अपने समय के कुशल शासक थे इस प्रकार की गतिविधि को सहन नहीं कर सके। उनकी मान्यता थी कि इस राजनीतिक हलचल का मुख्य स्रोत ब्रिटिश भारत से आने वाले पत्रों, पुस्तकों, व्यंग चित्रों और पुस्तिकाओं में निहित है। अतएव उन्होंने इसकी रोकथाम के लिए आदेश निकाले कि समाचार पत्रों की छानबीन की जाय और उनमें से अवांछनीय खबरों को निकाल दिया जाय। साथ ही लगभग 100 पुस्तकों

100-अर्जुन ता. 7 जुलाई, 1932 में छपा सबलसिंह, डी.आई.जी; बीकानेर के बयान पर आधारित।

101-सुमनेश जोशी, राजस्थान में स्वतंत्रता सग्राम के सेनानी, पृ. 104-110

102. जयनारायण व्यास, बीकानेर षड़यन्त्र केस, कुछ ज्ञातव्य बातें; डा के. एस. सक्सेना, पोलिटिकल मूवमेन्ट्स एण्ड अवेकनिंग इन राजस्थान, पृ. 204-04

व पत्र-पत्रिकाओं के मंगाने पर निषेधाज्ञा लगा दी। इस आज्ञा का प्रथम शिकार श्री रामनारायण सेठ, सरपंच पंचायत बोर्ड हुआ जो आन्दोलनात्मक तथा अन्य प्रकार का साहित्य मंगवाकर बेचता था या लोगों में ज्ञान बर्धन के लिए वितरित करता था। वह लोगों की विशुद्ध शासन की मांग का समर्थक था और बेगार का घोर विरोधी था। बीकानेर के महाराजा उसकी इस प्रकार की गतिविधि पसन्द नहीं करते थे। उसका यह काम अवैध मानकर पुलिस ने 7 मई, 1931 को उसके साथ मारपीट की और उसे अमानुषिक यातनाओं से दण्डित किया।[103]

प्रशासन द्वारा ऐसे कठोर रवैये ने यहां के कार्यकर्त्ताओं को संगठित अभियान चलाने के लिए विवश किया। उन दिनों 1932 में राज्य ने अनाज पर अत्यधिक जकात लगा दी थी। जिससे गरीब प्रजा के निर्वाह करने में कठिनता का सामना करना पड़ गया। जब महाराजा को इस सम्बन्ध में ज्ञापन दिये तो उनका उन पर कोई असर नहीं हुआ। विवश होकर प्रशासन के एकतन्त्रीय वतीरेक का कच्चा चिट्ठा और राज्य के आतंक और अत्याचार का विवरण ब्रिटिश भारत के पत्रों में 'बीकानेर लेटर" के शीर्षक से प्रकाशित करवाया जाने लगा। 'प्रिन्सली इण्डिया" में इस प्रकार के पत्र में राज्य की स्वच्छन्द शासन और बीकानेर की म्युनिसिपलिटी की निर्भीक ढंग से आलोचना की गई थी जिसमें महाराजा को "बीकानेर का नीरो" की संज्ञा दी गई थी। भारतीय देशी राज्य परिषद् के सदस्यों, स्वयं महाराज, ब्रिटिश प्राइममिनिस्टर तथा गोलमेज के सदस्यों और भारतीय नेताओं को बीकानेर के रेवेन्यू मेम्बर महाराजा मानधातासिंह पर लांछन लगाया गया कि राज्य के प्रशासन में उन्होंने भ्रष्टाचार फैला दिया है। 1932 में इंगलैण्ड में दूसरी गोलमेज सभा हुई। उस अवसर के लिए अंग्रेजी में एक छोटी-सी पुस्तक श्री अमृतलाल सेठ व पी.एल. चूड़ीगर के सहयोग से तैयार की गई जिसका नाम "बीकानेर एडमिनिस्ट्रेशन" था। उस पुस्तक की प्रतियों को गोलमेज सभा के भारतीय और अंग्रेज सदस्यों में वितरित किया गया। उसमें बीकानेर महाराजा के शासन की निन्दा थी और यह भी लिखा था कि उस राज्य में न कोई स्वतन्त्रता थी और न खुले तौर पर कोई बात की जा सकती थी, बीकानेर शासन प्रजा के हित में नहीं चलाया जाता था और वहां राजनीतिक स्वतन्त्रता और अधिकारों की मांग सहन नहीं की जाती थी। इस पुस्तक के विवरण से महाराजा के शासन का नग्न स्वरूप सदस्यों के सामने आया। महाराजा गंगासिंह इससे बड़े नाराज हुए और तुरन्त इंगलैण्ड से स्वदेश लौटे तो सात-आठ ऐसे व्यक्तियों को जो इस आन्दोलन के कर्ता-धर्ता माने गये थे उन्हें 13 जनवरी, 1932 में राजद्रोह के अपराध में गिरफ्तार कर लिया

---

103. पाक्षिक रिपोर्ट, 1927, फा नं. 431, पी. पोस्टमास्टर जनरल के नाम डाइरेक्ट पोस्ट टेलिग्राफ का पत्र 19 फरवरी, 1930, फा नं. 203, आर. फो. गो. रा अ., त्याग भूमि, 22 मई, 1931 महाराजा गंगासिंह को खुली चिट्ठी, राजस्थान संदेश, 5 अक्टूबर, 1931; प्रिन्सली इंडिया, 23 दिसम्बर, 1931

गया। ये व्यक्ति श्री सत्यनारायण वकील, श्री कुंभाराम, श्री स्वामी गोपालदास, श्री चांदमल बहड़ श्री बद्रीप्रसाद, श्री सोहनलाल, श्री प्यारेलाल और श्री लक्ष्मीचन्द थे। आगे जाकर लक्ष्मीचन्द सुराना सरकारी गवाह बन गया।[104]

बीकानेर षड़यंत्र केस (1932–34) :

इस मुकदमें में जो बीकानेर षड़यंत्र केस के नाम से विख्यात हुआ, अभियोग यह था कि प्रिन्सली इंडिया नामक पत्र में जो ब्रिटिश भारत में छपता और प्रकाशित होता था, बीकानेर लेटर शीर्षक से लेख छपा करते थे। उसमें बीकानेर सरकार और वहां की नगर परिषद् की निन्दा की जाती थी और महाराजा गंगासिंह को बड़ा अत्याचारी बतलाया जाता था। इस पत्र के बीकानेर में कितने ही ग्राहक थे। आन्दोलनकारियों द्वारा एक खुला पत्र इंग्लैंड के सम्राट, प्रधानमंत्री तथा गोलमेज सभा के सारे सदस्यों और इंग्लैंड तथा भारत के विभिन्न समाचार पत्रों में भेजा गया। पुलिस का मानना था कि उक्त पत्र सत्यनारायण वकील ने लिखा था और चूरू से डाक द्वारा रवाना किया गया था। इसलिए उस वकील और उसके साथियों पर बीकानेर पेनलकोड, सेक्शन 123 बी. 124 ए. और 337 सी. के तहत केस बनाकर मुकदमा चलाया गया। इस मुकदमें की चर्चा सब जगह फैल गई और महाराजा बीकानेर की बहुत निन्दा हुई। श्री सत्यनारायण तथा उनके साथियों ने अपनी कोई सफाई नहीं दी और सत्याग्रह किया। अन्त में 15 जनवरी, 1934 को सैशन जज नानावटी ने सातों मुलाजिमों को अपराधी घोषित कर दण्ड का हुक्म सुना दिया जिससे 6 महीने से तीन वर्ष तक की जेल तजवीज की गई। परन्तु कुछ अरसे बाद प्यारेलाल और पं. सोहनलाल को इसलिये जेल से मुक्त कर दिया गया कि महाराजा के पुत्र लाभ हुआ था। जब श्री सत्यनारायण 3 जुलाई, 1936 को जेल से मुक्त हुए जो उनका नगर में भव्य स्वागत किया गया। इस बीकानेर अभियोग का बीकानेर तथा उसके बाहिर कई नगरों में बड़ी निन्दा की गई।[105]

बीकानेर प्रजामण्डल :

जब भारतीय कांग्रेस ने देशी राज्यों में रुचि लेना आरंभ किया तो, अन्य राज्यों की भांति, बीकानेर में भी उत्तरदायी शासन की मांग तथा प्रजा के अधिकारों की प्राप्ति के लिए यहां के कार्यकर्त्ताओं ने प्रजामण्डल की स्थापना को महसूस किया। अभाग्यवश इस

104– स्वराष्ट्र 2 जनवरी, 1932; रियासती दुनिया, 18 जनवरी, 1932; द हिन्दुस्तान टाइम्स, 24 जनवरी 1932; प्रिन्सली इण्डिया, 28 सितम्बर, 1931, 11 सितम्बर 1932; राजस्थान संदेश, 5 अक्टूबर, 1931; के.एस. सक्सेना, द पोलिटिकल, मूवमेन्ट एण्ड अवेकनिंग, पृ. 203–205

105–फो.पो. फाइल नं. 271–1, 1932, रा.अ.; अर्जुन, 18 जून, 1932; हिन्दुस्तान टाइम्स, 17 जनवरी, 2 अगस्त, 1934; अर्जुन, 1 मार्च व 2 अगस्त 1934; ट्रीब्यून, 2 अगस्त 1934; डॉ. के.एस. सक्सेना, पोलिटिकल अवेकनिंग, पृ. 205–206

राज्य में ऐसी संस्था के चलाने में बड़ी रुकावटें थीं और सरकार की नीति अधिक निरंकुश थी । अतएव 1935 में कुछ उत्साही व्यक्तियों ने बीकानेर प्रजामण्डल की स्थापना कलकत्ते में कर दी अब उसी के तत्वावधान में असहयोग आन्दोलन बीकानेर में चलता रहा । लाला खूबराम सर्राफ जैसे सेवाभावी व्यक्ति अकाल राहत एवं गोसेवा कार्य में तन धन से लगे रहे । सरकार भी ऐसे व्यक्तियों के प्रति क्रूर तथा अपमानजनक व्यवहार से बाज नहीं आई । तथापि अगले वर्ष 1936 में बाबू मुक्ताप्रसाद एवं रघुवर दयाल गोयल, श्री मघाराम आदि सेवा भावी एवं उत्साही व्यक्तियों के प्रयत्न से प्रजामण्डल का गठन बीकानेर में किया गया जिससे शांत एव वैध उपायों से राज्य में उत्तरदायी शासन की स्थापना हो सके । सरकार ने मण्डल के कामों में रुकावट डालने के लिए बीकानेर सीक्योरिटी एक्ट में कुछ ऐसे नियम सम्मिलित कर दिये जिनके अनुसार किसी भी संस्था या दल की वर्दी पहनना या बिल्ला लगाना अपराध माना जाता था । इसी प्रकार किसी प्रकार के जुलूस में या वर्जिश के प्रदर्शन में शरीक होना गुनाह था । परन्तु ऐसे कड़े नियमों के होते हुए भी मुक्ताप्रसाद और हंसराज जैसे सच्चे सेवक गांवों में जाकर कृषकों पर होने वाले अत्याचार के विरुद्ध आवाज उठाते रहे। इस अपराध में कई लोग गिरफ्तार किये गये और मुक्ताप्रसाद को राज्य से निकाल दिया गया । इसी तरह किसन गोपाल गट्टड खादी उत्पादन और खादी प्रचार का काम मालचन्द हिसारिया आदि के सहयोग से निः स्वार्थ भाव से करते थे । मंडल की गतिविध की सूचना घर घर पहुंचाने का काम श्री गंगाराम कौशिक ने किया । लोगों में चेतना फैलाने के लिए वे कई राष्ट्रीय पत्र और पत्रिकाएं मंगवाकर वितरित करते थे। 1936 में उनके घर कई बार तलाशी ली गई परन्तु वे अपने काम में लगे रहे । श्री जयनारायण व्यास से मिलकर 1940 में उन्होंने बीकानेर की स्थिति की पूरी जानकारी दी ओर उनसे मार्गदर्शन लिया । श्री रघुवर दयाल गोयल तो प्रजामण्डल के आन्दोलन को बड़ी लगन से चलाते रहें । सरकार के लिए ये सब असह्य था । यहां तक अखिल भारतीय चारण सभा द्वारा संचालित खादी भंडार को बन्द करवा दिया और उसके कर्मचारियों को राज्य से निष्कासित कर दिया ।[106]

कोटा में जन जागृति और प्रजामण्डल :

कोटा में जनजाग्रति का सर्वप्रथम सूत्रपात 1918 में "प्रजा प्रतिनिधि सभा" की स्थापना से होता है जिसका शुभारंभ कोटा के कतिपय समाज सेवी व्यक्तियों ने किया, जिनमें पं. नयनूराम प्रमुख थे । उन्होंने राजस्थान सेवा संघ के सदस्य के नाते कोटा में समाज सेवा की गतिविधियों को चलाकर जनता में एक नव जीवन को जन्म दिया । इसी सभा के तत्वावधान में 18 अक्टूबर, 1921 को अनाज पर जकात वृद्धि के विरोध में आन्दोलन चलाया गया । जिसके फलस्वरूप उसे कम कराने में उसे सफलता मिली ।

106– बीकानेर स्टेट गजट, 15 जनवरी, 1940, राजस्थान डिस्ट्रिक्ट गजेटियर, पृ. 67, रेविन्यू रेकार्ड, बीकानेर, फा. नं. 1939–40, गंगाराम वैद्य, बीकानेर राज्य में राजनीतिक विकास एवं हलचल

कोटा राज्य में प्रचलित बैठ-बेगार प्रथा के खिलाफ भी इस सभा के सदस्यों ने अपनी आवाज सरकार तक पहुंचाई और उसको एक संघर्ष का मुद्दा बताया। सभा ने नगर व गांवों की कई समस्याओं के प्रति भी राज्य का ध्यान आकर्षित किया। जब गांधी जी के नेतत्व में असहयोग आन्दोलन चल रहा था तो कोटा में इस सभा ने विदेशी शराब व वस्तुओं की दुकानों पर पिकेटिंग की व्यवस्था की। इस कार्य के लिए लगभग 60 स्वयं सेवकों का दल तैयार किया। इनके प्रशिक्षण के लिए कैम्प लगाया जाता था और वे विदेशी शराब को बेचने में रोकथाम करते थे। पुलिस के द्वारा इनकी पिटाई भी होती थी, परन्तु पिकेटर, जिनमें सरस्वतीदास, नारायणलाल, गणपतलाल नन्दवाना मुख्य थे अपने काम को निष्ठा से करते थे। श्री मदनलाल कोठारी इस दल के प्रमुख थे। इस प्रकार सभा समाज सुधार के माध्यम से राजनीतिक जागृति को बढ़ावा देने में आंशिक रूप से सफल हुई।[107]

राष्ट्रीय आन्दोलन को अधिक प्रगति देने के लिए पं. नयनूराम शर्मा और श्री प्रभुलाल विजयने 1930 में मित्र मण्डल स्थापित किया। 2 सितम्बर, 1931 को इसे हाड़ोती प्रजामण्डल में परिणित कर दिया गया। इसके संस्थापकों में पं. नयनूराम शर्मा का नाम विशेष उल्लेखनीय है। मण्डल का कार्यालय गेंदा मिस्त्री के नोहरे में रखा गया। कार्यकारिणी का चुनाव हुआ जिसके अध्यक्ष पं. नयनूराम शर्मा, मंत्री श्री गवाल जी, उप मंत्री तनसुख मित्तल और कोषाध्यक्ष डाया भाई देसाई निर्वाचित हुए। केप्टन लक्ष्मीनारायण आजाद तथा डा. गुरुदत्त आदि इसके सदस्य थे[108]

हाड़ोती प्रजामण्डल के प्रभाव में 1931 में कोटा के कतिपय व्यापारियों ने उसके कार्यालय में एकत्रित हो विदेशी कपड़ों को न बेचने का निर्णय लिया। जो दुकाने विदेशी माल बेचती थीं उन पर धरना दिया जाने लगा। इस संस्था के तत्वावधान में यह भी निर्णय लिया गया कि 2 अक्टूबर को गांधी जयन्ती मनाई जाय, नगर में जुलूस निकाला जाय और गो शाला में सभा आयोजित की जाय। निर्णय के अनुसार जब जुलूस निकाला गया तो झंडे के प्रश्न को लेकर पुलिस से कुछ लोगों ने मिलकर विवाद खड़ा करा दिया। तब केसरीसिंह बारहट ने राष्ट्रीय झन्डे के साथ रियासत का झंडा भी जुलूस के साथ रखने का सुझाव दिया जो कार्यकर्ताओं को मान्य हो गया और जुलूस बड़े उत्साह के साथ निकाला गया।[109]

उधर ब्रिटिश पार्लियामेन्ट ने हरिजनों को हिन्दुओं से अलग रखने का जब निर्णय लिया तो गांधी जी ने इसके विरुद्ध अनशन कर दिया। कोटा में भी इसका प्रभाव पड़ा जिसको हाड़ोती प्रजामण्डल ने आन्दोलन के द्वारा समर्थन किया। परन्तु राज्य ने कठोरता से आन्दोलन को दबाने का असफल प्रयत्न किया।[110]

107– दीवान कोटा का पत्र पोलिटिकल, ऐजेन्ट कोटा को नं. 163, 25 अक्टूबर, 1920, फा.नं. 12/13, अ.बी.

108– कोटा कोन्फीडेन्शल फाइल नं. 12/33, महकमाखास, अ.बी.

109– कोटा कोन्फीडेन्शल फाइल, नं. 12/33, महकमाखास, अ.बी.

110– राजस्थान संदेश, जनवरी 4, 1932.

सरकारी सख्तियों के बावजूद प्रजामण्डल के लोकप्रिय होने में कोई बाधा न पहुंची। कई गणमान व्यक्तियों ने इसकी सदस्यता ले ली और वे जन आन्दोलन के सक्रिय भागी बन गये। 1935 में श्री प्रभुलाल विजय इसके सदस्य बने और तब से उत्तरदायी शासन के लिए बराबर संघर्ष करते रहे। श्री नाथूलाल जैन, पं. अभिन्नहरि व पं. नयनूराम शर्मा के साथ रहकर। अगस्त, 1935 से वे राजनैतिक गतिविधियों में योग देते रहे। 1938 में जब मांगरोल में प्रजामण्डल का आयोजन हुआ वे 100 स्वयंसेवकों के दलपति थे। श्री भैरवलाल ने हाड़ोती अंचल में लोक गीतों की धुनों को हाड़ौती भाषा मे राष्ट्रीय भावों से संवार कर लोगों में राजनैतिक चेतना का प्रसार किया। 1939 मे श्री मोतीलाल जैन ने मांगरोल के अधिवेशन को सफल बनाने में कोई कसर नहीं रखी।[111]

1934 मे हाड़ोती प्रजामण्डल का अधिवेशन दशहरे के अवसर पर हुआ। उसी समय से कोटा में सार्वजनिक प्रतिनिधि सभा कार्य करने लगी थी। इसके अध्यक्ष हाजी फैज मोहम्मद और मंत्री पं. परमानन्द थे। उन्होंने प्रस्ताव पास किया कि उक्त सभा और कोटा राज्य प्रजामण्डल का सीधा सम्बन्ध देशी राज्य लोक परिषद से रखा जावे। 1935 में दशहरे पर हाड़ोती प्रजामण्डल का जलसा हुआ जिसमें हाड़ोती प्रजामण्डल और कोटा राज्य प्रजामण्डल की अलग अलग कार्यकारिणी बनाई गई। हाड़ोती प्रजामण्डल के अध्यक्ष पं. नयनूराम शर्मा और मंत्री तनसुखलाल मित्तल थे। बाद में इसके अध्यक्ष बिरधीलाल काननूगो और मंत्री लक्ष्मीनारायण बांडा हुए। इस प्रकार 1937 से 1940 तक बारां, मांगरोल व कोटा में प्रजामण्डल के अधिवेशन हुए जिसमें कई जनोपयोगी प्रस्ताव पारित हुए। इसके अतिरिक्त 1938 में मई माह में सुल्तानपुर में मण्डल के सहयोग से किसान सम्मेलन हुआ। उसमें किसानों के लिये 22 प्रस्ताव पास हुए जो समाचार पत्रों में प्रकाशित हुए। प्रस्तावों की एक प्रति महकमाखास को भेजी गई थी। सन् 1938 में फतेहपुर सीकरी में उत्तर भारतीय देशी राज्य लोक परिषद का सम्मेलन हुआ। जिसके अध्यक्ष श्री एम. एन. राय थे। जो किसी समय भारत के प्रतिनिधि के रूप में रूस गये थे। स्वागताध्यक्ष ठाकुर देशराज चौधरी थे। स्वागत मंत्री किशनलाल जोशी थे। इस सम्मेलन में पं. अभिन्नहरि ने कई महत्वपूर्ण प्रस्ताव पास करवायें। यह सम्मेलन बाबा नृसिंहदास जी की प्रेरणा से बुलाया गया था।[112]

बूंदी में आन्दोलन और प्रजामण्डल :

बूंदी राज्य में राजनैतिक जाग्रति का प्रथम प्रयास बरड के किसान आंदोलन से होता है जिसका बीजारोपण पथिकजी ने और जिसका नेतृत्व नयनूराम ने किया था। इस आन्दोलन का संक्षिप्त वर्णन पहिले के अध्याय में किया जा चुका है। बरड बूंदी राज्य में वह स्थान है जहां पथिकजी टाडगढ़ से भागने के बाद कुछ समय यहीं रहे थे। बिजोलिया आन्दोलन के समय भी दिन में वे बरड गांव में रहते थे और रात में ऊपरमाल क्षेत्र में सभा करते थे। इन्हीं की प्रेरणा से बरड की पंचायत बिजोलिया की किसान

111– सुमनेश जोशी, राजस्थान में स्वतन्त्रता संग्राम के संनानी, पृ. 531–44.

112– कोटा कान्फीडेन्शल फा. नं. 12/ 33, महकमाखास, अ.बी.

पंचायत की भांति नियमित रूप से बैठकें किया करती थीं। प्राय: ये बैठकें जंगलों में ही हुआ करती थीं। बेगार प्रथा, मनमांने लगान व टैक्स से तथा वसूली की ज्यादतियों से पीड़ित होकर यहां भी कुछ स्थानीय कार्यकर्ताओं में जागृति हुई जिनमें सर्वश्री हरला, देवा, अमरा, नानक भील, सूजानाथ डाबी, प्रतापा डाकोत, बरधन, किसना भील आदि मुख्य थे। इनका नेतृत्व पं. नयनूराम कर रहे दे।[113]

वैसे तो बरड और बूंदी राज्य के कई गांव राजकीय एकतन्त्रीय शासन तथा अन्याय से पीड़ित तो थे ही पर उस गांव को एक विशेष पीड़ा भी थी। बूंदी नरेश रामपुरा और बरड गांव के आसपास के घने जंगल में प्राय: शिकार खेलने जाते थे और लम्बे समय तक वहां ठहरा करते थे। शिकार के समय "हाका" देने के लिए बरड एवं समीप के गांवों से गूजरों, भीलों और कृषकों को एकत्रित किया जाता था। रसद को इकट्ठा करना, चौकीदारी करना महाराजा के केम्प को लकड़ी आदि इकट्ठी कर देना आदि जिम्मेदारियों का बोझ इन गरीब लोगों पर लादा जाता था। ठंडी रातों या तेज धूप के दिनों में बिना पारिश्रमिक लिए इन्हें बेठ बेगार में घसीटा जाता था इस व्यथा से दु:खी हो बरड पंच बोर्ड ने हाका व बेगार से मुक्ति पाने के लिए बूंदी नरेश के पास सभी पंचों के हस्ताक्षर करवाकर आवेदन पत्र प्रस्तुत किया। जब यह आवेदन-पत्र रावराजा रघुवीरसिंह के समक्ष प्रस्तुत किया तो उन्होंने तुरन्त ही इसे अस्वीकार कर दिया और लोगों को "हाके" के तथा बैठ बेगार के लिए पूर्ववत पकड़ना जारी रखा। ऐसे अनेक मसले लेकर गांव गांव में सभाएं, भाषण, जुलूस का दौर आरंभ हो गया जिसके फलस्वरूप किसानों ने बेगार व लाग-बाग एवं लगान देना बंद कर दिया। स्त्रियों ने भी बेगार करने से इन्कारी कर दी।[114]

तदनन्तर सन् 1921 के दिसम्बर माह में यह निश्चय किया गया कि डाबी में एक सभा आयोजित की जाये। बून्दी सेवा संघ के प्रमुख कार्यकर्ता हरिभाई किंकर थे। उन्होंने लोगों के कष्टों का एक लम्बा विवरण तैयार किया। वे गांव गांव जाकर इस विवरण को गांव वालों को सुनाते थे। हरिभाई के सहयोगी सोनीजी थे, जो अन्धे थे। डाबी की सभा में हरिभाई किंकर प्रज्ञाचक्षु सोनी, बरड़ बोर्ड के सदस्य ओर कितने ही भील गूजर शामिल हुए। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य शिक्षित लोग भी इसमें सम्मिलित हुए। इस सभा में उपस्थिति 2-3 हजार व्यक्तियों की थी। उस समय बून्दी में 1 मई, 1922 का यह आदेश था कि कोई सभा नहीं की जावे परन्तु जनता ने राज्य की आज्ञा की अवहेलना करके 13 जून, 1922 को, 2 मई 1922 से 13 जून तक मोरारी, डाबी, गूड़ा, नीमाना आदि गांवों में हजारों किसान स्त्री पुरुषों ने राज्य के विरुद्ध विरोध प्रगट किया। सरकार ने अपनी दमनकारी नीति से उन्हें हताहत किया और जेल की यातना दी।[115]

113– बूंदी इंगलीस रेकार्ड, फा. नं. 252, भाग-II, 1921-22, अ. बी.

114– नवीन राजस्थान, 11 जून, 1922 प. - 1

115– बून्दी रेकार्ड, फा.नं. 252, भा. 1 व 2, 1921–22, अ.बी.,
नवीन राजस्थान, 11 जून, 1922, पृ.–1
पाक्षिक रिपोर्ट, नं. 69, 31 मई, 1922, एजीजी राजपूताना का वाइसराय को, फा.नं. 18, 1922 रा.अ.:
डा. मेपाराम–एग्रेरियन मूवमेन्ट राजस्थान, पृ. 120–122

बरड आन्दोलन :

बून्दी सरकार इस प्रकार की सभा का आयोजन बर्दाश्त न कर सकी। वह आंतक और दमन पर उतर आई। दीवान जोहरी मदनमोहन ने पुलिस का दस्ता पुलिस अधीक्षक इकराम हुसेन के साथ भेजा और जब डाबी की पाल पर, जिसका संकेत ऊपर के अध्याय में किया गया है, श्री हरजी गूजर के संयोजकत्व में एक विशाल जन-समूह 13 जून, 1922 को जोशीले नारे लगा रहा था तथा नानक भील तिरंगे झंडे को ले गीत गाता हुआ मंच पर आया था कि पुलिस ने लाठी चार्ज तथा गोलाबारी आरंभ कर दी। इसमें से एक गोली ने नानक भील को धराशायी कर दिया और प्रतापा डाकोत को तोप के मुंह बांधकर लटका दिया। देवलाल गूजर भी पीछे मारा गया।[116]

अब तो भीड़ पुलिस पर टूट पड़ी स्वय हुसेन को थाने में छिपकर अपनी जान बचानी पड़ी। कुछ समूह ने शहीद नानक की लाश को उठाया और उसे सुदूर जंगल में देवगढ़ के पास एक नाले के किनारे ले जाकर दाह संस्कार द्वारा अमर कर दिया। आज भी उसके नाम और उपलब्धियों के गीत बड़े भाव विभोर होकर गाये जाते हैं। पुलिस फिर भी अपनी काली करतूतों से बाज न आई। उसने लगभग 150 लोगों को जख्मी कर दिया और 14 मुख्य कार्यकर्ताओं को गिरफ्तार कर हथकड़ियों व बेड़ियों से जकड़ कर जेल में ठूंस दिया। जब लगभग 300 स्त्रियों ने अपने आदमियों को छुड़ाने का प्रयत्न किया तो इनमें से कई स्त्रियों को गहरी चोटे आई।[117]

इस नृशंस कार्यवाही ने आन्दोलन को और प्रज्जवलित कर दिया। लोगों ने खेराड़, गोकुलपुरा पराना आदि में आन्दोलन को जारी रखा। सेवा संघ के कार्यकर्ताओं पर संदेह किया गया कि इस हलचल में वे ही लोग थे। पुलिस की रिपोर्ट के अनुसार गोपाल लाल, कोटिया जो बूंदो में समृद्ध व्यक्ति थे, उनको इस आन्दोलन से जुड़े होने के संदेह में उनकी सारी सम्पत्ति जब्त कर ली और उन्हें कोटा जाने को विवश होना पड़ा। पं.नयनूराम तथा नागर परिवार भी गिरफ्तार कर बेघर कर दिये गये।[118]

बूंदी के बरड जिले के आन्दोलन पर आमानुषिक अत्याचार पर सेवा संघ ने "ट्रेजेडी इन बून्दी स्टेट" नामक पुस्तिका को पार्लियामेंट के सदन तक पहुंचाया जहां एक उदार दल के सदस्य ने प्रश्न किया कि बून्दी रियासत में बिना मुकदमा चलाये निर्दोष लोगों को क्यों जेल में बंद किया। इसका जवाब जब बून्दी राज्य से मांगा गया तो बन्दियों को मुक्त कर दिया

116- डाबी केम्प से रिपोर्ट पोलिटिक्स ऐजेन्ट, हाड़ोती और टोंक, 14 जून, 1922 ईगंलिश रेकार्ड नं. 252, भा. 2, 1921-22 अ.बी. में नृशंस अत्याचार पर पड़दा डाला गया। इसका विस्तार से वर्णन, नवीन राजस्थान, 25 जून, 1922, पृ. 1, 18 पर उपलब्ध है।

117- बूंदी राज्य में स्त्रियों पर अत्याचार, राजस्थान सेवा संघ, अजमेर, 30 जून, 1922

118-वही

और कुछ रियायतें देकर मामले को रफा दफा किया गया। महात्मागांधी ने भी इस अत्याचार की "हरिजन" में निन्दा की और पथिकजी को बधाई संदेश भेजा। ये बून्दी के असहयोग आन्दोलन की राजतन्त्र पर करारी चोट थी।[119]

बून्दी में जनजागृति :

बरड़ की जन चेतना की आग हाड़ोती में फैल गई। बून्दी उन दिनों राष्ट्रीय चेतना का केन्द्र बनता जा रहा था। सेवा संघ अजमेर की शाखा वहां स्थापित हो चुकी थी और उसके प्रथम अध्यक्ष नयनूराम बने थे। तनसुखलाल मित्तल ने अपने सहयोगियों की संख्या बढ़ाई और उसका कार्य क्षेत्र विस्तृत किया। इसी प्रकार बून्दी में एक सार्वजनिक पुस्तकालय बनाया गया। उसका उद्घाटन विजयसिंह पथिक ने किया था। इसमें समस्त समाचार पत्र जो उग्र नीति का समर्थन करते थे, मंगवाये जाते थे। इसी पुस्तकालय में राजनैतिक कार्यकर्ता एकत्रित होते थे और आन्दोलन की योजना बनाते थे।[120]

इन गतिविधियों को रोकने के लिए 30 जून, 1923 को विशेष आदेश से राजस्थान सेवा संघ के प्रमुख 16 व्यक्तियों पर राज्य में प्रवेश की रोक लगा दी। ऐसे व्यक्तियों में विजयसिंह पथिक, रामनारायण चौधरी, हरजी ब्रह्मचारी, सत्य भक्त, अन्जना देवी आदि मुख्य थे। इस तरह अजमेर के तरुण राजस्थान और नवीन भारत तथा कानपुर के प्रताप और नागपुर के प्रणवीर पत्रों को राज्य में मंगवाने नहीं जा सकते थे। पं. नयनूराम, नारायणसिंह एवं भंवरलाल सुनार को 4 वर्ष की कैद की सजा दी गई।[121]

इन रुकावटों के बावजूद शासन के विरुद्ध संघर्ष चलता रहा। 1926 में बेगार, चराई और शासन सुधार की समस्या को लेकर श्री माणिक्यलाल वर्मा और नयनूराम के नेतृत्व में कृषकों और जनता का पुनः आन्दोलन हुआ, परन्तु इसे दमन नीति से कुचल दिया गया।[122]

शहीद रामनाथ कुदाल तथा गोपीलाल माहेश्वरी :

बून्दी राज्य में, अन्य राज्यों की भांति मृत्यु के समय एक कुप्रथा थी कि जब राजा की मृत्यु हो जाती थी तो सारे राज्य में सभी को "भदर" अर्थात सर, दाढ़ी और मूंछे मुंडवाना पड़ता था और राजपरिवार की क्रियाकर्म और बैठक का दस्तूर पुरोहित के

119-नानक भील-मदन मन्दिर, कांग्रेस शताब्दी समारोह समिति, जयपुर, पृ. 4-9

120-बून्दी रेकार्ड, नं. 252, भा 3, 1922-23, अ.बी.

121-नवीन राजस्थान, 20 मई, 1923, बून्दी इंगलिश रेकार्ड, फा. नं. 23, 1923-24 अ.बी.

122-बून्दी इंगलिश रेकार्ड, फा. नं. बी. 11, 1924-25, अ.बी.;
बून्दी इंगलिश रेकार्ड, फा. नं. 249, भा. 2, 1926-27, अ.बी.;
डॉ. पेमाराम, द एग्रेरियन मूवमेंट इन राजस्थान, पृ. 130-135

यहां किया जाता था। बून्दी में ये काम दाहिमा ब्राह्मणों को सुपुर्द था। जब 1931 में पूर्व महाराजा की भद्‌याणी जी मृत्यु हो गई तो रामनाथ कुदाल ने इनके अंतिम संस्कार करने से मना कर दिया। पुलिस ने बजाय कुदाल को घोड़े से बांध कर घसीट कर ले गए, जिससे उसकी मृत्यु हो गई।[123]

इस घटना को लेकर जनता में रोष व्याप्त हो गया। सरे बाजार सभा हुई और वह जुलुस में बदल महकमाखास पहुंची। वहां अत्याचारी सरकार के विरोध में नारे लगने लगे। तत्क्षण राज्य ने गोलियां चलादी जिससे गोपीलाल महेश्वरी भी धराशायी हो गये। इसके विरोध में सात दिन की हड़ताल नगर में रही। इस अराजकता का लाभ उठाकर अंग्रेज सरकार ने मेजर डब्ल्यू वेब को बूंदी का दीवान बना दिया।[124]

बून्दी में आन्दोलन और प्रजामण्डल :

बून्दी में वेब के आने से टैक्सों में वृद्धि, पुलिस के जुल्मों की भरमार और लोगों पर अत्याचार का तांता लग गया। ऐसे दम घोटू वातावरण में यही 1931 में प्रजामण्डल की स्थापना हुई जिसका श्रेय नयनूराम शर्मा को था। इसकी कार्यकारिणी बनाई गई जिसके अध्यक्ष श्री गोपाललाल कोटिया, गोपाललाल जोशी, मंत्री, श्री मोतीलाल अग्रवाल प्रचार मंत्री थे तत्पश्चात मंडल के प्रधान ऋषिदत्त मेहता और मंत्री पूनमचन्द माली बने। कुल कार्यकारिणी के ग्यारह सदस्य थे जिसमें स्थानीय लोगों के अतिरिक्त हरिभाई किंकर, वीरदास आदि अन्य कार्यकर्ता बाहर के थे। इसी संस्था के साथ सर्व श्री केसरीलाल श्री वाजिद हुसेन, भंवरलाल, जयलाल आदि भी जुड़े थे, जिन्होंने इसकी गतिविधि में बड़ी रुचि ली थी। इसी संस्था द्वारा नगर में सात दिन की हड़ताल आयोजित की गई थी जब कि रामनाथ कुदाल की हत्या राज्य के कोप के कारण करवाई गई थी। जब आन्दोलन ने धीरे धीरे जोर पकड़ा तो कई व्यक्तियों को राज्य से निकाल दिया गया या कैद कर लिया गया। इस संगठन को निर्बल बनाने में बून्दी के दीवान केप्टिन वेब का हाथ था।[125]

जब से प्रजामण्डल स्थापित हुआ जन जागरण में बड़ी तेजी आई। इसके रचनात्मक कार्यक्रम में प्रभात फेरी, विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार, विदेशी शराब की दुकानों पर पिकेटिंग, खादी का प्रचार और अंग्रेजी दासता के विरुद्ध भाषण आदि थे। यहां के आंदोलन व गतिविधि का प्रचार तथा अंग्रेजों और राजाओं के जुल्मों का वर्णन गणेश, स्वराज्य, राजस्थान आदि पत्रों में बड़ी निर्भीकता से छपते थे जिनको जनता को वस्तु स्थिति का पता लगे। सरकार ने इन पत्रों की सूचना से क्रुद्ध होकर स्वराज्य एवं गणेश का रियासत में प्रवेश निषिद्ध कर दिया। परन्तु अभयकुमार पाठक के प्रयास से साप्ताहिक नवज्योति, जो अजमेर से निकलता था, बूंदी आन्दोलन पर बड़ी इमानदारी से सूचनाएं

123–राजस्थान डिस्ट्रिक्ट गजेटियर, बून्दी, पृ. 59

124–मदन मंदिर, नानक भील, कांग्रेस शताब्दी समारोह समिति राजस्थान, जयपुर, पृ. 11.

125–राजस्थान डिस्ट्रिक्ट गजेटियर, बून्दी, पृ. 59.

छापता रहा । जब आन्दोलन इस विधि से जोर पकड़ने लगा तो नयनूराम शर्मा व उनके साथियों को रियासत से बाहिर निकाल दिया गया । साथ ही 21 अक्तूबर, 1936 को बूंदी क्रिमिनल लॉ को संशोधित कर यह प्रावधान रखा गया कि यदि कोई व्यक्ति राज्य के विरुद्ध किसी आन्दोलन में भाग लेता है या जो अमन अमान के लिए खतरा पैदा करता है, तो उस पर जुर्माना व एक वर्ष के कारावास की सजा दी जा सकती है । परन्तु इसके विपरित मवेशी निकासी और जकात के प्रश्नों को लेकर 1939 में आन्दोलन पुनः छेड़ दिया गया । राज्य ने भंवरलाल जमादार और गोर्धन चौकीदार को उनके हलचल से सम्बन्ध के आरोप में दण्डित किया और कई गूजरों को जो इसमें जुड़े थे उनके साथ सख्ती की गई । परन्तु मण्डल उत्तरोतर प्रभावशाली बनता गया ।[126]

झालावाड़ और असहयोग आन्दोलन :

1921–31 में महात्मा गांधी ने भारत में असहयोग आन्दोलन चलाया जिसका प्रभाव झालावाड़ पर भी पड़े बिना नहीं रह सका । सन् 1921 में पंडित रामनिवास शर्मा ने लोक जाग्रति के उद्देश्य से "सारम" नामक एक मासिक समाचार-पत्र जारी किया । उसमें विभिन्न राज्यों के राजनैतिक आंदोलनों का प्रकाशन करके झालावाड़ की जनता को भी इस दिशा में प्रेरणा देने का प्रयास किया गया था । इस जागृति के फलस्वरूप झालावाड़ की जनता वैधानिक सुधारों के लिए आंदोलन करने लगी । तब राजराणा ने प्रशासन को लोकतांत्रिक बनाने के बहाने एक केबिनेट का निर्माण किया और स्टेट कौंसिल बनाई । परन्तु केबिनेट के मंत्री स्टेट कौंसिल के प्रति नहीं अपितु राजराणा के प्रति उत्तरदायी थे । ये परिवर्तन केवल दिखावा था ।[127]

हाड़ौती–प्रजामण्डल का झालावाड़ में प्रवेश :

1930 तक झालावाड़ में कोई विशेष राजनैतिक हलचल नहीं होने पाई । परन्तु 1931 से फिर हाड़ौती प्रजा मण्डल का झालावाड़ पर भी प्रभाव पड़ने लगा । यहां जन जागृति पैदा करने वाले मुख्य कार्यकर्त्ता गोपाल लाल कोटिया, पं. नयनूराम और तनसुखलाल मित्तल तथा नृसिंह दास आदि थे । पं. नयनूराम और गोपाल लाल कोटिया झालावाड़ में प्रायः आया जाया करते थे, इससे पूर्व नेनूराम कोटा राज्य की पुलिस में थानेदार के पद पर था । परन्तु किसी मामले में फंसाये जाने के परिणामस्वरूप उसको त्याग-पत्र देना पड़ा था । गोपाल लाल कोटिया बून्दी के एक सम्पन्न महाजन घराने का नवयुवक था । इन लोगों की कार्यवाहियों को झालावाड में बड़ी बारीकी से देखा जाता था । और झालावाड़ के दीवान भारत सरकार के पोलिटिकल डिपार्टमेंट को इसकी सूचना दिया करता था । एक पत्र में उसने लिखा था कि "कोटा निवासी नयनूराम प्रायः झालावाड़ आया

126-बूंदी कान्फीडेन्शल फाईल नं 17, 1936, नं 54, 40–41, 1938, थाना लाखेरी का आई.जी.पी. बून्दी के नाम पत्र, 3 सितम्बर, फा.नं. 53/ 40–41, बी. नं. 2, अ.बी.

127–कोन्फीडेन्शल सेक्सन बस्ता नं. 52–53, फा.नं. 86 (ए)
कोन्फीडेन्शल सेक्सन बस्ता नं. फा.नं. 6 और 15, अ.बी.

करता है और प्रत्यक्ष में यह पत्थरों की खानों के काम को देखने आता है। इस रियासत की पुलिस को हिदायत कर दी गई है कि नेनूराम की गतिविधियों पर निगाह रखी जाय। फिर भी नेनूराम गुप्तरूप से अपना काम करता रहा। पत्थरों की खानों का काम तो गौण था उनका मुख्य उद्देश्य तो झालावाड़ की जनता में जागृति उत्पन्न करना था। इस प्रकार पं. नेनूराम और श्री गोपाल लाल कोटिया के प्रयासों से झालावाड़ राज्य में राजनैतिक जागृति उत्पन्न होने लगी। इस जागृति की गति में तीव्रता लाने में श्री तनसुखलाल का बड़ा योगदान था। वे झालावाड़ के कस्बों-कस्बों में घूम-घूम कर हाड़ौती प्रजामण्डल के सदस्य बनाते थे और उत्तरदायी शासन का सन्देश लोगों तक पहुंचाते थे।[128]

मित्रमण्डल और झालावाड़ प्रजामण्डल की गतिविधि :

हाड़ौती प्रजामण्डल की गतिविधियों को देखकर झालावाड़ के नवयुवकों में भी अपने यहां एक राजनैतिक संगठन बनाने का उत्साह उत्पन्न हुआ। अतः उस संगठन का नाम उन्होंने मित्र मण्डल रखा जिसका नेतृत्व बालगोविन्द तिवाड़ी ने किया था। इस संस्था की श्री रामनारायण टेलर ने भी सदस्यता स्वीकार करली थी जो अहमदाबाद से राष्ट्र सेवा के संस्कार लेकर झालावाड़ आये थे। इस संस्था की स्थापना सन 1923 में हुई थी। कहने को तो इस संस्था का उद्देश्य सामाजिक और आर्थिक उन्नति करना था परन्तु वास्तव में तो उसमें राजनैतिक जागरण उत्पन्न करने का ध्येय छुपा था। 1940 में यह संस्था प्रजामंडल में परिणित कर दी गई। इस संस्था ने घोषित किया कि उसका उद्देश्य उत्तरदायी शासन स्थापित करना है। राज्य ने इस संस्था को मान्यता न दी तो आये दिन सत्याग्रह, हड़ताल, लाठी चार्ज व पकड़ धकड़ होती रही। फिर भी इसके कार्यकर्ता बेगार, लगान व लेवी के विरुद्ध आंदोलन चलाते रहे जिसमें श्री विठ्ठल प्रसाद शर्मा ने बड़ी रुचि दिखाई। इसी तरह श्री रामचन्द्र टेलर, जो जाति से मेघवाल थे पहिले बाल मित्र मंडल, छात्र मण्डल तथा आजाद हिन्द दल के सदस्य थे, झालावाड़ प्रजामण्डल के प्रथम पंक्ति के कार्यकर्ता थे। उन्होंने प्रजामंडल के उद्देश्यों को गांव-गांव घूमकर लोगों को समझाया। जहां वे जाते थे पुलिस उनका पीछा करती थी जिससे मार पीट तथा हिरासत उनके जीवन का अंग बन गया। प्रजामण्डल के सदस्य हरिजनों में शिक्षा का प्रचार करते थे। श्री रतनलाल हिन्दुस्तानी जिनका जन्म ब्राह्मण परिवार में हुआ था। 1939 में झालावाड में हरिजन पाठशाला के अध्यापक बन एक मिसाल कायम की। प्रजामण्डल में रचनात्मक कार्य के पहलू को श्री मांगीलाल भव्य ने सम्भाल रखा था। इन्होंने पड़त-इखराज आंदोलन चलाकर कृषकों को सरकारी लूट से बचाया। इन्होंने बेगार और जागीरदार प्रथा का घोर विरोध किया। नमक कानून भंग एवं खादी प्रचार में इन्होंने झालावाड़ में नेतृत्व किया। कर्मचारी संघ आंदोलन और अस्पृश्यता निवारण के प्रति निष्ठा रखने तथा सभा सोसाईटी के पर्चे वितरण करने तथा आंदोलनकारी साहित्य को घर घर बांटने, झालावाड़ प्रजामण्डल

128—झालावाड़ के दीवान का ईस्टर्न राजपूताना रियासतों के भरतपुर स्थित पोलिटिकल ऐजेन्ट के पी.ए. के नाम पत्र नं. 269, फरवरी 6, 1336 बस्ता नं. 52 (बी) फा.नं. 160 अ.बी.

के प्रति श्रद्धा उत्पन्न कराने में भव्यजी ने अपूर्व भूमिका निभाई। इन राजनैतिक प्रवृत्तियों में भाग लेने के कारण राज्य ने इन्हें दस नम्बरिया घोषित कर रखा था और उन पर कई इलजाम लगा रखे थे। परन्तु वे मण्डल की अविचल गति से सेवा करते रहे।[129]

अलवर में असन्तोष और आन्दोलन :

महाराजा तेजसिंह के गद्दी पर बैठने के समय से ही अलवर राज्य में राजनैतिक जागृति हुई। कोई न कोई आन्दोलन बराबर होने लग गया। अलवर राज्य में सबसे प्राचीन संस्थान आर्य समाज थी जिसकी स्थापना सन 1900 ई. की जुलाई माह में वासुदेव खंडेलवाल के प्रयत्नों से हुई थी। यह मुख्यत: सामाजिक एवं धार्मिक संस्था थी, लेकिन राज्य इसको भी संदेह की दृष्टि से देखता था। ई.सन् 1926 में आर्य समाज के मंत्री को इसी कारण जेल जाना पड़ा था। वैसे अलवर के प्रशासकों की आन्तरिक राजनैतिक स्थिति से भी जनता परेशान थी। शनैःशनैः वहां की जनता में राजनैतिक चेतना का विकास हो रहा था तथा पास ही आगरा नगर होने के परिणामस्वरूप वहां के नेताओं से भी उन्हें प्रेरणा मिलती थी। अलवर राज्य में कोई विधान नहीं था। महाराजा जो भी आदेश देते थे वही कानून और विधान माना जाता था। राज्य में कोई समाचार पत्र भी प्रकाशित नहीं होता था। भाषण देने की स्वतन्त्रता नहीं थी। राजनैतिक सभाएं भी नहीं की जा सकती थी। अलवर में एक राजद्रोह कानून जारी था, जिसके अनुसार न कोई सभा हो सकती और न किसी राजनैतिक विषय पर बहस की जा सकती थी। इतना ही नहीं लिखित या मुद्रित पर्चे भी नहीं बांटे जा सकते थे। इस स्थिति से विरोध भड़क उठा। इस के अन्तर्गत 13मई, 1925 में अलवर में नीमूचाना काण्ड हुआ, जिसका संक्षिप्त वर्णन किया जा चुका है। वहां पर अलवर सरकार ने भूमिकर में वृद्धि कर दी थी जिसका कृषकों ने प्रबल संघर्ष द्वारा विरोध किया। परन्तु जन भावना की ओर राज्य ने कोई ध्यान नहीं दिया और बड़ी क्रूरता के साथ कृषकों का दमन किया गया। सेना ने गांव को सब ओर से घेर कर गोलिया चलाई जिसमें स्त्रियां भी मारी गई। गुप्त रिपोर्टों से प्रकट हुआ कि 353 घर नष्ट हो गये, 71 पशु मारे गये और लगभग एक लाख की सम्पत्ति जला दी गई। 95 पुरुष गोली के शिकार हो गये और 259 से अधिक पुरुष आहत हो गये। तत्क्षण 37 व्यक्तियों को गिरफ्तार किया गया। महात्मा गांधी ने उसकी निन्दा की और दिल्लों के रियासत ने इसे जलियावाला के नृशंस हत्याकांड से तुलना की।[130]

129– सुमनेश जोशी, राजस्थान में स्वतन्त्रता संग्राम के सेनानी, पृ. 739–746 ; राजस्थान डिस्ट्रिक्ट गजेटियर, झलावाड़, पृ. 273

130– तरुण राजस्थान, 31 मई, 1925, 14 जून, 1926, 24 दिसम्बर, 1925, ज्यूडीशल रेकार्ड, अलवर, फा.नं. 315, जे–23, 1925, अ.अ, इस कांड में हानि और हताहत के आंकड़े विभिन्न है–जैसे शासकीय पत्र में आगजनी के कारण 144 मकान जले, 60 पशु मारे गये, लगभग 50 व्यक्तियों की जान गई और हजारों की सम्पत्ति को भस्मीभूत किया गया।

नोमूचाना हत्याकांड के पश्चात भी अलवर राज्य सुधार की ओर नहीं बढ़ा ; वहां का वायुमण्डल पूर्ववत् तनावपूर्ण बना रहा। यह राज्य ब्रिटिश इलाके से सटा हुआ था इसलिए ब्रिटिश भारत की चेतना यहां सरलता से पहुंचती थी और लोगों में राजनैतिक जाग्रति बढ़ती जाती थी। इसके उपरान्त भी वहां जनता की मांगों को व्यवस्थित रूप से सरकार के सामने रखने के लिए कोई संस्था नहीं थी। राज्य में कोई उल्लेख के योग्य समाचार-पत्र भी नहीं था राजनैतिक विषयों पर अपने विचारों को प्रकट करने की और इसके लिए कोई सभा करने की छूट नहीं थी। अलवर राज्य में एक ऐसा कानून था कि किसी राजनैतिक विषय पर बहस करने के लिए कोई सभा नहीं की जाए और ऐसे मामलों का कोई छपा हुआ या लिखा हुआ पर्चा प्रदर्शित नहीं किया जाएगा। यहां तक कि सन् 1927-28 में महाराजा अलवर ने आदेश देकर लगभग 6 समाचार-पत्रों का जो बाहर से अलवर में आते थे बन्द कर दिया। किसी भी प्रकार के समाचार-पत्रों का एक पृष्ठ भी यदि किसी के पास मिलता था तो उसे 5 वर्ष का कठोर दण्ड दिया जाता था और 5 हजार रुपये तक जुर्माना भी किया जाता था। विशेष अवस्था में उसे अपनी जन्म-भूमि से सदैव के लिए निर्वासित कर दिया जाता था। इससे महाराजा को जनता में कड़ी निन्दा की जाने लगी।[131]

मुसलमानों का आन्दोलन :

इसी अर्से में अलवर में मुसलमान हिन्दुओं के विरुद्ध हो गये थे। विरोध करने वालों में विशेषकर मेव जाति के मुसलमान थे। अलवर राज्य में उर्दू की शिक्षा के लिए कोई व्यवस्था नही थी। इस प्रश्न को लेकर मेव मुसलमानों ने बड़ा दंगा मचा दिया था। वे चाहते थे कि शिक्षा का माध्यम उर्दू होना चाहिए और स्कूलों में कुरान की शिक्षा पर कोई पाबन्दी नहीं होनी चाहिए। इन दोनों प्रश्नों को लेकर मेव मुसलमानों ने मई, 1932 में बड़ा आंदोलन प्रारम्भ किया और यह पास के ब्रिटिश इलाकों में भी फैल गया।[132]

मुसलमान लोग यह मांग करने लगे कि भारत सरकार को अलवर राज्य में हस्तक्षेप करना चाहिए। विधान सभा के सदस्य मुहम्मद यासीनखां और पंजाव सरकार के रेवेन्यू मेम्बर सिकन्दर हृय्यातखां ने इस विषय में महाराजा को एक जोरदार पत्र लिखा। इतना ही नहीं जामा मस्जिद दिल्ली का प्रधान मौलवी जुलाई, 1932 को भारत सरकार के पोलिटिकल सेक्रेटरी से मिला और जोरदार शब्दों में उसने मांग की कि अलवर राज्य में हस्तक्षेप किया जाय। श्री जफरूल्लाखां मेम्बर विधान सभा ने भी भारत के सेक्रेटरी को ऐसा ही पत्र लिखा। फिर गुड़गांव रोहतक आदि जिलों में मुस्लिम जत्थे अलवर में घुसकर मुस्लिम मांगों पर जोर देने लगे और यह धमकी देने लगे कि यदि मांगें स्वीकार नहीं की जावेगी तो सीधी कार्यवाही की जावेगी। वे लोग कहीं-कहीं आग भी लगाने लगे। राज्य

131- टाइम्स आफ इन्डिया, 6 मई, 1929; रियासत, 11 मई, 1929.

132- लाइट में प्रकाशित, लेख अलवर स्टेट और मुस्लिम, 1 मई, 1932; फा.नं. 338 पी.भो-1 सीक्रेट, 1932, फो.पो. रा. अ., रेनोल्ड का पत्र राजपूताना ए.जी.जी. की, 14 मई, 1932, न. 338 पी., सीक्रेट, फो.पो., रा.अ.

कर्मचारियों की ओर गोलियां चलाने लगे और राज्य के मार्ग में आतंक मचा दिया। श्री नत्थूराम मोदी ने पं. हरिनारायण शर्मा से कन्धा से कन्धा लगाकर इस हिन्दू-मुस्लिम दंगे को रोकने में बड़ी सहायता की। तब महाराजा अलवर ने 9 जनवरी, 1933 को अंग्रेज सरकार से सैनिक सहायता की मांग की। महाराजा हृदय से तो नहीं चाहते थे कि भारत सरकार की सेना बुलाई जाए परन्तु स्थिति बहुत ही बिगड़ती जा रही थी। सेना के कारण शान्ति स्थापित हो गई। इस पर भारत सरकार ने महाराजा से कहा कि अपने यहां एक अंग्रेज अफसर को रेवेन्यू मंत्री नियुक्त करें और एक अंग्रेज अफसर को ही इसपेकटर जनरल पुलिस बनावे। महाराजा को यह सुझाव मानने पड़े।[133]

महाराजा का इंग्लैण्ड प्रस्थान :

महाराजा की राष्ट्रीय भावना के प्रति सहानुभूति थी और वे अंग्रेज अधिकारियों के हस्तक्षेप को पसन्द नहीं करते थे। बल्कि अंग्रेजी सत्ता के विरुद्ध भाषण देकर ऊपरी अधिकारियों को रुष्ट कर दिया था। वे भारतीय संस्कृति व हिन्दी भाषा के पोषक थे। ब्रिटिश सरकार महाराजा के रुख को पसन्द नहीं करती थी। इसलिए उसने महाराजा से कहा कि कि वे 2 वर्ष के लिये अपने राज्य से बाहर चले जायं और सारे प्रशासनिक अधिकार एफ.वी. वायली को दे दें। यदि वे ऐसा नहीं करेंगे तो एक जांच कमीशन नियुक्त किया जावेगा, जो महाराजा के प्रशासन कार्यों की जांच करेगा। ऐसी स्थिति में विवश होकर महाराजा को 1933 में इंग्लैण्ड जाना पड़ा जहां उन्होंने सम्राज्ञी से मिलने की इच्छा प्रकट की परन्तु उनको अनुमति नही मिली। परन्तु कुछ समय पश्चात् उनको अलवर लौट आने की स्वीकृति मिल गई। उसका व्यक्तिगत खर्च 25 हजार रुपया घटाकर 12500/- रु. प्रतिमाह कर दिया गया। परन्तु पुन: उनका निर्वासनकाल बिना किसी अवधि से बढ़ा दिया गया। 20 मई, 1937 में उनकी मृत्यु पेरिस में हुई और उनकी अन्त्येष्टि 12 जून को की गई।[134]

1935 में वायली के अलवर से चले जाने के पश्चात केम्प-वेल राज्य का प्रधानमंत्री नियुक्त किया गया। उसने उदार नीति से कार्य किया इसलिए उसके प्रशासनकाल में किसी भी प्रकार की गड़बड़ी नहीं हुई। उसके चले जाने के पश्चात् प्रायर प्रधानमंत्री बना। इसी मध्य महाराजा जयसिंह का देहान्त हो गया और चान्दपुर ठिकाने के जागीरदार गंगासिंह के पुत्र तेजसिंह को गोद लेकर 22 जुलाई, 1937 को अलवर की गद्दी पर बिठा दिया गया। परन्तु तेजसिंह के राज्यारोहण का जनता ने प्रबल विरोध लिया। कारण यह था

133- जफरुल्लाखां का पत्र मेटकाफ को, 20 जुलाई, 1932, फा.नं. 338. पी.भा-1, सीक्रेट 1932; फो.पो. कोनफीडेन्शल डायरी 19 जनवरी, 1933 फा.नं. 338, रा.अ.; महाराजा जयसिंह का पत्र ओग्लवी को, 27 दिसम्बर, 1932, फा.नं. 43/3 भा-1, 1933, रा.अ.;
होम सेक्रेट्री का नोट, 18 जन. 1933 फा.नं. 43, पो. 1933 रा.अ.; के. एस. सक्सेना, पोलिटिकल अवेकनिंग, पृ. 189-191,

134- इंडियन रिव्यू, जुलाई 1933 पृ. 55, अक्टूबर 1934, पृ. 693.

कि यह कार्य स्व. महाराजा की वसीयत के विरुद्ध था। परन्तु विरोधियों को राजद्रोही मानकर उनके नेताओं को जेल में रख दिया गया। इनमें हरिनारायण शर्मा, कुंज बिहारी मोदी प्रमुख थे। विरोध शांत हो जाने पर गिरफ्तार किये गये लोगों को भी छोड़ दिया गया।[135]

बहरोड गोलीकांड और आंदोलन :

जब आयर दीवान था तो बहरोड़ में 1937 को बड़ा गोलीकांड हुआ। आयर की नीति उग्र और कठोर थी। वह किसी की कुछ नहीं सुन सकता था और प्रबल साम्राज्य वादी नीति का पोषक था। इस गोली कांड में 16 हिन्दू मारे गये और 100 घायल हुए। आयर कूटनीति का अनुसरण करता था इसलिए उसने मेव लोगो का पक्ष लेकर हिन्दुओं पर गोलियां चलाई थीं।[136]

उग्र आन्दोलन :

1937 के पश्चात् अलवर में राजनैतिक जागृति तीव्र हो गई और निरन्तर आन्दोलन और राज्य द्वारा दमन होने लगे। आयर को कई संस्थाओं पर संदेह होने लगा कि वे राजनैतिक आन्दोलन को प्रोत्साहन देती थी। ऐसी संस्था में आर्य समाज की संस्था मुख्य थी जिसकी स्थापना 1900 में ही हो चुकी थी थी। आयर उसकी गतिविधियों पर कड़ी दृष्टि रखता था।[137]

कांग्रेस का प्रभाव और प्रजा मण्डल :

हमने पढ़ा कि सन् 1931 के आसपास भारतवर्ष में उग्र राजनैतिक आन्दोलन चल रहा था। उसका प्रभाव अलवर पर भी हुआ। 1933 में अलवर में कांग्रेस समिति की स्थापना हुई परन्तु इसके सदस्य पर राजद्रोह के मुकदमें चलाये गये और उन्हें सजाएं दी गई। राजद्रोह एक्ट का जनता ने बड़ा विरोध किया। सरकार दमन करती रही परन्तु आन्दोलन शांत नहीं हुआ और दिन प्रतिदिन बढ़ता ही गया। तब सरकार ने विवश होकर 1921 का सीडीशन मीटिंग एक्ट को 1939 में समाप्त कर दिया और फिर रजिस्ट्रेशन आफ सोसाइटी एक्ट लागु किया गया। यह एक्ट अंग्रेज सरकार ने सभी रियासतों में जारी करवाया था। किसी रियासत ने इसका अक्षरशः पालन किया और किसी ने इसको नाम मात्र के लिए लागू किया। एक्ट लगने के पहले कांग्रेस समिति ने अपना नाम बदलकर 1938 में प्रजामण्डल रख लिया था उसे बदल कर प्रोग्रेसिव एसोसियेशन के नाम अगस्त, 1940 में रजिस्ट्री दिखावे के लिए करवाली। रजिस्ट्री होते ही प्रजामण्डल ने अलवर राज्य के बड़े बड़े कस्बों में अपनी शाखाएं स्थापित कर

135– डेलीमेल, मई 21, 1937 टाईम्स लंदन, मई 21, 1937

136– हिन्दुस्तान टाइम्स, मई 22, 1937; सिविल एण्ड मिलिट्री गजट, 21, 1937, नेशनल काल, मई 21, 1937.

137– हिन्दुस्तान टाइम्स मई 22. 1937; सिविल एण्ड मिलिट्री गजट, मई 21, 1937– नेशनल काल, मई, 21, 1337

दीं। राजगढ़, तिजारा, खैरथल, रामगढ़, मांडल आदि में शाखाएं खुलवा कर प्रचार करने लगी। सरकार चाहती थी कि प्रजामण्डल (प्रोग्रेसिव एसोसियेशन) कांग्रेस के साथ अपना सम्बन्ध न जोड़ें. परन्तु उसने इस आदेश की अवहेलना की। इस पर राज्य ने दमन नीति का आश्रय लिया और कितने ही राजनैतिक कार्यकर्ताओं को गिरफ्तार कर लिया, जिसमें लक्ष्मण स्वरूप त्रिपाठी प्रधान कांग्रेस कमेटी अलवर, हरिनारायण शर्मा सचिव प्रजामण्डल और राधाचरण गुप्त सचिव कांग्रेस कमेटी उल्लेखनीय हैं। इन सभी को 2–2 वर्ष के कैद की सजा दी गई। इन्द्रसिंह आजाद और नाथूराम मोदी को एक एक वर्ष की कैद दी गई। तब हरिभाऊ उपाध्याय को कांग्रेस ने अलवर भेजा कि स्थिति की यथावत् जांच करें। अलवर के लोगों ने कांग्रेस के प्रेसीडेन्ट को भी पत्र लिखा था कि वे हस्तक्षेप करें।[138]

प्रजामण्डल ने 2 जून. 1941 को जो रचनात्मक काम हाथ में लिया था वह जागीर समस्या से सम्बद्ध था। श्री शोभाराम, अध्यक्ष अलवर राज्य प्रजामण्डल ने राजगढ़ जागीर मुआफी प्रजा परिषद् का आयोजन किया जिसमें 500 किसानों ने जागीर तथा मुआफी के गांवों से भाग लिय था। परिषद् के उद्घाटन भाषण में श्री सत्यदेव विद्यालंकार ने जागीरदारों के जुल्म की निंदा की और इस बात पर बल दिया कि लाग-बाग, बेगार, आदि को समाप्त कर किसानों को भूमि, वृक्ष, मकान आदि पर मालकाना हक देना चाहिये। लगान की दरें जागीर व खालसों के गांवों में पेमाइश के अनुकूल निर्धारित की जानी चाहिये। इनके गांवों में स्कूलों और अस्पतालों की व्यवस्था होना नितांत आवश्यक है। जागीरदारों के गांवों की वसूली राजकोय अधिकारियों द्वारा किया जाना उचित है। परिषद् द्वारा इस सम्बन्ध के प्रस्ताव पास किये गये और फिर राजगढ़ में जुलूस निकला जिसमें "जागीरदारों के जुल्म का नाश हो" आदि नारे लगाये गये। इस प्रकार के कार्यक्रम से प्रजामण्डल अलवर में लोकप्रिय हो गया। इसी तरह मास्टर भोलानाथ के नेतृत्व में एक विशाल प्रदर्शनी। 1 अक्टूबर से 5 अक्टूबर 1941 को अलवर में लगाई गई जिसका उद्घाटन महादेव देसाई ने किया था। अन्य गणमान्य नेताओं के प्रभावशील भाषण से मण्डल की प्रगति में गति पैदा हो गई।[139]

---

138. कान्फीडेन्शल फाइल अलवर ग्रुप ए न. 1521, एफ, आर्डिनोन्सेज, 1933, अ.बी.; प्रजामण्डल अलवर फा, नं. 4–5; आन्दोलन, 1935, अ.बी.; अलवर प्रजामण्डल के नियम, आर्टिकल 2, अ. बी.; हिन्दुस्तान टाइम्स, जून 22, 1938 जुलाई 3, 1938; नेशनल काल जुलाई 4, 1938; सेक्रेट्री अलवर प्रजामंडल को चीफ मिनिस्टर अलवर, फा. नं. 232–सी/173/39; चीफ मिनिस्टर का पत्र रजिडेन्ट को, 162 सी फा. नं. 232 सी, 1939, अ. बी.; मास्टर भोलानाथ का जमनालाल बजाज को पत्र, 2 अगस्त, 1940, पत्र व्यवहार, नं. 86–87

139– अलवर राज्य प्रजामण्डल रेकार्ड, फा.नं. 6. 1941, अ.बी.; हिन्दुस्तान टाइम्स, 22 जून 1941; डा. पेमाराम, द एगेरियन मूवमेन्ट इन राजस्थान पृ. 257; सुमनेश जोशी, राजस्थान में ·······, पृ. 322–323.

भरतपुर और जन जागृति :

16 मार्च, 1948 में पूर्व भरतपुर 562 रियासतों में से एक रियासत थी, जहाँ के राजा जाट थे जो वंशानुक्रम से स्वेच्छापूर्वक शासन करते थे। राजा की नाबालिगी की अवस्था में भारत सरकार प्रायः किसी अंग्रेज को दीवान बनाकर यहां का शासन चलाती थी। राजा और दीवान दोनों जन जागृति के प्रबल विरोधी थे। यहां तक कि आर्य समाज को, जो 1910 से पहले स्थापित हो चुकी थी, राजनैतिक संस्था माना जाता था। सन् 1910 से 20 तक भरतपुर के अतिरिक्त डीग, कुम्हेर भुसावर, नगर, बयाना कुरेहरा तथा वल्लभगढ़ कस्बों में आर्य समाज के मन्दिरों की स्थापना हो चुकी थी। उनमें स्वामी दर्शनानन्द, विश्वेश्वरानन्द और नित्यानन्द जैसे विद्वान आये थे। इसके अतिरिक्त कई अन्य विद्वानों के भाषण भी हुए थे जिनसे जनता में स्वदेशी वस्त्रों, राष्ट्रभाषा हिन्दी तथा अपनी संस्कृति के प्रति बड़ा अनुराग उत्पन्न हुआ। इसके पश्चात् 1912 में भरतपुर में जगन्नाथ अधिकारी जैसे प्रभावशील लोगों द्वारा हिन्दी साहित्य समिति की स्थापना हुई। उस अवसर पर स्वामी सत्यदेव परिव्राजक आये थे। उनके ओजस्वी भाषणों को सुनकर लोग और विशेष कर नवयुवक बड़े प्रभावित हुए। कई नवयुवकों के सार्वजनिक क्षेत्र में कार्य करने का निश्चय किया। ऐसे युवकों में से कई को भरतपुर राज्य ने रियासत से बाहर निकाल दिया या गिरफ्फतार कर लिया गया। "वैभव" में भरतपुर के समाचार और शिकायती पत्र प्रकाशित करने के कारण सरकार ने वैभव को बन्द कर दिया और अधिकारी जी को राजद्रोह के अपराध में जेल में डाल दिया। इसी आरोप में गोकुलजी वर्मा को बागी पत्रकार मानकर बन्दी बनाया जाता था। यही हालत श्री निरंजन शर्मा की थी जो राज्य के पिछड़ेपन और शोषण सम्बन्धी लेख लिखते थे और संपादन करते थे। वैसे इस अर्थ में राजस्थान में भरतपुर अग्रणी रहा है जहां कई सेवा भावी कार्यकर्ताओं ने अपने लेखन और साहित्य प्रचार के माध्यम से जनता में राष्ट्रीय चेतना का प्रसार किया तथा राष्ट्रीय विचारधारा, के नौजवानों को संगठित कर उनके समक्ष रचनात्मक कार्यक्रम रख दिये थे। तो स्थानीय एवं बाहर पत्र पत्रिकाओं को पढ़ने पढ़ाने पर राज्य की संदेहात्मक दृष्टि रहती थी और उनके विरुद्ध कठोर कार्यवाही की जाती थी फिर भी देश प्रेम की भावना यहां उत्तरोत्तर जागृत होती ही रही। 1913 में विस्फोटक पदार्थों के परिक्षण में लगे रहने से श्री सत्य भक्त पुलिस के कांटे बन गये थे। सन् 1919–20 में जर्मनी पर अंग्रेजों की विजय होने के उपलक्ष्य में जब नगर के हाई स्कूल में हर्ष मनाया गया तो कितने ही छात्रों ने इसका विरोध किया और विदेशी शासन के विरुद्ध प्रदर्शन किये। इसी प्रकार राज्य की लगान सम्बन्धी नीति इतनी कठोर थी कि भरतपुर का किसान कहराता था। कर के भार से राज्य के गांव के गांव उजड़ गये थे। इनकी मांगों को लेकर श्री देशराज के नेतृत्व में 1924 से 1927 तक अनेक सभाएं हुई जिनके ऊपर सरकार ने उपेक्षा वृति एव दमनकारी बर्तारे को अपनाया।[140]

140– कई गांवों के तार गवर्नर जनरल को, फा.नं. 143 (2) फो. 1924, फो. पो; राअ.

भरतपुर नरेश महाराजा कृष्णसिंहजी जब बालिग हो गये तो उनको शासन के अधिकार दे दिये गये। उनके समय में हिन्दी साहित्य सम्मेलन का अधिवेशन किया गया जिसमें पं. मदन मोहन सर्व श्री पुरुषोत्तमदास टण्डन, रविन्द्रनाथ ठाकुर, गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, हर विलास शारदा तथा मखनलाल चतुर्वेदी आदि अनेक विद्वान सम्मिलित हुए। महाराजा कृष्णसिंहजी के विचारों से पोलिटिकल विभाग असन्तुष्ट था। उन्होंने अपनी जनता को शासन कार्य में साझेदार बनाने के लिये 1927 में घोषणा की और 4 अक्टूबर सन् 1927 को नये विधान को कार्य रूप में लाने की स्वीकृति दे दी। परन्तु ज्योंही प्रतिनिधियों के चुनाव होने लगे कि महाराजा को राज्यच्युत कर दिया गया व मिस्टर मेकेनजी को भारत सरकार ने 9 फरवरी, 1928 में यहां का दीवान नियुक्त कर दिया। उसने चुनावों को सदैव के लिये स्थगित करा दिये।[141]

इस घटना के पश्चात् भरतपुर में बड़ा क्षोभ उत्पन्न हुआ। जनता सूरजमल जयन्ती का उत्सव मनाना चाहती थी जिसे मेकेनजी ने नहीं मनाने दिया। जब भरतपुर में 6 जनवरी, 1929 को पीपुल्स एसोसियेशन की स्थापना हुई और भाषण हुए तो उसके कार्यक्रम में बाधाएं उपस्थित की और राष्ट्रीय नेताओं के चित्र रखने पर भी पाबन्दी लगा दी गई। 13 जनवरी, 1929 को डा. देशराज गिरफ्तार कर लिये गये। उन्हें अपने गांव से 45 मील बिना खाये पैदल लाया गया। गोपीलाल यादव को पकड़ने का वारंट जारी किया तथा गया प्रसाद चौबे और लाला गंगा सहाय के मकानों की तलाशी ली गई। उत्तेजनात्मक भाषणों के लिए कई व्यक्तियों को गिरफ्तार किया गया। यहां तक कि 1927 में एक दमन कारी काला कानून बनाया जिसका नाम क्रिमिनल लॉ एमेन्डमेन्ट एक्ट था। इससे स्थिति बड़ी विस्फोटक हो गई और अंग्रेजी दीवान को निकालने की मांग जनता द्वारा उठाई गई। क्रुद्ध होकर दीवान ने भाषण देने, जुलूस निकालने, प्रदर्शन करने आदि पर रोक लगादी। सरकारी नौकरों में खौफ पैदा करने के लिए मायाशंकर, जिला न्यायाधीश को संदेह में समय के पूर्व अवकाश लेने को बाध्य किया। इसी बीच अखिल भारतीय जाट सभा ने लाठ साहब को ज्ञापन दे यह मांग की कि राज्य में स्थानीय लोगों से शासन का काम लेना चाहिये और न्याय पर सभी व्यवस्था को आधारित करना चाहिये। 31 मई को वे शिमला में सेकेटरी से भी मिले पर इस सम्बन्धी कोई कारगर कदम 1929 तक नहीं उठाया गया। वास्तव में मेकेन्जी इतना सतर्क था कि उसने हिन्दी साहित्य समिति के तत्वावधान में वाद-विवाद प्रतियोगिता भी नहीं होने दी जब वाद-विवाद का विषय था "यथा राजा तथा प्रजा"। सन् 1930-31 में छात्रों ने स्वाधीनता दिवस मनाना चाहा और मनाया भी। इस अपराध में 2 कार्यकर्ताओं को रियासत से निकाल दिया गया गया। मास्टर आदित्येन्द्र को, जो उन दिनों हाई स्कूल भरतपुर में

141-पाक्षिक रिपोर्ट, 1927, फा. नं. 421, पी. 1927, फो. पो., रा. अ.; रियासत, 12 नवम्बर, 1927; इंडियन डेली मेल, 24 नवम्बर, 1927; कर्मवीर, 25 नवम्बर, 1927; के. एस. सक्सेना, पोलिटिकल अवेकनिंग, पृ. 199-200

अध्यापक थे, त्याग पत्र देने को बाध्य किया गया। राज्य द्वारा 1930 और 1939 के मध्य भरतपुर में घोर दमन चक्र चलाया गया जिससे प्रजा में आतंक छा गया। फिर भी असहयोग आन्दोलन बदस्तूर जारी रहा।[142]

भरतपुर प्रजामण्डल :

जब राजकीय अत्याचार सीमा पार कर रहा था तो इसका मुकाबला भरतपुर प्रजामण्डल की स्थापना के द्वारा तथा उसके तत्वावधान में असहयोग आन्दोलन की व्यवस्था करना निश्चित हुआ। इस संबंध में गौरीशंकर मित्तल के नेतृत्व में एक शिष्ट मण्डल पं. नेहरु को भरतपुर स्टेशन पर 20 सितम्बर, 1937 को मिला। उनके परामर्श से यह भी निर्धारित किया गया कि भरतपुर प्रजामण्डल की एक कमेटी आगरा जिला कांग्रेस कमेटी के सलाह से कार्यक्रमों को निर्धारित करेगी। इसके अनुसार प्रजामण्डल का सूत्रपात हुआ। उन दिनों संयोग से भरतपुर के कुछ सार्वजनिक कार्यकर्ता सर्वश्री गोपीलाल यादव, मा. आदित्येन्द्र तथा जुगलकिशोर चतुर्वेदी रेवाड़ी में ही अध्यापन का कार्य कर रहे थे, अत: उनसे भरतपुर की स्थिति और कार्यक्रम की रूपरेखा पर विचार करने हेतु यहां के तत्कालीन प्रमुख नेता सर्वश्री पं. रेवतीशरण शर्मा, ठा. देशराज तथा कृष्णलाल जोशी रेवाड़ी आते जाते रहते थे। इन सभी निष्टावान् कार्यकर्ताओं ने मिलकर प्रजामण्डल की स्थापना 6 मार्च, 1938 को की।[143]

रेवाड़ी में ही प्रजामण्डल का विधान बनाया गया और गोपीलाल यादव को सर्वसम्मति से उसका प्रधान निर्वाचित किया गया था। ठाकुर देशराज और रेवतीशरण उपाध्याय उपप्रधान, कृष्णलाल जोशी को संयुक्त मंत्री और मास्टर आदित्येन्द्र को कोषाध्यक्ष नियुक्त किया गया था। इस नव निर्मित संस्था ने भरतपुर सरकार को रजिस्ट्रेशन के लिए प्रार्थना पत्र दिया। परन्तु सरकार ने उसे नामंजूर कर दिया और संस्था को अवैध घोषित कर दिया। 9 अप्रेल, 1939 को प्रजामण्डल के प्रधान ने सरकार को नोटिस दिया कि यदि प्रजामण्डल पर से रोक न हटाई जाएगी और दमन कानून रद्द नहीं किये जाएंगे तो सत्याग्रह आरम्भ कर दिया जावेगा। सरकार ने कोई ध्यान नहीं दिया। तब 21 अप्रेल, 1939 को मण्डल ने सत्याग्रह का प्रारम्भ कर दिया। भरतपुर, डीग, कामा, नगर और पहाड़ी मे बड़े उत्तेजित प्रदर्शन किये गये और सरकार की दमन नीति की तीव्र निन्दा की गई। मण्डल ने कृषकों को सलाह दी कि वे भूमिकर देना बन्द कर दें। इस कदम को सरकार सहन नहीं कर सकी और प्रजामण्डल के प्रमुख नेताओं को गिरफ्तार कर लिया गया इसमें वे हरिनारायण शर्मा, कुंजबिहारी मोदी, पं. शालिगराम, श्री अब्दुलगफूर, डा. मुहम्मद अली और लक्षीराम मुख्य थे। पहले जत्थे में 4 आदमियों को गिरफ्तार किया था,

---

142–नेशनल हेराल्ड, 29 जनवरी, 1929; यंग राजस्थान, 15 मार्च, 1929; ट्रीब्यून, 16 मार्च, 1929; फा.नं. 679, पी. 1931, फो.पो. रा.अ.

143–पत्र गौरीशंकर मित्तल का जमनालाल बजाज को पत्र व्यवहार, 22 अक्टूबर, 1937, न्यू दिल्ली,;

सुमनेश जोशी–राजस्थान में स्वतन्त्रता संग्राम के सेनानी, पृ. 321.

प्रत्येक को 18 मास के कैद की सजा दी गई। फिर भी आन्दोलन बन्द नहीं हुआ और कानून के विरुद्ध जत्थे निकलते रहे। यह आन्दोलन 8 मास तक चलता रहा। कुल 473 व्यक्ति गिरफ्तार हुए जिनमें 32 महिलाएं भी थीं। ये गिरफ्तारियां तिरंगा झंडा फहराने, फीस विरोधी आन्दोलन करने, झंडा अभिवादन आदि कई बहानों को बनाकर किया गया था। 13 नवम्बर, 1940 पं. हरिनारायण शर्मा और श्री भोलानाथ मास्टर को तिजारा गिरफ्तार किया गया क्योंकि वे गांव-गांव घूमकर युद्ध का चंदा देने का विरोध कर रहे थे।[144]

23 दिसम्बर, 1940 को प्रजामण्डल और दरबार के मध्य समझौता हो गया। जिसके अनुसार सभी राजनैतिक कैदी छोड़ दिये गये और प्रजामण्डल की रजिस्ट्री 1 अगस्त, 1940 करदी गई। परन्तु सरकार ने राजनैतिक कार्यकर्ताओं से उसका नाम बदलकर प्रजा परिषद रखवा दिया।[145] उसके उद्देश्य भी संशोधित कर दिये जो निम्नलिखित थे।

1– जनता के कष्टों की ओर दरबार का ध्यान आकर्षित किया जायगा।

2– प्रशासनिक सुधारों के लिए दरबार से निवेदन किया जायगा।

3– लोकमत जाग्रत करने के लिए शिक्षा का प्रचार किया जायगा।

4– लोगों को राजनैतिक सुधारों के लिए तैयार किया जामगा।

5– जनता की सभी प्रकार की उन्नति व एकता के प्रयास किये जायेंगे।

प्रजा परिषद् ने अब रचनात्मक प्रवृति के अन्तर्गत 27 अगस्त से 2 सितम्बर, 1940 को राष्ट्रीय सप्ताह मनाया। भरतपुर में एक बड़ी सभा हुई जिसमें कई प्रस्ताव पारित किये गये। मुख्य प्रस्ताव यह था कि राज्य में उत्तरदायी शासन की स्थापना की जाए, भ्रष्टाचार का अन्त किया जाए और निरक्षरता का निवारण किया जाए। इन प्रस्तावों की एक प्रति उस समय के दीवान के.पी. एस. मेनन को आवश्यक कार्यवाही के लिए भेजी गई। इसके पश्चात् 20 दिसम्बर 1940 से 1 जनवरी, 1941 तक भरतपुर में राजनैतिक सम्मेलन हुआ। यह प्रजा परिषद् के तत्वावधान में आयोजित किया गया था और उसकी अध्यक्षता जोधपुर के लोकनायक जयनारायण व्यास ने की थी। धीरे धीरे प्रजा परिषद् की कार्यवाहियां भी अधिकाधिक जोरदार होने लगी। अनावृष्टि, बढ़ती हुई कीमतें, आवश्यक पदार्थों का अभाव और युद्ध ऋण की वसूली से लोगों में असन्तोष फैला हुआ था। इस स्थिति से निपटने के लिए परिषद् ने अपने आन्दोलन को जोरदार बनाया। बाजार में

144–रिपोर्ट आफ द एडमिनिस्ट्रेशन आफ द भरतपुर स्टेट 1938–39. पृ. 45, फा. नं. 2122-सी 161/38 ता. 12–13, नवम्बर, 1939. अ.बी.

145–रिपोर्ट आफ द एडमिनिस्ट्रेशन आफ द भरतपुर स्टेट, 1939–40. पृ. 3, भरतपुर राज-पत्र, भा. 30, दि. 25, 1939 प्रजामण्डल सत्याग्रह, फा. नं. 2, 1939, नेशनल हेराल्ड, दि. 29, 1939, हिन्दुस्तान टाइम्स, जनवरी 7, 1940, चतुर्वेदी, स्ट्रगल फार रेसपोन्सिबल गवर्नमेन्ट आफ द भरतपुर स्टेट, पृ. 7.

प्रदर्शन किये गये। दुकानों पर पिकेटिंग हुआ और राजद्रोहात्मक भाषण दिये गये । राज्य कर्मचारियों का अपमान किया गया। जंगल की हद पर लगी हुई मीनारों को उखाड़ दिया गया तथा तार और टेलीफोन के तार काट दिये गये। तब मास्टर आदित्येन्द्र, जुगलकिशोर चतुर्वेदी, ठा. देशराज, गोपीलाल यादव आदि कई नेताओं को गिरफ्तार करके हवालात में बन्द कर दिया गया। परन्तु राज्य की इन कार्यवाहियों से भी आन्दोलन कम नहीं हुआ और प्रजा परिषद् की मांग पूर्ण उत्तरदायी शासन की बनी रही। सितम्बर 28 से 30, 1941 को प्रजा परिषद् का विशेष अधिवेशन किया गया जिसकी अध्यक्षता हीरालाल शास्त्री ने की और कई मुद्दों पर प्रकाश डाला।[146]

धौलपुर और जन आंदोलन :

स्वर्गीय श्री ज्वालाप्रसाद जिज्ञासु ने 1910 में धौलपुर में आचार सुधारिणी सभा की स्थापना की जिससे राज्य में चारित्रिक बल को शक्तिशाली बनाया जाय। दूसरे ही वर्ष श्री यमुना प्रसाद वर्मा ने 1911 में यहां आर्य समाज की प्रवृत्तियों को चालू किया। समाज के माध्यम से एवं भाषणों का आयोजन होता था जिससे सामान्य जनता पर अच्छा प्रभाव पड़ने लगा। वैसे इसका राजनीति पर तो सीधा असर नहीं होता था परन्तु जनता में स्वदेश, स्वभाषण और स्वदेशी वस्त्र के प्रति निष्ठा अवश्य उत्पन्न होती थी। सरकार आर्य समाज के बढ़ते हुए प्रचार को ठीक नहीं मानती थी क्योंकि उसे भय था कि समाज सुधार की आड़ में समाज की गतिविधियां कहीं राजनीतिक चेतना को बढ़ावा न दे दें इस चिन्ता के आधार पर सरकारी अधिकारियों ने समाज के प्रत्येक कार्य में बाधा पहुंचाना शुरू किया और समाज के भवन पर अधिकार कर लिया। कार्यकर्त्ताओं को विचलित करने के लिए धमकाया जाता था और उनकी पिटाई भी करवाई जाती थी। जब सरकारी ज्यादतियां अधिक बढ़ने लगीं तो शाहपुरा नरेश उम्मेदसिंह, राव राजा तेजसिंह जोधपुर और कुं. चांद करण ने हस्तक्षेप कर मामले को निपटाने का प्रयत्न किया पर स्थिति में विशेष अन्तर न आ सका।[147]

जब सरकार आर्य समाज को धौलपुर से उखाड़ना चाहती थी तो 1918 में स्वामी श्रद्धानन्दजी की प्रेरणा से और श्री ज्वाला प्रसाद जिज्ञासु के नेतृत्व में सत्याग्रह छेड़ दिया राज्य की सेवा में रहते हुए जो व्यक्ति इसमें रुचि लेते थे उन्हें नौकरी से अलग कर जेल में डाल दिया और इसके प्रमुख कार्यकर्त्ताओं को जिनमें जिज्ञासु जी, जौहरी लाल इंदु, श्रीकृष्ण जी, पुरोहित छीतरसिंह, श्री विष्णु स्वरूप जी वैद्य और श्री रामदयाल जी आदि मुख्य थे, गिरफ्तार कर कठोर दण्ड दिया गया।[148]

146–फाइल नं. सी. बी. /बी. एन. /13/ 222, राजपूताना की पाक्षिक रिपोर्ट, नवम्बर 1940, जनवरी, 1941, अक्टूबर, 1941.

147–गंगाप्रसाद–धौलपुर का राजनैतिक इतिहास, पृ. 5–8

148–प्रजामण्डल, धौलपुर पत्र नं. 1, 1935–55, अ. बी.

परन्तु ये ज्यादतियां आन्दोलन को दबा न सकी और स्थिति दिन ब दिन काबूके बाहिर होने लगी तो बन्दियों को छोड़ना पड़ा और आर्य समाज मन्दिर को पुनः उन्हें लौटाना पड़ा। इससे कार्यकर्त्ताओं का उत्साह और बढ़ा और उन्होंने 1934 में नागरी प्रचारिणी सभा की शाखा की स्थापना की। इसके अन्तर्गत पुस्तकालय तथा वाचनालय भी खोले गये जिससे लोग साहित्य, संस्कृति और राजनीति की ओर रूचि लें। 1936 में ज्वाला प्रसाद जिज्ञासु के नेतृत्व में हरिजनोद्धार का आन्दोलन चलाया गया और कई प्रदर्शन किये गये, जिसके फलस्वरूप सरकार को हरिजनों को सार्वजनिक स्कूलों में पढ़ने की इजाजत देनी पड़ी और कई सामाजिक प्रतिबंध जो उन पर लगे हुए थे उन्हें हटाना पड़ा।[149]

इसके पश्चात् वहां 1936 में प्रजामण्डल की स्थापना की गई। आगरा निवासी कृष्ण दत्त पालीवाल इसके अध्यक्ष और मूलचन्द मंत्री नियुक्त हुए। परन्तु एक राजनैतिक संगठन की स्थापना धौलपुर राज्य को सहन नहीं हुई और प्रजामण्डल की समस्त सम्पत्ति जब्त कर ली गई। श्री जौहरीलाल इन्दू को 18 जुलाई, 1937 को गिरफ्तार करके राज्य के बाहर निकाल दिया गया। उनका अपराध यह था कि वे प्रजामण्डल के सदस्य थे इस कार्यवाही से 14 जुलाई, 1938 को प्रजामण्डल ने धौलपुर राज्य को एक प्रार्थना-पत्र दिया जिसमें निम्न लिखित मांगे थीं।[150]

1. राज्य में उत्तरदायी शासन स्थापित किया जाए।
2. प्रजामण्डल को मान्यता दी जाए।
3. राजनैतिक कैदियों को छोड़ दिया जाए।
4. मण्डल की शाखाएं स्थापित करने की स्वीकृति प्रदान की जाए।
5. ग्राम सभा और हड़तालें करने की इजाजत दी जाए।
6 व्यवसाय कर और भारी जकातकर हटाए जाएं।

फिर 29 अप्रेल, 1940को भड़ाई नामक गांव में पूर्व राजपूताना राज्यों का सम्मेलन हुआ जिसमें प्रस्ताव पास करके राज्यों के नरेशों से अपील की कि अपने-अपने राज्यों में वे उत्तरदायी शासन स्थापित करें और प्रशासन के संचालन में जनता के प्रतिनिधियों का सहयोग लें। इस सम्मेलन में प्रधान वेद प्रकाश विद्यालंकार ने अपने अध्यक्षीय भाषण में चुटकी ली कि हमारे नरेश इसलिये बधाई के पात्र हैं कि उन्होंने योरोप में मानवीय अधिकार और स्वतंत्रता तथा जनतंत्र के पक्ष में लड़ाई का समर्थन किया है परन्तु वे यह भूल जाते हैं कि उन्हीं के राज्य में अन्धाधुन्ध निरंकुशता और एक व्यक्ति का राज्य है। जनता के अधिकारों का

149–प्रजामण्डल धौलपुर पत्र नं. 1, 1935–55, अ.बी.

150–फा.नं.सी-4/45/ग्रार.जी.ए., अ.बी.;
फा.नं.सी–4/ 45 धौलपुर, ग्रार.जी.ए.;
गंगाप्रसाद, धौलपुर का राजनैतिक इतिहास पृ. 5–8

कहीं नाम भी सुनाई नहीं देता । जब हम उत्तरदायी शासन की चर्चा चलाते हैं तो अंग्रेजों के साथ हुई उनकी संधियों की दुहाई दी जाती है । परन्तु अब राजाओं को अपनी जनता पर भरोसा करना सीखना चाहिए । भावी सरकार के लोकतांत्रिक स्वरूप की नींव पर ही शासन टिक सकता है ।[151]

परन्तु सरकार ने दमन नीति जारी रखी और 1941 में एक सेवा सम्बन्धी कानून बनाया जिसके अनुसार कोई राज्य कर्मचारी अपने नाम से कोई ऐसा बयान प्रकाशित नहीं कर सकता था जिससे जनता के साथ दरबार का सम्बन्ध बिगड़ जाए । इसके अतिरिक्त वह किसी राजनैतिक हलचल में सहयोग नहीं दे सकता था और न किसी राजनैतिक सभा में जा सकता था । बल्कि राज्य की जान माल को हिफाजत की कोई जिम्मेदारी न थी, यह भी स्पष्ट कर दिया गया ।

करौली और जन जागृति :

करौली राज्य में जन जागृति का सूत्रपात कुछ देशसेवी व्यक्तियों से हुआ जिनमें पूर्ण सिंह, कुंवर मदन सिंह, कल्याण प्रसाद गुप्ता, रामगोपाल तथा श्यामसुन्दर शर्मा मुख्य हैं । करौली राज्य के दीवान श्री चिमनसिंह थे जिनके अत्याचारों से जनता ऊब गई । उसने उनकी शिकायत ब्रिटिश सरकार तक पहुंचा उनका राज्य से निष्कासन करवा दिया । उनके समय में ठाकुर पूर्णसिंह जेलर थे परन्तु स्वभाव से दयालु और सेवा भावी थे । जलियांनवाला बाग की नृशंस घटना ने उनमें ब्रिटिश सत्ता से नफरत पैदा कर दी और तब से नौकरी छोड़ वे राजनैतिक कार्यों तथा जन सेवायें करने लगे । उनके प्रभाव से दीवान के पुत्र मदनसिंह भी रचनात्मक काम करने में लग गये । उन्होंने खेती की रक्षा के लिए सुअर मारने की आजादी, हिन्दी भाषा का शासकीय कार्य में प्रयोग तथा बेठ-बेगार के उन्मूलन के प्रश्नों को लेकर अनशन किया । उनकी पत्नी भी सत्याग्रह में सम्मिलित हो गई । इनके पक्ष में जनमत इतना प्रबल था कि सरकार को घुटने टेकने पड़े और उनकी मांगों को स्वीकार करना पड़ा । उन्होंने अपना तन और धन खादी प्रचार, हिन्दी भाषा प्रचार, गौसेवा, अकाल व हैजे से पीड़ितों के लिए लगातार करौली प्रजा की 1927 तक निःस्वार्थ सेवा की । इसी प्रकार श्री भंवर लाल कवि भी राज्य विरोधी एवं राजनैतिक कार्य में बड़ी रुचि लेते थे । स्वयं खद्दर पहिनते थे और खद्दर का प्रचार करते थे । महाराजा ने उन्हें ऐसा करने से रोका परन्तु न मानने पर उनका राजसी सम्मान छीन लिया और जागीर जब्त कर ली । विवश हो 1925 में उन्हें चर्खा संघ का काम हाथ में ले देश की सेवा की । ऐसे ही चिरंजीलाल शर्मा ने अजमेर में नमक सत्याग्रह में भाग ले अपनी सार्वजनिक हित की प्रवृत्ति का परिचय दिया जिसके फलस्वरूप उन्हें जेल यात्रा भी करनी पड़ी । करौली लौटने में जब उन्होंने राष्ट्रीय प्रवृत्तियों में भाग लेना शुरू किया तो राज्य ने उन्हें गिरफ्तार कर 3 महीने करौली जेल में रखा । इन व्यक्तियों के प्रयासों व त्याग से राज्य की जन जागृति को बढ़ावा मिला जो आगे स्थापित होने वाले प्रजामण्डल की स्थापना की भूमिका थी ।[152]

151–फाइल नं. सी–4/45/आ.जी.ए., अ.बी.:

हिन्दुस्तान टाइम्स 293 अप्रेल मई 3 और अगस्त 29, 1940.

152– सुमनेश जोशी, राजस्थान में स्वतंत्रता संग्राम के सेनानी, पृ. 167, 180, 181, 525–528.

करौली प्रजामण्डल :

इधर श्री कल्याण दास गुप्ता ने 1937 से उत्तरदायी शासन, नगरपालिकाओं के विकास, राज्य भाषा हिन्दी तथा बेगार बंद आदि के लिए आन्दोलन किये। 1937 में उन्हें तथा रामगोपाल को गिरफ्तार कर लिया गया। जेल से मुक्त होने पर उन्होंने अजमेर के पत्रों में करौली राज्य के कारनामों का प्रकाशन करना आरंभ किया। राज्य में अब जन जागृति का वातावरण अनुकूल देखकर 1938 में त्रिलोकचन्द माथुर ने अपने साथियों के सहयोग से करौली में प्रजामण्डल की स्थापना की। प्रजामण्डल का उद्देश्य था जनता की सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक दशा सुधारना। सरकार को यह पसन्द नहीं था कि करौली राज्य में कोई राजनैतिक संस्था स्थापित की जाए। सरकार की दृष्टि में रचनात्मक काम भी राजद्रोह की संज्ञा में था और उसे राज्य विरोधी काम समझा जाता था। इसलिए उसने दमन नीति शुरू कर दी। जिन राज्य कर्मचारियों ने प्रजामण्डल का साथ दिया उनके साथ कठोरता का बर्ताव किया गया। इनमें कल्याणदास गुप्ता को बहुत परेशान किया गया उसे कठोर दण्ड दिया गया और राज्य के किसी भी न्यायालय में वकालत नहीं करने दी गई। नन्हे बाबू जैसे कर्मठ कार्यकर्ताओं पर झूठे मुकदमें लगाकर जेल भेज दिया। सरकारी अफसरों और माफीदारों को भी राज्य द्वारा आदेश दिया गया कि वे प्रजामण्डल को धनदान न दें। ये दमनकारी कदम जन आन्दोलन को न रोक सके।[153]

आरम्भ में प्रजामण्डल ने महाराजा का विरोध नहीं किया और न उत्तरदायी शासन की मांग की। केवल ये प्रार्थना की कि स्थानीय कस्बों की समस्याओं का निवारण किया जाए। 1939 के अप्रेल मास में करौली नगर में प्रजामण्डल का अधिवेशन हुआ जिसमें मांग की गई कि 5 व्यक्तियों का एक आयोग नियुक्त करके प्रशासन की दशा पर रिपोर्ट तैयार करवाई जाए और स्वायत्तशासन संस्थाएं बनाई जायं आदि। परन्तु राज्य ने कोई ध्यान नहीं दिया बल्कि जनहित में लगे हुए व्यक्तियों पर राज्य की क्रूर दृष्टि रहती थी। श्री ओम प्रकाश शर्मा को जो जिज्ञासू के पुत्र थे और चर्खासंघ से प्रमाणित खादी भंडार चलाते थे सरकार उन्हें अवांछनीय मानती थी। उन्हें किसी न किसी बहाने तंग किया जाता था ताकि वे जन सेवा का काम या आन्दोलनात्मक गतिविधि में सक्रिय भाग न ले सकें। 10 नवम्बर, 1941 को शरद मेले के अवसर पर दिन दहाड़े उनकी दुकान को अधिकारियों ने लुटवादी जिसमें उन्हें 25 हजार की आर्थिक हानि उठानी पड़ी। इस प्रकार की निरंकुशता की पर्वाह न करते हुए वे तथा उनके साथी प्रजामण्डल के विकास और उत्थान में लगे रहे।[154]

डूंगरपुर और जन जागृति:

डूंगरपुर रियासत में आदिवासी तथा अनुसूचित जाति की आबादी लगभग 66 प्रतिशत थी और शेष ग्रामीण थे। शहर की स्थिति एक कस्बे के रूप में ही थी। राज्य

153— सुमनेश जोशी, पृ. 167, 525-26, डा. गौड, कोन्स्टियूशनल डेवलपमेंट आफ ईस्टर्न राजपूताना स्टेट्स, पृ. 182, 183

154-हिन्दुस्तान टाईम्स, नवम्बर, 1941 सुमनेश जोशी, राजस्थान में स्वतंत्रता संग्राम के सेनानी पृ. 794.

में दरिद्रता और अशिक्षा का बोलबाला था। वैधानिक शासन या नागरिक अधिकार कल्पना के बाहिर थे। सरकारी पाठशाला में छठे दर्जे तक अभ्यास की व्यवस्था थी जिसे आगे जाकर दसवे दर्जे तक किया गया था। छात्रावास जैसी कोई चीज नहीं थी। नई पाठशाला या छात्रावास खोलने पर प्रतिबंध था। बेगार, रिश्वत, शराबखोरी का खूब प्रचलन था। ऐसी स्थिति में शिक्षा का जिक्र करना, खादी व गांधी टोपी पहनना या राज्य के या सामंतों के विरुद्ध जबान खोलना राजद्रोह के अन्तर्गत माना जाता था।[155]

ऐसे दूषित वातावरण में श्री भोगीलाल पण्ड्या ने 1919 में डूंगरपुर में एक छात्रावास की स्थापना की जिसमे गरीब, मेधावी एवं आदिवासी छात्रों को शिक्षा की सुविधा व रहने का आवास उपलब्ध हो और इसके माध्यम से जनता में चेतना व जागृति फैल सके। इस निःस्वार्थ कार्य को सरकार ने राजनैतिक कदम का प्रथम सोपान माना। इधर से श्री गौरीशंकर उपाध्याय ने 1929 से खादी पहनना शुरू किया और रचनात्मक कार्यों में रुचि लेकर वाचनालयों व सेवाश्रम की स्थापना की "सेवक" नाम का एक हस्तलिखित पत्र भी वे निकालने लगे जिससे राज्य में विचार क्रांति फैल सके। 1935 में पण्ड्या जी व उपाध्याय जी ने मिलकर बागड़-सेवा-मन्दिर की स्थापना की और 1936 में दुष्काल में आदिवासियों की सेवा की।

राज्य ने अभाग्यवश इन लोकोपकारी संस्थाओं को राजनीति मंच की संज्ञा दी गई और कानून से इन्हें अवैध घोषित कर दिया गया। तब 15 मार्च, 1938 में कार्य में शिथिलता न आने देने के लिए इन्होंने उसे सेवा संघ में परिणित कर दिया। इस पर सरकार नई पाठशाला या नए छात्रावास, आश्रम या वाचनालय खोलने की स्वीकृति नहीं देने लगी। जो निजी संस्थाएं थीं उनके विद्यार्थियों को सेवा संघ अन्यत्र दाखिल कराने की व्यवस्था कर देता था, पर सरकार अपने कठोर नियमों में ढील देने के लिए कतई तैयार नहीं होती थी। फिर भी स्थानीय कार्यकर्ता अपने लोकहित संस्थाओं के द्वारा, जिसमें हरिजन-आश्रम भी था जन जागरण के संकल्प को कारगर बनाने में लगे रहे। 1939 से तो इन स्वाधीनता संग्राम के अग्रगण्य नेताओं को सेवा संघ के कई नवयुवक कार्यकर्ता मिल गये जिनमें श्री हरिदेव जोशी प्रमुख थे। गांवों-गांवों में विद्या प्रचार करना पहाड़ी टेकरियों पर पाठशालाएं खोलना, भीलों में जागृति लाना और अछूतों का उद्धार करना श्री हरिदेव जोशी जी के मुख्य कार्य क्षेत्र थे। इन कार्यक्रमों में जो सफलता डूंगरपुर में हुई उसका अधिकांश श्रेय श्री जोशी जी को है। एक प्रकार से इस रियासत में कर्मठ कार्यकर्त्ताओं के दल ने 1939 से 1941 तक अपनी ऐसी स्थिति बना ली थी कि इनकी गतिविधि में उदयपुर तथा अजमेर के कार्यकर्त्ता भी रुचि लेने लगे। इन्हीं के द्वारा 1939 में गांधी जयन्ती पर आम सभा का आयोजन किया गया तथा जन शिक्षण, अछूतोद्धार आदि अभियानों को गति प्रदान की गई जो एक अद्भुत उपलब्धि थी, क्योंकि

155–उत्सवलाल शर्मा, नाना भाई और काली बाई, कांग्रेस शताब्दी समारोह, जयपुर पृ. 1–2; सुमनेश जोशी, राजस्थान में स्वतन्त्रता के सेनानी, पृ. 341–343.

सरकार इन संस्थाओं, गुप्त संगठनों तथा इनसे संलग्न व्यक्तियों को उखाड़ कर फेंकने में कटिबद्ध थी। परन्तु अब डूंगरपुर राज्य में यह दल एक गुप्त संगठन के रूप में उभर चुका था और इसके कार्यकर्ता सरकार के विरोधी कानूनों का डट कर मुकाबिला करने की क्षमता रखते थे।[156]

बांसवाड़ा में जन जागृति :

बांसवाड़ा में जनक्रांति का बीजारोपण सादत खां नामक व्यक्ति ने किया था जो एक कर्मचारी रहते हुए क्रांति की चिनगारियां 1857 की क्रान्ति के समय पैदा करता था। उसकी गतिविधि का पता गुप्तचर विभाग को मिला तो उसे फांसी दे दी गई। इसी प्रकार तांत्या टोपे भी इस अवसर पर इधर आया था जिसकी स्मृति भी यहां के लोगों के लिए प्रेरणादायक रही है। तत्पश्चात गोविंद गिरी के सुधार आंदोलन ने बागड़ प्रदेश के आदिवासियों को जागृत करने में सराहनीय भूमिका निभाई। गुजरात की सीमा की निकटता ने यहां के कई देशप्रेमियों को गांधीजी के सम्पर्क में आने का अवसर दिया। वे लोग गांधी आश्रम अथवा अन्य स्वयंसेवी संस्था से जुड़कर अपने क्षेत्र में देश प्रेम के भाव और खादी शिक्षा के प्रचार में लग गये जिनमें श्री मणिशंकर जानी, श्री भूपेन्द्रनाथ त्रिवेदी, लक्ष्मणदास बाबा, श्री हरिदेव जोशी, श्री धूलजी भाई आदि विशेष उल्लेखनीय हैं।

परन्तु राज्य में राष्ट्रीय चेतना के लिए वातावरण प्रतिकूल था। देश सेवा के नाम वहां जो काम होता था वह देशद्रोह के अन्तर्गत माना जाता था। राज्य का आदिवासियों और कृषकों पर बेगार व करों का भार इतना लदा हुआ था कि उनको अपने खाने-पीने की चीजें भी सुलभ नहीं थीं। निम्न वर्ग के लोग जेवर पहनने से महरूम रखे जाते थे। हर दस्तकार को राज्य के लिये नियमित बैठ-बेगार करनी पड़ती थी। महल या अधिकारी के सामने सवारी पर बैठना आम आदमी के लिए वर्जनीय था। खादी पहिनना या उसका प्रचार करना जुर्म मे शुमार था। श्री गब्बा जी नागर, श्री मणिशंकर नागर, श्री भूपेन्द्र त्रिवेदी आदि को राष्ट्रीय गतिविधि में संभागी रहने के कारण महाराजा कई बार कोप-भाजन बनना पड़ा और जेल की यातनाएँ भोगनी पड़ी।[157]

इन ज्यादतियों की पर्वाह न कर बांसवाड़ा के कार्यकर्ता आंदोलन चलाते रहे। स्व. लक्ष्मणदास बाबा ने 1928 के आस पास भीलों और हरिजनों की सेवा का कार्य श्री मणिशकर नागर, श्री गोपाल हरि, श्री धूल जी भाई, श्री जगन्नाथ कसारा व श्री चन्दु लाल जी सोनी के सहयोग से प्रारंभ किया। श्री गौरीशंकर ने भजनों के माध्यम से वागड़ क्षेत्र में धार्मिक व सामाजिक चेतना उत्पन्न की। श्री चिमनलाल मालोत ने 1930 में शांत सेवा कुटी की स्थापना की और सर्वोदय नामक पत्रिका का प्रदर्शन किया जिसके लिए

156–सुमननेश जोशी, राजस्थान में स्वतन्त्रता के सेनानी, पृ. 342, 749 750, 753; उत्सवलाल शर्मा नानाभाई और काली बाई पृ. 3

157–सुमनेश जोशी, राजस्थान में स्वतंत्रता संग्राम के सेनानी, पृ. 351–353

उन्हें जेल जाना पड़ा। इन्हीं दिनों 1938 में श्री हरिदेव जोशी ने बांसवाड़े के चीपखेड़ाबरा में भीलों के शिक्षण का कार्य संभाला और फिर इस कार्यक्रम को ऐसी गति दी कि बागड़ क्षेत्र के कई गांवों में पाठशालाएं खोली और वे युवकों के प्रेरणा स्रोत बने। अपनी प्रतिभा के कारण उन्होंने देशी राज्य लोक परिषद् में डूंगरपुर और बांसवाड़ा क्षेत्र का प्रतिनिधित्व किया। पुलिस इन संस्थाओं से संबंधित व्यक्तियों पर निगाह रखती थी और जितनी असुविधाएं उनके लिए उत्पन्न की जा सकती थी उनका प्रयोग किया जाता था।[158]

कुशलगढ़ और जन जागृति :

बांसवाड़ा के निकट कुशलगढ़ एक छोटा राज्य था जहां अन्य राज्यों की तरह सांमतवाद, पिछड़ापन, बेठ बेगार आदि दोष विद्यमान थे। इन दोषों से अपने जन्म स्थान को मुक्ति दिलाने की भावना एक राष्ट्र सेवी श्री पन्नालाल गौरीशंकर त्रिवेदी में जागृत हुई। 1927 में पथिक जी के सम्पर्क से उन्होंने सरकारी नौकरी को त्याग कर देशसेवा के कार्य में लग गए। जब गांधीजी के आन्दोलन का वेग देश में चल रहा था तो कुशलगढ़ पर भी इसका प्रभाव पड़ना स्वभाविक था। यहां त्रिवेदी जी ने कुछ नवयुवकों के सहयोग से विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार और मद्य निषेध आदि प्रवृत्तियों को चलाया। क्योंकि उन्हें 1928 के बारडोली सत्याग्रह, खाराघोड़ा के नमक सत्याग्रह का प्रत्यक्ष अनुभव था एवं साबरमती आश्रम एवं गुजरात विद्यापीठ में राजनीति का प्रशिक्षण प्राप्त था इस आन्दोलन में उन्हे सफलता मिली। फिर भी यहां के अधिकारियों ने उसे कुचलने में कोई कसर न रखी।[159]

प्रतापगढ़ और जन जागृति :

अन्य राज्यों और भारतवर्ष के आर्थिक और राजनैतिक आंदोलन से प्रेरित होकर प्रतापगढ़ के राजनैतिक विचार वाले लोगों ने भी खादी और स्वदेशी वस्तुओं का उपभोग तथा मद्यनिषेध का कार्य 1931 में प्रारम्भ किया। उन कार्यकर्ताओं में अग्रणी श्री मास्टर रामलाल, राधावल्लभ सोमानी और रतनलाल थे। उन्होंने यह कार्य बड़े उत्साह और लगन से किया। परन्तु इस कार्य को प्रतापगढ़ राज्य ने सहन नहीं किया और तीनों को तीन-तीन मास का कारावास का दण्ड दिया गया। फिर अमृतलाल नामक पायक ने 1936 में हरिजनों के बालकों के लिए प्रतापगढ़ में एक प्राथमिक पाठशाला खोली। 1938 में श्री ठक्कर बप्पा और श्रीमती रामेश्वरी नेहरू प्रतापगढ़ आये, प्रतापगढ़ में हरिजन उद्धार का काम देख कर उनको बड़ी प्रसन्नता हुई। अमृतलाल पायक ने इन दोनों देशभक्त व्यक्तियों से प्रेरणा प्राप्त की। उसके पश्चात आदिवासियों के लिए भी पाठशालाएँ खुली और आर्य प्रचार सभा की स्थापना हुई। 'साथ ही "गीत प्रचार समिति

158- हिम्मतलाल त्रिवेदी, बांसवाड़ा, सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनैतिक चेतना का संक्षिप्त इतिहास, पृ. 5-7

159- सुमनेश जोशी, राजस्थान में स्वतंत्रता संग्राम के सेनानी, पृ. 368-370.

का गठन हुआ। 1938 में रियासत के शासन ने इस प्रचार का अन्त करना चाहा क्योंकि इन संस्थाओं से जन जागृति की आशंका थी। परन्तु जब 1942 में गांधी जी ने "करो या मरो" का युद्ध घोष किया और "भारत छोड़ो" का पैगाम अंग्रेजों को दिया तब इससे प्रेरित होकर स्वतन्त्रता आंदोलन का प्रचार प्रतापगढ़ में प्रबल होता गया।[160]

शाहपुरा में जन जागृति :

भीलवाड़ा के निकट शाहपुरा एक छोटी रियासत है जहां के नागरिक और नरेश स्वभाव से ही उदार और देश प्रेमी रहे है। संभवतः इसका प्रमुख कारण राम स्नेही सम्प्रदाय, जिसकी यहां प्रधानपीठ है तथा आर्य समाज का प्रभाव है। जब 1857 का विप्लव हुआ था जिसका वर्णन यथा स्थान किया गया है, केप्टिन शावर्स नीमच के विद्रोही सिपाहियों का पीछा करता हुआ शाहपुरा आया तो वहां के लोगों ने रस्म के अनुसार न तो पेशवाई की और न खाने–पीने की रसद का उसके या उसके साथियों के लिए कोई प्रबन्ध ही किया। बल्कि उन्होंने नगर के फाटकों को भी बन्द कर दिया जिससे अंग्रेज अधिकारी या फौजी भीतर न घुसने पाएं। महर्षि दयानन्द भी 1883 ई. शाहपुरा राजाधिराज नाहरसिंह द्वारा अपने यहां आमंत्रित किये गये थे। महर्षिजी वहां तीन मास तक रहे और उन्होंने वहां राजनीतिक एवं धर्म का लोगों को उपदेश दिया। यहां के नरेश स्वामी जी के शिष्य बन गये और आजन्म आर्य समाज की संस्थाओं के सदस्य रहे। उन्होंने समाज की विविध संस्थाओं को चंदा देकर विद्या और धर्म प्रचार में अपना पूर्ण सहयोग दिया। तब भी शाहपुरा में समाज सुधार के कई कार्यक्रम होते रहे। 1922 में आल इंडिया क्षत्रीय महा सभा में राजाधिराज नाहरसिंह ने मलकानों की शुद्धि पर बहुत बल दिया था। इनके पुत्र उम्मेदसिंह भी समाज सेवी व उदार शासक थे। इनके द्वारा पुस्तकालय, पाठशालाएँ, विधवा आश्रम आदि स्थापित हुए जिससे समाज की सेवा हुई। यही कारण है कि 1930 से या 1942 से चलने वाले सत्याग्रह की उग्रता शाहपुरा में नहीं आ सकी। वैसे तो यहां प्रजामण्डल स्थापित हो चुका था और गोकुललाल असावा आदि कार्यकर्त्ताओं ने अपनी सेवाओं के द्वारा राज्य में कई जनोपयोगी सुधार करवाए थे, परन्तु अन्य राज्यों की भांति प्रजामण्डल के सदस्यों के साथ क्रूरता या अभद्र व्यवहार शाहपुरा में नहीं किया गया। अलबत्ता समय-समय पर ब्रिटिश सत्ता द्वारा प्रसारित नियमों की अवहेलना राज्य में नहीं की जा सकी।[161]

सिरोही में जन जागृति :

सिरोही राज्य गुजरात के निकट होने से भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन से अधिक प्रभावित हुआ, परन्तु यहां की राजतंत्रीय व्यवस्था निकम्मी थी और भ्रष्टाचार और भाई

160– सभा सम्मेलन फाइल, प्रतापगढ़, फा. नं. 1, 1946, अ. बी.

161– शावर्स, ए मिसिंग चेप्टर आफ द इंडियन म्यूटीनी, पृ. 39–40. शाहपुरा हकीकत बही, शाहपुरा संग्रह, 1883; एन्युल एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट, शाहपुरा स्टेट, 1931–32, पृ. 3;

भतीजावाद का बोलबाला था। पिछड़ा इलाका होने से तथा भील और ग्रासियों की बस्ती अधिक होने से राज्य में गरीबी व्याप्त थी। करों के भार तथा बैठ-बेगार एवं लाग-बाग के प्रचलन से प्रजा में भारी असंतोष था। 1925 से ही यहां के कार्यकर्ता सार्वजनिक कार्यों को हाथ में लेकर सिरोही राज्य की प्रजा की समस्याओं को सुलझाने में लग गये। ऐसे व्यक्तियों में श्री गोकुलभाई, भट्ट श्री घीसालाल चौधरी, श्री रूपराज समरथराज, श्री पूनमचन्द, श्री जीवन मल आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं [162]

सिरोही प्रजामण्डल :

राष्ट्रीय सेवा के लिये इस प्रकार सिरोही में इन लोगों का एक संगठन सा बन गया। 1930 में भिक्षुराज, मणिलाल कोठारी के नेतृत्व में इन्होंने रेल्वे मजदूर यूनियन का गठन आबू रोड पर किया। इसी प्रकार जब हरिपुरा कांग्रेस के निर्णय के अनुसार कतिपय नवयुवकों ने 1934 में बम्बई में सिरोही प्रजामण्डल की स्थापना कर दी तो 1934-1938 तक स्थानीय कार्यकर्ता गुप्त रूप से सिरोही में मण्डल के सदस्यों और गतिविधि को बढ़ाने के काम में लग गये और जब यहां 1938 में प्रजामण्डल की स्थापना हो गई तो वैधानिक रूप से राजनीतिक कार्यकर्ता प्रशासन में सुधार लाने, जागीरदारों की ज्यादतियों पर अंकुश लगाने, भाषण की आजादी तथा उत्तरदायी शासन की मांग करने लगे।[163]

प्रजामण्डल के उद्देश्यों को कार्यान्वित करने में श्री गोकुलभाई भट्ट की अपूर्व भूमिका रही है। अपने विलेपार्ले के अनुभव से परिपक्व होकर श्री भट्ट ने सिरोही के प्रजामण्डल का नेतृत्व किया, वहां के राष्ट्रीय कार्यकर्ताओं को संगठित किया और स्थान स्थान पर सभा तथा जलसों के आयोजनों द्वारा राज्य में उत्तरदायी शासन स्थापन करने के उद्देश्य के लिए संघर्ष का संदेश गांव गांव में पहुंचाया। इन गतिविधियों को महारावल की सरकार सहन न कर सकी। तुरन्त मण्डल को अवैध घोषित कर उसके कार्यकर्ताओं पर जुल्म ढाना शुरू कर दिया। जब 8 सितम्बर, 1939 को कई मुद्दों को लेकर जिसमें किसानों से सातवां हिस्सा हासिल लेना भी सम्मिलित था, एक सभा की गई तो उस पर लाठियां बरसाई गई और झण्डे फाड़ दिये गये। श्री गोकुल भाई झण्डे को थामे रहे तो पुलिस ने उन्हें झण्डे के साथ घसीटा और उनकी पिटाई की। परन्तु इस लाठी की वर्षा से सभा पर कोई असर नहीं हुआ, सभा की कार्यवाही चलती रही। स्त्रियां भी बड़े जोश के साथ सभा में डटी रही।[164]

सरकार को इस पर भी सन्तोष नहीं हुआ। शीघ्र ही अग्रणीय नेताओं को गिरफ्तार कर लिया गया, जिनमें गोकुलभाई भट्ट, श्री जीवनमल और श्री रूपराज, श्री रामेश्वर दयाल, विशेष उल्लेख के योग्य है। श्री जीवनमल पर मुकदमा चलाया गया, उनको एक

162–सुमनेश जोशी, राजस्थान में स्वतन्त्रता संग्राम के सेनानी, पृ. 301–304,829 832,833

163– सिरोही कान्फीडेंशल फाइल, 24,25,49,249: 1932-1930 अ.बी.

164– प्रजामण्डल सिरोही, नं. लाठी चार्ज, 1939 अ बी., कोरोस्पोडेन्स विथ ए. जी.जी एण्ड एच.एच. नं. 20,

वर्ष का कारावास दिया गया और 200 रु० जुर्माना किया गया। श्री रूपराज को एक मास का कठोर कारावास मिला और उन पर 2000 रुपये जुर्माना किया गया। श्री रामेश्वरदयाल और भट्ट जी भी राजद्रोह के अपराध में दण्डित किये गये। परन्तु इस कठोर और दमनकारी साधनों से स्थिति काबू में न आ सकी, प्रजा ने हिम्मत नहीं छोड़ी और अपना आन्दोलन चलाती रही।[165]

जब इस प्रकार से वैधानिक रूप से मण्डल काम कर रहा था उसे जो कुचलने का प्रयत्न किया गया उसकी श्री भट्ट से सूचना मिलने पर गांधी जी ने इस घटना पर हरिजन सेवक में टिप्पणी की और लिखा कि लाठीचार्ज के बावजूद अहिंसात्मक प्रतिरोध को अवश्य सफलता मिलती है और संगठन मजबूत होता है। गांधी जी के इस मार्गदर्शन से प्रजा में उत्साह छा गया। प्रजा हर महीने की 22 तारीख को गिरफ्तारी का दिन मनाने लगी। सभाओं, प्रभात फेरियां, कताई एवं खादी का प्रचार द्वारा प्रजा का मनोबल बढ़ाया जाने लगा। नितान्त स्थिति पर काबू पाने के लिए सरकार ने 1940 में मण्डल को मान्यता दे दी और राजनैतिक बन्दियों को छोड़ दिया गया। गांधी जी ने भी 4 जून, 1940 को सिरोही के समझौते पर संतोष व्यक्त किया।[166]

जैसलमेर में जन जागृति :

राजस्थान में जैसलमेर राज्य बहुत पिछड़ा हुआ है। यह राजस्थान के एक कोने में स्थित है। कुछ वर्ष पहले तक यहां आवागमन के मार्ग भी दुर्गम और कठिन थे। ऊंटों पर सफर किया जाता था। जैसलमेर की आबादी भी बहुत कम थी। शिक्षा तो केवल नाम मात्र की थी। जब राजस्थान में उत्तरदायी शासन की स्थापना के लिए जोर का आन्दोलन चल रहा था तो जैसलमेर में किसी प्रकार की हलचल नहीं थी। वहां के महारावल ने लोगों को इतना दबा रखा था कि वे राज्य की निरंकुशता के विरुद्ध चूं तक नहीं कर सकते थे। जैसलमेर के विषय में पं. जवाहरलाल नेहरू ने कहा था कि यह राज्य दुनियां में एक निराला राज्य है।[167]

फिर भी 16 नवम्बर 1930 को जब पं. जवाहर लाल नेहरू नैनी जेल में बीमार थे तब उनके स्वास्थ्य लाभ की कामना प्रकट करने के लिए जैसलमेर में जवाहर दिवस मनाया गया। इसमें बड़ी संख्या में लोग उपस्थित हुए और नेता के प्रति बड़ी श्रद्धा प्रदर्शित की। राज्य को यह सहन नहीं हुआ। आयोजन के प्रमुख लोग श्री सागरमल गोपा, श्री आईदान पुरोहित और श्री रघुनाथसिंह मेहता थे। इन्होंने महारावल से राज्य में सुधारों की प्रार्थना की। बजाय उनकी प्रार्थना पर गौर किये उन तीनों को गिरफ्तार

165– 1939–40, अ.बी. फाइल अनलोफुल प्रजामण्डल सिरोही, 1930–40, अ.बी.

166– द हिन्दू, जनवरी, 1940;
नव जीवन, 6 जनवरी, 1940;
नवजीवन, 3,4, जून, 1940;

167– जैसलमेर का जन आन्दोलन, डिस्ट्रिक्ट कांग्रेस कमेटी, जैसलमेर द्वारा प्रकाशित राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर की फाइल नं 1 जे.एस एल.

कर लिया, परन्तु 36 घंटे के बाद उनको छोड़ दिया। श्री सागरमल गोपा जैसलमेर छोड़कर नागपुर चले गये और वहां से जैसलमेर शासन के विरुद्ध अखबारों में लेख लिखने लगे।[168]

1932 में श्री रघुनाथसिंह मेहता ने जैसलमेर की जनता की सामाजिक दशा सुधारने के लिए महेश्वरी युवक मण्डल की स्थापना की परन्तु महारावल ने ऐसी संस्था की स्थापना भी नहीं होने दी और समझा कि इस बहाने श्री रघुनाथसिंह जैसलमेर राजवंश को हानि पहुंचाना चाहता है। अतः उनको गिरफ्तार करके उन पर मुकदमा चलाया गया और ढाई वर्ष का कारावास दिया गया। इसी समय नमक आन्दोलन भी चलाया गया। इसको दबाने के लिए मण्डल की संपत्ति छीन ली। इससे राज्य में सनसनी फैल गयी। कई नागरिकों ने महारावल को श्री रघुनाथसिंह के विरुद्ध कार्यवाही को बंद करने को पत्र भेजे। सरकार ने समझा कि उसे जेल में रखने से जनता का क्षोभ और बढ़ेगा, इसलिए एक मास पश्चात् उसको बिना शर्त छोड़ दिया गया। वे जैसलमेर छोड़ कर मद्रास चले गये।[169]

प्रजा परिषद् :

उस समय चार पांच राजनैतिक कार्यकर्ता जैसलमेर की जनता में जागृति उत्पन्न करने की कोशिश कर रहे थे। दो जैसलमेर के बाहर थे और दो जैसलमेर में ही थे। श्री सागरमल गोपा नागपुर से जैसलमेर के प्रशासन की आलोचना करते थे और उनको समाचार पत्रों में प्रकाशित कराते थे। यही काम श्री केशव दास व्यास और श्री रामचन्द्र केवलिया करते थे। श्री व्यास सिंध में थे और श्री रामचन्द्र केवलिया और श्री शिवशंकर गोपा जैसलमेर में रहकर ही पत्रों में जैसलमेर राज्य की आलोचना करते थे। उन्होंने नागपुर और हैदराबाद में भी प्रजामण्डल की शाखाएं खोल दी थीं। श्री शिवशंकर गोपा बड़े साहसी और निर्भीक व्यक्ति थे। उन्होंने सन् 1939 में जैसलमेर नगर में प्रजा परिषद् नामक संस्था स्थापित की थी। उनके साथ श्री मदनलाल पुरोहित, श्री लालचंद जोशी, श्री जीवनलाल कोठारी, श्री जीतमल, श्री गिरधारी लाल और मोहनलाल थे। इनमें लालचंद जोशी और श्री जीवनलाल कोठारी को गिरफ्तार करके उन पर मुकदमा चलाया गया और दोनों को एक एक वर्ष का कठोर कारावास दिया गया। अपराध यह था कि श्री लालचंद जोशी ने 1939 में और श्री जीवनलाल कोठारी ने 1940 में बड़ा उग्र राजनैतिक आन्दोलन किया था। इस प्रकार की नीति से आन्दोलन शिथिल न हो सका।[170]

168- फाइल नं. 34/3 रीजन 4-5, द हिस्ट्री आफ फ्रीडम मूवमेन्ट यूनिट, मिनिस्ट्री आफ एजुकेशन, गवर्नमेन्ट आफ इंडिया, राजस्थान डिस्ट्रिक्ट गजट, जैसलमेर पृ. 51

169- होम डिपार्टमेन्ट, फा. नं. 18/8/ 1932, पोलिटिकल, रा. अ.

170- (रा. अ.) फाइल नं. 34/3, रीजन 5-4, द हिस्ट्री आफ फ्रीडम मूवमेन्ट यूनिट. मिनिस्ट्री आफ एजुकेशन, गवर्नमेन्ट आफ इंडिया, राज. डि. गजट, जैसलमेर, पृ. 52, फाइल नं. 2/जे. एस. एल. और आर. एस.ए. बीकानेर पश्चिमी राजपूताना के रेजीडेन्ट का सागरमल गोपा के नाम नं. 1619/418/ 40, ता. 22 मार्च 1941 का पत्र।

अजमेर और जन आन्दोलन :

ब्रिटिश सत्ता के सीधे शासन के अन्तर्गत होने से अजमेर भारतीय आन्दोलन के निकट सम्पर्क में रहा हैं। राजस्थान के नरेशों के राज्यों की तुलना में जनोपयोगी संस्थाओं को चलाने की भी कुछ हद तक यहां अधिक छूट थी, अतएव इन राज्यों से निकाले गये कार्यकर्ताओं के लिए इसी क्षेत्र में जाकर कार्य करने का अवसर था। जब देश में क्रांति की लहर चली तो विजयसिंह पथिक, राव गोपालसिंह खरवा, रामनारायण चौधरी, रामचन्द्र नरहरी बापट, ज्वाला प्रसाद शर्मा आदि अजमेर के कर्मठ कार्यकर्ताओं ने अपना संगठन बनाया और क्रांतिकारी कार्यों के द्वारा भारत के स्वातंत्र्य आंदोलन के इतिहास में अपने लिए तथा अपने प्रमुख सहयोगियों के लिए स्थान बना लिया। इनकी क्रांतिकारी गतिविधियों और जेल की यातनाओं का विस्तृत वर्णन एतद सम्बंधी अध्याय में प्रस्तुत किया जा चुका है।

वैसे भारतीय सशस्त्र क्रांति असफल रही और उसकी असफलता के फलस्वरूप अजमेर जो क्रांतिकारियों का गुप्त संगठन था, धीरे धीरे शिथिल हो गया। परन्तु इनके कार्यों से आगे आने वाली पीढ़ी को जो प्रेरणा मिली उससे पुनः अजमेर रचनात्मक प्रवृतियों जैसे पत्रों के प्रसारण एवं असहयोग आन्दोलन के लिए प्रमुख केन्द्र बन गया। कुछ एक क्रांतिकारी गांधीजी के सिद्धान्त के अनुकूल राष्ट्रीय कार्य में लग गये और कुछ एक नये निष्ठावान व्यक्ति आगे आये जिन्होंने विषम परिस्थितयों के बावजूद साधना और निष्ठा से राष्ट्रीय निर्माण में योग दान दिया। [171]

इस पृष्ठभूमि में 1920 से अजमेर में राष्ट्रीय गतिविधियां शुरु हुई। मार्च 1920 में श्री जमनालाल बजाज की अध्यक्षता में राजस्थान मध्य भारत सभा का अधिवेशन आयोजित किया गया और मार्च 1920 को राजस्थान राजनैतिक परिषद् का दूसरा अधिवेशन श्री मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता में आयोजित हुआ। मौलाना शोकत अली ने जिन्होंने इसमें भाग लिया था मुसलमानों को असहयोग आन्दोलन का समर्थन करने के लिये आग्रह किया। इसमें विदेशी वस्तुओं, कपड़ों, शराब आदि के बहिष्कार सम्बन्धी प्रस्ताव पारित हुए। यहीं से अजमेर में असहयोग आन्दोलन का श्री गणेश हुआ। पंडित गौरीशंकर ने इस आन्दोलन की अगुवाई की।[172]

इसी प्रकार 1919 में वर्धा में स्थापित राजस्थान सेवा संघ को 1920 में अजमेर लाया गया जिसका उद्देश्य प्रजा की असुविधाओं का निवारण तथा उनके अधिकारों की राजाओं और जागीरदारों से मान्यता प्राप्त करवाना था। इस संस्था की अनेक शाखाएं बूंदी, जयपुर, जोधपुर और कोटा में स्थापित की गई। इसके प्रमुख कार्यकर्ता पथिक जी श्री माणिक्यलाल वर्मा, श्री रामनारायण चौधरी थे जिन्होंने बिजोलिया आन्दोलन, बरड़ एवं नीमूचाणा काण्ड में अपनी अपूर्व भूमिका निभाई थी और उनका मार्ग दर्शन भी किया था। ब्रिटिश सत्ता संघ की गतिविधियों को बड़ा खतरनाक समझती थी। अतएव श्री रामनारायण चौधरी तथा श्री शोभालाल पर देश द्रोह का इल्जाम लगाकर 1924

171– चौधरी– वर्तमान राजस्थान. पृ. 143-149.

172– फो. पो. सितम्बर 1921 सीक्रेट पार्ट बो.नं. 66-67, अ. बी.

में उन्हें गिरफ्तार कर लिया और श्री शोभालाल गुप्ता को दो वर्ष का कठोर कारावास का दण्ड दिया तथा चौधरी को मुक्त कर दिया। परन्तु किसी कारणवश 1928 में इस संस्था को बंदकर देना पड़ा और उसके स्थान पर राज प्रजा सेवक नामक संस्था बनाने की योजना तैयार की जाने लगी।[173]

इसी बीच 1926 में श्री हरिभाऊ उपाध्याय जब वर्धा से राजस्थान लौटे तो उन्होंने रचनात्मक कामों को हाथ में लेने का संकल्प किया। इनके नेतृत्व में अजमेर में सस्ता साहित्य मंडल, खादी ग्रामोद्योग, हरिजन-सेवा-संघ, मजदूर संगठन, गांधी आश्रम और गांधी सेवा संघ की स्थापना की गई। गांधी आश्रम हटूंडी का स्वरूप सत्याग्रह आश्रम साबरमती के आदर्शानुकूल रखा गया जहां बाबा नरहरिदास और श्री बैजनाथ आदि उसके प्रथम सदस्य थे। यहां अजमेर तथा राजस्थान के अन्य कार्यकर्ता इकट्ठे होकर मन्त्रणा करते थे और अपने भावी कार्यक्रम की योजना बनाते थे। अजमेर से त्याग भूमि प्रकाशन में क्षेमानंद राहत, रामनाथ सुमन, मुकुट बिहारी वर्मा कृष्ण चन्द्र विद्यालंकार और चन्द्र गुप्त वार्ष्णेय का बड़ा सहयोग था। इन संस्थाओं तथा पत्र पत्रिकाओं द्वारा खादी प्रचार तथा शिक्षा प्रसार में बड़ी सहायता मिली और जनमत इतना संगठित हो गया कि राजपूताना मध्य भारत एवं अजमेर मेरवाड़ा प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी ने भारत सरकार द्वारा गठित 1925 के आयोग का अजमेर आने पर ही बहिष्कार करने का निर्णय लिया।[174]

इन रचनात्मक प्रवृत्तियों का सिलसिला चल ही रहा था कि 12 मार्च, 1930 को महात्मा गांधी ने अपने प्रसिद्ध "डंडी मार्च" की शुरूआत से असहयोग आन्दोलन को फिर चालू किया, जिससे अजमेर प्रभावित होने से भला कैसे बच सकता था। यहां सभाओं का आयोजन, विदेशी वस्त्रों व शराब की दुकानों का पिकेटिंग आदि का क्रम चलाया गया। इसके संचालन तथा उसमें भागलेने में श्री रामनारायण चौधरी, श्री गोकुल लाल असावा, श्री कृष्ण गोपाल गर्ग, श्री बालकृष्ण कोल, मास्टर लक्ष्मीनारायण, श्री जमालददीन, श्री चन्द्रभान, श्री कन्हैयालाल आर्य, श्रीमती कोकिला देवी आदि सम्मिलित थे। इस आन्दोलन में गवर्नमेंट कालेज के विद्यार्थियों ने सराहनीय भूमिका निभाई, जिसमें स्वयं लेखक भी पिकेटिंग, धरना विदेशी वस्त्रों की होली जलाने में शरीक था। इसके अपराध में हम कई को कालेज से निष्कासन का दण्ड दिया गया था। सरकार ने दमनकारी तरीके से तथा गिरफ्तारियों एवं कारावास की कठोर यातनाओं से कुचलने का प्रयत्न किया परन्तु सैकड़ों लोग सहर्ष कारावास गये पर आंदोलन बढ़ता ही गया। अन्त में 1931 में गांधी इरविन समझौते के कारण आन्दोलन स्थगित कर दिया गया।[175]

173- तरुण राजस्थान 2 मार्च, 30 मार्च, 16 नवम्बर, 1923; चौधरी-वर्तमान राजस्थान, पृ. 258-275

174- पाक्षिक रिपोर्ट, अजमेर मेरवाड़ा की राजनैतिक स्थिति, फा.नं 121 पी., 1927, फो पो. रा.अ.

175-सीक्रेट नोटिफिकेशन मेनोक का, पत्र नं. डी. 2135-1/30, 23 अगस्त, 1930, फा.नं. 5112, 1931, हो.पो.रा.अ.; चौधरी वर्तमान राजस्थान, पृ. 157-166; के.एस. सक्सेना, पोलिटिकल मूवमेंट एण्ड अवेकनिंग 'राजस्थान, पृ 219-20.

जैसा कि हमने ऊपर के अध्याय में पढ़ा कि अजमेर के क्रांतिकारी 1932–1939 तक फिर अपनी गतिविधि में लग गये जिसमें अजमेर कमिश्नर की हत्या, मेओ कालेज का बंब केस तथा डोगरा हत्या काण्ड सम्मिलित थे। इन्हें इसमें सफलता न मिली जिसकी पूर्ति कांग्रेसी सत्याग्रहियों ने की। जब देश में व्याप्त असन्तोष के कारण आन्दोलन हो रहे थे तो अजमेर नगर कांग्रेस के कार्यकर्त्ताओं ने 26 जनवरी, 1940 को टाउन हाल के अहाते में स्वतन्त्रता दिवस मनाने का आयोजन किया। जब आयोजन से सम्बन्धित सभी तैयारियां हो चुकी थीं और सभा होने ही जा रही थी कि इसके दो घंटे पूर्व नगर कांग्रेस के मंत्री दुर्गाप्रसाद को जिला मजिस्ट्रेट ने आयोजन को न मनाये जाने के आदेश दिये। इससे विद्यार्थी वर्ग जो आयोजन का सक्रिय कार्यकर्त्ता था, बड़ा उत्तेजित हुआ। उसने सरकारी आज्ञा का उल्लंघन किया और नारे लगाये "अत्याचारी सरकार का नाश हो", "ब्रिटिश सरकार का नाश हो", आदि। विद्यार्थियों ने राष्ट्रीय झंडे को ऊपर उठाने और यूनियन जैक के उतारने के भी नारे लगाये। उत्तेजित सरकार ने कई विद्यार्थियों को गिरफ्तार कर लिया और उनमें से 12 पर पांच हजार का जुर्माना किया।[176]

सरकारी अधिकारी इससे भी सन्तुष्ट नहीं हुए। उनका दमन नीति का चक्र चालू रहा। फरवरी, 1940 को प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के दफ्तर तथा पं. ज्वालाप्रसाद, डॉ. जे.एन. मुकर्जी तथा श्री बाबा नरसिंहदास के मकानों की तलाशी ली गई। श्री देवी प्रसाद और श्री रामेश्वर को गिरफ्तार कर लिया और फिर छोड़ दिया गया, परन्तु श्री श्यामबिहारीसिंह व श्री बाबा नरसिंहदास को बिना अभियोग के जेल में डाले रखा। 10 अप्रेल, 1940 को श्री अम्बालाल माथुर के प्रेस और मकान की तलाशी इस संदेह में ली गई कि "रोशनी" नामक पुस्तक उसके छापेखाने या घर में है। तलाशी में इस पुस्तक की 17 प्रतियां बरामद की गई।[177]

कांग्रेस कार्यकर्ता इस तलाशी या पकड़ धकड़ से विचलित नहीं हुए। उन्होंने 8 से 16 अप्रेल राष्ट्रीय सप्ताह तथा जलियांवाला बाग की वार्षिक दिवस मनाने के उपलक्ष्य में एक प्रदर्शनी व भाषणों का आयोजन किया। इस अवसर पर 50 फुट ऊंचा तिरंगा झंडा लगाया गया और प्रेरणास्पद कई भाषण दिये गये। जन भाषणों में पार्वती देवी डीडवाणिया का जो दिल्ली की अच्छी कार्यकर्ता थी, भाषण नौजवानों को प्रेरणा देने के लिए बड़ा प्रभावशील था। इस प्रकार के कार्यक्रमों से कमिश्नर बौखला गया और उसने एक घंटे में प्रदर्शनी व झंडे को हटाने के आदेश दे दिये। श्री कृष्णगोपाल गर्ग जो प्रदर्शनी के आयोजकों में से एक थे, आज्ञा पालन करने को तैयार नहीं थे। इस पर पुलिस ने झंडे को उखाड़ फैंका और गर्ग को गिरफ्तार कर चार माह की सजा दे जेल भेज दिया। अन्त में महात्मा गांधी को जब स्थिति का पता चला तो उन्होंने आन्दोलन बन्द करवा दिया, परन्तु

176–नगर कांग्रेस कमेटी के मंत्री की रिपोर्ट पी.सी.सी. अजमेर को फा.नं. 4/3/44 पो. (1) 1940, होम पो, रा.अ.

177–पुलिस रिपोर्ट, 30 अप्रेल, 1940, जुलाई-अगस्त, 1958, अजमेर, रा.अ.

श्नर व पुलिस के कदम की भर्त्सना की। फिर भी अधिकारी वर्ग ने परवाह न कर 28 अप्रैल, 1940 को होने वाले नगर कांग्रेस के मासिक आयोजन के मनाने की मुमानियत का नोटिस दुर्गाप्रसाद चौधरी जो नगर कांग्रेस के मंत्री थे के पास भिजवा दिया।[178]

इस प्रकार की सरकार की दमन नीति का विरोध करने के लिए रेल्वे वर्कशाप के 10 हजार श्रमजीवियों ने 15 अगस्त, 1941 को हड़ताल कर दी। वे कारखाने के अन्दर तो घुस गये परन्तु काम कुछ नहीं किया। सरकार ने सेना बुला ली तो भी हड़ताली नहीं डरे। अन्त में बातचीत के बाद समझौता होने पर 3 सितम्बर, 1941 को हड़ताल समाप्त हुई।[179]

चीफ कमिश्नर जानता था कि रेल्वे के कारखाने में हड़ताल करवाने में श्री ज्वाला प्रसाद शर्मा का हाथ है, इसलिए उसको 19 अगस्त, 1941 को गिरफ्तार करके अजमेर से बाहर किसी दूसरे प्रान्त की जेल में भेजना चाहा, परन्तु प्रांत की किसी भी सरकार ने उनको अपने यहां रखने से इन्कार कर दिया। फिर श्री ज्वालाप्रसाद ने जेल में से 12 नवम्बर, 1941 को भागने का प्रयत्न किया परन्तु उसका पता लग गया और वे वापस अपनी कोटडी से चले गये। तब उनको 15 मास का कठोर कारवास का दण्ड दिया और 50 रुपये जुर्माना किया गया। श्री ज्वाला प्रसाद ने अपील की, जिसमें उनको 16 फरवरी 1942 को छोड़ दिया गया। 25 फरवरी 1942 को उन पर पुनः मुकदमा चला कर छः माह का कठोर कारावास का दण्ड दिया गया। जेल में श्री ज्वाला प्रसाद शर्मा और उसके साथी रघुराजसिंह ने दीवार को फांदने के लिए एक निसेनी बनाली। बाली बांस के लोहे के खंभों पर लकड़ी के टुकड़े बांध दिये। बांधने के लिए धोतियों के टुकड़ों से काम लिया। इस प्रकार 10 धोतियां काम में आई और ज्वाला प्रसाद जेल से निकल भागे। उनको पकड़ने के लिए सरकार ने बड़ा प्रयास किया परन्तु सब विफल हो गया।[180]

178- अजमेर पुलिस ने सुपरिन्टेन्डेन्ट की रिपोर्ट, 30 अप्रैल, 1940, फा. नं. 4/3'40 पो (1), 1940, हो. पो. रा. अ.; 17 फरवरी का तार गर्ग की पत्नी शकुन्तला देवी का होम मेम्बर, दिल्ली को फा नं 4/3/40; के. एस. सक्सेना, पोलिटिकल अवेकनिंग, पृ. 231-32.

179- रा.अ. 26 अगस्त, 1941 का पत्र नं. 85 (सी.) ए.एफ. 36/41 रजिडेन्ट का होम डिपार्टमेंट को, फा. नं 12/7/41 पो (1), 1941; पत्र नं. बी. 26/1941 (कोन्फीडेन्शल), 4 सितम्बर, 1941; श्री खुर्शीद का चीफ कमिश्नर के सेकेट्री के नाम. अजमेर

180- फा. नं. 94/17/41-पो. (1) होम पो; रा.अ. कोनफा. नं. 197(सी), 17 सितम्बर, 1941, रा.अ.; फा.नं. 3/9;/44 पो.-1, 1944, होम. पो., रा.अ.

समीक्षा :

इस प्रकार 1941 तक राजस्थान की प्रत्येक रियासत में प्रजामण्डल स्थापित हो चुके थे। वैसे तो इनका प्रारम्भ 1920 में ही हो गया था। इस अवधि में प्रजामण्डलों ने कई प्रकार से राजनैतिक आन्दोलन किये। कहीं सत्याग्रह हुआ कहीं सत्याग्रहियों पर सरकार ने गोलियां चलाई क्योंकि कोई भी नरेश शासन शक्ति जनता के हाथ में सौंपना नहीं चाहता था। राज्यों के नाममात्र के विधानों में भी वास्तविक शक्ति नरेश या उसके दीवान के हाथ में रक्खी गई थी। इंग्लैण्ड के अंग्रेज राजनीतिक झूठा अफसोस प्रकट करते थे कि देशी राज्यों ने जनतंत्र प्रणाली जारी नहीं की। वास्तव में इस प्रणाली के पक्ष में न तो पोलिटिकल ऐजेन्ट थे न पोलिटिकल विभाग था न कोई वायसराय था। परन्तु संसार के सामने अपने शासन का अच्छा चित्र उपस्थित करने के लिये अंग्रेज लोग ऐसी बातें करते थे। नरेशों ने प्रजामण्डलों के दबाव के कारण और जनता के कोलाहल से तंग आकर उत्तरदायी शासन की चर्चा शुरु की थी। परन्तु राज्यों में प्रतिनिधिक, उत्तरदायी अथवा संसदीय शासन प्रणाली के प्रारूप में कोई ठोस कदम नहीं उठाये गये थे। वस्तुतः शासन पर राजाओं का नियन्त्रण बना रहा तथा ऐसा प्रशासन पूर्णतया ब्रिटिश सरकार के प्रति उत्तरदायी रहा।[181]

सबसे बड़ी विशेषता 1912 से 1940 तक यह रही कि राजस्थान की समस्याओं के प्रति देश के गणमान्य नेता रुचि लेने लगे और समय समय पर मार्ग दर्शन भी करते रहे। इस दृष्टिकोण से स्थानीय नेताओं में उत्साह बना रहा। बराबर दमन चक्र चलते रहे, परन्तु राजस्थान के कार्यकर्ता साहस और दृढ़ता से उसका मुकाबला करते रहे। प्रगतिशील कार्यक्रमों की रूपरेखा बनती रही और किसी हद तक जनता के शोषण की प्रगति में रुकावटें पैदा की गई। इसका अधिकांश श्रेय प्रजामण्डल आदि संस्थाओं को जाता है। यही कारण है कि असहयोग और सत्याग्रह आन्दोलन में जनता भागीदार बन गई और समूचा आन्दोलन जन आन्दोलन बन गया यहां तक कि इस में राजस्थान के हिन्दू एवं मुसलमान एक होकर राष्ट्रीय कार्यक्रम में कन्धे से कन्धा लगाकर कार्यरत हो गए। राजस्थान की तत्कालीन परिस्थितियों में गांधी जी की अहिंसा की नीति स्वाधीनता प्राप्त करने में अधिक कारगर सिद्ध हुई जो अगले प्रकरण में स्पष्ट हो जायगा।

181-त्रिलोकचन्द माथुर का पत्र हरिभाऊ उपाध्याय को, अप्रेल 28, 1939.

अध्याय-12

भारत छोड़ो आन्दोलन और तदनन्तर (1942-1947)

द्वितीय विश्व युद्ध, कांग्रेस का विरोध :

सन् 1936 के 27 तथा 28 दिसम्बर को फैजपुर (महाराष्ट्र) में कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन हुआ। इस अधिवेशन के सभापति पंडित जवाहरलाल नेहरू थे। अपने अध्यक्षीय भाषण में उन्होंने स्पष्ट किया कि यदि विश्वयुद्ध छिड़ जाए और भारत के जन-बल तथा आर्थिक साधनों का युद्ध के लिए उपयोग किया जाए तो देश को चाहिए कि इसका विरोध करे। इस युद्ध के लिए कोई ऋण और चन्दा नहीं दिया जाए और युद्ध की अन्य तैयारियों का भी विरोध किया जाये। हरिपुरा (1938) व त्रिपुरी (1939) एवं रामगढ़ (1940) कांग्रेसों के अधिवेशनों में भी लोकतन्त्र और स्वतन्त्रता की मांग पर पूरा बल दिया गया। यहां तक कि कांग्रेस के मन्त्रियों ने मन्त्रिमण्डलों से त्याग पत्र दे दिये। मन्त्री मण्डलों से इस्तीफा देना था कि सरकार ने दमन चक्र की प्रगति बढ़ा दी। विरोधी प्रचारकों की गिरफ्तारियां शुरू हो गई। फारवर्ड ब्लाक तथा यूथलीग ने आन्दोलन छेड़ दिया। उधर फ्रांस के पतन के बाद भारत में सरकार के प्रति अविश्वास बढ़ने लगा। गांधीजी ने उस समय सरकार की सहायता के सम्बन्ध में उदार नीति एवं व्यक्तिगत सत्याग्रह अपना कर सरकार की डूबती नैया को संभाला।[1]

क्रिप्स मिशन :

परन्तु द्वितीय विश्व युद्ध के कारण राजनैतिक स्थिति बिगड़ती ही गयी। कांग्रेस की मांग अधिकाधिक उग्र और प्रबल होती गयी, और जापानियों का विजय क्षेत्र बढ़ता गया। ऐसी स्थिति में इंगलैण्ड के लिए यह आवश्यक हो गया कि कांग्रेस और अन्य राजनैतिक दलों से समझौता किया जाए और गत्यावरोध को समाप्त किया जाए। तब इंगलैंड से सर स्टेफोर्ड क्रिप्स की अध्यक्षता में एक ब्रिटिश मिशन भारतीय नेताओं से बातचीत करने एवं स्वराज्य की स्थापना की संभावना टटोलने के लिए 22 मार्च, 1942 को दिल्ली में आया। भारतीय नेताओं से क्रिप्स की बातचीत लगभग 20 दिनों तक चली जिसमें इन बिन्दुओं पर विशेष जोर दिया गया--

1. जो प्रांत नये विधान को स्वीकार न करें वे अपना विधान बनाएं।

2. ब्रिटिश सरकार को यह वचन दिया जाए कि जो जातीय और धार्मिक दल अल्पसंख्यक हैं उनकी समुचित रक्षा की जाएगी।

1-देसाई, पू.उ. पृ. 108-109; आजाद पू.उ. पृ. 21-22 सुभाष काश्यप, संविधानिक विकास और स्वाधीनता संघर्ष, पृ. 166-169.

3. जब तक युद्ध की सफल समाप्ति न होगी तब तक भारत की रक्षा का सारा उत्तरदायित्व अंग्रेज सरकार के हाथ में रहेगा।

4. जहां तक संभव होगा सुरक्षा को छोड़ कर अन्य मामलों को भारतीयों के हाथ सौंपा जा सकेगा।

मुस्लिम लीग को इन बातों से बड़ा संतोष हुआ, क्योंकि इस प्रस्ताव में पाकिस्तान का निर्माण सिद्धान्त रूप से स्वीकार कर लिया गया था। तथापि जिन्ना इस बात पर जोर देते रहे कि पाकिस्तान का बनना स्पष्ट शब्दों में और खुले तौर पर स्वीकार किया जाए तभी मुस्लिम लीग क्रिप्स के प्रस्तावों पर विचार कर सकती है अन्यथा नहीं। परन्तु भारतीय जनता और विशेषकर कांग्रेस को इन प्रस्तावों से बड़ी निराशा हुई। कांग्रेस चाहती थी कि गवर्नर जनरल की कार्यकारी परिषद समाप्त कर एक राष्ट्रीय सरकार बना दी जाय। क्रिप्स प्रस्तावों से स्पष्ट हो गया कि अंग्रेजों का भारत के प्रति दृष्टिकोण में कोई आशाजनक परिवर्तन नहीं है। अगस्त 1942 को तिलक दिवस पर बोलते हुए पंडित नेहरू ने स्पष्ट कहा कि संघर्ष, निरन्तर संघर्ष, मेरा यही उत्तर है एमरी और क्रिप्स को। गांधी जी ने भी योजना को ऐसे बैंक के, जो कि फेल होने जा रहा हो, पोस्ट डेटेड चैक के समान ही बताया।[2]

जब 11 अप्रैल को क्रिप्स प्रस्ताव अचानक वापस ले लिया गया तो यह स्पष्ट हो गया कि यह ब्रिटिश सत्तावाद का भारतीयों के आंखों में धूल झोंकने का एक कुशल प्रयास था। इसका परिणाम यह हुआ कि भारतीय जिनकी थोड़ी बहुत सहानुभूति अंग्रेजों के प्रति थी वे भी उनके विरुद्ध हो गये और भारतीय नेताओं और ब्रिटिश शासकों के बीच एक चौड़ी दरार बन गई। लगता था कि सौहार्दपूर्ण बातचीत के द्वार बंद हो चुके हैं और सत्ता का शिकंजा अधिक कसा जा रहा है। गांधीजी का विश्वास अब इस तानाशाही सरकार से उठने लगा और वे चाहने लगे कि अंग्रेजों को अब भारत से चला जाना चाहिये जिससे भारतीय अपनी समस्या स्वयं सुलझा सकें।[3]

इस पृष्ठभूमि को लेकर ब्रिटेन के प्रति दुर्भावना और जापानी सेना की सफलता के लिए जनमत बनने लगा। 14 जुलाई को कांग्रेस कार्यकारिणी ने प्रस्ताव पारित कर यह अनुमोदन किया कि भारत की स्वाधीनता न केवल भारत के लिए आवश्यक है, वरन् विश्व शांति तथा नाजीवाद, सैन्यवाद तथा तानाशाही के अंत के लिए अनिवार्य है। यह भारतीय स्वाधीनता युद्ध की परिस्थिति को उखाड़ फेंकने और मानवीय स्वतंत्रता की रक्षा की पूर्ण क्षमता रखेगी। इस समग्र स्थिति पर विचार करने के लिए 5 अगस्त को कार्य-

---

2– नेशनल हेरल्ड, 24 अप्रेल, 30 जुलाई, 1942; हिन्दुस्तान टाइम्स, 22, 27 अप्रेल, 1942; फारिन रिलेशन ऑफ द युनाइटेड स्टेट्स जि. 1, 1942, पृ. 649-659.

3– हरिजन, 26 अप्रेल, 1942; मोरलेण्ड तथा चटर्जी, ए शोर्ट हिस्ट्री आफ इंडिया, लन्दन, 1953, पृ. 50.

कारिणी की और 7 अगस्त को बम्बई में महा समिति की बैठक हुई। दो दिन के वाद-विवाद के बाद "भारत छोड़ो" प्रस्ताव महासमिति में पास कर दिया गया। प्रस्ताव में भारत की स्वतंत्रता की तत्काल स्वीकृति, निरंकुश एवं साम्राज्यवादी ब्रिटिश शासन का अंत, भारतीय संविधान का संघात्मक स्वरूप तथा सभी वर्गों की स्वाधीनता के लिए प्रावधान था। इस प्रस्ताव पर बोलते हुए महात्माजी ने संघर्ष की संज्ञा "करो या मरो" दी थी और कहा था कि यह आंदोलन अहिंसात्मक होगा और इसका लक्ष्य स्वाधीनता की विजय होगा।[4]

गांधीजी को कारावास, दमन :

अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी का अधिवेशन 8 अगस्त, 1942 की रात्रि को समाप्त हुआ और दूसरे दिन सूर्योदय से पहिले से ही गांधीजी, आजाद और कांग्रेस के अन्य मुख्य-मुख्य लोग जेल में डाल दिये गये। अखिल भारतीय कांग्रेस और प्रांतीय कांग्रेस कमेटियों का अवैध घोषित कर दिया गया। कांग्रेस का मुख्य कार्यालय और कोष जब्त कर लिये गये। समाचारों के प्रकाशन पर कड़ी पाबन्दियां लगा दी गईं।[5]

1942 का हिंसात्मक विद्रोह :

गांधीजी के जेल में पहुंचते ही अहिंसा का सिद्धान्त समाप्त हो गया। शान्त प्रदर्शन और हड़तालें हुईं और समस्त भारत में जुलूस निकले। सरकार ने उनको दबाने के लिए कठोर साधनों का उपयोग किया। लाठी प्रहार किये गये और गोलियां चलाई गईं और जुलूसों को भंग किया गया। फिर 11 अगस्त के बाद स्थिति बिगड़ने लगी। गांधीजी का अहिंसा का सिद्धान्त समाप्त हो गया। हड़तालों, सभाओं और जुलूसों के अतिरिक्त दंगे अग्निकांड, हत्यायें और सम्पत्ति का विनाश होने लगा। रेल, डाकघर, तार घर नष्ट किये जाने लगे और पुलिस पर भी हमले हुए। इस प्रकार के दंगे मद्रास, बम्बई, बिहार, मध्य प्रान्त और उत्तर प्रदेश में अधिक हुए।[6]

रेल्वे ट्रामों, बसों, मोटरों आदि पर आक्रमण करने के अतिरिक्त सरकारी दफ्तरों पर भी आक्रमण किये गये। उत्तर प्रदेश में 104 रेल्वे स्टेशन क्षतिग्रस्त कर दिये गये और 15 जला दिये गये। 16 बार गाड़ियां पटरियों पर से उतार दी गईं और 100 रेल्वे लाइनों को क्षति पहुंचाई गयी। 119 डाक घर नष्ट कर दिये गये थे। इन दफ्तरों में काम करने वाले 32 व्यक्तियों पर हमले किये गये। पुलिस के 16 आदमी मारे गये और 322 आहत हुए। सारे प्रान्तों में इन उत्पातों के सिलसिले में 16 हजार से अधिक

4- 9 अगस्त का हरिजन में गांधीजी का लेख; मित्रा, एनुअल रजिस्टर, 1942, भा-2, पृ. 309-213; आर. सी. मजूमदार- द फ्रीडम मूवमेन्ट इन इंडिया, भा-3, पृ. 642

5- आर. सी. मजुमदार, फ्रीडम मुवमेन्ट इन इंडिया, भा-3, पृ. 642

6- -----यही-----पृ. 649-50

व्यक्ति गिरफ्तार किये गये। कुल मिला कर लोगों पर 25 लाख 32 हजार रुपये जुर्माना किया गया। इसमें से 25 लाख तत्काल वसूल कर लिया गया। अन्य सूत्रों से भी क्षति के अंक निम्न प्रकार है। 7

1.	रेलवे स्टेशन नष्ट या क्षति ग्रस्त	250
2	डाकघर जलाये गये	50
3.	डाकघर जिन पर धावे हुए	550
4.	डाकखाने जिनको नुकसान पहुंचाया	200
5.	तार और टेलिफोन काटे गये	3500 स्थानों पर
6.	पुलिस के थाने जलाये गये	70
7.	अन्य सरकारी इमारतें जलाई गयी	85

अराजकता :

तुरन्त ही देश के अनेकों भागों की शिक्षण संस्थायें और विश्वविद्यालय खाली हो गये। ढाका से दिल्ली तक और लाहौर से मद्रास तक सारी शिक्षण संस्थाये खाली पड़ी थी। केवल अलीगढ़ विश्व विद्यालय बन्द नहीं हुआ। सरकार ने इन कार्यवाहियों को रोकने के लिये आर्डिनेन्स जारी किये परन्तु उनका कोई असर नहीं हुआ। बनारस विश्वविद्यालय को आरम्भ से ही सेना ने अपने हाथ में ले लिया था। रेल की पटरियों की फिश प्लेटें उखाड़ दी गई थीं। सबसे बड़ा प्रहार उन दिनों में रेलों पर ही किया गया था। कई दिन तक मद्रास मेल बन्द रही और जब चलने लगी तो केवल दिन में ही चलती थी, रात में नहीं। 130 मील तक की रेल पटरियां जहां तहां उखाड़ दी गयी थी। बिहार में मुंगेर के साथ बाह्य सम्बन्ध दो सप्ताह तक कटा रहा इसी प्रान्त में रेल को सर्वाधिक हानि पहुंचाई गई थी। अहमदाबाद की लगभग सभी मीलें बन्द कर दी गयी थी। बिजली के खम्भे, दमकल और नगर परिषदों की गाड़ियों को तोड़फोड़ डाली थीं। रेल्वे दफ्तरों, आयकर दफ्तरों, स्कूलों, कालेजों, डाकघरों और रेल के गोदामों में आग लगादी गई थी। बिहार मे सचिवालय में भी आग लगाने का प्रयत्न किया गया था।8

आन्दोलन को कुचलने के लिए दमनचक्र पूरी शक्ति से चलाया गया। सरकारी सूचना के आधार पर 538 बार गोलियां चलाई गई और हवाई जहाजों से मशीनगनों द्वारा गोलाबारी की गई। कई गांवों की प्रजा पर सामूहिक दण्ड देने की व्यवस्था की गई। इस अवसर पर मृतकों व घायलों की संख्या 40–50 हजार तक पहुंच चुकी थी। युवक, वृद्ध, स्त्रियों आदि की तरह तरह की यातनाएं दी गयी थीं जो अमानुषिक थी, जिनका वर्णन लेखनी की क्षमता के परे है।9

7–डा. पट्टाभीसीतारमैया हिस्ट्री आफ., भा. 2 पृ. 375–6

8–कूपलैण्ड, इण्डिया ए रीस्टेटमेन्ट, आक्सफोर्ड, 1945, पृ. 224

9–...........वही....................

नरेशों की सरकार को सहायता :

इधर भारतीय नेता तो उत्तरदायी शासन स्थापित करवाना चाहते थे तो उधर जब अगस्त 1939 में द्वितीय महायुद्ध के काले बादल मंडराने लगे तो राजस्थान के राजा अंग्रेज सरकार की सहायता करने में व्यस्त थे। सर्व प्रथम महाराजा बीकानेर ने सम्राट और वायसराय को तार भेजा कि मैं अपनी और अपनी सेना की सेवाएं सम्राट के अर्पण करता हूं। 3 सितम्बर, 1939 को जब युद्ध की घोषणा हो गई तो महाराजा ने सम्राट को तार भेजा कि ईश्वर की कृपा से इस पैशाचिक संघर्ष में आपको विजय प्राप्त होगी। मुझे कम से कम मध्य पूर्व में सैनिक सेवा करने का अवसर प्रदान किया जाए। वायसराय ने उसकी अनुमति दे दी तो महाराजा गंगासिंह ही नहीं उनके उत्तराधिकारी भी बीकानेर से 23 अक्टूबर 1942 को बम्बई से युद्ध के लिये रवाना हो गये और साथ ही गंगा रिसाला भी युद्ध में लड़ने के लिये चल दिया। बीकानेर का अनुकरण जयपुर, जोधपुर, उदयपुर, अलवर, भरतपुर, धौलपुर और कोटा आदि रियासतों ने किया। उन सबने आर्थिक और सैनिक सहायता भी दी। महाराजा जयपुर ने अपने राज्य के समस्त साधन ब्रिटिश सरकार के अर्पण कर देना चाहा और वायसराय से प्रार्थना की कि मुझे युद्ध मोर्चे पर जाने की इजाजत दी जाये। ऐसी ही प्रार्थना ही जोधपुर के महाराजा ने की और अपना वायुयान का स्टेशन वायुयान के चालकों को प्रशिक्षण देने के लिये सरकार के सुपुर्द कर दिया और जोधपुर का सरदार रिसाला भी फर्स्ट केवेलरी ब्रिगेड में सम्मिलित कर दिया। महाराणा उदयपुर ने 75 हजार रुपये प्रतिवर्ष कोष में देने का वचन दिया। इसी प्रकार अन्य नरेशों ने भी आर्थिक और सैनिक सहायता दी।[10]

बड़े दुःख की बात है कि इधर तो नरेशगण युद्ध में आर्थिक और सैनिक सहायता देने के लिए छटपटा रहे थे और उधर उनकी जनता सत्याग्रह आन्दोलन की बड़ी उत्साह और उमंग के साथ तैयारी कर रही थी।

राजस्थान में 1942 के भारत छोड़ो आन्दोलन का प्रभाव:

भारतवर्ष में घटी हुई घटनाओं तथा विचार का प्रभाव राजस्थान पर हुए बिना नहीं रह सकता था। ब्रिटिश भारत की अराजकता, तोड़फोड़, लूटमार तथा सरकार द्वारा घोर और पाशविक दमन की खबरें समाचार पत्रों तथा पारस्परिक सम्बन्धों द्वारा राजस्थान में पहुंचती थीं। उनसे यहां भी तनाव उत्पन्न होता था और आन्दोलनकारियों का उत्साह बढ़ता था। राजस्थान के प्रत्येक राज्य में पहले से ही तनाव था और लोगों की प्रवृत्ति देशभक्ति की ओर थी। जब देश की पुलिस के थाने लोगों ने जला दिये कई डाकखाने लूट दिये और रेलवे स्टेशन नष्ट कर दिये तो राजस्थान के छात्रों व युवकों का भी खून उबलने लगा। जनता में सनसनी फैल गयी। प्रत्येक राज्य में जो लोग शान्त थे अब गरम हो उठे।

10–फा.नं. 46–डब्ल्यू, 1939, फो.पो.–रा.अ.; फा.नं. 100, डब्ल्यू. 85 (57) डब्ल्यू. 30 (7) डब्ल्यू, 76 (55) डब्ल्यू. 1939, फा.नो. रा.अ.; बीकानेर एण्ड वार (आबू कलेक्शन), रा.वि.ज., पृ. 1–3. 10

जब ब्रिटिश भारत में कांग्रेस का संगठन भी बड़ा जोरदार था और गांधी जी तथा समस्त नेता जेल में थे, राजस्थान के राजनैतिक नेता, कार्यकर्ता विद्यार्थी और नगरों तथा कस्बों के लोग भी इसी प्रकार का आन्दोलन करने के लिए तथा जेल में जाने के लिए कटिबद्ध हो गये। अतएव प्रायः प्रत्येक राजधानी में राजनीतिक आन्दोलन ने बड़ा जोर पकड़ा और प्रत्येक राजधानी में राजाओं से यह मांग की जाने लगी कि वे अंग्रेज सरकार से अपना सम्बन्ध विच्छेद कर लें और अपने अपने राज्य में पूर्ण उत्तरदायी शासन स्थापित करें। परन्तु इन मांगों के विपरीत जिस प्रकार ब्रिटिश भारत में पाशविक विधियों से जन आन्दोलन का दमन किया जा रहा था उसी प्रकार राजस्थान के सभी राज्यों में आन्दोलन को दबाने के लिए दमन-चक्र चलाया गया। पोलिटिकल रेजीडेन्टों; एजेंटों और राजस्थान के ए.जी.जी. ने राज्यों के शासकों की पीठ ठोंकी तो उन्होंने और भी अत्याचार की गति को तीव्र किया और आन्दोलनकारियों के साथ बड़ा कठोर और निर्दयतापूर्ण व्यवहार करना आरंभ कर दिया। इस राष्ट्रीय आन्दोलन को नरेशों ने किस तरह कुचला और यहां के स्वतन्त्रता सेनानियों ने दमन का किस प्रकार निर्भीकता से सामना किया उसका वर्णन इस प्रकार है। [10]

मेवाड़ और जन आंदोलनः

जैसा कि हमने ऊपर पढ़ा 1941 से पहले उदयपुर सरकार ने प्रजामण्डल पर रोक लगा रखी थी। परन्तु जब उदयपुर का ही नहीं सारे भारतवर्ष का राजनैतिक वायुमण्डल बदला तो फरवरी, 1941 के प्रारम्भ में यह रोक हटा दी गयी। अब प्रजामण्डल को उत्तरदायी शासन की स्थापना का प्रचार करने का अवसर प्राप्त हो गया और नवम्बर 41 को श्री माणिक्यलाल वर्मा की अध्यक्षता में उदयपुर में प्रजामण्डल का प्रथम अधिवेशन आयोजित किया गया जिसमें नागरिक अधिकार और उत्तरदायी शासन की मांग जोरों से की गई। साथ ही श्रीमती विजय लक्ष्मी पंडित को बुलाकर उनके हाथों से स्वदेशी प्रचारार्थ खादी की प्रदर्शनी का उद्घाटन करवाया गया। लोगों में बड़ा जोश उमड़ा देखकर सरकार चुने हुए बहु संख्यक सदस्यों की विधान सभा बनाने और बटवाली कर को निरस्त करने की घोषणा की। [11]

ज्योंही 8 अगस्त, 1942 ब्रिटिश भारत में भारत छोड़ो आन्दोलन शुरू हुआ त्योंही मेवाड़ में भी इसकी आग भड़क उठी। सरकार की दृष्टि सबसे पहले श्रमिक नेताओं पर पड़ी। उन्हीं से आशंका थी कि वे रूस की क्रांति से प्रेरित होकर साम्यवाद का प्रचार करेंगे। इसलिये 10 अगस्त, 1942 को श्रमिक नेता रमेशचन्द्र व्यास को गिरफ्तार कर लिया गया। इतने में जब वर्मा जी 7 अगस्त को बम्बई कांग्रेस महासभा समिति से उदयपुर लौटे तो अगस्त आंदोलन के बारे में कार्यकर्ताओं से विचार विमर्श किया और तदनुसार

10— बीकानेर एण्ड वार बीकानेर राज्य का प्रकाशन 1842, आबू संग्रह राजस्थान विश्व विद्यालय, जयपुर; रिपोर्ट्स आन द एडमिनिस्ट्रेशन ऑफ मेवाड़ स्टेट, 1940-42; डी. ओ. नं. 1989, कोटा आई.जी.पी का पत्र रेजिडेन्ट अजमेर को फो. नं. 12/15 (कोटा अभि.) प्रजामण्डल पत्रिका नं. 23, 1942; नेशनल हेराल्ड, जुलाई, 11, 1142

11— 22 फरवरी का पत्र माणिक्यलाल वर्मा का जमनालाल बजाज को, नं. 105; पत्र व्यवहार, केला देशी राज्य की जनजागृति पृ. 241-42

महाराणा को लिखित प्रार्थना की गई कि या तो वे ब्रिटिश सत्ता से सम्बन्ध विच्छेद करदें और उत्तरदायी शासन की स्थापना करे अन्यथा उन्हें आंदोलन का सामना करना पड़ेगा। इसके उत्तर में मेवाड़ सरकार ने दमन नीति और भी जोरदार चलाई और शीघ्र ही 21 अगस्त 1942 को श्री माणिक्यलाल वर्मा, श्री मोहनलाल सुखाड़िया, श्री बलवन्त-सिंह मेहता, श्री कनक मधुकर, श्री बया, और 15 अन्य सत्याग्रहियों को गिरफ्तार कर लिया। साथ ही 23 अगस्त को भाषण प्रदर्शनों आदि पर रोक लगाकर प्रजामण्डल को अवैध घोषित कर दिया।[12]

इसके अन्तर्गत गिरफ्तारियों का लम्बा प्रकरण चला जिनकी संख्या लगभग 500 की हो गई। वर्माजी का सारा परिवार बन्दी बनाया गया। इन धड़ा-धड़ गिरफ्तारियों से आंदोलन की गति अधिक तीव्र हो गई। शहर में तथा शिक्षण संस्थाओं में पूर्ण हड़ताल रही। सारे मेवाड़ में जगह-जगह लगभग, सभी कस्बों में, आंदोलनकारी जत्थे, प्रभात फेरी, भाषण और झंडा अभिवादन के कार्यक्रम करते रहे। चित्तौड़, भीलवाड़ा, मांडल, मांडलगढ़, ऋषभदेव, नाथद्वारा, कांकरोली, गुलाबपुरा बनेड़ा शाहपुरा आदि क्षेत्रों के कार्यकर्त्ता गिरफ्तारियां देने में गौरव अनुभव करते थे। सितम्बर 3, 1942 को शाहपुरा प्रजामण्डल ने राज्य से अपने सम्बन्ध विच्छेद और स्वतन्त्रता की घोषणा कर राष्ट्रीय ध्वज के साथ जुलूस निकाला। खुफिया पुलिस ने सूचना के अनुसार बनेड़ा ठिकाने में 30 अक्टूबर 1942 को गांधी जयन्ती मनाई गई और राष्ट्रीय ध्वज को फहराया गया। मेवाड़ टेक्सटाइल मिल के मजदूर प्रजामण्डल के लिए चन्दा इकट्ठा करने लगे। सरकार ने विरोधी भाषण देने के अपराध में जहाजपुर में जगदीश प्रसाद को और गुलाबचन्द को चित्तौड़ में गिरफ्तार कर लिये। 6 नवम्बर 1942 को ईसवाल जेल के बन्दियों ने नाटक को खेला जिसके पात्र राज्य के बर्बर अधिकारियों की ज्यादतियों को प्रदर्शित किया गया। जेल अधिकारियों को बड़ा बुरा लगा, पर आमोद के बहाने खेल को रोकने में वे विफल रहे। 30 नवम्बर, 1942 को उदयपुर में रेल की पटरियां उखाड़ी गई और विद्यार्थियों ने सरकार के विरुद्ध पर्चे बांटे। दीवारों पर लगाए गए राज्य विरोधी पोस्टर को पुलिस उखाड़ती थी तो रातों-रात दूसरे पोस्टर चिपके मिलते थे। इस वर्ष के आंदोलन में लगभग 500 कार्यकर्त्ताओं को गिरफ्तार कर केन्द्रीय कारावास, सराड़ा, ईसवाल, कुंभलगढ़ आदि जेलों की काल-कोठरियों में बंद कर दिया गया। इन स्थानों में खाने-पीने की समुचित व्यवस्था न थी। पर जब आंदोलन की गति में शिथिलता न आने लगी तो क्रमशः कई बन्दियों को 1943-44 तक मुक्त भी कर दिया। 29 अक्टूबर, 1943 को श्री सुखाड़िया भी रिहा किये गये।[13]

12–पाक्षिक रिपोर्ट, 30 अक्टूबर, 1942, अ. उ.।

13–फा.नं. 33/35, पाक्षिक रिपोर्ट, सितम्बर 42 से 29 अक्टूबर 1943, अ.उ.; 1942 में उदयपुर से जेल जाने वालों में ऊपर के नामों के अतिरिक्त श्री परसराम, श्री प्रेमनारायण, श्री दयाशंकर श्रोत्रीय, श्री मोतीलाल व श्री मोहनलाल तेजावत. हीरालाल कोठारी, श्री रंगलाल, श्री रोशनलाल, श्री घनश्याम पेन्टर आदि थे। नाथद्वारे से श्री नरेन्द्रपाल, नवनीत चौधरी, पुरुषोत्तम हिटलर आदि थे। भीलवाड़ा से श्री रूपलाल, उमरावसिंह जी ढाबरिया, श्री शिवचरण, श्री मथुरा प्रसाद आदि थे। चित्तौड़ से शंकरदेव, बरदीचंद, फूलचंद, आदि प्रमुख थे। बनेड़ा गुलाबपुरा, मांडल, चित्तौड़ आदि स्थानों से भी अनेक कार्यकर्त्ता गिरफ्तार हुए। (सुमनेश जोशी, राजस्थान में..... पृ. 451–518).

ज्योंहि इन कार्यकर्त्ताओं को छोड़ा गया तो वे गुप्त ढंग से पर्चेबाजी में लगकर सरकार के तख्ते हिलाने में सक्रिय हो गये। साथ ही जब ये कार्यकर्त्ता मेवाड़ के कस्बों या गांवों में अकाल राहत के कार्य अथवा शिक्षा प्रचार के लिए जाते थे तो इन पर गुप्तचर चौकसी रखते थे। 19 फरवरी 1943 को उदयपुर से 50 चर्खों को गांवों में सूतकातने के प्रचार के लिए भेजा गया और बिजौलिया से आये हुए धाकड़ नेता भेरूलाल के मकान पर इकट्ठे हुए तो पुलिस ने इनकी गतिविधि की रिपोर्ट दर्ज की और उनका यत्रतत्र पीछा किया। इसी वर्ष 21 नवम्बर को तीन हजार भीलों ने नांदेश्वर महादेव में एकत्रित हो जंगलात के नियमों के उल्लंघन की शपथ ली। इन गतिविधियों से सरकार नेताओं से ऐसे घबराते थे कि जब श्री मोहनलाल सुखाड़िया नाथद्वारा, श्री भूरेलाल बया चित्तौड़ तथा मास्टर बलवन्त सिंह ब्यावर सम्पर्क साधने गये और लौटे तो उनके आने जाने मिलने मिलाने तथा लौटने का ब्योरा तैयार किया गया और पुलिस छाया की भांति उनके साथ चलती रही। फिर भी आन्दोलनकारी अपने राष्ट्रीय कार्य में अडिग रहे। सरकार का यह रवैया 1944 तक जारी रहा और ये निष्ठावान् नेता प्रचार कार्य में जुटे रहे।[14]

जेल से मुक्त होने के बाद कुछ एक कार्यकर्त्ता खारी नदी के आकस्मिक बाढ़ के राहत कार्य में लगे तो कुछ हरिजन सेवा संघ के कार्य को संगठित करने में लगे। उदयपुर में फिर भी आन्दोलन म्यूनिसिपल्टी के चुनाव के लिए तेज किया गया। उन दिनों श्री राजगोपालाचार्य, उदयपुर आये जिन्होंने मेवाड़ प्रजामण्डल के प्रमुख नेताओं को आन्दोलन स्थगित करने का सुझाव दिया। परन्तु दृढ़ प्रतिज्ञ वर्माजी एवं सुखाड़िया जी ने विनम्रता पूर्वक गांधीजी की आज्ञा से प्रारंभ किया हुआ आन्दोलन उनकी अनुमति बिना बन्द करना विश्वासघात बतला कर टाल दिया। पर जब 6 अप्रेल 1945 महात्माजी रिहा हुए तो शनैः शनैः मेवाड़ का आन्दोलन रचनात्मक कार्य में परिणित कर दिया गया।[15]

इन रचनात्मक कार्यों के अन्तर्गत मेवाड़ प्रजामण्डल ने 3 अप्रेल 1944 को राजपूताना और मध्य भारत के कार्यकर्ताओं की कान्फ्रेंस की बैठक को आमन्त्रित किया जिसकी अध्यक्षता इन्दौर के ए. वी. सरवटे ने की। इसमें श्री माणिक्यलाल वर्मा ने आशा व्यक्त की कि राज्य सरकार प्रजामण्डल पर लगी रोक को निरस्त कर देगी। इसके अनन्तर 11अक्टूबर, 1944 को मेवाड़ प्रजामण्डल की कार्यकारिणी की बैठक वर्मा जी की अध्यक्षता में आयोजित की गई जिसमें मेवाड़ में व्यवस्थापिका सभा तथा राज्य के विभिन्न नगरों और कस्बों में म्यूनिसिपल कोन्सिल की स्थापना के सम्बन्ध में मांग करने पर विचार विमर्श किया गया। भाग्यवश 6 सितम्बर 1945 को मेवाड़ प्रजामण्डल पर लगी रोक को हटा लिया गया तो कार्यकर्त्ताओं के लिए रचनात्मक काम करने में सुविधा हो गई।[16]

14–रिपोर्ट मेवाड़ एडमिनिस्ट्रेशन, 1940–44; बोम्बे क्रोनिकल, 14 फरवरी, 1944; हिन्दुस्तान टाइम्स, 9 अप्रेल 1944; नव जीवन, 28 अगस्त, 10 सितम्बर, 16 अक्टूबर, 1944.

15–मोहनलाल सुखाड़िया; मेवाड़ प्रजामण्डल (1938–1945), पृ. 10–11, के. एस. सक्सेना, पोलिटिकल मूवमेन्ट एण्ड अवेकनिंग राजस्थान, पृ. 239–241.

16–हिन्दुस्तान टाइम्स, 9 अप्रेल 1944; नवजीवन 28 अगस्त, 10 सितम्बर, 16 अक्टूबर, 1944;

इधर जब मेवाड़ प्रजामण्डल ने अगस्त आन्दोलन में अपनी अपूर्व भूमिका निभाई तो उसकी प्रतिष्ठा बढ़ी और राष्ट्रीय नेता उसमें अधिक रुचि रखने लगे। पंडित नेहरू का तो दृढ़ मत था कि भारतीय कांग्रेस को राज्य की प्रजा और देश की प्रजा की समस्याओं में समान रुचि रखना चाहिये। सौभाग्य से उदयपुर में राज्य प्रजा परिषद का सम्मेलन बुलाना निश्चय हुआ। इस सम्मेलन का आयोजन 31 दिसम्बर, 1945 से 1 व 2 जनवरी 1946 तक नगर के सलेटिया मैदान में पंडित नेहरू की अध्यक्षता में सम्पादित हुआ। इस सम्मेलन में देश के गणमान्य नेता व कार्यकर्त्ता सम्मिलित हुए जिनमें शेख अब्दुल्ला का नाम उल्लेखनीय है। अपने अध्यक्षीय भाषण में पंडितजी ने रियासतों की प्रजा की जागरुकता की प्रशंसा की पर कहा कि राजा महाराजा अब तक वहीं है जहां वे पहिले थे। वे अंग्रेजों के समर्थक हैं और उनकी दया पर टिके रहना चाहते हैं। उन्होंने आश्चर्य प्रकट किया कि वे अभी तक बदलती हुई परिस्थितियों को नहीं समझने पा रहे हैं। उन्होंने बड़े बल के साथ उन्हें सलाह दी कि उनकी प्रजा को उत्तरदायी शासन सुपुर्द कर अपने हित की रक्षा करनी चाहिये। अगर वे हमारा प्रजा की भलाई के कार्यक्रमों में सहयोग देंगे तो वे हमारे परम मित्र होंगे। राजाओं को इस पर ध्यान देना चाहिए कि यह समय प्रजातन्त्रीय व्यवस्था का है जिसमें एक सत्तात्मक शासन का कोई स्थान नहीं है। वास्तव में पंडितजी का यह भाषण बड़ा प्रभावशाली था जिसने लोगों में आशा का संचार किया और उनकी श्रद्धा कांग्रेस तथा राष्ट्रीयता में अगाढ हो गई।[17]

इस अधिवेशन से लोगों और मण्डल के कार्यकर्त्ताओं का उत्साह अधिक बढ़ा। कई स्थानों में आम सभाएं होने लगीं और लगातार उत्तरदायी सरकार की मांग जोरों से की जाने लगी। मेवाड़ सरकार ने भी बढ़ते हुए जोश को दबाने के लिये सभाओं पर प्रतिबन्ध लगा दिया। ऐसे माहौल में जब अन्न और खाद्य पदार्थों का मूल्य बढ़ता जा रहा था तो जनता के रोष और असंतोष का कोई ठिकाना न रहा। जनवरी 1946 में मेवाड़ राज्य कर्मचारियों ने हड़ताल कर दी और उस समय के प्रधानमंत्री सर विजय राघवाचार्य की नीति का प्रबल विरोध किया गया। पुलिस ने इस सम्बन्ध में की गई आम सभा भंग करने के लिए लाठी प्रहार किया जिसमें कई लोग आहत हुए और कितने ही गिरफ्तार हुए। इसमें प्रजामण्डल ने भी सक्रिय भाग लिया जिनमें श्री माणिक्यलाल वर्मा, श्री मोहनलाल सुखाड़िया, श्री हीरालाल देवपुरा, श्री गिरधारीलाल व्यास, श्री हनुमानप्रसाद प्रभाकर, श्री बलवन्तसिंह मेहता, श्री प्रेमनारायण माथुर, हीरालाल कोठारी आदि प्रमुख थे।[18]

17– हिन्दुस्तान टाइम्स 31 दिसम्बर 1945; पाक्षिक रिपोर्ट नं. 20, 1945, रा.अ.; सेलेक्टेड वर्क्स आफ जवाहरलाल नेहरू, भा. 15, पृ. 406–428; डा. जी. एन. शर्मा, नेहरू कन्ट्रीब्यूशन इन स्टेट पीपुल्स कान्फ्रेन्स, उदयपुर 1985 सेमीनार।

18– कान्फिडेन्शल फा.ग्रु.ए. 16/3 पाक्षिक इन्टेलिजेन्स, रिपोर्ट, 1946; म.बी.; प्रधान मंत्री की कार्यवाही, 1946, कान्फिडेन्शल, ग्रुप ए.; अ.बी.; 27/3 कान्फिडेन्शल ग्रुप ए.पी.एम मीटिंग, 1946 अ.बी.

प्रजामण्डल के इस प्रकार के असहयोग के विरुद्ध श्री राघवाचार्य ने पं. नेहरू को श्री वर्मा के अभद्र व्यवहार तथा अवांछनीय गतिविधि की शिकायत की। पंडित जी ने नई दिल्ली से 13 जून 1946 को टी. विजय राघवाचार्य को पत्रोत्तर भेजा जो अपने आप में मेवाड़ प्रजामण्डल की अपूर्व उपलब्धियों का प्रमाण पत्र है। उन्होंने लिखा कि हो सकता है कि प्रजामण्डल के कार्यकर्ता वर्तमान युग के ड्राइंगरूम के सलीकों से वाकिफ न हों, परन्तु जो उनकी मांग है और व्यवहार है वह ब्रिटिश सत्ता के शोषण का प्रतिकार मात्र है। मैं जानता हूं कि श्री वर्मा और उनके सहयोगी कितने सच्चे और त्यागी हैं जो देश की सेवा के लिए समर्पित हैं। मेरा विश्वास है कि मेवाड़ प्रजामण्डल का संचालन कुशल नेतृत्व में काम कर रहा है। अच्छा हो कि इनका सहयोग लिया जाय, क्योंकि परिवर्तन कुछ ही दिनों में शीघ्र होने जा रहे हैं। मेवाड़ का अपना गौरवमय त्याग का इतिहास है उसे बनाये रखना इस परिस्थिति में सर्वथा उचित है। मैं आशा करता हूं कि रचनात्मक काम में प्रजामण्डल अवश्य आपका सहयोग करेगा।[19]

ये पत्र एक सधे हुए कूटनीतिज्ञ के लिए पथ प्रदर्शक था। जब देखा कि आंदोलन को दमन से शांत नहीं किया जा सकता तो कुशाग्र बुद्धि राघवाचार्य ने महाराणा से परामर्श कर लोगों को आश्वासन दिलाया कि जनता की मांगों पर सहानुभूतिपूर्वक विचार किया जायगा। इस आश्वासन से हड़ताल वापस ले ली गई और प्रजामण्डल ने आंदोलन की गति धीमी कर दी।[20]

वैधानिक सुधार :

आंदोलन की उग्रता देखते हुए 2 मार्च, 1947 को सर राघवाचार्य ने राज्य में लागू किये जाने वाले सुधारों की घोषणा की। इन सुधारों के अनुसार महाराणा निरंकुश शासक बने रहे और कुछ मनोनीत एवं कुछ निर्वाचित सदस्यों की कौंसिल का प्रावधान रखा गया। ये घोषणा जनता एवं प्रजा मण्डल को स्वीकृत नहीं थी, क्योंकि इसमें सत्तावाद और निरंकुशता पूरे तौर से छाया हुआ था। इसी अर्से में सर विजय राघवाचार्य उदयपुर से चले गये और श्री कन्हैयालाल मुंशी दरबार के वैधानिक सलाहकार नियुक्त किये गये। उन्होंने भी कुछ तरमीम के साथ वैधानिक सुधारों की घोषणा की। विधान सभा के चुनाव न होने तक अन्तरिम काल के लिए महाराणा ने 28 मई, 1947 को श्री मोहनलाल सुखाड़िया, श्री हीरालाल कोठारी एवं ओछड़ी के श्री रघुवीरसिंह को मन्त्री पद की शपथ ग्रहण कराई। परन्तु प्रजामण्डल को इस व्यवस्था से सन्तोष नहीं हुआ क्योंकि इसमें उत्तरदायी शासन स्थापित करने के लिये कोई कदम नहीं उठाया गया था। परन्तु फिर भी प्रजामण्डल विधान सभा के निर्वाचन कराने के लिये सहमत हो गया था। जब फरवरी 1948 में विधान सभा के चुनावों की प्रक्रिया आरंभ हुई तो प्रजामण्डल लोक-

---

19– सेलेक्टेड वर्क्स आफ जवाहरलाल नेहरू, भा.–15, पृ. 358–360.

20– प्रधान मन्त्री की कार्यवाही, 1946, कान्फिडेन्शल ग्रुप 5; अ. बी.

प्रिय संस्था थी। यह जन-आंदोलन का सफल सोपान था।[21] प्रजामण्डल के बलाबल को ध्यान में रखते हुए महाराणा ने 6 मार्च 1948 को घोषणा की कि नये मन्त्री मण्डल में 7 मन्त्री मनोनीत होगे जिसमें 4 प्रजामण्डल से लिए जायेंगे और 2 मेवाड़ क्षत्रीय परिषद् और 1 निर्दलीय होंगे। यह अनुपात मण्डल को स्वीकार नहीं था। इसी बीच 4 अप्रैल को उदयपुर विधान सभा के स्थानों के चुनाव में झण्डे के अपमान के प्रश्न पर मंडल और क्षत्रीय परिषद में झगड़ा हो गया जिसको लेकर 5 अप्रैल 1948 शहर में हड़ताल हो गई। दोनों दल के कार्यकर्त्ता जब घंटाघर पर अपने-अपने मुद्दों का प्रचार कर रहे थे कि पुलिस की गोली से दो विद्यार्थी–शांतिलाल और आनन्दीलाल शहीद हो गये और सर्व श्री गुलाबसिंह शक्तावत, रोशनलाल एवं परशराम त्रिवेदी गम्भीर रूप से घायल हो गये। इस घटना ने महाराणा को विलय के लिए तैयार कर दिया।

डूंगरपुर

1938 से डूंगरपुर में राजस्थान सेवा संघ भीलों के उत्थान में रुचि ले रहा था। द्वितीय विश्व युद्ध के आरम्भ होने पर यह कार्य डूंगरपुर सेवा संघ को सुपुर्द कर दिया गया। प्रारम्भ में यह संघ समाज सेवा के काम को करता रहा परन्तु 1942 से उसके कार्यकर्त्ता राजनैतिक गतिविधियों तथा गांव गांव में उनका प्रचार करने में भाग लेने लगे। भारत छोड़ो आन्दोलन की लहर जब राजस्थान में चल पड़ी तो यहाँ के कार्यकर्त्ता इसमें पीछे न रहे। उन्होंने भी भोगीलाल पण्डया के नेतृत्व में आन्दोलन छेड़ दिया और राज्य में उत्तर-दायी शासन की मांग की। 6 दिसम्बर 1942 को एक विशाल सार्वजनिक सभा तथा दूसरे दिन जुलूस का आयोजन रखा गया। नगर में हड़ताल रखी गई। आन्दोलन को यहां के महारावल ने कठोरता से दबाने का प्रयत्न किया। रियासत में लेखन और भाषण पर रोक लगा दी गई। यहां तक कि गांधी टोपी पहनना भी डूंगरपुर में अपराध समझा जाता था। जब यहां के नरेश ने बेहद कठोरता का उपयोग किया और क्रूरता से दमन शुरू किया तो राज्य की दमन नीति का डूंगरपुर की प्रजा व कार्यकर्ताओं ने खुल कर विरोध किया। आन्दोलन को अधिक प्रभावशील बनाने के लिए "प्रमाण सभाओं" तथा राष्ट्रीय टोलियों के प्रशिक्षण की व्यवस्था की गई। जब टोलियों का संचालन एवं सभाओं के भाषण होते थे तो पुलिस संचालकों और एकत्रित जनता पर लाठियां बरसाती थी। इन टोलियों को गांव गाव ले जाकर प्रशिक्षण का उत्तर दायित्व श्री हरिदेव जोशी को सुपुर्द था। इस अवसर पर इनकी खूब पिटाई होती थी फिर भी वे दृढ़ता से आन्दोलन को चलाते रहते थे। इस दमनचक्र में कई कार्यकर्ताओं को अपनी सरकारी नौकरी व जमीन जायदाद से भी हाथ धोने पड़े। यहां तक कि उनके परिवार को भी कई प्रकार से डराया जाता था और यातनाओं का भागी बनाया जाता था। इस प्रकार के आतंककारी नीति ने बजाय आन्दोलन को कुचलने के उसकी क्षमता और दृढ़ता को बढ़ावा दिया।[22]

21– मेवाड़ प्रजामण्डल का बुलेटिन, नं. 6. जून, नं. 7 जुलाई, 1947; नवजीवन- 12 अगस्त, 1946, 23 जून. 1947; मिश्रा एन्युअल रजिस्टर, भा–2, जुलाई, दिसम्बर, पृ. 308; कनक मधुकर, आनन्दी और शांति, कांग्रेस शताब्दी, जयपुर, पृ. 10–11.

22–वीर अर्जुन, 28 अगस्त, 1941; सुमनेश जोशी, राजस्थान में स्वतन्त्रता संग्राम के सेनानी पृ. 345.

महारावल को संभवत: यह ख्याल था कि इस प्रकार के दमन से विद्रोह शांत हो जायगा। परन्तु जब ऐसा नहीं हुआ। इसके विपरीत 2 5 जनवरी 1944 को डूंगरपुर राज्य प्रजा मण्डल का गठन किया गया। जिसके अध्यक्ष भोगीलाल पंडया, उपाध्यक्ष श्री गौरीशंकर उपाध्याय और श्री शिवलाल कोटड़िया मंत्री बनाये गये। 26 जनवरी 1945 को उसका विधिवत उद्घाटन किया। उद्घाटन भाषण के दौरान कई मांगें रखी गई जिनमें प्राईवेट पाठशाला के विद्यार्थियों को प्रवेश छात्रावासों व ऐसी पाठशालाओं को मान्यता, नि:शुल्क शिक्षा, शासन के व न्यास के विभागों का प्रथक्करण, बेकारी का उन्मूलन, लगान की दरों का निश्चित मापदण्ड, मजदूरों की रोजी का प्रबंध, जनता को राज्य के दीवान की नियुक्ति का अधिकार आदि मुख्य थीं।[23]

अब प्रजामण्डल का सीधा संघर्ष राज्यों से गांवों में सेवा संघ द्वारा स्थापित पाठशालाओं को लेकर प्रारम्भ हुआ। सरकार ने गांव-गांव चलने वाली पाठशालाओं को ध्वस्त करने और अध्यापकों को मारने-पीटने का क्रम चलाया और जबरन लेवी वसूल करने की सख्ती आरंभ की। कटार क्षेत्र में पाठशालाओं को बन्द करने और उसी क्षेत्र के भीलों को लेवी न देने पर कारावास भुगतने का क्रम शुरू हुआ। श्री भोगीलाल पण्ड्या और उसके साथियों ने इसका विरोध किया तो उन्हें राजद्रोह के अपराध में 30 अप्रेल, 1946 को गिरफ्तार कर देवल की जेल में भेज दिया। उनके साथ 28 और कार्यकर्त्ता वहीं बन्दी बनाकर रखे गये। इनकी गिरफ्तारी के विरोध में जगह-जगह हड़तालें हुई, जुलूस निकले वहां आम सभाएँ हुई। सरकार ने 144 धारा नगर और बड़े-बड़े कस्बों में लगा दी, जहां भी इसकी अवहेलना की गई पुलिस ने जमकर पिटाई की। श्री उपाध्याय और श्री हरिदेव जोशी को देश निकाला दिया गया। जोशी जी ने बाहर रह कर राज्य की क्रूरता के विरुद्ध खूब प्रचार किया जिससे राज्य और राज्य के बाहर जनमत जागृत करने में बड़ी सहायता मिली तथा राज्य में चारों ओर आंदोलन की लहर दौड़ गई। अब तो सरकार आंदोलन की व्यापकता से चौंक गई और श्री भोगीलाल पण्ड्या को 27 दिन में रिहा कर दिया और श्री उपाध्याय एवं श्री जोशी जी के देश निकाले के आदेश निरस्त कर दिये गये।[24]

इसके पश्चात् डूंगरपुर राज्य के पूनावाड़ा नामक गांव की पाठशाला के अध्यापक श्री शिवराम की गिरफ्तारी को लेकर आंदोलन शुरु हुआ। वहां पुलिस ने 31 मई, 1947 को पाठशाला को जलाकर और तोड़फोड़ कर ऐसी क्रूरताएं कीं कि जिनका वर्णन करते हुए लज्जा आती है। आंदोलनकर्त्ताओं को निर्दयतापूर्वक पीटा गया। स्त्रियों को भी नहीं छोड़ा। भोगीलाल पंडया के साथ विशेष क्रूरताएं की गई क्योंकि उनको ही सारे आन्दोलन का सचालक माना जाता था। जब वे स्थिति की जांच करने के लिए पनवाड़ा गये थे

23–नवजीवन, अक्टूबर, 1946, स्थापना व उद्घाटन का समय 1 अगस्त, 1944 एवं अप्रेल, 1946 नाना भाई और काली बाई (क.श.स. जयपुर) पृ.4 द्रष्टव्य।

24–नवजीवन, 7 मई, 1946, 16 जून, 1947;
प्रजामण्डल सम्बन्धित पत्र, सी.नं. 1, 1945–46, अ.बी.
प्रजामण्डल बुलेटिन, नं. 2, 1946, अ.बी.

तो उनको गिरफ्तार कर लिया गया और उनको बड़ी यातनाएं दी गई। उन्हें जेल में बिना खाये पीये के रखा गया। यहां तक कि उन्हें शौचादि कार्य की भी छूट नहीं थी। भोगीलाल पंड्या पर पुलिस ने यह विचित्र आरोप लगाया था कि पनवाड़ा की जकात को लूटने में भोगीलाल पंड्या का बड़ा हाथ था। परन्तु यह बात सरासर असत्य और कल्पित थी। अदालत में जब इन्हें ले जाया गया तो पीटते हुए जज के समक्ष इन्हें पेश किया गया जो न्यायालय की परिपाटी के विरुद्ध था।[25]

इसी अवधि में जब श्री हरिदेव जोशी मण्डल के रेकार्ड को लेकर भूमिगत थे और पंड्या जी एवं उपाध्याय जी तथा अन्य कार्यकर्ता धंबोला जेल में बन्द थे तो सरकार ने संघ की पाठशालाओं को बन्द कराने के दौर में पुलिस को रास्ता पाल की पाठशाला भेजा। पुलिस ने अध्यापक सेंगा को खूब पीटा और रस्सी से एक ट्रक से लटका कर घसीटा। इसको छुड़ाने पाठशाला के सरक्षक नाना भाई खांट ट्रक के पीछे सेंगा को छुड़ाने पहुंचे तो वे पुलिस की गोली के शिकार हो गये। जब एक 13 वर्षीय छात्रा, जिसका नाम कालीबाई था, अपने अध्यापक सेंगा को घसीट कर ले जाया जा रहा था न सहन कर सकी। वह तुरंत दौड़ी और ट्रक से बन्धे अध्यापक की रस्सी को अपने हंसिया से काट दी, परन्तु पुलिस की पिपासा नानाभाई के रक्त से अभी नहीं बुझी थी। शीघ्र ही एक गोली दागी गई जिसके फलस्वरूप कालीबाई हमेशा के लिये सो गई। इन दोनों हत्याओं को लेकर भीलों के मारु ढोल बजने पर पुलिस तो भाग खड़ी हुई और हजारों की संख्या में भील पुरुष और स्त्रियों का दल इकटठा हो गया। यह दल शव यात्रा मातमी धुन बजाते गेब सागर की पाल पर पहुंचा और दोनों शहीदों की अन्त्येष्टी 20 व 21 जून को गांगली नदी के तट पर हजारों आंखों के अश्रुधारा के बीच सम्पन्न हुई।[26]

स्वाधीनता संग्राम के अडिग सेनानी :

इस प्रकार सन् 1946-47 में झूठे आरोपों को लगाकर कार्यकर्त्ताओं के प्रभाव को कम करने की कोशिशें की गयी। राजतंत्र अपने अंतिम दिनों में दीपक की अन्तिम लौ की तरह दमन और स्वेच्छाचारिता की ज्वालाओं के रूप में भभक उठा। राज्य द्वारा कार्यकर्त्ताओं का अपहरण, स्त्रियों के साथ अत्याचार, गांव-गांव में लूटमार और आगजनी की घटनाएं प्रतिदिन दोहराई जाने लगी। प्रजामण्डल के मुकाबिले में साम्प्रदायिक तथा प्रतिक्रियावादी तत्वों को प्रोत्साहन दिया जाने लगा। राज्य सत्ता के नाम पर शासन ने देश भक्त जन सेवकों को मार्ग से विचलित करने के लिए अनेक षडयंत्र रचे, परन्तु इन प्रतिकूल परिस्थितियों में और दम घोटू वातावरण में भोगीलाल पण्ड्या, जैसे निष्ठावान व्यक्ति के नेतृत्व में सत्यनिष्ठ लोक सेवकों का दल रियासत में लोकतंत्री परम्पराओं की स्थापना के लिये अनवरत संघर्ष

25- प्रजामण्डल आन्दोलन पत्र, नं 3, 1947, अ.बी.

26-मुमनेश जोशी, राजस्थान में स्वतन्त्रता संग्राम के सेनानी, पृ. 349 उत्सवलाल शर्मा, नानाभाई और कालीबाई, कांग्रेस शताब्दी समारोह समिति, जयपुर, पृ. 10-15.

करता रहा। इन जन सेवकों में श्री हरिदेव जोशी, एवं श्री गौरीशंकर उपाध्याय के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं जिन्होंने त्याग और सेवा की भावना से निर्भय यातनाओं को हंसते-हंसते भोगा। इन्होंने बागड़ की मूक जनता को बोलने की शक्ति और दमन का विरोध करने का साहस दिया। जब ये अग्रणी सेनानी अपनी लेखनी से जनता के दर्द को व्यक्त करते थे तो लोगों के हृदय में देशाभिमान की लहर दौड़ जाती थी।[27]

जब इन कठोरताओं से भी आन्दोलन शान्त नहीं हुआ तब महारावल ने विवश होकर 30 जून, 1947 को भोगीलाल पंड्या और अन्य राजनैतिक कैदियों को जेल से मुक्त कर दिया। उनका ख्याल था कि इससे राज्य में शांति स्थापित हो जाएगी और जनता सन्तुष्ट हो जाएगी। परन्तु ऐसा नहीं हुआ। अंत में विवश होकर महारावल ने राज्य प्रबन्धकारिणी सभा की 1 दिसम्बर, 1947 को स्थापना की जिसमें राज्य द्वारा नियुक्त अधिकारी, जागीरदार तथा कुछ प्रजा के सदस्य लिये गये। इसमें प्रजामण्डल से भी दो सदस्यों का लिये जाने का प्रावधान था। अब इससे भी आन्दोलन शांत न हुआ तो मार्च, 1948 को महारावल के तत्वावधान में उत्तरदायी शासन की स्थापना की गई, जिसमें एक प्रधानमंत्री दो प्रजामंडल के मंत्री और एक जागीरदार मंत्री बनाए गए। श्री उपाध्याय प्रधानमंत्री तथा भीखा भाई मन्त्री मण्डल में सम्मिलित किये गये।[28]

बांसवाड़ा

1940 के आस-पास बांसवाड़ा रियासत में स्वतन्त्रता का आंदोलन बड़े जोर-शोर से चला। उस समय बांसवाड़ा में निरंकुश राजतंत्र चलता था। किसी को खादी की वेश-भूषा में देखकर लोग उससे बातचीत करते हिचकते थे। हर कदम पर पुलिस का भय बना रहता था। राजनैतिक विचारों के लोगों की गतिविधि को पुलिस चौकस होकर देखा करती थी। इसके बावजूद बांसवाड़े के कई कार्यकर्त्ता भारत छोड़ो आन्दोलन को बड़ी निष्ठा से संचालित कर रहे थे। श्री विनोदचन्द कोठारी ने झालोद में ब्रिटिश विरोधी प्रवृत्तियों को शुरू किया। 7 अक्टूबर 1942 में जब झालोद की ग्राम सभा को सम्बोधित कर रहे थे कि वे गिरफ्तार कर लिये गये। इसी आंदोलन में श्री धूलजी भाई और गोविंद-लाल याज्ञिक भी पकड़े गये थे।[29]

इधर बांसवाड़ा के भूपेन्द्र त्रिवेदी एक निष्ठावान कार्यकर्ता के रूप में उभर रहे थे। उन्हें प्रारम्भ से ही भगवतसिंह के मुकदमों की कार्यवाही को तथा क्रान्तिकारियों के सम्बन्ध का साहित्य पढ़ने में रुचि थी। फिर बम्बई में उन्होंने एक प्रेस चलाया था जिस पर पुलिस बड़ी निगरानी रखती थी। जब एक दफा उसकी तलाशी ली गई तो पता चला कि वहां

27–प्रजामण्डल बुलेटिन, सी. नं. 2, 1946, अ. बी.

28– सी. नं. 4, 1947 आंदोलन संबंधित पत्र डूंगरपुर, अ.बी.; डूंगरपुर राजपत्र, विशेषांक, 1 मार्च 1948; राजस्थान डिस्ट्रिक्ट गजट डूंगरपुर, पृ. 37–38.

29– पाक्षिक रिपोर्ट, दिसम्बर 42, राजपूताना

राम मनोहर लोहिया के दस्तखतों की हुण्डियां छपी थी और चीन की क्रांति पर भी कुछ साहित्य छापा गया था। तब श्री भूपेन्द्रनाथ को गिरफ्तार करके बरेली जेल में भेज दिया गया।[30]

जेल से छूट कर जब वे बांसवाड़ा आये तो लोगों ने उनका स्वागत किया। उस समय लोग महंगाई, कन्ट्रोल आदि से बड़े दुखी थे। परन्तु किसी को आवाज उठाने का साहस नहीं था। तब श्री भूपेन्द्रनाथ ने बांसवाड़ा राज्य में लोकमत जाग्रत करने के लिए सर्वत्र घूम फिर कर राज्य की स्थिति का अध्ययन किया। राज्य में 8-10 व्यक्तियों का एक संगठन प्रजामण्डल के नाम से 1945 में बनाया गया था। आरम्भ में इस संस्था के सदस्यों की संख्या कम थी परन्तु श्री त्रिवेदी ने बम्बई से आकर उसको दृढ़ और प्रभावशाली बनाया। इस संस्था के पुराने सदस्यों में श्री हरिदेव जोशी, श्री धूलजी भाई, मोतीलाल पंड्या, डा. ध्यानीलाल, श्री मणिशंकर जानी, श्री लक्ष्मणदास बाबा, श्री नानिगराम, श्री भवानीशंकर, श्री सूरजमल टेलर, श्री शिवशंकर झा आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। एक दिन ये तथा कुछ अन्य लोग मणिलाल सोनी के मकान की तीसरी छत पर एकत्र हुए। वहां निश्चित किया गया कि जनता के हृदयों से राज्य का भय निकाल दिया जाना चाहिए। एतदर्थ महंगाई व कन्ट्रोल के विरुद्ध आवाज उठाई जाए और उत्तरदायी शासन प्राप्त करने के लिये लोगों को तैयार किया जाए। जब 23 जनवरी आया और सुभाष जयन्ती मनाने के लिये एक आम सभा का आयोजन किया गया तो स्कूल के छात्रों ने इसमें खूब काम किया। श्री याज्ञिन एवं श्री जोशी के नेतृत्व में सभा में जोशीले भाषण हुए, जिसमें लोगों में उत्साह उत्पन्न हुआ। फिर 26 जनवरी को आम सभा की गई जिसमें जिम्मेदार हुकूमत की घोषणा की गई। इसी मध्य त्रिवेदी कुछ समय के लिये बम्बई चले गये तो लोगों ने आग्रहपूर्वक उनको पुनः बांसवाड़ा बुलाया और स्थानीय कार्यकर्त्ताओं ने आन्दोलन की बागडोर अपने हाथ में लेने की उनसे प्रार्थना की। इसके बाद त्रिवेदी ने निश्चय कर लिया कि बांसवाड़ा को प्रजा मण्डल की गतिविधियों का कार्य क्षेत्र बनाना चाहिये। श्री त्रिवेदीजी के प्रयास से प्रजा मण्डल इतना लोकप्रिय हो गया था कि केवल सूचना मिलते ही लोग झुण्ड के झुण्ड उनकी सभा में सम्मिलित हो जाते थे। गांव के लोग भी उसकी ओर आकर्षित होने लगे जिसमें दादा भगत, देवा भगत, दीपा भगत, सूरजी भगत और हेमता भगत आदि प्रसिद्ध थे। प्रजा मण्डल का झण्डा लिये हुए ये लोग सर्वत्र घूमते थे। इस प्रकार जनता की बढ़ती हुई जागृति को देखकर राज्य ने प्रजा मण्डल की प्रवृत्तियों को दबाने का निर्णय किया और प्रजा मण्डल की सभाओं पर 1945-46 में प्रतिबन्ध लगा दिया। धारा 144 भी लागू कर दी गई।[31]

30— बांसवाड़ा राज्य की परिस्थितियों पर कुछ नोट, प्रजामण्डल फाइल, नं 3, 19:6, अ.बी.

31— प्रजा मण्डल फाइल, नं. 3, 1946, अ. बी.; गजट सरकार बांसवाड़ा, नं. 2, 1945.

कुछ समय बाद प्रजा मण्डल ने निश्चय किया कि ग्रामीण जनता को भी लेवी वसूली के विरुद्ध जागृत करना चाहिये। इस आशय से 1945 में नगर से बाहर एक सभा बुलाई गई। वहां पुलिस भी बड़ी संख्या में आई। सभा में एकतंत्र राज्य की बड़ी तीव्र आलोचना की गई। तब राज्य की पुलिस ने त्रिवेदी को रात में ही पकड़ कर बन्द करने की कार्यवाही की। दूसरे दिन प्रातःकाल धूलजी भाई के साथ भी ऐसी ही कार्यवाही की गई। इन समाचारों से सारा नगर उत्तेजित हो गया। इसके विरोध में बाजार बन्द रहा और सभाएं की गईं। जो लोग सभा सम्बन्धित घोषणा करते थे उनको भी गिरफ्तार कर लिया गया। जनता और पुलिस के बीच बड़ा तनाव पैदा हो गया। जब सैकड़ों कार्यकर्त्ता सरकारी आदेश की उपेक्षा करने लगे और उनके साथ सख्ती की जाने लगी तो सारा नगर उग्र हो गया और सबने मिलकर 24 फरवरी, 46 को प्रधानमंत्री का बंगला घेर लिया। जब श्री त्रिवेदी को गिरफ्तार करने के उपरान्त भी आन्दोलन चलता रहा तो उन्हें छोड़ दिया गया। जेल से मुक्त होकर त्रिवेदी ने प्रजामण्डल का कार्य भार संभाला और श्री हरिदेव जोशी जब जब बांसवाड़ा आते तो वे भी प्रचार कार्य में जुट जाते थे। उन्होंने अपने भाषणों तथा प्रकाशनों के द्वारा आन्दोलन में जान फूंक दी। विद्यार्थी जीवन से ही श्री जोशी में ये क्षमता और प्रतिभा थी।[32]

प्रजामण्डल की सफलता :

अब प्रजामण्डल ने अत्याचारी राज कर्मचारियों का सामना करने की योजना बनाई ये कर्मचारी गरीब किसानों व भीलों से बेगार लेते थे। इस प्रथा के विरुद्ध आवाज उठाई गई और जनमत को इसके विरुद्ध तैयार किया गया। इस प्रचार से राज्य की स्थिति में बड़ा परिवर्तन आया। बेगार से ले जाने वाले कितने ही बण्डल जहां के तहां पड़े रह गये क्योंकि बेगार करने वालों ने उनको नहीं उठाया। वास्तव में इस स्थिति से राज्य का सारा काम ठप्प हो गया। इसी तरह 1945-46 में राज्य द्वारा बनाई गई फूड एडवाइसरी कमेटी, की अकर्मण्यता का भंडाफोड़ किया गया। प्रजामण्डल ने "अनाज परिषद" के द्वारा हजारों भूखे और नंगों की सहायता की। इस विकट काल में श्री जोशी गरीबों की झोपड़ियों में घूम घूम कर और सरकार से लुकछिप कर समाज सेवा करते थे। इस कार्य के साथ साथ उत्तरदायी शासन के लिए भी प्रचार बड़े जोर शोर मे चलाया गया था। जो घूंसखोर अधिकारी थे उनकी काली करतूतों को भी भाषणों और मुद्रित पुस्तिकाओं द्वारा खूब उछाला गया। इसी अवधि में राज्य की चिन्ताजनक हालत, दमन, बेगार आदि पर छोटी पुस्तिकाएं और पैम्पलेट प्रकाशित किये गये जिससे जनता में जागृति आ गई और विद्यार्थियों और कृषकों में राजनैतिक चेतना का अच्छा प्रभाव पड़ा। इन्हीं कार्यक्रमों में अधिक प्रगति लाने के लिए बांसवाड़ा प्रजामण्डल के तत्वावधान में प्रजामण्डल का एक अधिवेशन सितम्बर, 1947 को किया गया जिसमें जयनारायण व्यास और हीरालाल शास्त्री जैसे कर्मठ नेता उपस्थित थे। इन गणमान्य नेताओं की उपस्थिति से संगठन को बल मिला।[33]

32–सरकारी दमन सम्बन्धी कागजात, प्रजामण्डल, बांसवाड़ा, नं. 9, 1947, अ.बी.

33–प्रजामण्डल बांसवाड़ा, नं- 1, प्रेस कान्फ्रेन्स, 1946, अ.बी.; राजकीय परिस्थिति पर कुछ नोट प्रजामण्डल बांसवाड़ा नं. 3, 1946, अ.बी.

प्रजामण्डल की जागृति को देखकर राज्य ने 18 अप्रेल, 1948 में शासन में सुधारों की कुछ घोषणाएं की। परन्तु वे अपूर्ण थीं जिसमें उत्तरदायी शासन का कोई उल्लेख भी नहीं था। तथापि प्रजामण्डल ने राज्य के घोषित सुधारों के अनुसार राज्य की धारा सभा के चुनाव लड़ने का निर्णय किया। धारा सभा में 45 सीटें थीं, जिसमें से प्रजामण्डल 35 पर सफल हुआ। इधर 1947 में पहिले से ही उत्तरदायी शासन की आवाज बुलन्द की गई तो राज्य ने प्रजा मण्डल की ओर से दो मंत्री राज्य मत्री मण्डल में लिये जाने की घोषणा की। इसके लिये 4 नाम भेजे गये जिनमें से राज्य ने दो नाम स्वीकार कर लिये, एक मोहनलाल त्रिवेदी बी.ए.एल.एल.बी. दूसरा नटवरलाल भट्ट एम.ए.। इसके पश्चात् एक अन्तरिम सरकार बनाने का प्रस्ताव प्रजामण्डल ने किया। प्रजामण्डल की कार्यकारिणी ने छः नामों का पेनल बनाया। इसमें से महारावल ने तीन नाम मंजूर किये। इन तीन नामों के सिवाय एक नाम जागीरदारों के प्रतिनिधि का भी था। इस प्रकार निम्नलिखित चार मंत्रियों का लोकप्रिय मंत्री मण्डल बनाया जिसके सदस्य ये थे।[34]

1– श्री भूपेन्द्रनाथ त्रिवेदी	चीफ मिनिस्टर
2– श्री मोहनलाल त्रिवेदी	विकास मंत्री
3– श्री नटवरलाल भट्ट	राजस्व मंत्री
4– चतर सिंह	जागीरदारों के प्रतिनिधि

ये मंत्री मण्डल केवल 48 दिन तक ही कार्यरत रहा।

इस सम्पूर्ण आंदोलन में श्री भूपेन्द्रनाथ की निष्ठा श्री हरिदेव जोशी के संगठन कौशल, पारिवारिक पांडित्य और सौम्य स्वभाव तथा इनके अन्य सहयोगियों की लोक सेवा की पवित्र भावना की झलक दिखाई देती है। यही कारण है कि बांसवाड़ा का आंदोलन आद्योपान्त गांधी जी के सिद्धांतों के अनुरूप रहा है।

प्रतापगढ़

1942 की क्रान्ति के समय प्रतापगढ़ क्षेत्र में राष्ट्रीय प्रचार श्री पायक के नेतृत्व में बड़े अनुशासित रूप से हुआ। कार्यकर्ताओं ने शांति और क्षमता के साथ कार्य किया। इससे प्रतापगढ़ का प्रजामण्डल बड़ा प्रभावशाली संगठन बन गया। इस सुदृढ़ नींव के कारण कितने ही वर्षों तक यह स्थानीय निर्वाचनों में सफल होता गया। प्रतापगढ़ में प्रजामंडल के सदस्यों में चरित्र की उज्जवलता थी। उनमें कर्म और चरित्र दोनों का सुन्दर मिश्रण था। यहां खादी प्रचार, गीता प्रचार, गांधी विचार और व्यायाम शालाओं ने 1942 के आंदोलन किसी भी दृष्टि से कम न रहा।[35]

34– शासन सम्बन्धी मांग पत्र, प्रजामण्डल, बांसवाड़ा, नं. 7,1947, अ.बी; सरकारी दमन संबंधी, प्रजामण्डल, बांसवाड़ा, नं. 9, 1948, अ.बी; बांसवाड़ा गजट प्रजामण्डल, बांसवाड़ा, नं. 5–6, 1947–48; राजस्थान डिस्ट्रिक्ट गजट, बांसवाड़ा, पृ. 34-35.

35– सभा सम्मेलन फाइल, प्रतापगढ़, नं. 1, 1942–46, अ.बी.

श्री पायक ने आन्दोलन को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए 1945 में राजपूताना और सेन्ट्रल इन्डिया स्टेट्स पीपुल्स कान्फ्रेन्स के राजनैतिक कार्यकर्त्ताओं से सम्बन्ध स्थापित किया। श्री माणिक्यलाल वर्मा, मास्टर बलवन्तसिंह, श्री मोहन लाल सुखाड़िया, श्री गोकुलभाई भट्ट और उनके साथियों से उन्होंने बड़ी प्रेरणा प्राप्त की। इससे प्रतापगढ़ राज्य में जागरण की बड़ी लहर फैल गई। श्री पायक के नेतृत्व में प्रजामण्डल के सदस्यों ने रियासत के गांव गांव का पैदल दौरा किया। उस समय जनता में राजपूत सरदारों का बड़ा आतंक था। महात्मागांधी की जय बोलने से लोग डरते थे। वन्दे मातरम् बोलने से भी भयभीत थे। तिरंगा झण्डा लहराना अपराध माना जाता था। कोई हरिजन जूता पहिने हुए राज्य की हवेली के सामने नहीं चल सकता था। इन कुप्रथाओं के विरुद्ध प्रजामण्डल ने प्रचार आरंभ किया जिससे प्रजामण्डल का कार्य दिन दूनी प्रगति करने लगा। राजस्थान प्रान्तीय संगठन में भी प्रतापगढ़ क्षेत्र की ओर से श्री अमृत लाल पायक और चुन्नीलाल प्रभाकर को लिये गये और जब कांग्रेस की कार्यकारिणी बनाई गई तो श्री पायक को उसका सदस्य नियुक्त किया गया और श्री गोकुल भाई भट्ट अध्यक्ष बनाये गये।[36]

राजस्थान प्रान्तीय संगठन की प्रेरणा से 15 अगस्त, 1947 को प्रतापगढ़ रियासत में उत्तरदायी शासन प्रणाली कायम करने के लिये लोकप्रिय मंत्री मण्डल की घोषणा की। जनता के प्रतिनिधि श्री अमृतलाल पायक थे और महाराजा के प्रतिनिधि श्री माणिक्य लाल शाह थे। दोनों लोकप्रिय मंत्री 2 मार्च, 1948 को नियुक्त हुए।[37]

श्री अमृतलाल पायक के परिश्रम, लगन और सत्य निष्ठा के कारण प्रतापगढ़ कांग्रेस का गढ़ बन गया। अनेक आदिवासी तथा हरिजन युवक और युवतियां पढ़ लिखकर आगे बढ़ने लगे। इस प्रकार मुख्यत: श्री पायक के सतत् प्रयत्नों से प्रतापगढ़ में जागृति आई। सर्वांगीण उन्नति के लिये कई संस्थाओं का निर्माण हुआ। परन्तु यह मंत्री मण्डल अधिकार हीन था। इसके पास ठोस काम करने के लिए कोई शक्ति नहीं थी। मंत्री मण्डल और जनता के लोग सभी असन्तुष्ट थे। जनता की शिकायत थी कि मंत्री लोग कुछ नहीं करते और राज्य का प्रशासन जहां का तहां ही रखा हुआ है। वास्तव में स्थिति यह थी कि लोकप्रिय मंत्री केवल नाम के मंत्री थे और मंत्री मण्डल भी केवल कागजी घोड़ा था। इस स्थिति का मूल कारण यह था कि सभी शक्ति राजतन्त्र में निहित थी।[38]

शाहपुरा

जब चारों ओर अव्यवस्था और शंका का वातावरण था और शाहपुरा में भी 1942 के आन्दोलन का प्रभाव और आगे के वर्षों में आन्दोलन की गति को देखा तो राजाधिराज ने अपने राज्य में अंतरिम सरकार स्थापित करने की पहल की। सबसे पहले उन्होंने एक

36-प्रतापगढ़ राज्य विविधि पत्र, फा. नं. 13, 1946, अ.बी.

37-चुनाव सम्बन्धी फाइल, प्रतापगढ़ फा.नं. 2, 1947, अ.बी; प्रचार सभा, प्रतापगढ़, फा.नं. 20,30, 1947-48, अ बी.

38-कार्यकारिणी पत्र प्रतापगढ़, फा.नं. 8, 1946-47, अ.बी.

विज्ञप्ति सं. 24/932/सं.नं. 4 दिनांक 13-9-47 द्वारा शाहपुरा राज्य शासन विधान एक्ट 1947 की चुनाव नियमावली के अधीन मतदाताओं की सूची तैयार करने के लिए अधिकारियों की नियुक्तियां कर दीं और इसके साथ ही एसेम्बली द्वारा निर्मित कौंसिल के निर्माण काल तक अंतकालीन व्यवस्था के लिए दो मंत्रियों को नियुक्ति करने का निश्चय किया, जिनमें से एक प्रो. गोकुललाल असावा प्रधान मंत्री का नाम और दूसरे मंत्री मेजर दौलतसिंह का नाम प्रस्तावित किया गया। तदनुसार दिनांक 27-9-47 को शाहपुरा में उत्तरदायी सरकार बनाई गई। दिनांक 27-9-47 का वह ऐतिहासिक दिन है जो शाहपुरा के राजनैतिक इतिहास में ज्योतिर्मय घटना के रूप में जुड़ा हुआ रहेगा। शाहपुरा राज्य के दरबार हाल में जहां सामन्तशाही दरबारियों का ही जब तक आगा धापा छाया रहता था आज के शुभ दिन उसमें राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के युगों का स्वप्न पूर्ण हो रहा था। राजाधिराज ने अपने उमरावों, जागीरदारों एवं सामन्तों की उपस्थिति में शाहपुरा के तपे हुए नेता और प्रजामण्डल के प्रतिनिधि श्री गोकुललाल असावा को सत्ता हस्तान्तरित करने की रस्म अदा की। दुष्टों का दमन करने के लिए तलवार और न्याय से शासन चलाने के लिए तराजू भेंट की, जो प्रतीक रूप में थी।[39]

उसी रात्रि को एक सार्वजनिक सभा में अन्तरिम सरकार के प्रधानमन्त्री का जनता द्वारा स्वागत किया गया। जनता की अन्तरिम सरकार के मन्त्रियों ने मुख्य सचिव सहित 14 दिनों तक रियासत के लगभग सब गांवों के दौरे के समय लोगों से सम्पर्क किया और उनके हालात जाने। स्थिति के अनुसार लोगों को तुरन्त राहत दी गयी। उसी समय नई सड़कों का निर्माण और ग्रामों के पुराने तालाबों का जीर्णोद्धार का कार्य प्रारम्भ हुआ, नहरों की मरम्मत तथा अन्य जन कल्याणकारी कामों के लिए वित्तीय स्वीकृति प्रदान की गयी। घूंसखोरी के खिलाफ सख्त कदम उठाये गये। नुक्ता एवं द्वादशा के अवसरों पर होने वाले अपव्यय को समाप्त करने की ओर प्रयत्न शुरू किये गये। सरकारी कर्मचारियों को पेन्शन एवं ग्रेच्युएटी दिये जाने के नियम स्वीकृत किये गये और वेतन आयोग का गठन कर आयोग की रिपोर्ट पर अमल किया गया। अन्तरिम सरकार के प्रधानमन्त्री ने सबसे पहले बारहठ परिवार के शहीदों को श्रद्धा के फूल अर्पित किए। ठा. केसरीसिंह जी की अचल सम्पत्ति जो राज्य सरकार द्वारा जब्त कर ली गई थी वापस उनके वंशजों को सार्वजनिक सभा में स्वागत करके लौटा दी गयी।[40]

शाहपुरा में अन्तरिम सरकार के लिए शुभ कामनाएं :

इस अन्तरिम सरकार के बनने पर देश में सभी को बड़ी प्रसन्नता हुई और इस अवसर पर भेजी शुभकामनाएं इस प्रकार थीं–

39– पाक्षिक रिपोर्ट, सितम्बर, 1942, अजमेर, नं. 33, 35, अ.उ; महकमाखास शाहपुरा विज्ञप्ति सं. 25/ 1046/ सं.नं. 4 दिनांक 27-9-47; 14 अगस्त, 1947 को विधान लागू करना कहीं लिखा गया है।

40– महकमाखास शाहपुरा विज्ञप्ति सं. 30/1068/सं नं. 4 दिनांक 30-9-47.

श्री माणिक्यलाल वर्मा का शुभ सन्देश इस प्रकार है "शाहपुरा राज्य प्रजामण्डल के अध्यक्ष श्रीयुत प्रो. गोकुललाल जी असावा ने आज (12-4-47) दिल्ली पहुंचते ही यह खुश खबरी दी कि तारीख 14 अगस्त को शाहपुरा राजाधिराज साहब पूर्ण उत्तरदायी शासन विधान की घोषणा कर रहे हैं। जिसका अमल तत्काल ही (विधान बनाने के साथ ही) किया जाने वाला है। राजपूताना की रियासतों में यह घोषणा इन नरेशों को और स्फूर्ति देगी जो जनता को सत्ता सौंपने की दिशा में किंकर्त्तव्यविमूढ़ बने हुए हैं और जिन्होंने अवसर की प्रतीक्षा में जनता का विश्वास खो दिया है। उन नरेशों को भी यह घोषणा साहस दिलायेगी, जो जागीरदारों और संकुचित मनोवृत्ति की प्रतिक्रिया के चक्कर में है।"

"मुझे अधिक प्रसन्नता यह भी है कि राणा प्रताप के वंश में से यह कदम शाहपुरा राजाधिराज साहब ने ही उठाया है। वैसे भी प्रजामण्डल के जन्म से अब तक राजाधिराज साहब की नीति इस संस्था के प्रति उदार ही रही है जबकि पड़ौस में तरह तरह के षडयंत्र चल रहे थे।"

"मुझे आशा है कि घोषणा करने के साथ ही इस पर अमल करने की तैयारियां जल्दी से जल्दी की जायेगी और वर्ग, स्वार्थ, साम्प्रदायिकता से रहित प्रजातंत्र का पूर्ण आदर्श शाहपुरा में स्थापित होगा।"

अ.भा. देशी राज्य लोक परिषद ने भी "महलों का शासन झोंपड़ी में आया" कहकर इसका स्वागत किया और दिनांक 22-10-47 की कार्यकारिणी समिति ने शाहपुरा की जनता एवं राजाधिराज साहब दोनों को धन्यवाद अर्पित किए।

अ.भा. देशी राज्य लोक परिषद् की प्रांतीय कार्यसमिति ने भी प्रस्ताव पारित किया। "देशी राज्य लोक परिषद् की प्रान्तीय कार्यसमिति शाहपुरा राज्य में पूर्ण उत्तरदायी शासन की घोषणा किए जाने पर और विधान के अन्तर्गत जनता द्वारा चुनी गई पूर्ण उत्तरदायी सरकार की स्थापना होने तक के वक्त के लिए शाहपुरा राज्य के प्रजामण्डल के अध्यक्ष श्री गोकुललाल असावा के प्रधानमंत्रीत्व में लोकप्रिय अन्तरिम सरकार बनाये जाने पर शाहपुरा की जनता और वहां के राजाधिराज का हार्दिक अभिनन्दन करती है।"

अजमेर में आन्दोलन :

अजमेर-मेरवाड़में "भारत छोड़ो" आन्दोलन का बड़ा प्रभाव पड़ा। अंग्रेज सरकार की नीति थी कि इस आन्दोलन को दबाने के लिए खूब गिरफ्तारियां की जावे और लोगों को त्रस्त करने के लिए गोलियां भी चलाई जावें। इसलिये अप्रेल, 1943 में 64 व्यक्तियों को गिरफ्तार किया गया, इनमें श्री बालकृष्ण कौल और हरिभाऊ उपाध्याय भी थे जो दोनों फिर राजस्थान सरकार में मंत्री बने। श्री रामनारायण चौधरी, श्री गोकुललाल असावा, श्री ऋषिदत्त मेहता, श्री मुकुटबिहारीलाल भार्गव, श्री चन्दूलाल जोशी, स्वामी कुमारानन्द, श्रीमती गोमतीदेवी भार्गव, श्री अम्बालाल माथुर और श्री शोभालाल गुप्त भी गिरफ्तार किये गये। फिर इनमें से कुछ को बाद में छोड़ दिया गया। मौलाना अब्दुल

ठाकुर, जो एक अच्छे लेखक व वक्ता थे उन्हें 3 वर्ष की सजा दी गई। श्री जयनारायण चौधरी जिन्होंने राजस्थान की सभी क्रान्तियों व कृषक आन्दोलन में सक्रिय भाग लिया था 42 से 45 तक भारत छोड़ो आन्दोलन में भाग लेने के कारण बन्दी थे। श्री सूर्यमल मौर्य को इस अर्से से 6 माह का कठोर कारावास दिया गया था। प्रकाशचन्द्र ने इस आन्दोलन के संदर्भ में अनेक गीतों का सृजन कर प्रजा को नैतिक बल प्रदान किया। श्री दाताराम शर्मा को भी इसी अवधि में दंडित किया गया था। श्री बालकृष्ण कौल और श्री गोकुल लाल असावा को चार चार मास का कठोर कारावास दिया गया। जेलों के कुप्रबन्ध के विरुद्ध श्री बालकृष्ण कौल ने भूख हड़ताल कर दी यहां तक कि उनकी पत्नी को भी उनसे मिलने पर कमिश्नर ने रोक लगा दी थी। परन्तु महात्मा गांधी के बीच बचाव से उन्होंने अपना उपवास तोड़ दिया और उनसे उनकी पत्नी व बच्चों को मिलने दिया गया। फिर जब 1944 में वायसराय ने कांग्रेस के प्रमुख कार्यकर्त्ताओं को वार्ता करने के लिए शिमला बुलाया और उन्हीं दिनों इंग्लैण्ड की केबीनेट का शिष्टमण्डल भी भारत में आ रहा था तो भारतीय कांग्रेस ने सविनय आज्ञा भंग का आन्दोलन स्थगित कर दिया। अतएव कुछ समय के लिए अजमेर में आंदोलन भी स्थगित रहा। फिर 15 अगस्त, 1947 तक यहां छुटपुट घटनाएं चलती रहीं जो दमन एवं आन्दोलन से सम्बन्धित थीं।[41]

मारवाड़ और सत्याग्रह आन्दोलन :

लोक-परिषद और राज्य के बीच समझौता तो हो गया जैसा ऊपर हमने पढ़ा, परन्तु सरकार ने अपना दमनकारी तरीका नहीं छोड़ा। सलाहकार समिति नाममात्र की थी और जागीरदार मनमाने कर, लाग-बाग वसूल करते थे। इस परिस्थिति से निपटने के लिए परिषद ने पुनः संघर्ष का दौर आरम्भ करने का निर्णय लिया जिससे प्रजा को उत्तरदायी शासन का भागीदार बनाया जाय और कृषकों को जागीरदारों की जारशाही से मुक्ति दिलाई जाय। उस समय के फैले हुए अकाल से पीड़ितों को सहायता पहुंचाना भी परिषद के कार्यक्रम के अन्तर्गत था। यह भी निश्चय किया गया था कि सरकार ने 15 जनवरी

41– चीफ कमिश्नर अजमेर का पत्र तारीख 23 अप्रेल, 1943 का भारत सरकार के होम डिपार्टमेंट के सेक्रेट्री के नाम फाइल नं. 3/78/43 पोलेटिकल 1, 1943 होम पोलेटिकल, रा.अ.;
फाइल नं. 22/56/44 पोलेटिकल (1) 1944 होम पोलिटिकल एन.ए.आई. और चीफ कमिश्नर अजमेर मेरवाड़ा का पत्र नं. 44/76/44 आफ 1944 होम पो., रा.अ.;
महात्मा गांधी का बालकृष्ण कौल के नाम ता. 17 मई 1944 का फाइल नं. 44/76/1944 पोलेटिकल (1) आफ 1944 होम पोलेटिकल, रा.अ.;
रा.आ. चीफ कमिश्नर अजमेर का पत्र नं. 1/20 तारीख 5 जून, 1944 होम पोलेटिकल डिपार्टमेंट भारत सरकार के नाम; के. एस. सक्सेना, पोलिटिकल अवेकनिंग, पृ. 233–236;
गोविन्द सहाय, 42 का रिवेलियन, पृ. 391;
राजस्थान डिस्ट्रिक्ट गजेटियर, अजमेर, पृ. 92–93.

1942 को जिस एसेम्बली का उद्घाटन किया था उसका बहिष्कार किया जाय, क्योंकि वह केवल दिखावा मात्र था, उसमें उत्तरदायी शासन की पूर्ण अवहेलना थी। उन दिनों आन्दोलन को भड़काने वाली कुछ एक घटनाएं गुंदोज, निबाज, चंदावल आदि ठिकानों में घटी जिससे लोक परिषद के कार्यकर्त्ता अधिक उत्तेजित हो गये।[42]

चन्दवाल की कारुणिक घटना :

9 फरवरी 1942 को लाडनू में मारवाड़ लोक परिषद का एक खुला अधिवेशन हुआ। यहां अध्यक्षीय भाषण में श्री रणछोड़दास गट्टाणी ने मांग की कि लाग बाग एकदम बंद की जाय और उत्तरदायी शासन स्थापित किया जाए। यह भी निश्चित हुआ कि 28 मार्च, 1942 को उत्तरदायी शासन दिवस चन्दावल में मनाया जाय। चन्दावल के ठिकानेदारों ने लोक परिषद को यह दिवस न मनाने का आदेश दिया। जब सोजत से जो लोग उस दिन के आयोजन में सम्मिलित होने के लिये जा रहे थे उनमें से लगभग 150 लोगों को रोक दिया गया। जोधपुर राज्य की पुलिस ने ठिकाने की सहायता की। लोगों पर लाठियों और भालों से प्रहार किया गया। इनमें 25 व्यक्तियों को चोटें आई और 7 को अस्पताल में भरती किया गया। इनमें स्त्रियां भी थीं। सोजत की एक सुशीला देवी गम्भीर रूप से घायल हुई थी। जो लोग लोक परिषद के सहायक थे उनको भी घरों में से बाहर घसीट कर मारा गया। इससे स्थिति और भी नाजुक हो गई। शहर में पूर्ण हड़ताल हुई। जांच से प्रगट हुआ कि इस घटना के लिये ठिकाने के सेवक इसके लिए उत्तरदायी थे। चन्दावल टिकाने के कंवर ने प्रहार करने वालों को शराब पिलाई थी। जयनारायण व्यास इस घटना की जांच करने के लिए स्वयं चन्दावल जाना चाहते थे परन्तु राज्य सरकार ने 144 धारा लगा दी और भविष्य के लिए सभाए बन्द कर दीं।[43]

सत्याग्रह आन्दोलन :

जब मारवाड़ सरकार ने चन्दावल की घटना को छुपाने के लिए 144 धारा लगाकर सभायें बन्द कर दी तो मारवाड़ लोक परिषद ने दूसरा सत्याग्रह आन्दोलन प्रारम्भ करने का निश्चय किया। जयनारायण व्यास को प्रथम डिक्टेटर बनाया गया। श्री व्यास ने अपने आयोजन के प्रचारार्थ मारवाड़ में "उत्तरदायी शासन" नामक एक छोटी सी पुस्तिका लिखी और "जोधपुर की स्थिति पर प्रकाश" नामक दूसरी पुस्तिका जागीरदारों के कई प्रत्याचारों का वर्णन करने के लिये लिखी। इन पुस्तिकाओं के प्रकाशन से जोधपुर के महाराजा और उनके प्रधानमन्त्री को बड़ा रोष आया और श्री जयनारायण व्यास पर उन्होंने यह आरोप

42–रणछोड़ गट्टाणी का वक्तव्य जोधपुर–जागीर में उपद्रव सम्बन्धी, 22 अप्रेल, 1942, वीर अर्जुन, अप्रेल 6, अप्रेल 25, 1942.

43–वीर अर्जुन, 1 अप्रेल 1942; पोलिटिकल एण्ड कोन्फीडेन्शल/जोधपुर आन्दोलन की हकीकत, पृ. 3 अ.बी.; हिन्दुस्तान टाइम्स, 4 अप्रेल, 10 अप्रेल, 29, मई, 1942; कान्फीडेन्शल फाइल, 55 ए/से सात, 1942, अ.बी.

लगाया कि वे जनता में अशांति फैला रहे हैं। सरकार के रुख से असन्तुष्ट होकर 26 मई, 1942 को जयनारायण व्यास और उनके साथियों ने जोधपुर म्यूनिसिपल बोर्ड से इस्तीफा दे दिया और पुनः आंदोलनकारी गतिविधियों में लग गये। सरकार ने फिर लोक आंदोलन का दमन करने के लिए 27 मई, 1942 को जयनारायण व्यास को तथा फतेहराज को गिरफ्तार कर लिया गया। लोक परिषद ने डिक्टेटर के स्थान पर, जो श्री व्यास की गिरफ्तारी से खाली हुआ था, श्री मथुरादास माथुर को उस स्थान पर नियुक्त किया, परन्तु उनको भी गिरफ्तार कर लिया गया। गिरफ्तारी का तांता टूटा नहीं, चलता रहा और लोग प्रतिदिन गिरफ्तार होते थे जिनमें विशेष उल्लेख के योग्य श्री अचलेश्वर प्रसाद, छगनराज चोपासनी वाला, श्री गणेश लाल व्यास और श्री अभयमल जैन- श्री चेतनदास आदि थे। जब इन्हें जेल में रखा गया तो इनके खाने–पीने और रहने की कोई उचित व्यवस्था नहीं थी। स्थिति पर पं. नेहरू ने प्रेस में अपना वक्तव्य दिया कि हमारी मांग पूर्ण स्वतन्त्रता है। भारतवर्ष में इन पैशाचिक घटनाओं का अन्त करने के लिए आंदोलन के अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं है। रियासत की दमन नीति की निन्दा श्री हरिभाऊ उपाध्याय (अजमेर), श्री हरीलाल शास्त्री और श्री लादूराम जोशी (जयपुर), श्री भोलानाथ मास्टर (अलवर), श्री गोकुल भाई भट्ट और श्री पुखराज (सिरोही) तथा श्री मुकुट बिहारी माथुर (ब्यावर) और श्री सत्यदेव विद्यालंकार (दिल्ली) ने की। महात्मा गांधी ने भी अपने हरिजन में जोधपुर राज्य के नृशंस कृत्यों को अमानवीय बतलाया और बन्दियों के अनशन पर चिन्ता व्यक्त की।[44]

बालमुकुन्द बिस्सा की मृत्यु :

इस पर भी रियासत ने अपनी दमन नीति जारी रखी और पुलिस ने लोक परिषद् के प्रसिद्ध कार्यकर्ता श्री बालमुकुन्द बिस्सा और कुछ अन्य कार्यकर्ताओं को 11 जून 1942 को गिरफ्तार कर लिया। उनको जेल में बुरी तरह निर्दयतापूर्वक पीटा गया और दूसरे दिन दोपहर तक उन्हें भोजन नहीं दिया। इन सब बन्दियों ने प्रधानमंत्री को पत्र लिखा कि उनके अपराध बतलाये जाएं और जब तक उत्तर नहीं मिलेगा वे भूख-हड़ताल पर रहेंगे रियासत की सरकार ने उत्तर दिया कि वे दूसरे अपराधियों से भी अधिक बुरे हैं, इसलिये उनके साथ ऐसा ही व्यवहार उचित है। श्री जयनारायण व्यास और उनके साथियों ने भी जेल अधिकारियों के दुर्व्यवहार और भोजन आदि की शिकायत की। जब उनकी शिकायत नहीं सुनी गई तो उन्होंने भूख हड़ताल कर दी। जून की गर्मी में भी इन बन्दियों को खुले में नहीं सोने दिया जाता था और अंधेरी कोटड़ियों में बन्द रखा जाता था जहां सोने का कोई प्रबन्ध नहीं था। जब उन्होंने आदेश की अवहेलना की और

44– कान्फीडेन्शल फाइल नं. 55/एन. 9–37, अ. बी; कान्फीडेन्शल फाइल ग्रुप सी, 22, 1942, अ. बी,. हरिजन; 14 जून, 1942, वैद्य कन्हैयालाल प्रोग्रेसिव जोधपुर अण्डर ब्रिटिश प्राईमीनिस्टर सर डोनाल्ड फिल्ड पृ. 2 और 12, 13; हरिजन जुलाई 5, 1942; के. एस. सक्सेना, पोलिटिकल अवेकनिंग, पृ. 260–262.

शान्ति के साथ सत्याग्रह किया तो अधिकारियों ने अपराधी कैदियों से उन पर आक्रमण करवाया और उनको लात घूंसे मारकर वापिस अपनी कोठरी में धकेल दिया। इस प्रहार के फलस्वरूप श्री बाल मुकुन्द बिस्सा और श्री रणछोड़ गट्टाणी बुरी तरह घायल हो गये। श्री बालमुकुन्द बिस्सा 15 जून तक खाना नहीं खा रहे थे, जिससे वे बीमार हो गये और उसको 19 जून को 105 डिग्री ज्वर हो गया। तब उसके अस्पताल पहुँचाने की व्यवस्था की गई। वह अपने वृद्ध माता पिता और पत्नी तथा बच्चों से मिलना चाहते थे, परन्तु उन्हें नहीं मिलने दिया। इन्हें अस्पताल भेजा गया जहां पहुंचने पर उनकी मृत्यु हो गई। [45]

सारे नगर में बिस्सा की मृत्यु का समाचार बिजली की तरह फैल गया। हजारों की संख्या में नर नारी उस अमर शहीद की शव यात्रा में सम्मिलित होने या दर्शन करने उमड़ पड़े। जब समूह सोजती दरवाजे से शहर में प्रवेश करने लगा तो पुलिस ने संगीन लाठी चार्ज किया और भीड़ पर घोड़े दौड़ाये जिससे सैंकड़ो लोग घायल हो गये। अन्त में शव यात्रा शहर के बाहिर होती हुई श्मशान पहुंची और वहां उस कर्मठ कार्यकर्ता का अंतिम संस्कार किया गया। इस यात्रा में 6 महिलाएं श्रीमती सिरकोर व्यास, श्रीमती 'बा'', श्रीमती महिमा देवी, श्रीमती सावित्री, श्रीमती राजकौर व्यास और श्रीमती शकुन्तला त्रिवेदी ने इस अमर यात्रा में आगे रहकर अपने साहस का परिचय दिया। पुलिस इन देश भक्त महिलाओं को भी जेल की हवा खिलाने से न चूकी। सर्वत्र महाराजा की इस कार्य की निन्दा हुई। महात्मा गांधी ने अपने विश्वस्त कार्यकर्ता श्री श्रीप्रकाश को जोधपुर की स्थिति का अध्ययन करने भेजा और वहां की जानकारी के बाद लिखा कि वास्तव में लाठी चार्ज, पिटाई, घटिया भोजन, अनशन आदि राज्य की ऐसी प्रक्रियाएं इस घटना में रही हैं जिससे बालमुकुन्द बिस्सा को मौत के मुंह जाना पड़ा। उन्होंने बडे खेद से आशा व्यक्त की कि महाराजा को सन्मति प्राप्त होगी और वे उत्तरदायी शासन प्राप्त करने के लिए शीघ्र ही कदम उठायेंगे। पंडित जवाहरलाल जी ने डा. द्वारकानाथ किचरु और अखिल भारतीय प्रजा परिषद् के सदस्य श्री कन्हैयालाल वैद्य को 5 जून, 1942 स्थिति की जांच के लिए भेजा परन्तु मारवाड़ सरकार ने 6 जुलाई, 1942 को दूसरी गाड़ी से तत्क्षण शहर से रवाना होने के आदेश दे दिये। [46]

इन यातनाओं और गिरफ्तारियों के होने पर भी सत्याग्रह आंदोलन चलता रहा और इतना बढ़ गया कि महिलाओं ने भी इसमें भाग लेना शुरु कर दिया उनका एक जत्था 17 जुलाई, 1942 को नगर में घंटाघर के पास सत्याग्रह करने के लिए निकला।

45– प्रजापरिषद् फाइल नं. 56, श्री बालमुकुन्द बिस्सा, 1942, अ.बी.

46– प्रजा परिषद् फाइल नं. 56, श्री बालमुकुन्द बिस्सा, 1942, अ.बी; हिन्दुस्तान टाइम्स, 22 जून, 1942; जून 24 1942; हरिजन जुलाई 6, 1942; हिन्दुस्तान टाइम्स, 14,21, जुलाई, 1942; वीर अर्जुन 8, जुलाई 1942; तारक प्रसाद व्यास, बालमुकुन्द बिस्सा कांग्रेस शताब्दी समारोह समिति, राजस्थान, जयपुर, पृ. 6.

ये सब महिलायें केसरिया साड़ियां पहने हुए थीं, उस मौके पर महिमा देवी किंकर ने एक पुस्तक पढ़ी जो जब्त हो चुकी थी। पुस्तक का नाम "मारवाड़ में उत्तरदायी शासन" था। 26 जुलाई को मारवाड़ सत्याग्रह दिवस मनाया गया। राजस्थान में जहां तक इस विषय की सभायें हुई और इस जघन्य नीति की सर्वत्र निन्दा हुई।[47]

जब 1942 के अगस्त का आंदोलन ब्रिटिश भारत में फैलने लगा तो जोधपुर नगर और राज्य के फलौदी, सोजत, नागौर आदि जिलों में भी इसका प्रभाव पड़ा। इसी अर्से श्री जयनारायण व्यास के विरुद्ध मुकदमें की तजवीज 1 अगस्त, 1942 को सुनाई गई जिसमें उन्हें 6 वर्ष और 6 मास के कारावास का दण्ड सुनाया गया। इधर लोक परिषद् के कार्यकर्ता "करो या मरो" के यज्ञ में कूद पड़े। सरकार भी इसे दमन करने में पीछे न रही। एक-एक कर इसी माह में 16 अगस्त से 18 अगस्त के बीच श्री द्वारकादास पुरोहित, श्री मथुरादास माथुर, हुकमराज मेहता, फूलचन्द बाफना, तुलसीदास राठी आदि गिरफ्तार कर लिए गए।[48]

फिर भी इन गिरफ्तारियों से आंदोलन में कोई शिथिलता नहीं आई। आए दिन सभाओं और जुलूसों को आयोजित किया जाता था। महिलाएं भी इसमें सक्रिय भाग ले रही थीं। 19 सितम्बर लोक परिषद ने त्रिस्सा दिवस बड़ी धूमधाम से मनाया। 22 सितम्बर, 1942 गिरदीकोट की सभा में श्रीमती सूरजदेवी तथा सावित्री देवी ने राष्ट्रीय गीत गाये और आर्य कन्या पाठशाला की प्रधानाध्यापिका ने तथा विष्णुदत्त एवं बाल दिवाकर ने अपने जोशीले भाषण देकर जनता को मन्त्र मुग्ध कर दिया। 25 सितम्बर, 1942 को दमन-विरोध दिवस मनाया गया जिसका नेतृत्व हरिभाई किंकर, सूरजदेवी माथुर और सावित्री देवी ने किये। उसी दिन राधाकृष्ण बोहरा को तीन वर्ष का कठोर कारावास का दण्ड तजवीज किया गया था। 26 सितम्बर को श्री हरिभाई किंकर भी गिरफ्तार कर लिये गये।[49]

राज्य की इन ज्यादतियों ने आन्दोलन को और तीव्र कर दिया। उसका अहिंसात्मक रूप अब विध्वंसात्मक हिंसा में परिवर्तित हो गया। 'करो या मरो" संकल्प को लेकर विद्यार्थियों ने संगठन बनाया और वे योजनाबद्ध ढंग से तार के तारों को तोड़ने, सरकारी इमारतों को नष्ट करने, बम विस्फोट करने आदि कामों में लग गये। 17 अक्टूबर, 1942

47-वीर अर्जुन, 18 जुलाई 1942, 5 अगस्त, 16 अगस्त 1942; हरिजन, 13 अगस्त, 1942; जोधपुर गवर्नमेंट गजट, 27 मई, 1944.

48-अ.बी. कान्फीडेन्शल फाइल नं. 55/ए 1-7 नं. 55/एफ, 1, प्रजा परिषद् का आंदोलन, 1942; प्रजा परिषद् फाइल नं. 82, नेताओं की गिरफ्तारी, 1942, अ.बी. हिन्दुस्तान टाइम्स, 13 जुलाई, 1942; वीर अर्जुन, 27 जुलाई 1942; भगवान दास केला-देशी राज्यों की जन जागृति, पृ. 235-36 विश्वामित्र, 23 सितम्बर, 1942; डा. माथुर; स्ट्रगल फॉर रेसपोन्सिबल, पृ. 119-120

49- अ.बी., प्रजा परिषद फाइल नं. 82, नेताओं की गिरफ्तारी, 1942; भगवान-दास केला-देशी राज्यों की जन जागृति, पृ. 235-36; पाक्षिक रिपोर्ट, नं. 33, 35, सितम्बर, 1942, अ.उ.

को स्टेडियम सिनेमा में, जो पूरा भरा हुआ था बम्ब का विस्फोट किया गया जिसमें पांच अंग्रेज जख्मी हुए और चारों ओर भगदड़ मच गई। इस प्रकार पार्सल आफिस, पुलिस लाइन, चुंगी नाकों, आदि स्थानों में धमाके किये गये। बाजार और मकानों की दीवारों पर उत्तेजनात्मक पोस्टर चिपकाये गये जिसमें सरकारी माल व इमारत को नुकसान पहुंचाने तथा विदेशी सत्ता को उखाड़ फेंकने के लिए जनता प्रेरित हो। पुलिस तथा सेना की ट्रकें व कारें भी जलाई गई। एक रात बंब विस्फोट की कार्यवाही में श्री लालचंद, श्री देवराज, श्री सोहनलाल, श्री हरमालसिंह, श्री किरोडीमल, श्रीउगमराज, श्री प्रेमराज, श्री मनोहरलाल और बालकृष्ण गिरफ्तार किये गये। उन पर मुकदमा चलाया गया जिसमें बालकृष्ण सरकारी मुखबिर बन गया और अन्य आठ व्यक्तियों को अपराधी करार दिया गया। इसी तरह बिना अपराध बतलाए श्री सुमनेश, मन मोहन माथुर, श्री भाई लाल, श्री पुरुषोत्तम, श्री श्यामलाल और श्री बंशीधर को एकान्त में नजरबन्द कर दिया। बन्दियों को बुरा खाना दिया जाता था और कई एक को कुछ दिन छोड़ कर खाना मिलता था। हथकड़ियां और बेड़ियां लगाना साधारण दंड था। श्री मथुरादास माथुर जैसे निष्ठावान नेता को भी इन हथकड़ियों और बेड़ियों से जकड़ा गया था। इन बंदियों को देश की खबरों से दूर रखा जाता था। जब कभी राष्ट्रवादी नारे या गीत गाये जाते थे तो इन बंदियों की पिटाई होती थी और जेल में घोड़े दौड़ाये जाते थे। श्री सूरजप्रकाश पापा जिन्हें 14 अप्रेल, 1943 के दूसरे बंब केस में गिरफ्तार कर आठ वर्ष की सजा दी गई थी उन्हें लाठियों से पीटा माचे पर चढ़ाया गया जिससे उनके दोनों पांव की हड्डियां टूट गई और बेहोशी में अस्पताल पहुंचाया गया। लाठियों की मार से व्यास जी एवं श्री मथुरादास माथुर की भी हड्डियां पहले टूटी थी। श्री जोरावरमल, श्री पारसमल, श्री सीताराम, श्री रामचन्द्र बोड़ा को भी दूसरे बम काण्ड के अभियुक्त करार दिये गये। इन्हीं का साथी श्यामलाल एवं लालचन्द 1 दिसम्बर, 1943 दिन दहाड़े जेल से भाग निकले थे जो इनके साहस का एक अच्छा उदाहरण है।[50]

अब कुछ घटना चक्र ऐसे घटित हुए कि सरकार ने इन राजनैतिक बंदियों को इनके नेताओं से अलग अलग जेल में भेज दिया जिससे उनको आपस में परामर्श या प्रेरणा का अवसर न मिले। इधर प्रजा परिषद् के दफ्तर, कार्यकर्त्ताओं के घरों की तलाशी ली जाने लगी और उनके बीबी-बच्चों को यातना, डराना, धमकाना शुरू किया। द्वितीय युद्ध के वातावरण में ब्रिटिश सरकार कुछ नरम रुख के पक्ष में था। उत्तर भारत में भी आंदोलन की गति धीमी हो गई थी। साथ ही देशी राज्य प्रजा परिषद् की नीति युद्ध के अवसर पर सरकार से संघर्ष में तेजी लाने के पक्ष में न थी। ऐसी परिस्थिति में श्री भोगीलाल पण्ड्या और श्री गोपीकृष्ण विजयवर्गीय ने जोधपुर जाकर व्यास जी और उनके साथियों को समझाया कि जोधपुर सरकार से समझौता कर लिया जाय। इसके फलस्वरूप

50. पाक्षिक रिपोर्ट, मार्च, 1943, बंब केस, जोधपुर अ. उ.; विश्वामित्र, 20 अक्टूबर, 20 नवम्बर, 23 नवम्बर, 1942 और 9 फरवरी, 18 अप्रेल 11 मई, 21 दिसम्बर, 1943; नवभारत, 24 दिसम्बर 1942; लोकमान्य, 19 अप्रेल 1943; हिन्दुस्तान 25 मार्च, 1943; केला, देशी राज्यों की जन जागृति. पृ. 235–236; डा. माथुर, स्ट्रगल फार रिस्पोन्सिबल गवर्नमेंट पृ. 120–127.

श्री व्यास और उनके साथी मई 1941 को छोड़ दिये गये और 1945 में मारवाड़ सरकार ने घोषणा की कि 69 सदस्यों की एक प्रतिनिधि सभा कायम की जायगी जिसमें अधिकांश सदस्य सीधे निर्वाचित होंगे। वैसे तो ये सभा परामर्शदात्री सभा होगी जिसके अधिकार नगण्य होंगे। फिर भी इसमें परिषद् और सरकार में सहयोग की स्थिति लाने के प्रयास की गुंजाइश थीं।[51]

डाबड़ा कांड :

इसी अर्से में सर डोनाल्ड फील्ड की सेवाएं समाप्त हो गई थी पर जो अत्याचार की परिपाटि वे छोड़ गये वह बदस्तूर चलती रही। राज्य और परिषद् के समझौते के बावजूद सुधारों की मांगों पर कोई ध्यान नहीं दिया जा रहा था। जागीरदारों का जुल्म यथावत बना हुआ था। किसान अब जागरूक था फिर भी दमनकारी नीति का शिकार बना हुआ था। इस अन्यायपूर्ण नीति से निपटने के लिए लोक-परिषद् और किसान-सभा एक जुट होकर आंदोलन के लिए कटिबद्ध थे। जागीरदार भी लाग-बाग, बेगार की बीघोड़ी को कायम रखने के पक्ष में तैयारी में लगे हुए थे। पोकरण में जागीरदार के जुल्म से तंग आकर 700 किसान परिवार को गांव छोड़ने के लिए बाध्य होना पड़ा था। अतएव इन जुलमों के विरुद्ध आवाज उठाने के लिए लोक-परिषद् और मारवाड़ किसान-सभा के कार्यकर्त्ताओं ने 13 मार्च 1947को डीडवाना जिले के डाबड़ा गाँव में एक संयुक्त सम्मेलन करने का निश्चय किया। इस सम्बन्ध के गांव-गांव पर्चे बांटे गये और आस पास से किसानों के दल सभा में भाग लेने के लिए उमड़ पड़े। जागीरदार को इसकी सूचना पहिले से ही थी। उसने लगभग एक हजार हथियारबन्द राजपूतों को गढ़ में इकट्ठा कर रखा था। ज्योंही परिषद् के कार्यकर्त्ता जिनमें श्री द्वारकादास माथुर, श्री द्वारकादास पुरोहित, श्री राधाकृष्ण, श्री छगन राज चोपासनी वाला, श्री बंसीधर, श्री किसनलाल, हरिन्द्र कुमार चौधरी- नरसिंह कछवाह आदि डाबड़ा पहुंचे तो इनको चारों ओर से घेर लिया और प्राण घातक हमले किये गये किसान और कार्यकर्त्ताओं की भीड़ पर लाठियां बरसाई गई और उन्हें घोड़ों की टापों से कुचला गया। सारे गांव में ये हथियार बंद राजपूत घुस गये, स्त्रियों के साथ बलात्कार किया गया, गल्ला लूटा गया और आगजनी से नाश का वातावरण बना दिया गया। इस आतंकारी हमले में, चून्नीलाल, रामूराम, रुघाराम, जोधाना, नन्दराम, पन्ना राम आदि सामन्ती गुन्डों की बंदूकों के मार से शहीद हुए। हमलावरों ने पन्नाराम की पत्नी केसर के पांव व मोतीराम की पत्नी के कान काट लिये। लोक परिषद् और किसान सभा के नेताओं को बेहोश अवस्था में गिरफ्तार कर गढ़ ले जाया गया, परन्तु दुगडजी सेठ के बीच बचाव से उन्हें छोड़ा गया। सेठजी ने उन्हें जोधपुर पहुंचाने की व्यववस्था की। इन पर राजद्रोह का आरोप लगाया गया। देश के

51— जोधपुर गवर्नमेंट गजट, 27 मई, 1944; हिन्दुस्तान टाइम्स, 28 मई, 1944; विश्वामित्र, 4 जून, 1944: वीर अर्जुन, 4 मई, 1945; हिन्दुस्तान 22 मई, 1945 डा. माथुर, स्ट्रगल, पृ. 136.

पत्र और पत्रिकाओं ने जिनमें वन्देमातरम, जन्मभूमि और लोकवाणी मुख्य थे तथा प्रजा राज्य परिषद् ने डाबडा हत्याकाण्ड की निन्दा की और व्यासजी ने इनके दोषियों को दण्ड देने और निष्पक्ष जांच की मांग की। परन्तु जब लोकप्रिय मंत्री मण्डल बना तो सभी मुकदमे उठा लिये गये। डाबडा काण्ड मारवाड़ के सामन्तवाद का जघन्य कारनामा है।[52]

इस प्रकार का वातावरण जोधपुर में इसलिए भी था कि स्वयं महाराजा हनुवन्तसिंह निरंकुश राजतंत्र के पक्षपाती थे। ये सर्व विदित है कि उनकी सांठगांठ हैदराबाद नवाब भोपाल नवाब एवं जिन्ना से थी और वे मन से भारतीय संघ में सम्मिलित नहीं होना, चाहते थे। पर परिस्थितिवश जब वे संघ में शामिल हो गये और राज्य की जनता उत्तरदायी सरकार की मांग पर अड़ी हुई थी तो उन्होंने अक्टूबर 1947 को अपने ढंग का सामन्तवादी मंत्रिमंडल बनाया जिसका कड़ा विरोध हुआ। अन्त में 28 फरवरी 1948 को मेनन के जोधपुर आने से महाराजा ने व्यासजी तथा जागीरदारों का एक मिला जुला दूसरा मंत्रिमण्डल बनाया जो ठीक तरह काम न कर सका। अंत में 2 सितम्बर 1948 को व्यासजी का नया मन्त्री मण्डल बना जिसमें श्री मथुरादास माथुर, श्री द्वारका दास पुरोहित और नाथूराम मिर्धा लोक परिषद् से तथा श्री भैरूसिंह और श्री प्रेम सिंह सामन्तीदल से शामिल किये गये। इधर जोधपुर विधान सभा, जिसका बहिष्कार किया गया था, निरस्त कर दी गई जो लोक परिषद् की एक महान् विजय थी। ये मन्त्री मण्डल अब राजस्थान में विलय की प्रक्रिया में और स्थानीय समस्याओं को सुलझाने में व्यस्त हो गया।[52 ए.]

जयपुर और भारत छोड़ो आन्दोलन :

जैसा कि हमने अगले अध्याय में पढ़ा कि फरवरी 1940 में पुलिस ने प्रजा मण्डल के सभी कागजात जब्त कर लिये और कार्यकर्ताओं की पकड़-धकड़ शुरु की तो जयपुर में फिर सनसनी फैल गई। इसको शांत करने के लिए राज्य ने मण्डल को रजिस्टर कराने की अनुमति और रचनात्मक कार्य करने की छूट दे दी। परन्तु इनके पीछे गुप्तचर लगे रहे और उनके काम को संदेह की दृष्टि से देखा जाता था। इस परिस्थिति में हीरालाल शास्त्री की अध्यक्षता में सीकर में नवम्बर 1941 को प्रजामण्डल का अधिवेशन आयोजित किया गया और यह प्रस्ताव पारित कर महाराजा के पास भेजा गया कि अविलम्ब उत्तर-

---

52. अ.बी. कान्फीडेन्शल फाइल, जोधपुर, नं. 132, 1946-1947; लोक परिषद् फा. नं. 5 अ. बी.; हिन्दुस्तान टाइम्स, 20 मार्च 1947;
अ.बी. प्रजामण्डल सेक्शन, फाइल नं. 154; जोधपुर राज्य प्रजामण्डल, जनता से अपील, 1946-47, फाइल नं 100; कार्यकारिणी का पत्र, 1946,
फाइल नं. 138 जयनारायण के कोन्फीडेन्शल कोरसपोन्डेन्स, 1946, अ. बी.; प्रजा सेवक, 15,20,26 मार्च, 1947; मथुरादास माथुर, डाबडा के अमर शहीद का.श.स. जयपुर, पृ. 3–10

52ए. जोधपुर गवर्नमेन्ट गजट, 31 अगस्त, 1948; हिन्दुस्तान टाइम्स, 3 सितम्बर, 1948.

दायी शासन की स्थापना राज्य में की जानी चाहिये अन्यथा उसके परिणाम लाभप्रद नहीं होंगे। इधर से एक प्रजा मण्डल प्रोग्रेसिव पार्टी का भी संगठन किया गया जो अपनी मांगों को अधिक बल से मनवाना चाहता था। इस प्रकार प्रजामण्डल में दो दल हो जाने से सरकार ने सख्ती का रुख अपना कर इनकी मांगों की उपेक्षा कर दी और दमन नीति का अनुसरण किया।[53]

परन्तु जब 1942 का "भारत छोड़ो" आन्दोलन छिड़ गया तो जयपुर प्रजामण्डल के कुछ सदस्य सरकार से समझौता करने के पक्ष में थे और चाहते थे कि "करो या मरो" आन्दोलन में प्रजामण्डल प्रत्यक्ष रूप से जयपुर राज्य से सीधी लड़ाई न लड़े। इस दृष्टिकोण के विरुद्ध कई उत्साही व्यक्तियों ने "आजाद मोर्चे" की स्थापना की जिसमें श्री चिरंजीलाल, श्री रामकरण जोशी, श्री बी. एस. देशपाण्डे, श्री ओमदत्त शास्त्री, श्री लादूराम जोशी, श्री हंस डी. राय आदि अग्रणी थे। अपनी सोम्य प्रवृति और दूरदर्शिता के गुणों के कारण इस पार्टी को पं. देवी शंकर तिवाड़ी से समय-समय पर उचित मार्ग दर्शन मिलता रहा। इसी दल के श्री दौलत मल भंडारी ने अत्यधिक सूझबूझ एवं कुशलता से इस आन्दोलन का नेतृत्व किया। सरकार विरोधी कार्यवाही के कारण इन्हें गिरफ्तार कर जेल मे रख दिया गया। अन्य कार्यकर्ता जिन्होंने ब्रिटिश विरोधी गतिविधियों, भाषणों और जुलूसों में भाग लिया वे थे ओमदत्त शास्त्री, कपूरचन्द पाटनी, गुलाबचन्द कासलीवाल, चिरंजीलाल मिश्र, श्री बद्रीनारायण, श्री भंवरलाल आकड़, मुक्तिलाल मोदी, बाबा हरिश्चन्द्र आदि थे। इन्होंने इस आन्दोलन के दौरान कई दिनों तक राज्य में सभाएं और प्रदर्शन करके ब्रिटिश विरोधी वातावरण बनाया और जनता तक "करो या मरो" का संदेश पहुंचाया। जब सरकार ने इन्हें गिरफ्तार कर 6 मास से लगभग 2 वर्ष का कारावास का दण्ड दिया तो उन्होंने इसकी कोई पर्वाह न की।[54]

जहां शांतिमय ढंग से असहयोग किया जा रहा था वहां कुछ राष्ट्र सेवी क्रान्तिकारी तरीकों से सरकार का विरोध कर रहे थे। श्री गोपालदत्त वैद्य ने अपने कुछ मित्रों के साथ तोड़ फोड़ के लिए गुप्त दल बनाया। उन्होंने नाहरगढ़ के नीचे

53–नवजीवन, 4 मार्च, 1940; 12 मार्च 1940 का पत्र जमनालाल बजाज का घनश्यामलाल बिरला को, पत्र व्यवहार, नं. 123; 17 अप्रेल, 1940 का बजाज का पत्र बिरला को, पत्र व्यवहार, नं. 124; 20 अगस्त, 1940 का कपूरचन्द पाटनी का बजाज को, पत्र व्यवहार नं. 127; 6 अगस्त 1942 का पत्र चिरंजीलाल अग्रवाल का बजाज को, पत्र व्यवहार नं. 120; 9 सितम्बर 1941 का पत्र दुर्गालाल और राधावल्लभ प्रोग्रेसिव दल का जमनालाल बजाज को, पत्र व्यवहार, नं. 121; भगवान दास केला, देशी राज्य शासन, पृ. 552-53; डा. के. एस. सक्सेना, पोलिटिकल मूवमेंट, एण्ड अवेकनिंग इन राजस्थान, पृ. 236-237.

54–इन्टेलीजैन्स रिपोर्ट नं. 366/सी. आर. 1941, अ. बी.; जुगलकिशोर चतुर्वेदी, 1942, की क्रांति में राजस्थान का योगदान, उद्धत "नवयुग संदेश", 2 अक्टूबर, 1952;

पाक्षिक रिपोर्ट, जून 1941, कान्फीडेन्शल डायरी, जयपुर, 31 मई, 1941, अ.बी;

सुरंग में बम बनाने का सामान जुटाया । जब पुलिस को पता चला तो छापा मार कर सभी सामान कब्जे कर लिया । फिर भी श्री वैद्य ने हिम्मत नहीं खोई । वे ग्वालियर जाकर कुछ सामान वहां से लाकर जयपुर आना चाहते थे कि संदेह में वे आगरे में पकड़े गये । जब उनकी तलाशी ली गई तो उनसे एक टोमीरिंग और 45 कारतूस पकड़े गये । उन पर मुकदमा चलाया गया और उन्हें 1 वर्ष की कारावास की सजा दी गई । जब उनके घर की तलाशी ली गई तो उनके मकान से दो रिवोल्वर और दो छुरें बरामद हुए । इसी तरह चन्द्र शेखर पारासर क्रांतिकारी कामों में पूरे सहयोगी थे और जो बम जयपुर में बनाये जाते थे उनको अन्यत्र भेजे जाने का काम करते थे । इसी प्रसंग में वे दिल्ली में पकड़े गये । बरसी के नन्दलाल शर्मा भी इसी दल के कार्यकर्त्ता थे जिन्होंने पहाड़ियों में सैनिक संगठन बनाने में जुट गए । यही वतीरा परमेश्वर दयाल व बद्रीनारायण का था जो भूमिगत रह कर भारत छोड़ो आन्दोलन में ब्रिटिश सत्ता उखाड़ने में सक्रिय रहे । मूलराज टंडन भी इन्हीं गतिविधियों में लगे रहे । कुछ कार्यकर्त्ता तोड़-फोड़ द्वारा सरकार की स्थिति बिगाड़ने में व्यस्त थे । परन्तु जब भारत छोड़ो आन्दोलन स्थगित हुआ और सन् 1945 तक या आगे पीछे इनको जेल से मुक्त किया गया तो ये रचनात्मक काम में लग गये और देश की सेवा करते रहे ।[55]

वैधानिक सुधार :

अब महाराजा जयपुर ने भली भांति समझ लिया कि जनता की मांग दबने वाली नहीं है और इसको अन्य राज्यों से प्रेरणा मिल रही है और ब्रिटिश भारत का आन्दोलन इसका स्रोत हैं, तो उन्होंने एक विशेष समिति[56] 26 अक्टूबर 1942 को इस हेतु नियुक्ति की जो राज्य के पिछले इतिहास, वर्तमान शिक्षा, जन जागृति लोक आन्दोलन और सम्पूर्ण राज्य के हित के लिए वैधानिक सुधारों पर विचार करे । इस कमेटी ने सब पक्षों पर भलीभांति विचार करके एक लम्बी रिपोर्ट पेश की । परन्तु इस रिपोर्ट से गैर सरकारी मेम्बर सहमत नहीं हुए । मतभेद मुख्यत: इस बात पर था कि विधान सभा के प्रतिनिधित्व में सरकारी और जनता के सदस्यों का अनुपात क्या होना चाहिए ।[57]

55—पाक्षिक रिपोर्ट जयपुर, नं. 33, 35, 1942, अ. उ.; सुमनेश जोशी—राजस्थान में स्वतन्त्रता संग्राम के सेनानी,—पृ. 555, 557, 570, 571, 577

56—समिति के निम्नलिखित सदस्य थे—

एस हिरिण्या, अध्यक्ष, खान साहित अलताफ एहमद खैरी, ठाकुर देवीसिंह चौमु; राजा सरदारसिंह खेतड़ी, ठाकुर कुशालसिंह गीजगढ़, चिरंजीलाल अग्रवाल, मौलवी हमीदुल्ला खां, कपूरचन्द पाटनी, नेमीचन्द कासलीवाल, सेठ रामनाथ पोद्दार, शाह अलीमुद्दीन एहमद, सेठ सूरज बक्ष घीया, टीकाराम पालीवाल, विद्याधर कुलहरी, बलदेवदास बजोरिया, केप्टिन चिमनसिंह, लक्ष्मीनारायण यादव, सैय्यद हसन मुमलवा । इस कमेटी के सेक्रेटरी श्री ईश्वर दत्त थे ।

(रिपोर्ट आफ द कमेटी आन कान्स्टीट्यूशनल रिफोर्म्स, 1943)

57—ट्रिब्यून, नवम्बर 4, 1942.

अन्त में 1946 में जयपुर राज्य ने द्विसदनीय विधान सभा बनाई। नीचे के सदन में जिसका नाम प्रतिनिधि सभा था। 125 सदस्य रखे गये जिनमें 5 राज्य द्वारा मनोनीत, 25 ठिकानों के सरदारों के प्रतिनिधि, जनरल सदस्य 78, एक सदस्य व्यापारियों का, एक स्त्रियों का और एक मजदूरों का लिया जाने वाला था। 11 स्थान मुसलमानों को दिए गये थे। दूसरा सदन विधान सभा था (लेजिसलेटिव असेम्बली) जिसमें 51 सदस्य थे, इसमें से 14 नामजद करने थे। 9 जागीरदारों के प्रतिनिधि थे। तीन तीन स्थान व्यापारियों, स्त्रियों और मजदूरों को दिए गए थे और चार मुसलमानों के लिए थे। बाकी चुनाव से लाने थे। जनमत यह था कि लेजिसलेटिव असेम्बली महाराजा के आदमियों की सभा होगी। फिर भी प्रजामण्डल ने इस विधान को मान लिया और इसमें सहयोग देने का निश्चय किया। 15 मई 46 में पं. देवीशंकर तिवारी और एक वर्ष के बाद श्री दौलतमल भंडारी मन्त्री मण्डल में लिए गए। लेजिसलेटिव असेम्बली में प्रजा-मण्डल को तीन स्थान प्राप्त हुए और प्रतिनिधि सभा में 27 स्थान मिले। 27 मार्च, 47 को पुनः मन्त्री मण्डल बना जिसमें श्री हीरालाल शास्त्री प्रधान मन्त्री और पं. देवीशंकर तिवारी, श्री दौलतमल भंडारी, टीका राम पालीवाल, प्रजामंडल के मन्त्री बने। दो सामन्त वर्ग से मन्त्री लिये गये। वैसे यह सदन पवित्र आकांक्षा ही बनी रही, इससे जन समुदाय को कोई विशेष लाभ नहीं मिल सका। केवल मात्र ये प्रयास प्रजामण्डल की गति को मन्द करने मात्र का था फिर भी प्रजामण्डल की विजय उसकी लोक प्रियता का द्योतक थी और पंडित नेहरू के आदेश से आजाद मोर्चे के लगभग सभी सदस्य पुनः संगठित प्रजा-मण्डल में सम्मिलित हो गये। और जयपुर भारतीय संघ में शामिल हो गया।[58]

अब संगठित मण्डल के कार्यकर्त्ताओं ने एकजुट होकर वैधानिक सुधारों एवं उत्तरदायी शासन की मांगों को जारी रखा। इसका प्रभाव राज्य के जिलों में भी व्याप्त हो गया। श्री हीरालाल शास्त्री, श्री टीकाराम पालीवाल पं. देवीशंकर तिवारी सिद्धराज ढढ्ढा आदि कर्मठ कार्यकर्त्ता निजी शक्ति को लगाकर मंत्री मण्डल में रह कर राष्ट्रीय लक्ष्य की पूर्ति में लग गये और राज्य को कई सुधारों को लागू करने को बाध्य किया। इन लोगों ने कई बुलेटिनों को प्रकाशित कर जनमत को सजग बनाये रखा। इसका फल यह हुआ कि किसानों का भी लगान देने की विधि में 1946-47 तक कई सुधार हुए। सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि इस आन्दोलन में उग्रता प्रवेश नहीं कर सकी और साथ ही सरकार को भी प्रजामण्डल के प्रति कुछ उदारता का दृष्टिकोण अपनाना पड़ा।[59]

सीकर आन्दोलन :

लम्बे संघर्ष के बाद 1939 तक सीकर में कृषकों को कुछ रियायतें लगान तथा बेगार के सम्बन्ध में मिल चुकी थी। जिनका वर्णन कृषक आन्दोलन के अध्याय में किया गया

58-जयपुर न्यूज लेटर, भा.-i, iii, अप्रेल 2 1943, अक्टूबर 7, 1944; कान्फीडेन्शल फाइल नं. 10 पत्र व्यवहार प्रजामण्डल, 1946-48, अ.बी.

59-प्रजामण्डल जयपुर नं. 5 बुलेटिन, 1947-48, अ.बी ; जयपुर प्रजामण्डल नं. 2, 1939-46, अ.बी.; अखिल भारतीय लोक परिषद् फाइल नं. 7, 1947 नं. 14, 1946-48, अ.बी.; जयपुर रेविन्यू रेकार्ड नं. 14, 1944, नं. 15, 1947.

है। परन्तु ठिकानेदार फिर भी खनिज व जकात में अपना अधिकार मानते थे। इसके विरोध में कृषकों ने लगान देना बन्द कर दिया तो यहां के जागीरदारों ने उनको भूमि जोतने से रोका। इधर 1942 का आन्दोलन जयपुर में जोर पकड़ रहा था, इस पर सीकर क्षेत्र के किसान जयपुर प्रजामण्डल से मिल कर खातेदारी के मसले पर अड़ गये। तेजसर में जब इस सम्बन्ध में कृषक इकट्ठे हुए तो प्रजामण्डल के सहयोग से 3 दिसम्बर, 1945 को यह निश्चय किया गया कि जब तक खातेदारी के पट्टे नहीं दिये जायेंगे तब तक कोई किसान जागीरदारों या छोटे जागीरदारों को लगान नहीं देगा। यह विरोध भारत छोड़ो आन्दोलन के साथ-साथ चलता रहा और अन्त में जब 1947 में लोकप्रिय मन्त्रिमण्डल पं. हीरालाल शास्त्री के नेतृत्व में बना तो टीकाराम पालीवाल ने, जो माल के मन्त्री थे बन्दोबस्त करवाने और लगान में समानता लाने के आदेश शीघ्रता से अमल करने की व्यवस्था कर दी। 1942 से 1947 तक सीकर के कार्यकर्ता जिनमें श्री पन्नेसिंह, किशनसिंह, लादूराम, हरिसिंह, ईश्वरसिंह गोर्धसिंह, गोपालराम, पृथ्वीसिंह आदि प्रमुख थे, अपने अधिकारों के संघर्ष में विजयी हुए। उन्होंने जयपुर प्रजामण्डल के आन्दोलन को सहयोग देकर अपने क्षेत्र की कई समस्याओं को तथा सामाजिक सन्तुलन को स्थापित करने में अपनी अपूर्व भूमिका निभाई। लाग-बाग की इतिश्री होने से सीकर में शोषण की प्रक्रिया भी समाप्त हो गई।[60]

शेखावाटी और आंदोलन

शेखावटी में वैसे तो पैमाइश होकर हासिल वसूली की दरें निर्धारित कर दी थी, फिर भी माफी, उदकी और बधणर को जमीनों की न तो पैमाइश हुई थी और न दरों का निर्धारण ही होने पाया था। इस मसले को तय करने के लिए जयपुर राज्य ने कमिशनों को बिठाकर सुझाव मांगे पर छोटे जागीरदार कई लागतों और करों से मुक्ति के लिए आंदोलन करते रहे। जो कुछ लगान और लागतों में रियायतें 11 दिसम्बर 1942 को की गई वे इनको मान्य नहीं थी। इधर भारत छोड़ो आन्दोलन चल रहा था। भाग्यवश तपे हुए नेता श्री नेतरामसिंह और श्री हरलालसिंह जेल से मुक्त होकर झुंझुनूं पहुंचे। इन नेताओं का नगर में बड़ा स्वागत हुआ। उन्होंने इस क्षेत्र में दौरा कर कृषकों में नैतिक बल को बढ़ावा दिया और उन्हें संघर्ष के लिए तैयार किया। उन्होंने अब सामन्ती शक्ति को उखाड़ कर फेंकने का निश्चय झोंपड़ियों तक पहुंचाया। राज्य भी अपने नृशंस अत्याचार पर उतर आई। इस क्षेत्र में जगह-जगह लाठी चार्ज हुए, पर जनता अपने अधिकार की मांग और जागीर प्रथा के उन्मूलन पर डटी रही। प्रजामण्डल और शेखावाटी के नेता एकजुट होकर संघर्ष करते रहे। 1942 से 1945 तक चलने वाले व्याप्त आन्दोलन और कृषक आंदोलन की कड़ी इस प्रकार एक रूप हो चुकी थी कि आखिर सरकार को झुकना पड़ा। लाग-बाग समाप्त कर दी गई और पैमाइश के अनुसार सम्पूर्ण क्षेत्र में लगान की दरें और

60– जयपुर रेविन्यू रेकार्ड आर-6 जागीर, फाइल नं. 3748, 1939, अ.ज.; डिपोसिटेड रेकार्ड्स, रेवन्यू, लिस्ट नं. 4, फाइल नं. 48/एन डब्ल्यू. आर.. सी.बी. 1945, अ.जा.- डिपोसिटेड रेकार्ड्स, फा. नं. 6/एन.डब्ल्यू./सी.बी. अ.ज.; डा. पेमाराम, दा एग्रेरियन मूवमेंट इन राजस्थान पृ. 169.

चराई की व्यवस्था समान रूप से करनी पड़ी। 1947 के उत्तरदायी शासन में पं. हीरालाल शास्त्री, मुख्यमन्त्री और टीकाराम पालीवाल, वित्त मंत्री ने रही सही समस्याओं को हल कर शेखावाटी में शांति स्थापित की।[61]

कोटा

8 अगस्त 1942 को बम्बई में कांग्रेस अधिवेशन में "करो या मरो" प्रस्ताव स्वीकृत होने के उपरान्त रात्रि में महात्मा गांधी एवं अन्य प्रमुख नेताओं की गिरफ्तारियां हो गई। साथ ही देश भर में क्रांति की ज्वालामुखी फूट पड़ी। जनता ने स्थान-स्थान पर अंग्रेजी शासन के सत्ता केन्द्रों पर हमला बोलना शुरू कर दिया।

कोटा शहर में भी ता. 9 अगस्त को हर्बर्ट (राजकीय महाविद्यालय) एवं सिटी स्कूल के विद्यार्थियों ने महात्मा गांधी आदि नेताओं की गिरफ्तारी के विरोध में हड़ताल कर दी और वे जुलूस बनाकर अंग्रेजों भारत छोड़ो "करो या मरो" जैसे क्रांतिकारी नारे लगाते हुए शहर की प्रमुख सड़कों पर निकल पड़े। जुलूस में शहर के छोटे बड़े तमाम स्कूल के छात्र-छात्राओं के अलावा प्रजा मण्डल के कार्यकर्त्ता और जनता भी शामिल होती गई। जुलूस विशाल होते हुए भी भव्य एवं व्यवस्थित था तथा कोटा के राजनैतिक इतिहास में अभूतपूर्व था। यह जुलूस सारे शहर का चक्कर लगाता हुआ एक स्थान पर एकत्रित हुआ। जहां इसको छात्र नेताओं के अलावा कोटा राज्य प्रजामण्डल के नेता सर्व श्री शंभूदयाल सक्सेना, श्री बेनी माधव शर्मा वकील आदि ने भी सम्बोधित किया। निश्चय हुआ कि आगामी एक सप्ताह तक इसी तरह प्रदर्शन कार्यक्रम चालू रखा जावे।[62]

13 अगस्त तक प्रदर्शन का यह कार्यक्रम प्रतिदिन प्रगति के साथ नियमित रूप से चलता रहा। नित्य प्रति छात्र-छात्रायें व जनता हजारों की संख्या में यादगार (उम्मेद क्लब) के सामने वाले मैदान में प्रातः इकट्ठे होते थे। चार-चार की पंक्तियों में जुलूस बनाकर क्रान्तिकारी नारे लगाते हुए सारे शहर का चक्कर काट कर बाग में जाकर छात्र सभा में बदल जाते थे। इस कार्यक्रम में जनता का सहयोग भी उत्तरोतर बढ़ता जा रहा था। उसकी ओर से जुलूस में शामिल छात्र-छात्राओं को कभी फल, कभी मेवे व कभी हलवे का नाश्ता कराया जाता था। प्रदर्शन के इस कार्यक्रम के संयोजन में छात्र नेताओं के अलावा श्री कृष्ण गोपाल गुप्ता और छात्रा कुमारी कुसुम गुप्ता का सराहनीय सहयोग मिला।[63]

---

61. राज्य के आर्डर नं. 397–11 दिसम्बर, 1942, अ. ज; कोन्फीडेन्शल डी. ओ. नं. 86, 13 फरवरी, 1943, अ ज,; जयपुर रेवेन्यू रेकार्ड, फा. नं. 5, 1943; अ. ज.; जयपुर गजट, 12 जनवरी, 1944, 26 अप्रेल, 1945, 21 जून, 1945, 1 जनवरी 1946, 1 फरवरी, 1946, 27 नवम्बर, 1946; जयपुर प्रजामण्डल, फा नं. 15, 1947, अ. ज; डा पेमाराम, द एग्रेरियन मूवमेन्ट इन राजस्थान, पृ. 194–205.
62. प्रजामण्डल पत्रिका नं० 23, अगस्त, 1942
63. प्रजामण्डल पत्रिका नं० 23, अगस्त, 1942, हीरालाल जैन का हाड़ौती दर्शन में प्रकाशित लेख।

गिरफ्तारी व लाठी चार्ज :

कोटा रियासत की सरकार ने 13 अगस्त की दोपहर तक इस कार्यक्रम में किसी प्रकार की छेड़छाड़ नहीं की। वह मूक दर्शक बनी रही। लेकिन पोलिटिकल ऐजेन्ट के 14 अगस्त को कोटा पहुंचने के कार्यक्रम की सूचना मिलने पर वह घबरायी। अधिकारियों ने प्रजा मण्डल नेता सर्वश्री शम्भूदयाल सक्सेना एवं श्री बेनी माधव शर्मा वकील को 13 अगस्त की शाम को 4 बजे बुलाकर 14 को प्रदर्शन का कार्यक्रम स्थगित रखने का अनुरोध किया। उनके द्वारा ऐसा करने से इन्कार करने पर उनको यह मानकर गिरफ्तार कर लिया की उनकी गिरफ्तारी से प्रदर्शन का कार्यक्रम स्वतः ही ठप्प हो जायेगा। लेकिन बाद की घटनाओं से सिद्ध हो गया कि यह उनकी गलत धारणा थी।[64]

इन दोनों नेताओं की गिरफ्तारी की खबर बिजली की तरह शहर में फैल गयी और सैकड़ों की संख्या में लोग कोतवाली के सामने इकट्ठे हो गये। वे नेताओं को जेल के लिये बाकायदा विदा करने हेतु बाहर लाने की मांग करने लगे। पुलिस अधिकारियों द्वारा ध्यान न दिये जाने पर लोग कोतवाली में घुसने का प्रयत्न करने लगे और श्री जोरावरसिंह अन्दर घुस भी गये। पुलिस ने उन्हें गिरफ्तार कर लिया।[65]

तीनों नेताओं के तिलक करने की जनता की मांग जोर पकड़ती गई। पुलिस अधिकारियों ने उसे पूरा करने के बजाय हक्का-बक्का होकर बिना किसी चेतावनी के लोगों को तितर बितर करने के लिए घुड़सवार पुलिस को लाठी चार्ज करने का हुकम दे दिया। इससे पचास से अधिक लोगों के चोटें आई। इस आन्दोलन मे सर्वश्री विष्णुप्रसाद शर्मा, श्री गोपालदत्त शान्त और छात्र नेता श्री नन्दलाल सैंडों के नाम उल्लेखनीय हैं। किसी ने श्री बेनी माधव शर्मा की धर्मपत्नी को जो कोतवाली के फाटक पर खड़ी थी नाली में धक्का देकर उनके गले का सोने का लोकेट छीन लिया।[66]

कुछ समय बाद ही प्रजामण्डल के प्रमुख नेता पं. अभिन्न हरि जो बम्बई से कांग्रेस अधिवेशन में भाग लेकर कोटा लौटे ही थे, पत्रकार के रूप में घटना की जानकारी लेने कोतवाली में गये तो उन्हें भी गिरफ्तार कर लिया गया। मध्य रात्रि के बाद गिरफ्तार चारों नेताओं को चुपचाप कोतवाली के पिछले दरवाजे से निकाल कर सेन्ट्रल जेल में पहुंचा दिया गया।[67]

जनता ने मोर्चा लगाया :

13 अगस्त की शाम को ही दफा 144 लगाकर सरकार ने सारे शहर में जुलूस, प्रदर्शन, सभा व पांच व्यक्तियों के इकट्ठा होने पर पाबन्दी लगा दी थी।[68]

64–पाक्षिक रिपोर्ट, नवम्बर 1942, कोटा, अ.उ.

65–प्रजामण्डल पत्रिका नं. 23, अगस्त 1942, हीरालाल जैन का हाड़ोती दर्शन में प्रकाशित लेख।

66– —वही—

67–प्रजामण्डल पत्रिका, नं. 23, अगस्त, 1942.

68–कोटा राज्य पत्र अगस्त 1942 (विशेषांक)

दूसरे दिन 14 अगस्त को प्रदर्शन का कार्यक्रम चालू रखना था। प्रकट तो यह किया गया कि नित्य की भांति प्रायः यादगार के सामने से ही जूलूस शुरू होगा, लेकिन अन्दर ही अन्दर छात्रों को बृज विलास बाग में इकट्ठा होने की हिदायत भिजवादी गई। सैंकड़ों तिरंगे झण्डे रातों रात तैयार कराये गये और सबेरे बृज विलास बाग से 4-4 के जत्थे बनाकर थोड़े-थोड़े फासले पर शहर में भेजना शुरू कर दिया गया। पुलिस व सी. आई. डी. वाले यादगार के सामने छात्रों की इकट्ठा होने की प्रतीक्षा करते रहे और इधर कोतवाली के सामने से 4-4 जत्थों का प्रदर्शन शुरू हो गया। यह क्रम निरन्तर चलता रहा जिसे देखकर जनता भी कोतवाली के सामने इकट्ठी होने लगी। नौ दस बजे तक तो वहां सैंकड़ों की संख्या में लोग इकट्ठे हो गये और नारे लगाने लगे। इससे चिढ़कर किसी पुलिस वाले (संभवतः सी. आई. मिर्जा मुन्नवर बेग) ने कोतवाली की छत पर से सामने स्कूल की तरफ भीड़ पर बन्दूक चला दी जिसके छर्रे मास्टर श्यामनारायण सक्सेना, श्री बुद्धिप्रकाश गुप्ता (स्वर्गीय) आदि की टांगो में घुस गये।[69]

पुलिस कोतवाली में बन्दी बनी :

बन्दूक चली कि जनता की क्रोधाग्नि भड़क उठी। उसने कोतवाली पर पत्थरों की बौछार शुरू कर दी, जिसके फलस्वरूप पुलिस को प्राण बचाने के लिये कोतवाली के पीछे के हिस्से में भागकर शरण लेनी पड़ी। जनता ने ऐलान कर दिया कि अब यदि एक पुलिस वाला बाहर के हिस्से में आया। किसी ने हवा में भी फायर करने की मूर्खता की तो कोतवाली में आग लगाकर सबको जिन्दा जला दिया जायेगा। मिट्टी के तेल में टाट भिगोकर गली में खुलने वाली सब खिड़कियों में रख दिये गये। एक खिड़की में तो आग लगा भी दी थी जो फिर बुझायी गई। इसके बाद तो पुलिस कोतवाली के अन्दर के हिस्से में दुबक गई, कोतवाली पर तिरंगा झण्डा लहरा रहा था।[70]

शहर पर जनता का कब्जा :

कोतवाली में बंद पुलिस को छुड़ाने के लिये बाहर से कोई सैनिक दस्ता आने की सम्भावना से भी जनता बेखबर नहीं थी। उसने उसकी रोक का इन्तजाम कर लिया था। शहरपनाह के सब फाटक बन्द करके उस पर जनता के विश्वस्त आदमियों का पहरा बैठा दिया था। केवल मित्र लोगों को ही खिड़की के रास्ते से अन्दर आने दिया जाता था। शहर की तरफ आने वाली चारों तरफ की सड़कों में बड़े बड़े गड्ढे खोद दिये थे ताकि मोटर और ट्रक नहीं आ सके। यही नहीं फाटकों के ऊपर कोट पर काफी तादाद में पत्थर इकट्ठे कर लिये थे। 14 व 15 अगस्त को कोतवाली का घेरा चलता रहा और अन्य कोई उल्लेखनीय घटना नहीं हुई। 16 को देवली की छावनी से क्राउन रिजर्व पुलिस के आने की चर्चा फैली तो आन्दोलन कारी अधिक सतर्क हो गये। कंवरलाल जेलिया, प्रभुदयाल, बद्री प्रसाद, भैरवलाल काला बादल, विमल कुमार, आदि गिरफ्तार

69-हीरालाल जैन का हाड़ौती दर्शन में प्रकाशित लेख के आधार पर।

70-प्रजामण्डल पत्रिका नं. 23, अगस्त, 1942

किये गये। यह देख कर रियासत के तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री हीरालाल गोसालिया एवं इन्सपेक्टर जनरल पुलिस सरदार संत सिंह की इस जन आन्दोलन को निममंता से कुचलने की चाहे जो योजना रही हो, पर कोटा के महाराव भीमसिंह और उनके स्थानीय सलाहकार नहीं चाहते थे कि खून खराबे द्वारा स्थिति और उलझे। अतः महाराव भीमसिंह ने गोसालिया को अपनी मनमानी करने से रोक दिया तथा 16 अगस्त को पलायथा के जनरल आफीसर ओंकारसिंह जी के मारफत जन प्रतिनिधियों से सममझौते की बात चलायी।[71]

समझौता :

16 अगस्त को दोपहर में दो बजे पलायथा वालों की हवेली पर आपजी के साथ समझौते की बात हुई। जनता की मांग थी-(1) गोसालिया व सन्तसिंह को हटाया जावे। (2) अंग्रेजी राज से कोई फौज या पुलिस नहीं बुलाई जाये। (3) गिरफ्तार नेताओं को छोड़ दिया जाये और (4) रियासत में शीघ्र उत्तरदायी शासन स्थापित किया जाये। आपजी ने स्पष्ट आश्वासन दिया कि अंग्रेजी राज से कोई फौज या पुलिस नहीं बुलाई जायेगी तथा स्थिति सामान्य होते ही गिरफ्तार नेताओं को छोड़ दिया जायेगा। बाकी दो मांगे भी पूरी कर दी जाएगी पर इसमें कुछ समय लग सकता है। जन प्रतिनिधियों को यह समझौता मंजूर था परन्तु लिखित में कुछ भी नहीं था इसलिये उन्होंने आपजी से इस बारे में जनता के बीच आकर घोषणा करने की शर्त रखी। अतएव 16 अगस्त को ही शाम के 4 बजे गोशाला के पीछे पुरानी धान मण्डल में प्रजामण्डल की ओर से आयोजित जन सभा में जनता की मांगों के बारे में श्री आपजी ओंकारसिंह ने कोटा दरबार की तरफ से दिये गये आश्वासन दोहराये।[72]

अगले कदम की तैयारी :

उन्हीं दिनों श्री नाथूलाल जैन वीर जो उन दिनों इन्दौर में पढ़ते थे, कोटा आकर आन्दोलन के संचालन कार्य में सक्रियता के साथ जुड़ गये थे। 18 अगस्त को मांगरोल वाले सेठ मोतीलाल जी जैन ने जो कोटा राज्य प्रजामण्डल के पदाधिकारी थे, कोतवाली के सामने आम सभा करके आन्दोलन के कारण प्रजामण्डल का वर्तमान विधान स्थगित करने की घोषणा की और कार्यकर्ताओं को अपने अपने क्षेत्र में आन्दोलन की तैयारी में जुट जाने का निर्देश दिया और स्वयं भी इलाके में काम करने के लिए दूसरे दिन मांगरोल चले गये। 24 अगस्त को चारों गिरफ्तार नेताओं को जेल से छोड़ दिया गया।[73]

71—प्रजामण्डल पत्रिका नं. 23 अगस्त, 1942; कोटा राज-पत्र (विशेषांक) अगस्त, 1942

72—पाक्षिक रिपोर्ट, कोटा, अगस्त, 1942; कान्फीडेन्शल रेकार्ड, कोटा, हाड़ोती प्रजा-मण्डल, फा. नं. 9-11 12, 1942.

73— कोटा राजपत्र (विशेषांक,) अगस्त, 1942

कोटा में संविधान बनाया :

मार्च 1941 के आरम्भ में राजपूताने का रेजीमेन्ट सर आर्थर लोदियन कोटा आया। वह सम्राट की ओर से महाराव के उतराधिकार को मान्यता देने के लिए आया था और साथ ही शाही खरीता लाया था। खरीता प्रस्तुत करते समय उसने कहा था कि अब समय आ गया है कि भारतीय रियासतें रिप-वान-विंकल की भांति लम्बी नींद नहीं लेती रहे। उन्नति की लहर जो सर्वत्र फैल रही है उसकी उपेक्षा न करें। अब ऐसा समय है कि कोटा सरकार प्रशासनिक ढांचे में ऐसी गुंजायश रखे कि राज्य प्रशासन प्रजा की आवश्यकता के प्रति जागरूक रहा करे और लोगों की आवश्यकताओं की पूर्ति करें।[74]

उस समय तो आर्थर की बात प्रासंगिक बनी रही परन्तु इस पर अमल पीछे हुआ। जब जन आंदोलन चल ही रहा था और कार्यकर्ता गिरफ्तार किये जा रहे थे तो मार्च 1946 में कोटा सरकार ने विवश होकर प्रगट किया कि वैधानिक सुधारों पर अब पूरा ध्यान देकर एक ऐसा सदन बनाया जावेगा जिसको कानून बनाने का, प्रश्न पूछने का, और अपनी सीमा के अन्दर प्रशासनिक सुधार करने व उन पर बहस करने का अधिकार हो। महाराव ने विधान बनाने के लिये श्री हिरण्या को नियुक्त किया। यह मैसूर राज्य सेवा में उच्च अधिकारी थे। अब यह सेवा निवृत्त हो चुके थे परन्तु इनको वैधानिक सुधारों का अच्छा अनुभव था। जयपुर राज्य में भी उन्होंने विधान निर्माण का कार्य किया था। नरेन्द्र मंडल के चांसलर ने भी नरेशों को सलाह दी थी कि राज्य के प्रशासन में जनता का सहयोग प्राप्त करना चाहिये। इसके लिए लोक सभाएं बनाई जावें जिनमें निर्वाचित सदस्यों का बहुमत हो। यदि हम सुरक्षा और शक्ति चाहते हैं तो यह अपनी प्रजा से ही प्राप्त की जा सकती है। अतः विधान बनाने के लिए एक समिति बनाई गई इसने विधान तैयार किया जिसकी सिफारिशें इस प्रकार थी।[75]

(1) प्रशासन का संचालन करने के लिए प्रजा के मतदान द्वारा प्रतिनिधि निर्वाचित किये जावें। इनको कार्यकारिणी के कार्यों की आलोचना करने का अधिकार हो।

(2) कोटा की विधान सभा में 51 निर्वाचित सदस्य हों। इसके कार्य में रुकावटें डालने वाला कोई सरकारी दल न हो। सरकारी कर्मचारी विधान सभा के अधिवेशन में उपस्थित रह सकते हैं और सरकार की ओर से उत्तर दे सकते हैं और किसी विषय को समझा सकते हैं परन्तु उनको मतदान करने का अधिकार नहीं होगा। इन 15 सदस्यों में से 33 इलाकों से किये जावें। 20,000 जनता की ओर से एक प्रतिनिधि निर्वाचित किया जावे। नगरों में 5000 और 10000 के बीच में लोग एक सदस्य प्रतिनिधि निर्वाचित करें एवं कोटा, बारां, मांगरोल और सांगोद तथा रामगंज मंडी से 10 सदस्य हों और 8 सदस्य स्त्रियों, श्रमजीवियों, व्यापारियों और जागीरदारों द्वारा निर्वाचित करवायें जावें।

74– पाक्षिक रिपोर्ट कोटा, मार्च 1941, अ.बी.; कोटा प्रजामण्डल फाइल नं. 1, 1931–49.

75. पाक्षिक रिपोर्ट कोटा, दिसम्बर, 1946.

(3) 1914 की जनगणना के अनुसार कोटा राज्य में मुसलमानों की संख्या 7 प्रतिशत थी। दोनों जातियों में मेल मिलाप को और भी दृढ़ करने के लिये इनके प्रतिनिधित्व को कुछ बढ़ा दिया जावे। इनको 4 जगह प्राप्त करने से भी कम अधिकार हैं, परन्तु अब इनको 7 जगह दे दी जावे। प्रत्येक 21 वर्षीय मनुष्य को मतदान का अधिकार होना चाहिये परन्तु उसके मस्तिष्क में कोई बीमारी न हो। मतदाता के लिये शिक्षा या सम्पत्ति का अधिकार का आधार नहीं मानना चाहिये। मत मांगने वाले के बीच कोई तीसरा व्यक्ति आवश्यक नहीं है।

विधान सभा के अधिकार :

विधान सभा इस राज्य में सर्वोच्च संस्था मानी जाय। राज्य के सुशासन के लिये अच्छे कानून और नियम बनाने का इस सभा को अधिकार होगा। रियासत की आय पर इसका पूर्ण नियंत्रण होगा। इसका कार्यकाल तीन वर्ष का होगा। वर्ष में दो बार इसके अधिवेशन होंगे। सभा के अन्दर सदस्यों को पूर्ण वाक् स्वातन्त्र्य होगा और अपना मत प्रकट करने के लिये उनको पूर्ण स्वतन्त्रता होगी। इसके लिये उन पर कोई मुकदमा नहीं चलाया जावेगा। यह स्वतन्त्रता इस सभा की कार्यवाही प्रकाशित करने वालों के लिए भी होगी। परन्तु इस सभा में महाराव साहिब के अधिकारों या विशेषाधिकारों की आलोचना नहीं की जायेगी। यही बात राज कुटुम्ब और विधान द्वारा निश्चित की हुई महाराव की खर्च राशि पर लागू होगी। महाराव का सम्राट के साथ सम्बन्ध भी इसमें चर्चा का विषय नहीं बनेगा। राज्य का प्रशासन कार्य इस सभा की ओर से सरकार करेगी, जिसमें दीवान के साथ अधिक से अधिक चार मंत्री होंगे। ये मंत्री महाराव साहिब द्वारा नामांकित होंगे। सरकार विधान सभा के प्रति उत्तरदायी होगी। उसके विरुद्ध जब अविश्वास प्रस्ताव पास हो जावेगा तो प्रधानमंत्री और चारों मंत्री अपना पद त्याग देंगे।

न्यायालय और कार्यकारिणी अलग अलग होनी चाहिये। हाई कोर्ट के जजों की नियुक्ति का अधिकार महाराव साहिब को होगा। विधान की अंतिम व्याख्या करने का अधिकार हाई कोर्ट को होगा। न्याय की इकाइयों में पंचायतों को बनाना चाहिये। राज्य कर्मचारियों की नियुक्ति के लिए एक लोक सेवा आयोग होना चाहिये। कर्मचारियों को उनकी नियुक्ति से पहले प्रशिक्षण देना चाहिये।

लोकल सेल्फ गवर्नमेंट :

रामगंज मंडी, मांगरोल, सांगोद, अकलेरा और छीपा बड़ोद में तुरन्त नगर परिषदें स्थापित कर दी जावें। कोटा और बारां की परिषदों को अधिक अधिकार दिये जावें। उनको प्राथमिक शिक्षा, सफाई, चिकित्सा और खेल के मैदान की व्यवस्था करने का अधिकार हो।

पंचायत :

कोटा राज्य की जनसंख्या 7 लाख 77 हजार 398 है। इनमें से अधिकांश लोग गांव में रहते हैं। गांव की जनसंख्या 2243 है। ऐसे कस्बे केवल 5 हैं जहां की आबादी 2

हजार के ऊपर है। पंचायत के निर्माण के विषय में कोटा राज्य की विधान निर्मात्री सभा ने लिखा था कि प्रत्येक गांव के लिये या गांव के समूह के लिए पंचायत का निर्माण बहुत आवश्यक है जिनके काम में हस्तक्षेप नहीं होना चाहिये। हां जब उनको सहायता की, निर्देश की या द्रव्य की आवश्यकता हो तो उनकी सहायता की जाय।

निजी खर्च :

महाराव साहिब का निजी खर्च राज्य की आय का सोलहवां भाग से अधिक नहीं होना चाहिये इसमें उनका समस्त कुटुम्ब भी सम्मिलित है। मंत्री का वेतन रु. 500/- निश्चित हो जाना चाहिये।

लोकप्रिय मंत्री :

स्टेट काउन्सिल में लोकप्रिय मंत्री सम्मिलित करके कार्यकारिणी का स्वरूप बदल देना चाहिये। यह एक सरकार की अन्तरिम केबिनेट होगी। इस विधान के उद्घाटन की घोषणा में विलम्ब नहीं होना चाहिये। महाराव साहिब का आगामी जन्मदिन इस कार्य के लिये अत्यन्त शुभ होगा। केबिनेट मिशन भारत में आ पहुंचा है और भारत के लिए पूर्ण स्वातन्त्र्य का मसला उसके समक्ष है। इसकी योजना बनाई जा रही है। स्वतंत्र भारत का विधान संघीय विधान होगा। हमारी सम्मति में कोटा को इस संघ में सम्मिलित हो जाना चाहिये। संघीय विधान सभा में कोटा के निर्वाचित प्रतिनिधि सम्मिलित होने चाहिये।

परन्तु ये संविधान एक दिखावा था जिसे पूरी मान्यता प्राप्त नहीं हुई, क्योंकि इसमें लोकप्रिय मन्त्रियों के तथा चुने हुए सदस्यों के अधिकार सीमित थे वैसे सभी अधिकार महाराव के व्यक्तित्व में निहित थे। इस विधान को नमूने के लिए इसलिए प्रस्तुत किया गया कि अन्य स्थानों में भी जो प्रयोग इस प्रकार के लिये गये थे वे भी लगभग इसके अनुरूप थे जो निरर्थक सिद्ध हुए।

वैसे कोटा महाराव ने 1948 में पं. अभिन्नहरि के नेतृत्व में लोकप्रिय सरकार बनाने का निर्णय लिया था, परन्तु संयुक्त राजस्थान संघ की प्रक्रिया आरंभ हो जाने से यह क्रियान्वित न हो सका।

झालावाड़

उत्तरदायी शासन की मांग :

अगस्त 1942 में भारत छोड़ो आंदोलन शुरु हुआ तो उससे प्रभावित होकर झालावाड़ में श्री रतनलाल शर्मा हिन्दुस्तानी के नेतृत्व में बड़े प्रदर्शन हुए और उत्तरदायी शासन की जोरदार मांग की गई। राजराणा ने आश्वासन दिया कि इस दिशा में शीघ्र ही कदम उठाया जाएगा।[76]

76-जे.आर.पी. फाइल नं 10

झालावाड़ दरबार ने 1942 में नगरपालिका के लिये कानून बनाया, जिसके अनुसार प्रत्येक नगर परिषद् में निर्वाचित सदस्य लिये जाने का प्रावधान था। प्रधान और उप प्रधान उन्हीं के द्वारा निर्वाचित सदस्य होते थे। परन्तु इसको पूर्ण रूप से कार्यान्वित नहीं किया गया जिससे राज्य में असन्तोष फैला और उसको लेकर यहां के कार्यकर्ता 1942 के भारतीय आंदोलन के स्वर में मिल गये। सरकार ने गिरफ्तारियों से इसे कुचलना चाहा पर इसमें उसे सफलता नहीं मिली।[77]

1944 में श्री मांगीलाल भव्य ने जो एक अध्यापक थे, अन्य राज्यों के प्रजामण्डलों की कार्यवाहियों से प्रेरित होकर राज राणा से प्रार्थना की कि वे अपने राज्य में वैधानिक सुधार जारी करें। श्री मांगीलाल ने लोक सेवक नामक पत्र के सम्पादक को एक पत्र लिखा जिसमें कहा गया कि झालावाड़ में अत्याधिक भूमिकर के कारण कृषक बड़े दुखी हैं। इन कार्यवाहियों के कारण श्री मांगीलाल को अपने पद से त्याग पत्र देना पड़ा, परन्तु फिर भी वह अपने ध्येय से विचलित नहीं हुए। श्री मांगीलाल के उदाहरण से उत्साहित होकर श्री कन्हैयालाल मित्तल, श्री मदनगोपाल, श्री रामविलास और अन्य अनेक व्यक्तियों ने झालावाड़ राज्य में वैधानिक सुधारों की मांग प्रस्तुत की। इस आंदोलन के दबाव से और राजस्थान के अन्य राज्यों में जारी किए सुधारों से राजराणा को भी 1946 में कुछ आगे बढ़ना पड़ा। राजराणा ने एक समिति विधान बनाने के लिए नियुक्त की। इस समिति में चार सरकारी और 32 गैर सरकारी व्यक्ति थे।[78]

इनमें जागीरदारों, माफीदारों और सेठ साहूकारों का बाहुल्य था। इसलिये जनता ने इसका विरोध किया। तब सरकार ने दमन शुरू किया और सभाएं बन्द कर दीं। इससे लोगों में और अधिक चेतना आई और श्री मांगीलाल भव्य के प्रयत्नों से 25 नवम्बर, 1946 को प्रजा मण्डल की स्थापना हो गई। मांगीलाल से सहयोग करने वाले श्री मदनगोपाल, श्री कन्हैयालाल मित्तल, श्री मकबूल आलम और श्री रतनलाल थे। श्री मांगीलाल भव्य प्रजा मण्डल के प्रधान और श्री मकबूल आलम उपप्रधान नियुक्त हुए। प्रजा मण्डल के सदस्यों ने सर्व प्रथम कृषकों का पक्ष लिया और फिर बेगार बन्द करने की मांग की। प्रजामण्डल ने भ्रष्टाचार और राशनिंग के विरुद्ध भी आवाज उठाई। उस समय राज्य किसानों से 8/- रु. प्रति मन अन्न खरीद कर 12/- रु. प्रतिमन बेचा करता था। इसके विरुद्ध आंदोलन से प्रजामण्डल जनता में बड़ा लोकप्रिय हो गया। इससे चिढ़कर पुलिस प्रजामण्डल के सदस्यों को तंग करने लगी। राज्य ने बाहर से आने वाले समाचार पत्रों का प्रवेश बन्द कर दिया। प्रजामण्डल का साइन बोर्ड हटा दिया और उसके सदस्यों को आदेश दिया गया कि वे राजनैतिक हलचल न करें। इन आदेशों की परवाह न कर मई, 1947 में प्रजामण्डल की मंगलपुरा में एक बड़ी सभा हुई जिसमें उत्तरदायी शासन की मांग की गई। इसको लेकर एक शिष्ट मण्डल राजराणा से मिला और उन्हें निवेदन किया कि एक केबिनेट बनाई जाय जो लोक

77—झालावाड़ म्यूनिसपल एक्ट 1942, सेक्सन 9 (1)

78— जे. आर. पी. फाईल नं 10

प्रतिनिधियों के प्रति उत्तरदायी हो। तब अक्टूबर 1947 में उतरदायी शासन की एक योजना बनाई गई। इसके अनुसार स्वयं महाराजा हरिशचन्द्र प्रधानमन्त्री, तथा श्री कन्हैयालाल और मांगीलाल भव्य मन्त्री बने। इस मन्त्री मण्डल ने राज्य पंचायतों, निजामत की पंचायतों और देहाती पंचायतों का निर्वाचन कराने का भी निर्णय लिया। इस प्रकार जो मण्डल बना वह राज्य के विलीनीकरण तक चलता रहा।[79]

बून्दी

बून्दी में श्री नित्यानंद मेहता तथा श्री ऋषिदत्त मेहता ने अपने साहस और त्याग से प्रजामण्डल बून्दी को अच्छी गति दी थी जिसके फलस्वरूप बरड़ के (1922–1936) कृषक आन्दोलन में नई जान पैदा हो गई थी। बून्दी की प्रजा को इस अवसर पर श्री गोपाल सुतानिया, श्री जयलाल झंडेल और श्री गोपाल कोटिया का भी कुशल नेतृत्व मिला था। इसी तरह लाखेरी के (1939) चराई सम्बन्धी आन्दोलन में इनकी भूमिका प्रशंसनीय थी।[80]

जब 'भारत छोड़ो" और "करो मरो" 1942 का आन्दोलन आरम्भ हुआ तो श्री नित्यानन्द और उनका पुत्र श्री ऋषिदत्त ने पुनः इस आन्दोलन को गति दी। जगह-जगह सभाएं एवम् भाषण तथा धरनों का आयोजन किया गया जिसमें हजारों की संख्या में लोग इनका सहयोग देते थे। श्री नित्यानन्द ने तो इस अवसर पर अपनी जागीर सरकार को लौटा कर एक अपूर्व त्याग का उदाहरण प्रस्तुत किया। आन्दोलन को दबाने के लिए दोनों पिता-पुत्र अपने कुछ साथियों के साथ गिरफ्तार किये गये और 1944 तक इन्हें जेल की यातना भोगनी पड़ी। जब इन्हें छोड़ा गया तो बून्दी प्रवेश इन लोगों के लिए निषिद्ध कर दिया गया। कुछ समय के पश्चात् बून्दी सरकार ने प्रवेश बन्दी की आज्ञा वापस ले ली।[81]

उतरदायी शासन और आंदोलन :

बून्दी आकर श्री ऋषिदत्त मेहता ने बून्दी राज्य लोक परिषद को 9 जुलाई 1944 को स्थापित किया। इस संस्था के अध्यक्ष श्री हरिमोहन माथुर और मंत्री पं. बृजसुन्दर शर्मा थे। इसके द्वारा उत्तरदायी शासन की मांग की गई। इस आन्दोलन के दौरान एक हृदय

79–प्रजामण्डल फा. नं. 1–1946, भाषण सम्बन्धी, अ. बी.;
प्रजामण्डल फा. नं. 2 झालावाड़ स्टेट पंचायत, 1947, अ. बी.;
प्रजामण्डल नं. 4 झालावाड़ राज प्रजामण्डल व लोक परिषद, अ. बी.;
झालावाड़ पुस्तिका नं. 13 (1) 1936-47, अ. बी.

80–बून्दी इंगलिश रेकार्ड, फा. न. 252, II, 1921-22, अ. बी.;
बून्दी रेकार्ड फा. न. 514, 1926–27, अ. बी.;
कान्फीडेन्शल फाइल सी. नं. 23, बून्दी, 1935–36 अ. बी.

81. बूंदी रेकार्ड फा. नं. 53/ 40-41, अ. बी.;
,, फा. नं. 243, 1942–43, अ. बी.;
कान्फीडेन्शल फाईल सी. नं. 47, 1942–43, अ. बी.

विदारक घटना घटी। सन् 1945 में बून्दी में एक सभा हुई और बडे जुलूस का आयोजन किया गया। इसमें श्री ऋषिदत्त मेहता, श्री बृजसुन्दर शर्मा, श्री रंगलाल अग्रवाल, श्री रामचन्द्र सक्सेना और श्री भंवरलाल शर्मा बड़े उत्साह के साथ सम्मिलित हुए। यह जुलूस बून्दी के बाहर एक सड़क पर होकर जा रहा था जिसे पुलिस ने रोका। लेकिन जब लोग नहीं रुके तो पुलिस ने उन पर गोलियां चलाई। उसी समय वकील रामकल्याण किसी कार्यवश दूसरे गांव जा रहा था। पुलिस की कार्यवाही देखकर उसको भी बड़ा आवेश आया कि पुलिस के रोकने से न रुक कर उसी सड़क पर जाने लगा। पुलिस ने तत्क्षण उसके एक गोली लगाई और वह वहीं मारा गया। जिस मार्ग पर उसकी मृत्यु हुई उसका नाम अब शहीद रामकल्याण मार्ग है। और वहीं उसके नाम का शिला लेख लगा हुआ है।[82]

इस आन्दोलन की शक्ति को देख कर बून्दी नरेश बहादुरसिंह ने लोक परिषद की कुछ मांगे स्वीकार कर ली और उत्तरदायी शासन की घोषणा कर दी। विधान बनाने के लिये भी एक कमेटी का निर्माण किया जिसमें श्री ऋषिदत्त मेहता, श्री बृज सुन्दर शर्मा, श्री मोतीलाल आदि 7 लोक परिषदी सदस्यों का बहुमत था। उन्होंने उत्तरदायी शासन का विधान बनाकर बून्दी के रावराजा की स्वीकृति के लिये पेश किया। बून्दी का दीवान राबर्ट्सन पक्का साम्राज्यवादी था। वह नहीं चाहता था कि उत्तरदायी शासन की मांग को किसी भी अंश में सहन किया जाए। परन्तु प्रजा मण्डल की मांग की भी आसानी से उपेक्षा नहीं की जा सकती थी। इसलिये उसने मन थाम कर इस मांग का विरोध नहीं किया। महाराव ने विधान को लागू करने की अपनी सहमति दे दी और बहुत शीघ्र ही यह विधान जारी हो जाता परन्तु राजनैतिक वातावरण बदल गया। इस प्रकार के स्थानीय संविधानों की परिषद ने कोई आवश्यकता नहीं समझी, क्योंकि भारत सरकार ने राजस्थान के राज्यों का भारत में विलय शुरू कर दिया था।[83]

बीकानेर

महाराजा गंगासिंह और उनका राजनैतिक दृष्टिकोण :

महाराजा गंगासिंह लंदन के प्रथम गोलमेज सम्मेलन (1930) में सम्मिलित हुए थे और वहां सर तेज बहादुर सप्रू की अपील के उत्तर में उन्होंने कहा था कि "हम लोग भारतीय हैं विदेशी नहीं, हम भारत का हित चाहते हैं। यदि भारत में संघ शासन स्थापित किया जायगा तो हम उसमें सहर्ष सम्मिलित होंगे। परन्तु फिर अंग्रेज सरकार ने ही अपने एजेन्टों द्वारा कुछ राजाओं को बहकाया कि संघ में सम्मिलित होना राज्यों के लिए

82–कान्फीडेन्शल फाइल. सी. नं. 46, 1943–45, अ. बी.; प्रजामण्डल फाइल बून्दी, सी. नं. 1, 1937–44, अ. बी.; बून्दी लोक परिषद सी. नं. 6, 1946-47, अ. बी.;

83–पाक्षिक खुफिया रिपोर्ट, बून्दी, 1946–47, अ. बी.; कान्फीडेन्शल फाइल सी. नं. 57, बून्दी, 1946–47, अ. बी.; फा. नं. 40/1/सी. 1946, कान्स्टीट्यूशनल रिफोर्म, बून्दी, अ. उ.; राजस्थान डिस्ट्रिक्ट गजेटियर, बून्दी, पृ. 59–60.

अहितकर है। यह भी सरकार ने स्पष्ट कर दिया था कि राजाओं की इच्छित संख्या इसे स्वीकार करेगी तब ही रियासतों को संघ में सम्मिलित किया जायगा अन्यथा नहीं। इसी समय भारत सरकार ने विभिन्न शासकों के नाम परिपत्र भेजा जिसमें शासन के विभागों की सूची दी हुई थी। शासकों से पूछा गया कि वे कौन से विभाग केन्द्रीय सरकार के सुपुर्द करना चाहते हैं और कौनसे विभाग अपने अधीन रखना चाहते हैं तथा कौन से ऐसे विभाग हैं जिनका शासन से स्वयं करना चाहते हैं। परिपत्र में यह भी स्पष्ट था कि केन्द्रीय सरकार यदि उनमें कोई हस्तक्षेप करेगी तो वे विरोध नहीं करेंगे। कितने ही राज्यों ने विभागों पर चिन्ह लगा कर केन्द्रीय सरकार के पास परिपत्र लौटा दिया। महाराजा गंगासिंह ने परिपत्र पर अपने अधिकारों पर चिन्ह लगाये। इससे स्पष्ट है कि वैसे महाराजा गंगासिंह देश की विचारधारा के प्रतिकूल अपने आपको बतलाया नहीं चाहते थे पर मन से अपनी सत्ता को भी नहीं छोड़ना चाहते थे। साथ ही ब्रिटिश सत्ता को प्रसन्न रखने के प्रयत्न में भी लगे रहते थे।[84]

बीकानेर में दमन :

एक ओर तो भारत के हित की बात गंगासिंह कर रहे थे और दूसरी ओर 1931-1940 में चलने वाले आंदोलनों को कुचलने में प्रयत्नशील थे। प्रजा के हित में बात करने वालों को बीकानेर में सन्देह की दृष्टि से देखा जाता था। हम जानते हैं कि बीकानेर षड़यन्त्र का केस बनाया गया था और सात अभियुक्तों को कारावास के दंड से दंडित किया गया था, जिसका वर्णन पहिले के अध्याय में दिया जा चुका है। इधर राज्य की आलोचना करने वाली सभा या साहित्य पर पाबन्दियां लगा दी गई थी और बीकानेर पेनलकोड की तलवार राज्य के आंदोलनकारियों के सर पर हरदम लटकती ही रहती थी।[85]

जब राजस्थान में 1940 से पुनः हलचल आरम्भ हुई तो बीकानेर में भी उत्तरदायी शासन की स्थापना के लिए आन्दोलन प्रारम्भ हो गये। इसके दमन के लिए बीकानेर सरकार ने एक नया कानून बनाया। इसके अनुसार कोई व्यक्ति गैर सरकारी वर्दी नहीं पहन सकता था, किसी दल का सूचक तगमा नहीं लगा सकता था और जुलूसों में भाग नहीं ले सकता था। न कोई व्यक्ति सार्वजनिक संस्था में वर्जिश या व्यायाम कर सकता था। यदि बीकानेर महाराजा की अनुमति प्राप्त किये बिना कोई ऐसा करता तो उसको दण्ड मिलता था।[86]

---

84 प्रोसिडिंग आफ दे राउन्डटेबल कान्फ्रेन्स, 1930-31, पृ. 23-32, 173 आदि

85- प्रिसली इंडिया, 1931-1932; इंडियन स्टेट पीपुल्स कान्फ्रेन्स, अजमेर, सितम्बर, 1932, पृ. 1; डेली मिलाप, लाहोर, जून 8, 1932; बोम्बे क्रोनिकल, दिसम्बर 25; 1933, दिसम्बर 20 1935; पीयोनियर, दिसम्बर 28, 1933; बीकानेर सम्बन्धी कटिंग 158 (136) नं. 55 (1937), अ.बी.

86- बीकानेर स्टेट गजट, 15 जनवरी, 1940, अ बी.; होम डिपार्टमेन्ट, कोनफी. नं. 46-प्रबंध साहित्य, 1940; होम डिपार्टमेन्ट, कोनफी, नं 6 सी.आई.डी. रिपोर्ट, 1940, अ.बी.

वैसे महाराजा गंगासिंह निरंकुश शासक थे परन्तु बड़े कुशल और योग्य नरेश थे। उनको अपने शासन में किसी का भी हस्तक्षेप पसन्द नहीं था। कांग्रेस के संकेत पर ही सभी रजवाड़ों में उत्तरदायी शासन का आन्दोलन चल रहा था। यह आन्दोलन प्रजामंडल नाम की संस्थाएं करती थीं और गांधी जी के सत्याग्रह का आश्रय लेकर करती थीं। बीकानेर में भी यह आन्दोलन चल पड़ा था। तब महाराजा गंगासिंह ने सोचा कि रियासत के कानूनों को इस प्रकार संशोधित कर दिया जाए जिससे लोग सन्तुष्ट हो जाएं। नवम्बर 1942 को महाराजा पश्चिमी एशिया के क्षेत्र में युद्ध के मोर्चे पर जा रहे थे। उस समय दूसरा विश्व युद्ध चल रहा था। प्रस्थान करने से पहले उन्होंने प्रशासन में कुछ सुधारों की घोषणा कर दी :

1. कानून के अनुसार शासन का संचालन होगा।
2. जनता को व्यक्तिगत स्वातन्त्र्य होगा।
3. अदालतें स्वतंत्र और निष्पक्ष होंगी।
4. जनता को आर्थिक सहायता दी जाएगी।
5. रियासत की खानों के द्रव्य का उपयोग किया जाएगा।
6. जनता के हितार्थ अच्छा प्रशासन स्थापित किया जाएगा।

यह घोषणा तो महाराजा ने कर दी, परन्तु वास्तव में उनका उद्देश्य यह था कि उत्तरदायी शासन की मांग शांत हो जाए और यदि न हो तो उसको कुचल दिया जाए। इसलिये उन्होंने उपरोक्त सुधारों की घोषणा के साथ ही यह आदेश भी जारी कर दिया कि कोई आम सभाएं न की जाएं और कोई व्यक्ति राज्य विरोधी भाषण न दें। इन रवैये से लोगों में बड़ा क्षोभ और असन्तोष उत्पन्न हो गया। 29 जुलाई, 1942 को "भारत छोड़ो" के नारे की प्रतिध्वनि में बीकानेर प्रजा परिषद ने श्री रघुवर दयाल गोयल की अध्यक्षता में निश्चय किया कि उत्तरदायी शासन की स्थापना के लिए राज्य में आन्दोलन जारी किया जाए।[87]

सुधारों की घोषणा में तो महाराजा ने जनता को सन्तुष्ट करने के लिए या भुलावे में डालने के लिए बड़ी बातें की थी, किन्तु जब बीकानेर प्रजा परिषद् ने आन्दोलन चलाने का निश्चय किया तो शीघ्र ही दमन नीति का आश्रय लेकर सरकार ने श्री रघुवर दयाल गोयल को गिरफ्तार कर लिया और उसी दिन उनको बीकानेर रियासत से बाहर चले जाने का आदेश दिया, क्योंकि राज्य में उनकी विद्यमानता से शांति भंग होने की आशंका थी। साथ ही उन्हें कहा गया कि यदि वे आदेश की अवहेलना करके राज्य में प्रवेश करेंगे

87– वीर अर्जुन ता. 17 अप्रेल 1942;
होम डिपार्टमेंट, कोन्फीडेन्शल बीकानेर, नं. 27, अ.बी.;
लोक परिषद् का तीसरा अधिवेशन, लाडनूं, 1942.

तो इसका परिणाम उनके लिए अच्छा नहीं होगा। श्री रघुवरदयाल इस आदेश के अनुसार बीकानेर राज्य से बाहर तो निकल गए परन्तु उन्होंने सरकार से निवेदन किया कि इस आदेश को वापस ले लिया जाए। बीकानेर सरकार ने उनकी प्रार्थना नहीं मानी। इस पर जब श्री गोयल ने 26 अगस्त 1944 को बीकानेर में प्रवेश करने का प्रयास किया तो उनको और उनके साथियों को गिरफ्तार कर लिया गया।[88]

सरकार की इस नीति की राजस्थान में जहां तहां तीव्र निन्दा की गई और इसके विरोध में कितने ही स्थानों पर 26 अक्टूबर, 1945 को आम सभाएं हुई। श्री रघुवरदयाल की गिरफ्तारी हो जाने पर भी जनता का आन्दोलन बंद नहीं हुआ। प्रजा परिषद् ने पं. मघाराम वैद्य के नेतृत्व में आन्दोलन जारी रखा और रियासत में उत्तरदायी शासन की मांग और भी तीव्र रूप से चलती रही।[89]

उन्हीं दिनों 27 दिसम्बर 1945 को एक साधारण सी घटना हुई। यदि ऐसी घटना पांच वर्ष पहले होती तो उस पर जनता का कोई विशेष ध्यान नहीं जाता। परन्तु 1945 में जनता अत्यन्त जागरूक, आतुर और सचेत हो गई थी और साधारण सी घटना को लेकर बड़ा आंदोलन हुआ करता था। उस दिन रामपुरिया इण्टर कालेज बीकानेर की छठी क्लास के एक छात्र ने जिसका नाम द्वारकाप्रसाद कौशिक था क्लास की हाजरी के समय "प्रजेन्ट सर" न कह कर "जयहिन्द" कहा। उसको तत्काल कालेज से निकाल दिया गया और इस विषय में कोई लिखित आदेश भी नहीं दिया गया। इससे नगर में बड़ी सनसनी फैल गई। ऐसी घटना नोहर हाई स्कूल में हुई थी। एक विद्यार्थी ने अपनी अभ्यास कापी पर 'जयहिन्द" लिख दिया था जिसको देखकर हैड मास्टर सा. बड़े उत्तेजित हो गए और छात्र को बहुत पीटा। इससे जनता में बड़ा असन्तोष फैला।[90]

अब आन्दोलन उग्ररूप धारण कर रहा था। बीकानेर राज्य की जेल में राजनैतिक बंदियों ने मांग की कि उनको समाचार पत्र दिए जाएं, मित्रों और बन्धु बांधवों से मिलने दिया जाए। यदि ये सुविधा नहीं दी जाएगी तो वे भूख हड़ताल कर देंगे। जेल के बाहर लोगों ने 2, 3 और 26 जनवरी को नेताजी दिवस मनाया तथा स्वतंत्रता दिवस का आयोजन किया और उत्तरदायी शासन की मांग की। सरकार ने कार्यकर्त्ताओं को निर्दयता से पिटवाया और उसमें अग्रणी भाग लेने वालों को जेल भेज दिया। इस दमन नीति का वृत्तान्त जवाहरलाल नेहरू ने पढ़ा। 1946 को जब उदयपुर में अखिल भारतीय प्रजा परिषद कान्फ्रेन्स हो रही थी और नेहरू उसके अध्यक्ष

---

88. प्रगति, 27 सितम्बर, 1942; होम डिपार्टमेंट, नं. 24 व 2, एजीटेशन बीकानेर, 1942–44, अ.बी.; भगवानादास केला, देशी राज्यों की जन जागृति, पृ. 206, 207.

89. बीकानेर समाचार कटिंग, नं. 37 (1944), 9 24, 46 (1945) अ बी; नवजीवन, ता. 2 जुलाई, 1945.

90 -विश्वामित्र 1 जनवरी 1946 और हिन्दुस्तान 2–1–1946.

थे उस समय अपने भाषण में उन्होंने कहा कि बीकानेर ने भी हाल में बड़ी बदनामी कमा ली है रियासत के कारागार की हालत विशेष तौर पर खराब है तथा राजनैतिक बंदियों की दशा शोचनीय है।[91]

बीकानेर प्रेस एक्ट :

फिर भी बीकानेर सरकार ने अपनी दमन नीति चालू रखी। मार्च 1946 में महाराजा सादूलसिंह राजा बन चुके थे। महाराजा गंगासिंह का देहान्त हो गया था। महाराजा शार्दूलसिंह ने एक प्रेस एक्ट जारी किया। इसके अनुसार प्रकाशन से पहले ही समाचार पत्रों को जमानत देनी पड़ती थी। बीकानेर में बाहर का कोई आदमी सम्पादक नहीं बन सकता था। यदि बीकानेर का आदमी रियासत से बाहर जाकर किसी पत्र का सम्पादक बनता था तो वापिस आने पर उस पर बीकानेर का कानून लागू किया जाता था। इस कानून की उत्तर भारत के कई पत्रों ने बड़ी तीव्र आलोचना की।[92]

जन जागृति की उपेक्षा करके बीकानेर सरकार अपने लिए नई नई कठिनाइयां उत्पन्न कर रही थी। इसी असें में राज्य ने एक इन्कम टैक्स बिल जारी किया जिसके अनुसार जो व्यक्ति उस राज्य में 120 दिन रह चुका था वह वहां का नागरिक माना जाता था और उसको आयकर देना पड़ता था। इस बिल का जनता ने तीव्र विरोध किया और 22 मार्च, 1946 को हड़ताल करने की योजना बनाई। परन्तु मामले को शांत करने के लिए रियासत की विधान सभा ने इस बिल पर पुनः विचार करने की घोषणा की जिससे फिलहाल हड़ताल स्थगित कर दी गई और रियासत के सब स्थानों पर तार द्वारा सूचना दे दी गयी कि हड़ताल न की जाए। नोहर और भादरा तहसील में सूचना नहीं पहुंची अतः वहां पूरी हड़ताल रही।[93]

किसान आन्दोलन :

बीकानेर में कृषकों की स्थिति संतोषजनक नहीं थी जिसका वर्णन ऊपर के अध्याय में किया गया है। कांग्रेस के कार्यकर्त्ताओं ने किसानों के आन्दोलन की आयोजना बनाई। इसके अन्तर्गत मई 1946 को अपने हाथों में राष्ट्रीय झंडा लिए हुए किसानों ने रियासत की दमन नीति के विरोध में प्रदर्शन किया। राजकीय पुलिस ने प्रदर्शनकारियों को बुरी तरह मारा और यातनाएं दी। कितने ही किसानों को गिरफ्तार कर लिया जिसमें चौधरी

91–प्रजा सेवक 30 जनवरी 1946 होम डिपार्टमेंन्ट कोन्फीडेन्शल, बीकानेर नं. 79, आत्मादेवी की फाइल. 1946 अ.बी.

92. नवजीवन ता. 8 अप्रेल 1946; प्रेस कटिंग,
प्रेस लॉ बीकानेर नं. 20, 3 नवम्बर, 1945 से 1946, अ.बी.; भगवानदास केला–देशी राज्यों की जन जागृति, पृ. 206-7.

93. होम डिपार्टमेंट, कोन्फीडेन्शल बीकानेर, नं. 79, 1946, अ.बी.; भगवानदास केला–देशी राज्यों की जनजागृति, पृ. 207-08.

कुम्भाराम प्रमुख थे । 10 मई, 1946 को पुलिस ने राजगढ़ गांव को घेर लिया और शान्त प्रदर्शनकारियों पर बड़ी क्रूरताएं की । किसान लोग नारा लगा रहे थे "जागीरदारों के जुल्म हटाओ" । वास्तव में ये किसान आन्दोलन अभी रियासत के विरुद्ध नहीं, जागीरदारों के विरुद्ध था, जो किसानों पर बड़े अत्याचार करते थे । पुलिस की यातनाओं के फलस्वरूप कई किसानों पर बड़े अत्याचार किये गये जिसके फलस्वरूप कई किसानों को बड़ी चोटें आईं । इसकी खबर जहां तहां फैल गई । इससे कलकत्ता, बम्बई और जयपुर के मारवाड़ी बड़े क्षुब्ध हुए । कलकत्ता में बीकानेर के निवासियों की एक सभा हुई जिसमें पुलिस की बर्बरताओं की बड़ी निंदा की गई । इस दमन नीति के विरोध में स्वामी कुमारानंद ने भूखहड़ताल शुरू कर दी । परन्तु राज्य के आश्वासन देने पर स्वामी ने भोजन कर लिया । राजगढ़ ग्राम की घटना ने सारे राज्य में आतंक फैला दिया ।[94]

रायसिंह नगर की करुण घटना :

रायसिंह नगर में राज्य की प्रजा का सम्मेलन 30 जून और 1 जुलाई, 1946 को हुआ । सारी कार्यवाही शान्ति के साथ होती रही । 1 जुलाई, 1946 को कई आदमी तिरंगा झंडा हाथ में लिए हुए सम्मेलन में आ रहे थे उन्हें गिरफ्तार कर रेस्ट हाउस ले जाया गया । जब इसकी सूचना पंडाल में पहुंची तो एक विशाल भीड़ रेस्ट हाउस की तरफ उमड़ पड़ी । पुलिस ने चेतावनी नहीं दी और भीड़ पर लाठियां चलाईं । लाठी प्रहार से बहुत से लोग अचेत हो गए । साथ ही सेना के लोगों ने भी गोलियां चलाना शुरू कर दिया जिससे एक हरिजन नवयुवक जिसका नाम बीरबलसिंह था मारा गया । उसके हाथ में राष्ट्रीय ध्वज था । एक जुलाई को सारे राज्य में बीरबल सिंह दिवस मनाया गया । सरदारशहर में इसकी बड़ी धूम रही । सायंकाल वहां एक लम्बा जुलूस निकाला गया । लोगों में बड़ा रोष और आवेश था । मकानों की छतें स्त्रियों और बच्चों से ठसाठस भरी हुई थीं । जो जुलूस वालों को प्रोत्साहन दे रही थी । आकाश में राष्ट्रीय गाने गूंज रहे थे और लोग नारे लगा रहे थे कि "पन्नीकर को पद से हटाओ" । पन्नीकर अंग्रेज सरकार का समर्थक था और उस समय बीकानेर का दीवान था । यह भी नारा लगाया जा रहा था कि राजनैतिक बंदियों को मुक्त करो और रायसिंह नगर की घटना की निष्पक्ष जांच कराओ ।[95]

---

94. विश्वामित्र, 16 मई, 1946; प्रेस कटिंग, नं. 26 अ.बी.; बीकानेर राज परिषद्, 1946;
भगवानदास केला–देशी राज्यों की जन जागृति, पृ. 207–8 के.एस. सक्सेना, पोलिटिकल मूवमेंन्ट, पृ. 245.

95. होम डिपार्टमेन्ट, कोन्फीडेन्शल, नं. 79,
कांग्रेस कार्यकर्त्ता, 1946, अ. बी.;
हिन्दुस्तान 10 जुलाई, 1946;
विश्वामित्र, 17 जुलाई, 1946;
भगवानदास केला–देशी राज्यों की जन जागृति पृ. 208–9.
फरीदखान, बीरबलसिंह, कांग्रेस शताब्दी समारोह, जयपुर, पृ. 5–9.

बीकानेर राज्य ने तो जांच करवाने से इन्कार कर दिया परन्तु अखिल भारतीय राज्य परिषद ने श्री गोकुल भाई भट्ट और श्री हीरालाल शास्त्री को घटनास्थल पर जाकर जांच करने का आदेश दिया। फिर भी लोगों में सरकार के प्रति बड़ा रोष और क्षोभ था जिसको शांत करना राज्य के लिए कठिन हो गया। अतएव लोगों के रोष को शान्त करने के लिए महाराजा सार्दूलसिंह ने 31 अगस्त 1946 को घोषणा की कि रियासत में उत्तरदायी शासन शीघ्र ही स्थापित किया जावेगा। फिर भी लोगों ने सत्याग्रह जारी रखा और राज्य के कई कार्यकर्त्ता सहर्ष जेल में जाते रहे। वहां जाकर इन राजनैतिक बन्दियों ने भूख हड़ताल कर दी। चूरू आदि नगरों में भी हड़ताल हुई। नितान्त 14 दिसम्बर 1947 से महाराजा ने नये विधान का एलान कर दिया। इसके अनुसार दूदसर के कु. जसवन्तसिंह की प्रधानता में मन्त्री मंडल बनाया गया। इस मन्त्री मण्डल में सामन्ती प्रधानता से संतोषजनक प्रगति न हो सकी और फिर बीकानेर राज्य का विलीनीकरण हो गया। यहां के सम्पूर्ण आन्दोलन में श्री रघुवर दयाल गोयल, श्री सत्य नारायण एवं मुक्ता प्रसाद की विशेष भूमिका रही थी।[96]

जैसलमेर से और सागरमल गोपा की गिरफ्तारी :

मार्च 1940 में श्री सागरमल गोपा के पिता का जैसलमेर में देहान्त हो गया। एक वर्ष के पश्चात वे अपनी माता को मिलने के लिए जैसलमेर आना चाहते थे परन्तु उनके प्रवेश पर रोक लगी हुई थी इसलिये उन्होंने रेजीडेन्ट को प्रार्थना पत्र भेजा कि इस अवसर पर मुझे जैसलमेर आने की इजाजत प्रदान की जाए। रेजीडेन्ट ने उत्तर दिया कि उसके विरुद्ध रियासत ने कोई अपराध सिद्ध नहीं किया है इसलिए उसके साथ दरबार द्वारा दुर्व्यवहार का भय क्यों होना चाहिये? रेजीडेन्ट के पत्र पर विश्वास करके श्री सागरमल गोपा 22 जून 1941 को जैसलमेर पहुंच गये, किन्तु जब वह घर से बाहर निकले तो थानेदार गुमानसिंह ने 10 सिपाही लेकर उनको घेर लिया और गिरफ्तार कर लिया। श्रीगोपा को बड़ी निर्दयता से मारा पीटा और एकांन्त कोठरी में उन्हें बन्द कर दिया और मुकदमा चला कर साढ़े सात वर्ष का कठोर कारावास दिया। उन पर अपराध यह लगाया गया कि उन्होंने जैसलमेर राज्य के विरुद्ध भाषण दिया और महारावल के शासन के विरुद्ध जनता को भड़काया था।[97]

---

96. होम डिपार्टमेन्ट कोन्फीडेन्शल बीकानेर नं. 54, राजनैतिक बन्दी और भूख हड़ताल, 1947, अ. बी., फाइल नं. 40/1/सी. 1946, महाराजा का भाषण, पृ. 27, अ. उ., महाराजा की घोषणा, वही फाइल, पृ. 41, के. एस. सक्सेना, पोलिटिकल मूवमेन्ट एण्ड अवेकनिंग, पृ. 245-246, राजस्थान डिस्ट्रिक्ट गजट, चूरू, पृ. 38-39.

97. फा. नं. 2, जे. एस. एल. और आर. एस. ए. बीकानेर, पश्चिमी राजपूताना के रेजीडेन्ट का सागरमल गोपा के नाम नं. 1619/418/40 ता. 22 मार्च, 1941 का पत्र, जैसलमेर के सेशन जज का फैसला तारीख 10-6-42, बीकानेर अभिलेखागार।

जेल में उनके साथ बड़ा निर्दय और पाशविक व्यवहार किया गया। उनको सब इंसपेक्टर गुमानसिंह ने बड़ी अवर्णननीय लज्जा जनक यातनाएं दीं। जैसलमेर की जनता ने महाराव को सम्बोधित करते हुए गोपा को छोड़ने की अभ्यर्थना की। इसी प्रकार श्री जयनारायण व्यास और श्री शेख अब्दुल्ला ने हस्तक्षेप किया और पोलिटिकल डिपार्टमेन्ट से इसकी जांच के लिए प्रार्थना की। श्री जयनारायण व्यास अखिल भारतीय राज्य कान्फ्रेंस के सेक्रेटी थे और शेख अब्दुल्ला इसी संगठन के अध्यक्ष थे।[98]

श्री सागरमल गोपा ने जैसलमेर के डिस्ट्रिक्ट जज को पत्र लिखकर पुलिस की क्रूरता की शिकायत की परन्तु थानेदार गुमानसिंह को इस पत्र का पता लग गया। इसलिये उसने इसको बीच में ही दबा लिया और ठिकाने नहीं पहुंचने दिया। उसने सागरमल गोपा को धमकाया कि इसका परिणाम बहुत बुरा होगा। अगले दिन अर्थात् 3 अप्रेल, 1946 को यह खबर फैलाई गयी कि सागरमल गोपा ने अपने शरीर पर केरोसिन तेल छिड़क कर आत्महत्या का प्रयास किया है। उसको अस्पताल भेजा गया जहां 4 तारीख को उसकी मृत्यु हो गई। इससे देश में सनसनी फैल गयी। जवाहरलाल नेहरू और जयनारायण व्यास ने इस दमन नीति और क्रूरता की अत्यन्त तीव्र आलोचना की और जिन परिस्थितियों में गोपा की मृत्यु हुई उसकी जांच करने की रियासत से मांग की। पहले तो महारावल ने कोई कार्यवाही नहीं की परन्तु फिर जन आन्दोलन से घबराकर 27 अगस्त 1946 को एक व्यक्ति का जांच कमिशन नियुक्त किया। जी. एस. पाठक स्पेशल आफिसर इस जांच के अधिकारी थे। पाठक में इतना साहस नहीं था कि महारावल की इच्छा के विरुद्ध वह अपनी रिपोर्ट पेश करते। इसलिये उसने यह रिपोर्ट की कि थानेदार गुमानसिंह के उत्पीड़न से भयभीत होकर सागरमल गोपा ने आत्मघात कर लिया है। परन्तु वास्तव में उसकी हत्या की गई थी ऐसा जनमत था।[99]

सागरमल गोपा के आत्म बलिदान से जैसलमेर की जनजागृति शांत नहीं हुई बल्कि और उग्र हो गई। अब जैसलमेर के कार्यकर्ताओं ने समझ लिया कि जैसलमेर राज्य में रहकर वहां के शासन के विरुद्ध कोई आंदोलन नहीं किया जा सकता। अतः उन्होंने निश्चय किया कि जैसलमेर के बाहर से तथा भीतर से जोरदार आंदोलन किया जावे और उत्तरदायी शासन की मांग की जाय। श्री मीठालाल

98. शेख अब्दुल्ला का जैसलमेर के प्रधानमंत्री के नाम पत्र ता. 24 जनवरी, 1946 फाइल नं. 2/ अभिलेखागार, बीकानेर।

99. प्रजामण्डल, जोधपुर ग्रुप नं. 106, विविध और गोपा कांड सम्बन्धी कागजात, 1946 अ.बी.; जैसलमेर जांच कमीशन की फाईल नं. 2/जे. एस. आई. राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर; बृजमोहन व्यास, सागरमल गोपा, कांग्रेस शताब्दी समारोह, जयपुर, पृ. 10-13.

व्यास के यहां जोधपुर में पं. नेहरू की सलाह पर जैसलमेर प्रजा मण्डल की स्थापना की गई। सागरमल गोपा की मृत्यु से कार्यकर्ताओं को बड़ा प्रोत्साहन मिला और वे महारावल की दमन नीति का सामना करने के लिए तैयार हो गए। श्री मीठालाल व्यास और श्री जयनारायण व्यास ने निश्चय किया कि जैसलमेर में प्रवेश किया जाय और महारावल के आदेशों की अवहेलना की जाय। इस निश्चय के अनुसार 26 मई, 1946 को दोनों व्यास अपने 20 साथियों सहित जैसलमेर राज्य की सीमा में जा पहुंचे। 27 मई, 1946 को श्री जयनारायण व्यास ने एक सभा को सम्बोधित किया जिसमें उपस्थित होकर लोगों ने महारावल के आदेश की उपेक्षा की। इसमें लगभग 4000 व्यक्तियों की उपस्थिति थी। जयनारायण व्यास ने राष्ट्रीय ध्वज फहराया और लोगों ने "इन्कलाब जिन्दाबाद" "प्रजा मण्डल जिन्दाबाद" के गगनभेदी नारे लगाए। विचित्र बात तो यह है कि भारत में आजादी की घोषणा अब होने ही वाली थी, केवल एक वर्ष की देर थी फिर भी जैसलमेर के महारावल को यह पता नहीं था कि घटनाचक्र की गति क्या है और राजस्थान के शासकों का भविष्य क्या होगा ? लगता है कि उन्होंने आंख मूंद रखी थी और इस नये जमाने को उन्होंने देखा ही नहीं था। वे समझते थे कि अब भी मध्यकालीन युग वर्तमान है और जनता के साथ पशुवत व्यवहार किया जा सकता है तथा तलवार के प्रयोग से सब कुछ हो सकता है। उनको शायद मालूम नहीं था कि जैसलमेर राज्य कितना छोटा सा है और शक्ति राजवंशों को छोड़कर जनता के पास द्रुतगति से आ रही है।[100]

सिरोही

जैसा कि पहिले लिखा गया है, कुछ नवयुवकों द्वारा बम्बई में सिरोही प्रजामण्डल की स्थापना 1934 में हो चुकी थी और उसी के तत्वावधान में सिरोही राज्य में भी 1938 में प्रजामण्डल की स्थापना हो गई। इससे पहिले तो यहां के राजनैतिक नेता प्रशासन में कुछ सुधार चाहते थे, जागीरदारों की शिकायतें करते थे, भाषण देने की आजादी मांगते थे। ऐसा ही हाल अन्य राज्यों में था। परन्तु प्रजामण्डल स्थापित होने पर यहां उत्तरदायी शासन की मांग होने लगी। सिरोही के प्रजामंडल ने 1939 में ऐसे शासन की मांग की तो महारावल ने प्रजामण्डल को अवैध घोषित कर तुरन्त ही दमन करना शुरू कर दिया। अग्रणीय नेताओं को गिरफ्तार कर लिया गया। इनमें श्री गोकुल भाई भट्ट, श्री जीवनमल और श्री रूपराज विशेष उल्लेख के योग्य हैं। श्री जीवनमल पर मुकदमा चलाया गया, उनको एक वर्ष का कारावास दिया गया और 200/- रु. जुर्माना किया गया। श्री रूपराज को एक मास का कठोर कारावास मिला और उस पर 2000/- रुपये जुर्माना हुआ। परन्तु इन कठोर और दमनकारी साधनों से भी स्थिति वश में नहीं आई। आन्दोलन बढ़ता गया और उत्तेजना फैलती गई। महाराव ने देखा कि दमन सफल नहीं हो

100– प्रजामण्डल, जोधपुर ग्रुप नं. 106, विविध और गोपाकांड सम्बन्धी कागजात, 1946, अ.बी.;
भगवानदास केला-देशी राज्यों की जनजागृति, पृ. 266-267; के.एस.सक्सेना पोलिटिकल मूवमेन्ट्स एण्ड अवेकनिंग इन राजस्थान, पृ. 252-256.

रहा है और जनता में असन्तोष बढ़ता जा रहा है तो राजनैतिक कैदी और सत्याग्रही बन्दी छोड़ दिये गये।[101]

परन्तु इतने पर भी स्थिति बिगड़ती ही गई विद्यार्थियों ने भी एक संगठन बना लिया और 1942 में जब ब्रिटिश भारत में कांग्रेस ने "भारत छोड़ो" आन्दोलन चलाया तो सिरोही में भी इसका प्रभाव पड़ा। वहां के लोगों में भी नया जोश आया। उन्होंने आन्दोलन की सम्पूर्ण योजना बनाई। पहले तो उन लोगों ने महाराव से मिलकर निवेदन किया कि उन्हें अंग्रेजों से सम्बन्ध विच्छेद कर देना चाहिए, परन्तु उन्होंने इस निवेदन पर ध्यान नहीं दिया और नेताओं को जेल में रख दिया। 1942 के आन्दोलन में श्री गोकुल भाई भट्ट तथा श्री रूपराज के अतिरिक्त अन्य 8 उल्लेखनीय नेताओं ने काम किया था। इनमें श्री घीसालाल चौधरी श्री धरमचन्द सुराणा, श्री कान्ति भाई उपाध्याय, श्री चुन्नीलाल हेमाजी, श्री ध्रुवकुमार पण्ड्या, श्री रामेश्वर अग्रवाल, श्री दूतचंद सिंधी और श्री बलराज भी थे। सिरोही की प्रशासनिक स्थिति का वर्णन यहां आवश्यक नहीं है। जो दशा राजस्थान के अन्य छोटे-छोटे राज्यों की थी वही दशा यहां की थी। प्रशासन महाराव और दीवान की इच्छानुसार चलता था। वैसे वहां ब्रिटिश भारत का कानून माना जाता था। इसलिये 1942 में इस प्रकार की धींगा धींगी का प्रबल विरोध हुआ। प्रजामण्डल ने 1942 में लोगों को प्रेरित किया कि राज्य को कोई टेक्स नहीं दिया जाए। इस अपराध के लिए श्री धर्मचन्द सुराणा की वकालात की सनद सरकार ने छीन ली; परन्तु उन्होंने सरकार की नीति के विरुद्ध आन्दोलन जारी रखा। इसलिए श्री सुराणा को गिरफ्तार करके जेल भेज दिया और उन्हें छः मास की सजा दीगई। इसके पश्चात 1942 में गिरफ्तारियों का तांता लग गया। श्री कान्ति भाई उपाध्याय और उनकी पत्नी धीरूबेन को भी गिरफ्तार कर लिया गया और अहमदाबाद की सेन्ट्रल जेल में रखा गया। इस आन्दोलन में श्री चुन्नीलाल हेमाजी ने बड़ी लगन और परिश्रम से काम किया था। उन्होंने सिरोही में ही नहीं आसपास के इलाकों में भी जनता को सत्ता के विरूद्ध जागृत करने का प्रचार किया था। आन्दोलन के दौर सिपाहियों ने उन्हें आहत कर दिया और उनकी समस्त सम्पत्ति जब्त कर ली। उनका प्रवेश महलों में निषिद्ध था। अतः जब वे राजा से मिलने के लिये महल चले गये तो इस अपराध में उनको छः मास की सजा दे दी गई।[102]

---

101. प्रजामण्डल सिरोही नं. 4, लाठी चार्ज [1929]
 नं. 20 अ बी. कोरसपोन्डेन्स विथ ए.जी.जी. एण्ड एच.एच.
 (1939–50) नं 21–24 फाइल अन लो फुल प्रजामण्डल
 (1939–40, कोन्फिशफा. 25,499, 24, 24, 1932–1940.
 द हिन्दू 5 जनवरी 1940,
 नवजीवन, 6 जनवरी 1940,
 नवजीवन 3, जून 1940,
102. प्रजामण्डल फा. सिरोही, नं. 26, 28, 299, 31, 32, 37, 41; प्रजामण्डल; ग्रीवेन्स फाइल सिरोही, स्टेडेन्ट यूनियन; प्रजामण्डल का निवेदन आदि (1939–1942); अ. बी., कोन्फीडेन्शल, सिरोही. फा. नं. 11; प्रजामण्डल मिटिंग, सेवा समिति, नं. 24, गोकुल भाई भट्ट आदि (1939–42), अ.बी., सुमनेश जोशी, राजस्थान के स्वतन्त्रता के सेनानी पृ. 830

इस ग्रान्दोलन में कितने ही लोग सक्रिय सम्मिलित हुए। इस आन्दोलन के समय श्री दुलेचन्द सिंधी ने नौकरी छोड़ दी ग्रौर ग्रान्दोलन में लग गये। उन्हें गिरफ्तार कर दो वर्ष की सजा दी गयी और उन्हें सिरोही की जेल में रखा गया। श्री रूपराज समरथ-दास सिरोही राज्य के वकील थे, परन्तु राष्ट्रीय कामों में लगे रहते थे। 1942 में उनको नोटिस दिया गया कि वे सिरोही राज्य में कोई राजनैतिक प्रचार नहीं करें परन्तु उन्होंने इस ग्रादेश का पालन न करके शिवगंज में भाषण दिया। अतः इनको वहीं गिरफ्तार कर लिया और बन्दी बनाया गया। उनको जेल में अनेक कष्ट दिये गये। इसी प्रकार बेलराज पूनमचन्द ने 1939 में प्रजामण्डल के ग्रान्दोलन को चलाने में सक्रिय भाग लिया था। इस ग्रपराध में उनकी 110 बीघा जमीन जो शिवगंज में थी और दो पक्के कुंए, जो 50 हजार रुपये लगाकर बनाये गये थे, सरकार ने जब्त कर लिये। सरकार ने राजनैतिक कार्य करने वालों के साथ दमन नीति का अनुसरण करने में कोई कसर नहीं रखी।[103]

1942 के बाद भी सिरोही में नाज की निकासी लेकर आन्दोलन चला जिसके दौरान भाषण व हड़तालें होती रहीं। प्रजामण्डल 1942-47 तक सक्रिय रहा ग्रौर राज्य का भी दमन चक्र चलता रहा। राज्य ने तथा ब्रिटिश सत्ता ने लोगों की पुकार की अवहेलना हर कदम पर की। यदि सिरोही ग्राजाद हुआ तो भारतीय कांग्रेस के मूर्धन्य ग्रौर प्रभाव-शाली तथा ग्रादणीय नेताओं तथा जनता की दृढ़निष्ठा के परिणामस्वरूप। जब भारत को ग्रंग्रेजों ने छोड़ दिया तो सिरोही राज्य महाराव के हाथ से स्वतः ही जाता रहा। सिरोही में शासन सम्बन्धी कई हेरफेर हुए। 23 अक्टूबर 1947 को प्रजामण्डल से जवाहरमल सिंधी मन्त्री मण्डल में लिए गए। नवम्बर 1947 में सिरोही को गुजरात एजेन्सी में रखा गया ग्रौर 1948 में उसे भारत सरकार के प्रशासन में लेकर श्री गोकुल भाई भट्ट को प्रधान मन्त्री बनाया।[104]

अलवर ग्रौर आन्दोलन की प्रगति:

सन 1942 ई. के "भारत छोड़ो आंदोलन का प्रभाव ग्रलवर राज्य पर भी पड़ा। यहां के स्कूल और कॉलेज के विद्यार्थियों ने इसमें सक्रिय भाग लिया और अलवर शहर के टेलीफोन ग्रादि के तार काट दिये तथा लेटर बाक्स जला दिये। इस अपराध में पकड़े

103—कोन्फीडेन्शल फाइल, सिरोही नं. 284, 2, 38 सिरोही प्रजामण्डल की गतिविधि, 1939-1942, ग्र.बी.; अ बी. प्रजामण्डल फा. नं. 21,24,28; फाइल ग्राफ ग्रनलोफुल प्रजामण्डल, 1939-1940, नं. 33; सर्कुलर फाइल, सिरोही, 1942,

104—पाक्षिक रिपोर्ट, 11 दिसम्बर 1942, अ.उ.; ग्र.बी., कान्फीडेन्शल फाइल, सिरोही नं. 11; प्रजामण्डल मीटिंग शान्तिलाल व बाबूमल की गिरफ्तारी, 1942; प्रजामण्डल सिरोही, नं. 44, बम केस पुलिस विभाग, 1944; प्रजामण्डल सिरोही नं. 44, बम केस पुलिस विभाग 1944; प्रजामण्डल की गतिविधि, नं. 23 1947-48 ग्र.बी.

गये तीन छात्रों को लम्बी सजायें दी गईं लेकिन बाद में वे जल्दी दी छोड़ दिये गए। आंदोलन में सक्रिय भाग लेने के लिए प्रजामण्डल के संघ श्री शोभाराम, श्री रामचन्द्र उपाध्याय और श्री कृपादयाल ने वकालत छोड़ दी और श्री शोभाराम ने 13 दिवसीय अनशन भी किया। इस समय से राज्य ने हिन्दी विरोधी नीति को अपना कर अंग्रेजी को बढ़ावा देना आरम्भ कर दिया था। अब कार्यालयों और न्यायालयों में हिन्दी के बदले अंग्रेजी का प्रचार आरम्भ हो गया था। इसका प्रजामण्डल ने डट कर विरोध किया।[105]

सन् 1943 ई० में श्री रामजीलाल अग्रवाल, श्री कुंज बिहारी लाल, सच्चिदानन्द मोदी और हरिनारायण ने प्रजामण्डल के काम को द्रुतगति से चलाया। इस समय मास्टर श्री भोलानाथ का काम भी प्रजामण्डल में प्रशंसनीय रहा। उन्होंने पाठशाला–शुल्क विरोधी आन्दोलन के बाद सरकारी नौकरी से त्याग-पत्र दे दिया और वे गांवों में किसान सम्मेलनों और जलसों के आयोजनों में लग गए। इस प्रकार के उत्साहपूर्ण वातावरण के कारण ही यहां राजपूताना प्रान्तीय कार्यकर्त्ता सम्मेलन हुआ तथा उसकी समस्याओं के बारे में विचार विमर्श हुआ।[106]

अलवर राज्य के प्रजा मंडल का संगठन शीघ्र ही सरकार का कोप भाजन बन गया। 2 फरवरी, 1946 को जब प्रजामंडल का एक सम्मेलन खेड़ा मंगलसिंह नामक जागीर के गांव में हो रहा था तब उसको सरकार विरोधी मानकर इसकी कार्यकारिणी के सब सदस्यों को गिरफ्तार कर लिया गया। इन गिरफ्तारियों का जनता ने प्रबल विरोध किया। 8 फरवरी को दमन विरोधी दिवस विभिन्न कस्बों व गांवों में मनाया गया। सभी पाठशालाओं, कॉलिजों व कारखानों में हड़ताल रही। प्रधान मंत्री के निवास स्थान के सामने प्रदर्शन किये गये। अलवर नगर में एक सप्ताह तक हड़ताल रही। राज्य ने अनेक गिरफ्तारियां की, और जब आन्दोलनकारियों से जेल भर गई तब उनको दूर जंगलों में छोड़ा जाने लगा। जब प्रदर्शन और दमन दोनों ही सीमा पर पहुच गये तो अन्त में हीरालाल शास्त्री के प्रयत्नों से प्रजामंडल तथा महाराजा के बीच समझौता हुआ। इसके फलस्वरूप आन्दोलनकारियों को 10 फरवरी को जेल से छोड़ दिया गया। अब तो प्रजामंडल का जनता पर और अधिक प्रभाव हो गया। इस समझौते के अनुसार महाराजा ने एक लोकप्रिय मंत्रिमण्डल की घोषणा की, लेकिन प्रजामण्डल ने इस मंत्री मंडल में सम्मिलित होने से इन्कार कर दिया तथा पूर्ण उत्तरदायी शासन की मांग की। इसके लिये 29 अगस्त से आन्दोलन आरम्भ करने की योजना भी बना ली।[107]

---

105. फा. नं. 33/35, पाक्षिक रिपोर्ट अक्टूबर 1942, अ. उ.

106. प्रजामण्डल अलवर, फा. नं. 2, 1943, अ. बी.

107. प्रजामण्डल सत्याग्रहियों के अलवर का किला जेल के लिए, कान्फी. फा. नं. 31/एड/ 46, 1946. अ.बी; कान्फी. फा. नं, 45 एल/पी/ 46–प्रजामण्डल द्वारा भाषण, 2–4–64, 1946, फा. नं. 34, 37, 43, 44, 52, 54, अ. बी., मत्स्य सेक्रेटेरियट, अलवर, 1946

इसी बीच राजगढ़ में झंडा जलाने के प्रश्न को लेकर 22 अगस्त से ही आन्दोलन प्रारम्भ हो गया। अगस्त 23 को अलवर नगर तथा कई कस्बों में हड़तालें हुई। अलवर नगर में जुलूस निकाले गये और गैर जिम्मेदार मंत्री "कुर्सी छोड़ो" के नारे बुलन्द किये गये। प्रजा मंडल के नेताओं ने सत्याग्रह करने की नीति अपनाई। 24 अगस्त से अलवर नगर में धारा 144 लगा दी गयी जिसका प्रजामंडल ने जुलूस निकालकर उल्लंघन किया। तब लाठी चार्ज भी हुआ। यह आन्दोलन 11 दिन तक चला जिसमें लगभग 600 गिरफ्तारियां हुई। अन्त में बाहरी नेताओं के प्रयात्नों से फिर प्रजामंडल तथा सरकार के बीच समझौता हो गया। इसी अर्से में मेओं का भी विद्रोह हुआ जो साम्प्रदायिक भावना से प्रेरित था, अतएव इसका वर्णन यहां नहीं किया गया। अंत में सरकार ने प्रजामंडल से सहयोग लेने का आश्वासन दिया और अक्टूबर 1947 में महाराजा ने मंत्री मण्डल में तीन लोकप्रिय मंत्री लेने की घोषणा की; लेकिन प्रजामण्डल ने अपना स्पष्ट बहुमत नहीं होने से इसे स्वीकार नहीं किया। राज्य में वैधानिक सुधारों की बातें 1948 के प्रारम्भ तक चलती रही लेकिन इसका कोई विशेष नतीजा नहीं निकला। अंत में 27 फरवरी 1948 में मिलकर भारत सरकार की योजना के अनुसार एक संघ में जो मत्स्य संघ कहलाता था, सम्मिलित होने का निश्चय कर लिया। मत्स्य संघ की स्थापना 18 मार्च 1948 को हो गई।[108]

भरतपुर और आंदोलन :

भरतपुर में प्रजा परिषद अपने रचनात्मक एवं आंदोलनात्मक कामों में अग्रणी था। 1942 के अगस्त में इसकी कार्यवाही ने प्रचण्ड रूप धारण कर लिया। वर्षा का अभाव और अन्न के उंचे भाव होने से प्रजा को राहत दिलाने के लिए संघर्ष अवश्य था। युद्ध के लिए आर्थिक सहायता के विरोध में सत्याग्रह प्रारम्भ करना था। परिषद द्वारा इसके लिए चेतावनी दी गई परन्तु सरकार ने कोई ध्यान नहीं दिया। इधर से परिषद के नेतृत्व में भरतपुर की जनता ने भी ब्रिटिश भारत में चलने वाले 1942 के जैसा आन्दोलन का तरीका अपनाया। जहां तहां प्रदर्शन किए गए, पिकेटिंग हुए, सरकार की नीति के विरुद्ध आलोचनात्मक भाषण दिए गए तथा भ्रष्ट राज्य कर्मचारियों का अपमान किया गया। राज्य की सीमा पर लगे हुए मीनारें उखाड़ दी गई। तार और टेलीफोन की लाईनें काट डाली। महिलाओं ने भी इस आंदोलन में अच्छी भूमिका निभाई। सरकार का दमन चक्र भी जोरों से घूमने लगा। कितने ही नेताओं को गिरफ्तार कर लिया गया जिनमें श्री

---

108. प्रजामण्डल अलवर सत्याग्रह, फा.नं. 36, 1948, अ.बी.; अलवर राज्य प्रजामंडल गजट, फा.नं. 60, 1947, अ.बी.; अलवर प्रजामंडल फा.नं. 69, 71, 72, 83. 1983, अ.बी.; मेओं विद्रोह पोलिटिकल एण्ड कोन्फीडेन्शल ग्रुप, बस्ता नं. 4 अ.बी.:
पाक्षिक रिपोर्ट, मत्स्य सेक्रेटरियट, 1946; डिस्ट्रक्ट मजिस्ट्रेट डायरी, फाइल नं. 13; विधिविभाग, मत्स्य सेक्रेटरियेट, अ बी.; राजस्थान डिस्ट्रिक्ट, गजेटियर अलवर, पृ. 84-90.

जुगलकिशोर चतुर्वेदी, श्री रेवतीशरण शर्मा, मास्टर श्री आदित्येन्द्र, श्री मोतीलाल लखेरी, श्री किशनलाल जोशी, गिरधारीसिंह गौरीशंकर मित्तल. घनश्याम शर्मा, स्व. पं. रमेश स्वामी, टा. पूर्णसिंह, ठा. जीवाराम, श्री कालूराम, श्री जगतपसिंह आदि प्रमुख थे। इनको कठोर दंड दिया गया। परन्तु फिर भी आन्दोलन की आग नहीं बुझी। यह यह जितनी बुझाई जाती थी उतनी ही भड़कती जाती थी।[109]

पहले फरवरी 1939 में सरकार ने एक केन्द्रीय परामर्शदात्री कमेटी का संगठन किया था। इसका उद्देश्य था कि प्रशासन और प्रजा पास-पास आ सकें। जनता का कहना था कि राज्य के कोष में रुपया जनता से आता है इसलिए जनता को ही खर्च करने का अधिकार होना चाहिए परामर्शदात्री समिति ने 3 वर्ष तक कार्य किया, परन्तु इसके कार्यों से जनता को कोई सन्तोष नहीं हुआ। लोग चाहते थे कि उत्तरदायी शासन स्थापित हो। तब 22 अक्टूबर, 1942 को एक दूसरी कमेटी बनाई गई। इसमें लोगों का प्रतिनिधित्व बढ़ा दिया गया। उनको अधिक अधिकार दे दिए गए और चुनाव क्षेत्र भी विस्तृत कर दिए गये। इसमें 50 सदस्य थे जिसमें 37 निर्वाचित और 13 नामांकित थे। अगस्त 1943 में "ब्रजजया प्रतिनिधि सभा" का निर्वाचन हुआ तो 37 निर्वाचित सदस्यों में से प्रजा परिषद् के 27 लोग निर्वाचित हुए। श्री जुगलकिशोर चतुर्वेदी और मास्टर आदित्येन्द्र क्रमशः भरतपुर असेम्बली के विरोधी दल के नेता और उपनेता निर्वाचित हुए। इस प्रतिनिधि समिति के काम से भी लोग संतुष्ट नहीं हुए क्योंकि समिति को कोई ठोस अधिकार नहीं दिए गये थे। इसलिये अप्रेल, 1945 में सब प्रजा परिषद् के निर्वाचित सदस्यों ने त्याग-पत्र दे दिया।[110]

परिषद् का दूसरा अधिवेशन :

फिर 23 व 24 मई 1945 को भरतपुर राज्य प्रजापरिषद् का दूसरा अधिवेशन बयाना में हुआ। जिसमें अखिल भारतीय देशी राज्य लोक परिषद् के सेक्रेटरी श्री जय नारायण व्यास ने अपने उद्घाटन भाषण में उत्तरदायी शासन की स्थापना पर जोर दिया। जुलाई मास मे भरतपुर राज्य प्रजा परिषद् ने सरकार की अन्न नीति की तीव्र आलोचना की जिसके परिणामस्वरूप 18 कार्यकर्ताओं को गिरफ्तार कर लिया गया। फिर इसी परिषद् का अधिवेशन जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में श्रीनगर, कश्मीर में हुआ। जिसमें श्री जुगलकिशोर चतुर्वेदी और श्री आले मोहम्मद के कारावास दंड की घोर निंदा की गई और महाराजा से आग्रह किया गया कि वे उनको छोड़ दें।[111]

109—कोन्फीडेन्शल फा.नं. 871—पी./38—डिस्टर्बेन्सेज, डिटेंशन, हंगर स्ट्राइक आदि, 1942—4, अ बी.

110—केन्द्रीय परामर्शदात्री कमेटी की रिपोर्ट 30 मार्च 1939, पृ. 5, अ.बी ; पोलिटिकल एण्ड कोन्फीडेन्शल भरतपुर, ग्रुप-ए बस्ता नं. 2, 14, 26/57/2002 अ.बी ; ब्रजजय प्रतिनिधि समितियां कार्यवाही, अगस्त 1943, फा.नं. 26—57—2002, अ.बी.

111—नं. 21—76, हिस्ट्रीशीट भरतपुर, विद्रोही, कोन्फीडेन्शल सेक्शन इंडियन मैनुअल रजिस्टर वोल्यूम 1/जनवरी, जून 1946, पृ. 353. अ बी.; पोलिटिकल एण्ड कोन्फीडेन्शल, भरतपुर ग्रुप-ए बस्ता नं. 1/फाईल नं. 10-16 और 1—7, अ.बी.

25 नवम्बर, 1945 को परिषद् ने रियासत में उत्तरदायी सरकार स्थापित करने की पुन: जोरदार मांग की और यह भी प्रस्ताव पास किया कि बेगार एक्ट, गंगा मन्दिर एक्ट और जामा मस्जिद एक्ट वापस ले लिये जावें। अध्यक्ष ने यह भी नोटिस दिया कि यदि यह प्रार्थना मंजूर नहीं की जाएगी तो सत्याग्रह शुरू किया जायगा। परिषद ने श्री आले मोहम्मद को सत्याग्रह शुरू करने का पूर्ण अधिकार दे दिया। सत्याग्रह प्रारम्भ करने से पहले ही सरकार ने श्री जुगलकिशोर चतुर्वेदी मास्टर आदित्येन्द्र, श्री राजबहादुर और घनश्याम शर्मा को गिरफ्तार कर रखा था। अभी सत्याग्रह शुरू भी नहीं हुआ था कि 31 दिसम्बर, 1945 से उदयपुर में अखिल भारतीय प्रजा परिषद का अधिवेशन हुआ। वहां जयपुर और भरतपुर की धारा सभाओं पर विचार किया गया। श्री माणिक्यलाल वर्मा ने कहा कि ये धारा सभाएं कालेज के यूनियन की सभाएं जैसी हैं। हम तो ऐसी सभाएं चाहते हैं जिनके हाथ में पूर्ण अधिकार हो और राजाओं की पसन्द के मंत्रियों के स्थान पर जनता की पसन्द के मंत्री नियुक्त किए जाएं।[112]

परिषद का तीसरा अधिवेशन:

परिषद् का तीसरा अधिवेशन 17, 18 दिसम्बर 1946 को कामा में हुआ। इसमें डा. पट्टाभिसीतारमैया श्री कृष्णदत्त, श्री पालीवाल, मौलवी हफीजुल्लरहमान आदि उपस्थित थे। इस अधिवेशन में उत्तरदायी शासन की स्थापना और बेगार प्रथा बंद करने पर जोर दिया गया। जब रियासत ने इस मांग पर ध्यान नहीं दिया तो लोक परिषद किसान सभा और मुस्लिम लीग ने सम्मिलित होकर जनवरी, 1947 में बेगार विरोधी आन्दोलन शुरू कर दिया।[113]

काले झंडे :

5 जनवरी को वायसराय लार्ड बेवल और महाराजा शार्दूलसिंह बीकानेर मुर्गाबियों का शिकार करने के लिए घाना के केवलादेव झील पर आए तो आन्दोलनकारियों ने उनको काले झण्डे दिखाए और जिन लोगों को इस काम में बेगार पर पकड़ा गया था उन्हें मुक्त करने के लिए शोर मचाया और हटाये नहीं हटे। इस भीड़ भाड़ में 5 फरवरी को रमेश स्वामी का देहान्त हो गया। इस घटना का विरोध करने के लिए भरतपुर नगर में 17 दिन तक पूर्ण हड़ताल रही। भरतपुर दुर्ग के द्वार पर हजारों लोग एकत्रित हो गए और राज्य के कर्मचारियों को किले के अन्दर अदालतों और दफ्तरों मे नहीं जाने दिया। इसी क्रम में सरकार ने 15 जनवरी को एक मास के लिए आम सभाएं बन्द कर दीं और एक सप्ताह के लिए शहर में करफ्यू लगा दिया। राजनैतिक नेताओं में श्री राजबहादुर, श्री आलेमोहम्मद

112–कान्फीडेन्शल, भरतपुर नं. 10, प्रजा परिषद और पोलिटिकल, अ.बी.;
कान्फी. एक्टीविटी, 1945. नं. 16. 19–16/1 एच. 29, 16–3–46, अ. बी. नं. 37, प्रजा परिषद, राज बहादुर व अन्य गिरफ्तारियां, 1946, अ.बी.; नं. 163 राजबहादुर का ट्राइल, अ.बी.;

113–कान्फीडेन्शल, फा नं. 46, 1946, अ बी.; डा. गौड-कोन्स्टीट्यूशनल डेवलपमेंट पृ. 176–177.

आदि को कानून की अवहेलना करने के अपराध में गिरफ्तार कर लिया गया। मास्टर आदित्येन्द्र और श्री जुगलकिशोर चतुर्वेदी फरार हो गए और बाहर रहकर ही आन्दोलन का संचालन करते रहे। पं० जवाहरलाल नेहरू ने स्थिति की जांच करके रिपोर्ट करने के लिए श्री द्वारकानाथ को भेजा।[114]

अब भरतपुर अलवर और गुड़गांव के जाट लोगों ने मिलकर एक नई मांग खड़ी की। अखिल भारतीय जाट महासभा की मांग थी कि एक नया जाट प्रान्त बनाया जाए। इससे राज्य में साम्प्रदायिक दंगे हुए और यह प्रयास निरर्थक सिद्ध हुआ, जिसका कोई औचित्य भी न था।[115]

आखिरकार महाराजा ने 3 अक्टूबर, 1947 को घोषणा की कि जनता में से दो व्यक्तियों को मंत्री नियुक्त किया जायगा और रियासत के प्रशासन के लिए संविधान बनाने के हेतु 11 सदस्यों की एक समिति बनाई जाएगी जिसमें राज्य के सब वर्गों के लोग लिए जायेंगे। इस घोषणा से प्रजापरिषद् को कोई संतोष नहीं हुआ। उत्तरदायी शासन के लिये आन्दोलन चलता रहा। रियासत की राजनैतिक स्थिति बड़ी शीघ्रता से बदलती रही। तब विवश होकर दिसम्बर, 47 में महाराजा ने चार लोकप्रिय मन्त्री लिये-उनके नाम मास्टर आदित्येन्द्र, श्री गोपीलाल यादव, श्री हरिदत्त गुप्त और ठाकुर देशराज थे। पहिले दो परिषद् की ओर से और तीसरे चौथे किसान सभा से लिये गये थे। भरतपुर राज्य प्रजा परिषद् के कार्य की सराहना करते हुए डाक्टर पट्टाभिसीतारमैया सार्वदेशिक देशी राज्य प्रजापरिषद के उप प्रधान ने एक आम सभा में कहा था "सामन्तशाही के दिन अब समाप्त हो गये हैं और लोक राज्य तथा लोकतन्त्र का युग आ गया है। भविष्य में न तो जाट राज्य होगा न राजपूत राज्य होगा, किन्तु लोक राज्य होगा।"[116]

नए मन्त्री मण्डल ने लगभग तीन मास कार्य किया। फिर 18 मार्च, 1948 को अलवर, भरतपुर, धौलपुर और करौली को मिलाकर मत्स्य संघ का निर्माण कर दिया गया।[117]

धौलपुर :-

जैसा कि हमने ऊपर पढ़ा धौलपुर में राजनैतिक जागृत सर्वप्रथम 8 अगस्त, 1918 को आर्य समाज ने की थी। इसका नेतृत्व स्वामी श्रद्धानन्द ने किया था और इसके प्रमुख कार्यकर्त्ता राव राजा तेजसिंह (जोधपुर) श्री चांदकरण शारदा (अजमेर), श्री गौरीशंकर (अजमेर), श्री रामस्वरूप वैद्य और श्री जौहरीलाल इन्दु तथा श्री सालिगराम वकील (आगरा वाले) थे। आन्दोलन शुरू होते ही डा. मंगलसिंह को जो हिन्दू विश्वविद्यालय

114- फाइल नं. स/सी बी.बी.बन 13/ 214/ राजपूताना के राज्यों की पाक्षिक घुफिया रिपोर्ट, भरतपुर आर.जी.ए.

115- कान्फीडेन्शल, भरतपुर, ग्रुप-ए-, नं.सी 38/ 65, भरतपुर जाट सभा, अ बी.

116-सीक्रेट रिपोर्ट नं. 557/2178, पी, 13 मार्च, 1947, भरतपुर राजपत्र (विशेषांक), 18 अगस्त, 1947, भा. 38, अ.बी. वही, 15 सितम्बर, 1947, भा. 38, अ.बी.

117-हिन्दुस्तान टाइम्स, मार्च 18, 1948.

के मेडिकल ग्राफिसर ग्रौर मालवीय जी के सेक्रेट्री रह चुके थे गिरफ्तार कर लिया गया। इनके अतिरिक्त कितने ही ग्रन्य कार्यकर्ताओं को गिरफ्तार करके कठोर दंड दिया गया। परन्तु स्वामी श्रद्धानन्द जी के देहान्त हो जाने के कारण आन्दोलन बंद कर दिया गया और फिर 1936 में जागृत हुग्रा।[118]

इसी वर्ष (1936) धौलपुर राज्य प्रजामण्डल की स्थापना हुई। श्री कृष्णदत्त पालीवाल (ग्रागरा निवासी) मंडल के प्रधान ग्रौर श्री मूलचन्द मंत्री बनाए गए शीघ्र ही राज्य ने दमन नीति चलाई। इसके अन्तर्गत प्रजामण्डल की सम्पूर्ण सम्पत्ति जब्त कर ली ग्रौर जौहरीलाल इन्दु को रियासत से निर्वासित कर दिया। उसका ग्रपराध था कि वह प्रजामण्डल के साथ सहयोग करता था। 14 जुलाई 1938 को प्रजामण्डल ने एक प्रार्थना पत्र पेश करके मांग की कि रियासत में उत्तरदायी शासन स्थापित किया जाए ग्रौर प्रजामण्डल को मान्यता दी जाए, सब राजनैतिक कैदियों को मुक्त किया जाए तथा प्रजामण्डल की शाखाएं खोलने की और आम सभाएं करने की एवं हड़तालें करने की इजाजत दी जाए परन्तु गवर्नमेन्ट ने इन मांगों पर कोई ध्यान नहीं दिया। बल्कि सभा, भाषण, जुलुस आदि पर रोक लगा दी। सरकार ने 1941 के ग्राचरण सम्बन्धी नियम बनाकर राजकीय अधिकारी को आन्दोलन में भाग लेने से वंचित कर दिया।[119]

परन्तु धौलपुर के प्रजामंडल ने इन ग्रादेशों की अवहेलना की 1942 में तो आंदोलन ने उग्र रूप धारण कर लिया। श्री ओम प्रकाश वर्मा इसमें भूमिगत रह कर तोड़-फोड़ के आतंकवादी कामों में लगे रहे। 12 नवम्बर, 1946 को तसीमों गांव में प्रजामंडल का एक अधिवेशन करके उत्तरदायी शासन की मांग की। इस सभा पर रियासत की पुलिस ने बड़ा बर्बर आक्रमण किया। पंडाल में खूब खून खच्चर हुआ। रियासत के इलाकों में भी ऐसा ही हुग्रा। लोगों को भयभीत करने के लिये गुण्डों को मजदूरी देकर रखा गया और प्रजामण्डल का झण्डा नहीं फहराने दिया। किसानों के मकान लूट लिये गए। स्त्रियों का घोर अपमान किया गया। तब 23 दिसम्बर, 1946 को प्रजामण्डल ने ने एक मीटिंग करके एक स्वयंसेवक दल इस हुड़दंग को रोकने के लिए तैयार किया। मार्च, 1947 में कई प्रतिष्ठित पत्रों के प्रतिनिधि इन घटनाग्रों की जांच करने के लिए धौलपुर में ग्राना चाहते थे परन्तु सरकार ने उनको नहीं ग्राने दिया। इस विषय में अखिल भारतीय प्रजा परिषद् के प्रधान डा. पट्टाभिसीतारमैया ने धौलपुर नरेश को पत्र लिखकर इन घटनाग्रों की जाँच करवाने की मांग की परन्तु उनको कोई उत्तर नहीं मिला ग्रौर दमन-चक्र चलता रहा। चूंकि तसीमों गांव के लोगों ने प्रजामण्डल को सहायता दी थी 8 ग्रप्रेल 1947 को गाँव के लोगों पर पुलिस ने गोलियां चलाई जिसमें ठा. चतुरसिंह ग्रौर ठा. पंचमसिंह मारे गये। तब प्रजा परिषद ने डा. पट्टाभिसीतारमैया ने श्री हीरालाल शास्त्री ग्रौर श्री गोकुल भाई भट्ट को स्थिति की जांच करने भेजा।[120]

118-प्रजामण्डल धौलपुर, सम्बन्धी पत्र नं. 1, 1935-55, अ.बी.; कामठान, गंगा प्रसाद, धौलपुर का राजनैतिक इतिहास, पृ. 5-8.

119-प्रजामण्डल धौलपुर सम्बन्धी पत्र, 1935-55, ग्र.बी.

120- प्रजामंडल फाइल, धौलपुर, पृ. 42, आर.जी.ए., डा. गौड़-कोन्स्टीट्यूशनल डेवलेपमेंट इन ईस्टर्न राजपूताना स्टेट्स, पृ. 1980-81.

नवम्बर, 1947 में प्रजामण्डल ने धौलपुर में एक अधिवेशन करना चाहा परन्तु सरकार ने नहीं करने दिया। इस सभा पर डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट ने पाबन्दी लगा दी। लेकिन मण्डल ने इसकी उपेक्षा करके 17, 18 नवम्बर 1947 को विशाल राजनैतिक सम्मेलन बुलाया। इसका उद्घाटन अखिल भारतीय कांग्रेस के जनरल सेक्रेट्री श्री शंकर-राव देव ने किया जिसके अध्यक्ष डाक्टर राम मनोहर लोहिया थे। इस सम्मेलन में उत्तर-दायी शासन की स्थापना, भ्रष्टाचार और काला बाजार को रोकने और धौलपुर की जनता की आर्थिक, सामाजिक और शैक्षणिक उन्नति करने के प्रस्ताव पास किये गये। राज्य के किराये के गुन्डों ने मीटिंग में गड़बड़ की। उन्होंने लोगों के साथ हाथापाई की, दुकानें लूट लीं और वे प्रजामण्डल के लोगों के मकान में घुस गये। परन्तु जनता का आंदोलन इतना उग्र हो चुका था कि शान्ति असम्भव थी। तो महाराजा उदयभानसिंह ने प्रजामंडल के प्रधान से उत्तरदायी शासन स्थापित करने के विषय में बातचीत करने का विचार किया और घोषणा की कि 4 मार्च को वैधानिक सुधारों का प्रारूप घोषित कर दिया जाएगा और गांवों में हुए अत्याचारों की जांच के लिए कमीशन बिठा दिया जायेगा। परन्तु घट-नाएं इस द्रुतगति से घट रही थीं कि 18 मार्च, 1948 को धौलपुर भी मत्स्य संघ में सम्मिलित हो गया।[121]

करौली

जैसा कि ऊपर हमने पढ़ा करौली में अलवर, भरतपुर और धौलपुर जैसी जन जागृति नहीं थी परन्तु इन राज्यों के प्रजामंडलों से करौली प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता था। 1938 में श्री त्रिलोकचंद माथुर और श्री चिरंजीलाल शर्मा, श्री कल्याणदास गुप्ता, श्री कृष्ण प्रसाद पूरन और श्री मानसिंह ने करौली राज्य प्रजामण्डल की स्थापना की।

इसका उद्देश्य था कि राज्य की प्रजा की आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक दशा सुधारी जाए। सरकार को यह कार्यवाही पसंद नहीं आई। उसने प्रजामण्डल के साथ सहा-नुभूति रखने वालों को तंग किया और दुःख देना शुरू किया। श्री कल्याणदास गुप्ता ने वकालत छोड़कर मण्डल की सदस्यता ग्रहण करली। उस पर राजद्रोह का मुकदमा चलाया गया। इसी प्रकार श्री भंवरलाल पर भी राजद्रोह का अपराध लगाकर उसके पिता के समय की दी हुई जागीर जब्त करली। ठाकुर पूरणसिंह (जेलर करौली) को अपने पद से हटा दिया गया। प्रारंभ में जनता ने उत्तरदायी शासन की मांग नहीं की थी, केवल कुछ शिकायतों को दूर करने के लिए और भ्रष्टाचार मिटाने को निवेदन किया था। अप्रेल 1939 में करौली में प्रजामण्डल का अधिवेशन हुआ। जिसमें कई प्रस्ताव पास किए गए और यह मांग की गई कि सरकारी सभाएं स्थापित की जाएं, बेगार हटाई जाय, करौली

121- डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट का पत्र नं. 313, नवम्बर 11, 1947 अध्यक्ष धौलपुर प्रजा-मण्डल को. फा नं. 16, 1947-48, कान्फ्रेन्स के अधिवेशन सम्बन्धी आर. जी. ए.;
सरदार पटेल को पत्र नं. 17, 1947 द्वारा मैसर्स ज्वाला प्रसाद व ओम प्रकाश, धौलपुर प्रजामण्डल फाइल नं. 17, 1947-48; डा. गौड़-कोंस्टिट्यूशनल डवलपमेंट आफ ईस्टर्न राजपूताना स्टेट्स, पृ. 178-182.

नगर परिषद् के सारे सदस्य निर्वाचित किए जाएं। इसके लिए पांच सदस्यों का एक आयोग बनाया जाए जिसमें 3 सदस्य निर्वाचित हों। परन्तु सरकार ने इस प्रार्थना पर कोई ध्यान नहीं दिया।[122]

जब 1942 की क्रांति आरम्भ हुई तो यहां के कार्यकर्त्ताओं ने प्रदर्शन व भाषणों द्वारा आन्दोलन को सजीव रखा। सरकार भी पकड़-धकड़ में किसी कदर पीछे नहीं रही। नवम्बर, 1946 में पड़ौस के राज्यों के कार्यकर्त्ताओं ने करौली में एक सभा की। इस सभा में सर्वप्रथम उत्तरदायी शासन की मांग उठाई गई। प्रशासन की निन्दा करने के लिए शासन पद्धति की बुराइयां प्रकट करने के लिए और दमनकारी कानून का विरोध करने के लिए ग्राम सभाएं की गई और जुलूस निकाले गए। आन्दोलन को शांत करने के लिए राज्य द्वारा जुलाई, 1947 में वैधानिक सुधारों की तजवीज पेश करने के लिए 11 सदस्यों की एक समिति का निर्माण किया। प्रजामण्डल ने चाहा कि उसके भी तीन प्रतिनिधि लिए जाएं परंतु सरकार ने नहीं माना और आन्दोलन की प्रक्रिया चलती रही तथा 1948 तक करौली शासन दमन से बाज न आया, जब तक मत्स्य संघ में सम्मिलित नहीं हो गया।[123]

टोंक

टोंक में भी इसी प्रकार के आन्दोलन हुए जो राजस्थान में अन्यत्र हो रहे थे। इनमें महंगाई, कर व न्याय प्रणाली से असंतोष की मांगे प्रमुख थीं। टोंक नवाब ने समय की गति को देखकर कुछ शासन में सुधार किये। म्युनिसीपैलीटी और पंचायतों की व्यवस्था नए रूप से की गई और न्याय व्यवस्था को स्वतन्त्र बनाने का प्रयत्न किया गया। मजलिस ए-आम को 2 नवम्बर, 1939 को नवाब के फर्मान के द्वारा स्थापित किया गया जिसमें 26 निर्वाचित तथा नामजद सदस्यों की व्यवस्था रखी गई। मुस्लिम तथा अतिरिक्त मुस्लिम नागरिकों के निर्वाचन की प्रक्रिया भी इस प्रबन्ध में सम्मिलित की गई। परन्तु ये सुधार उत्तरदायी शासन के अनुकूल न थे। टोंक नवाब किसी तरह आन्दोलन को इन सुधारों द्वारा दबाना चाहता था। वे ब्रिटिश सत्ता के प्रति निष्ठावान थे। दूसरे विश्व युद्ध के लिए चंदा इकट्ठा करने में नवाब अधिक रुचि रखते थे। समय की गति से अंत में 1947 के भारतीय स्वतन्त्रता के प्रवाह में टोंक को भी राजस्थान के राज्य में 25 मार्च, 1948 को विलय होना पड़ा।[124]

122–त्रिलोकचन्द माथुर का 28 अप्रेल, 1939 का पत्र हरिभाऊ उपाध्याय को, शोधक भा–4, सी.सी.नं. 12, पृ. 597–98; प्रजामण्डल फा. करौली नं. 1–2 1939.

123–फाइल नं. सी. बी./बी. एन. 13/ 215/ पाक्षिक खुफिया रिपोर्ट, राजपूताना स्टेट, आर. जी. ए.; हिन्दुस्तान टाइम्स, 14 अप्रेल 1947; अ. बी. प्रजामण्डल करौली, फा. नं. 6, करौली राज्य प्रजामण्डल; गौड़, कोन्स्टिट्यूशनल डेवलपमेन्ट आफ ईस्टर्न राजपूताना स्टेट्स, पृ. 182–183; सुमनेश जोशी, पृ. 525–26.

124–कोन्फी. रिपोर्ट नं. 106, 18, 21 जनवरी 1921; अ. बी.; फा. नं. 3, टोंक स्टेट एजीटेशन एण्ड स्टेट्स पिपुल कान्फ्रेन्स सम्बन्धी पुस्तिका, पृ. 11–16, 53–54, अ. बी.; टोंक राज्य की एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट, 1921, 1943–45 पृ. 66; राजस्थान डिस्ट्रिक्ट गजेटियर, टोंक, पृ. 27–32.

किशनगढ़

किशनगढ़ का राज्य अजमेर के निकट होने से स्वतंत्रता के आन्दोलन से न बच सका अन्य राज्यों की भांति यहां भी दमनचक्र चलता रहा। समय समय पर प्रजामण्डल के कार्यकर्त्ताओं की गिरफ्तारियां होती रहीं और राष्ट्रीय नेताओं के प्रदर्शन तथा राष्ट्रीय तथा राष्ट्रीय भावना के साहित्य एवं समाचार पत्रों पर रोक यथावत लगती रही। आखिर इस राज्य को भी राजस्थान में मिलकर अपनी सत्ता का अंत करना पड़ा।[125]

राजाओं के स्थान पर जनता का राज्य :

ऊपर हमने पढ़ा कि जनता ने अपनी उचित मांगों के लिए आन्दोलन किया तो बहुत समय तक रियासतों की सरकारों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। जयपुर में राज्य प्रजामण्डल का अधिवेशन हुआ, जिसकी अध्यक्षता कृपलानी ने की। अपने अध्यक्षीय भाषण में उन्होंने कहा "यदि भारतीय नरेश अपनी प्रजा को उत्तरदायी शासन दे दें तो उनकी कोई हानि नहीं होगी और वे इंगलैण्ड के राजा की भांति लम्बे अर्से तक अपनी गद्दियों पर टिके रहेंगे। यदि उन्होंने ऐसा नहीं किया तो इसका परिणाम वैसा ही होगा जैसा फ्रांस और रूस का हुआ है। अलवर, भरतपुर आदि राज्यों में प्रतिनिधि संस्थाएं स्थापित हो गई हैं परन्तु उनमें बहुत कमियां हैं वास्तविक शक्ति राजा और उसके मंत्रियों के हाथ में हैं। महत्वपूर्ण विभाग लोक सभाओं को नहीं दिए हैं। इस वक्तव्य का राजाओं पर वांछित प्रभाव नहीं पड़ा।[126]

अगस्त, 1942 में भारत छोड़ो आन्दोलन शुरू हुआ। राजपूताने में प्रायः प्रत्येक राज्य में यह आन्दोलन फैल गया। जहां तहां प्रजामण्डल बन चुके थे वहां आन्दोलन ने जोर पकड़ा। कई प्रजामण्डलों ने अपने शासकों को नोटिस दिया कि सर्वोच्च अंग्रेज सत्ता से अपना सम्बन्ध विच्छेद करके अपनी जनता के साथ सम्बन्ध स्थापित करें। इसका परिणाम यह हुआ कि प्रजामण्डल के कितने ही कार्यकर्त्ताओं को गिरफ्तार कर लिया और कितने ही गुप्त रूप से काम करते रहे। रियासतों की जनता को तीन शक्तियों का मुकाबला करना था, अपने राजाओं का ठिकानेदारों का और फिर अंग्रेज सरकार का जो राजाओं व ठाकुरों की पीठ ठोकती थी। इससे ये स्पष्ट था कि अंग्रेज सत्ता से हट जाने पर रियासतों की जनता को शान्ति मिल सकती है। रियासतों की जनता ब्रिटिश भारत के आन्दोलन से सहानुभूति रखती थी। 18 अप्रेल, 1947 को ग्वालियर में अखिल भारतीय राज्य लोक

125– कान्फीडेन्शल फाइल नं. 17, ओबजेक्शनेबल, पब्लिकेशन, नं. 27, जमनालाल बजाज का आना, 9-4-40, नं. 30, अ.बी. प्रजामण्डल किशनगढ़. नं. 33 स्वराज का बिगुल पुस्तिका, अ.बी.

126– हिन्दुस्तान टाइम्स 14 अप्रेल, 1947.

परिषद् में अध्यक्षीय भाषण देते हुए डा पट्टाभिसीतारमैया ने कहा कि अब ऐसा समय आने वाला है जब जनता और शासक एक ही उद्देश्य की ओर बढ़ेंगे। राजाओं के ठाट-बाट के स्थान पर अब जनता का राज्य स्थापित हो जायगा।[127]

इन चेतावनियों के बीच जनता और नरेशों का संघर्ष चलता रहा। नरेश अपनी परम्परागत मान्यता के क्षेत्र अत्याचार और दमन के मार्ग पर चलते रहे और राजस्थान के स्वतन्त्रता सेनानी अपनी निष्ठा और त्याग के बल पर अपने सिद्धान्तों का अनुसरण करते रहे। अन्ततोगत्वा इस कशमकश में विजय सत्य और अहिंसा की रही और राजस्थान भारतीय स्वतंत्रता से कदम मिलाकर आजाद हो गया। यह सत्ता की पराजय और त्याग की विजय थी। इसके फलस्वरूप राजस्थान की कई छोटी छोटी इकाइयां मिलकर वृहत् राजस्थान में परिणत हो गई, जिसका वर्णन आगे अध्याय में किया जायगा।

127-इंडियन एन्युअल वोल्यूम प्रथम, जनवरी से जून कलकत्ता एन्युल रजिस्टर ऑफिस पृ. 214.

अध्याय 13

विलिनीकरण

राजस्थान में ब्रिटिश सत्ता और नरेशों की स्थिति :

राजस्थान के देशी राज्यों की सत्ता का भाग्य 1935 से पहले ही अस्त होने लग गया था। छोटी और बड़ी रियासतें सब 1930 और 1947 के बीच बहुत निर्बल हो चुकी थीं। उनका कोई संगठन नहीं था। वहां के शासक किंकर्तव्य विमूढ़ और भविष्य से अनभिज्ञ थे। अंग्रेज सरकार ने भी इन रियासतों में उत्तरोत्तर अधिक हस्तक्षेप करना प्रारम्भ कर दिया था। नरेश भी इनके भरोसे निश्चिन्त और प्राय: अकर्मण्य हो गये थे सन् 1920 के बाद से ही जो भी आलोचनाएं इनके सम्बन्ध में हुई उसका उत्तरदायित्व रियासतों तथा ठिकानों पर ही था। उनकी शासन व्यवस्था खोखली थी। अभाग्यवश 1930 तक किसी भी राज्य ने कोई कारगर वैधानिक सुधार नहीं किये थे। इसी कमी को लेकर राजस्थान में जनता का आन्दोलन तीव्र हो चुका था और उत्तरदायी शासन की मांग शुरू हो गयी थी। तब भारत सरकार भी अनुभव करने लगी थी कि रियासतों में धीरे धीरे कुछ प्रगति होनी चाहिए। साथ ही सरकार यह भी जानती थी कि यदि शीघ्र ही शासन का ढंग बदल दिया जायेगा तो रियासत के लोग और अधिकार की मांग करेंगें विवश होकर यदि कोई राजा कुछ वैधानिक सुधार करने के लिए तैयार हो जाता था तो सरकार यह भी देखती थी कि उसके पड़ोसी राज्य का क्या रुख है। सरकार को यह ख्याल था कि एक राज्य में सुधार हो और एक में नहो तो एक राज्य उन्नत और एक पिछड़ा हुआ माना जाएगा और राजनैतिक विडंबना हो जायगी। इसके लिए पोलिटिकल एजेन्टों को सरकार ने हिदायत की थी कि वैधानिक सुधार की सलाह देते समय पड़ोसी राज्य की स्थिति को ध्यान में रखना आवश्यक है। यही एक कारण था कि राजस्थान के राज्यों में कुछ वैधानिक सुधार न हो सके और न जनताकी उत्तरदायी शासन व सुधारों की मांग पूरी हो सकी। इसका दूसरा कारण यह था कि रियासतों के अधिकांश पोलिटिकल ऐजेन्ट प्रजातन्त्र के विरोधी थे। उनकी सहानुभूति राजाओं के साथ थी, वे चाहते थे कि राजा पूर्ववत बने रहें। इसलिए पब्लिक सेफ्टी एक्ट, प्रेस एक्ट, रजिस्ट्रेशन ऑफ सोसाइटी एक्ट आदि अधिनियमों को राज्य में लागू करवा कर इन नरेशों की स्थिति को बहुत समय तक यथावत बनाये रखा गया। परन्तु वहां के पोलिटिकल ऐजेन्ट रेजीडेन्ट तथा वाइसराय 1938 के लगभग इस नतीजे पर पहुंच चुके थे कि अब इन रियासतों को नहीं बचाया जा सकता।[1]

1—ब्रिटिश क्राउन एण्ड द इंडियन स्टेट्स, डाइरेक्टरेट ऑफ द चेम्बर ऑफ प्रिन्सेस, 1929, पृ. 5, 109.
प्रोटेक्शन अगेन्स्ट डिसएफेक्शन, द इंडियन स्टेट्स एक्ट, सेक्शन 3 (1):
द हिन्दुस्तान टाइम्स, मई 9 व 11 अगस्त 27, 1938.

इसके अनन्तर जब 1942 में क्रिप्स प्रस्ताव आया तो उसमें भी देशी रियासतों के लिए यह प्रावधान था कि यदि वे नए संविधान पसन्द करेंगे तो परिस्थिति के अनुकूल अपने अपने राज्य के साथ की गई सन्धियों के हेरफेर करने का भारतीय राज्य से परामर्श कर लेंगे। इस सुझाव से राजस्थान के नरेश, अन्य नरेशों की भांति भयभीत हो गये। उन्हें ऐसा लगा कि यदि हेरफेर करने के अवसर पर अंग्रेजी सरकार और देशी राज्यों की पक्षधर नहीं रहेगा। इस भावना को जाम साहब ने 3 जुलाई, 1942 की नरेन्द्र मण्डल की स्टैंडिंग कमेटी में व्यक्त किया था। जब भोपाल के नवाब नरेन्द्र मण्डल के चान्सलर बने तो उन्होंने पोलिटिकल डिपार्टमेंट पर दबाव डाला कि राजाओं के अधिकारों को सुरक्षित रखा जाना चाहिये, क्योंकि उन्हें अब भय था कि इंगलैण्ड की सरकार क्रमश: कांग्रेस की शक्ति के सामने झुककर देशी राज्यों के अधिकारों को हानि पहुंचा सकती है।[2]

वास्तव में हुआ भी ऐसा ही जैसे सोचा जा रहा था। जब इंगलैण्ड में लेबर दल की विजय हुई तो एटली दल का नेता बना और उसने 26 जुलाई को घोषणा की कि ब्रिटिश भारत और देशी राज्यों को मिलकर यह सोचना होगा कि भारत को स्वतन्त्रता की दिशा में आगे कैसे बढ़ाया जा सकता है। उनका यह भी सुझाव था कि ऐसे मसलों का हल राजाओं तथा भारतवासियों को स्वयं ही निकाल लेना चाहिये। मार्च 1946 के केबीनेट मिशन ने भी यह स्पष्ट कहा कि भारत के स्वतन्त्र होने की हालत में ब्रिटिश कामन वेल्थ में जो सम्बन्ध सम्राट और देशी राज्यों में थे व न रहने पाएंगे। ऐसी सूरत में विदेशी सम्बन्ध, सुरक्षा और यातायात के विषय उन्हें संघ को देने होंगे। अन्य विषयों के लिए उन्हें संघ से बातचीत कर निर्धारित करना होगा। इस प्रकार "कोन-एसेम्बी" में राजस्थान के लिए 93 सीटों में 13 सीटें ही मिलने की व्यवस्था थी और चयन प्रक्रिया को राज्य और भारतीयों को मिलकर तय करना था।[3]

जहां एटली भारतीय स्वतन्त्रता के पक्ष में था राजनैतिक विभाग का सचिव कोनार्ड कोरफील्ड इस प्रक्रिया में ढील करने में लगा हुआ था। वह हस्तान्तरण के काम में विलम्ब करवा कर नरेशों को अपने स्वतन्त्र राज्य बनाये रखने के पक्ष में था। जो नरेश भारतीय यूनियन में मिलने से हिचकते थे वह उन्हें और उलझन में डालता रहता था। यह वही व्यक्ति था जिसने कई टन दस्तावेज जलवा दिये थे जो ब्रिटिश साजिश से सम्बन्धित थे। वह भोपाल तथा हैदराबाद के नवाब से गुप्त मन्त्रणा करता था और उन्हें अपने स्वतन्त्र अस्तित्व बनाये रखने में सहायता उपलब्ध कराने का आश्वासन देता था। ये चालें नरेशों को ठीक लग रही थीं, क्योंकि उन्हें भय था कि संघ में मिलने से उनकी

2-वी.पी. मेनन द स्टोरी ऑफ द इन्टीग्रेशन आफ द इंडियन स्टेट्स, पृ. 52; मित्रा एन्युल रजिस्टर भा. 2, जुलाई 5 दिसम्बर, 1942, पृ. 331.

3-मन्त्रिमण्डल मिशन, 1946, पैरा-15;
वी.पी. मेनन, द ट्रान्सफर ऑफ पावर इन इंडिया, पृ 335; वी.पी. मेनन, द स्टोरी ऑफ द इन्टीग्रेशन आफ द इंडियन स्टेट्स पृ. 60; डा. लक्ष्मणसिंह-पोलिटिकल एण्ड कोन्स्टीट्यूशनल डेवलमेन्ट इन द प्रिंसली स्टेट्स आफ राजस्थान, पृ. 119-120.

खान, कर आदि से होने वाली आय समाप्त हो जायेगी और उनके राज्य में उनके अधिकार समाप्त हो जायेगें। अपने 8,9 व 10 जून, 1946 के नरेन्द्र मण्डल की सलाहाकार कमेटी और स्टेण्डिग कमेटी के भाषण में कोरफील्ड ने मिथ्या वायदों से नरेशों को उनकी प्रतिष्ठा और पद बनाये रखने का आश्वासन दिलाया था। इससे उनमें हिम्मत का संचार हुआ। 29 जनवरी, 1947 के बम्बई में होने वाले नरेन्द्र मण्डल के अधिवेशन में नरेशों ने कुछ शासन के विषयों को अपने हाथ में रखने और समझौते को मानना या न मानना वैकल्पिक प्रस्तावित किया था।[4]

इससे नरेशों में एक खलबली मच गई. अधिकांश नरेश बम्बई प्रस्ताव के पक्ष में थे, क्योंकि वे अपने अधिकारों पर ममत्व रखते थे। कुछ एक अपने सैनिक बल पर गर्व कर अंतरिम सरकार से टक्कर लेने को उतारू थे।[5]

राजस्थान में भी उनके भावी स्वरूप के लिए कई प्रकार की व्यवस्थाएं सोची जा रही थीं। राजपूत राज्यों को एक संघ बनाने की आयोजना पर विचार करने के लिए मार्च, 1946 को जयपुर, जोधपुर, बीकानेर, अलवर और कोटा के दीवान एकत्रित हुए। इसमें यह सोचा गया कि आपसी स्वार्थ के विषयों पर तथा राज्यों की सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक विषयों पर विचार करने के लिए एक संगठन बनाया जाय जो समय समय पर मिलकर इन मुद्दों को तय करें। 8 जुलाई, 1946 को इन राज्यों के दीवान तथा वरिष्ठ प्रतिनिधि कोटा में एकत्रित हुए। इन्होंने इसके लिए एक कमेटी बनाई जो इससे सम्बन्ध का विधान बनावे। परन्तु यह व्यवस्था कार्यान्वित न हो सकी क्योंकि इन राज्यों के नरेशों में बड़े, छोटे की मान्यता तथा आपसी द्वेष था। प्रत्येक नरेश अपने व्यक्तित्व को एकाकी रखना चाहता था और घटनाचक्र इस तेजी से चल रहा था कि इसकी स्थिति किं-विमूढ़ सी बन गई थी। छोटी रियासतों जैसे—डूंगरपुर, झालावाड़, शाहपुरा, बांसवाड़ा आदि को यह सन्देह था कि राजपूताना संघ बन जाने से उनकी स्थिति नगण्य हो जायगी और वरिष्ठ राज्यों का प्रभाव बढ़ जायगा। भोपाल नवाब राजस्थान और मध्य भारत के राज्यों को एक बनाने की योजना सोच रहे थे। बम्बई की मारवाड़ी फेडरेशन में 6 अप्रेल, 1947 को भाषण के दौरान श्री के.एम. मुन्शी ने राजपूताना, गुजरात और मालवा को मिलाकर वृहद् राजस्थान की कल्पना की थी। छोटी रियासतें बड़ी रियासतों में मिलने में प्रतिष्ठा खोने की आशंका रखती थी। भारत सरकार कुछ रियासतों को मध्य प्रदेश में और कुछ को अजमेर में मिलाने और बड़ी रियासतों को अपनी ही इकाई में रखने का विचार कर रही थी। देशी राज्य लोक परिषद् राजस्थान एक इकाई बनाने के पक्ष में थी।[6]

4– वी. पी. मेनन, द स्टोरी आफ द इन्टीग्रेशन आफ द इंडियन स्टेट्स, पृ. 69, नीलकंठ शास्त्री, श्रीनिवासाचारी, एडवान्स्ड हिस्ट्री आफ इंडिया, पृ. 753–754.

5– केम्पेल–जॉनसन, मिशन विथ माउन्टबेटन, पृ. 354.

6– केम्पेल–जोनसन, मिशन विथ माउन्टबेटन, पृ. 354; द हिन्दुस्तान टाइम्स, अप्रेल, 7, 1947;

डा. लक्ष्मणसिंह, पोलिटिकल एन्ड कोन्स्टिट्यूशनल डेवलपमेन्ट, पृ. 136.

एटली ने देखा कि भारत में स्थिति बिगड़ रही है, उन्होंने 20 फरवरी, 1947 को पार्लियामेन्ट में घोषणा कर दी कि जून, 1948 को भारतवर्ष को आज़ाद कर दिया जाएगा। इसके साथ-साथ यह भी एलान कर दिया था कि लार्ड वेवल के स्थान पर लार्ड माउन्टबेटन को गवर्नर जनरल नियुक्त किया जायगा। इसके अनुसार 24 मार्च, 1947 को माउन्टबेटन ने गवर्नर जनरल के पद की शपथ ग्रहण की।[7]

एटली की पसन्द माउन्टबेटन :

एटली ने माउन्टबेटन को वायसराय के पद के लिए इसलिए पसंद किया था कि वह बड़ा स्फूर्तिमान व्यक्ति था। उसके व्यक्तित्व में ओज और तेज था सर्वाधिक गुण उसमें यह यह था कि वह सब प्रकार के लोगों के साथ निभा सकता था। माउन्टबेटन के सुपुर्द जो काम किया जाता था वह जल्दी से जल्दी हो जाया करता था। वह जल्दी से इस काम से निपट कर पुनः अपने पूर्व पद पर लौट जाना चाहता था।[8]

माउन्टबेटन और किंग जार्ज :

जब वायसराय लार्ड माउन्टबेटन भारत के लिए प्रस्थान करने लगा तो किंग जार्ज ने उसको अपने बंकिंघम महल में बुलाया और बातचीत के मध्य में उसने कहा कि "भावी बातचीत में भारतीय नरेशों की क्या स्थिति होगी, उसकी मुझे चिन्ता है क्योंकि उनको ब्रिटेन के साथ सीधा संधि सम्बन्ध है। जब भारत को स्वतंत्रता मिल जायेगी तो ये संबंध ब्रिटेन से समाप्त हो जाएगा। अगर ये लोग नये राष्ट्र या राष्ट्रों से कोई संबंध नहीं जोड़ लेंगे तो उनकी स्थिति बड़ी खतरनाक हो जायगी "किंग जार्ज ने माउन्टबेटन से कहा "तुम मेरे चचेरे भाई हो, तुम इन नरेशों को समझाना कि होनहार को स्वीकार करके वे नई सरकार से समझौता करलें।[9]

किंग जोर्ज क्या चाहता था वह माउन्टबेटन को स्पष्ट नहीं हुआ। वह यह समझा होगा कि रियासतों को भारतवर्ष में या पाकिस्तान से मिला दिया जाए। माउन्टबेटन को इतना समय भी नहीं था कि वह इस बात पर विशेष ध्यान देता। उसको इन नरेशों की चिन्ता नहीं थी। वह उनको अर्द्ध शिक्षित व निरंकुश शासक मानता था। उसका ख्याल था, कि कांग्रेस की शक्ति को बढ़ते हुए देखकर उन्होंने अपने प्रशासन को जनतंत्रीय नहीं किया, यह उनकी बड़ी भूल थी और फिर 1935 में जब भारतीय संघ बनाने का अवसर आया तो वे उसमें सम्मिलित नहीं हुए यह दूसरी भूल थी।[10]

जब माउन्टबेटन भारत में आया तो उसने देखा कि जो अंतरिम सरकार काम कर रही है उसे नई व्यवस्था में ढालना है। ये कार्य बड़ा विकट था। कांग्रेस संयुक्त भारत और

7- केम्पेल जोनसन–द मिसन विथ माउन्टबेटन, पृ. 354.

8- मोसले लियोनार्ड, दी लास्ट डेज ऑफ ब्रिटिश राज, पृ. 178.

9- मोसले लियोनार्ड, द लास्ट डेज ऑफ ब्रिटिश राज, पृ. 177.

10- मोसले लियोनार्ड, द लास्ट डेज ऑफ ब्रिटिश रा. पृ. 187.

मुस्लिम लीग विभाजित भारत चाहती थी। दोनों को एक साथ प्रसन्न रखना कठिन था। साथ ही हिन्दु मुस्लिम दंगों को भी संभालना था। अन्ततोगत्वा भारत को विभाजित कर पाकिस्तान बनाने का निर्णय ले लिया गया, परन्तु पश्चिमी व पूर्वी पाकिस्तान के बीच के "कोरीडोर" तथा अन्य भागों की मि. जिन्हा की मांग अस्वीकार कर दी गई। उसने पं. नेहरू और सरदार पटेल की सम्मति भी ले ली, क्योंकि ये वरिष्ठ नेता बेगुनाहों की हत्या, जो हो रही थी, समाप्त करना चाहते थे। नितान्त 3 जून, 1947 को भारत विभाजन की योजना की घोषणा कर दी गई जिसमें 15 अगस्त, 1947 को स्वतन्त्रता देने का तथा भारत के देशी राज्यों को सर्वोच्च अधिकारों को लौटा देना सम्मिलित था। इस कार्य के लिए माउन्टबेटन को इंग्लेण्ड के अधिकारियों से तथा भारतीय नेताओं से कई बार परामर्श करना पड़ा। इसको कार्यान्वित करने के लिए विभाजन तथा सीमा निर्धारण का काम एक आयोग को सुपुर्द किया गया जिसका अध्यक्ष रेडक्लिफ था इधर 16 जुलाई, 1947 को ब्रिटिश संसद में भारतीय स्वतन्त्रता मिलने के पूर्व संविधान सभा द्वारा संविधान बनाने की अनुमति भी दे दी गई।[11]

इधर विभाजित भारत हो जाने से दंगे फिसाद तथा बटवारे से सम्बन्धित कई समस्याओं का निपटारा तो हुआ ही नहीं था कि देशी राज्यों की समस्या भी बड़ी विकट थी। सर्वोच्च सत्ता समाप्त हो जाने पर देशी राज्य किसी भी अधिराज्य में मिल सकते थे। उन्हें छूट भी दी गई थी कि जिस विकल्प को वे पसन्द करें उसका चयन कर लें। यह भी खतरा था कि वे अपनी स्वतन्त्रता बनाये रखने का प्रयास रखें। माउन्टबेटन इस तरह की संभावनाओं से अवगत था। वह यह भी जानता था कि नरेशों को अपने भविष्य के लिए चिंता हो रही है। भोपाल, हैदराबाद, जामनगर, जोधपुर आदि देशी राज्य पाकिस्तान से संपर्क बनाये हुए थे और उनके अनुयायी नरेशों पर भी दबाव डाल रहे थे। मि. जिन्हा ने तो जोधपुर नरेश को कोरा कागज देकर अपनी शर्तें लिख देने का प्रस्ताव कर दिया। उन्हें पाकिस्तान के साथ मिल जाने का प्रलोभन दे रखा था। परन्तु उदयपुर के महाराणा ने भारतीय अधिराज में मिलने की पहल की थी और कई देशीराज इस मत के समर्थक हो गये थे। यह एक अच्छा पहलू था।[12]

वायसराय ने नवाब भूपाल के मन को उनसे मिल कर टटोला। उनका प्रश्न था कि क्या सम्राट उन्हें भी दोनों अधिराज की भांति मान्यता देंगें। वायसराय के नकारात्मक उत्तर से नवाब साहब को बड़ी निराशा हुई और कहने लगे कि 'ब्रिटिश नरेशों को धोखा दे रहा है। ऐसा ही दृष्टिकोण हैदराबाद, कश्मीर और जूनागढ़ का भी पाया गया।[13]

11-कुलकर्णी, ब्रिटिश डोमिनियन इन इंडिया एण्ड आफटर, पृ. 249; मजुमदार, एडवान्स हिस्ट्री आफ इंडिया, पृ. 995.

12-फा.नं. 1320, 1947; पी.एस एच.एच. बीकानेर; द टाइम्स आफ इंडिया।

13-मोसले, लियोनार्ड, द लास्ट डेज आफ द ब्रिटिश राज, पृ. 187.

सरदार पटेल और देशी राज्य विभाग :

जून 25, 1947 को अंतरिम मन्त्रिमण्डल ने देशी राज्यों का अलग विभाग स्थापित करने का निर्णय लिया। उसके अनुसार 5 जुलाई को सरदार पटेल को इस विभाग के अध्यक्षत्व का काम और श्री मेनन को मन्त्रित्व सुपुर्द किया गया। उन्हें नरेशों की गतिविधि का पूरा ज्ञान था और वे ही ऐसे व्यक्ति थे जो इनको उस परिस्थिति से ठीक मार्ग पर ले जा सकते थे। इस विभाग का सर्वोपरि काम यह था कि नरेशों के हृदय का परिवर्तन किया जाय और उनमें संघ के प्रति श्रद्धा उत्पन्न करने तथा उसमें विश्वास करने का प्रयत्न किया जाय। यदि इन राज्यों में वही व्यक्तिगत अहम बना रहने दिया जाय तो भारतीय संघ के लिए बड़ा खतरा उपस्थित हो सकता था। वास्तव में यह काम बड़ा विषम था, क्योंकि इसको ठीक ढंग से यदि न चलाया गया तो सम्पूर्ण राष्ट्र को बड़ी हानि हो सकती थी। स्थिति को स्पष्ट करने के लिए भी पटेल ने 5 जुलाई को एक वक्तव्य निकाला जिसमें नरेशों को संघ में सम्मिलित होने तथा सुरक्षा, विदेशी नीति के विषय तथा यातायात हस्तान्तरित करने पर बल दिया गया था। पटेल ने साथ ही साथ उन्हें चेतावनी दी कि यदि कोई नरेश सर्वोपरिता स्थापित करना चाहता है तो यह उसकी भूल है। जिस सर्वोपरिता को ब्रिटिश सरकार त्याग रही है उसको नरेश लोग ग्रहण नहीं कर सकते सर्वोपरिता तो जनता में निहित है। इसी प्रकार अखिल भारतीय कांग्रेस कार्यकारिणी समिति में 14 जुलाई, 1947 को दिल्ली में बोलते हुए जवाहरलाल नेहरू ने कहा "हम भारतवर्ष में किसी राज्य की स्वाधीनता को स्वीकार नहीं करेंगे। कोई विदेशी शक्ति ऐसी स्वाधीनता को मानेगी तो वह कोई भी हो हम उसके इस कार्य को मित्रता के विरुद्ध समझेंगे और यह माना जायेगा कि भारतवर्ष के करोड़ों स्वतन्त्र लोगों के विरुद्ध वह शक्ति युद्ध की घोषणा कर रही हैं।"[14]

कोनार्ड की कार्यवाहियां:

जहां सरदार पटेल नरेशों से राष्ट्रहित की बात कर रहे थे वहां कोनार्ड देश के विभाजन के काम में रत था। कोनार्ड ने अपने विभाग के अधिकारियों से कहा कि रियासत से सेनाएं हटाने, रेलें बन्द करने, डाक व तार रोकने की कार्यवाही प्रारम्भ कर दी जाए। उसने अपने अधिकारियों को यह भी आदेश दिया कि फाइलों में सारी रिपोर्ट और पत्र-व्यवहार जो नरेशों के साथ हुआ तथा कुछ भद्दे अवसरों पर नरेशों को चेतावनी या धमकी दी थी या राष्ट्रीय नेताओं के विरुद्ध तैयारी की गयी थी वे सारे कागज जला दिये जाएं। इन कागजों में कश्मीर के महाराजा तथा महाराजा अलवर की फाइलें भी थीं। और भी कई अपवादों से सम्बन्ध रखने वाली फाइलें थी। आदेशानुसार ये सब जला दी गई। सब मिलकर लगभग चार टन कागज भस्म कर दिये गये।

14– व्हाइट पेपर आन इंडियन स्टेट, पृ, 158–159/ 160–164, फा.नं. 1320, 1947 (एच.एच. बीकानेर आफिस)
एवर्डस माइकल, द लास्ट ईयर्स आफ ब्रिटिश इंडिया, पृ. 189; मोसले लयोनार्ड, द लास्ट डेज आफ ब्रिटिश रा.पृ. 184–187, 192; टी.पी. मेनन, द स्टोरी आफ द इन्टीग्रेशन आफ द इंडियन; मार्गरेट बर्क वाइट, इन्टरव्यू विथ इंडिया, पृ. 143.

सर्वोपरिता (पेरामाउन्टसी) :

कोरफील्ड सम्राट की सर्वोपरिता के शस्त्र का उपयोग भी फूट डलवाने के लिए करना चाहता था। भारतीय देशी राज्य सम्राट के साथ संधियों के कारण स्वतन्त्र नहीं थे। जब शासन सत्ता का हस्तान्तरण होगा तो राजाओं के राज्य भी उन शक्तियों को पुनः प्राप्त हो जाऐगें जो कि संधियों से पहले उनके हाथ में थे। इस परिस्थिति में छोटे और बडे राज्य स्वतन्त्र हो जायेगे और स्वतंत्र होने पर वे अपने राज्य से भारतीय सेना को निकाल सकेंगे, जो रेले उनके राज्य में होकर निकलती हैं उन्हे रोक देगे, भारतीय डाक व तार के दफ्तरों को हटा देगे, ब्रिटिशभारत के हिस्से से दूसरे हिस्से में जाने वाले मांगों को जो रियासतों में होकर जाते थे रोक देगे। इस युक्ति से भारत में एक नई विडम्बना पैदा हो जायगी। यह एक ऐसा प्रयोग था कि भारत ऊपर न उठने पाएगा। परन्तु नेहरूजी और उनके कांग्रेसी साथी उन राज्यों को स्वतन्त्र नहीं अधीन मानते थे। उनकी दलील यह थी कि इन राज्यों को युद्ध करने और विदेशी विषयों के संचालन के अधिकार नहीं है इसलिए उनको चाहिए कि वे अभी कोई समझौता करलें और अविलम्ब भारतीय डोमीनियन में सम्मिलित हो जाएं। परन्तु कोरफील्ड चाहता था कि ऐसा नहीं होना चाहिए।[15]

वायसराय की अध्यक्षता में भारतीय नरेशों की सभा :

इस प्रकार की स्थिति व वातावरण को देख कर 25 जुलाई को लार्ड माउन्टबेटन ने भारतीय नरेशों की सभा बुलाई, उसमें उसने कहा कि "सिद्धान्त रूप से रियासतें भारतीय डोमीनियन में या चाहे तो पाकिस्तान में मिल सकती है. परन्तु कुछ भौगोलिक दबाव ऐसे हैं जिनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। 600 के लगभग रियासतों में से अधिकांश भारतीय डोमीनियन से जुड़ी हुई हैं। आप याद रखें कि सत्ता का हस्तान्तरण होने वाला है, यदि आप भारतीय डोमीनियन में आना चाहते है तो 15 अगस्त से पहले आ जावें, इसमें रियासतों का हित है। मुझे विश्वास है कि बुद्धिमान सरकारें ऐसा करेंगी। आपको आन्तरिक स्वाधीनता बड़ी मात्रा में मिलेगी और आप बाह्य चिन्ताओं और विषादों से मुक्त हो जावेंगे। आपको बाहय मामलों, सुरक्षा और परस्पर संचार की कोई चिन्ता नहीं रहेगी आप लोग अपनी पड़ौसी डोमीनियन से दूर नहीं रह सकते। इस भाषण से नरेशों की आशंकायें दूरहो गईं और हार्दिक सौहार्द का वायुमण्डल बन गया। लार्ड माउन्टबेटन के सुझाव पर 22 नरेशों और दीवानों की एक समिति गठित की गई। फिर "स्टेण्डस्टिल एग्रीमेन्ट" और अन्य संबंधित विषयों पर विचार कर इन्स्ट्रूमेन्ट आफ ऐक्सेशन 31 जुलाई को तैयार हो गया। ऐसे मधुर वातावरण में सभी नरेशों ने हैदराबाद, भूपाल तथा जोधपुर को छोड़, सर्वोपरिता पर हस्ताक्षर कर दिये।[16]

15–मोसले; लोनार्ड, द लास्ट डेज आफ ब्रिटिश राज, पृ. 181, वी.पी. मेनन, द स्टोरी आफ द इन्टीग्रेशन आफ द इंडियन स्टेट्स पृ. 100.

16–स्पीचेज बाई द अर्ल माउन्टबेटन आफ बर्मा, गवर्नमेन्ट आफ इंडिया, 1947-48, पृ. 24;
मोसले लोनार्ड, द लास्ट डेज आफ ब्रिटिश राज, पृ. 192;
एडवर्ड माइकल, लास्ट इयर्स आफ ब्रिटिश इंडिया, पृ. 189.

वैसे राजस्थान में भी सभी राजाओं ने सर्वोपरिता पर हस्ताक्षर कर दिये थे परन्तु जोधपुर महाराजा ने अभी तक हस्ताक्षर न कर मि. जिन्हा से भेंट की। वहां उनका स्वागत था और उन्हें एक कोरा कागज दे कहा गया था कि जो भी शर्तें वे लिख देंगे उस पर वह अपनी स्वीकृति दे देगा। इस प्रलोभन में भारत से सम्बन्ध जोड़ने में वे दुविधा में थे। इधर सरदार पटेल, श्री मेनन व माउन्टबेटन की उनसे मुलाकात होती रही और इन्होंने भी हर प्रकार से उन्हें सन्तुष्ट करने का प्रयत्न किया, परन्तु वे कुछ समय असमंजस्य की स्थिति से गुजरते रहे। अन्त में महाराजा ने इंस्ट्रूमेन्ट ऑफ एक्सेशन पर हस्ताक्षर कर दिये और दोनों पक्षों ने उसको मान लिया। मेनन ने इन्स्ट्रूमेन्ट ऑफ एक्सेशन पर महाराजा के हस्ताक्षर करवाकर जोधपुर को पाकिस्तान में सम्मिलित होने से बचा लिया।[17]

भोपाल का राजस्थान से कोई सम्बन्ध नहीं था परन्तु नवाब भोपाल नरेन्द्र मण्डल के प्रधान थे। इसलिए उनके हस्ताक्षरों का भी यहां उल्लेख करना अप्रासंगिक न होगा। कुछ दिन बाद ही वे हस्ताक्षर करने पर तैयार हो गये। वे स्वयं तो मुसलमान थे परन्तु उनके राज्य में अधिकांश आबादी हिन्दुओं की थी इसलिए पाकिस्तान में मिलने का उनको साहस नहीं हुआ। वे बड़ी खूबसूरती से हिन्दुस्तान में मिल गये और उन्होंने पटेल को लिखा—

"मैं इस बात को छुपाना नहीं चाहता कि जब संघर्ष चल रहा था तो मैंने यथाशक्ति प्रयत्न किया कि मेरा राज्य स्वतन्त्र और उदासीन रहे। अब मैंने अपनी हार मानली है। मुझे आशा है कि आप मुझे जितना प्रबल विरोधी मानते हैं उतना ही निष्ठावान मित्र मानेंगे। मेरी किसी के प्रति दुर्भावना नहीं है क्योंकि मेरे साथ इस अर्से में अच्छा बर्ताव हुआ है और आपकी तरफ से मेरे साथ शिष्टता का व्यवहार किया गया है। मैं अब आपसे यह कहना चाहता हूं कि जब तक आप देश को फूट से बचाते रहेंगे और रियासतों के मित्र बने रहेंगे तब तक मैं आपका वफादार साथी बना रहूंगा।"[18]

श्री पटेल ने इस पत्र का उत्तर दिया आपने अपने राज्य को भारतीय यूनियन में मिला दिया है। मैं इसको अपने लिए विजय नहीं मानता और न आपके लिए पराजय मानता हूं। वास्तव में औचित्य की विजय हुई है और इसमें आप और मैंने काम किया है। आपने स्थिति को भली प्रकार संभाला है। इसलिए आप प्रशंसा के पात्र हैं। आपने पहले का हठ छोड़ दिया है जो भारत के लिए और आपके राज्य के लिए हानिकारक था। आपने भारत सरकार को समर्थन का आश्वासन दिया है इससे मुझे बड़ी प्रसन्नता है। आपकी वफादार मित्रता की मैं कदर करता हूं। पिछले मास में मुझको इस बात पर खेद था कि आपकी योग्यता और प्रतिभा का उपयोग नाजुक समय में देश के हित के लिए नहीं हो रहा था। इसलिये अब आपने सहयोग और मित्रता का आश्वासन दिया है इसको मैं मूल्यवान समझता हूं।[19]

17— मोसले ल्युनार्ड, द लास्ट डेज ऑफ ब्रिटिश राज; पृ. 173–204.

18— मासले ल्युनार्ड, द लास्ट डेज ऑफ ब्रिटिश राज, पृ. 204

19— मोसले ल्युनार्ड, द लास्ट डेज ऑफ ब्रिटिश राज. पृ. 204–205.

देशी राज्यों का इंडियन डोमीनियन में मिलना :

जब भारतवर्ष का विभाजन हो गया तो कई समस्याएं थीं। उनमें से सबसे बड़ी समस्या देशी राज्यों की थी। इनसे सम्बन्धों में ब्रिटिश राज्य ने कितनी उलझन पैदा कर रखी थी जो स्वतन्त्र भारत के सिर पर आ पड़ी। हमने देखा कि ज्योंही सत्ता का हस्तान्तरण हुआ त्योंही 600 के लगभग भारतीय राज्य कानून की दृष्टि से स्वतन्त्र हो गये। भारतीय स्वाधीनता एक्ट में लिखा हुआ था कि अब सम्राट की सर्वोपरिता भारतीय रियासतों पर समाप्त हो रही है. इसके साथ ही सारे समझौते इस एक्ट के प्रति अपने कर्तव्यों से मुक्त कर दिये गये हैं। नरेशों ने सन्धि द्वारा जो अपने अधिकार सम्राट को सौंप दिये थे वे उन्हें वापस मिल गये। भारतीय नेताओं ने सर्वोपरिता सत्ता सरकार के अपने पास लेकर बड़ी उलझन को सुलझा राष्ट्र को बलवान बना दिया। ये काम लगभग तीन हफ्ते की अवधि में हुआ। ये वास्तविकता की विजय थी। इससे नरेश राष्ट्रीयता के प्रबल समर्थक हो गये और भारत एक राजनैतिक इकाई बन गया। स्वतन्त्रता आते ही नरेशों का भारतीय संघ में मिलना एक महान उपलब्धि थी।[20]

रियासतों ने भारतीय डोमीनियन से सम्बन्ध जोड़ना स्वीकार कर लिया यह बड़ी विजय थी, यह वास्तव में राज्यों के लिए हित की बात थी, भारतीय सरकार का भी इससे ध्येय सिद्ध होता था।[21]

जब दो तीन राज्यों को छोड़कर सभी राज्य भारतीय संघ से सम्मिलित होने के लिये तैयार हो गये तो पहला काम यह था कि उनको भारतीय विधान में किस प्रकार समायोजित किया जाए। दूसरा काम यह था कि छोटी छोटी रियासतों की एक बड़ी इकाई बना दी जाए और प्रत्येक इकाई में जनतंत्रीय शासन प्रणाली जारी की जाय। इस उद्देश्य को ध्यान में रख कर भारत सरकार ने कार्य करना शुरु किया। कुछ राज्य तो उन प्रान्त में मिल गये जिनसे उनकी सीमायें सटी हुई थीं। कुछ राज्यों को केन्द्रीय सरकार ने अपने अधीन कर लिया और कुछ राज्यों के संघ बना दिये गये। राजस्थान में संघ विधि का अनुसरण किया गया।

मत्स्य संघ का निर्माण :

भारत के विभाजन के पहले पूर्वी राजस्थान में आन्तरिक अशान्ति व्याप्त थी और स्थान स्थान पर राजनैतिक उत्पात होने लगे थे। इससे वहां का प्रशासन ठप्प हो गया था। सत्ता के हस्तान्तरण से पूर्व भरतपुर और अलवर की सरकारों के लिए मेव लोग

20- वी.पी. मेनन; द ट्रान्सफर आफ पावर इन इंडिया, पृ. 414, माउन्टबेटन का कान्स्टीट्यूएन्ट असम्बली में भाषण, अगस्त 15 1947, स्टेट्समेन, दिल्ली, 31 मई, 1948.

21- द स्टेट्समैन, दिल्ली, मई, 31, 1948.

बड़ा सरदर्द बने हुये थे। दोनों राज्यों में साम्प्रदायिक गड़बड़े हुई। भरतपुर महाराज के भाई गिरराज शरणसिंह ने प्रेस साक्षात्कार में कहा था कि, इस उत्पात में 209 गांव भरतपुर के उत्तरी इलाके में जला दिये गये हैं, इसका कारण यह है कि मेव लोग जो भरतपुर के उत्तरी हिस्से और गुड़गांव जिले के दक्षिणी हिस्से तथा अलवर के दक्षिणी भाग में निवास करते हैं वे एक मेवस्तान बनाना चाहते हैं। तब भरतपुर ने इस आन्दोलन को दबाने के लिए प्रयास शुरु किये। भरतपुर के महाराजा बृजेन्द्रसिंह ने हिन्दू और मुस्लिम नागरिकों की सभा बुलाई और संभवत: दिखावे के लिए कहा कि अराजकता और कानून की अवहेलना अब सहन नहीं की जायेगी और दंगा करने वालों को देखते ही मार डाला जायेगा। भविष्य में गांवों और कस्बों के मुखिया लोगों को शान्ति के लिए उत्तरदायी समझा जायगा। जो लोग कानून के विरुद्ध कार्यों में शामिल होंगे और अपराधियों को पनाह देंगे उनकी सम्पत्ति जब्त कर ली जायगी और उन पर सामूहिक अर्थ दण्ड लगाया जायगा।[22]

अलवर में आग भड़की :

भरतपुर की साम्प्रदायिक गड़बड़ी की प्रतिक्रिया अलवर में भी हुई। इसके अतिरिक्त अलवर के दीवान डा. एन.बी. खरे के सम्बन्ध में यह सूचना थी कि वे मुस्लिम विरोधी कट्टर हिन्दू हैं और उन्होंने वहाँ मेवों के विरुद्ध हिन्दुओं को भड़काया है। खरे पर यह भी आरोप था कि वे मेव लोगों को रियासत से मार मार कर भगा रहे हैं, मस्जिदें ध्वस्त कर रहे हैं और कब्रिस्तानों को खुदवा रहे हैं। यह भी माना जाता था कि गांधी जी की हत्या से जुड़े लोगों को अलवर में प्रश्रय दिया गया था।[23]

सरदार पटेल ने सभा बुलवाई :

उपरोक्त साम्प्रदायिक तनाव से भारत सरकार को चिन्ता हुई तो 1947 के अक्टूबर मास में सरदार पटेल ने प्रान्तों और रियासतों के प्रतिनिधियों की एक सभा आयोजित की। इसमें अलवर और भरतपुर के नरेश तथा डा. खरे को भी आमन्त्रित किया गया। इस सभा में सरदार पटेल ने इस बात पर जोर दिया कि साम्प्रदायिक एकता कायम रखने की इस समय सर्वाधिक आवश्यकता है। जो लोग इस आग को प्रज्जवलित कर रहे हैं वे देश के परम शत्रु हैं। सब उपस्थित लोगों ने सरदार पटेल को आश्वासन दिया कि वे पूरा सहयोग और समर्थन देंगे।[24]

22–द स्टेट्समेन, 23 जुलाई, 1947; कोन्फीडेन्शल, फा. नं. 32–33, भा–III, मेवों का विद्रोह, भरतपुर 1933–34, अ.बी.; हिन्दुस्तान टाइम्स, 10 जुलाई, 1947.

23–वी.पी. मेनन–द ट्रान्सफर आफ पावर इन इण्डिया, पृ. 252; हान्डा, आर.एल. हिस्ट्री आफ फ्रीडम स्ट्रगल इन प्रिन्सली स्टेट्स पृ. 319.

24–डा. गौड़, कोन्स्टीट्यूशनल डेवलपमेन्ट आफ ईस्टर्न राजपूताना स्टेट्स, पृ. 199.

वी.वी. मेनन को अलवर भेजा गया और उनकी रिपोर्ट :

इस आश्वासन के विपरीत अलवर और भरतपुर के शासकों की शिकायतें भारतीय प्रशासन विभाग मे पहुंचती रहीं। इसलिए श्री मेनन को अलवर भेजा गया कि वहां की स्थिति देखकर रिपोर्ट करें। अलवर सरकार को मेनन के जाने के विषय में कोई सूचना नहीं दी गई। वहां की स्थिति के अध्ययन के बाद मेनन ने सरदार पटेल को अपनी जानकारी से अवगत करके सुझाया कि डा. खरे के स्थान पर केन्द्रीय सरकार की पसन्द का कोई व्यक्ति अलवर का दीवान बना दिया जाये। अतएव अलवर राज्य के साम्प्रदायिक तनाव पर और इस आरोप पर ध्यान देकर कि गांधी जी की हत्या के षडयन्त्र में अलवर और खरे सम्मिलित थे यह निश्चय किया गया कि अलवर राज्य के प्रशासन को केन्द्र अपने हाथ में ले ले और प्रशासन चलाने के लिए डा. खरे के स्थान पर केन्द्रीय सरकार का कोई व्यक्ति नियुक्त कर दिया जाय।[25]

हिन्दू महासभा के अलवर निवासी कार्यकर्त्ता पन्नालाल चौबे ने जो पुलिस का खबरनवीस था, कपूर कमीशन को जिसका महात्मा गांधी की हत्या की जांच करने के लिये नियुक्त किया गया था, सूचना दी थी कि महात्मा गांधी की हत्या का षडयन्त्र अलवर में किया गया था और इसमें डा. खरे का सर्वाधिक हाथ था। उसने कहा कि पाकिस्तान का शरणार्थी राधजादा हकीमराय डा. खरे का कृपा पात्र था वही हत्या के तीन मास पूर्व गोडसे और परचूरे को डा. खरे के पास लाया था उनकी गुप्त गोष्ठी में पन्नालाल चौबे भी शामिल था। इसमें परचूरे ने कहा कि गांधी जी को मार डालने के लिये केवल गोडसे ही काफी है। यहां गोडसे ने भी कहा कि आप कोई चिन्ता न करें मैं सब कुछ कर दूंगा। पन्नालाल चौबे ने आगे कहा कि मैं यह कहने के लिये तैयार हूं महात्मा गांधी की हत्या के पीछे व्यक्ति डा. खरे थे, गोडसे तो उनके हाथ का हथियार था। गोडसे और परचूरे दोनों डा. खरे के गांव के ही रहने वाले थे।[26]

इस प्रकार की सूचनाएं मिलने पर निश्चय किया गया कि रियासत का प्रशासन केन्द्रीय सरकार अपने हाथ में ले ले और जब तक इन आरोपों की जांच पूर्ण न हो तब तक अलवर महाराजा और डा. खरे दोनों को दिल्ली बुलाकर वहां रहने के लिए कहा जाए। 7 फरवरी, 1948 को महाराजा को दिल्ली रहने के आदेश देकर स्टेट मिनिस्ट्री ने अलवर का प्रशासन अपने हाथ में ले लिया। महाराजा ने डा. खरे को दीवान के पद से हटा दिया। तत्पश्चात् डा. खरे जांच के अन्त तक दिल्ली में रहे। जांच का परिणाम यह हुआ कि अलवर के महाराजा और डा. खरे दोनों निरअपराध सिद्ध हुवे।[27]

25– आरोप यह था कि अलवर राज्य में आर.एस.एस. के प्रशिक्षण केन्द्र हैं और गांधी जी की हत्या करने वाले लोगों को अलवर मे पनाह दी गई थी, मेनन, वही. पृ. 253.

26– द हिन्दुस्तान टाइम्स 21 अक्टूबर, 1947;
डा. गौड कान्स्टीट्यूशन डेवलपमेन्ट आफ ईस्टर्न राजस्थान स्टेट्स, पृ. 219.

27– मेनन वी.पी., पृ. 253, 254.

भरतपुर :

भारत सरकार भरतपुर के मामलों से बड़ी खिन्न थी, उस रियासत की शिकायतों के स्टेट मिनिस्टरी में ढेर लग गये थे। जिनका वर्गीकरण निम्न प्रकार से किया गया था।[28]

(1) महाराजा बृजेन्द्रसिंह भरतपुर ने 15 अगस्त को स्वतंत्रता दिवस नहीं मनाया। उन्होंने भारतवर्ष के नेताओं पर यह आरोप लगाया कि उन्होंने देश का विभाजन कर दिया है। इस प्रकार के लेख नव जागृति नामक समाचार पत्र में प्रकाशित हुये थे। भारत के किसी भी प्रान्त में एक दिन भी इस प्रकार के लेखों को बर्दाश्त नहीं किया जा सकता था।

(2) महाराजा की नीति यह चल रही है कि उनकी प्रजा में जो एक लाख के लगभग मुसलमान हैं उनको लूटा जाए और मार कर भगा दिया जाए। महाराजा के लिए कहा गया कि उनको इस बात पर हर्ष है कि उनकी रियासत में एक भी मुसलमान नहीं बचा है। मुसलमान महाराजा की प्रजा है, उनको महाराजा से प्रजा की रक्षा की आशा है परन्तु उन्होंने रक्षा नहीं की और रियासत के शासक होने का प्रारम्भिक कर्तव्य नहीं निभाया।

(3) भरतपुर राज्य में होकर जो रेलवे लाइन्स निकलती हैं उन पर और विशेषकर आगरा बाँदीकुई की रेलें निकलती हैं उस प्रमुख लाइन पर महाराजा द्वारा कोई सुरक्षा का प्रबन्ध नहीं किया गया है।

(4) महाराजा अपने राज्य की सेना में अनुशासन नहीं रख सकते हैं।

(5) महाराजा की नीति है कि जाटों की रियासत बनाई जाए और जो जाट नहीं है उनको कष्ट दिया जाए।

(6) महाराजा ने अपने राज्य में शस्त्र और गोला बारूद के निर्माण के लिये एक कारखाना स्थापित कर दिया है। ये शस्त्र और गोला बारूद जाटों और राष्ट्रीय स्वयं सेवकों को दिये जाते है। जिनके द्वारा वे भरतपुर के ही मुसलमानों में नहीं परन्तु मथुरा और आगरा के मुसलमानों में भी आतंक फैला सकें।

(7) महाराजा राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ में मिले हुए हैं, जिसे प्रोत्साहन दिया जाता है।

जवाहरलाल नेहरू ने भी अपने 28 जनवरी, 1948 के पत्र में सरदार पटेल को सूचित किया था कि भरतपुर में राष्ट्रीय स्वयं सेवकों को शस्त्र प्रयोग की शिक्षा दी जाती है।[29]

28-फाइल नं. 11 (17) पी. 47 भरतपुर एफेयर्स, एलीगेशन, अगेन्स्ट एच एच. भरतपुर, 1948, आर.जी.ए, डा. गौड, कन्स्टीट्यूशनल डवलपमेन्ट, पृ.200-201.

29- फा.नं. 11 (7)-47, भरतपुर एफेयर्स-एलीगेशन अगेन्स्ट, एच.एच. भरतपुर रा.जी.ए.;
सी.सी. देसाई, जोइन्ट सेक्रेट्री, स्टेट्स मिनिस्ट्री, गवर्नमेन्ट आफ इन्डिया, नवम्बर. 28, 1947.

इस राजनैतिक अशान्ति और तनाव के कारण 10 फरवरी, 1948 को महाराजा बृजेन्द्रसिंह को दिल्ली बुलाया गया और बातचीत के दौरान मेनन ने महाराजा से कहा कि राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ से भरतपुर का प्रशासन घुलामिला हुआ है। महाराजा से कहा गया कि वे अपनी रियासत का प्रशासन भारत सरकार को सौंप दें। इस पर महाराजा अनइच्छा से सहमत हो गये। परन्तु उसी दिन महाराजा ने मेनन को लिखा "आपनेजो मुझे खबर सुनाई उससे मुझे बड़ा धक्का लगा, मैं आपको विश्वास दिला सकता हूं कि रियासत के प्रशासन का इस प्रकार की कार्यवाहियों और साम्प्रदायिक तथा राष्ट्र विरोधी कार्यों से कोई सम्बन्ध नहीं है। मैं अपनी रियासत की ओर मेरी स्थिति को साफ करने के लिए सहमत हूं। स्टेट मिनिस्ट्री तुरन्त ही मेरी रियासत में प्रशासक नियुक्त कर दे। मैं किसी प्रकार का उसके कार्य में हस्तक्षेप नहीं करूंगा। पुलिस का अध्यक्ष जिसे स्टेट मिनिस्ट्री नियुक्त करे वह मेरे राज्य में स्टेट मिनिस्ट्री के प्रशासन को सब प्रकार की सहायता दें। प्रशासन को मैं नहीं हटा सकूंगा। आपने यह भी सुझाव दिया है कि मेरा भाई भरतपुर के बाहर रहे। इस सम्बन्ध में मैं सुझाव देता हूं कि उसको इंग्लेण्ड भेज दिया जाय आपने इस सुझाव पर सहानुभूति से विचार करने का वचन दिया था।[30]

भरतपुर के मंत्री मण्डल को 14 फरवरी, 1948 को हटाकर भारत सरकार ने श्री एस.एन. सप्रू को वहां का प्रशासक नियुक्त कर दिया। उसने 15 फरवरी, 1948 को काम संभाल लिया। कर्नल ढिलों को राज्य की सेना का अध्यक्ष नियुक्त किया गया। स्टेट मिनिस्ट्री ने राव राजा गिरिराज शरणसिंह (महाराजा भरतपुर के भाई) को 14 फरवरी, 1948 को तार द्वारा सूचित किया कि वह 19 फरवरी, 1948 को दिल्ली से इंगलैण्ड के लिए रवाना हो जाए। उनके लिये वायुयान में जगह आरक्षित कर दी गई है। परन्तु जब सभी बात की जांच हुई तो महाराजा भरतपुर के विरुद्ध कोई ठोस प्रमाण नहीं मिला और उनको पूर्णरूप से निरअपराध मान लिया गया। इस प्रकार की कार्यवाही का साम्प्रदायिक झगड़ों को ठंडा करने का असर अवश्य हुआ।[31]

मत्स्य संघ का निर्माण :

स्टेट मिनिस्ट्री जानती थी कि धौलपुर और करोली, अलवर और भरतपुर जातीय और आर्थिक दृष्टि से मिले हुए थे और उन चारों राज्यों का एक संघ बनाया जा सकता था। इस विषय में विचार विमर्श करने हेतु 27 फरवरी, 1948 को चारों राज्यों के नरेशों को बुलाया गया और उनके सामने संघ निर्माण का प्रस्ताव रखा गया। चारों नरेश इस प्रस्ताव पर सहमत हो गये। उनके प्रति यह भी स्पष्ट कर दिया गया कि आवश्यकता होगी तो उस संघ को राजस्थान या उत्तरप्रदेश में सम्मिलित कर दिया जायेगा, क्योंकि वे आर्थिक दृष्टि से आत्म निर्भर नहीं है। इन चारों राज्यों के संघ का नाम कन्हैयालाल मुंशी के सुझाव पर मत्स्य संघ रखा गया।[32]

30– फा. नं ए. डी./48/ भरतपुर एफेयर्स, रा. जी. ए डा. गौड़, कान्स्टीट्यूशनल डवलपमेंट, पृ. 201, 219, 220

31–फाईल नं. 1 ए- डी. 48 भरतपुर एफेयर्स. रा. जी. ए. मेनन, स्टोरी आफ इन्टीग्रेशन पृ., 240–241, राजस्थान डिस्ट्रिक्ट गजट, अलवर, पृ. 97

32–मेनन वी. पी. वही. पृ. 254-255.

अभी अलवर और भरतपुर के नरेशों के विरुद्ध जांच की जा रही थी इसलिए धोलपुर के महाराजा उदयभानसिंह को राजप्रमुख नियुक्त किया गया। वे इन चारों नरेशों में आयु में सबसे बड़े थे, भरतपुर और करोली के नरेशों ने तो यह नियुक्ति मानली परन्तु अलवर नरेश असहमत रहे। बहुत कुछ दलीलों के बाद उन्होंने भी उदयभानसिंह को राज प्रमुख स्वीकार कर लिया। अलवर महाराजा तेजसिंह को उपराज्यप्रमुख नियुक्त किया गया।[33]

28 फरवरी, 1948 के अनुबन्ध पर चारों नरेशों ने हस्ताक्षर कर दिये। उन सम्मिलित रियासतों का प्रशासन चलाने के लिये स्टेट मिनिस्ट्री ने एक प्रशासक नियुक्त किया। उसको सहायता देने के लिये लोकप्रिय मन्त्री मण्डल उन्हीं राज्यों से बनाया गया। नरेशों को प्रिवीपर्स इस प्रकार दी गई। अलवर को 5 लाख 20 हजार, भरतपुर को 5 लाख 2 हजार, धोलपुर को 2 लाख 64 हजार और करौली को एक लाख 5 हजार[34]

ज्यों ही यह सभी व्यवस्था कर दी गई और उद्घाटन समारोह होना निकट ही था कि भरतपुर में महाराजा के छोटे भाई मानसिंह द्वारा कुछ व्यवधान खड़ा कर दिया गया। उसने "जाट झंडा खतरे मे" का नारा लगाया और जाटों को शस्त्र एकत्रित कर भरतपुर पर कब्जा करने को उकसाया। उन्होंने हेलक गांव में तथा वैर के आसपास गांवों में जाकर डेढ़ लाख जाटों को सशस्त्र इकट्ठा हो मत्स्य संघ न बनने हेतु प्रदर्शन करने का आव्हान किया। सरकारी भवनों पर राज्य का झंडा लगाने की मांग की और राष्ट्रीय झंडे को लगाने का विरोध किया। यदि सरकार उन्हें ऐसा न करने को उतारू हो तो उसने रक्त से होली खेलने की घोषणा की। योजना यह थी कि 17 मार्च को जब साढ़े ग्यारह बजे मत्स्य संघ का उद्घाटन होगा तब लगभग एक हजार सशस्त्र जाट किले में एकत्रित होकर संघ का विरोध करेंगे। किसान सभा के नेता देशराज को भी इसमें लाकर किसानों के प्रतिनिधित्व की मांग की। परन्तु 14 व 16 मार्च को मानसिंह व देशराज को क्रमशः गिरफ्तार कर लिया गया और शस्त्र ले जाने पर प्रतिबन्ध लागू किया। फिर भी जाटों की सशस्त्र भीड़ किले के प्रांगण में घुस गई। शीघ्र ही सेना और पुलिस की सहायता से भीड़ पर नियन्त्रण रखा गया और किसी तरह समझा बुझा कर तथा कुछ मांगों को स्वीकार कर भीड़ को विसर्जित कर उद्घाटन समारोह का निर्धारित कार्यक्रम श्री गाडगिल द्वारा लगभग दो घंटा विलम्ब से सम्पादित हुआ।[35]

33–हिन्दुस्तान टाइम्स, 1 मार्च, 1948, एक्स्ट्रा ओर्डनरी गजट मत्स्य, 21–3–48.

34–शीड्यूल आफ द कवनेन्ट आफ द युनाइटेड स्टेट आफ मत्स्य; डा. गौड, कोन्स्टीट्यूशनल डेवलपमेंन्ट, पृ. 202.

35–फा. नं. सी. बी./बी. एन.–5/37 पेपर रिगार्डिंग किसान सभा अगेन्स्ट मर्जर इन्टू मत्स्य यूनियन, आर. जी ए.;
सप्रू का गुप्त पत्र, 19 मार्च, 1948 का सेठ के नाम, फा. नं. सी. बी./बी. एन.–5/37 आर. बी. ए.;
हिन्दुस्तान टाइम्स, मार्च 17 व 20, 1948;
डा. गौड, कोन्स्टीट्यूशनल डेवलपमेन्ट, पृ. 202–204.

महाराजा उदयभानसिंह ने राजप्रमुख पद की शपथ लेने के बाद यह कहा कि हम एक नया कार्य शुरू कर रहे हैं। मैं सच्चे हृदय से चाहता हूं कि भविष्य के कार्य में लोकप्रिय बुद्धिमान व्यक्तियों का सहयोग मिलता रहे। जिससे मत्स्य संघ में शांति व सुख की वृद्धि हो।[36]

मत्स्य संघ की सरकार 18 मार्च, 1948 से कार्य करने लग गई। मुख्य मंत्री शोभा राम बनाये गये। उनके मंत्री मण्डल में जुगलकिशोर चतुर्वेदी (भरतपुर), मास्टर भोलानाथ (अलवर) गोपीलाल यादव भूतपूर्व प्रिंसीपल, डा. मंगलसिंह (धौलपुर) और चिरंजीलाल शर्मा (करौली) नियुक्त हुये। प्रशासन को सुचारू रूप से चलाने के लिये केन्द्रीय सरकार ने श्री के. बी. एल. सेठ को मत्स्य संघ का प्रशासक, श्री टण्डन को चीफ सैकेट्री और श्री यू. सी. मल्होत्रा को आई. जी. पी. नियुक्त किया। इनके विभागीय कार्य के लिए श्री वृजबल्लभ शर्मा, श्री सूर्य स्वरूप, श्री आर. एन. सक्सेना और केप्टन रामसिंह को मत्स्य संघ के विविध विभागों के सचिव नियुक्त किये।[37]

मत्स्य संघ में 7,589 वर्ग मील भूमि थी। 18,37,994 जनसंख्या थी और आय 184 लाख रु. वार्षिक थी। पूर्वी राजस्थान की इन छोटी रियासतों को एक संघ बन जाने से राजस्थान के भावी राजनैतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन की समृद्धि का द्वार खुल गया।[38]

संयुक्त राजस्थानः

पूर्वी राजस्थान की चार रियासतें तो मत्स्य संघ में विलीन हो चुकी थी। अब दूसरा कदम यह सोचा गया कि बांसवाड़ा, बून्दी, डूंगरपुर, झालावाड़, किशनगढ़, कोटा, प्रतापगढ़, शाहपुरा और टोंक तथा लावा और कुशालगढ़ की ठुकरायतों को मिलाकर राजस्थान के संघ का निर्माण किया जाए। इसका प्रस्ताव स्टेट मिनिस्ट्री से नहीं किन्तु कोटा, डूंगरपुर और झालावाड़ के नरेशों ने किया था। कोटा के महाराव ने इन राज्यों के कुछ मंत्रियों को बुला कर परामर्श किया था कि सबका एक संघ बनाया जाय। यह सम्मेलन इस परिणाम पर पहुंचा कि इन रियासतों में कई ऐसे मामले हैं जो आलोच्य हो सकते हैं और उन सबका कोई भविष्य भी नहीं है। इसके पश्चात्, कोटा, डूंगरपुर और झालावाड़ के नरेश तीन मार्च, 1948 को दिल्ली में मेनन से मिले और अपना प्रस्ताव उसके समक्ष रखा। मेनन ने पटेल से बात की और फिर शायद पं. जवाहरलाल नेहरू से भी पूछा गया। सरकार ने यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। उपरोक्त सब रियासतों का क्षेत्रफल 16,807 वर्ग मील था और उसकी जनसंख्या 23 लाख 34 हजार 220 थी। इन सबकी औसत आय 1 करोड़ 90 लाख थी। इनका संघ बना दिया गया और विलय-

---

36–द हिन्दुस्तान टाइम्स, 20 मार्च 1948

37–इंडियन न्यूज क्रोनिकल्स, अप्रेल 5, 1948

डा. गौड, कॉन्शनल ट्यूटी डेवलपमेन्ट, पृ. 204, 205, 220.

38– मेनन पृ. 255; एक्स्ट्रा ओर्डीनरी गजट मत्स्य, 21–3–48; रिपोर्ट आन एडमिनिस्ट्रेशन आफ राज. 1950–51 पृ. 2.

पत्र पर इन रियासतों के शासकों ने हस्ताक्षर कर दिये। संघ का उद्घाटन 25 मार्च, 1948 को श्री एन.वी. गाडगिल ने जो केन्द्रीय सरकार के मंत्री थे, कोटा दरबार हाल में किया। उन्होंने महाराव कोटा को राजप्रमुख और प्रो. असावा को प्रधान मन्त्री पद की शपथ ग्रहण कराई। मसविदे में दर्ज किया गया कि कोटा, बून्दी और डूंगरपुर क्रमश: प्रथम राज प्रमुख, सीनियर राज प्रमुख और जूनियर राजप्रमुख बनेंगे। 15 अप्रेल, 1948 के पहिले इन राज्यों के नरेशों को अपना प्रशासन राजप्रमुख को सौंप देना था।[39]

उदयपुर इसमें सम्मिलित हो गया :

संयुक्त राजस्थान का निर्माण हो जाने पर भारत सरकार ने समझा कि यदि उदयपुर को भी इस संघ में सम्मिलित होने के लिए तैयार किया जाय तो बहुत अच्छा हो। इसमें संघ आर्थिक दृष्टि से आत्म निर्भर होगा। इस उद्देश्य से उदयपुर के दीवान राममूर्ति से मेनन की बातचीत हुई। राममूर्ति चाहता था कि संयुक्त राजस्थान के सारे राज्य उदयपुर में विलीन हो जायें। परन्तु यह विचार इन राज्यों के नरेशों ने मंजूर नहीं किया और स्टेट मिनिस्टरी भी इस विचार से सहमत नहीं हुई। इसी मध्य भारत सरकार को उदयपुर के दीवान का पत्र मिला कि उदयपुर के महाराजा संयुक्त राजस्थान में सम्मिलित के लिये तैयार हैं। परन्तु वे चाहते हैं कि इस संघ में उनकी और उनके राज्य की उचित प्रतिष्ठा बनी रहे। इस विषय पर कुछ दिन तक विचार होता रहा। फिर 29 मार्च को कोटा, डूंगरपुर और झालावाड़ के नरेश इस बात पर तैयार हो गये कि उदयपुर को संयुक्त राजस्थान में सम्मिलित कर लिया जाय। तब मसविदे का संशोधन किया गया जिस पर 11 अप्रेल, 1948 को सब नरेशों ने अपने हस्ताक्षर कर दिये। इस संघ का विशेष महत्व था क्योंकि उदयपुर इसमें सम्मिलित हो गया और उदयपुर को ही इसकी राजधानी बनाना निश्चय हुआ था। इस संघ में 29 हजार 977 वर्ग मील भूमि थी। 42 लाख 60 हजार 918 जनसंख्या थी और इसकी वार्षिक आय 3 करोड़ 16 लाख थी। इस संघ का 18 अप्रेल, 1948 को उद्घाटन प. नेहरू ने किया। महाराणा उदयपुर को जिसका आजीवन राजप्रमुख, महाराव कोटा को उप राजप्रमुख और बून्दी तथा डूंगरपुर को कनिष्ठ उप राजप्रमुख बनाया गया। इन्हें भी अपने अपने पदों की शपथ दिलाई गई। फिर इसका लोकप्रिय मंत्री मण्डल बनाया गया जो केवल 11 माह ही रहा। इसके श्री माणिक्यलाल वर्मा मुख्य मन्त्री बनाये गये। 1 मई, 1948 को उन्हें उनको उनके पद की शपथ दिलाई गई। अन्य मन्त्री थे सर्वश्री गोकुललाल असावा, प्रेमनारायण माथुर, भूरेलाल बया, मोहन लाल सुखाड़िया, भोगीलाल पण्ड्या, अभिन्न हरि और बृज सुन्दर शर्मा यह मन्त्रिमण्डल पूर्ण रूप से प्रजा मण्डलीय था।[40]

39—व्हाइट पेपर आन इंडियन स्टेट्स, पृ. 53.

40—मेनन वी.पी. पृ. 261; सनडे-स्टेट्स मेन, अप्रेल 24,28, 1948 वीर अर्जुन, नवम्बर 11, 19, 24,28 1948; गौउ, कोन्स्टी ट्युशनल डेवलपमेन्ट पृ. 211.

वृहद् राजस्थान

संयुक्त राजस्थान के निर्माण के पश्चात् अब बड़े बड़े राज्य शेष रह गये थे, जयपुर, जोधपुर, बीकानेर और जैसलमेर ये चारों राज्य अभी किसी संघ में विलीन नहीं हुए थे। सिरोही और अजमेर का विलय भी शेष था। इस सम्बन्ध में इन राज्यों के तथा भारतीय राष्ट्र सेवी राजनैतिक कार्यकर्त्ताओं की मांग थी कि इनको भी शीघ्र संघ में मिला लिया जाए। इनमें श्री जयप्रकाश नारायण, श्री राम मनोहर लोहिया आदि मुख्य थे। लोगों की मांग पर 14 जनवरी, 1949 को उदयपुर में एक सभा हुई जिसमें सरदार पटेल ने घोषित किया कि जयपुर, जोधपुर, बीकानेर और जैसलमेर के नरेश वृहद् राजस्थान में अपने राज्यों को मिलाना चाहते हैं। इस प्रकार वृहद् राजस्थान के निर्माण की घोषणा का सर्वत्र स्वागत हुआ।[41]

वृहद् राजस्थान के निर्माण के सम्बन्ध में 3 फरवरी, 1949 को श्री मेनन ने वरिष्ठ नेताओं से विचार विमर्श किया तथा राजधानी के चुनाव की समिति बनाई। इनके निर्णय के अनुसार जयपुर को राजधानी मान कर सरदार पटेल ने 30 मार्च, 1949 को वृहद राजस्थान राज्य का उद्घाटन किया। जयपुर के महाराजा को इसका आजीवन राजप्रमुख बनाया गया और विशेषता यह रही कि उदयपुर के महाराणा को भी आजीवन महाराज प्रमुख नियत कर दिया गया। इसके मंत्री मंडल का मुख्य मंत्री हीरालाल शास्त्री को नियुक्त किया गया, जिन्होंने 4 अप्रैल, 1949 को प्रशासन अपने हाथ में ले लिया। इनके मंत्रिमण्डल में श्री सिद्धराज लढढा, श्री प्रेमनारायण माथुर, श्री भूरेलाल बया, फूलचन्द बापना, नरसिंह कछवाह और रावराजा श्री हणूतसिंह सम्मिलित किये गये।[42]

मत्स्य संघ में असन्तोष :

पूर्वी राजस्थान के चार राज्यों का मत्स्य नामक संघ बनाया गया। यह असाधारण घटना थी। परन्तु यह चारों राज्य एक जैसे नहीं थे। उनके प्रशासन का स्वरूप अलग अलग ढंग का था। शिक्षा की दृष्टि से कोई आगे था, कोई पीछे। राजनैतिक ज्ञान भी जनता में बहुत कम था। जिस समय यह संघ बना तो जनता को बड़ी-बड़ी आशायें थीं। उनका ख्याल था कि प्रशासन शुद्ध और सक्षम होगा और जनतांत्रिक संस्थायें जमने लगेंगी परन्तु यह आशाएं पूरी नहीं हुईं।

कांग्रेस ने इस संघ का प्रशासन अपने हाथ में लिया तभी से लोगों में असंतोष फैलने लग गया और सरकार के विरुद्ध ध्वंसात्मक कार्यवाहियां की जाने लगीं। इन कार्यवाहियों को सघ अर्थात राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ, समाजवादी दल और जनाधिकार समिति

41–स्टेट्समैन 22 जनवरी, 1949; इंडियन न्यूज क्रोनिकल, नवम्बर 12 1948 दिसम्बर 7, 1948: हिन्दुस्तान टाइम्स, दिनांक 9, जनवरी 16, 1948.

42–टाइम्स आफ इंडिया, 12 जनवरी, 1949, जनवरी 27, 1949; स्टेट्समेन, जनवरी 3 फरवरी, 30 मार्च, 1949; व्हाइट पेपर आन इंडियन स्टेट्स पृ. 54.

करवाती थी । इन संगठनों का ध्येय सरकार को बदनाम करना व उसको गिराना था। उन दिनों खाद्य पदार्थों की कमी होने लगी थी । नित्य प्रति उपयोग में आने वाली वस्तुएं भी महंगी होती जा रही थीं । यह असन्तोष चारों राज्यों में था । अलवर में राजगढ़ और नीमराना इन विरोधी गतिविधियों के केन्द्र थे । भरतपुर में किसान सभा और नागरिक सभा इसको उभार रही थी और सरकार के विरुद्ध प्रचार कर रही थी । समाजवादी लोगों ने जनता को यह झूठी आशा दिलाई कि यदि सत्ता इनके पास आयेगी तो वे नीमराना में भूमिकर का संग्रह स्थगित कर देंगे । अलवर पत्रिका में समाजवादी पार्टी का बड़ा प्रचार किया गया । तब सरकार ने इस पत्र को बन्द कर दिया । इस पर समाजवादी पार्टी के सक्रिय कार्यकर्ता कुंजबिहारी लाल मोदी ने सरकार के निर्णय के विरुद्ध 26 जनवरी, 1949 को भूख हड़ताल शुरू कर दी । इस दल ने धौलपुर में एक सभा की जिसमें यह प्रस्ताव पारित हुआ कि भरतपुर और धौलपुर को मिलाकर "बृज प्रदेश" नामक एक अलग राज्य बना दिया जाये । किसान मजदूर पार्टी के साप्ताहिक पत्र "जनता" ने भी यही प्रचार किया ।[43]

राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ पर पाबन्दी :

राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के कार्यकर्ताओं ने सरकार के विरुद्ध सभाएं करना, जुलूस निकलना और और सरकार की निषेध आज्ञाओं का उल्लंघन करना शुरू किया । इसलिये मत्स्य संघ के आई.जी.पी. ने 9 दिसम्बर, 1948 को अलवर, भरतपुर धौलपुर और करौली के एस.पी. को आदेश दिया कि वे अपने अपने क्षेत्र में राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ में सक्रिय काम करने वाले लोगों को गिरफ्तार करलें । तदनुसार ये गिरफ्तारियां मत्स्य संघ के सुरक्षा अध्यादेश के अनुसार की गई । इस मत्स्य संघ में असन्तोष की आग भभक उठी ।[44]

इसके अतिरिक्त नये मंत्री मंडल के सामने सबसे बड़ी समस्या थी जाटों की । उनके प्रबल विरोध से राज्य में तनावपूर्ण स्थिति बन गई थी । जागीरदारों को यह भय था कि सरकार के भूमि प्रबन्ध से उनकी हानि होगी इसलिये उन्होंने बलपूर्वक किसानों से भूमि छीनना शुरु कर दिया । नौकरी पेशा लोगों को यह डर था कि उनको क्या वेतन मिलेगा और उन्हें तबादलों पर कहां भेजा जायेगा । इन तमाम कारणों का आन्दोलन करने वालों ने सरकार के विरुद्ध उपयोग किया और जनता के असंतोष को और भी बढ़ाया । 11 महीने में ही भरतपुर और धौलपुर के लोग अन्तरिम मंत्री मण्डल से असन्तुष्ट हो गये और कई प्रकार की योजनायें बनाने लगे । इसलिये कांग्रेस कार्यकर्त्ता चाहते थे कि मत्स्य संघ को उत्तर प्रदेश या दिल्ली में मिला दिया जाए । जागीरदार लोग उसे जयपुर से

43– कान्फीडेन्शल वीकली रिपोर्ट, 21-12-48, कलेक्टर धोलपुर, पत्र नं. 8205, दि. 24-12-48 फा.नं. 22/पी.एल./48 अलवर आर. जी.ए.; डा. गौड, कान्स्टीट्यूशनल डेवलपमेन्ट पृ. 212–213; रिपोर्ट आन एडमी. राजस्थान, 1950–51

44– फाइल नं. जी.ए.आई. | 16/48 आर.स.एस. अवैध संस्थाएं, आर.जी.ए.

मिलाना चाहते थे । किसान सभा चाहती थी कि भरतपुर व धौलपुर का अलग प्रान्त बना दिया जाए और इसका नाम "बृजप्रदेश" रखा जाये । भरतपुर और धौलपुर नरेश किसान सभा को गुप्त रूप से सहयोग दे रहे थे । रतनसिंह, गिरधर शर्मा, मोदी, लोहिया आदि विभिन्न दल के लोग भी संघ का विरोध करने लगे ।[45] अलवर और भरतपुर के मेव लोग एक नया मेवोस्थान बनाना चाहते थे । इस इकाई के शासन भी सरकार के लिए एक समस्या थे । वे भी विरोधियों के पक्षधर थे । परन्तु मत्स्य संघ आर्थिक दृष्टि से आत्म निर्भर नहीं था । सरकार को यह भय था कि इन घटनाओं के कारण मत्स्य संघ कहीं भंग न हो जाय । जब लगभग सभी राज्य राजस्थान में मिल चुके थे तो मत्स्य संघ का कोई औचित्य भी नहीं रह गया था ।[46]

मत्स्य संघ का राजस्थान में विलय :

13 फरवरी, 1946 को अलवर, भरतपुर, धौलपुर और करौली के नरेशों तथा मत्स्य संघ के मंत्रियों को दिल्ली बुलाया गया और इस संघ को उत्तर प्रदेश या राजस्थान में मिलने के लिये विचार विमर्श किया गया । मत्स्य संघ के निर्माण के समय यह स्पष्ट कह दिया गया था कि आवश्यकता होगी तो इस संघ को उपरोक्त दोनों राज्यों में से किसी एक में मिला दिया जाएगा । अलवर और करौली के नरेश तो राजस्थान राज्य में मिलने के लिये राजी हो गये परन्तु भरतपुर और धौलपुर तैयार नहीं हुये । कुछ मन्त्री राजस्थान में मिलना चाहते थे कुछ उत्तरप्रदेश में शामिल होना चाहते थे । उनकी मान्यता थी कि उनकी भाषा उत्तर प्रदेश की भाषा से मिलती-जुलती है । 23 मार्च, 1949 को मेनन ने चारों नरेशों से पुनः वार्ता की तो भरतपुर के महाराजा ने सूचित किया कि उनकी अधिकांश प्रजा राजस्थान मे मिलने के पक्ष मे हैं । धौलपुर के राज-राणा भी कुछ दिनों बाद राजस्थान में मिलने के लिए सहमत हो गये । परन्तु शर्त यह रखी गई कि आगे चलकर यदि धौलपुर के लोग उत्तर प्रदेश में मिलना चाहें तो कोई एतराज नहीं होना चाहिये । भरतपुर और धौलपुर की जनता की इच्छा जानने के लिए स्टेट मिनिस्ट्री ने एक कमेटी नियुक्त की जिसके प्रधान शकरराव देव थे और आर. के. सिद्धव, प्रभुदयाल तथा हिम्मतसिंह सदस्य थे । कमेटी ने जांच करके यह नतीजा निकाला कि अधिकांश लोग उत्तरप्रदेश में नहीं राजस्थान में सम्मिलित होना चाहते थे ।[47]

10 मई, 1949 को मत्स्य संघ के चारों नरेशों की दिल्ली में एक कान्फ्रेन्स हुई । इसमें राजस्थान के राजप्रमुख और चीफ मिनिस्टर को भी बुलाया गया । मत्स्यसंघ के चारों नरेश अपने पुराने केबीनेट को रद्द करके संघ को राजस्थान में मिलाने को राजी हो गये । तब विलय-पत्र के प्रारूप को तैयार किया गया जिस पर राजस्थान के राजप्रमुख व चारों राज्यों के नरेशों ने हस्ताक्षर कर दिये । इस पर यह शर्त रखी गई

45- फा. नं. जी. ए. आई. /33/ 48, यू. एस. एम. आर. जी. ए.

46- ला एण्ड आर्डर रिपोर्ट, भरतपुर 6-12-48, फा. नं. 22/पी. एल./ 48 अलवर, आर.जी.ए.

47- इंडियन न्यूज क्रोनीकल, मार्च 23, 1948, डा. गौड, कोन्स्टीट्यूशनल डेवलपमेन्ट पृ. 212-218.

कि जब मत्स्य संघ की जनता सोच समझ कर अपनी राय प्रकट करने योग्य हो जाए तो सम्मति ली जाए कि वे राजस्थान के साथ रहना चाहते हैं या उत्तरप्रदेश के साथ। 15 मई, 1949 को मत्स्य संघ का प्रशासन राजस्थान के सुपुर्द कर दिया गया।[48]

सिरोही:

15 मई, 1949 को मत्स्य संघ का विलय हो जाने के बाद सिरोही राज्य रह गया जिसके विषय में अब तक कोई निर्णय नहीं हुआ था। सिरोही के महाराजा अपने को हिन्दु सम्राट पृथ्वीराज चौहान के वंशज मानते हैं। 1818 में जब राजस्थान के अन्य राज्यों ने ब्रिटिश सरकार से सुरक्षा के लिए अधीनता की संधियां कर लीं, उस समय सिरोही के साथ संधि न हो सकी कारण यह था कि जोधपुर के महाराजा सिरोही को अपने राज्य का एक भाग मानते थे। फिर बड़ी बहस के बाद 1823 में सिरोही ने ब्रिटिश सरकार से अन्य छोटे राज्यों की भांति संधि कर ली। 1845 में कुछ शर्तों के साथ ब्रिटिश सरकार को सेनीटोरियम बनाने के लिए आबू पर्वत पर भूमि दे दी गई उसका उल्लेख पहले किया जा चुका है।[49]

नवम्बर, 1947 में वल्लभ भाई पटेल को सुझाया गया कि राजपूताना एजेन्सी के कुछ राज्यों को पश्चिम भारत और गुजरात राज्य एजेन्सी में मिला दिया जाए। कारण यह बतलाया गया कि उन राज्यों की अधिकांश जनता गुजराती बोलती है। ऐसे राज्य सिरोही, पालनपुर, दांता, ईडर, विजयनगर, डूंगरपुर, बांसवाड़ा और झाबुआ थे। इस प्रश्न पर स्थानीय नेताओं और राजपूताना के कमिश्नर से परामर्श किया गया तो यह निश्चय हुआ कि पालनपुर, दांता, ईडर और विजयनगर को पश्चिम भारत और गुजरात राज्य एजेन्सी में मिला दिया जाए। यह कार्य एक फरवरी, 1948 को सम्पन्न हुआ। झाबुआ, बांसवाड़ा और डूंगरपुर मेवाड़ के हिस्से थे और उदयपुर से निकले हुए थे, इसलिये उनको राजपूताना स्टेट एजेन्सी में रहने दिया गया। फिर बाद में सिरोही को नवम्बर, 1947 को पश्चिम भारत और गुजरात राज्य एजेन्सी में सम्मिलित कर दिया गया।[50]

1948 के 19 मार्च को गुजरात की रियासतें बम्बई प्रांत में सम्मिलित होने पर राजी हो गई। उस समय सिरोही पर विचार नहीं किया गया। कारण यह था कि सिरोही का शासक उस समय नाबालिग था। शासन का संचालन एक रीजेन्सी काउन्सिल कर रही थी जिसकी अध्यक्ष राजमाता थी। इससे भी अधिक जटिल बात यह थी कि उत्तराधिकार के विषय में विवाद था परन्तु जब गुजरात की सभी रियासतें बम्बई में सम्मिलित हो गईं तो सिरोही अलग नहीं रह सकती थी। अब प्रश्न यह था कि सिरोही को बम्बई में मिलाया जावे अथवा राजस्थान में। गोकुल भाई भट्ट से परामर्श किया गया क्योंकि वे राजमाता के सलाहकार थे और राजस्थान राज्य को कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष

48—इंडियन न्यूज क्रोनीकल, 15 मई, 1949; डा. गौड़, कोन्स्टीट्यूनल डेवलपमेंट, पृ. 212–218.

49—एचीसन, ट्रीटीज एन्गेजमेंट्स एण्ड जि.—3, पृ. 310–315.

50—वी.पी. मेनन, द स्टोरी आफ द इंटिग्रेशन आफ इंडियन स्टेटस, पृ. 269-70

थे। गोकुल भाई भट्ट की राय थी कि अभी सिरोही के विषय में अन्तिम निर्णय नहीं लिया जाए। फिलहाल यहां केन्द्र का शासन स्थापित कर दिया जाए। यह प्रस्ताव मान लिया गया और 8 नवम्बर, 1948 को राजमाता ने भी उस पर हस्ताक्षर कर दिए। 2 माह बाद 5 जनवरी, 1949 को केन्द्रीय सरकार ने प्रशासन चलाने के लिए सिरोही बम्बई सरकार को दे दी।[51]

इसके उपरांत भी सिरोही के विषय में अब भी यह प्रश्न था कि उसको राजस्थान में मिलाया जाय या बम्बई में। इसकी अखबारों में बड़ी चर्चा हुई और यह मामला पार्लियामेंट में भी पहुंच गया। तब सिरोही जाकर मेनन ने जांच की कि गुजराती लोग क्या कहते थे। इनका कहना था कि आबू पर्वत की संस्कृति गुजरात से मिलती है। देलवाड़े के सुन्दर और भव्य मन्दिर आबू पर्वत पर स्थित हैं। गुजरात और काठियावाड़ और कच्छ से निकटतम सम्बन्ध है। उनका सम्बन्ध राजस्थान में उतना नहीं है। राजस्थान के पक्ष में यह कहा जाता है कि सिरोही राज्य की अधिकांश जनता गुजराती नहीं बोलती। राजस्थान के कई शासकों ने आबू पर्वत पर अपने निवासस्थान बना रखें हैं। राजस्थान में गर्मी के मौसम के लिये कोई पर्वतीय स्थल नहीं है। इस सम्बन्ध में सिरोही के नेताओं में भी मतभेद था।[52]

इसी मध्य सरदार पटेल ने 16 नवम्बर, 1949 को यह घोषणा कर दी कि सिरोही राज्य के दो हिस्से कर दिये जायें। एक हिस्सा बम्बई में और दूसरा राजस्थान में मिला दिया जावे। गोकुल भाई भट्ट को दिल्ली बुलाया गया और उनसे विचार विमर्श किया गया। वे राज्य का विभाजन पसन्द नहीं करते थे। परन्तु किसी प्रकार से मामले को सुलझाने को सहमत हो गये। 26 जनवरी, 1950 में यह निश्चिय हुआ कि आबू रोड़ और देलवाड़ा तहसील बम्बई में मिलादी जाए और शेष सिरोही राज्य को राजस्थान में शामिल कर दिया जाए। परन्तु इस विभाजन के विरुद्ध आन्दोलन होते रहें और गुजरात राजस्थान और बम्बई सरकारें उसके लिए अपने अपने दावे करती रही। गुजरात विश्वविद्यालय के कुलपति हरसिद्ध भाई देवतिया तथा सौराष्ट्र के भूतपूर्व न्यायाधीश ने गुजराती साहित्य परिषद (दिसम्बर 1952) में सांस्कृतिक दृष्टि से आबू को गुजरात का भाग बतलाया। वल्लभ विद्यानगर के पाण्डे ने आबू इन बोम्बे स्टेट में इस कथन का समर्थन किया अन्त में पुनर्गठन आयोग एवं मुनी जिनविजयजी की समिति की सिफारिश पर। नबम्बर 1956 को आबू रोड और देलवाड़ा तहसील भी राजस्थान में मिला दिये गये।[53]

51– वी पी. मेनन, द स्टोरी आफ द इंटिग्रेशन आफ इंडियन स्टेट्स पृ. 270.

52–राजस्थान सरकार, आबू समिति प्रतिवेदन, पृ. 4–23, मेनन, पृ. 271–73.

53–राजस्थान सरकार, आबू समिति पृ. 23;
स्टेट री ओरगेनाइजेशन कमीशन, रिपोर्ट दिल्ली, 1955पृ.,139, मेमोरेण्डम जयपुर सरकार, स्टेटरी-ओरगेनाइजेशन कमेटी 1954, पृ. 1-5; राजस्थान डिस्ट्रिक्ट गजेटियर सिरोही पृ. 82–83.

अजमेर का विलय:

15 अगस्त, 1947 जब भारत स्वतन्त्र हो गया तो पहिले के शासकीय प्रबन्ध के अनुकूल अजमेर का केन्द्रीय शासन के अन्तर्गत अस्तित्व बना रहा। परन्तु जब राजस्थान के कई भाग एक के बाद दूसरे विलीनीकरण के दौर से गुजर रहे थे तो अजमेर में भी जनमत इसमें मिलने को प्रयत्नशील हुआ। इधर से राजस्थान सरकार ने भी अजमेर को अपने संघ में सम्मिलित करने का दावा पेश किया। इसके कई आधार बतलाये जो सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक तथा राजनीतिक थे। अजमेर एक टापू बन जाने से तथा छोटी सी राज्य की श्रेणी में आ जाने से पंगु बन गया था, जिसके साधन सीमित थे तथा अनेक प्रकार की शासकीय कठिनाइयां थी। साथ ही इधर उधर के डकैत आकर यहां छिप जाते थे जिन पर कार्यवाही करने में असुविधा एवं विलम्ब होता था। रहन-सहन, भाषा, आचार-विचार से यहां के लोग राजस्थान के सन्निकट थे और उनके परम्परागत सम्बन्ध तथा आस्थाएं राजस्थान से जुड़ी हुई थीं।[54]

जब इस प्रकार के विचार के प्रतिवेदन स्टेट री-ओरगेनाइजेशन कमिशन के सम्मुख आये तो उन पर विचार विमर्श हुआ। श्रीवी.पी मेनन का भी कथन था कि जब सभी राजस्थान के राज्य राजस्थान में मिला दिये गये हैं तो अजमेर को अलग इकाई रखने का कोई औचित्य नहीं रहा है। अन्त में कमिशन ने अजमेर को राजस्थान में मिलाये जाने की सिफारिश कर दी और एक नवम्बर, 1956 को अजमेर संभाग राजस्थान का भाग बन गया।[55]

इस प्रकार आबू मिल जाने से राजस्थान को उसका प्राण और अजमेर मिल जाने से उसका हृदय मिल गया। एक लम्बे संघर्ष ने राजस्थान को एक इकाई बनाकर राणा सांगा व महाराणा राजसिंह के स्वप्नों को मूर्तरूप दिया। श्री वल्लभभाई पटेल व पं. जवाहर लाल नेहरू के सद्भावनाओं और पवित्र आकांक्षाओं का यह फल था कि राजस्थान जो एक पिछड़ा इलाका था उन्नत राज्यों की संज्ञा में आने का प्रयास कर सका। स्थानीय नेताओं और स्वयं सेवकों के त्याग की भी इसमें प्रशंसनीय भूमिका रही है।

लगभग 1857 से 1947 की अवधि से चलनेवाला राजस्थान का स्वतन्त्रता का आन्दोलन प्रजामंडल प्रजापरिषद्, लोक परिषद् आदि संस्था के माध्यम से विजयश्री का भागी बना। इस संघर्ष ने कई कर्मठ कार्यकर्त्ताओं को बलिदान द्वारा अमर कीर्ति अर्जित करवाई। इस क्रान्ति ने सामन्तवाद और विशेष अधिकार वर्ग की सत्ता की भित्तियों को ढाकर जनता की स्वाधीनता के गढ़ों का निर्माण किया। यह अपूर्व क्रांति सदियों से चली आने वाली अत्याचार की परम्परा को जड़ों से उखाड़ स्वस्थ परम्परा की

54-राजस्थान सरकार के विचार और सुझाव स्टेट रीओरगेनाइजेशन कमिशन के सन्मुख 1954.

55-रिपोर्ट स्टेट रीओरगेनाइजेशन कमिशन, 1955, पृ. 75, 136, मेनन, स्टोरी आफ इन्टग्रेशन, पृ. 266 इडियन एक्सप्रेस, नवम्बर 1, 1956, पृ. 10, राजस्थान डिस्ट्रिक्ट गजट, पृ. 93-97.

स्थापना कर सकी। एक नए राष्ट्रीय भाव को जन्म दे स्वतन्त्रता सेनानियों ने निरंकुश प्रवृति का विनाश किया। वास्तव में इस पावन यज्ञ की सम्पूर्ण प्रक्रिया में राष्ट्रपिता महात्मा गांधी व पं. जवाहरलाल जी का मार्ग दर्शन था। इन्होंने सत्य, अहिंसा तथा नैतिकता के बल पर ब्रिटेन जैसी महान शक्ति को एक सफल चुनौती दी। उन्हीं के बताए हुए तौर तरीकों को अपनाकर राजस्थान के अग्रणी नेता-पथिक जी, श्री जयनारायण व्यास, श्री हीरा लाल शास्त्री, हरिभाऊ उपाध्याय, जमनालाल बजाज, श्री वर्मा जी आदि अनेक कर्मनिष्ठ नेताओं ने जेलों की यातनाओं को झेल कर तथा अनेकानेक प्रकार के कष्टों को सहन कर अपने लक्ष्य को पूरा कर शाश्वत यश प्राप्त किया। अपने अदम्य साहस और व त्याग से उन्होंने जन आन्दोलन को प्रगति दी। इनके साथ काम करने वाले असंख्य स्वयंसेवकों ने भी इस अवसर पर अपने प्राणों की बाजी लगा दी। भारत छोड़ो आन्दोलन, विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार भूख हड़ताल जैसी कठोर परीक्षाओं में ये सेनानी सफल साबित हुए तथा क्रिप्स मिशन, शिमला कान्फ्रेन्स, साइमन कमिशन, देश विभाजन आदि की अंग्रेजों की कूटनीति की जाल को काटकर सच्चे देश प्रेमी सिद्ध हुए। राजस्थान की अलग अलग रियासतों के हित, स्वार्थ और रुचियां विभिन्न थीं जो एकता की स्थिति में विरोधी तत्वों की पोषक थी। सम्पूर्ण राज्य के एक हो जाने से समष्टी और भाई चारे की भावना नैसर्गिक रूप से पल्लवित हुई और विलग राज्य एकत्व का अनुभव करने लगे। इनके जीवन में राष्ट्रीय भाव और ममत्व की सरिता बहने लगी जो देश हित की पोषक शक्ति बनी। निरंकुश शासकों का छत्र झोपड़ियों के आश्रय में जा पड़ा और गरीबों, कृषकों तथा पद-दलितों और बेसहारों का संरक्षक बन गया। कतिपय नरेशों ने भी समय की गति को पहचान स्वतन्त्रता की मशाल को प्रज्जवलित रखने में अपना हाथ बटाया।

इस प्रकार 1857 से आरंभ होकर 1947 में लम्बे संघर्ष के उपरान्त राजस्थान का स्वाधीनता संग्राम सफलतापूर्वक समाप्त हुआ। वस्तुत: राष्ट्र के जीवन में 91 वर्ष की अवधि कोई बड़ा समय नहीं होता और न इसकी कहानी यहां समाप्त ही होती है। सच तो यह है कि यहां से राजस्थान का एक नया अध्याय आरंभ होता है। यहां की राजनीति, समाज-संगठन तथा सामाजिक सुधार की गतिविधियों का युगान्तर प्रविष्ट होता है। इस अर्थ में हमारी स्वतन्त्रता शोषण, त्रास, अन्याय, दबाव, वर्ग भेद आदि कुत्सित परिपाटियों की समाप्ति की सूचक और आर्थिक विकास के सूत्रपात की संदेश-वाहक बनी। एक प्रकार से स्वाधीनता हमारी क्रमबद्ध योजनाओं तथा औद्योगिक प्रगति का सूर्योदय था।

प्रजा द्वारा जिन कुशल स्वतन्त्रता सेनानियों के हाथ राज्य की बागडोर सौंपी गई उन्होंने भी अपनी निष्ठा के साथ लोकतंत्र को सींचा और सभी विचारधाराओं को पल्लवित होने का अवसर प्रदान किया। फलत: आज का राजस्थान वर्तमान परिप्रेक्ष्य में परिपक्व, समर्थ, समृद्ध तथा सक्षम है और नए समाज के निर्माण कार्य में संलग्न है। आज जो राजस्थान का व्यक्तित्व उभरा है वह हमारे हजारों स्वतन्त्रता सेनानियों के बलिदान, त्याग और तपस्या का विशुद्ध एवं पवित्र परिणाम है।

तिथि क्रम

राजस्थान में स्वतन्त्रता–संग्राम का तिथि-क्रम

29 सितम्बर	1803 – महाराजा रणजीतसिंह (भरतपुर से लेक की संधि)
14 नवम्बर,	1803 – अलवर और ई. इंडिया कंपनी के मध्य संधि
	1804 – धौलपुर से ई. इ. कंपनी की संधि
17 अप्रेल,	1805 – भरतपुर से ई. इण्डिया कं. की दूसरी संधि
	1817 – टौंक से ई. इ. कम्पनी की संधि
9 नवम्बर,	1817 – करौली से ई. इण्डिया कम्पनी की संधि
26 दिसम्बर,	1817 – कोटा व ईस्ट इंडिया कम्पनी की सन्धि
6 जनवरी,	1818 – कम्पनी और जोधपुर के महाराजा मानसिंह के मध्य सन्धि
13 जनवरी,	1818 – कम्पनी और उदयपुर के महाराजा भीमसिंह के मध्य संधि
10 फरवरी,	1818 – बूंदी और ईस्ट इंडिया कम्पनी की सन्धि
8 मार्च,	1818 – टाड का उदयपुर आना और स्वागत
9 मार्च,	1818 – बीकानेर और ईस्ट इंडिया कम्पनी की सन्धि
2 अप्रेल,	1818 – जयपुर और ई. इंडिया कम्पनी के साथ सन्धि
25 जून,	1818 – दौलतराव सिंधिया से ई. इंडिया कम्पनी की सन्धि
5 अक्टूबर,	1818 – प्रतापगढ़ और ईस्ट इंडिया कम्पनी के साथ सन्धि
11 दिसम्बर,	1818 – डूंगरपुर और ई. इन्डिया कम्पनी के साथ सन्धि
12 दिसम्बर,	1818 – जैसलमेर से ई. इन्डिया कम्पनी की सन्धि
25 दिसम्बर,	1818 – बांसवाड़ा और ई. इण्डिया कम्पनी के साथ सन्धि
11 सितम्बर,	1823 – सिरोही व ईस्ट इंडिया कम्पनी की सन्धि
10 अप्रेल,	1838 – झालावाड़ व ई. इंडिया कम्पनी की सन्धि
4 अक्टूबर,	1849 – सिक्का "सरूपशाही" के लिये खरीता
	1854 – का कौलनामा उदयपुर
19 मई,	1857 – मेरठ में होने वाले विप्लव की सूचना
28 मई,	1857 – नसीराबाद में क्रान्ति
31 मई,	1857 – भरतपुर की सेना ने विद्रोह कर दिया
3 जून,	1857 – नीमच में क्रान्ति

5 जून,	1857 –	नीमच के क्रान्तिकारियों का दिल्ली के लिये प्रस्थान
6,7,8 जून	1857 –	नीमच पर अंग्रेजों का पुनः अधिकार
12 जून	1857 –	नीमच में गोरों की फौज
5 जुलाई	1857 –	शाहगंज के पास क्रांतिकारियों से लड़ाई
9 अगस्त	1857 –	अजमेर जेल से कैदियों का भागना
21 अगस्त	1857 –	जोधपुर लीजन की आबू में क्रान्ति
21 अगस्त	1857 –	जोधपुर लीजन के सैनिकों की एरनपुरा में क्रान्ति
25 अगस्त	1857 –	टौंक नवाब का पत्र ए.जी.जी. को
8 सितम्बर	1857 –	जोधपुर की सेना को पाली में कुशालसिंह द्वारा हराया जाना
15 सितम्बर	1857 –	बर्टन की कोटा में नियुक्ति
18 सितम्बर	1857 –	शावर्स द्वारा निम्बाहेड़ा के किले पर धावा
18 सितम्बर	1857 –	लोरेन्स की आऊवा पर चढ़ाई और पराजय, मेसन का मारा जाना
18 सितम्बर	1857 –	मेवाड़ के जागीरदारों की सेना का निम्बाहेड़ा पहुंचना
19 सितम्बर	1857 –	निम्बाहेड़ा पर अंग्रेजों का कब्जा
10 अक्टूबर	1857 –	जोधपुर लीजन व अन्य सरदारों का दिल्ली प्रयाण
12 अक्टूबर	1857 –	बर्टन का कोटा जाना
12 अक्टूबर	1857 –	आऊवा के क्रांतिकारियों का वहां से प्रयाण
14 अक्टूबर	1857 –	महाराव कोटा से बर्टन की भेंट
15 अक्टूबर	1857 –	क्रांतिकारियों द्वारा कोटा रेजिडेन्सी का घेराव तथा बर्टन, उसके दो पुत्रों और शोल्डर की हत्या
22 अक्टूबर	1857 –	निम्बाहेड़ा, जीरण, केसूदा में क्रांति का आरम्भ
20 जनवरी	1858 –	आऊवा पर पांच दिन का घेरा और दुर्ग को कर्नल होम्स द्वारा नष्ट करना
24 जनवरी	1858 –	आऊवा दुर्ग पर अंग्रेजों का अधिकार
22 जून	1858 –	तांत्या का राजस्थान की ओर आना, भीलवाड़ा, कोठारिया, सींगोली, कुशलगढ़, भीण्डर प्रतापगढ़ जाना
2 अगस्त	1858 –	अधिनियम द्वारा कम्पनी की सत्ता की समाप्ति
14 अगस्त	1858 –	बनास नदी के तट पर तांत्या और अंग्रेजों की मुठभेड़
1 नवम्बर	1858 –	दिल्ली दरबार (केनिंग)
नवम्बर	1858 –	महारानी विक्टोरिया की घोषणा

20 नवम्बर	1858	– मेवाड़ के महाराणा के दरबार में विक्टोरिया की घोषणा सुनाई गई
9 दिसम्बर	1858	– तांत्या का राजस्थान में पुनः प्रवेश, बांसबाड़ा आदि स्थानों पर जाना
23 दिसम्बर	1858	– तांत्या की मेजर राक से लड़ाई
21 जनवरी	1859	– तांत्या का पीछा किया जाना, दौसा, सीकर इन्द्रगढ़ आदि
7 अप्रेल	1859	– तांत्या की गिरफ्तारी
18 अप्रेल	1859	– तांत्या को फांसी
जुलाई	1860	– मेहराबखां को फांसी
8 अगस्त	1860	– कुशालसिंह की अंग्रेजों को सुपुर्दगी
17 सितम्बर	1860	– जयदयाल को फांसी
जनवरी	1864	– उदयपुर में कुछ नियमों के विरोध में हड़ताल
	1866	– जोधपुर की जनता में शासन के विरुद्ध असन्तोष
	1867	– देवल के भीलों का उपद्रव
	1868	– मेवाड़ में भीलों का उपद्रव
	1868	– देवीसिंह को आऊआ की जागीर
फरवरी	1878	– उदयपुर में पुनः हड़ताल
	1881	– भीलों का मेवाड़ में उपद्रव
25 मार्च	1881	– बारापाल, अलसीगढ़, भोराई व नठारा में भीलों के उपद्रव
	1881	– दयानन्द सरस्वती का राजस्थान में दुबारा आना और अनेक स्थानों में जाकर प्रचार करना।
6 अक्टूबर	1881	– दयानन्द सरस्वती का बनेड़ा पहुंचना
26 अक्टूबर	1881	– दयानन्द सरस्वती का चित्तौड़ आगमन
21 मार्च	1882	– पुनः भीलों का उपद्रव
11 अगस्त	1882	– स्वामीजी का पुनः उदयपुर पहुंचना
	1883	– मीणों, भीलों, बावरी आदि का जोधपुर में विरोध
	1883	– सम्पसभा की स्थापना
8 मार्च	1883	– दयानन्द सरस्वती का शाहपुरा जाना
31 मई	1883	– दयानन्द सरस्वती का जोधपुर जाना
28 दिसम्बर	1883	– स्वामी दयानन्द सरस्वती का स्वर्गवास
	1891	– विवेकानन्द का अलवर तथा जयपुर आगमन
	1893	– देवड़ों का जसवन्तपुरा में विरोध

15 अप्रेल	1896	– रायगढ़ में शिवाजी उत्सव
	1897	– बिजोलिया के गिरधरपुरा गांव में धाकड़ों का एकत्रित होना।
	1898	– विवेकानन्द का पुनः जयपुर, खेतड़ी और अजमेर आना
	1903	– संप सभा का अधिवेशन
	1903	– महाराणा फतहसिंह को दिल्ली दरबार में जाते समय "चेतावणी"
16 अक्टूबर	1905	– बंगाल विभाजन
7 दिसम्बर	1908	– गोविन्दगिरी की धूणी के पास कई भीलों की अंग्रेजों द्वारा हत्या
23 दिसम्बर	1912	– दिल्ली बम काण्ड में प्रतापसिंह और जोरावरसिंह की भूमिका
	1912	– सर्वहित कारिणी सभा चूरू
	1914–1920	– अर्जुनलाल सेठी की नजरबन्दी
	1915	– मरुधर हितकारिणी सभा की स्थापना
19 फरवरी	1915	– सशस्त्र विद्रोह का सरकार को पता चलना
21 फरवरी	1915	– खरवा स्टेशन की बम योजना
10 जुलाई	1915	– रावगोपालसिंह और भूपसिंह का टाडगढ़ से गायब होना
12 अक्टूबर	1915	– उन्हें बन्दी बनाना
	1916	– पथिक जी का बिजोलिया जाना
	1917	– मारवाड़ हितकारिणी सभा की स्थापना
	1918	– प्रजा प्रतिनिधि सभा, कोटा की स्थापना
18 अक्टूबर	1918	– कोटा में अनाज के भावों को लेकर विरोध
	1919	– राजस्थान सेवा संघ की वर्धा में स्थापना
	1919	– राजपूताना-मध्य भारत सभा की अजमेर में स्थापना
	1920	– राजस्थान सेवा संघ का अजमेर मे स्थानान्तरण
	1920	– मारवाड़ सेवा संघ की स्थापना
	1920	– बीकानेर सद्‌विद्या प्रचारिणी सभा की स्थापना
8 फरवरी	1921	– नरेन्द्र मण्डल का दिल्ली में उद्‌घाटन
	1921	– बेगूं का आन्दोलन
	1921–22	– शेखावाटी का कृषक आन्दोलन और आगे
	1921–22	– ईडर, बांसवाड़ा, डूंगरपुर, सिरोही, दांता, प्रतापगढ़, भोमट मे भीलों के आन्दोलन
8 मई	1922	– रोहेड़ा तहसील के भीलों पर गोलियां बरसाना
15 जून	1922	– बरड़ (बून्दी) का काण्ड
	1922	– जयपुर में हिन्दी भाषा के प्रचलन के लिए आन्दोलन
	1922	– बरड़ का कृषक आन्दोलन

23 सितम्बर	1923	– जयनारायण व्यास की गिरफ्तारी
	1923	– झालावाड़ में मित्र मण्डल की स्थापना
29 अक्टूबर	1923	– मारवाड़ में पशु निकासी को लेकर आन्दलोन
	1924	– सीकर में आन्दोलन
	1924	– मारवाड़ हितकारिणी सभा की स्थापना
13 मई	1925	– नीमूचाणा काण्ड
	1926	– कृषक आन्दोलन जोधपुर और आगे
1 सितम्बर	1927	– पुलिस के विरोध में जयपुर में आन्दोलन
	1927	– ट्रेन्च का बिजोलिया जाना
	1927	– माणिकलाल वर्मा व पथिक का मेवाड प्रवेश निशिद्ध
	1927	– जाटों की सभा और आन्दोलन का निर्णय
23,24 नवम्बर	1928	– राजपूताना देशी राज्य परिषद् का प्रथम अधिवेशन
	1928	– राजस्थान सेवा संघ का कार्य शिथिल
	1928–29	– जयपुर में आन्दोलन व प्रजामण्डल
6 जनवरी	1929	– भरतपुर में पीपुल्स एसोसियेशन की स्थापना
23 सितम्बर	1929	– जयनारायण व्यास आदि की गिरफ्तारियां
4 जून	1929	– मोतीलाल तेजावत की गिरफ्तारी
	1929	– हरिभाऊ उपाध्याय द्वारा बिजोलिया समझौते का प्रयास
20 जनवरी	1930	– जयनारायण व्यास आदि के विरुद्ध मुकदमें की तजवीज
	1930	– बिजोलिया में लाग बाग की समाप्ति
10 मई	1931	– मारवाड़ यूथ लीग की स्थापना
	1931	– मारवाड़ लोक परिषद् का पुष्कर अधिवेशन
2 सितम्बर	1931	– हाड़ोती प्रजामण्डल की स्थापना
	1931	– जयपुर में प्रजामण्डल की स्थापना
	1931	– बूंदी में प्रजामण्डल की स्थापना
25 अप्रेल	1932	– अजमेर के चीफ कमिश्नर जिप्सन की हत्या की योजना
	1932	– अखिल भारतीय जाट सभा का झुन्झुनूं अधिवेशन
8 जुलाई	1932	– उदयपुर में पीपली घाट की घटना
	1934	– नारेली सेवाश्रम का खोला जाना
	1934	– बम्बई में सिरोही प्रजामण्डल की स्थापना
	1934	– मारवाड़ प्रजामण्डल की स्थापना
	1932–34	– बीकानेर षड़यन्त्र केस
4 अप्रेल	1935	– डोगरा की हत्या का प्रयास
	1935	– पुलिस का सीकर के गांवों में गोलियां चलाना और किसानों का हताहत होना

	1936 –	धौलपुर में प्रजामण्डल की स्थापना
	1937 –	में जयपुर मण्डल का पुनः संगठन
	1937 –	बहरोड़ गोली काण्ड
सितम्बर	1937 –	पं. नेहरू का मारवाड़ जंक्शन से गुजरने पर भव्य स्वागत
23 जनवरी	1936 –	सुभाष बोस का जोधपुर आना और भाषण
6 मार्च	1938 –	भरतपुर प्रजामण्डल की स्थापना
24 अप्रेल	1938 –	मेवाड़ प्रजामण्डल की स्थापना
मई	1938 –	मारवाड़ लोक परिषद् की स्थापना
8 मई	1938 –	जयपुर प्रजामण्डल का प्रथम अधिवेशन
11 मई	1938 –	मेवाड़ प्रजामण्डल को अवैध घोषित करना
	1638 –	39 सीकर आंदोलन
	1938 –	अलवर में प्रजामण्डल की स्थापना और कांग्रेस समिति का नाम बदला
	1938 –	सिरोही में प्रजामण्डल की स्थापना
	1938 –	मांगरोल प्रजामण्डल का अधिवेशन
	1938 –	करौली में प्रजामण्डल की स्थापना
16 जनवरी	1939 –	महाजन के जाटों का संगठन
1 फरवरी	1939 –	जमनालाल बजाज व जयपुर सत्याग्रह
2 फरवरी	1939 –	माणिक्यलाल बर्मा की गिरफ्तारी
	1939 –	जैसलमेर की प्रजापरिषद् की स्थापना
	1939 –	भरतपुर प्रजामण्डल का नाम प्रजा परिषद बदला गया
29 अप्रेल	1940 –	भड़ाई गांव में पूर्वीय राजपूताना राज्यों का सम्मेलन
	1940 –	प्रोग्रेसिव एसोसियेशन का नाम प्रजामण्डल अलवर बदला रजिस्ट्री के लिए
	1940 –	झालावाड़ में मित्र मण्डल को प्रजामण्डल बनाया गया
8 जून	1941 –	मारवाड़ लोक परिषद की म्यूनिसिपेलिटि चुनाव में विजय
	1941 –	अर्जुनलाल सेठी व केसरीसिंह बारहट का स्वर्गवास
	1941 –	रायपुर (जोधपुर) के कृषकों का दमन
28–30 सितम्बर	1941 –	भरतपुर में राजनैतिक सम्मेलन
नवम्बर	1941 –	उदयपुर में प्रजामण्डल का प्रथम अधिवेशन
12 नवम्बर	1941 –	ज्वालाप्रसाद का जेल से भागने का प्रयास करना
	1942 –	मोतीलाल तेजावत की गिरफ्तारी
28 मार्च	1942 –	चन्दावल (जोधपुर) में दमन की घटनाएँ
19 जून	1942 –	बालमुकुन्द बिस्सा की निर्मम हत्या
26 जनवरी	1945 –	डूंगरपुर प्रजामण्डल का अधिवेशन
	1945 –	रामकल्याण की शहीदी (बूंदी)
	1945 –	बांसवाड़ा प्रजामण्डल की स्थापना
2 जनवरी	1946 –	स्टेटस पीपुल कान्फ्रेन्स उदयपुर में

31 दिसम्बर 1945 से 1–2 जनवरी 1946 – उदयपुर में अखिल भारतीय प्रजा परिषद कान्फ्रेन्स

जनवरी	1946	– मेवाड़ कर्मचारियों की हड़ताल
2 फरवरी	1946	– खेड़ा मंगलसिंह, प्रजामण्डल सम्मेलन और गिरफ्तारियां
मार्च	1946	– राजस्थान के कुछ दिवानों द्वारा संघ के लिये परामर्श
3 अप्रेल	1946	– सागरमल गोपा की जेल में हत्या के प्रयास का ढोंग
4 अप्रेल	1946	– सागरमल गोपा की अस्पताल में मत्यु
10 मई	1946	– राजगढ़ (बीकानर) में पुलिस की क्रूरता
8 जुलाई	1946	– राजस्थान के दिवानों का परामर्श के लिए पुनः मिलना
जुलाई	1946	– रायसिंह नगर में सम्मेलन, बीरबलसिंह गोलियोंका शिकार
22 अगस्त	1946	– अलवर और राजगढ़ में आन्दोलन
12 नवम्बर	1946	– तसीमी गांव में धौलपुर प्रजामण्डल का अधिवेशन और पुलिस द्वारा अत्याचार
25 नवम्बर	1946	– झालावाड़ में प्रजामण्डल की स्थापना
	1946	– डूंगरपुर में प्रजामण्डल की स्थापना
29 जनवरी	1947	– नरेन्द्र मण्डल की बम्बई में बैठक और समझौते का मानना विकल्प निर्धारित
20 फरवरी	1947	– पार्लियामेन्ट में भारत को आजाद करने की घोषणा
13 मार्च	1947	– डाबडा काण्ड
23–24 मार्च	1947	– माउन्ट बेटन भारत का गवर्नर जनरल
6 अप्रेल	1947	– के.एम. मुन्शी द्वारा राजपूताना, मालवा व गुजरात का संघ बनाने का सुझाव
8 अप्रेल	1947	– तसीमी गांव में पुलिस द्वारा गोलियां चलाना
31 मई	1947	– पूनावाड़ा काण्ड
3 जून	1947	– भारत विभाजन की योजना की घोषणा
14 जुलाई	1947	– पं. नेहरू का विलय सम्बन्धी वक्तव्य
15 अगस्त	1947	– भारत–स्वतन्त्रता की घोषणा
18 मार्च	1948	– मत्स्य संघ की स्थापना
18 अप्रेल		– उदयपुर में पं. नेहरू द्वारा संयुक्त राजस्थान का उद्घाटन
1 मई	1948	– संयुक्त राजस्थान के मुख्यमंत्री का शपथ ग्रहण
30 मार्च	1949	– बृहद राजस्थान का उद्घाटन
15 मई	1949	– मत्स्य संघ राजस्थान में सम्मिलित
	1954	– पथिक जी का स्वर्गवास
1 नवम्बर	1956	– आबूरोड़ और देलवाड़ा तहसील का राजस्थान में मिलाया जाना
1 नवम्बर	1956	– अजमेर का राजस्थान में मिलाया जाना
	1963	– मोतीलाल तेजावत का स्वर्गवास

संदर्भिका

1- अप्रकाशित प्रमुख मौलिक शोध सामग्री—

(अ) राष्ट्रीय अभिलेखागार, दिल्ली

फोरिन एंड पोलिटिकल कन्सलटेशन प्रोसिडिंग्ज (1907–1945)
फोरिन एंड सीक्रेट कन्सलटेशनस एंड प्रोसिडिंग (1818–1940)
राजपूताना ऐजेन्सी रेकार्ड
राजपूताना रजिडेन्सी रेकार्ड
फोरिन पोलिटिकल फाइल -

फा. नं.	
954	भील एफेयर्स, 1922–23
956	मेवाड़ एजीटेशन 1922–23
437	सिरोही एफेयर्स, 1922–23
954	बी. एस. पथिक, 1922–23
148	एजीटेशन इन बूंदी स्टेट, 1924
134	कंपलेन्ट भरतपुर स्टेट, 1924
74 पी	पथिक का ट्राइल, 1924–25
185	मोतीलाल, 1925
99, 126	सीकर एफेयर
276	मोतीलाल एण्ड एरेस्ट
48	अलवर
338, 74, 1 (3)	मीओं एजीटेशन

(आ) राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर

जोधपुर सम्बन्धी कान्फीडेन्शल फाइल ग्रुप "ए"

फा. नं.	
10	लोक परिषद, 1942
18	जयनारायण व अचलेश्वर प्रसाद
24/1	मारवाड़ लोक परिषद्, एजीटेशन, 1940
34	मारवाड़ स्टुडेन्ट यूनियन, 1939
40	पोलिटिकल प्रिजनर्स डाइट इन जेल
46	प्रजामण्डल सिरोही
49/1	प्रोसक्रिपशन ऑफ बुक्स
61	जयनारायण व्यास
63	अचलेश्वर प्रसाद
94	मारवाड़ क्रिमनल प्रोसीजर

ग्रुप "बी"

55/3	अचलेश्वर प्रसाद, 1944
25/4	पुरुषोत्तम प्रसाद नैयर
55/17	द्वारकादास
55/33	मथुरादास माथुर

ग्रुप "सी"

डी/2/1	लोक परिषद्
सी/22	पोलिटिकल ऐजीटेशन, 1942
सी/2	इन्स्ट्रूमेन्ट आफ एक्सेशन महाराजा उम्मेदसिंह

"ग्रुप डी"

ई/4	स्वामी नित्यानंद
67	जयनारायण व्यास का रुग्ण पिता से मिलना
68	पब्लिक मीटिंग गिरदीकोट, 24-539

ग्रुप "एफ"

बी/डी/16	आनंदराज, जयनारायण केस 27-9-29 से 25-11-30
बी/डी/8	मारवाड़ हितकारिणी सभा, इन्टर्नमेन्ट आफ आनन्दराज एण्ड जयनारायण
बी/डी/16	प्रोसक्रिपशन आफ बुक्स एण्ड पेपर
43/1	डिक्लेरेशन आफ लोक परिषद् अनलॉ फुल, 1940
43/1-1	अचलेश्वर प्रसाद इन्टर्नमेन्ट डीडवाना (1940)
43/3	जयनारायण एण्ड चोपासनीवाला इन्टर्न्ड इन जालौर फोर्ट; 1940
43/3-4-5	पुरुषोत्तम प्रसाद एण्ड मथुरादास इन परबतसर फोर्ट, अभयमल जैन, सिवाना फोर्ट, रणछोड़दास घट्यानी वाली फोर्ट 1940
55/ए-1 से 8	लोक परिषद् आन्दोलन, 1942 सिविल डिसओबीडेन्स मूवमेन्ट, 1942
132/	डाबरा रायट
24/2	मारवाड़ लोक परिषद्

बूंदी ग्रुप 'ए'

77,137,80	प्रोसक्रिपशन आफ न्यूज पेपर्स, 1922-29
पी.-46	पोलिटिकल एजीटेशन आफ बराड बीजोलिया
23	बराड़, 1922-23, 1930
9/2-12	हाड़ोती प्रजामण्डल कोटा एक्टीवीटीज, 1940-41
एस.एन./45	गूजर मीटींग-ग्रेजींग टेक्स
एस.एन./46	बूंदी लोक परिषद् रजिस्ट्रेशन एपलीकेशन, 1943-45

218	राजस्थान सेवा संघ, 1922–23
पी.–22	पोलिटिकल ऐजीटेशन
243	ग्रेजिंगपेक्स
	उदयपुर ग्रुप "ए"
7	पोलटीकल सस्पेक्ट्स, 1938, 39
28	एरेस्ट आफ माणिक्यलाल वर्मा, 1938.39
16	लिस्ट आफ मेम्बर्स कांग्रेस 1940
16/ 11	प्रजामण्डल एक्टीवीटीज, 1946
27/3	एरेस्ट प्रजामण्डल मीटिंग्ज, 1946
51	एरेस्ट रमेशचन्द्र व्यास, 1941–42
एस.एन.38	इन्टरसेशन आफ हरिभाऊ उपाध्याय, अमृतलाल सेठ, शोभा, लाल गुप्ता, जमनालाल बजाज इन बिजोलिया एफेयर्स 235–36
7	रजिडेन्सी कोरसपोन्डेन्स रिगार्डिंग मोतीलाल तेजावत, 19-34–35
82	पीपलीघाट राइट, 8,जुलाई, 1932
89	विजयसिंह पथिक, 1940
6	फाईल रिकार्डिंग. बलवन्तसिंह मेहता, अंबालाल, भूरेलाल-बया, भवानीशंकर वैद्य आदि
118,84, 125 428	उदयपुर कान्फिडेन्शल फाइल
145,18,9	बीजोलिया (1919–31)
	जयपुर
92,93,104	पोलिटि मूवमेंट शेखावटी
313	पं. जवाहरलाल नेहरू विजिट टू जयपुर, 1937
490	स्टूडेन्ट पार्टिसी पेशन इन प्रजामण्डल
10/सीं.आर.	नोट आन प्रजामण्डल एक्टीविटी
671	पब्लिक आउट ब्रेक इन जयपुर
42	एरेस्ट आफ कांग्रेस मैन, 1938
299	प्रजामण्डल एक्टीवीटी 1 से 11 फरवरी, 1939
191 भा 2–9	सिविल डिसओबीडियन्स फाइल्स
	अलवर ग्रुप "ए"
1521/एफ	आरडीनेन्सेस
पी/ 46	प्रजामण्डल स्पीचेज एण्ड एरेस्ट
1449/एफ/ 23	गोविन्दगढ़ इन्सीडेन्ट, 1932
118	लिस्ट आफ लाग, 1923–27
315–जे/23	नीमूचाना केस, 1925
316–जे/23	सीडीशियस मीटिंग्ज 1925

भरतपुर ग्रुप "ए"

38/65	भरतपुर डिस्टर्बेन्सेज, 1942-43
871/पी. 36	डिटेन्शन आफ परसन्स, 1943
2002/	ब्रजजय प्रतिनिधि समिति
9-13-14-15	एक्टीवीटीज, 1939-45
32-33	मेओ एजीटेशन
47	भरतपुर प्रजा परिषद रजिस्ट्रेशन, 1939
14,6,2,8	भरतपुर प्रजामण्डल; रिपोर्ट, एजीटेशन
10,2	एरेस्ट, 1932,35, 1942-43
158, 171	मेग्रो एजीटेशन

धौलपुर

3/सी	प्रजामण्डल एजीटेशन
9/	न्यूज पेपर कटिंग्ज, 1946

किशनगढ़

17	ओबजेक्शनेबल पब्लीकेशन
27	विजिट ग्राफ जमनालाल बजाज 9-4-40
30	प्रजामण्डल किशनगढ़
33	स्वराज का बिगुल पेम्फलेट

बीकानेर

25	बालमुकुन्द जोधपुर, 1934
48	ओबजेक्शनेबल पब्लीकेशन, 1940
27	मारवाड़ लोक परिषद लाडनू, 1940
एस.एन; 2	ऐजीटेशन बीकानेर, 1944
एस.एन.नं. 9	कांग्रेस वर्कर्स, पोलिटिकल प्रिजनर्स, प्रजा परिषद
591	15-3-40 से 24-3-43

सिरोही

4, 49/105	प्रजामण्डल एजीटेशन, 1935, 1941
249, 250	प्रजा सेवा समिति सिरोही, 1939
251, 252, 253, 281	प्रजामण्डल एजीटेशन
23	प्रजामण्डल एक्टीविटी, 1847-48

(इ) प्रजामण्डल-रा.रा.प्र. बीकानेर

सिरोही

1-78	लाठीचार्ज (1939) कोरोसपोन्डेन्स एजीजी (1939-40) अनलोफुल प्रजामण्डल (1939-40,42), सिरोही प्रजा मण्डल कार्यवाहक समिति, 1947

अलवर

36, 64	अलवर सत्याग्रह, 1947, 1948
83, 60, 71+72	अलवर राज्य प्रजा मण्डल
91, 94, 99, 100	मत्स्यराज, प्रजामण्डल आदि
105, 118, 127	

उदयपुर

5,19	प्रजामण्डल पत्रिका, पत्रव्यवहार (1946-48) अजमेर पुलिस व सी.आई.डी रिपोर्ट्स

बांसवाड़ा

1	ग्रेन कमेटी
2.5,6	गजट सरकार, 1945-48
7	शासन सम्बन्धी मांग पत्र, 1947
9	आंदोलन सम्बन्धीं कागजात, 1948
12, 13	सरकारी दमन से सम्बन्धित

बीकानेर

8	बीकानेर षड़यन्त्र केस

बून्दी

1	बूंदी प्रजामण्डल, 1937-44
3	अगस्त 1947 को बूंदी
4	बूंदी आन्दोलन फाइल, 1947
9	पब्लिक शिकायतें, 1946-47

करोली

1-8	प्रजामण्डल (1939), बेगार (1939) प्रजामण्डल पत्रिका (1947-48) प्रजामण्डल (1939-48)

जयपुर

1-14	जयपुर प्रजामण्डल (1937-48) बुलेटिन (1946-48) पत्र व्यवहार (1946-48), अखिल भारतीय देशी राज लोक परिषद् प्रान्तीय सभा

जोधपुर

6,7,9	जोधपुर प्रजामण्डल, पत्र व्यवहार, मारवाड़ लोक परिषद्
34,52	जयनारायण व्यास (1946-48)
56	मारवाड़ लोक परिषद् स्वयंसेवक
85	व्यास जी के पत्र, 1946

106	विविध और गोपाकाण्ड से सम्बन्धित कागजात
147	हरिजन सेवा-संघ
154	जोधपुर राज प्रजामण्डल जनता से अपील
82	बालमुकुन्द बिस्सा, 1942

झालावाड़

1–13	स्पीचेज, 1947, पंचायत, प्रजामण्डल, झालावाड़ पुस्तिका

डूंगरपुर

1–4	डूंगरपुर से सम्बन्धित पत्र (1945–46) प्रजामण्डल बुलेटिन, आन्दोलन सम्बन्धी पत्र, 1947

अजमेर-ब्यावर

8	अजमेर-कांग्रेस कमेटी की कार्यवाही (1937–1940)
1	ब्यावर कांग्रेस कमेटी सम्बन्धित कागजात बहियां व दस्तावेज
	हकीकत बही जोधपुर, बीकानेर, पटाखा उदयपुर, पट्टा बही, हथ बही, जोधपुर, दस्ती रेकार्ड व तोजी रेकार्ड

(ई) नेहरू मेमोरियल म्यूजियम – दिल्ली

आलइंडिया स्टेट्स पीपुल्स कान्फ्रेन्स (3), इंडियन स्टेट्स पीपुल्स मूवमेन्ट नं. (19), जयपुर स्टेट् प्रजामण्डल, पीपुलर मूवमेन्ट (47), हीरालाल शास्त्री (54), मर्जर ग्रांफ इंडिया स्टेट्स (2)

(उ) रिपोर्ट, विज्ञप्तियां आदि

पुलिस रिपोर्ट, जोधपुर, 1928
पुलिस रिपोर्ट सिरोही, 1929
पुलिस डिपार्टमेन्ट सिरोही–बम केसेज, 1944
पुलिस रिपोर्ट, जोधपुर, 1947
पाक्षिक रिपोर्ट आई.जी.पी. बूंदी, 1946-47
रिपोर्ट कमिशन, अलवर रायट, 1932
वीकली रिपोर्ट उदयपुर, 1945
पाक्षिक रिपोर्ट इन्टेलिजेन्स, उदयपुर, 1946
वीकली रिपोर्ट सिविल डिस ग्रोबीडियन्स मूवमेन्ट, 1932–33
रिपोर्ट गोकुल भाई व साथी, सिरोही, 1939
रिपोर्ट अलवर सीचुएशन, 1932–33
फोर्टनाइटली रिपोर्ट, राजस्थान, 1921–1927

रिपोर्ट बीकानेर एडमिनिस्ट्रेशन, 1927-28

,, बून्दी ,, 1940-45

,, जोधपुर ,, 1930-45

,, मेवाड़ ,, 1930-47

रिपोर्ट स्टेटरीओरगेनाइजेशन, 1950

मेमोरेन्डम इंडियन स्टेट्स, 1940

रिपोर्ट राजपूताना-मध्य भारत सभा, 1937-38

रिपोर्ट इंडियन स्टेट्स पीपुल, 1927

रिपोर्ट आर्य समाज, 1914

,, ,, उदयपुर 1914

मेवाड़ ऐजेन्सी रिपोर्ट 1930

(ए) अधिनियम-

मारवाड़ सीडीशियस मीटिंग्ज एक्ट, 1909

पब्लिकेशन एक्ट अलवर, 1932

रजिस्ट्रेशन सोसाइटी एक्ट अलवर, 1939

गवर्नमेंट बीकानेर एक्ट, 1947

इंडियन स्टेट प्रोटेक्शन एक्ट, 1922

जयपुर पब्लिक सोसाइटीज एक्ट, 1940

जोधपुर ,, 1940

मारवाड़ प्रेस एक्ट, 1923

मारवाड़ पब्लिक सीक्योरिटी एक्ट, 1947

अलवर सीडीशियस मीटिंग एक्ट, 1921

जोधपुर कनडक्ट रूल्स, 1941

मत्स्य ओरडीनेन्सेज, 1948-49

(ऐ) समाचार-पत्र-

अर्जुन, कर्मभूमि, ट्रीब्यून, त्यागभूमि, तरुण राजस्थान, नेशनल कॉल, नवयुग संदेश, नवजीवन, नवीन राजस्थान, प्रजा सेवक, पायोनियर, मारवाड़ी, राजस्थान केसरी, रियासत, राजस्थान टाइम्स, विश्वामित्र, सैनिक, स्टेट्समेन, हिन्दुस्तान टाइम्स, क्षात्र धर्म

(ओ) प्रेस कटिंग (रा.रा.अ. बीकानेर)

फा.नं.	मारवाड़ लोक परिषद, 1949, बस्ता नं. 11	
106	सागरमल गोपा	
109	मारवाड़ लोक परिषद, पत्र व्यवहार, 1946 ब.नं. 11	
98	जयनारायण व्यास, 1938	
13 11.30,16, 42,12,17	बिजोलिया फायर एजीटेशन चेम्बर आफ प्रिंसेस	1913-1927

78.10,25	आल इंडिया पीपुल्स कान्फ्रेन्स, 1928
47,55,56,57,90	भरतपुर एफेयर्स, 1928–1930
60,16,87	बीकानेर एफेयर्स, 1927–32
74	व्यास, आनन्दराज सुराना, भंवरलाल, 1929
9	सिविल डिसओबीडियन्स मूवमेन्ट, 1930
24	मीणो एजीटेशन अलवर, 1932
78	उदयपुर में टेक्स, 1932
109,105,127	बीकानेर कोन्सपीरेसी केस आदि, 1932–1934
31,144,7,17	
131	
24,830	एग्रेरियन ट्रबल सीकर
105	अजमेर कान्सपीरेसी, 1935
52,135,97	जयपुर एफेयर्स 1936–1944
53,94,102,	
38	
53	सिरोही, 1936
58	कोटा, 1936
2,15	पं. जवाहरलाल विजिट टू जयपुर, जोधपुर 1945

II-गजट

बीकानेर राजपत्र, 1945,1948
भरतपुर राजपत्र, भा. 30, 1939
जयपुर गजट, 1942
जयपुर न्यूज लेटर, भा. 1,3, 1944
जोधपुर गवर्नमेंट गजट, 1940
कोटा राजपत्र, 1942
इंपीरियल गजट इंडिया, भा. 1–24
पोवेट, करौली गजट, 1874
पोवेट, अलवर गजट
राजपूताना गजेटियर्स प्रोविन्शियल सीरीज
इर्सकीन, राजपूताना गजेटियर
सीडीशन कमेटी रिपोर्ट, 1918
राजस्थान डिस्ट्रिक्ट गजेटियर्स, सीरीज

III-जर्नल

द इंडियन एन्युअल रजिस्टर, कलकत्ता, 1938–1947
राजस्थान हिस्टोरिकल रिसर्च जर्नल, जयपुर

(अ) प्रकाशित ग्रन्थ (अंग्रेजी)

अभ्यंकर, जी. आर. प्रोबलेम्स आफ इंडियन स्टेट्स, पूना 1928

ऐचीसन : ट्रीटीज एण्ड एगेजमेन्ट्स एण्ड सनद्स, भा-3, 1932

के, जान विलियम : द लाइफ एण्ड कोरोसपोन्डेन्स आफ चार्ल्स मेटकाफ, भाग. 2, 1858

के. जान मेलेसन, जी. बी. : हिस्ट्री ऑफ इंडियन म्यूटीनी, 1906

कैंब्रिज हिस्ट्री आफ इंडिया, भा. 4-6

कामबेल, जोनसन : मिशन विथ माउन्टबेटन, लंदन, 1951

कान्प्रीहेंसीव हिस्ट्री आफ इंडिया, भा. 5

खडगावत, एन. आर. : राजस्थान रोल इन स्ट्रगल आफ, 1857, रा. सं 1957

गोड, डी. डी. : कान्स्टीट्यूशनल डेवलपमेन्ट आफ ईस्टर्न राजपूताना स्टेट्स, जोधपुर, 1978

गोपीनाथ शर्मा : फ्रीडम मूवमेन्ट इन राजस्थान, गवर्नमेंट पब्लीकेशन, 1985

चतुर्वेदी, ए. एस. : स्ट्रगल फार रिस्पोन्सिबल गवर्नमेंट इन भरतपुर स्टेट 1947

चक्रवर्ती, जे. सी. : द नेटिव स्टेट्स आफ इंडिया, कलकत्ता, 1895

चिन्तामणी सी. वी. : इंडियन पोलिटिक्स सिन्स म्यूटीनी

चौधरी, एस. बी. : सिविल रिबेलियन इन इंडियन म्यूटीनीज, कलकत्ता, 1957

चिरोल, वैलेन टाइन : इंडियन अनरेस्ट, लंदन, 1910

जार्ज, मेकमून : द इंडियन म्यूटीनी इन पर्सपेक्टिव, दिल्ली, 1985

ज्वालासहाय : हिस्ट्री आफ भरतपुर आगरा, 1912

,, : लायल राजपूताना, 1902

टाड, जेम्स : एनाल्स एण्ड एन्टीक्वीटीज आफ राजस्थान, भा. 1-3

ट्रेवर, कर्नल, जी. एच. ए. : चेप्टर आन इंडियन म्यूटीनी, राजपूताना, लंदन, 1905

टामस प्रिचार्ड : द म्यूटीनी इन राजपूताना, अजमेर, 1976

ताराचन्द : हिस्ट्री आफ फ्रीडम मूवमेन्ट इन इंडिया, भा. 1, 1961

नायक, टी. बी. : द भील्स, ए स्टडी

डा. पेमाराम : एग्रेरियन मूवमेन्ट इन राजस्थान, जयपुर, 1986

पद्मजा शर्मा : महाराजा मानसिंह आफ जोधपुर, आगरा, 1972

पनिकर, के. एम. : ब्रिटिश पोलीसी टुवर्डस इंडियन स्टेट्स

बेनर्जी ए. सी. : राजपूत स्टेट्स एण्ड ईस्ट इंडिया कम्पनी. कलकत्ता, 1951

मेहता, मोहनसिंह : लार्ड हेस्टींग्ज एण्ड इंडियन स्टेट्स, बम्बई, 1950

मेनन, बी. पी. : द स्टोरी आफ इन्टीग्रेशन आफ द इंडियन

मनोहर प्रभाकर : रोल आफ राजस्थान प्रेस ड्यूरिंग फ्रीडम स्ट्रगल राजस्थान सरकार, 1985 स्टेट्स

मजुमदार : एडवान्स हिस्ट्री आफ इंडिया, कलकत्ता, 1956

मजुमदार : फ्रीडम स्ट्रगल

माथुर, सोभाग : स्ट्रगल फार रेस्पोन्सिबल गवर्नमेंट इन मारवाड़, जोधपुर, 1982

[illegible]क : हिस्ट्री आफ मेवाड़

राम पाण्डे : भरतपुर, 1970

याज्ञिक, इंदूलाल : श्यामजी कृष्ण वर्मा, लाइफ एण्ड टाइम्स आफ इंडियन रिवोल्यूशनरीज, 1950

लक्ष्मणसिंह :पोलिटिकल एण्डकोन्स्टीट्शनल डेवपमेन्ट इन द प्रिंसली स्टेट्स इन राजस्थान दिल्ली, 1970

वैद्य कन्हैयालाल : प्रोग्रेसिव जोधपुर अन्डर ब्रिटिश प्राइम मिनिस्टर सर डोनाल्ड फील्ड, 1942

विशिष्ठ वी.के. : राजपूताना ऐजेन्सी, जयपुर, 1978

शारदा : लाइफ आफ दयानन्द सरस्वती, 1946

शावर्स : ए मिसिंग चेप्टर आफ इंडियन म्यूटीनी, 1888

सेन एस.एन. : एटिन फोर्टीसेवन, दिल्ली, 1958

सीतारामैया, पी. : हिस्ट्री आफ कांग्रेस

सक्सेना, के.एस. : द पोलिटिकल मूवमेन्ट एण्ड अवेकनिंग इन राजस्थान दिल्ली, 1972

सदरलैण्ड : स्केचस आफ द रिलेशन सबसिस्टिंग बिटवीन द ब्रिटिश : गवर्नमेन्ट इन इन्डिया एण्ड द डिफरेन्स नेटिव स्टेट्स, 1837

हांडा, आर.एल. : हिस्ट्री आफ फीडम स्ट्रगल इन प्रिन्सली स्टेट्स दिल्ली, 1968

हेमिल्टन, एच : हिस्ट्री आफ होमलैण्ड, लंदन, 1947

(आ) प्रकाशित ग्रन्थ हिन्दी

अग्रवाल, हरिप्रसाद : आजादी के दीवाने, ब्यावर, 1953

उपाध्याय, हरिभाऊ : पुण्य स्मरण, इंदोर, 1950

उर्मिला : द रिवोल्यूशनरी मूबमेंट इन राजस्थान

ओझा, गौरीशंकर हीराचन्द : उदयपुर जोधपुर, बीकानेर, किशनगढ़ सिरोही, डूंगरपुर प्रतापगढ़ राज्यों के इतिहास

केला, भगवान दास : देशी राज्य शासन, वृन्दावन, 1942

केला, भगवानदास : देशी राज्यों की जन जागृति, 1948

कांग्रेस शताब्दी प्रकाशन, : 1985 नानक भील, बीरबलसिंह, बालमुकुन्द, सागरमल गोपा डाबड़ा आदि

गहलोत, जगदीशसिंह : राजपूताने का इतिहास, भा. 1–2, जोधपुर, 1939

गुप्ता, मन्मथनाथ : भारत में सशस्त्र क्रान्ति की चेष्टा का रोमांचकारी इतिहास

,, ,, : भारतीय क्रांतिकारी आन्दोलन का इतिहास, दिल्ली 1960

,, ,, : अमर क्रांतिकारी दिल्ली, 1970

चौधरी रामनारायण : वर्तमान राजस्थान, 1948

जोशी, सुमनेश : राजस्थान में स्वतन्त्रता संग्राम के सेनानी

दयानन्द सरस्वती : सत्यार्थ प्रकाश, जयपुर, 1973

प्रेमसिंह कांकरिया, : भीलक्रांति के प्रणेता, मोतीलाल तेजावत, उदयपुर, 1985

प्रकाश व्यास, : राजस्थान का स्वाधीनता संग्राम, जयपुर, 1985

मांगीलाल मयंक : जैसलमेर का इतिहास, जोधपुर 1884

सक्सेना : बीजोलिया का आन्दोलन

,, ,, : जो देश के लिए जिए

: सारस्वत, रावत–मीणा इतिहास, जयपुर, सं. 2025

; राजस्थान, मरुधर प्रकाशन, मू. जोधपुर 1984–85

नृसिंहदास : राजस्थान की पुकार, अजमेर

पावेट, टी.वी. : जमनालाल बजाज, आगरा

बजाज रामकृष्ण : पत्र व्यवहार, दिल्ली

भारतीय भवानीलाल : परोपकारिणी सभा का इतिहास, अजमेर, 1974

भगवतीलाल जैन : स्वतन्त्रता संग्राम में भगत आन्दोलन का योगदान, उदयपुर 1982

मुखोपाध्याय	: देवेन्द्रनाथ, दयानन्द सरस्वती का जीवन चरित, अजमेर, वि.सं. 2015
मेहता, पृथ्वीसिंह	: हमारा राजस्थान, इलाहबाद, 1950
राकेश (सम्पादक)	: हाडौती का स्वतन्त्रता-आन्दोलन, कोटा, 1973
रेऊ, विश्वेश्वरनाथ	: मारवाड़ का इतिहास, भा. 2, 1940
लक्ष्मीचन्द	: तवारीख जैसलमेर, गवर्नमेन्ट प्रेस पबलिकेशन, 1940
बृजमोहन, देवीलाल	: क्रान्तिकारी बारहट केसरी सिंह, उदयपुर, 1984
विद्यालंकार, हरिश्चन्द्र,	: आर्य समाज का इतिहास, दिल्ली, वि.सं. 1998
व्यास, जयनारायण	: मारवाड़ में उत्तरदायी शासन, जोधपुर
इन्द्र विद्यावाचस्पति,	: आर्य समाज का इतिहास, 1956
व्यास, जयनारायण	: बीकानेर षड़यन्त्र केस-कुछ ज्ञातव्य बातें
वी.डी. माथुर	: स्टेट्स पीपुल कान्फ्रेंस, जयपुर, 1984
सक्सेना शंकर सहाय	: पथिक, बीकानेर, 1963
,, ,, व पद्मजा	: बिजोलिया किसान आन्दोलन का इतिहास, बीकानेर, 1972
सक्सेना, के.एस.	: राजस्थान में राजनैतिक जन जागरण, जयपुर, 1972
सत्यदेव विद्यालंकार	: धुन के धनी, दिल्ली, 1964
सहीवाला	: अर्जुनसिंह का जीवन चरित्र, 1897
रतनलाल मिश्र	: शेखावाटी का इतिहास; जयपुर, 1984
सूर्यमल मिश्रण	: वंश भास्कर
श्यामलदास	: वीर विनोद
शर्मा, गोपीनाथ	: ऐतिहासिक निबन्ध राजस्थान, जोधपुर, 1970
शर्मा, मथुरा लाल	: कोटा राज्य का इतिहास, भा. 2, कोटा, 1939
शर्मा, भगवद्दत्त, सम्पादक	: ऋषि दयानन्द सरस्वती के पत्र और विज्ञापन अमृतसर, 1955
शास्त्री शर्मा	: शेखावाटी का इतिहास, जयपुर, 1984

राजकीय मुद्रणालय, बीकानेर।

राजकीय मुद्रणालय, बीकानेर।